एम.ए.ई.सी.–05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

पूर्व पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. बी.एस. शर्मा

पूर्व कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक / समन्वयक

प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा

कुलपति

कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रोफेसर एस.एस. आचार्य

निदेशक,

विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर

प्रोफेसर डी.डी. नरूला

मानद वरिष्ठ अध्येता

विकास अध्ययन संस्थान जयपुर

डॉ. श्याम नाथ

फ़ेलो,एन.आई.पी.एफ़., नई दिल्ली

प्रो. अमिताभ कुन्डु

सी.एस.आर.डी.

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली

प्रोफेसर ए.के. सिंह

गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट स्टडीज

लखनऊ

डॉ. प्रमोद वर्मा

इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट

अहमदाबाद

डॉ. एम.के. घड़ोलिया (संयोजक)

सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग

कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. रामेश्वर प्रसाद शर्मा

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग

कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. जे.के. शर्मा

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग

कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम संशोधन अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. एल.आर. गुर्जर
निदेशक अकादमिक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक

डॉ. जे.के. शर्मा
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. फरीदा शाह, आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय , उदयपुर	**डॉ एन. के. दशोरा,** अर्थशास्त्र विभाग, राजीव गाँधी जनजाति विश्वविद्यालय, उदयपुर
डॉ. धीरेश कुलश्रेष्ठ सह - आचार्य हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़	**डॉ.हेमा मंगलानी,** सहायक आचार्य, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. सुरेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	

सम्पादक

अनुवाद **श्री एस.के. लोहार** सिरोही	**डॉ. एम.के. घड़ोलिया** सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठों के लेखक

डॉ. एन.सी. पहाड़िया राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	**प्रो. ए. विजयराजन** मदुरै
प्रो. ओ.एस. श्रीवास्तव अर्थशास्त्र विभाग भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल	**प्रो. एम.आर. अग्रवाल** पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
डॉ. आर.एल. वार्ष्णेय भारतीय विदेश व्यापार संस्थान, नई दिल्ली	**डॉ. सी.एल. सिंगला** एस.एस. जैन कॉलेज, अम्बाला सिटी
श्री लोकेश भट्ट अर्थशास्त्र विभाग राजकीय महाविद्यालय, अलवर	**प्रो. आर.के. अग्रवाल** अर्थशास्त्र विभाग जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

डॉ. एस. के. वर्मा अर्थशास्त्र विभाग मंदार कॉलेज, रांची	**डॉ. के.डी. स्वामी** अर्थशास्त्र विभाग जे.एन.वी. विश्वविद्यालय, जोधपुर
डॉ. पी.आर. गग्गड़ अर्थशास्त्र विभाग राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा	**डॉ. आर.पी. शर्मा** सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. के.डी. स्वामी सहआचार्य, अर्थशास्त्र विभाग जे.एन.वी. विश्वविद्यालय, जोधपुर	**श्री जी.एल. मालव** व्याख्याता अर्थशास्त्र राजकीय महाविद्यालय, कोटा
प्रो. आर. सहाय अर्थशास्त्र विभाग भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर	**डॉ. एम.के. घड़ोलिया** राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज।)
डॉ. सुभाष नरूला नई दिल्ली	**श्री एम.सी. गुप्ता** जयपुर
श्रीमती अरुणा कौशिक व्याख्याता अर्थशास्त्र जे.डी.बी. कन्या महाविद्यालय, कोटा(राज.)	**डॉ. जी.एस. शर्मा** एस.आर.के. कॉलेज, फिरोजाबाद
डॉ.हेमा मंगलानी (इकाई 1,3,8,11,29,33) सहायक आचार्य, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर	

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.अशोक शर्मा	**प्रो.(डॉ.) एल.आर. गुर्जर**	**प्रो. अरविंद पारीक**
कुलपति	निदेशक संकाय विभाग	निदेशक, क्षेत्रीय सेवाएँ विभाग
वर्धमान महावीर खुला	**वर्धमान महावीर खुला**	**वर्धमान महावीर खुला**
विश्वविद्यालय, कोटा	**विश्वविद्यालय, कोटा**	**विश्वविद्यालय, कोटा**

पुनःउत्पादन : मई 2017 ISBN NO- 13/978-81-8496-451-6

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MAEC-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खंड - 1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त		
इकाई - 1	अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व	1-24
इकाई - 2	अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त - रिकार्डो का सिद्धान्त	25-34
इकाई - 3	रिकार्डो के सिद्धान्त मे संशोधन	35-53
इकाई - 4	मिल के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिपूरक मांग का सिद्धान्त	54-67
इकाई - 5	टॉजिग का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त	68-82
इकाई - 6	हेबरलर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त(अवसर लागतें)	83-95
इकाई - 7	हैक्शचर-ओहलिन का सिद्धान्त तथा साधन कीमत समानीकरण प्रमेय	96-122
खंड – 2 : मॉडलों का प्रमाणीकरण एवं संतुलन		
इकाई - 8	अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मॉडलों का प्रमाणीकरण	123-137
इकाई - 9	अंतराष्ट्रीय व्यापार मॉडलों का प्रमाणीकरण व संतापकारी वृद्धि	138-166
इकाई - 10	व्यापार - स्वरूप के निर्धारक : नवीन सिद्धान्त	167-175
इकाई- 11	अंतर व अंतरा व्यापार सिद्धान्त	176-190
इकाई - 12	उत्पादन, उपभोग तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सामान्य संतुलन	191-207
इकाई -13	व्यापार तटस्थता-रेखायें तथा ऑफर-रेखायें	208-221
इकाई -14	आर्थिक विस्तार और व्यापार	222-242
खंड – 3 : निर्यात तथा व्यापार शर्तें		
इकाई -15	व्यापार की शर्तें	243-255
इकाई -16	प्राथमिक उत्पादों का निर्यात तथा व्यापार शर्तें	256-265
इकाई -17	व्यापार से प्राप्त लाभ का सिद्धान्त	266-278
इकाई -18	तटकर: तटकर के प्रभाव, तटकर की लागतें, लाभ एवं प्रभावी संरक्षण दर	279-291
इकाई -19	अनुकूलतम प्रशुल्क	292-300
इकाई -20	आयात अभ्यंश	301-312
इकाई -21	व्यापार में हस्तक्षेप की आवश्यकता - शिशु उद्योग, बाजार विकृतियां और बाह्राय मितव्ययिताएँ	313-329

खंड – 4 : भुगतान सन्तुलन एवं विनिमय दरें		
इकाई -22	विकासशील देशों की व्यापारिक नीति	330-345
इकाई -23	चुंगीसंघ का सिद्धान्त एवं आर्थिक एकीकरण	346-354
इकाई -24	भुगतान सन्तुलन, व्यापार संतुलन व भुगतान संतुलन खाता	355-372
इकाई -25	भुगतान सन्तुलन में असाम्यता	373-399
इकाई -26	विदेशी विनियम दर निर्धारण के सिद्धान्त	400-410
इकाई -27	स्थिर एवं लचीली विनिमय दरें	411-417
इकाई -28	अवमूल्यन लोच विधि, अवशोषण विधि एवं मौद्रिक नीतियों का समन्वय	418-431
खंड – 5 : विदेशी व्यापार		
इकाई -29	विदेशी व्यापार गुणक व इसके प्रभाव	432-453
इकाई -30	विदेशी सहायता एवं ऋण सेवा भार	454-468
इकाई -31	अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष	469-478
इकाई -32	विश्व बैंक तथा सम्बद्ध संस्थाएं	479-484
इकाई -33	विश्व व्यापार संगठन व इसका विकासशील देशों पर प्रभाव	485-543
इकाई -34	यूरोपीय मुद्रा बाजार	544-551
इकाई -35	अल्पकालीन व दीर्घकालीन पूँजी अन्तरण	552-564
इकाई -36	भारत का विदेशी व्यापार	565-579
इकाई -37	विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत का विदेशी व्यापार	580-596

खण्ड परिचय

इकाई संख्या 1 में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्राचीनतम प्रतिष्ठित सिद्धान्त की विवेचना की गई है इसे रिकार्डो के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ होता है। इस विचारधारा से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं सहयोग का एक नया युग प्रारम्भ हुआ। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) की इस विचारधारा से पूर्व प्रचलित वणिकवादी विचारधारा (Mercantilist Theory) में राष्ट्रों को अपने निर्यातों को अधिक से अधिक बढ़ाने की सलाह दी गई थी। इनके विचारों से आयात करने से देश की कीमती धातु सोना या चांदी बाहर जाते हैं अत: आयात देश के लिए हितकारी नहीं है। परन्तु एडम स्मिथ ने लागतों में निरपेक्ष अन्तर एवं बाद में रिकार्डो ने लागतों में सापेक्ष अन्तर के अपने सिद्धान्तों से यह सिद्ध कर दिया कि व्यापार दोनों देशों के लिए लाभदायक है। प्रस्तुत इकाई में विभिन्न उदाहरणों की सहायता से इन सिद्धान्तों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

इकाई संख्या 2 एवं 3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त - रिकार्डो का सिद्धान्त एवं रिकार्डो के सिद्धान्त मे संशोधन की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

इकाई संख्या 4 में मिल ने पारस्परिक या प्रतिपूरक मांग सिद्धान्त के द्वारा यह सिद्ध किया है कि आन्तरिक व्यापार की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्ते ऊँची होनी चाहिए। व्यापार की वास्तविक शर्ते दोनों देशों के पारस्परिक मांग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्ति पर निर्भर करती हैं। मिल ने यह भी सिद्ध किया कि स्वतन्त्र व्यापार में छोटे देश बड़े देशों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त कर सक्ते हैं।

इकाई 5 में टॉजिग के विश्लेषण की चर्चा की गई है। टॉजिग का मुख्य योगदान उन विभिन्न सुधारों और विस्तारों की पहचान करने में है जिनकी तरफ दूसरे परम्परावादी विचारकों का ध्यान नहीं गया। यह सिद्धान्त भी परम्परागत मान्यताओं जैसे श्रम ही एक मात्र उत्पादन का साधन है, श्रम समरूप है एवं समान मजदूरी पाई जाती है, के आधार पर तैयार किया गया है। इस सिद्धान्त में यह मान्यता है कि विभिन्न देशों के बीच व्यापार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है एवं परिवहन लागत शून्य है। लागतों में निरपेक्ष अन्तर एवं तुलनात्मक अन्तर पाए जाने पर तो व्यापार होता है परन्तु लागतों में समान अन्तर होने पर व्यापार नहीं होता है। टॉजिग ने यह भी समझाने का प्रयास किया कि ऊँची मौद्रिक मज़दूरियों वाला देश श्रेष्ठ व्यापार की शर्ते प्राप्त करता है।

इकाई 6 अवसर लागतों पर आधारित हेबरलर के व्यापार सिद्धान्त की विवेचना प्रस्तुत करती है। हेबरलर ने उत्पादन सम्भावना वक्र का उपयोग किया इससे रिकार्डो के श्रम मूल्य सिद्धान्त की अवास्तविक मान्यताओं से हटकर सिद्धान्त का गणितीय एवं ज्यामितीय विश्लेषण सम्भव हुआ। इस प्रकार यह सिद्धान्त अधिक व्यावहारिक है।

इकाई संख्या 7 में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक देश के भीतर विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का ही विशेष रूप है। इस सिद्धान्त को हैक्शचर-ओहलिन के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट किया गया है कि साधनों की सापेक्षिक दुर्लभता लागतों में अन्तर उत्पन्न कर व्यापार को जन्म देती है। मांग एवं पूर्ति का सामान्य सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लागू होता है। हैक्शचर-ओहलिन सिद्धान्त से प्रोफेसर सेम्यूलसन ने एक उप- सिद्धान्त का निर्माण किया इसे साधन कीमत समानीकरण प्रमेय के नाम से जाना जाता है। यह

सिद्धान्त बताता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण देशों के बीच न केवल वस्तुओं की कीमतों में बल्कि साधनों की कीमतों में समानीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है।

इकाई संख्या 8 में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मॉडलों का प्रमाणीकरण पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा किए गए अध्ययनों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। सभी सिद्धान्त की जाँच इसलिए आवश्यक है क्योंकि ये विभिन्न मान्यताओं पर आधारित होते हैं। यदि सिद्धान्त जाँच पर खरा उतरता है' उसका व्यावहारिक महत्व बढ़ जाता है अन्यथा नए सिद्धान्तों की खोज प्रारम्भ हो जाती है।

इकाई संख्या 9 में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मॉडलों का प्रमाणीकरण व संतापकारी वृद्धि पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा किए गए अध्ययनों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इकाई 10 में व्यापार स्वरूप के निर्धारक नवीन सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। व्यापार के परम्परावादी व नवीन परम्परावादी सिद्धान्त पूर्ति पक्ष पर अधिक बल देते हैं। नवीन सिद्धान्तों में मांग पक्ष पर बल दिया गया है। आधुनिक सिद्धान्तों में मांग एवं पूर्ति के आधार पर सिद्धान्त को विकसित किया गया है।

इकाई संख्या 11 अंतर व अंतरा व्यापार सिद्धान्त संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इकाई संख्या 12 उत्पादन, उपभोग तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सामान्य संतुलन सिद्धान्तको विकसित किया गया है।

इकाई संख्या 13 में समुदाय तटस्थता वक्र (Community Indifference Curve) तथा उत्पादन सम्भावना वक्र एवं व्यापार उदासीनता वक्र का विस्तृत विवेचन कर सामान्य संतुलन स्थापित किया गया है। इकाई संख्या 14 व्यापार की तटस्थता रेखाओं तथा अर्पण वक्र अथवा ऑफर वक्रों (Offer Curves) की विचारधारा की व्याख्या की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों का प्रदर्शन इन रेखाओं की सहायता से आसानी से किया जा सकता है।

इकाई 15 में व्यापार की शर्तों का अर्थ स्पष्ट करने के बाद इसके विभिन्न रूपों एवं इसके मापने में होने वाली कठिनाइयों की चर्चा की गई है। इसके बाद इकाई संख्या 16 में प्राथमिक उत्पादो का निर्यात करने वाले विकासशील देशों की व्यापार शर्ते किस प्रकार प्रतिकुल बनी रहती हैं। इन्हें सुधाने के लिए क्या किया जाना चाहिए? यह स्पष्ट किया गया है।

इकाई संख्या 18 में तटकर: तटकर के प्रभाव, तटकर की लागतें, लाभ एवं प्रभावी संरक्षण दर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है छोटे राष्ट्र व्यापार से अधिक लाभान्वित होते हँ। बड़े राष्ट्रों के लिए भी व्यापार-विहीन स्थिति की तुलना में आपार की स्थिति श्रेष्ठ है।

इकाई संख्या 19 में अनुकूलतम प्रशुल्क को स्पष्ट किया गया है। सो के उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के लिए तटक्त का प्रयोग व्यापक स्थ से किया जाता है।

इकाई संख्या 20 में आयात अभ्यंश की विस्तृत व्याख्या की गई है।

इकाई संख्या 21 में व्यापार में हस्तक्षेप की आवश्यकता - शिशु उद्योग, बाजार विकृतियां की विस्तृत व्याख्या की गई है। । इसके साथ ही ' 'पेरेते उत्तमावस्था' ' के लिए आवश्यक शर्तो को भी स्पष्ट किया गया है।

स्काई संख्या 22 विकासशील देशों की व्यापारिक नीति को भी स्पष्ट किया गया है।

इकाई संख्या 24 में भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन की अवधारणा को स्पष्ट क्या गया है। भुगतान संतुलन में व्यापार की दृश्य रखें अदृश्य दोनों मदें सम्मिलित होती हैं जबकि व्यापार संतुलन में क्येल दृश्य मदें सम्मिलित होती हैं। खातों की दोहरी इन्द्राज की नीति के कारण भुगतान संतुलन सस्यै संतुलित रहता है। इस इकाई में भुगतान असंतुलन के कारणों की चची भी संक्षेप में की गई है जिसे स्काई संख्या 25 में पुन: विस्तार से समझाया गया है। इकाई 25 मुख्य रूप से भुगतान संतुलन में असाम्यता के प्रकार रख इसके लिए उत्तरदायी कारकों की चर्चा की गई है । इस इकाई में असाम्यता को दूर क्यने के उपायों को भी दो भागों में समझाया गया है। यह दो प्रकार हैं, (1) मौद्रिक उपाय, तथा (2) गैर मौद्रिक उपाय । इसके अतिस्कि बुद्ध अन्य उपाय भी बताए गए हैं।

इकाई संख्या 26 में विदेशी विनियम दर निर्धारण के सिद्धान्तों को संक्षेप में समझाया गया है। इन सिद्धान्तों की चर्चा विभिन्न मौद्रिक प्रणालियों में भिन्न-भिन्न की गई है । आज विश्व में कहीं भी धातु मुद्रा का चलन नहीं है अत: विनिमय दर का निर्धारण विभिन्न मुद्राओं की क्यशक्ति के आधार पर होता है। विनिमय दर निधर्घण का आधुनिक सिद्धान्त भुगतान संतुलन सिद्धान्त है जो मअं एवं अत में साम्य के आधार पर विनिमय दर निर्धारण कइ व्याख्या क्सा है। इस..इकाई में विसोई विनिमय दर में असंतुलन अइ स्थिति में पुन: साम्य स्थापित क्यने वाली शीक्र्सा की चर्चा भी की गई है इकाई संख्या 30 में विदेशी सहायता रख ऋण सेवा भार की चर्चा की गई है। व्यापारिक शती से अधिक अक्ल शती पर उपलब्ध क्रण को ही विदेशी सहायता कहा जाता है। यह कई स्थों में उपलब्ध क्याई जा सक्ली है। आज विश्व के अधिकांश देश ऋणग्रस्तता की समस्या से ग्रसित हैं। अत: ऋण सेवा भार को लेक्य विकसित विकासशील सेयें में निरन्तर हितों का टक्याव देखने को मिलता है। बुक देश त्रण जाल में क्सं चुके हैं अत: विदेशी ऋण एवं सहायता के प्रयोग में सावधानी अपेक्षित है।

इकाई संख्या 31 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के लक्ष्य, कार्यो रख सक्कता का मूल्यांक्ल क्यती है। इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्रारा विकासशील स्ट्रों की सहायता के उद्देश्य से प्रारम्भ की गई विशिष्ट योजनाओं पर संक्षेप में प्रकाश डालागया है। इसके साथ ही इकाई 32 में विश्व बैंक एवं सम्बद्ध संस्थाओं की चर्चा को गई है। युद्धोत्तर विश्व समाज ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना जहां राष्ट्रों के अल्पकालिक भुगतान संतुलन की समस्याओं को दूर क्यने के लिए की वहीं युद्ध पीकि क्तौं में आर्थिक पुनर्निर्माण तथा विकास के लिए दीर्घकालिक क्रणों की आवश्यक्ताओं को पूरा क्यने के उद्दश्य से विश्व बैंक की स्थापना का निर्णय लिया । इस स्काई में विश्व बँक की स्थापना के उद्देश्य, कार्यप्रणाली व इसकी सक्कताओं का मूल्यांक्ल क्या जारप्रग़ ।

इकाई संख्या 33 विश्व बैंक तथा सम्बद्ध संस्थाएं विश्व व्यापार संगठन व इसका विकासशील देशों पर प्रभाव मूल्याकन किया गया|

इकाई संख्या 34 में यूरोपीय मुद्रा बाजार जो विश्वस्तर पर मुद्रा का थोक बाजार है की चर्चा की गई है। यह क्साई देश की सरकार एवं मुद्रा कोष के नियंत्रणों से परे है। इस इकाई में मुद्रा बस्तार की कार्यप्रणाली एवं विशेषताओं के साथ-साथ इसके उद्भव एवं विकास की चर्चा की गई है।

स्काई संख्या 35 में अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन पूँजी अन्तरण की चर्चा की गई है। अल्पकालीन पूँजी अन्तरण में एक वर्ष से क्य अवधि वाले प्रपत्र सम्मिलित होते हैं। इसमें व्यापाकि बैंक की जमाओं, हुमर्त्यी, ओवरड्राफ्ट तथा खुली साख को सम्मिलित करते हैं । इसके विपरित दीर्घकालिक

पूँजी अन्तरण में एक वर्ष से अधिक की पीरपक्ला अवधि वाले प्रपत्र सम्मिलित होते हैं। इनमें बाण्ड परिवर्तनीय ऋण-पत्र, स्टाक, बैंकों की सावधि-जमाएं सम्मिलित होती है। आजक्ल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का विशेष महत्व हो गया है। इस इकाई में पूँजी अन्तरणों के विभिन्न प्रकार एवं इन्हें प्रभावित क्यने वाले तत्वों का विवेचन क्यिा गया है।

इकाई 36 में भारत में विदेशी व्यापार की संरचना एवं दिशा का वर्णन चिा गया है। भारत के विदेशी व्यापार में आए महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तनों का दीर्घकालिक प्रभाव पक? है । इसके साथ इस खण्ड में इकाई 37 में विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार! का संक्षिप्त आक्लन प्रस्तुत क्यिा गया है।

इकाई - 1

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार

1.3 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व एवं आवश्यकता

1.4 आंतरिक एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

1.5 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन

1.6 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की विषय-वस्तु

1.7 वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की आर्थिक समस्याएँ

1.8 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ

1.9 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं जीवन स्तर

1.10 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की हानियाँ

1.11 आधारभूत अंतर्राष्ट्रीय आंकड़े व प्रकाशन

1.12 निष्कर्ष

1.13 संदर्भ पुस्तकें

1.14 शब्दावली

1.15 अभ्यासर्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कुछ मूलभूत पद्धतियों का प्रयोग करता है जेसा कि अर्थशास्त्र की अन्य शाखाओं में होता है, क्योंकि उद्देश्य और व्यवहार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ठीक वेसा ही है जेसा कि घरेलू और क्षेत्रीय व्यापार का। अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र नए और अलग पद्धतियों का अनुसरण करता है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार दो देशों के मध्य होता है। अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए सात सिद्धांतो का अध्ययन आवश्यक है : व्यापार से लाभ, विनिमय दर निर्धारण, अंतर्राष्ट्रीय नीति समन्वय, एवं अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाज़ार।

नजदीकी बाज़ार अगर आप जाएंगे तो आपको वह ब्राज़ीलियन कॉफी मिलेगी, चीन के बने विभिन्न उत्पाद मिलेंगे,जो कि विदेशी व्यापार के प्रभाव है। किसी भी देश की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति का उद्देश्य वस्तु और सेवाओं के बाज़ार के विस्तार के साथ उसकी भागीदारी को बढाना है और विश्व के विभिन्न उत्पादो के मध्य चुनाव देना है।

वस्तुओं और सेवाओं का विभिन्न देशों के मध्य क्रय और विक्रय ही अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता है। हर देश अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में आत्मनिर्भर नहीं होता अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता उभर के आई क्योंकि भिन्न राष्ट्रो में साधनो का वितरण भिन्न है । प्रत्येक देश की पर्यावरणीय व भौगोलिक स्थितियाँ, वृद्धि दर, तकनीकी क्षमताए , व प्रबन्धकीय कुशलताए पृथक होती है। इसका उद्देश्य देशों में भुगतान संतुलन को स्थिर बनाए रखना है।

आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य सामान्यतः अनुमान लगाना व उसकी व्याख्या करना है । वह आर्थिक सिद्धान्त है जो किसी आर्थिक घटना से जुड़े समस्त निर्धारकों का विस्तार से वर्णन करता है उसके सम्बन्धों का विश्लेषण करता है व सबसे महत्वपूर्ण घटना का अनुमान व उसकी व्याख्या करता है । इन पंक्तियों के साथ, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त प्राय: दो राष्ट्र, दो वस्तुओं व दो साधनों की मान्यताओं का अनुसरण

करता है । व्यापार मे प्रतिबंधिकरण को जोड़ा परंतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साधनों के आवागमन की मान्यता को स्वीकार नहीं किया । ना ही परिवहन लागतों को ।

ये मान्यताएँ प्रतिबंधित प्रतीत होती है ।

मान्यताओं के सरलतमिकरण से शुरुआत करें तो अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक नीति इनका विश्लेषण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों के आधार पर करती है उसकें कारकों व प्रभावों का विश्लेषण करती है । ये नीतियाँ अंतर्राष्ट्रीय भुगतनों व प्राप्तियों को नियंत्रित करती है इससे देशों की राष्ट्रीय आय व कल्याण पर होने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करती है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति समष्टि आर्थिक नीतियाँ तथा मौद्रिक व्यवस्थाओं की प्रभाविकता का भी विश्लेषण करती है ।

यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का अधिकांश अध्ययन व प्रयोग सामान्यतः व्यष्टि व समष्टि आर्थिक सिद्धांतों का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ मे व्याख्या करता है । द्वितीय क्षेष्ठ का सिद्धान्त, उत्पादन व साम्य का सिद्धान्त, वृद्धि सिद्धान्त, कल्याण अर्थशास्त्र सहित अनेकों सिद्धान्त भी अंतराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में लाभान्वित हुए है ।

1.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र राष्ट्रों के बीच आर्थिक संबंधो तथा परस्पर निर्भरता से सम्बद्ध है। इसका अध्ययन मुख्यतया साधनो, सेवाओं और वस्तुओं के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह के घरेलू उपभोक्ताओं के कल्याण पर पड़ने वाले प्रभाओवोन का विश्लेषण करने के लिए किया जाता है। इन अंतर्राष्ट्रीय प्रवाहों के नियमन करने के लिए जो राष्ट्रीय नीतियाँ अपनायी जाती है उनके प्रभाव, पूर्वानुमान, और परीक्षण का भी अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र कि एक विशेष और पृथक शाखा है जो देश के भीतर आर्थिक सम्बन्धों से भिन्न है, जिसका विश्लेषण करने के लिए घरेलू अर्थव्यवस्था से भिन्न

विश्लेषण के औजारों कि आवश्यकता होती है। अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का विशेष क्षेत्र बहुत विस्तृत है जिसमे सर्वप्रथम अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का का विशुद्ध सिद्धान्त आता है। इसमे व्यापार का आधार तथा व्यापार से लाभ का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत स्मिथ, रिकार्डो एवं गिल के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धांतो से लेकर आधुनिक अर्थशास्त्रियों के सिद्धांतो का विश्लेषण होता है।

दूसरे, वाणिज्यिक नीति का सिद्धान्त है व जिसके अंतर्गत विभिन्न व्यापार नीतियों तथा प्रतिबंधों से संबंध सिद्धांतो का अध्ययन सम्मिलित है। यह दोनों विषय व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में आते है क्योंकि इनमे प्रत्येक देश को एक एकल इकाई के रूप में लिया जाता है और उनका विश्लेषण सापेक्ष वस्तु और साधन कि लागतों और कीमतों के आधार पर किया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र का तीसरा भाग भुगतान शेष से संबन्धित एक देश के भुगतनों और प्राप्तियों का शेष विश्व के साथ होने वाले परिवर्तनों के कारणो एवं प्रभावों से है। इसमे भुगतान शेष तथा विदेशी विनिमय के विभिन्न सिद्धांतो का विश्लेषण सम्मिलित होता है।

आजकल भुगतान शेष से ही संबद्द अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र के चतुर्थ भाग का महत्व बहुत बढ़ गया है, जिसके अंतर्गत

भुगतान शेष के असंतुलनो कि समस्या को विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणालियों और संस्थाओं द्वारा सुलझाने के तंत्रो का अध्ययन शामिल है।अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के ये दोनों पहलू समष्टि आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में आते है क्योंकि भुगतान शेष विभिन्न देशों के अंतर्राष्ट्रीय लेन देनों का परिणाम होता है। फिर, भुगतान शेष असंतुलनों से उत्पन्न होने वाले प्रभावों राष्ट्रों कि कुल आय, उत्पादन तथा कीमत सूचकांक को प्रभावित करते है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता व महत्व का विस्तार से वर्णन इस इकाई में किया गया है ।

1.2 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत का सबसे पहले आधार भूत प्रश्न ये है कि राष्ट्र आपस मे व्यापार क्यों करते है ? राष्ट्र भी परस्पर व्यापार इसी उद्देश्य से करते है जिस उद्देश्य से व्यक्ति व्यापार करता है । आज के अनंत इच्छाओं के संसार मे कोई भी राष्ट्र आत्मनिर्भर होकर समस्त वस्तुएँ एवं सेवाएँ उत्पादित नहीं कर सकता1 प्रकृति ने साधनो का वितरण विश्व धरातल पर आसान किया है । कहीं प्राथमिक साधनो कि अधिकता है व कहीं पूंजीगत साधनों की । राष्ट्रों की प्राकृतिक सम्पदाओ, वातावरणीय परिस्थितियो खनन साधनों, श्रम व पूंजीगत साधनों तकनीकी क्षमताओ, में भिन्नता है तथा यही कारक है जो एक राष्ट्र की उत्पादकीय क्षमताओ को निर्धारित करते है । यही सारे अंतर उत्पादन सम्मभावनाओ को निर्धारित करते है जिससे कुछ राष्ट्र अधिक उत्पादन कर पाते है व कुछ कम । कोई भी राष्ट्र ऐसा नहीं है जो सभी वस्तुओ व सेवाओं का उत्पादन पूर्ण क्षमता से कर सकता है। और वह भी उत्पादन की सबसे कम लागत पर । जैसे जापान औटोमोबाइल्स या इलेक्ट्रोनिक वस्तुओं का उत्पादन विश्व के किसी भी राष्ट्र की तुलना मे अधिक क्षमता से कर सकता है, उसी तरह मलेशिया रबर व तेल का उत्पादन अधिक क्षमता से कर सकता है । जापान व मलेशिया इस प्रकार दोनों वस्तुओं का निर्यात एक दूसरे को कर सकते हैं , वो भी सापेक्षतः कम कीमतों पर । ब्राज़ील व थाइलैंड कम कीमतों पर आयात कर सकतें हैं व बदले में जापान व मलेशिया उनसे ब्राजीलियन कॉफी व थायलैंड का चावल आयात कम कीमतों पर कर सकते हैं । क्योंकि ब्राज़ील व थायलैंड कॉफी तथा चावल का उत्पादन बहुत कम लागत पर कर सकतें हैं। जैसे एक उपभोक्ता उपभोग का अधिकतमीकरण करता है ठीक उसी प्रकार एक राष्ट्र अपने लाभ का अधिकतमीकरण करता है । विनिमय की इस प्रक्रिया में राष्ट्र अपनी संतुष्टि व उपभोग का अधिकतमीकरण करतें हैं ।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का तात्कालिक कारण वस्तु व सेवाओं के कीमतों में अंतर है। कीमत अंतर इसलिए उत्पन्न होते है क्योंकि पूर्ति या उत्पादन व मांग स्थितियों में अंतर उत्पन्न होते हैं। पूर्ति घटको में अंतर प्राकर्तिक संसाधनो, श्रम कुशलताओ, तकनीकी क्षमताओ, साधन संपन्नताओ के अंतर के कारण उत्पन्न होते है। जो राष्ट्र श्रम सम्पन्न है वो श्रम गहन वस्तुओं का उत्पादन एवं निर्यात करते है। और जो पूंजी सम्पन्न है पूंजी गहन वस्तुओ का उत्पादन एवं निर्यात करते है।देशों की मांग स्थितियाँ भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का कारण है। एक देश जिसके मांग किसी वस्तु के लिए इसलिए कम है क्योंकि उसके लिए या तो आय कम है या अधिमान कम है। व्यापार इसलिए संभव है क्योंकि वो देश उस वस्तु को अपने देश से दूसरे देश मे सस्ता प्राप्त करते है। हम दो देश के साधारण मॉडल की व्याख्या करेंगे जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आधारों को स्पष्ट करता है।

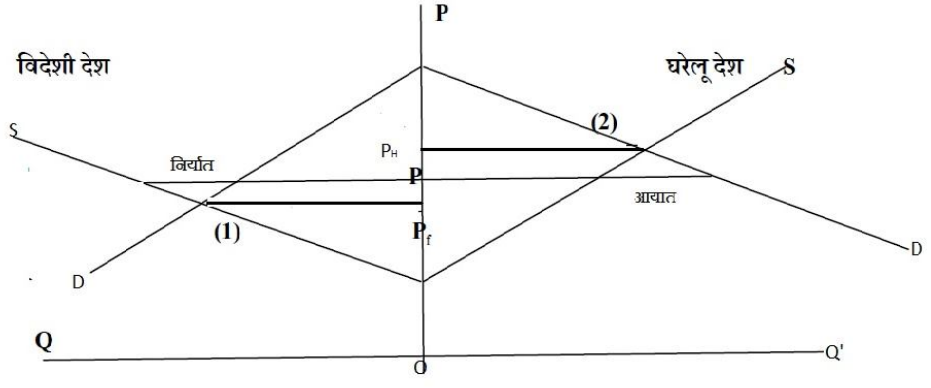

रेखाचित्र 1.2 समान पूर्ति स्थितियाँ परंतु पृथक मांग स्थितियाँ

ऊपर दिये गए रेखाचित्र में घरेलू देश की कीमत विदेशी देश की कीमत से अधिक (P_H>P_f) है जहां विदेशी देश का पूर्ति वक्र घरेलू देश के पूर्ति वक्र से ज्यादा लचीला है। विदेशी देश में कीमत मांग और पूर्ति वक्र के बिन्दु (1) पर काटती है। घरेलू देश की कीमत मांग व पूर्ति वक्र के बिन्दु (2) पर काटती है। घरेलू देश में ऊंची कीमते इस वस्तु के आयात को प्रोत्साहन देती है।

ऊपर दिये गए रेखाचित्र में पूर्ति स्थितियाँ तो समान है परंतु मांग स्थितियाँ भिन्न है, यहा घरेलू देश का मांग वक्र विदेशी देश के मांग वक्र से ज्यादा लचीला है।

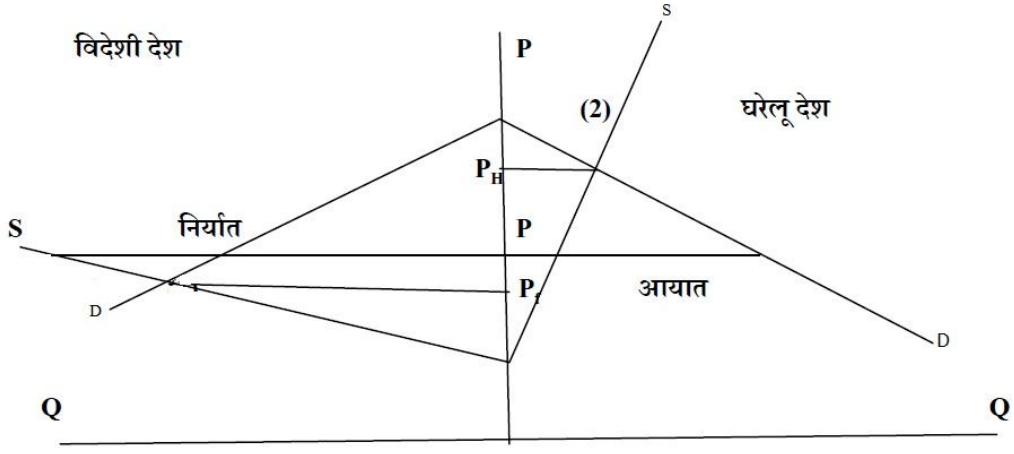

रेखाचित्र 1.3 पृथक मांग व पूर्ति स्थितियाँ

ऊपर दिये गए रेखाचित्र 1.3 में घरेलू व विदेशी देश के मध्य पृथक मांग व पूर्ति की स्थितियाँ हैं। ऊपर दी गयी तीनों ही स्थितियाँ दर्शाती है कि ये अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार प्रस्तुत करती है। लेकिन यदि स्थिति ऐसी हो कि मांग व पूर्ति कि स्थितियाँ घरेलू व विदेशी देश मे बिलकुल एक जैसी हो तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का कोई आधार या क्षेत्र नहीं रेहता। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार वस्तुओ व सेवाओं कि कीमतों में अंतर है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का परिणाम वस्तु व साधन कीमत समानीकरण है।

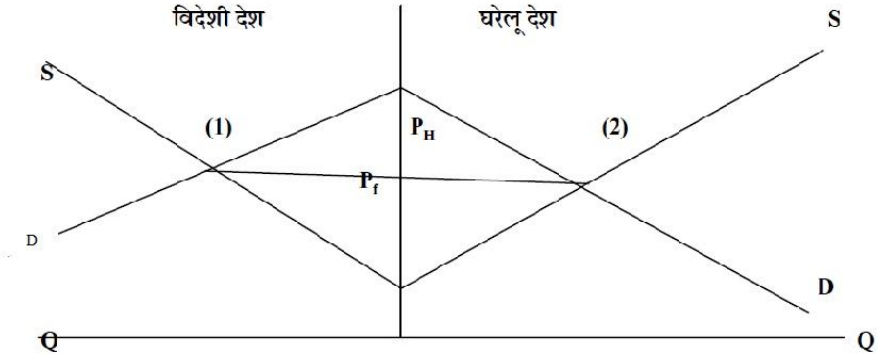

रेखाचित्र 1.4 समान मांग व पूर्ति कि स्थितियाँ

ऊपर दिये गए चित्र में मांग व पूर्ति कि स्थितियाँ दोनों देशों में समान है। इसलिए दोनों देशों में कीमत (P_H= P_f) भी समान है। अत: अंतर्राष्ट्रीय व्यापार यहाँ संभव नहीं है। जो कि एक बंद अर्थव्यवस्था कि और संकेत करता है। एक बंद अर्थव्यवस्था मतलब आर्थिक कल्याण में कमी। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वही दूसरी तरफ, देशों के लिए अवसरो को खोलता है, अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन से उत्पादन तीव्र गति से तथा न्यून लागतो पर संभव हो सका है।

1.3 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व एवं आवश्यकता

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, विश्व के विभिन्न देशों की व्यापार में भागीदारी के साथ विकास के नवीन आयामों का निर्धारण करता है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार देशों के मध्य उत्पादन की संभावनाओं के अंतर के साथ-साथ मांग व पूर्ति जनक कारकों के अंतर का परिणाम है, जो अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में अंतर का प्रमुख कारण है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में मुद्रा विनिमय प्रमुखतः भूमिका हैं, वहीं सभी देशों की अपनी मुद्रा है । अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा विनिमय व रूपान्तरण का भी एक प्रमुख अध्यन है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार देशों के जीवन स्तर, आय के स्तर का भी निर्धारण करता हैं । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति का निरीक्षण करता हैं । संरक्षण व भुगतान संतुलन की व्याख्या करता है जो किसी

भी राष्ट्र के विकास के महत्वपूर्ण आयामों में से है । विदेशी बाजार विनिमय व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ें सिद्धांतों का एक विश्लेषण है जो राष्ट्रों को इसकी प्रासंगिकता व उपयोगिता से जोड़ता है ।

जब हम किसी देश की वस्तु को खरीदतें है तो उसका भुगतान हमें अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा में करना होता है । ठीक उसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय जगत भी वस्तुओं व सेवाओं का भुगतान हमारी मुद्रा में करता है । हम भारतीय मुद्रा रुपये को अमेरीकन डॉलर, केनेडियन डॉलर, मैकिस्क पेसो, यूरो, जापान के येन, ब्रिटेन के पाउंड इत्यादि से विनिमय करते है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन इस मुद्रा जगत व विनिमय को समझने मे सहायता करता है । हमारे आस-पास का वातावरण व अखबारों की सुर्खियां कभी विश्व व्यापार संगठन व उसकी नीतियाँ तो कभी भारत व अमेरिका व्यापार तो कभी संरक्षण व आर्थिक एकीकरण के विभिन्न मुद्धों से घिरा व प्रकाशित होता रहता है । एसे मे इन समस्याओं के तह तक जानें में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ही सहायक है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, विश्व के विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्धों जैसे रूस, जापान, अफ्रीका व एशिया की आर्थिक नीतियों का विश्लेषण करता है । उनसे जुड़े निर्यात व आयात की मदों का विवरण देता है । एसे कई विषय है जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का हिस्सा है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन/ज्ञान आज के समय में अत्यंत आवश्यक है ताकि उपभोक्ता, नागरिक व मताधिकारी इससे परिचित हो सकें तथा अधिक जागरूक बन सकें । राजनीतिक स्तर पर भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन अति आवश्यक है जो बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग, सरकारी संस्थाओं जैसे वाणिज्यक विभाग, संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक व अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ।

1.4 आंतरिक एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अंतर्राष्ट्रीय सीमाओंया क्षेत्रों के आर-पार पूंजी, माल और सेवाओं का आदान-प्रदान है।. अधिकांश देशों में, यह सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के महत्त्वपूर्ण अंश का प्रतिनिधित्व करता है। जबकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, इतिहास के अधिकांश भाग में मौजूद रहा है इसका आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक महत्व हाल की सदियों में बढ़ने लगा है।
2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था पर औद्योगीकरण, उन्नत परिवहन, वैश्वीकरण, बहुराष्ट्रीय निगम और बाह्य स्रोत से कार्य निष्पादन, इन सभी का व्यापक प्रभाव पड़ता है।वैश्वीकरण की निरंतरता के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बढ़ोतरी महत्त्वपूर्ण है।अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बिना, देश सिर्फ़ अपनी खुद की सीमा के भीतर उत्पादित माल और सेवाओं तक सीमित रह जाएंगे. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, सिद्धांत रूप में घरेलू व्यापार से भिन्न नहीं है क्योंकि एक व्यापार में शामिल पक्षों की अभिप्रेरणा और व्यवहार मौलिक रूप से बदलता नहीं है भले ही व्यापार सीमा पार का हो या नहीं. मुख्य अंतर यह है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आम तौर पर घरेलू व्यापार से अधिक महंगा है। इसका कारण है कि एक सीमा आम तौर पर अतिरिक्त शुल्क लगाती है जैसे प्रशुल्क, सीमा पर विलंब के कारण आवधिक लागत और भाषा, कानूनी प्रणाली या संस्कृति जैसे देशीय भिन्नताओं से जुड़ी लागतें।
3. घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बीच एक और अंतर यह है कि पूंजी और श्रम जैसे उत्पादन कारक आम तौर पर बाहर की तुलना में देशों के भीतर अधिक गतिशील होते हैं। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ज्यादातर माल और सेवाओं के व्यापार तक सीमित है और पूंजी, श्रम या उत्पादन के अन्य कारकों के व्यापार में केवल एक छोटे पैमाने पर. इसके अलावा माल और सेवाओं का व्यापार, उत्पादन कारकों में व्यापार के लिए एक विकल्प के

रूप में कार्य कर सकता है। उत्पादन का एक कारक आयात करने के बजाय, एक देश माल आयात कर सकता है जो उत्पादन के कारक का गहन इस्तेमाल करे और इस प्रकार संबंधित कारक को सम्मिलित कर ले. एक उदाहरण है, चीन से संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा श्रम-प्रधान वस्तुओं का आयात. चीनी श्रम का आयात करने के बजाय अमेरिका, चीन से ऐसे माल आयात कर रहा है जिसे चीनी श्रम के इस्तेमाल से उत्पादित किया गया है।

4. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अर्थशास्त्रकी एक शाखा भी है, जो अंतर्राष्ट्रीय वित्तके साथ मिलकर अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्रकी विस्तृत शाखा का निर्माण करती है।

5. अंतराष्ट्रीय व्यापार का सबसे आकस्मिक कारक वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों का अंतर है विभिन्न राष्ट्रों के मध्य । कीमतों का अंतर का कारण मांग स्थतियों या पूर्ति स्थितियों में अंतर है । या फिर ढोनों पूर्ति स्थितियों में अंतर, प्राकृतिक संसाधनों क्षमताओं की श्रेणी तकनीकी स्तर जो उत्पादन में प्रयोग की जाती है श्रम क्षमताओं, साधन प्रचुरता इत्यादि के कारण उत्पन्न होते हैं । एक भूमि प्रचुर राष्ट्र, भूमि गहन वस्तु जैसे चावल या गेहूँ इत्यादि वस्तुएँ जैसे वस्त्र व हथकरगा का निर्यात कर सकता है तथा एक देश जहां बहुतायात पूंजी, उचस्तरीय श्रम क्षमता व तकनीकी उपलब्ध हो, वह तकनीक व पूंजी गहन वस्तुओं का जैसे कम्प्युटर, हवाई जहाज या फिर परमाणु अस्त्रों का निर्यात कर सकता है ।

6. मांग-जनक अंतर जैसे आय व वरीयता प्रारूप भी अंतराष्ट्रीय कीमतों में अंतर उत्पन्न करते हैं । दो देश एक वस्तु का उत्पादन समान लागत पर करते हैं । यदि एक देश में आय का ऊचाँ स्तर उस उत्पाद के लिए अधिक वरीयता व मांग से मिल जाता है तो वह उत्पादन अंतराष्ट्रीय बाजार में ऊचीं कीमतों पर बेचा

जाएगा तथा जिस देश में आय का स्तर वस्तु की मांग के समान नहीं है या निम्न है वहाँ कीमतें सापेक्षतः कम स्तर पर निर्धारित होती है । इस प्रकार, दोनों ही देशों की आय व अभिरुचि के अधिमान अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में अंतर उत्पन्न करतें है । व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करते है ।

7. इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का कारण अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में भिन्नता है । अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में भिन्नता मांग व पूर्ति जनक करको के कारण उत्पन्न होती है ।
8. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार का सिद्धांत ठीक वैसा ही है जैसा की आंतरिक व्यापार में है । समस्त कारक जैसे अवसर लागत, उत्पादन संभावनाएँ, विदेशी विनिमय दर निर्धारण मांग व पूर्ति से इत्यादि सभी आर्थिक गतिविधिया समान ही प्रभाव डालती है चाहे व्यापार देश के भीतर हो या बाह्य । उनके उद्देश्य व प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में पृथक हो सकते है ।
9. दूसरे देशों के साथ वस्तुओं व सेवाओं का आदान प्रदान जब देश की भीतरी सीमाओं व घरेलू क्षेत्र तक ही सीमित हो तो उसे आंतरिक व्यापार कहा जाता है । जब वस्तुओं और सेवाओं का आदान प्रदान घरेलू क्षेत्र से विश्व के अन्य देशों के साथ हो तो उसे अंतर्राष्ट्रीय व्यापात की संज्ञा दी जाती है ।

दोनों के बीच अंतर के प्रमुख निम्न कारक उतरदायी है ;-

1.4.1 साधन स्थानांतरण

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने दोनों के बीच अंतर भौगोलिक धरातल पर करते है । घरेलू क्षेत्र मे व्यापार की मुख्य मान्यता है की उत्पादन के साधनों में मुक्त स्थानातरण विद्यमान है । यदि मुक्त स्थानातरण की स्थिति विद्यमान है तो घरेलू साधन एक स्थान से दूसरे स्थान आसानी से गत्यात्मक रहेगें। और उसी स्थान की ओर पलायन करेगें जहां उन्हें उनकी सेवाओं के बदलें ऊँचे मूल्य या प्रतिफल प्राप्त होगें । एक आदर्श

व पूर्णत भौगोलिक स्थानांतरण की दशा में साधन कीमतों मे अंर्तक्षेत्रीय अंतर नहीं पाये जाते । साधन कम कीमत वाले क्षेत्रों से ऊंची कीमत वाले क्षेत्रों की तरफ पलायन करतें है। ऐसी स्थिति मे किसी भी साधन की कीमत व गुणवत्ता पूरे देश मे समान बनी रहती है ।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था में साधन स्थानांतरण न तो मुक्त है न पूर्ण । सर्वप्रथम यहाँ कुछ प्रतिबंधित शरणार्थी नियम है जो श्रम के मुक्त स्थानांतरण को रोकते है, एक देश से दूसरे देश मे पलायन से ।

एक देश से दूसरे देश मे पूंजीगत साधनों का स्थानांतरण भी अंतरण व बाह्यतरण व निवेश की प्रक्रिया से सीमित होता है । इसी के साथ कुछ सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक कारक भी पूर्णतः साधन स्थानांतरण हेतु बाधक है अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मे ।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता पूर्णतः सही नहीं है । दोनों ही साधन श्रम व पूंजी एक देश से दूसरे देश मे पलायन करतें है और आज के युग मे पलायन की यह गति मुक्त व्यापार क्षेत्रों के कारण अधिक तीव्र हो गयी हैं ।

निवेश की प्रक्रियाएँ, पूंजी की मात्रा, अत्याधुनिक आज इसी पलायन का परिणाम है । इसी तरह एक ही देश के भीतर साधनों के पूर्ण आवागमन के मान्यता भी पूर्णतः सही नहीं है । एसे बहुत से कारक है जो इस पूर्ण साधन पलायन मे बाधक है जैसे परिवहन लागत जो साधन कीमतों मे परिवर्तन का मुख्य कारण है । हम इस मान्यता को प्रकाश मे रखते हुए इस तथ्य को इस प्रकार कहा जा सकता है कि आंतरिक व्यापार मे साधनों के स्थानांतरण कि श्रेणी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के साधन स्थानांतरण कि श्रेणी से वृहतर है और यही सभी देशों के लिए सत्य व तार्किक है । अपूर्ण साधन स्थानांतरण दो रष्ट्रों के मध्य एक अर्थ देता है व आंतरिक व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के अंतर को ज्यादा प्रासंगिक बनाता है ।

1.4.2 वस्तु स्थानांतरण

एक राष्ट्र के भीतर वस्तुओं व सेवाओं के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की और स्थानांतरण मुक्त है। केवल आंतरिक ऋण जेसे परिवहन लागत, इसमे दूरी इत्यादि कारकों से बाधक होता है। परंतु अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मे यह वस्तुओं व सेवाओं का आदान प्रदान पूर्णत: मुक्त नहीं है क्योंकि प्राकृतिक बाधाये, लागत व दूरी इसे अपूर्ण बनाते है। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार मे आयात निर्यात प्रतिबंध जैसे प्रशूल्क, गैर प्रशुल्क नीतियाँ, विनिमय प्रतिबंध, इत्यादि इस स्थानांतरण को प्रतिबंध अपूर्ण बनाते है।

सरंक्षण के इस बदते हुए दौर में यह अंतर और भी प्रासंगिक हो गया है। कृषि सरंक्षण पाश्चात्य औद्योगिक देशों में आयात प्रतिस्थापन की औद्योगीकरण नीतियों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की निर्भरता को प्रतिबंधित करता है। इस दृष्टिकोण से आंतरिक व्यापार अन्तराष्ट्रिय व्यापार से एक पृथक इकाई है।

1.4.3 आर्थिक वातावरण

एक देश के भीतर सारे क्षेत्रों का आर्थिक वातावरण एक समान है। उदाहरण के लिए , संस्थागत ढांचा, उपभोग, उत्पादन व विनिमय का पूरे देश एक समान है। राजकोषीय नीतियों ब्याज दर, करों, मजदूरी व कीमतों इत्यादि पर समान रूप से लागू होती है। उत्पादन तकनीकी, साधन कीमतें, आधारभूत व संरचनात्मक सुविधाएं, उत्पादन फलन या संभावनाएं लगभग पूरे देश में समान होती है। उसी तरह प्रतियोगी वातावरण, उत्पादन एकाधिकारी प्रवृतियां उपभोक्ता के रुचि व अधिमान एक राष्ट्र मे लगभग समान ही होते है परंतु दो राष्ट्रो के मध्य यही समस्त कारक पृथक होते हैं जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख कारक बनते है।

मौद्रिक इकाइयां

आंतरिक व अंतर्राष्ट्रीय व्यओर में भिन्नता लाने वाला एक और मुख्य कारक है वह है मौद्रिक इकाइयाँ। एक राष्ट्र मे मुद्रा नियम व वित्तिय व्यवस्था व प्रबन्ध सभी क्षेत्रों मे एक समान होते है। अधिकांशतः सभी क्षेत्रों मे एक ही मुद्रा राशि का प्रयोग होता है। जो की वस्तुओं व सेवाओं के विनिमय का मुख्य माध्यम है।

परंतु यही व्यवस्था दो राष्ट्रो के मध्य विद्यमान नहीं है हमारी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में बहुत सी मुद्रायेँ जैसे डॉलर, येँन , पाउंड, मार्क, फ्रांक, रुपिस जैसी कई मुद्रायेँ भाग लेती है व सभी पूर्णतः स्वीकृत व रूपांतरणीय नहीं है। सभी मुद्राओं के पृथक मूल्य हैं, वस्तुओं व सेवाओं का आदान प्रदान इन्हीं मुद्रा के पृथक मूल्यों के माध्यम से होता है। जिसमें रूपान्तरण व विनिमय की समस्याओं का अंतर्राष्ट्रीय स्टेअर पर सामना करना होता है। जो आगे इस विनिमय को जटिल बनाता है। दूसरी तरफ आंतरिक व्यापार इन समस्याओं से मुक्त होता है। एक ही मुद्रा मान्य होने के कारण विनिमय सहज ही बिना किसी प्रतिबंध हो जाता हैं।

1.5 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन

आंतरिक व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विद्यमान इन अंतरों के कारण अंतराष्ट्रीय व्यापार अध्ययन की एक पृथक शाखा के रूप मे उभर के आया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एक ऐसा आवश्यक उपकरण हैं जो देसों को वस्तु व्यापार, सेवा प्रवाह तथा साधन गतिविधियों से जोड़ता है। आर्थिक विकास श्रम के विभाजन पर निर्भर करता है, श्रम का विभाजन बाजार के विस्तार पर या व्यापार की संभावनाओं पर निर्भर करता है। व्यापार बाह्य क्षेत्रों मे पूर्ति व मांग की प्रवृतियों पर निर्भर करता है। एक राष्ट्र यदि स्वयं की सीमाओं के भीतर ही उत्पादन एवं वृद्धि करे तो वह राष्ट्र आत्मनिर्भर कहलाता हैं। वह राष्ट्र आर्थिक निर्भरता के साथ-साथ संप्रभुता की और भी अग्रसर है। परंतु ऐसा राष्ट्र आत्मनिर्भर को उत्पादन विस्तार व क्षमता को आर्थिक लागत के दृष्टिकोण से ऊँचा

ले जाता है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विश्व के सभी देशों का आर्थिक एकीकरण कर ब्याज दर के साथ-साथ आय के स्तरों व जीवन स्तर के विविध सोपनों का अधिकतमीकरण करने का प्रयास करता है । एक राष्ट्र सस्ते साधनों की उपलब्धता से निर्यात की संवृद्धि करता है तो वही दूसरी वस्तुओं से विनिमय करता है जो उसके यहाँ सापेक्षतः महंगी व अप्रचुर है ।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत पारस्परिक लाभ व व्यापार लाभ की धारणाओं से निर्मित है जिसमे कोई देश ना तो लाभ की स्थिति में ना नुकसान की स्थिति में ।

आर्थिक व राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो कुछ राष्ट्रों जो राजनीतिक व आर्थिक दृष्टीकोण से सशक्त थे उन्होने हमेशा कुछ राष्ट्र जैसे अफ्रिका, एशिया, लेटीन अमेरिका के देशों पर आर्थिक उद्देश्य से राजनीतिक संप्रभुता प्राप्त करने का प्रयास किया । इतिहास मे इस तरह के व्यापार क्षेत्रों की स्थापना से ही राज्य के हस्तक्षेप के दृष्टीकोण को आर्थिक वृद्धि व विकास का एक महत्वपूर्ण आयाम बनाया गया । इसी भय से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को कहीं न कहीं इस विकास मे बाधक तत्व माना गया है । परंतु आज के परिपेक्ष्य ने इस धारणा को परिवर्तित कर दिया है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अंतर्राष्ट्रीय जगत में आर्थिक नीतियों व उनके व्यापार का एक मत्वपूर्ण सिद्धांत है । यह प्रशुल्क नीतियों के माध्यम से एक और विकास का मार्ग सार्थक करता है वहीं दूसरी ओर मुक्त व्यापार से आर्थिक एकीकरण का । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विकासशील देशों के लिए विकसित होने का एक मत्वपूर्ण मार्ग है । विश्व व्यापार संगठन द्धारा निर्मित कई व्यापार नीतियों से विकासशील देश सतत विकास की ओर अग्रसर हो सकते है । कई बहुराष्ट्रीय निगमों तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से विकासशील देशों ने आंतरिक बेरोजगारी गरीबी व असमानता की स्थितियों से मुक्त होकर विश्व व्यापार में अपनी भागीदारी को बढाया है । यही कारण है कि सार्क के कई देश नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश व

पाकिस्तान जो आर्थिक संकटों से जूझ रहे थे, अपनी विकास कि गति को बड़ा पायेँ । द्विपक्षीय व्यापार से बहुपक्षीय व्यापार की ओर अग्रसर हुए । कई देशों ने ऋणों की समस्याओं से मुक्त होकर निवेश की अंतर्राष्ट्रीय प्रक्रियाओं में भाग लिया है । वहीं दूसरी ओर यूरोपियन यूनियन या यूरोपियन आर्थिक संघ के देशों ने आर्थिक बाजार की तरफ कदम बढ़ाकर आर्थिक एकीकरण का बहुत बड़ा उदाहरण दिया है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वैश्वीकरण आर्थिक एकीकरण तथा सतत विकास की ओर बड़ने का एक संवृद्ध मार्ग है जो समय के साथ कभी प्रतिबंधित व गैर प्रतिबंधित नीतियों को अपनाकर विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है । वृद्धि व विकास के प्ररूपों को देने वाले अर्थशास्त्रियों हिक्स हैबरलर, हैराड-डॉमर इत्यादि ने भी अंतराष्ट्रीय व्यापार को तर्कसंगत व प्रासंगिक बताया है जें.एस मिल का कथन है कि " अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उन देशों के लिए एक क्रांति है जहां साधन संपन्नता अंतर्विकसितव अविकसित है । "अल्फ्रेड मार्शल का कथन है कि "आर्थिक विकास का कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार है । "हैबरलर "अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ही 19वीं व 20वीं शताब्दी मे अंतर्विकसित देशों के विकास में मत्वपूर्ण योगदान रहा है व उनके आने वाले भविष्य का विकास भी इसी से आशान्वित है । '' नॉवेल पुरस्कार प्राप्तकर्ता जें॰आर॰हिक्स का कथन है "यदि आर्थिक सिद्धांत मे कोई विकास कि शाखा प्रासंगिक रही है तो वह सर्वाधिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार है । ''

सर डेनिस रोबेर्टसन का कथन है कि "विश्व व्यापार ही आर्थिक वृद्धि का इंजन/ईधन है । ''इस तरह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन सभी इसके छात्रों को इसकी लाभ देने वाली आधुनिक अर्थव्यवस्था से जोड़ता है, जो दोनों ही विकसित व विकासशील देशों के लिए लाभदायक व महत्वपूर्ण हैं ।

1.6 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की विषय वस्तु

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र राष्ट्रों की आर्थिक व वित्तीय आत्मनिर्भरता को प्रकट करता है। यह वस्तुओं, सेवाओं, भुगतनों के एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्रों के मध्य प्रवाह को उस राष्ट्र की नीतियों के संदर्भ में विश्लेषण कर राष्ट्र कल्याण से जोड़ता हैं। ये आर्थिक व वित्तीय अंर्तनिर्भरता राष्ट्रों में राजनीतिक, सामाजिक, सैनिक संबंधो से भी प्रभावित होती है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों का विश्लेषण करती है व साथ ही नयी संरक्षण नीति के संदर्भ में इसके कारण व प्रभावों का मूल्यांकन भी करती है। भुगतान संतुलन की नीतियाँ कुल प्राप्तियों व कुल भुगतनों का आकलन कर एक राष्ट्र के आर्थिक संतुलन का नियमन करता है। विदेशी विनिमय बाजार की नीतियाँ राष्ट्र की मुद्रा के प्रवाह का नियमन करता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ आंतरिक व बाह्य क्षेत्रों के संबंधों का आकलन कर एक राष्ट्र के लिए संतुलन स्थितियों का निर्धारण करती है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र के द्धृष्टिकोण से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ व्यक्तिगत राष्ट्र को एक पृथक व एकल इकाई मानकर उसकी सापेक्ष कीमतों का अवलोकन व्यक्तिगत वस्तुओं से करती है। वहाँ दूसरी तरफ भुगतान संतुलन की नीतियाँ देश की कीमतों व आय के स्तर को प्रभावित कर अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के समष्टिगत दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं। जो प्राय: मुक्त अर्थव्यवस्था समष्टि अर्थशास्त्र या अंतर्राष्ट्रीय वित्त के नाम से जाना जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, आर्थिक एकीकरण जैसे यूरोपियन संघ, सार्क, नाफ्टा, ओपेक, आफ़्टी/आसियान इत्यादि व्यापार क्षेत्रों का भी अध्ययन प्रस्तुत करता है जो मुक्त व्यापार क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण विषय है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रतिष्ठित, नव प्रतिष्ठित, व नवीन आर्थिक विचारकों

व सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है साथ ही आज के परिप्रेक्ष्य से जोड़ कर उसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है।

1.7 वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की आर्थिक समस्याएँ

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को समझने के लिए अंतर्राष्ट्रीय जगत से जुड़ी आर्थिक समस्याओं को जानना आवश्यक है। यही समस्याएँ अंतर्राष्ट्रीय नीतियों के लिए एक सुझाव व समाधान को प्रस्तुत करती है।

बढ़ते संरक्षण के भूमिका, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की एक उभरती हुई गम्भीर समस्या है। विदेशी विनिमय में बढ़ते राष्ट्रो का हस्तक्षेप व अस्थिरता भी एक ऐसी ही बड़ी समस्या है। राष्ट्रों के बढ़ते आर्थिक एवं वित्तिय संकट भी एक गम्भीर समस्या बनाता जा रहा है। अस्थिरता व असुरक्षा की यह समस्याएँ, बेरोजगारी, व मंदी की स्थितियों को एक राष्ट्र में बढ़ावा देती है। जो अंततः गरीबी व असमानता को बढ़ाती है।

विदेश व्यापार से जुड़ी ऐसी ही कुछ समस्याएँ इस प्रकार है :-

1.7.1 व्यापार संरक्षण औधोगिक देशो मे

सद्धांतिक रूप से कई राष्ट्र मुक्त व्यापार की आर्थिक नीतियों को अपनाते हुए उन वस्तुओं का उत्पादन करता जिसमे उत्पादन लागत सबसे कम हो, व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसका विशिष्टीकरण करता है। परंतु वास्तविक जगत में अधिकांश राष्ट्र कुछ प्रतिबंधों को व्यापार क्षेत्रों मे लागू करते है। यद्यपि कल्याण की दृष्टि से एक राष्ट्र के लिए प्रतिबंध अपरिहार्य है परंतु यह लाभ कुछ उत्पादकों वृहतर स्तर पर प्राप्त होते है व बहुत से उपभोक्ताओं को निम्नतर स्तर पर। और यह समस्या तब अधिक जटिल हो जाती है जब इसके परिणामस्वरूप विश्व को तीन भागों मे बांटती है -

उत्तरी अमेरिकी क्षेत्र जिसमें अमेरिका, कनाडा व मैक्सिको है एक यूरोपियन व्यापार क्षेत्र तथा एशियन व्यापार क्षेत्र। यह सभी क्षेत्र

अपने व्यापार व अंतरिक संरक्षण हेतु अपनी भौगोलिक सीमाओं से जुड़े राष्ट्रों से मुक्त व्यापार नीति से राष्ट्रों के आर्थिक विकास का संवर्द्धन करते है वही दूसरी तरफ ये राष्ट्र भौगोलिक सीमाओं से परे राष्ट्रों पर प्रशुल्क व संरक्षण नीतियों का अनुसरण करके अमुक्त व्यापार नीति को अपनाते है ।

1.7.2 विनिमय दरों मे विचलन

विनिमय दरों मे अस्थिरता अंतर्राष्ट्रीय वित बाजार व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मे अस्थिरता का प्रमुख कारण है । एक देश की आय की संवृद्धि को कम करके मुद्रा के मूल्य में अभिवृद्धि करती है वही निर्यातों का संवर्द्धन मुद्रा के मूल्य को गिरता है । किसी भी राष्ट्र की समष्टि आर्थिक नीति एवं आंतरिक व बाह्य विचलन विनिमय दरों मे अस्थिरता उत्पन्न करता है जो क्रमशः निर्यात आयात व पूंजी आवागमन को प्रभावित करता है । एसे मे व्यापार से होने वाले लाभ भी विचलित होते है । जो विदेशी व्यापार को असुरक्षित करता है ।

3 उभरते हुए आर्थिक बाज़ारों मे वित्तिय संकट 1990 से उत्पन्न हुआ है । 1994-95 के दशक मे मैक्सिको ने वित्तीय व आर्थिक उतार चढ़ाव का सामना किया,1997 दक्षिणी पूर्वी एशिया ने भी आर्थिक संकट का सामना किया । 1998 के दशक मे रूस में भी ये संकट गहराया । नयी सदी की शुरुआत मे तुर्की व अर्जेन्टीना भी इससे गिर गए व ब्राज़ील भी उनमे शामिल हुआ । 2007 मे आये वित्तीय संकट ने तो विश्व की अर्थव्यवस्था को संकट में डाल दिया जिसकी शुरुआत विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था अमेरिका मे हुई । यद्यपि सभी संकटों के कारण भिन्न थे परंतु अल्पकालीन पूंजी का पलायन इन उभरतें हुए राष्ट्रो की तरफ हुआ । जिससे अन्य देशों में अस्थिरता व संकट की समस्या उत्पन्न हुई । विदेशी बाजार में असुरक्षा की स्थितियाँ पनपी ।

1.7.3विकासशील देशों की गरीबी

भारत व चीन जैसे बढ़ते हुए देशों में भी गरीबी व असमानता

बहुतायत से देखी गई । अफ्रीका के देशों मे गरीबी की स्थिति और भी विकट है । जहां अंतर्राष्ट्रीय ऋण की समस्या भी बहुत बड़ी समस्या है । एसे मे एक राष्ट्र मे अस्थिरता की समस्या कभी भी उत्पन्न हो सकती है और विनिमय दर को प्रभावित कर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को भी अस्थिर करती है ।

1.8 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ

सब जानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार लाभदायक है क्योंकि विनिमय उनके परस्पर लाभों के लिए हितकर है। अर्द्ध -बीसवीं शताब्दी से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ ही वृद्धि व विकास के मुख्य निर्धारक घटक रहे हैं। राष्ट्र जिनका अंतराष्ट्रीय व्यापार सशक्त है वो समृद्ध और इतने शक्तिशाली बन चुके है कि विश्व की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित कर सकते है। वैश्विक व्यापार का निर्धनता उन्मूलन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। डेविड रिकार्डो, एक प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री, अपने तुलनात्मक लागत सिद्धान्त में स्पष्ट किया है कि कैसे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, व्यक्तिगत, व्यापार समूहो,फ़र्मों, और देशों को लाभ पहुंचा सकता है जो इसमे शामिल है। इन गतिविधियों का शुद्ध लाभ, व्यापार से लाभ ही है। एडम स्मिथ, जो कि दूसरे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री है, निरपेक्ष लाभ के सिद्धान्त के प्रयोग से बताया कि देश इससे लाभ प्राप्त कर सकते है। यदि एक देश को किसी वस्तु के उत्पादन में न्यूनतम निरपेक्ष लागत आती है तो प्रति इकाई उत्पादो व उत्पादकता का मूल्य ऊंचा हो जाएगा।

तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त के अनुसार, व्यापार के लाभ उत्पादन की अवसर लागतों पर निर्भर करते हैं। एक देश जिसे किसी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ नहीं प्राप्त है वह भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को प्राप्त कर सकता है यदि वह उस वस्तु का उत्पादन करे जिसमे उसे उत्पादन की न्यूनतम अवसर लागत प्राप्त है।अंतर्राष्ट्रीय व्यापार लाभों को और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है यदि कृषि और

विनिर्माण की वस्तुओं के व्यापार की बाधाओं को कम किया जाए।अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कुछ महत्वपूर्ण लाभ निम्न है :

1.8.1 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से घरेलू प्रतियोगिता को बढ़ावा मिलता है।

घरेलू बाज़ार अंतर्राष्ट्रीयों उत्पादो कि गुणवत्ता व तकनीकों के प्रभाव से अपने उत्पादो की गुणवत्ता में सुधार लाते है।

1.8.2 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तकनीकों का लाभ प्राप्त करना

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से दूसरे देशों की तकनीकों के हस्तांतरण से उत्पादन मे सुधार व लागत मरीन कमी आती है साथ ही नए आविष्कारों को भी प्रोत्साहन मिलता है।

1.8.3 बिक्री व लाभों में वृद्धि

बाज़ारो कि उपलब्धता से बिक्री लाभों में वृद्धि होती है।

1.8.4 उपलब्ध उत्पादों के क्षमताओं में विस्तार करना

नवीन तकनीकों से उत्पादकता में सुधार होता है। साधनो जेसे कुशल श्रम व मशीनीकरण से उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

1.8.5 घरेलू बाज़ार की लागत प्रतियोगिता का रख रखाव करना

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से घरेलू बाज़ारो को वैश्विक बाज़ारो का सामना करना पड़ता है जिससे वह लागत न्यूनतम रखने का प्रयास करते है ताकि वे अपने उपभोक्ता व बाज़ार को बनाए रख सके।

1.8.6 वैश्विक व्यापार में अपनी भागीदारी को बढ़ाना

देशों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारो में शामिल होने कि एक होड सी लग गयी जो कि राजनीतिक, आर्थिक, व पूंजीगत शक्ति बनने कि प्रतिस्पर्धा है। वैश्विक व्यापार में भागीदारी का बढ़ना, सकल घरेलू उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने को भी प्रकट करता है।

1.8.7 उपलब्ध बाज़ारों में निर्भरता कम करना

उपलब्ध बाज़ारो के एकाधिकार तथा निर्भरता को कम किया जा सकता है और कम लागत वाले व विशिष्टीकृत उत्पादो व साधनो का प्रयोग किया जा सकता है।

1.8.8 मौसमी बाज़ार विचलनो का संतुलन

यदि घरेलू बाज़ार में मौसम या अनावृष्टि के कारण उत्पादो कि कीमतों में विचलन आता है तो अन्य देशों से आयात कर बाज़ार में कीमत संतुलन को कायम रखा जा सकता है।

1.8.9 साधनो का बेहतर उपयोग

उत्पादक साधनो के अनुकूलतम उपयोग से लागत को नियंत्रित करने का प्रयास करता है । इससे साधनो का दुरुपयोग एनएच होता।

1.8.10 पैमाने की मितव्यवताए बड़े उत्पादन पर

उत्पादन के लिए उत्पादको के लिए परिवहन, वित्त, विज्ञापन तथा प्रबंध के साधन उपलब्ध रहते है इसलिए उत्पादन में पैमाने की मितव्ययिताये प्राप्त होती है।

1.8.11 सांस्कृतिक विभिन्नता

वस्तुओं और सेवाओं के आयात और निर्यात से अलग अलग देशों के रुचि व वरीयताओं से परिचित करवाया है।

1.8.12 एकाधिकार

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एकाधिकार क स्थितियो का अंत करता है। क्योंकि इससे वस्तु अतिरेक को निर्यात व वस्तु की मांग आधिक्य को आयात करके संतुलित करते है।

1.8.13 रोजगार के अवसर

जब देश निर्यातों को बढ़ावा देता है तब रोजगार के अवसर बढ़ते है क्योंकि निर्यात से निवेश व विनिर्माण के अवसर बढ़ जाते है।

1.8.14 आर्थिक विकास

निर्यातों से उत्पादन व रोजगार बढ़ते है जिससे प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती है।

1.8.15 अंतर्राष्ट्रीय संबंध

इससे दूसरे देशों के साथ संबंध अच्छे होते है जिससे रोजगार के अवसर भी बढ़ते है।

1.8.16 कीमत स्थिरता

इससे कीमत स्थिरता बनी रहती है क्योंकि वस्तुओ व सवाओ की पूर्ति कम होने पर उसकी उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है।

1.8.17 विश्व शांति

जब देश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेते है तो आपस मे संबंधो को बेहतर बनाए रखते है, मित्रता की और अग्रसर होते है इससे विश्व में शांति कायम रहती है।

विकासशील देशों के लिए विशेषतया अंतर्राष्ट्रीय व्यापार न्यूनतम लागत स्त्रोत है। अभी वर्तमान में यू .एस. व यूरोपियन यूनियन के सदस्य देशों की तुलना में अन्य उभरते हुए देशों जैसे चीन, भारत, कोरिया, इंडोनेशिया द्वारा वस्तु व सेवाओं का उत्पादन निम्न लागतो पर होता है।दोनों ही यू .एस. व यूरोपियन यूनियन देशों द्वारा एशियन उत्पादो के आयतों पर प्रतिबंध लगाए गए ताकि वे अपने बाज़ारो को सुरक्शित रख सके। ये स्पष्ट है कि वह फ़र्म जो श्रम को एक गंते की बजाय एक दिन की मजदूरी डॉलर के बराबर देती है उसे उस वस्तु के उत्पादन और बिक्री का लाभ अधिक प्राप्त होगा। यू .एस. व यूरोपियन यूनियन के उपभोक्ता केवल कम लागत वाली आयातित वस्तुओं के उपभोग से ही अपनी जीविका की लागत कम करके ही संतुष्ट हो सकते है।

बहुत से उपभोक्ता कम महंगी वस्तुओं को वरीयता देते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ऐसी ही विशिष्टीकरण करने वाले उद्योगों के कारण विकसित हुआ । जैसे स्विस घड़िया, कभी भी कीमत प्रतियोगी नहीं हो सकती, एशिया मे वृहद स्टार पर उत्पादित घड़ियो के सामने। इसके विपरीत उपभोक्ताओं का एक ऐसा समूह भी है जो गुणवत्ता और महंगी वस्तुओं को वरीयता देता है। जर्मनी की कटलेरी, अंग्रेज़ो की बोन चाइना, स्कॉटिश का ऊन, फ्रेंच सिल्क जैसे हेरमेस और अन्य इस प्रकार के उत्पाद हमेशा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में अपने मार्ग खोज लेते है क्योंकि विश्व के कई देशों में उपभोक्ता ऐसी वस्तुओं के आयतों को बढ़ावा देते हैं उनकी इस सोच के साथ कि केवल कुछ ही ऐसे निश्चित देश है जो ऐसी वस्तुओं का निर्माण श्रेष्ठतर करते है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सबसे बड़ा उपकरण, दोनों मात्रा तथा मूल्य के दृष्टिकोण से वस्तु तेल है। कुल शुद्ध तेल आयत 2005 में 26 मिलियन बैरल प्रति दिन से अधिक थे (यू.एस. ऊर्जा सूचना प्रशासन के आंकड़ो के अनुसार)(नोट : आयात क्रूड तेल ,प्राकृतिक गैस, और रिफाइंड उत्पादो को शामिल करता है।) ओपेक (OPEC) प्राकृतिक संसाधनो का महत्वपूर्ण केंद्र है जिससे व्यापार दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। और लगातार उपभोक्ता राष्ट्र इसका अनवरत उपभोग करते जा रहे है। अन्य राष्ट्र भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्राकृतिक संसाधनो में योगदान देते है परंतु कोई भी तेल व्यापार को पीछे नहीं छोड़ पाया। अफ्रीका के हीरे, उद्योग व आभूषण के प्रयोग हेतु, गेहूं व अन्य कृषि उत्पाद यू. एस. व ऑस्ट्रेलिया से, कोयला व स्टील, कनाडा व रूस से, सभी इन राष्ट्रो से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में गत्यात्मक है उन राष्ट्रो कि तरफ जहाँ ये कम उपलब्ध है। कुछ व्यापार असमानताओं के रहते हुए जैसे घरेलू अर्थव्यवस्थाओं के प्रभाव, मुद्रा के उतार चढ़ाव, और रोजगार की कमी, वस्तुओं और सेवाओं की सरहद पार करने की गति बरकरार रहेगी।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एक सभी राष्ट्रों के विकास के एक इंजिन की भांति काम करता रहेगा।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और आर्थिक विकास ने धीरे धीरे व्यापार उदारीकरण की नीतियो के साथ विश्व में महत्ता प्राप्त की है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उसके आर्थिक वृद्धि पर प्रभाव वैश्वीकरण पर गंभीर रूप से निर्भर करते हैं। जहा तक कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आर्थिक वृद्धि पर प्रभावों का प्रश्न है, तो उसे अर्थशास्त्रियों व नीति निर्धारको ने दो भागो, विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में बाँट दिया है। अर्थशास्त्रियों के एक समूह का मत है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने विकासशील देशों के आर्थिक और वित्तीय क्षेत्र में कई विपरीत परिवर्तनों को जन्म दिया है। उनके अनुसार, व्यापार से उत्पन्न होने वाले लाभ अधिकांशत: विकसित देशों कि तरफ पलायन कर जाते है। व्यापार की उदारीकरण नीतियों, प्रशुल्कों में कमी एवं वैश्वीकरण ने अविकसित एवं विकासशील देशों के उद्योगों के विकास पर विपरीत प्रभाव डाले है। व्यापार उदारीकरण नीतियों के कारण अधिकांश शिशु उद्योगों की कार्य प्रणाली इन राष्ट्रों में बंद हो चुकी है।

वहीं अर्थशास्त्रियों का दूसरा समूह, वैश्वीकरण व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पक्ष की बात करते है और विकासशील देशों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं आर्थिक वृद्धि पर उसके प्रभावों की विवेचना एक अधिक प्रभावी मत के साथ करते है। उनके अनुसार,विकासशील देशों जिन्होंने व्यापार उदारीकरण नीतियों का अनुसरण किया, सभी ने वैश्वीकरण एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सकारात्मक प्रभावों का अनुभव लिया है। चीन और भारत ने इस संदर्भ में उदाहरण प्रस्तुत किया है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में जिन भी देशों ने भाग लिया है वो सभी जो सही अभ्यास से आगे बढ़े हैं, लाभान्वित हुए है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने विकासशील देशों के उद्योगपतियों के लिए नए अवसरों को खोला है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने आधुनिक तकनीकों का प्रयोग इन व्यापार समुदायों में संभव

बनाया। इसके परिणामस्वरूप घरेलू व वैश्विक बाज़ारों में प्रतियोगिता को बढ़ावा मिला है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा के चलते घरेलू बाज़ार व उद्योगपति भी अधिक दक्षता से साधनो का विदोहन करने लगे । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीतियों ने इन राष्ट्रों के लचीले व्यापार प्रणालियों, समष्टि आर्थिक नीतियों, व राजनीतिक स्थिरता के सकारात्मक तत्वो के साथ मिलकर विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

ऐसे देशों के उदाहरण भी है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को प्राप्त करने मे असफल रहे हैं क्योंकि वे ऐसी प्रभावी नीतियों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के साथ निर्माण नहीं कर पाये। विकासशील देश धीरे धीरे विश्व अर्थव्यवस्था और व्यापार में अपनी भूमिका को बढ़ाते जा रहे है। विकासशील देशों के मध्य व्यापार उतना ही महत्वपूर्ण हो गया है जितना कि व्यापार विकासशील व विकसित राष्ट्रों के मध्य महत्वपूर्ण है। जेसे जेसे इन विकासशील देशों के बाज़ार विकसित होते जा रहे है और इनकी सदस्यता आर्थिक व क्षेत्रीय संघो कि तरफ बढ़ती जा रही है उतना ही वे उत्पादनों में पुरातन से आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करते जा रहे है।

आर्थिक विकास उत्पादकता बढ़ाने जैसे श्रम, पूंजी, भूमि, और शिक्षा इत्यादि की उत्पादकता पर निर्भर करता है;साथ ही एक स्थिर और संवर्दनकारी पर्यावरणीय नीति और निवेश के लाभों पर भी निर्भर करता है। एक विकासशील देश के लिए विकास में आने वाली मुख्य बधाए इस प्रकार है:

- अस्थिरता सूचना व संयोजन में , कुशल बाज़ारो की कार्य प्रणाली को विफल करती है।
- निजी क्षेत्र निवेशों की बदहाल स्थिति जर्जर प्रशासनिक नीतियों, व संस्थागत कमियो के कारण आती है।

- सीमित वित्तीय सेवाएँ, छोटे उद्योगों व व्यापार के लिए पूंजी के उपलब्ध साधनो की कमी के साथ उत्पादन में कमी करता है।
- गरीबी भी उपभोक्ताओं की मांगो मे कमी लाती है जिससे बाज़ारो के विकास मे अवरोध उत्पन्न होता है।
- अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारो की पहुँच मे कठिनाइयाँ जैसे जटिल कागजी प्रक्रिया, व्यापार की तकनीकी बधाएँ तथा सरंक्षण नीतीया भी बाधा उत्पन्न करती है।

1.9 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं जीवन स्तर

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र दिनोंदिन महत्वपूर्ण इसलिए होता जा रहा है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार तीव्र गति से एक दूसरे से जुड़ रहे है। व्यापार, उपभोक्ता, और सरकारे ये महसूस करती है कि उनकी जिंदगीया न सिर्फ इसलिए प्रभावित हो रही है कि उनके शहर, राज्य, या देश में क्या हो रहा है लेकिन इसलिए भी प्रभावित हो रही है कि विश्व में क्या हो रहा है। उपभोक्ता आज चलकर भी जा सकते है दुकान तक और बिना गए भी विश्व के किसी भी कोने से वस्तुओ और सेवाओं को खरीद सकते है। स्थानीय बाज़ार भी वैश्विक बाज़ार से प्रतियोगिता रखते है। हालांकि, बहुत से व्यापार उद्योगों के पास नए अवसर है अपने उपभोक्ता व बाज़ारो के विस्तार का विभिन्न देशों में। नवीन व आधुनिक तकनीके भी तीव्र गति से अंतर्राष्ट्रीय सेवाओं की लागतें कम कर रही है और साथ ही इंटरनेट वस्तुओ और सेवाओ के बाज़ार का विस्तार और तेजी से किया है। एक सरल तरीका है अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व को देखने का यदि हम निर्यातों की वृद्धि को पिछले 20 सालो में देखे। 1996-97 में भारत से विश्व के देशों के निर्यात 18881797.38 थे वही 1997-98 में 12927770.02 थे और ये निर्यात बढ़कर 2013-14 व 2014-15

में 190501108.86 व 17,10,12,262.76 हो गए [1] और देश का सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर 1997 में 4% से बढ़कर 2010 में 10.3 % तथा 2013 में 6.9 % हो गयी । [2]

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पूंजीगत वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय है। बहुत से देशों में ये सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। औद्योगीकरण, आधुनिक परिवहन, भूमंडलीकरण, बहुराष्ट्रीय निगम, इत्यादि का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर बहुत ही गहन प्रभाव पड़ा है। जिसके कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आधुनिक से न केवल बढ़ा है वरन उसने की आधुनिक तकनीकों को बढ़ावा दिया व उससे परिचित करवाया है।

सभी क्षेत्रों में वृद्धि जैसे सूचना प्रोध्योगिकी, परिवहन इत्यादि से विकासशील देशों की गरीबी मे सुधार तो आया है पर साथ ही सांख्यिकी आंकड़े अभी भी ये दर्शाते है की भारत की आबादी का 27.5 % अब भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है। एक तुलनात्मक अध्ययन के अनुसार चीन की प्रति व्यक्ति आय $4900, और यूरोपेयन देशों की $26000 है वही भारत की प्रति व्यक्ति आय सकल गरेलु उत्पाद से समायोजित $3100 तक आकलित की गयी है और यू.एस. में ये सबसे अधिक $33000 है।

चीनी अर्थव्यवस्था में गरीबी, असमानता और असुरक्षा बहुत अधिक थी लेकिन केंद्रीकृत आर्थिक योजना, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा स्वछता अभियानो से जीवन गुणवत्ता तथा महामारियों से मुक्त करा पायी वह की सरकार चीन के लोगो को। परंतु सबसे अधिक जीवन स्तर में सुधार के प्रमाण तब मिले जब वह के जीवन की औसत आयु 1949 के 32 सालो से बढ़कर 64 वर्ष हो गयी, वर्ष 1985 में, जो कि लगभग दुगुना था। वर्ष

---

[1]Source: DepartmentofCommerce

[2]WorldBank

1987 में चीन का जीवन स्तर उन औद्योगिक देशों से बहुत कम था परंतु फिर भी चीनियो के पास पर्याप्त खाना, कपड़ा, और घर था। फिर 1980 के आर्थिक सुधारो से तो चीन के जीवन स्तर में तीव्र परिवर्तन आया। और यह तीव्र गति से आया परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का परिणाम था जब चीन ने अपने देश के उत्पादो और सेवाओं के लिए दूसरे देश के बाज़ारो के मार्ग खोल दिये। चीन ने जापान को भी पीछे छोड़ विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश बन चुका है , तीन दशको के उसके अथक प्रयासो के परिणाम स्वरूप उसने मिलियन आबादी को गरीबी रेखा से ऊपर उठा दिया। विनिमय दर और उसकी वृद्धि कि गति के आधारों पर गोल्डमैन सच्स व विश्व बैंक के अनुमानो के अनुसार चीन आने वाले वर्षो में 2025 तक अमेरिका को पीछे छोड़ देगा।[3]

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में यू. एस. ने भी अपने पर बहुत अधिक फैलाए है, वह अपने महाद्वीप पर सम्पन्न व विविध मानव व प्राकृतिक संसाधनो से, वो पूर्ण क्षमता से अधिकांश वस्तुओ के उत्पादन में सक्षम है। वही दूसरी और छोटे औद्योगिक देशों जैसे स्विट्ज़रलैंड के पास कुछ ही विशिष्ट साधन व उत्पाद है और वे कुछ ही वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण अर्जित कर सकते है और बाकि वे आयतों पर निर्भर है। यहा तक कि बढ़े औधीगिक देशों जैसे जापान, जर्मनी, और फ़्रांस, इंग्लैंड और कनाडा भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर ही विश्वास करते है। विकासशील देशों को निर्यात रोजगार और आय के अवसर देता है जिससे वो विकसित व आधुनिक तकनीकों को खरीद सके जिसकी उन्हे आवश्यकता है।

इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने न केवल विकसित देशों को बाज़ार उपलब्ध करवाए है वरन विकासशील देशों को भी आधुनिकता से

[3]www.ukessays.com

जोड़ा है ताकि इन देशों कि निर्धनता, असमानता व बेरोजगारी जैसी समस्याएँ दूर हो सके।[4]

1.10 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की हानियाँ

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की कुछ हानिया भी है जिसका उल्लेख निम्न प्रकार है:

1.10.1 घरेलू उद्योग संकट

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के चलते कई घरेलू उद्योग आयातित वस्तु की कीमत, गुणवत्ता से स्पर्धा नहीं कर पाते जिससे उनका बाज़ार विलुप्त हो जाता है, उनका अस्तित्व संकट पे पद जाता है। चीन के कई उत्पादो से विभिन्न देशों के उत्पाद स्पर्धा नहीं कर पते क्योंकि चीन की वस्तुए अन्य देशों के मुक़ाबले बहुत कम कीमत पर उपलब्ध है।

1.10.2 प्राकृतिक संसाधनो का आवश्यकता से अधिक उपभोग

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के चलते कई देश बहुत थोक में वस्तुओं का उत्पादन करते है जिससे संसाधनो का विदोहन आवश्यकता से अधिक होता है।

1.10.3 घरेलू बाज़ार मे वस्तुओ व सेवाओं की कमी

निर्यातों की अधिकता से वस्तुओं व सेवाओ की उपलब्धता घरेलू बाज़ार में कम हो जाती है जिससे देश के उपभोग व कल्याण में कमी आती है। वस्तुओं की कीमते बढ़ने लगती है।

1.10.4 बेरोजगारी

कई बार आयातित सस्ती वस्तुओं को उत्पादन से अधिक अधिमान दिया जाता है जिससे रोजगार के अवसर कम हो जाते है।

1.10.5 आर्थिक और सैनिक युद्ध

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण आर्थिक युद्ध को बढ़ावा मिलता क्योंकि हर देश प्रतिस्पर्धा करने लगता है आर्थिक शक्ति बनने की, अपने निर्यात व्यापार के विस्तार में। इसी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणाम स्वरूप देश आपस में सैनिक व सुरक्षा हेतु आक्रामक हथियारो का भी व्यापार करते है, जिससे राष्ट्रो के मध्य सैनिक युद्ध व असुरक्षा की स्थिति भी बढ़ती है।

1.11आधारभूत अंतर्राष्ट्रीय आंकड़े व प्रकाशन

विश्व व्यापार के आंकड़ो का प्रकाशन बहुत सी संस्थाए व पत्रिकाए करती है। आधारभूत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आंकड़ो में आयात, निर्यात व विश्व व्यापार में भागीदारी के आंकड़ो का समावेश है। विश्व व्यापार संगठन का वार्षिक प्रतिवेदन इन आंकड़ो का प्रकाशन करता है। इसके अतिरिक्त यू.एस. की सरकारी संस्थाए जेसे राष्ट्रपति का आर्थिक प्रतिवेदन, फेडरल रिजर्व बुलेटिन, यू.एस. का स्टटिस्टिकल एब्स्ट्राक्ट, वर्तमान व्यापारों का सर्वे। कुछ प्रकाशन अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओ जैसे भुगतान संतुलन सांख्यिकी वार्षिक जो की IMF (अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) द्वारा प्रकाशन होता है। व्यापार सांख्यिकी की दिशाएँ जो 165 देशों के निर्यात व आयात व्यापार के आंकड़ो का प्रकाशन करती है। यह भी की IMF (अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) द्वारा ही प्रकाशित होती है। अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सांख्यिकी 212 देशों के आर्थिक आंकड़ो का प्रकाशन करता है। यह प्रकाशन वार्षिक व मासिक दोनों आते है जो कि (अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) द्वारा प्रकाशित होता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सांख्यिकी जो कि विश्व व्यापार संगठन द्वारा प्रकाशित होता है, यह 144 देशों के व्यापार के आंकड़ो का प्रकाशन करता है। मुख्य आर्थिक निर्धारक जो कि OECD (Organization for Economic Cooperation and Development) के 30 देशों के आर्थिक आंकड़ो का प्रकाशन करता है।

OECD का इकनॉमिक आउटलुक जो कि पेरिस OECD से प्रकाशित होता है। विश्व इकनॉमिक आउटलूक IMF का प्रकाशन है जो अप्रैल, और अक्टूबर के मास में प्रत्येक वर्ष प्रकाशित होता है।

विश्व विकास प्रतिवेदन जो कि विश्व बैंक द्वारा वार्षिक प्रकाशित होता है जो कि विकासशील देशों के आर्थिक व सामाजिक आंकड़ो का प्रकाशन करता है।

इसके अतिरिक्त द न्यूयार्क टाइम्स,द वॉशिंग्टन पोस्ट व द शिकागो ट्रिब्यून, द लॉस एंजिल्स टाइम्स , द वाल स्ट्रीट जर्नल, द फ़ाइनेंष्यल टाइम्स, बिज़नस वीक, द एकोनोमिस्ट, फोर्बेस, फॉर्च्यून प्रतिदिन प्रकाशित होते है।

1.12 निष्कर्ष

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने उन देशों की आर्थिक वृद्धि में विस्तार किया है जहां की नीतियाँ, आर्थिक व संस्थागत तत्व इससे उत्पन्न सामाजिक व वित्तीय परिवर्तनो के साथ समंजस्य बैठा सके। दूसरे देशों के साथ प्रतिस्पर्धा में कायम रहने में विकासशील देशों को एक बढ़ी समस्या का सामना करना पड़ता है और वह है साधनो की उपलब्धता या फिर उनका कुशलतापूर्वक विदोहन। यद्यपि प्रतिस्पर्धा नियमो में अतिरिक्त सीमावर्ती नियंमों का प्रावधान है परंतु वह भी प्रतिबंधित है। इसकी वजह से कुछ राष्ट्रो ने बहुपक्षीय व द्विपक्षीय व्यापार समझौतों का अनुसरण किया।, परंतु इन समझौतों का भी सीमित प्रभाव है। और इसके लिए बहुपक्षीय व्यापार समझौतों की आवश्यकता उत्पन्न हुई जिसे सभी बढ़ी संस्थाओ UNCTAD, विश्व व्यापार संगठन और OECD मे चर्चा का विषय बनाया गया है। जहां सभी प्रतिस्पर्धा अधिकारियों ने भिन्न देशों से आकर अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया है।

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का ज्ञान इसलिए भी आवश्यक है की हम जान पाये की विश्व में क्या हो रहा है और उपभोक्ताओं, नागरिकों व मतदाताओं को सूचित किया जाए की क्या हो रहा है। इससे भी अधिक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का ज्ञान अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठनो में रोजगार की उपलब्धता, अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग, विविध सरकारी व अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओ की जानकारी देता है।

यू.एस. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर विश्वास कर कई ऐसी वस्तुओं को प्राप्त करता है जिसका वह खुद उत्पादन नहीं करता एवं कुछ खनिज भी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण ये है कि एक राष्ट्र के जीवन स्तर के लिए बहुत सी वस्तुओ का उत्पादन आवश्यक है और वो घरेलू बाज़ार मे उत्पादित की भी जा सकती है पर उसकी लागत हो सकता है कि विदेशी देशों से अधिक हो। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार देशों के लिए न्यूनतम लागत व लाभ अधिकतमकरण का मार्ग है ।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यापार सिद्धांतो, वाणिज्यक नीति, भुगतान संतुलन, एवं विदेशी विनिमय बाज़ार और भुगतान संतुलन के समायोजक या खुली अर्थव्यव्सथा समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन है। यह व्यष्टि अर्थशास्त्र का भी अध्ययन प्रस्तुत करता है जिसमे वह अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र व समष्टि में अंतर्राष्ट्रीय वित्त कि विवेचना करता है।

कुछ मान्यताओं का अनुसरण करते हुए अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र कुछ सिद्धांतो का परीक्षण कर उसके आधार पर व्यापार लाभों कि गरणा करता है। साथ ही व्यापार बाधाओं के कारणो, नीतियों, अंतर्राष्ट्रीय प्राप्तियों व भुगतानो व नीतियो के देशों के कल्याण पर प्रभाव की व्याख्या करता है।

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की मुख्य संस्थाएं जो आज सामने है वो है कि (i) व्यापार सरंक्षण औद्योगिक देशों में बढ़ता जा रहा है ,(ii) विनिमय दरो में असंतुलन, (iii) आर्थिक व वित्तीय संकट जो देशों में बार बार पनपते

दिख रहे है, (iV) ढांचागत बेरोजगारी व यूरोप के विकास कि धीमी गति भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मार्ग में बाधक है, (v) यू.एस. में रोजगार को लेकर असुरक्षा (vi) और विकासशील देशों की गरीबी व असमानता की समस्या इसके विस्तार में बाधक है।

1.13 संदर्भ पुस्तकें

- Chacholiades Militiades, International Trade Theory and Policy (New York: McGraw-Hill, 1978) Chapter 1 (pp. 3-10)
- International Journal of Marketing, Financial Services & Management Research ISSN 22773622Vol.2, No. 9,September(2013)
- M. L. Jhingan, International Economics, 6thEdition, ISBN: 978-8281-130-0
- Mannure HG, International Economics (Vikas Publishing House PVT LTD)Chapter 1 (PP.3-19)
- Salvatore Schiaro- Campo, International Economics (Cambridge, Massachusetts: Winthrop Publishers, 1978) Chapter 1 (pp. 1-11)

1.14 शब्दावली

अंतर्निर्भरता- अंतर्निर्भरता एक आपसी निर्भरता है दो समूहो के मध्य। यह सिद्धान्त निर्भरता के उस संबंध से पृथक है जिसमे कुछ निर्भर होते है व कुछ नहीं, यहाँ दो समूह या दो राष्ट्र परस्पर निर्भर होते है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त दो अलग देशों के व्यक्तियों या समूहो के बीच वस्तुओ व सेवाओं का आदान प्रदान है।

भुगतान संतुलन- भुगतान संतुलन एक देश के सभी आर्थिक गतिविधियों व हस्तांतरणों का लेन-देन है बाकि विश्व के देशों के साथ। ये आर्थिक हस्तांतरण व्यक्ति, फर्म, या सरकार के द्वारा किए जाते है। भुगतान संतुलन में सभी दृश्य व अदृश्य वस्तुओं का हस्तांतरण के साथ चालू व पूंजी खातो के हस्तांतरण भी शामिल है।

अंतर्राष्ट्रीय वित्त- अंतर्राष्ट्रीय वित्त, वित्तीय अर्थशास्त्र की एक व्यापक शाखा है जो कि मौद्रिक व समष्टि अर्थशास्त्र के अंतरसंबंधों कि व्याख्या दो देशों के संदर्भ में करती है। अंतर्राष्ट्रीय वित्त, अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक पद्धति, भुगतान संतुलन, विनिमय दरो, व विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

विदेशी विनिमय बाज़ार- विदेशी विनिमय बाज़ार मुद्रा के व्यापार का एक वैश्विक विकेंद्रीकृत बाज़ार है। इसके मुख्य प्रतिभागी बड़ी अंतर्राष्ट्रीय बैंक है जिसके माध्यम से ये बाज़ार विभिन्न मुद्राओं के सापेक्ष मूल्य का निर्धारण करता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति-अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति एक नियम व नियंत्रणों से बनी एक व्यवस्था है जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रवाह में आयात व निर्यात नीतियो से परिवर्तन लाना है ।

व्यष्टि अर्थशास्त्र-व्यष्टि अर्थशास्त्र,अर्थशास्त्र कि वो शाखा है जिसमे एक व्यक्ति या फर्म (सूक्ष्म इकाई) के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

समष्टि अर्थशास्त्र-समष्टि अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र कि वो शाखा है जिसमे समूह, देश, या समग्र के व्यवहार का अध्ययन किया जाए, जैसे राष्ट्रीय आय, कुल उत्पादन, समग्र मांग व पूर्ति इत्यादि।

1.15 अभ्यासर्थ प्रश्न

1. क्या आप इस तर्क से सहमत है की देश उतने प्रभावी तरीके से अकेले नहीं रह सकते जितना की एक व्यक्ति रह सकता है ? क्या आप ये सोचते है अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेने से लाभों कि तुलना में आपकी निर्भरता बढ़ती है?
2. अंतरक्षेत्रीय व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में क्या मुख्य अंतर है? अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की विषय वस्तु व क्षेत्र क्या है ?
3. व्यापार के आधार क्या है? राष्ट्र परस्पर व्यापार क्यों करते है?

4. “अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को अंतर्क्षेत्रीय व्यापार अथवा संभवत: अंतर्स्थानीय व्यापार की एक विशेष स्थिति समझना चाहिए । “ इस कथन की सविस्तार व्याख्या कीजिये।
5. घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भिन्नताएँ मात्रात्मक हैं न कि गुणात्मक । क्या आप इस मत से सहमत है या नहीं? कारण दीजिये। क्या अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक सिद्धान्त का आधार है?
6. अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है?
7. कुछ महत्वपूर्ण व सामयिक मुद्दे क्या है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की विषय वस्तु है? ये मुद्दे क्यों महत्वपूर्ण है?किस प्रकार यह आर्थिक व राजनीतिक संबंधो पर प्रभाव डालते है?
8. किस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार जीवन स्तर से संबद्ध है?
9. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त के अध्ययन की वस्तु क्या है? अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति क्या है? क्यों ये अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के समष्टि भाग में आते है?
10. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के अध्ययन के लिए कौनसी मान्यताओं को लिया जाता है? इन मान्यताओं को किस प्रकार न्यायसंगत बताया जा सकता है?
11. अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की समस्याओं का विवेचन कीजिये जिसका विश्व आज के समय में सामना कर रहा है।
12. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं जीवन स्तर पर एक लेख लिखिए।
13. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आंकड़ो का प्रकाशन व स्त्रोत क्या है।

इकाई – 2

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त - रिकार्डो का सिद्धान्त International Trade Principles - Theory of Ricardo

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 तुलनात्मक लागतों का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

2.2.1 एडम स्मिथ का निरपेक्ष लागत अन्तर सिद्धान्त

2.2.2 रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धान्त

2.3 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की मान्यताएँ

2.4 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की व्याख्या

2.5 रिकार्डो द्वारा व्यापार-लाभ का विश्लेषण

2.6 रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचना

2.7 रिकार्डो सिद्धान्त की आनुभविक प्रमाणीकरण

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्तों में रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक लागत सिद्धान्त सबसे प्रमुख माना गया है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त को इस प्रश्न का उत्तर देना होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार क्या है तथा किन दशाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्भव होता है तथा आपस में व्यापार करने वाले राष्ट्रों को क्या लाभ होते हैं तथा इन लाभों का वितरण कैसे किया जाता है? प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री एडम स्मिथ तथा रिकार्डो का मानना है कि उत्पादन लागतों में भिन्नता व्यापार को जन्म देती है। एडम स्मिथ ने निरपेक्ष लागत भिन्नता को व्यापार का आधार माना, अर्थात एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की तुलना में किसी वस्तु का उत्पादन निरपेक्ष (absolute) रूप में कम लागत कर सकता है जबकि दूसरा राष्ट्र दूसरी वस्तु के उत्पादन को निरपेक्ष रूप में कम लागत में कर सकता है। अत: स्मिथ के मत के अनुसार व्यापार का कारण दो देशों में वस्तु की उत्पादन लागत में निरपेक्ष अन्तर (Absolute Difference) है। डेविड रिकार्डो ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में निरपेक्ष लागत अन्तर को अपर्याप्त बताया और यह तर्क दिया कि दो देशों के बीच व्यापार का आधार सापेक्ष या तुलनात्मक लागत अन्तर (Comparative Cost Differences) है। इन दोनों अर्थशास्त्रियों के विचारों में यह समानता है कि दोनों उत्पादन-लागत में केवल श्रम-लागत ही मानते है । उनके मतानुसार उत्पादन के साधनों में केवल श्रम ही साधन होता है। (Labour Theory of

Value) तत्पश्चात हेबरलर ने इस श्रम लागत सिद्धान्त के स्थान पर अवसर-लागत सिद्धान्त (Opportunity Cost Theory) को प्रतिपादित किया किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों, मुख्यतः हैक्शर एवं ओहलिन ने अवसर-लागत सिद्धान्त की आलोचना करते हुए तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को एक नये परिवेश में प्रस्तुत किया। हैक्शर-ओहलिन ने तुलनात्मक लागतों को व्यापार का आधार माना है तथा इनमें अन्तर के लिए विभिन्न देशों में उपलब्ध भिन्न मात्रा में साधनों की निधि (Factor Endowment) को माना है।

प्रस्तुत इकाई में हम सर्वप्रथम श्रम-लागत सिद्धान्त के आधार पर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों एडम स्मिथ एवं रिकार्डो के सिद्धान्तों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

2.1 प्रस्तावना

जैसा कि ऊपर बताया गया है, एडम स्मिथ एवं रिकार्डो के श्रम-लागत सिद्धान्त पर आधारित व्यापार-सिद्धान्त में कुछ भिन्नता है। सर्वप्रथम हम एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित निरपेक्ष लागत-अन्तर सिद्धान्त (Theory of Absolute Cost Differences) की व्याख्या करेंगे, तत्पश्चात् रिकार्डो के तुलनात्मक लागत-अन्तर सिद्धान्त (Theory of Comparative Cost Differences) की विवेचना करेंगे।

2.2 तुलनात्मक लागतों का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

2.2.1 एडम स्मिथ का निरपेक्ष लागत-अन्तर सिद्धान्त (Adam Smith's Theory of Absolute cost Advantage)

प्रतिष्ठित सिद्धान्त के प्रवर्तक एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक, "An Inquiry into The Nature and Causes of the Wealth of Nations", जो 1776 में प्रकाशित हुई, ने 18 वी शताब्दी के इंग्लैंड के औद्योगिक विकास एवं व्यापार को काफी हद तक प्रभावित किया। स्मिथ ने पुरानी वाणिज्यिक

विचारधारा (Mercantilist) की घोर आलोचना की और उनके दर्शाये सिद्धान्तों को तर्कहीन तथा अनर्थक बताया। स्मिथ ने स्वतन्त्र-व्यापार तथा स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था का प्रबल समर्थन किया जिसमे सरकार का हस्तक्षेप बिल्कुल न हो। स्मिथ के अनुसार स्वतन्त्र व्यापार नीति पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों पक्षों को लाभ होता है जबकि व्यापार पर लगाया गया कोई भी प्रतिबंध अन्तत: प्रतिकूल व हानिकारक होता है।

स्मिथ ने श्रम-विभाजन की उपादेयता बताते हुए यह बताया कि श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण उद्योगों में उत्पादन लागत को प्रभावित करते हैं। स्मिथ ने श्रम को उत्पादन का एक मात्र साधन माना है इसलिए उत्पादन में केवल श्रम पर किया गया व्यय ही उत्पादन लागत है और श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण श्रम लागत को कम करने में (उत्पादकता अधिक होने से) सहायक होते हैं। यदि एक देश किसी वस्तु को कम लागत पर अन्य देश से आयात कर सकता है जबकि उस वस्तु की देश में उत्पादन लागत आयात-लागत से अधिक हो तब उस वस्तु का आयात करना श्रेयकर होगा। इसके विपरीत, अन्य देश की तुलना में जिस वस्तु को यह देश कम लागत पर उत्पादित कर सकता है, तब उपलब्ध साधनों का केवल उसी दिशा में उपयोग होना चाहिए और उसे दूसरे देशों को निर्यात करना चाहिए।

स्मिथ ने श्रम को उत्पादन का एक मात्र साधन माना तथा दो वस्तुओं के विनिमय में इन वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त श्रम इकाइयों के आधार पर किया जाता है। इस सिद्धान्त को समझाने के लिए उन्होंने एक उदाहरण दिया, जो इस प्रकार है : "यदि शिकारियों के एक देश में हिरण को मारने की अपेक्षा एक ऊदबिलाव को मारने में दोगुने अधिक श्रम की आवश्यकता होती है तो स्वाभाविक है कि ऊदबिलाव का विनिमय दो (या अधिक) हिरणों के समान होगा। यदि उस अनुपात में परिवर्तन कर दिया जाये (जैसे एक ऊदबिलाव तीन हिरणों के समान हो) तो अधिक लोग

ऊदबिलाव के शिकार में लग जाएँगे ताकि उन्हें ऊदबिलाव के बढ़े हुए मूल्य का लाभ मिल सके। इससे ऊदबिलावों की पूर्ति में वृद्धि होगी और साथ ही हिरणों की पूर्ति में कमी होगी। फलस्वरूप विनिमय का अनुपात हिरणों के पक्ष में एवं ऊदबिलावों के विपक्ष में हो जायेगा और यह परिवर्तन तब तक होता रहेगा जब तक कि मूल विनिमय-अनुपात पुन :स्थापित नहीं हो जाता। "

स्मिथ के इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताओं में एक, उत्पादन का एक ही साधन श्रम है तथा दूसरी, श्रम एक देश के भीतर पूर्णतया गतिशील होता है किन्तु दो देशों के बीच बिल्कुल नही है।

स्मिथ के सिद्धान्त दो राष्ट्र तथा दो वस्तुओं की निरपेक्ष श्रम लागत को लेकर स्पष्ट किया जा सकता है।

यदि 'अ' राष्ट्र 'क' वस्तु की एक इकाई उत्पादन में 10 इकाई श्रम का उपयोग करता है किन्तु 'ब' राष्ट्र उसी एक इकाई 'क' वस्तु को उत्पादित करने में 20 इकाई श्रम काम में लेता है। तथा 'अ' राष्ट्र 'ख' वस्तु की एक इकाई उत्पादन में 20 इकाई श्रम लगाता है जबकि 'ब' राष्ट्र केवल 10 इकाई श्रम ही काम में लेता है, तब ऐसी स्थिति में दोनों राष्ट्र यदि आपस में व्यापार करते हैं तो दोनों को लाभ होगा।

यदि दोनों राष्ट्र दोनों वस्तुओं का विनिमय 1:1 इकाई अनुपात में करें ताकि एक इकाई 'क' वस्तु के बदले एक इकाई 'ख' वस्तु प्राप्त की जा सके तब 'अ' राष्ट्र 'ख' वस्तु की एक इकाई केवल श्रम की 10 इकाई खोकर प्राप्त कर सकता है, किन्तु यदि वह ख की एक इकाई स्वयं उत्पादित करने का निर्णय लेता है तो उसे 20 इकाई श्रम लगाना पड़ेगा। इसी तरह 'ब' राष्ट्र को केवल 10 इकाई श्रम का ही त्याग करना पड़ेगा यदि वह 'क' वस्तु की एक इकाई स्वयं न उत्पादित कर 'ब ' राष्ट्र से आयात करने का निर्णय लेता है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि दोनों राष्ट्र दोनों वस्तुओं की

अधिक इकाइयाँ प्राप्त कर सकते, उसी श्रम मात्रा से, यदि आपस में व्यापार करते है।

यह एक अत्यन्त सरल सिद्धान्त है जो व्यापार के लाभों को स्पष्ट करता है। इसमें शर्त यह है कि व्यापार स्वतंत्र तथा बिना सरकारी हस्तक्षेप के हो।

स्मिथ के सिद्धान्त की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यदि दोनों राष्ट्रों में निरपेक्ष श्रम-लागत समान हुई तो व्यापार लाभप्रद होगा या नहीं। स्मिथ के अनुसार तब व्यापार लाभदायक नहीं होगा जबकि रिकार्डो ने बताया कि तब भी व्यापार लाभप्रद हो सकता है कारण तब तुलनात्मक लागतें भिन्न होंगी। रिकार्डो ने अधिक स्पष्ट तथा व्यवहारिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

2.2.2 रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धान्त

डेविड रिकार्डो ने अपनी पुस्तक, "The Principles of Political Economy and Taxation", जो 1817 में प्रकाशित हुई, में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के शुद्ध सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत की। रिकार्डो ने स्वतंत्र व्यापार की मान्यता के आधार पर यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन के लिए लागतों के निरपेक्ष अंतर की अपेक्षा सापेक्ष अंतर की आवश्यकता है। रिकार्डो ने यह तर्क दिया कि एक हीं राष्ट्र दोनों वस्तुओं को निरपेक्ष दृष्टि से कम लागत पर तैयार कर सकता है लेकिन यहां दोनों वस्तुओं की लागत का अनुपात दूसरे राष्ट्र की दोनों वस्तुओं की लागत के अनुपात से तुलना करने पर एक राष्ट्र एक वस्तु में सापेक्ष रूप में कम लागत वाला तथा दूसरा राष्ट्र दूसरी वस्तु में कम लागत वाला साबित होगा। ऐसी स्थिति में जिस राष्ट्र की जिस वस्तु में सापेक्ष लागत कम है उसमें विशिष्टीकरण करके व्यापार (निर्यात) करेगा तो उसे लाभ प्राप्त होगा। इसे तुलनात्मक लागत या सापेक्ष लागत-लाभ सिद्धान्त (Doctrine of Comparative Cost or Relative Cost Advantage) के नाम से जाना जाता है।।

2.3 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की मान्यताएं (Assumptions of the Comparative Cost Advantage)

1. श्रम ही उत्पादन का एक मात्र साधन है, फलत: वस्तु की कीमत उस वस्तु के उत्पादन में निहित श्रम-लागत को बताती है।
2. श्रम की सभी इकाइयाँ समरूप (homogeneous) होती हैं।
3. उत्पादन के साधन देश के अन्दर पूर्णतया गतिशील किन्तु अन्य देशों के बीच पूर्णतया अगतिशील होते हैं।
4. उत्पादन में स्थिर लागत (प्रतिफल) अनुपात लागू होते हैं अर्थात उत्पादन में मितव्ययिताएं या अमितव्ययिताएं नहीं पायी जाती।
5. सिद्धान्त दो देश, दो वस्तुऐं तथा एक साधन (श्रम) का अध्ययन करता है अर्थात रिकार्डो का व्यापार मॉडल 2x2x1 है।
6. व्यापार में परिवहन लागतें नहीं होती हैं।
7. वस्तुओं की कीमतें उनकी वास्तविक उत्पादन लागत (श्रम) द्वारा निर्धारित होती है।
8. वस्तु व सेवा के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है।
9. तकनीकी ज्ञान को स्थिर माना है। दो वस्तुओं के उत्पादन में एक ही राष्ट्र एक ही तकनीक अपनाता है अर्थात उत्पादन फलन दोनों वस्तुओं के लिए एक ही होता है किन्तु एक ही वस्तु के उत्पादन में उत्पादन फलन दो देशों में भिन्न होता है। अर्थात तकनीक दो देशों में भिन्न होती है।

2.4 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की व्याख्या

अपने सिद्धान्त को समझाने के लिए रिकार्डो ने दो राष्ट्र क्रमश: इंग्लैंड एवं पुर्तगाल तथा दो वस्तुऐं शराब व कपड़ा लिये । रिकार्डो ने सर्वप्रथम यह बताया कि पुर्तगाल दोनों वस्तुओं, शराब व कपड़ा बनाने में

निरपेक्ष श्रम-लागत के अनुसार इंग्लैण्ड से अधिक लाभ की स्थिति में है। क्योंकि निम्न तालिका में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पुर्तगाल को शराब व कपड़ा दोनों ही वस्तुओं के निर्माण में कम निरपेक्ष श्रम-लागत वहन करनी पड़ती है।

तालिका- 2.1 श्रम लागत तुलना

	उत्पादन श्रम-लागत (घंटों में)	
देश	**एक इकाई शराब**	**एक इकाई कपड़ा**
पर्तगाल	80	90
इंग्लैण्ड	120	100

तालिका 2.1 से यह स्पष्ट है कि पुर्तगाल में शराब व कपड़ा दोनों के उत्पादन में श्रम-लागत इंग्लैण्ड की तुलना में निरपेक्ष रूप से कम है। स्मिथ ऐसी स्थिति में दोनों राष्ट्रों में व्यापार को लाभप्रद नही मानता किन्तु रिकार्डो ऐसी स्थिति में भी व्यापार को लाभदायक मानता है। इस स्थिति को स्पष्ट करने में उसने उत्पादन में अवसर लागत (जिसका प्रतिपादन हेबरलर ने किया तथा जिसका विस्तृत अध्ययन अगले पाठ में किया जायेगा) का उपयोग किया। अवसर लागत का अभिप्राय है कि एक वस्तु की अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने के लिए अन्य वस्तु की कितनी इकाईयों को त्यागना पड़ेगा

तालिका 2.2 में शराब व कपड़े की अवसर-लागत इंग्लैण्ड व पुर्तगाल में क्या होगी, को दर्शाया गया है।

तालिका- 2.2 अवसर-लागत

	अवसर लागत	
	शराब	**कपड़ा**
पर्तगाल	80/90=8/9=0.89	90/80=9/8=2.12

इंग्लैण्ड	120/100=12/10=2.20	100/120=10/12=0.83

एक राष्ट्र किसी वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ की स्थिति में तब होगा जबकि उस वस्तु की अवसर लागत वहां अन्य राष्ट्र की तुलना में कम हो। तालिका 2.2 में बताया गया है कि शराब के उत्पादन में पुर्तगाल को इंग्लैण्ड की 2.20 की तुलना में केवल 0.89 श्रम इकाई लगानी पड़ती है। दूसरी ओर कपड़े के उत्पादन में इंग्लैण्ड केवल 0.83 श्रम-इकाई लगाता है जबकि पुर्तगाल में यह लागत 2.12 इकाई है। इस प्रकार पुर्तगाल को तुलनात्मक लागत-लाभ शराब के उत्पादन में है जबकि इंग्लैण्ड को यह स्थिति कपड़े के उत्पादन में प्राप्त होती है। रिकार्डो ने यह बताया कि यदि पुर्तगाल शराब का उत्पादन करके इंग्लैण्ड को निर्यात करता है तथा इंग्लैण्ड कपड़े का उत्पादन करता है तथा पुर्तगाल को निर्यात करता है तो ऐसी स्थिति में दोनों राष्ट्रों को व्यापार से लाभ होगा।

2.5 रिकार्डो द्वारा व्यापार-लाभ का विश्लेषण (Ricardo on Gains from Trade)

हम यह मान कर चलते है कि यदि पुर्तगाल व इंग्लैण्ड (बिना व्यापार के) दोनों ही राष्ट्र दोनों वस्तुओं का उत्पादन तथा उपभोग करते है तब दोनों वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण दोनों राष्ट्रों में उनकी उत्पादन लागतों द्वारा होगी। यदि इंग्लैण्ड एक इकाई शराब के उत्पादन में 120 श्रम-घण्टे काम लेता है जबकि एक इकाई कपड़ा उत्पादन में 100 श्रम-घण्टे लगते हैं तो स्पष्ट है कि शराब की उत्पादन लागत प्रति इकाई कपड़ा उत्पादन की तुलना में अधिक है। अर्थात् एक इकाई शराब की लागत 120/100 = 2.2 इकाई कपड़ा उत्पादन के बराबर है इसी भांति यदि पुर्तगाल एक इकाई शराब के उत्पादन में 80 श्रम-घण्टे तथा एक-इकाई कपड़ा उत्पादन में 90 श्रम-घण्टे लगाता है तो स्पष्ट रूप से पुर्तगाल में कपड़ा उत्पादन शराब की तुलना में महंगा है। अर्थात एक इकाई शराब की लागत 80/90 = 8/9 = 0.89 इकाई कपड़ा उत्पादन के बराबर है।

अब यदि व्यापार संभव है तो इंग्लैण्ड एक इकाई शराब का आयात 2.2 इकाई कपड़ा लागत से कम में कर सकता है। और ऐसा करने से उसे लाभ होगा। इसी भांति यदि पुर्तगाल एक इकाई शराब के बदले 0.89 इकाई से अधिक कपड़ा आयात कर सके तो उसे भी ऐसा करने से लाभ होगा। इसलिए यदि अन्तर्राष्ट्रीय कीमत एक इकाई शराब की 2.20 तथा 0.89 इकाई कपड़ा के बीच हो तो दोनों ही राष्ट्रों को व्यापार से लाभ होगा।

अब हम अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में यह मान्यता लेकर चलते हैं कि एक इकाई शराब के बदले एक इकाई कपड़ा का विनिमय होता है। इंग्लैण्ड के लिए कपड़े का निर्यात तथा शराब का आयात लाभदायक है क्योंकि यदि व्यापार नहीं होता है तो इंग्लैण्ड को प्रति इकाई शराब देश में ही निर्माण करने में 120 घण्टे श्रम-लागत वहन करनी पड़ती है जबकि व्यापार से वह 100 श्रम-घण्टे लगाकर एक इकाई कपड़ा निर्मित करेगा तथा इसे एक इकाई शराब आयात (पुर्तगाल से) करने पर खर्च कर सकेगा । व्यापार के अभाव में इंग्लैण्ड को एक इकाई शराब बनाने में 120 श्रम-घण्टे खर्च करने पड़ेंगे जबकि आयात करने पर केवल 100 श्रम-घण्टे ही लगेंगे, इस प्रकार 20 अतिरिक्त श्रम-घण्टे, जो व्यापार (आयात) करने से बचेंगे उन्हें वह अधिक कपड़ा उत्पादन पर लगा सकेगा और ऐसा करके वह अधिक ऊंचे उपभोग के स्तर पर पहुंच जायेगा या बचे श्रम-घण्टे आराम (विश्राम) में व्यतीत किये जा सकते हैं और इस तरह व्यापार अधिक विश्राम प्रदान कर सकता है बिना उपभोग के स्तर को कम किये।

पुर्तगाल को भी व्यापार से इसी भांति लाभ प्राप्त होगा। व्यापार के अभाव में पुर्तगाल एक इकाई कपड़ा उत्पादन में 90 श्रम-घण्टे काम में लेता है । अब वह 80 श्रम-घण्टे खर्च करके एक इकाई शराब बनायेगा तथा इस इकाई शराब को बेचकर एक इकाई कपड़ा आयात (इंग्लैण्ड से) कर सकेगा। फलत: पुर्तगाल के पास 10 श्रम-घण्टे बच जायेंगे जिन्हें वह या तो शराब का अतिरिक्त उत्पादन में लगायेगा या अधिक विश्राम में काम में लेगा।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनों राष्ट्रों को अपनी तुलनात्मक लाभ वाली वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण में मदद करता है तथा उस वस्तु का विनिमय उस दूसरी वस्तु से करेगा जिसमें उसके तुलनात्मक कम लाभ या अलाभ की स्थिति होगी। पुर्तगाल व इंग्लैण्ड के बीच शराब का अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात 0.89 तथा 2.20 के बीच कहीं निर्धारित होगा यदि 0.89 के समीप निर्धारित होती है तो इंग्लैण्ड को अधिक लाभ होगा जबकि 2.20 के आसपास निर्धारण का अधिक लाभ पुर्तगाल को होगा। इसी तरह कपड़ा के अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात 2.12 तथा 0.83 के बीच निर्धारित होगा। 2.12 के समीप निर्धारण से पुर्तगाल को तथा 0.83 के आसपास निर्धारण से इंग्लैण्ड को लाभ अधिक होगा।

रिकार्डो ने इस प्रकार श्रम-लागत सिद्धान्त के आधार पर श्रम की तुलनात्मक लागतों के विश्लेषण से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को लाभप्रद सिद्ध किया है तथा यह बताया कि व्यापार विशिष्टीकरण को जन्म देता है।

2.6 रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Ricardo's Theory)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए इसे अत्यधिक सरल तथा अव्यावहारिक बताया। इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्न हैं :

(i) श्रम ही उत्पादन का एक मात्र साधन नहीं है, जैसा कि हमने ऊपर बताया कि रिकार्डो ने उत्पादन प्रक्रिया में केवल एक मात्र साधन श्रम को ही बताया है, वस्तुत: किसी भी वस्तु के उत्पादन में श्रम के अलावा पूंजी, भूमि तथा अन्य साधनों की आवश्यकता होती है। साथ ही श्रम को समरूप बताया, यह भी गलत है क्योंकि कोई दो श्रमिक अपनी कार्यकुशलता में समान नहीं होते तथा एक ही श्रमिक सभी प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में भी समान कार्य कुशल हो, अवास्तविक लगता है।

(ii) रिकार्डो ने तुलनात्मक लागत-लाभ का आधार श्रम-लागत के अन्तर को बताया और इस आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का होना बताया जो गलत है। उत्पादन-लागत में अन्तर अनेक तत्वों के कारण होते है जिनमें श्रम तो केवल मात्र एक तत्व है।

(iii) तकनीक ज्ञान के बारे में रिकार्डो ने यह बताया कि एक देश दो वस्तुओं के उत्पादन में एक ही तकनीक का उपयोग करता है, गलत जान पड़ता है क्योंकि अलग वस्तुओं के उत्पादन में अलग तकनीक का प्रयोग होता है । यह बात जरूर सही जान पड़ती है कि दो राष्ट्र एक ही वस्तु के उत्पादन में पृथक तकनीक का उपयोग करें। यह इसलिए संभव है क्योंकि तकनीक के प्रसारण व विदोहन में समय अन्तराल महत्वपूर्ण होता है फिर भी इस मान्यता का आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने विरोध किया है तथा कहा है कि यह भी अवास्तविक है।

(iv) साधनों की पूर्ण गतिशीलता देश के अन्दर होती है कि मान्यता भी पूर्णतया सही नहीं है क्योंकि बहुधा व्यावहारिक जीवन में देखने को मिलता है कि अधिक ऊंचे पारिश्रमिक का प्रलोभन भी व्यक्ति को अपना घर, परिवार छोड़ने को प्रेरित नहीं कर पाता। साथ ही दूसरे देशों में श्रम की अगतिशीलता की मान्यता भी उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि भारत से ही इंजीनियर, डाक्टर तथा अन्य विशेषज्ञ अमेरिका, यूरोप व खाड़ी देशों में जाते है तथा वहां बस भी गये है।

(v) क्लासिकल मान्यताएं जैसे स्वतंत्र व्यापार, शून्य परिवहन व्यय, सरकारी हस्तक्षेप नहीं आदि अवास्तविक तथा अव्यवहारिक है क्योंकि हर राष्ट्र अपने आयातों पर अनेक प्रतिबंध लगाता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर वस्तुओं के भेजने में परिवहन लागत होती है तथा हर राष्ट्र की सरकार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष नियंत्रण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लगाती है।

2.7 रिकार्डो सिद्धान्त की आनुभविक प्रमाणीकरण (Empirical Verification of Ricardo's Theory)

अनेक अर्थशास्त्रियों ने तुलनात्मक लागत-लाभ के अनुभाविक प्रमाणीकरण करने के प्रयत्न किये हैं। इनमें से प्रमुख हैं जी.डी.ए. मेकडुगल, रॉबर्ट स्टर्न, वेला बलासा आदि। इन तीनों ही विद्धानों ने अपने अध्ययन में अमेरिका व इंग्लैण्ड के आकड़ों का उपयोग किया है। मेकडुगल ने 1937, स्टर्न ने 1950 व 1959 तथा बलासा ने 1950 के ऑकड़ों का उपयोग किया।

तीनों अर्थशास्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए श्रम-मूल्य सिद्धान्त को सिद्ध करने का प्रयास किया। इनके अनुसार श्रम की उत्पादकता में भिन्नता वस्तुओं की उत्पादन-लागत में अन्तर पैदा करती है जो व्यापार-पूर्व की कीमतों को प्रभावित करती है। यदि कोई राष्ट्र किसी वस्तु की कम कीमत रख पाता है। अर्थात उसकी ऊँची श्रम-उत्पादकता के कारण उत्पादन लागत नीची रहती है, फलत: कीमत भी कम होती है, तो वह उस वस्तु को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बेचकर (निर्यात) लाभ अर्जित कर सकता है।

अनेक व्यवहारिक कठिनाइयों तथा श्रम-उत्पादकता की माप का सन्तोषजनक आधार नहीं होने के कारण आधुनिक अर्थशास्त्रियों (जिनमें जगदीश भगवती प्रमुख हैं) ने इन आनुभविक प्रमाणीकरण अध्ययनों को बहुत सही नहीं माने है।

2.8 सारांश

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों एडम स्मिथ एवं डेविड रिकार्डो ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का तुलनात्मक लागत सिद्धान्त प्रतिपादित किया। स्मिथ के निरपेक्ष लागत अन्तर के सिद्धान्त को रिकार्डो ने तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का प्रतिपादन करके परिष्कृत किया। दोनों सिद्धान्तों में व्यापार का आधार श्रम-मूल्य सिद्धान्त (Labour Theory of Value) को माना

गया है तथा दो वस्तुओं के उत्पादन में तुलनात्मक लागतों का विश्लेषण अवसर-लागतों के आधार पर किया गया है । यद्यपि क्लासिकल अर्थशास्त्रियों द्वारा दिया गया यह सिद्धान्त व्यापार के आधारभूत ढांचे को स्थापित करता है जिसके आधार पर बाद में आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने ज्यादा वैज्ञानिक अध्ययन किये। रिकार्डो इस बात को बताने में असमर्थ रहे कि दो देशों के लागत-अनुपातों में अन्तर क्यों होते है। इस प्रश्न का उत्तर बाद में स्वीडन के दीं अर्थशास्त्रियों एली हैक्शर तथा बर्टिल ओहलिन ने दिया, जिसका अध्ययन हम आगे के पाठों में करेंगे।

2.9 शब्दावली

1. **श्रम-मूल्य सिद्धान्त : (Labour Theory of Value)-** क्लासिकल अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जिसमें केवल श्रम को उत्पादन का एक मात्र साधन माना गया है और श्रम की लागत ही उत्पादन-लागत को निर्धारित करती है।
2. **निरपेक्ष लागत :** उत्पादन में काम आये साधन (श्रम) पर किया गया व्यय जिसका अध्ययन दो देशों तथा दो वस्तुओं के लिए निरपेक्ष इकाइयों के रूप में किया जाये ।
3. **सापेक्ष लागत :** उत्पादन में काम आये साधनों पर किया गया व्यय जिसकी तुलना दो राष्ट्रों के बीच तथा दो वस्तुओं के बीच की जाये।
4. **अवसर लागत :** एक वस्तु की एक इकाई उत्पादित करने की अवसर लागत, दूसरे वस्तु की जितनी इकाईयों के उत्पादन को लागत पड़ती है, को कहते हैं।

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. International Economics, Peter H. Lindert, 1986, Irwin.
2. International Economics, Bo Sodersten, 1980, Mc-Millan.

3. International Economics, M.C. Vaish and Sudama Singh, 1983, Oxford. (both English and Hindi)

4. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, अग्रवाल एवं बरला, 1990, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. एडम स्मिथ के निरपेक्ष-लागत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

(संकेत: केवल स्मिथ के सिद्धान्त को लागत के आकड़ों के आधार पर समझाइये)

प्रश्न 2. "प्रतिष्ठित सिद्धान्त में तुलनात्मक लागतों का सिद्धान्त अपेक्षाकृत बेहतर सिद्ध हुआ है।" समझाइये

(संकेत: रिकार्डो के सिद्धान्त की सोदाहरण व्याख्या करते हुए इसकी मान्यताओं को बताइये तथा यह स्पष्ट करिये कि क्या वे व्यवहारिक हैं)

प्रश्न 3. रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

(संकेत: सिद्धान्त का सोदाहरण देते हुए इसकी मान्यताओं को बताइये तथा उनकी व्यवहारिकता पर विवेचना करें तथा इसकी आनुभविक प्रमाणीकरण के बारे में बताइये।)

अध्याय 3

रिकार्डो के सिद्धान्त मे संशोधन

Ricardo's Theories Revised

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त मुद्रा के संदर्भ में

3.3.1 आलोचनाएँ

3.3 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त दो से अधिक वस्तुओं के संदर्भ में

3.3.1 आलोचनाएँ

3.4 तुलनात्मक लागतों का सिद्धान्त दो से अधिक देशों के संदर्भ में

3.4.1 आलोचनाएँ

3.5 बहु-देश तथा बहु-वस्तु व्यापार मॉडल

3.5.1 आलोचनाएँ

3.6 तुलनात्मक लागतो के सिद्धान्त के अंतर्गत परिवहन लागतें

3.6.1 आलोचनाएँ

3.7 तुलनात्मक लागतों के सिद्धान्त के अंतर्गत परिवर्ती उत्पादन लागतें

3.7.1 ग्राहम का मत

3.7.2 ग्राहम के मत कि आलोचनाएँ

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 बोध प्रश्न

3.11 संदर्भ पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

यह अध्याय रिकार्डो के तुलनात्मक लागतों के सिद्धान्त की कुछ मान्यताओं का त्याग कर कुछ संशोधित अवधारणाओं को प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त मूल्य के सरल श्रम सिद्धान्त पर आधारित है और इसकी व्याख्या वस्तु - विनिमय प्रणाली के अनुसार की गयी है। यह अध्याय रिकार्डो की अवास्तविक मान्यताओं में संशोधन,मुद्रा विनिमय, दो से अधिक देश व वस्तुओं को शामिल कर प्रस्तुत करता है। रिकार्डो का सिद्धान्त, स्थिर अनुपातों की स्थैतिक मान्यताओं पर आधारित है कि श्रम सभी वस्तुओं के उत्पादन में समान स्थिर अनुपातों में प्रयोग होता है। परंतु लागतें या तो बढ़ती है या कम होती है। यदि बड़े पैमाने पर उत्पादन से लागतें घट जाए, तो तुलनात्मक लाभ बाद जाएगा। दूसरी ओर, यदि उत्पादन की बढ़ रही लागत से तुलनात्मक लाभ कम हो जाएगा और कुछ स्थितियों में यह समाप्त भी हो सकता है। यह अध्याय इस मान्यता का संशोधन परिवर्ती लागतों में प्रस्तुत करता है। रिकार्डो का सिद्धान्त परिवहन लागतों की उपेक्षा करता है जो कि एक आवश्यक है। विश्व व्यापार का ढांचा निर्धारित करने में परिवहन लागतें तो महत्वपूर्ण कार्य करती है। ऊंची परिवहन लागतें तुलनात्मक लाभ तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ को समाप्त कर सकती है। यह अध्याय परिवहन लागतों को रिकार्डो सिद्धान्त के संशोधनों में शामिल करता है।

3.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्रियों ने कुछ रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त मे सुधार किये । कुछ मान्यताएं जो की रिकार्डो ने दी थी वो अवास्तविक थी ।

जिसमे संशोधन इस सिद्धान्त को अंतर्राष्ट्रीय जगत की वास्तविकता से जोड़ता है । रिकार्डो का सिद्धान्त एक साधारणतः श्रम के मूल्य का सिद्धान्त था । इसकी व्याख्या वस्तु आदान प्रदान के संदर्भ मे की गयी थी। रिकार्डो ने यह सिद्धान्त दो देश व दो वस्तु की मान्यता के साथ दिया गया जहां परिवहन लागत का कोई उल्लेख नहीं था । बाद मे उसने स्थिर लागत की मान्यता का अनुसरण किया। इस सिद्धान्त को वास्तविक बनाने हेतु कुछ अर्थशास्त्रियों ने इन सभी मान्यताओं को पुनर्विश्लेषित किया तथा नए संशोधन देकर रिकार्डो के सिद्धान्त को एक नया प्रारूप दिया।

3.2 तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त मुद्रा के संदर्भ मे

प्रतिष्ठित सिद्धान्त के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की श्रम लागत के संदर्भ मे व्याख्या की गयी थी । यह सिद्धान्त अवास्तविक है क्योंकि वास्तविक व्यापार वस्तु व्यापार के आदान प्रददन पर नहीं मुद्रा के आदान प्रदान पर आधारित होता है । प्रो टौजिंग[5] ने इस सिद्धान्त की व्याख्या मुद्रा के संदर्भ मे की। इस सिद्धान्त की मान्यताएँ इस प्रकार है :-

i. दो देश हैं अमेरिका व इटली
ii. दो वस्तुएँ उत्पादित करते हैं, गेहूं व घड़ी
iii. मौद्रिक मजदूरी प्रति दिन $ 1.5 है तथा इटली मे $ 1 है ।
iv. मुद्रा कीमतों में निरपेक्ष अंतर है ।
v. दोनों देशों के मध्य भुगतान संतुलन साम्य की अवस्था में है । यदि भुगतान संतुलन में असाम्य की अवस्था उत्पन्न होती है तो स्वर्ण घाटे वाले देश से अतीरेक वाले देश की तरफ प्रवाहित

[5]F.W.Taussig,InternationalTrade, 1927.

होगा । इससे कीमतों व मौद्रिक आय मे परिवर्तन होगा व पुनः साम्य की अवस्था दोनों देशों मे प्राप्त होगी ।

इन मान्यताओं के दिये होने पर टौजिंग के अनतर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता हे :

- अमेरिका मे दस दिवसीय श्रम 20 इकाई गेहूं का उत्पादन कर सकता है वही यही 10 दिवसीय श्रम 20 इकाई घड़ियों का उत्पादन कर सकते है ।
- इटली मे 10 दिवसीय श्रम 10 इकाई गेहूं का उत्पादन कर सकते है वही 10 दिवसीय श्रम 15 इकाई घड़ियो का उत्पादन कर सकते है ।

ऊपर दिये गए उदाहरण मे अमेरिका को दोनों ही वस्तुओ के उत्पादन मे इटली की तुलना में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है। लेकिन गेहूं के ऊटपादन में विशिष्टीकरण व तुलनात्मक लाभ प्राप्त है । वहीं दूसरी तरफ इटली को दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में तुलनात्मक हानि है परंतु सबसे कम तुलनात्मक हानि घड़ियों के उत्पादन में है । इस वास्तविक लागत उदाहरण को समझने के लिए अमेरिका की मौद्रिक मजदूरी $ 1.5 तथा इटली की & 1.00 मान लेते है। इसी आधार पर मौद्रिक मजदूरी की गरणा नीचे दी गयी तालिका 3.1 मे की गयी है :

तालिका 3.1: मुद्रा में तुलनात्मक लागतें

देश	प्रति दिन मजदूरी डॉलर में	कुल मजदूरी १० दिवसीय श्रम के लिए डॉलर में	कुल उत्पादन	मुद्रा लागत या पूर्ति कीमत प्रति इकाई उत्पाद पर
अमेरिका	1.5	15	20 इकाई	0.75
	1.5	15	20 इकाई	0.75
इटली	1.0	10	10 इकाई	1.00
	1.0	10	15 इकाई	0.66

तालिका 3.1 सूचित करती है कि एक इकाई गेहूं के उत्पादन की मुद्रा लागत या कीमत अमेरिका मे इटली से कम है । वहीं दूसरी तरफ एक इकाई घड़ी के उत्पादन की मुद्रा लागत या कीमत इटली मे अमेरिका से कम है । इटली मे यह लागत $0.66 व अमेरिका मे 0.75 है । इसलिए इटली घड़ियों का तथा अमेरिका गेहूं का उत्पादन करेगा। दोनों देशों की मौद्रिक मज़दूरियाँ ऊपरी व निचली सीमा के बीच होनी चाहिए जो श्रम की तुलनात्मक क्षमताओं द्वारा निर्धारित है। यदि हमने इटली की मौद्रिक मजदूरी $1 माना है तो अमेरिका मे यह $2 से अधिक नहीं बाद सकती। ये इटली की मौद्रिक मजदूरी के दुगनी से अधिक नहीं हो सकती। यह ऊपरी सीमा अमेरिका के गेहूं उत्पादन के वास्तविक लागत लाभ के स्थिर अनुपात 2:1 (20 इकाई गेहूं का उत्पादन अमेरिका मे : 10 इकाई गेहूं का उत्पादन इटली में) से निर्धारित होती है। यदि अमेरिका मे मजदूरी दर $2 से बाद जाती है तो अमेरिका मे कीमतें दोनों वस्तुएँ गेहूं व घड़ी के लिए $ 1.0 होगी , तब गेहूं का निर्यात अमेरिका के लिए हानिप्रद होगा और ऐसे मे वो इटली भी गेहूं के आयात को रोक देगा क्योंकि वहाँ भी गेहूं की लागत $1 हो जाएगी । लेकिन ऐसे मे अमेरिका घड़ियो के आयात पे रोक नहीं लगाएगा तथा वह जारी रहेगा। जिसके परिणाम स्वरूप अमेरिका का भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाएगा । कीमतें व मजदूरी अमेरिका मे गिरेंगी तथा इटली मे बदेंगी। इसी प्रकार, मजदूरी अमेरिका में $1.33 से नीचे नहीं जा सकती जो 4/3 x$ 1.00 का अनुपात है। यह मजदूरी की दर इटली की चार तिहाई मजदूरी से कम नहीं हो सकती । यह निचली सीमा अमेरिका के घड़ियों के वास्तविक लागत लाभ अनुपात (अमेरिका के 20 इकाई घड़ियों के उत्पादन व 15 इकाई उत्पादन इटली मे या 4:3) से निर्धारित होता है। यदि अमेरिका मे मजदूरी $1.33 से नीचे गिर जाती हे तो घड़ी की प्रति इकाई कीमते दोनों देशों मे $ 0.66 के समान हो जाएगी । इस तरह से घड़ी का व्यापार रुक जाएगा लेकिन ऐसी स्थिति

में अमेरिका गेहूं का निर्यात इटली को नहीं रोकेगा और इससे इटली का भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाएगा ।स्वर्ण का प्रवाह इटली से अमेरिका की तरफ होगा, कीमतें व मजदूरी इटली मे गिरेंगी और अमेरिका मे बदेंगी तथा पुनः साम्य की स्थापना होगी । लेकिन ये कहना निश्चित नहीं की मजदूरी सीमा किस अनुपात मे निर्धारित होगी।

3.3.1 आलोचनाएँ

यह सिद्धान्त वस्तु विनिमय को मुद्रा विनिमय से स्थापित करता है परंतु साथ में कुछ अवास्तविक मान्यताओं को आधार बनाता है जैसे यह सिद्धान्त दो देशों व दो वस्तुओं की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है साथ ही दोनों देशों की समान मौद्रिक इकाई को मान कर चलता है। परंतु वास्तविक जगत में कई राष्ट्र अंतराष्ट्रीय व्यापार मे भाग लेते है साथ ही विभिन्न मौद्रिक इकाइयों में मुद्रा का रूपान्तरण होता है, जिसका उल्लेख इस सिद्धान्त में नहीं मिलता। यह सिद्धान्त दो राष्ट्रों के असंतुलन का कारण श्रम मजदूरी को मानता है परंतु वास्तविक व्यापार जगत में श्रम के अतिरिक्त अन्य साधनो की लागत भी भुगतान शेष में असंतुलन का कारण हो सकते हैं। वास्तविक लागत अनुपातों से निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता कि वे सीमाएं कितनी होंगी जिनके बीच दोनों देशों में मज़दूरियाँ अनुपात स्थित होगा । जे.एस.मिल. ने यह बताया कि सही अनुपात दोनों वस्तुओं की सापेक्ष मांगो द्वारा निर्धारित होता है जिसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक देश के निर्यातों का कुल मूल्य उसके आयातों के कुल मूल्य के अवश्य बराबर हो।

3.3 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त दो से अधिक वस्तुओं के संदर्भ में

रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धान्त दो सीमित मान्यताओं पर आधारित था। प्रो॰ हेबरलर[6]ने इसमे दो से अधिक वस्तुओं को शामिल कर इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। प्रो॰ हेबरलर ने बताया की एक देश दूसरे देश को सबसे कम लागत वाली वस्तुएँ निर्यात करके तुलनात्मक लाभ का आनंद लेता है और यही अन्य देशों पर भी लागू होता है।

मान लीजिये दो देश है – इंग्लैंड एवं जर्मनी जो की 10 वस्तुओं का परस्पर व्यापार करते है। इंग्लैंड मे प्रति इकाई लागत प्रति वस्तु यदि a_1 है तो जर्मनी मे a_2 है।

दोनों देश निम्न वस्तुओं का उत्पादन करते है :

A, B, C, D, E, F, G, H, I, J

इंग्लैंड मे प्रति इकाई श्रम लागत प्रति वस्तु निम्न प्रकार है :

$a_1, b_1, c_1, d_1, e_1, f_1, g_1, h_1, i_1, j_1$

इसी प्रकार जर्मनी मे प्रति इकाई श्रम लागत निम्न है :

$a_2, b_2, c_2, d_2, e_2, f_2, g_2, h_2, i_2, j_2$

इंग्लैंड मे प्रति इकाई मुद्रा लागतें या पूर्ति कीमतें निम्न है :

$pa_1, pb_1, pc_1, pd_1, pe_1, pf_1, pg_1, ph_1, pi_1, pj_1$

जर्मनी मे प्रति इकाई मुद्रा लागतें या पूर्ति किमते निम्न है :

$pa_2, pb_2, pc_2, pd_2, pe_2, pf_2, pg_2, ph_2, pi_2, pj_2$

औसत मुद्रा मजदूरी इंग्लैंड व जर्मनी मे क्रमशः व w_1 व w_2 है।

[6]G.V. Haberler,TheTheoryofInternationalTrade,1956

ऊपर दिये गए संबंधो से ज्ञात होता है की एक देश (इंग्लैंड) मे प्रति इकाई मुद्रा लागत pa_1, प्रति इकाई श्रम लागत a_1 व औसत मजदूरी w_1 के गुणक के बराबर है ।

यह संबंध निम्न समीकरणों से व्यक्त किया जा सकता है :

इंग्लैंड में - $pa_1 = a_1 w_1, pb_1 = b_2 w_1 ..... pj_1 = j_1 w_1$

जर्मनी में - $pa_2 = a_2 w_2, pb_2 = b_2 w_2 ..... pj_2 = j_2 w_2$

यह कहा जा सकता है की सापेक्ष वस्तुओं की कीमतें दोनों देशों मे स्थिर है क्योंकि उनकी प्रति इकाई श्रम की उत्पादन लागत भी स्थिर है ।

इंग्लैंड में - $pa_1 : pb_1 : pc_1 : pd_1 ..... pj_1 = a_1 : b_1 : c_1 ..... : j_1$

जर्मनी में - $pa_2 : pb_2 : pc_2 : pd_2 ..... pj_2 = a_2 : b_2 : c_2 ..... : j_2$

मुद्रा कीमतों के निरपेक्ष स्तर को ज्ञात करने के लिए मुद्रा मजदूरी की निरपेक्ष दर को शामिल करना आवश्यक है ।

R विनिमय की वो दर है जिस दर पर जर्मनी की मुद्रा इंग्लैंड की मुद्रा के साथ विनिमय होती है ।

इस प्रकार वस्तु A की कीमत, दोनों देशों मे इस प्रकार से व्यक्त होगी :

इंग्लैंड में $a_1 \times w_1 \times R_1$

जर्मनी में $a_2 \times w_2$

इंग्लैंड यदि A वस्तु का जर्मनी को निर्यात करता है तो यह संबंध ऐसे व्यक्त होगा :

$$a_1 \times w_1 \times R_1 < a_2 \times w_2$$

क्योंकि वस्तु A की पूर्ति कीमत या मुद्रा लागत इंग्लैंड मे जर्मनी से कम है ।

इंग्लैंड वस्तु B का आयात जर्मनी से करेगा, तब ये संबंध इस प्रकार होगा :

$$b_1 \times w_1 \times R > b_2 \times w_2$$

यह संबंध इन समीकरणों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है :

$$\because a_1 \times w_1 \times R < a_2 \times w_2 = \frac{a_1}{a_2} < \frac{w_2}{w_1 \times R}$$

$$\because b_1 \times w_1 \times R < b_2 \times w_2 = \frac{b_1}{b_2} > \frac{w_2}{w_1 \times R}$$

$$\therefore \frac{a_1}{a_2} < \frac{b_1}{b_2}$$

यह प्रदर्शित करता है कि इंग्लैंड को वस्तु A के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त है जो कि जर्मनी को निर्यात होता है । यही नियम सभी निर्यातक वस्तुओ पे लागू होता है । यदि सभी उत्पादित वस्तुओं को इंग्लैंड को प्राप्त होने वाले तुलनात्मक लाभ के क्रम में व्यवस्थित किया जाए तो संबंध निम्न प्रकार होगा :

$$\frac{a_1}{a_2} < \frac{b_1}{b_2} < \frac{c_1}{c_2} ..... < \frac{j_1}{j_2}$$

यह संबंध एक विभाजक रेखा का निर्माण करती हे जो इंग्लैंड की निर्यातित वस्तुओं को आयातित वस्तुओं से पृथक करती है। यह रेखा निम्न प्रकार क्रमबद्ध की जा सकती है :

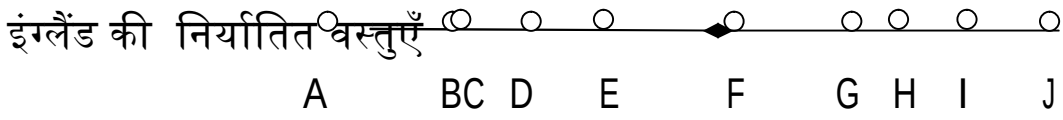

रेखाचित्र 3.1

इंग्लैंड के लिए संभव नहीं होगा की वह वस्तु A व C का निर्यात करें तथा वस्तु B का आयात करें । इंग्लैंड को वस्तु A से E का निर्यात जर्मनी को करना होगा साथ ही वस्तु G से J का आयात जर्मनी से करना होगा

। F वो वस्तु है जिसके उत्पादन मे दोनों ही देशों की लागत समान है। यह वस्तु अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मे दोनों देशों के माध्यम से न तो निर्यात की जाती है न आयात।

हेबरलर के अनुसार, इस विभाजक रेखा पर निश्चित विभाजक बिन्दु नहीं ज्ञात कर सकते। निश्चित विभाजक बिन्दु को ज्ञात करने के लिए, हमे भुगतान संतुलन के प्राप्ति पक्ष व देय पक्ष मे संतुलन करना होगा। इस हेतु हमें विभाजक रेखा के आयात व निर्यात मदों के मध्य एक स्थिति निर्धारित करनी होगी जो $\frac{w_2}{w_1} \times R$ हो सकती है। $\frac{w_2}{w_1}$ दो देशों के सापेक्ष पूंजी स्तर है तथा R इंग्लैंड व जर्मनी की विनिमय दर है। यदि सापेक्ष मजदूरो दरों $\frac{w_2}{w_1}$ या विनिमय दर R में कोई परिवर्तन होता है तो यह प्राप्ति व देय पक्ष को भी प्रभावित करता है। यह निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है :

तालिका 3.2वस्तु की एक इकाई उत्पादित करने के लिए अपेक्षित श्रम घंटे

	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J
इंग्लैंड की वास्तविक श्रम लागत घंटो में	10	10	10	10	10	10	10	10	10	10
जर्मनी की वास्तविक श्रम लागत घंटो में	60	50	40	30	20	10	08	06	04	02

ऊपर दी गयी तालिका 3.2 मे इंग्लैंड की प्रति इकाई वास्तविक लागत दी हुई है। यदि मुद्रा मजदूरी दोनों देशों मे समान है तो $\frac{w_2}{w_1} \times R$=1 है ।

यह तालिका से ज्ञात होता है की कौन सी वस्तु किस वस्तु कीमत पर आयात व वस्तु निर्यात होगी । इंग्लैंड वस्तु A सबसे अधिक 10 रू की कीमत पर जर्मनी को निर्यात करेगा क्योंकि वस्तु A मे इंग्लैंड को सबसे अधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त है। वस्तु F विभाजक वस्तु है जिसकी लागत दोनों देशों मे समान है । यह वस्तु दोनों देशों द्वारा व्यापार मे शामिल नहीं होगी वही दूसरी तरफ जर्मनी वस्तु G का निर्यात 8 रू कीमत पर इंग्लैंड को करेगा परंतु सबसे कम तुलनात्मक हानि उसे वस्तु j के उत्पादन मे प्राप्त है । वस्तुएँ कितनी मात्रा मे निर्यात या आयात होगी यह दोनों देशों की मांग की लोच पर निर्भर करता है।

हेबरलर के अनुसार यदि विनिमय दर संतुलित व स्थिर हो तो भुगतान संतुलन मे साम्य एक देश की मुद्रा मजदूरी बढ़ने व घटने से निर्धारित होती है । और ऐसा भी हो सकता है कि मुद्रा मजदूरी दोनों देशों मे समान हो और साम्य केवल विनिमय दर के बढ़ने व घटने से ही निर्धारित हो। परंतु ये सभी उपकरण मौद्रिक व्यवस्था व बैंकिंग नीतियों के संदर्भ मे ही क्रियाशील हो सकते है। दोनों देशों के मुद्रा मजदूरी के परिवर्तन का कारण उनकी सापेक्ष कीमतें, मजदूरी दरें व विनिमय दर है $\frac{w_2}{w_1} \times R$।

यदि जर्मनी मे मौद्रिक मजदूरी 10 प्रतिशत बढ़ जाती है तो अथवा $\frac{w_2}{w_1} \times R$=11 हो जाए तब वस्तु F जो कि एक विभाजक वस्तु है उसकी लागत जर्मनी मे बढ़ कर 11 प्रति इकाई हो जाएगी जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी F वस्तु का आयात इंग्लैंड से करना शुरू कर देगा।

यदि इंग्लैंड का भुगतान संतुलन जर्मनी के उत्पादो की बढ़ती मांग की वजह से प्रतिकूल हो जाए तो स्वर्ण मानक की मान्यता के अनुसार स्वर्ण का प्रवाह इंग्लैंड से जर्मनी की तरफ होगा । इसका मतलब मजदूरी डरे इंग्लैंड मे जर्मनी की तुलना मे कम हो जाएगी। परिणामस्वरूप मजदूरी अनुपात $\frac{w_2}{w_1} \times R$ बढ़ जाएगा।

विभाजक रेखा मे फिर बदलाव आएगा जो वस्तु F को अब इंग्लैंड की निर्यातित वस्तु मे परिवर्तित कर देगा। भुगतान संतुलन मे पुनः साम्य की स्थापना होगी। क्योंकि वस्तु F अब निर्यात की मद है। वस्तुएँ A से E सापेक्षतया और सस्ती हो जाएगी मुद्रा मजदूरी मे कमी की वजह से तथा जर्मनी की वस्तुएँ G से J सापेक्षतया और महंगी हो जाएगी मुद्रा मजदूरी मे वृद्धि की कारण। यदि इसके पश्चात भी भुगतान संतुलन मे साम्य की स्थापना न हो तो स्वर्ण मानक का प्रवाह इंग्लैंड की तरफ तब तक होगा जब तक साम्य की स्थापना नहीं हो जाती। इस प्रकार, हेबरलर ने प्रदर्शित किया की मजदूरी व विनिमय दरे किसी भी देश के वो महत्वपूर्ण घटक है जो वस्तुओ के आयात व निर्यात को निर्धारित करते है। दोनों देशों के लाभ का विभाजन उनकी निर्यात व आयात वस्तुओं के बीच विभाजक रेखा की सही स्थिति पर निर्भर करता है।

3.3.1 आलोचनाएँ

यह सिद्धान्त दो से अधिक वस्तुओं को तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल करता है परंतु दो ही देशों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। विभाजक रेखा की सही स्थिति का निर्धारण असंभव है,यह और भी अधिक जटिल है जब विश्लेषण दो से अधिक राष्ट्रों पर लागू हो ।

3.4 दो वस्तुओं और बहुत देशों के संदर्भ में तुलनात्मक लागतों का सिद्धान्त

तुलनात्मक लागतों का सिद्धान्त दो देशों की मान्यता पर आधारित है। यह अवास्तविक है क्योंकि व्यापार अनेक देशों के बीच होता है । इस

बहु-देशीय मॉडल की व्याख्या करने के लिए हम तीन देश A (अमेरिका),B (ब्रिटेन) और C (कनाडा) लेते हे जो वस्तुएँ X और Y उत्पादित करते हैं। उनकी अलग अलग लागत स्थितियाँ सारणी 3 मे प्रदर्शित हैं:

तालिका 3.3 : X और Y वस्तुओं के प्रति इकाई अपेक्षित श्रम – घंटे

वस्तएँ	देश		
	A	B	C
X	30	30	30
Y	60	90	70
तुलनात्मक लागत	1:2	1:3	1:2.33

दो देश A व B जो X व Y वस्तु का उत्पादन करते है। जेसा की सारणी से ज्ञात होता है की देश A को वस्तु Y के उत्पादन मे तुलनात्मक लाभ होता है और देश B को वस्तु X के उत्पादन मे न्यूनतम तुलनात्मक हानि होती है इस प्रकार, देश A वस्तु Y का देश B को निर्यात करेगा तथा उससे वस्तु X का आयात करेगा। जहां तक देश C का संबंध है इसका देश B पर वस्तु Y के उत्पादन मे तुलनात्मक लाभ प्राप्त है। इसलिए यह B को वस्तु Y निर्यात करेगा और उससे X का आयात करेगा। अब देश A और B को लेते हैं। देश A को वस्तु Y मे देश C की तुलना मे तुलनात्मक लाभ प्राप्त है। इसलिए देश A वस्तु Y का निर्यात देश C को करेगा और उससे वस्तु X का आयात करेगा।

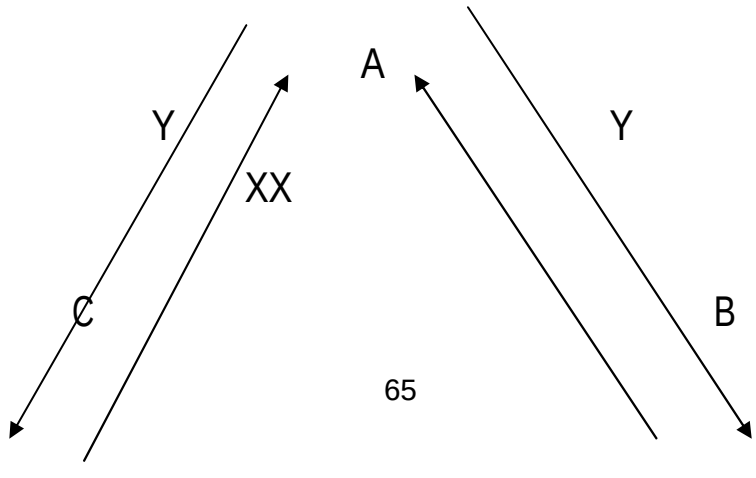

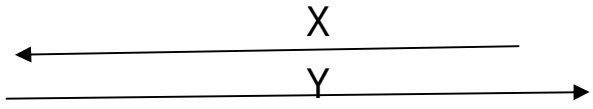

रेखाचित्र 3.2

इन तीनों देशों के बीच व्यापार संबंध रेखाचित्र 3.2 मे प्रदर्शित किए गए हैं ,जहां तीर की दिशा संबन्धित देश के निर्यात को दर्शाती है। अतः तीनों देशों के व्यापार संबंध निम्नलिखित होंगे :

1) देश A दोनों देशों B और C को वस्तु Y निर्यात करेगा।
2) देश B दोनों देशों A और C को वस्तु X निर्यात करेगा, तथा उनसे वस्तु Y आयात करेगा।
3) जहां तक देश C है इसके पास निम्न तीनों मे से कोई एक संभावना है :

(अ)यह वस्तु Y उत्पादित कर सकता है और देश A की तरह , देश B को वस्तु X के बदले भेज सकता है , अथवा(ब) वह वस्तु X को उत्पादित कर सकता है और देश Bकी तरह, देश A को वस्तु Y के बदले भेज सकता है,अथवा (स) वह दोनों में से किसी भी वस्तु में व्यापार न करे और केवल घरेलू उपभोग के लिए ही उत्पादित करें। वास्तव मे, जिस देश C का वस्तु विशिष्टीकरण वह दोनों वस्तुओं के बीच विनिमय दर पर निर्भर करेगा, जो आगे X और Y वस्तुओं के लिए तीनों देशों की परस्पर मांगो पर निर्भर करती है। उदाहरनार्थ, यदि देश B की वस्तु Y के लिए मांग अधिक है, तो यह उसे दोनों देशों A और C से आयात करेगा। अतः देश C वस्तु Y के उत्पादन मे विष्टिकरण करेगा। दूसरी और, यदि देश A की वस्तु X के लिए मांग अधिक है तो वह उसे दोनों देशों B और C को आयात करेगा। तब देश C वस्तु X में विशिष्टीकरण करेगा।

ऊपर का विवेचन तीन वस्तुओं तक ही सीमित रखा गया जिसे अधिक देशों के लिए विस्तारित किया जा सकता है। फिर भी, पाँच देशों लिए इसे चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। मान लीजिये की दो वस्तुएँ है X तथा Y और उसे उत्पादित करने वाले पाँच देश है A,B,C,D तथा E, जैसा की चित्र 2 मे दर्शाया गया है। क्षेतिज अक्ष पर वस्तु x का अधिकतम उत्पादन OX लिया गया है जिसे सभी पांचों देश उत्पादित कर सकते हैं, जाभ वस्तु Y का उत्पादन शून्य होता है। इसी प्रकार, अनुलंब अक्ष पर वस्तु Y का अधिकतम उत्पादन OY लिया गया है जिसे पांचों देश उत्पादित कर सकते है, यदि वस्तु X का उत्पादन शून्य होता है ।

रेखाचित्र 3.3

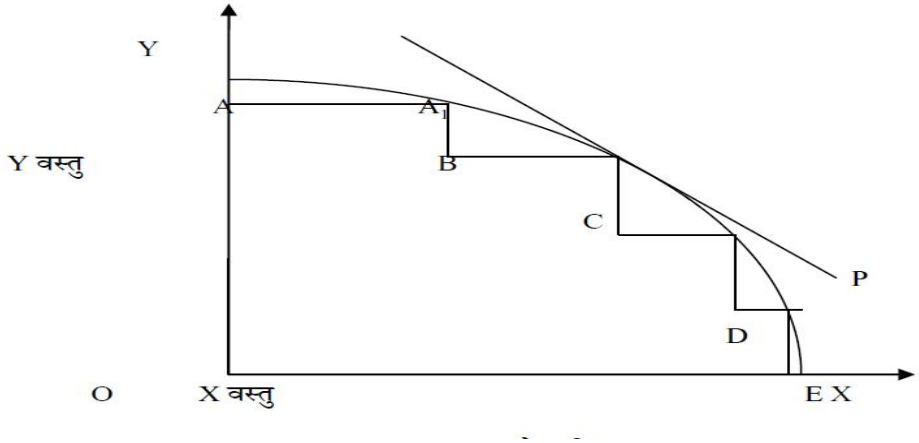

X और Y को जोड़ने से पाँच देशों को व्यक्त करता हुआ विश्व उत्पादन संभावना वक्र XY प्राप्त होता है। यह वक्र दर्शाता है कि पांबीचों देश वस्तु X की क्रमशः AA_1, BB_1, CC_1,DD_1 तथा EX मात्राएं उत्पादित कर सकते हैं जिससे उसका कुल उत्पादन OX= $AA_1 + BB_1 + CC_1 + DD_1 + EX$ होता है जब वे वस्तु Y उत्पादित नहीं करते। इसी प्रकार यदि वे वस्तु X उत्पादित नहीं करते हैं तो वस्तु Y का कुल उत्पादन OY= $A_1B + B_1C + C_1D + D_1E$ होता है। त्रिभुज AA_1Y, BB_1A, CC_1 B_1, DD_1 C_1 तथा EX D_1 क्रमशः A, B, C, D और E देशों की उत्पादन संभावना सीमाएं है।

वे इस प्रकार से व्यवस्थित की गयी हे कि वस्तु X के लिए देश A कि न्यूनतम अवसर लागत हे तथा देश B कि उससे कम और फिर भी प्रत्येक देश के लिए क्रमशः उससे कम। इसे वस्तुओं X और Y के लिए श्रम आगतों के अनुपात के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है :

$$\frac{Xa}{Ya} < \frac{Xb}{Yb} < \frac{Xc}{Yc} < \frac{Xd}{Yd} < \frac{Xe}{Ye}$$

यह दर्शाता है कि जब वस्तु X के और अधिक उत्पादन कि इच्छा कि जाती है, तो वस्तु Y से X के उत्पादन में स्थानांतरण सर्वप्रथम सबसे कुशल देश मे होगा, उन देशों में से जिन्होंने इस वस्तु X में पहले से ही पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त नहीं किया है। इस प्रकार, देशों के बीच तकनीकी अंतरों द्वारा निर्धारित "तुलनात्मक लाभ की एक श्रखला होती है। पांचों देशों मे सभी कीमत अनुपातों पर इकाई आय लोचों के साथ समान मांग स्थितियाँ मानते हुए , चित्र पर वह बिन्दु दिखाया जा सकता है जहां विश्व पूर्ति के बराबर विश्व मांग होती है। मान लीजिये की विश्व संतुलन कीमत अनुपात (या व्यापार की शर्ते) देश C की व्यापार पूर्व कीमत अनुपात रेखा PP_1 दिया होने पर, देश A और B वस्तु X के उत्पादन मे पूर्णतया विशिष्टीकरण करेंगे तथा वस्तु Y की अपनी आवश्यकताओं को D और E देशों से आयात करेंगे । दूसरी ओर,D और E देश वस्तु Y के उत्पादन मे पूर्णतया विशिष्टीकरण करेंगे और वस्तु X की अपनी आवश्यकताओं को A और B देशों से आयात करेंगे। देश C दोनों वस्तुओं का उत्पादन करेगा और सामान्य तौर से या तो वस्तु X या वस्तु Y का निर्यात करेगा, अथवा व्यापार मे बिल्कुल सम्मिलित नहीं होगा।

यदि विश्व मांग मे विस्तृत परिवर्तन होता है , तो यह तुलनात्मक लाभ की शृंखला को तोड़ देगा। मान लीजिये की विश्व मांग मे परिवर्तन संतुलन बिन्दु को रेखीय भाग B_1C_1 को C_1D_1 पर स्थानांतरित कर देता

है, तब देश C की भूमिका देश D निभाएगा तथा विश्व कीमत अनुपात Cके व्यापार पूर्व कीमत अनुपात से स्थानांतरित होकर D के व्यापार पूर्व कीमत अनुपात पर चला जाएगा जिसे चित्र मे नहीं दिखाया गया है।

3.4.1 आलोचनाएँ

यह सिद्धान्त बहु राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है परंतु यह स्पष्टत: बताने में विफल है कि राष्ट्र जो द्वितीय स्तर पर तुलनात्मक लाभ की स्थिति में है वो किस वस्तु का उत्पादन करें व किस वस्तु का निर्यात। साथ ही यह सिद्धान्त दो से अधिक राष्ट्रों को तो शामिल करता है परंतु दो ही वस्तुओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

3.5 बहु-देश तथा बहु-वस्तु व्यापार मॉडल

उत्पादन लागतों के आधार पर दिखाया जा सकता है कि एक बहु-देश व बहु-वस्तु व्यापार मॉडलप्रत्येक देश एक या अधिक वस्तुओं मे विशिष्टीकरण करता है। सुविधा के लिए चार देश A,B,C, और D लेते हैं जो चार वस्तुएँ M, X,Y और Z उत्पादित करते हैं। इन देशों की लागत स्थिति को निम्न तालिका मे दर्शाया गया है :

सारणी 3.4 प्रत्येक वस्तु की एक इकाई उत्पादित करने हेतु श्रम के अपेक्षित घंटे

वस्तएँ	देश			
	A	**B**	**C**	**D**
M	30	40	45	50
X	30	25	35	40
Y	30	45	20	25
Z	30	50	32	15

सारणी यह स्पष्ट करती है कि वस्तु M कि एक इकाई उत्पादित करने कि लागत देश A में न्यूनतम (30 श्रम घंटे) है। इसलिए देश A वस्तु M के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा। इस प्रकार देश B वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा क्योंकि इसकी उत्पादन लागत इस देश मे न्यूनतम (25 श्रम घंटे) हैं; देश C वस्तु Y के उत्पादन मे विशिष्टीकरण करेगा क्योंकि इसकी उत्पादन लागत इस देश मे न्यूनतम (20 श्रम घंटे) है तथा देश D वस्तु Y के उत्पादन मे विशिष्टीकरण करेगा, क्योंकि इसकी उत्पादन लागत इस देश में न्यूनतम (15 श्रम घंटे) है।ऊपर वर्णित बहु देश व बहु वस्तु व्यापार मॉडल मे व्यापार तुलनात्मक लागतों के आधार पर होता है। परंतु यह एक पक्षीय व्यापार होगा क्योंकि बहुत देशों और बहुत वस्तुओं के बारे मे तुलनात्मक लागत अनुपातों को निर्धारित करना सरल नहीं है। इसे चित्र 5 मे दिखाया गया है जहां प्रत्येक तीर कि दिशा दूसरे देश के निर्यात को दर्शाती है। अतः देश A वस्तु M को देश B को निर्यात करता

रेखाचित्र 3.4

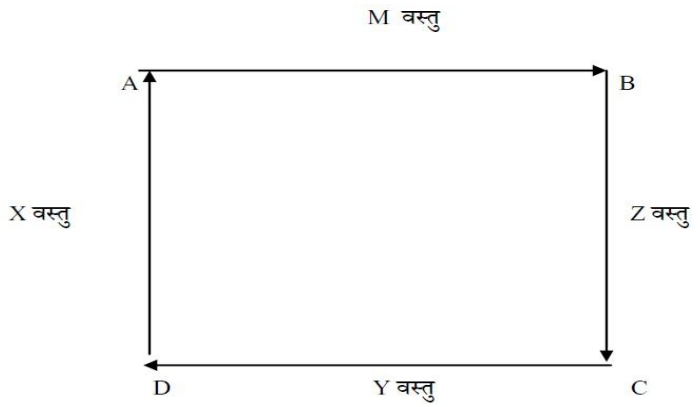

है; देश B वस्तु X को देश C को निर्यात करता है; देश C वस्तु Y को देश Dको निर्यात करता है, और देश D वस्तु Z को देश A को निर्यात करता है। रेखाचित्र यह स्पष्ट करता है कि एक देश केवल एक वस्तु का निर्यात करता है तथा एक वस्तु का आयात करता है। परंतु वह उस देश

से वस्तु आयात नहीं करता जिसको वह अपनी वस्तु निर्यात करता है। प्रत्येक देश दूसरे देश को तीसरे देश के द्वारा भुगतान करता है अतः देश B वस्तु M के अपने आयात के लिए भुगतान देश C से वस्तु X के लिए प्राप्त अपने निर्यात अर्जनों द्वारा करता है। इसी प्रकार , देश C वस्तु X के अपने आयात के लिए भुगतान, देश D से वस्तु Y के लिए प्राप्त अपने निर्यात अर्जनों द्वारा द्वारा करता है। देश D वस्तु Y के अपने आयात के लिए भुगतान, देश A से वस्तु Z के लिए प्राप्त अपने निर्यात अर्जनों द्वारा करता है। अतः बहु देश बहु वस्तु मॉडल में व्यापार संभव है क्योंकि प्रत्येक देश के निर्यात और आयतों का कुल मूल्य बराबर होता है तथा अंततः विश्व व्यापार संतुलित हो जाता है।

3.5.1 आलोचनाएँ

यह सिद्धान्त दो से अधिक राष्ट्रो व दो से अधिक वस्तुओ का विश्लेषण प्रस्तुत तो करता है परंतु वास्तविकता से अब भी अछूता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, राष्ट्र जिस वस्तु का निर्यात जिस देश को करता है, उससे किसी भी वस्तु का आयात नहीं करता, जो कि एक वास्तविक स्थिति नहीं है वरन वर्तमान व्यापार परिस्थितियों में इसके विपरीत भारत, अमेरिका, यूरोपियन संघ के राष्ट्रों से से कई वस्तुओ का आयात करने के साथ साथ कई वस्तुओं का निर्यात भी करता है।

3.6 तुलनात्मक लागतो के सिद्धान्त के अंतर्गत परिवहन लागतें

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि परिवहन लागतें शून्य है। यह अवास्तविक है क्योंकि परिवहन लागतें दो देशों के बीच व्यापार कि जाने वाली वस्तु कि कीमत और मात्रा को प्रभावित करती है। परिवहन लागतें सम्मिलित करने से एक वस्तु का तभी व्यापार किया जाएगा यदि व्यापार पूर्वा दोनों देशों के बीच कीमत अंतर उनके बीच वस्तु कि परिवहन लागत से अधिक हो ।

परिवहन लागतों के प्रत्यक्ष प्रभाव चित्र 6 के माध्यम से संजाए गए है। यह मान लिया जाता है कि दो देश A और B है । वे एक वस्तु कपड़े से व्यापार करते है। B कपड़े का आयात करता है और A इसे निर्यात करता है। कपड़े की कीमत एक सामान्य अक्ष O पर मापी गयी है। कपड़े की उत्पादित तथा मांगी गयी मात्राये O से दायीं और निर्यातक देश A(x) के लिए, तथा बाईं और आयातक देश B (m) के लिए हैं। दोनों देशों के मांग व पूर्ति क्रमशः D और S है।

व्यापार से पूर्व, प्रत्येक देश वस्तु मात्रा को उस कीमत पर उत्पादित करता है जो उनके मांग और पूर्ति वक्रो के काटने से निर्धारित होती है। यह देश B में Em और A मे Ex है। जब व्यापार प्रारम्भ होता है तो कपड़े की मांग आयातक देश B के लिए कम हो जाएगी व निर्यातक देश A के लिए बढ़ जाएगी। अब कीमत OP_5 होती है जो कि समानान्तर कीमत रेखा P_5P_5 द्वारा व्यक्त की गयी है। यह रेखा क्रमशः B के D और S वक्रों को B_1 और B_2 पर काटती है तथा A के वक्रों को A_1 तथा A_2 पर ।

देश A,Osx उत्पादित,Od_xउपभोग तथा dxSx निर्यात करता है; जबकि देश BOSm उत्पादित,Smdm आयात, तथा Odm उपभोग करता है। जब परिवहन लागतें सम्मिलित कि जाती है तो निर्यातक देश A उन्हे कपड़े की कीमत मे कमी के समान समझता है जो परिवहन लागतों की मात्रा के बराबर है, जिसे वह देश B को बेचकर प्राप्त कर सकता है। इसे परिवहन लागतों की मात्रा के बराबर देश Aकी सापेक्षता मे देश B के D और S वक्रों को नीचे सर्काकर दिखाया गया है। अतः चित्र के बायीं ओर D_B और S_Bवक्रों के समानान्तर D_1 और S_1 वक्र T के बराबर नीचे की ओर खींचे गए है।

देश A मे कीमत OP_5 से गिरकर OP_4 हो जाती है तथा देश Bमें कीमत परिवहन लागत तथा P_5P_6 के अंतर के बराबर बढ़ती है। देश A में

कीमत OP_5 से गिरकर OP_4 हो जाती है तथा देश B में कपड़े की कीमत का अंतर परिवहन लागतों की मात्रा के बराबर अवश्य होना चाहिए।

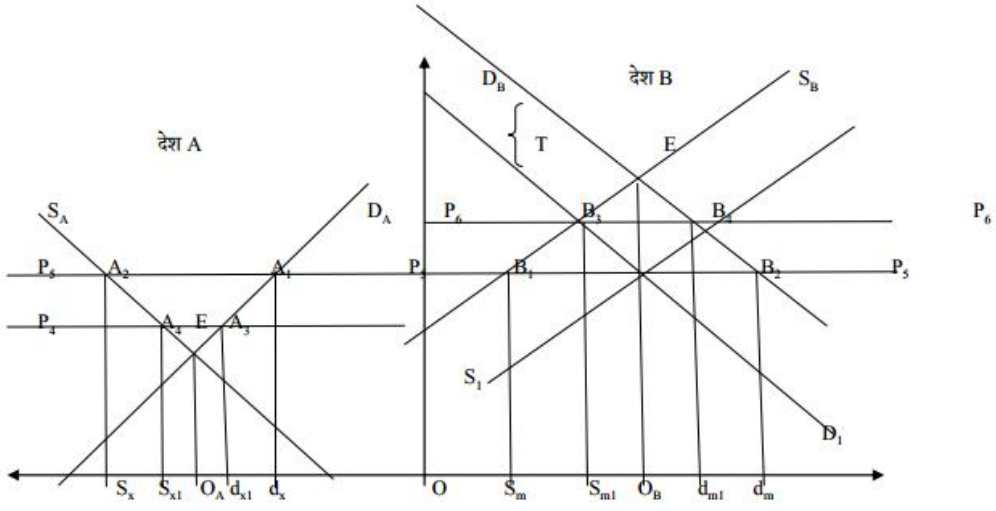

रेखाचित्र 3.5

अतः संतुलन स्थिति की तुलना में जब कोई परिवहन लागतें नहीं होती हैं, परिवहन लागतें सम्मिलित करने से वस्तु की कीमत निर्यातक देश मे कम हो जाती है तथा आयातक देश मे बढ़ जाती है । परिणामस्वरूप, निर्यातक देश पहले से कम उत्पादन, उपभोग अधिक तथा निर्यात कम करता है। दूसरी ओर, आयातक देश पहले से अधिक उत्पादन, उपभोग कम ओर आयात कम करता है। इस कारण, उत्पादन में विशिष्टीकरण तथा व्यापार की मात्रा कम हो जाते हैं, और इसी तरह व्यापार से लाभ कम हो जाते है।

3.6.1 आलोचनाएँ

यह सिद्धान्त परिवहन लागतों को शामिल कर विश्लेषण को वास्तविकता के निकट लाने में समर्थ हुआ है, परंतु उत्पादन में विशिष्टीकरण व मात्रा के निर्धारण के वास्तविक कारणो तक नहीं पहुँच पाया। उत्पादन के विशिष्टीकरण के लिए उतरदायी पैमाने के

प्रतिफलों की मान्यता है जिसका विश्लेषण यह सिद्धान्त नहीं करता है। वास्तविकता तो यह है कि पैमाने के स्थिर प्रतिफलों की बजाय घटती व बढ़ती प्रतिफलों की मान्यता, उत्पादन के विशिष्टीकरण को निर्धारित करती है।

3.7 तुलनात्मक लागतों के सिद्धान्त के अंतर्गत परिवर्ती उत्पादन लागतें

तुलनात्मक लागतों का सिद्धान्त स्थिर लागतों या स्थिर प्रतिफलों की मान्यताओं पर आधारित है। यह अवास्तविक है क्योंकि यथार्थ मे लागतें या तो बढ़ती हुई होती है या घटती हुई।

हेबरलर ने अपनी अवसर लागतों के सिद्धान्त की सहायता से यह प्रदर्शित किया है कि तुलनात्मक लागतों का सिद्धान्त बढ़ती अवसर लागतों में भी लागू होता है। परंतु घटते प्रतिफलों के कारण विशिष्टीकरण अपूर्ण होता है।

जहां तक घटती या बढ़ती लागतों के अंतर्गत व्यापार की बात है, ग्राहम और हेबरलर के बीच विवाद पाया जाता है। दोनों के तर्कों की व्याख्या यहाँ की जा रही है।

3.7.1 ग्राहम का मत

ग्राहम[7] क्लासिकी मत से सहमत नहीं कि जब उत्पादन घटती लागतों के अंतर्गत होता है तो विशिष्टीकरण व्यापार कर रहे देशों के उत्पादन की मात्रा बढ़ाएगा । एक गणितीय उदाहरण से वह समझता है कि दो देशों के बीच का विशिष्टीकरण उत्पादन कि मात्रा को कम करेगा तथा एक व्यापार कर रहे एक देश को पर्याप्त हानि होगी। इसे सिद्ध करने के लिए वह ऐसी स्थिति लेता है जिसमे एक देश तुलनात्मक लागत

[7]F.D. Graham,"TheTheoryofInternationalValues, 1948.

स्थिति द्वारा प्रोत्साहित होकर बढ़ रही लागतों के उद्योग में विशिष्टीकरण करता है, तथा घट रही लागतों के उद्योग का त्याग करता है। ऐसी स्थिति में व्यापार के बिना कि अपेकषा देश में उत्पादन की मात्रा कम हो जाएगी। अपने मत की व्याख्या करने के लिए ग्राहम निम्न उदाहरण देता है। दो देश इंग्लैंड और जर्मनी है जो दो वस्तुएँ गेहूं और घड़ियाँ उत्पादित करते हैं। मान लीजिये किअंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रारम्भ होने से पूर्व, गेहूं की 40 इकाइयों के बदले घड़ियों की 40 इकाइयां विनिमय होती है, तथा गेहूं की 40 इकाइयों के बदले घड़ियों की 37 इकाइयां जर्मनी में। इस प्रकार गेहूं के उत्पादन में जर्मनी को तुलनात्मक लाभ प्राप्त होता है तथा इंग्लैंड को घड़ियों में। ग्राहम यह मान्यता लेकर चलता है कि गेहूं का उत्पादन बढ़ती लागतों के अंतर्गत और घड़ियों का घटती लागतों के नियम के अंतर्गत होता है। आगे यह मान्यता भी लेता है कि इंग्लैंड मे दोनों वस्तुएँ स्थिर लागतों के नियम के अंतर्गत उत्पादित होती है। अंतिम, यह मान्यता भी है कि अंतर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात गेहूं कि 40 इकाइयां: घड़ियों कि 40 इकाइयां है।

मान लीजिये कि जर्मनी मे घड़ियों का उत्पादन 37,000 इकाइयां कम कर दिया जाता है। तथा इससे मुक्त हुए संसाधन गेहूं कि 37500 अतिरिक्त इकाइयां उत्पादित करते हैं जो कि इसके उत्पादन मे बढ़ती हुई लागतों का नियम लागू होने के कारण गेहूं कि पहले उत्पादित कि जा रही 40,000 इकाइयों से कम है। गेहूं कि यह 37500 इकाइयां इंग्लैंड की 37500 इकाइयां घड़ियों के साथ विनिमय होगी। परंतु जर्मनी में घड़ियों के उत्पादन मे कमी उनकी औसत उत्पादन लागत को बड़ा देती है। अब मान लो कि संसाधनो के पहले स्थानांतरण से पूर्व जितनी लागत से 37 घड़ियों का निर्माण किया जाता था उतनी ही लागत से केवल 36 घड़ियाँ बनाई जाती है। गेहूं के उत्पादन में स्थानांतरण उतनी देर तक चलता रहेगा जितनी देर तक गेहूं कि 36 से अधिक इकाइयां

उन संसाधनो के बदले प्राप्त हो सकती है जो 36 घड़ियो के निर्माण के लिए चाहिए।

घड़ियों का उत्पादन 36000 इकाइयां और कम कर दिया जाता है और इस प्रकार मुक्त किए गए संसाधन गेहूं के उत्पादन मे प्रयोग किए जाते है जो गेहूं कि 36,200 इकाइयां उत्पादित करते है। अब गेहूं कि 36200 इकाइयां इंग्लैंड कि 36200 घड़ियो के साथ विनिमय कि जा सकती है । अतः व्यापार द्वारा जर्मनी को 73700 (=37500+36200) घड़ियाँ प्राप्त होती है, जो 74000 (=37000+37000) घड़ियाँ वह व्यापार से पूर्व घरेलू तोर से उत्पादित कर रहा था, उनसे कम है। इस प्रकार व्यपार द्वारा जर्मनी को 300 (=74,000-73,700)घड़ियों कि हानि होती है। यह प्रक्रिया चलती रहेगी और हानि बढ़ती जाएगी जब तक कि जर्मनी उद्योग इंग्लैंड के घड़ी उद्योग द्वारा विस्थापित नहीं हो जाता और जर्मनी पूरी तरह से गेहूं के उत्पादन मे विशिष्टीकरण प्राप्त नहीं कर लेता हैं।

3.7.2 ग्राहम के मत कि आलोचनाएँ

हेबरलर ने ग्राहम के मत कि आलोचनाएँ निम्न आधारों पे की है :

3.7.2.1 अमान्य मान्यताएं

हेबरलर के अनुसार, ग्राहम का निष्कर्ष तभी मान्य होगा यदि उसकी मान्यताएं कि घटती लागत उद्योग मे उत्पादन बढ़ने के साथ लागतें कम होती है और उत्पादन कम होने से लागतें निरंतर बढ़ती जाती है, स्वीकार्य हो। फिर ग्राहम का सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता कि मान्यता पर आधारित है। हेबरलर इन मान्यताओं को बहुत अनिश्चित मानता है। एस इस कारण कि जब एक उद्योग घटती लागतों के नियम के अंतर्गत कार्यशील होता है तो यह दीर्घकालीन प्रतिस्पर्धात्म्क संतुलन से मेल नहीं खाता। जब इस तरह एक उद्योग प्रसार करता है तो इसकी लागतें निरंतर कम होती जाएंगी और दीर्घकाल मे यह एकाधिकारी संस्थान बन जाएगा । यदि , घटती लागतों के कारण उद्योग पहले से ही

एकाधिकारी है तो उसका पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होगा । वह उतना उत्पादित करने का यत्न करेगा जो कि उसकी कुल आय को बढ़ा सके। वह अपनी उत्पादन लागत और भी कम करने के लिए अधिक उत्पादन कर सकता है ताकि अपनी कीमत कम कर सके। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता तथा घटती लागत का नियम एक दूसरे के साथ मेल खाता।

3.7.2.2बाह्य मितव्यवताए अस्पष्ट तथा अनिश्चित

नाइट बाह्य मितव्यवताओं के कारण घटती लागतों कि स्थिति का परीक्षण करता हैं। जो अमितव्यवताएं एक फ़र्म के लिए बाहरी होती है वे एक उद्योग के लिए आंतरिक होती है। फिर भी, दूसरे उद्योग मे कोई फ़र्म हो सकती है जिसके लिए बाहरी मितव्यवताओं के लाभ इतने अधिक होते है कि वह उद्योग मे एकाधिकार फ़र्म के रूप मे प्रकट हो सकती हैं । अतः ग्राहम का मत फिर असत्य सिद्ध होता है क्योंकि यह पूर्ण प्रतियोगिता कि मान्यता पर आधारित है। फिर, हेबरलर के मतानुसार, प्रकारती मे बाह्य मितव्यवताए कुछ अस्पष्ट तथा अनिश्चित होती है। उनके मूल्य या परिमाण का अनुमान लगाना कठिन है। आगे, वे आंशिक तौर से उन साधनो से संबद्ध होती है।

3.7.2.3 औसत और सीमांत संबंध मे विभेद करने मे विफलता

ग्राहम के विश्लेषण कि एक अन्य कमी यह है कि वह औसत और सीमांत संबंध मे विभेद करने मे असफल रहा । वाइनर के अनुसार, ग्राहम का विश्लेषण औसत लागतों और सीमांत प्रतिफलों के अनुसार हल किया होता तो उसको व्यापार के प्रतिकूल परिणाम प्राप्त न होंगे। ग्राहम के उदाहरण में, जब एक उत्पादक घड़ियों के उत्पादन से गेहूं के उत्पादन के लिए संसाधन स्थानांतरित करता है तो उसे केवल गेहूं कि सीमांत वृद्धि का लाभ होता है। और घड़ियों के सीमांत उत्पादन कि हानि। क्योंकि घड़ियों का सीमांत उत्पादन गेहूं कि सीमांत वृद्धि से अधिक होता है , इसलिए कोई भी संसाधन घड़ियों के

उत्पादन से गेहूं के उत्पादन को स्थानांतरित नहीं होगा। एस इस कारण कि सीमांत प्रतिफलों में लाभ से हानि अधिक होती है। ऐसी स्थिति उत्पादक के लाभ अधिकतम करने के विरुद्ध है।

3.7.2.4 अपूर्ण विश्लेषण

ग्राहम कि मान्यता कि इंग्लैंड मे घड़ी निर्माण तथा गेहूं उत्पादन स्थिर लागतों के अंतर्गत होते है, घटती लागतों मे व्यापार की उसकी प्रतिस्थापना की पूरी तरह से व्याख्या नहीं करती है। जर्मनी की तरह इंग्लैंड भी उत्पादन के समान नियमो के अंतर्गत दोनों वस्तुओं के उत्पादन से संबद्ध दोनों देशों के बीच व्यापार का विश्लेषण ग्राहम नहीं करता है। इस कारण उसका विश्लेषण अपूर्ण है।

3.7.2.5 व्यापार का आधार तुलनात्मक लागतों मे अंतर है

ग्राहम अपने विश्लेषण मे यह समझाने में विफल रहा है कि व्यापार का आधार तुलनात्मक लागतों मे अंतर है तथा घटती लागतें एक कारण है जो इस बात कि व्याख्या करती है कि तुलनात्मक लागतें क्यों भिन्न होती है।

इन आलोचनाओं के बावजूद, अर्थशास्त्रियों के ने ग्राहम के सिद्धान्त का विकास किया है, जिसके अनुसार उन्होने इस बात का विश्लेषण किया है कि जब एक वस्तु घटती लागतों के और दूसरी वस्तु बढ़ती लागतों के अंतर्गत उत्पादन करती है।

3.7.2.6 निष्कर्ष

इस प्रकार ग्राहम क्लासिकी मत को नकारता है कि जब उत्पादन घटती लागतों के नियम के अंतर्गत होता है तो तुलनात्मक लागतों के अनुरूप विशिष्टीकरण व्यापार कर रहे देशों के उत्पादन कि मात्र बढ़ेगी । इसके विपरीत व्यापार के पश्चात उत्पादन कि घटती लागतो के अंतर्गत उत्पादन कर रहे देश कि उत्पादन मात्रा कम होगी । ग्राहम के मत कि नीति का अंतर्निहित तत्व है कि घटती लागतो वाला

उद्योग केवल तभी बचा रह सकता है यदि उसे प्रशुल्क द्वारा अस्थायी तौर से संरक्षण प्रदान किया जाए।

3.8 सारांश

रिकार्डो के सिद्धान्त की अवास्तविक मान्यताओं में वस्तु-विनिमय की मान्यता का संशोधन मुद्रा विनिमय सिद्धान्त के माध्यम से जिसमें देशों के मध्य लेन देन मुद्रा मानको तथा स्वर्ण मानको के आधार पर प्रो. टौसिंग ने प्रस्तुत किया । प्रो हेबरलर ने रिकार्डो के सिद्धान्त की दो वस्तुओं की मान्यता को दो से अधिक वस्तुओं के व्यापार मे प्रस्तुत किया व इस विश्लेषण को विभाजक रेखा के माध्यम से विस्तृत किया। रिकार्डो के सिद्धान्त का विस्तार बहुदेशीय व बहु वस्तु मॉडल मे प्रस्तुत किया गया। परिवहन लागतों को शामिल करने से निर्यातक देश की मांग मे वृद्धि तथा आयातक देश की मांग में कमी होती है जिसके परिणामस्वरूप आयातक देश में उत्पादन व फर्मों का विस्तार होता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार परिवहन लागतों से बहुत प्रभावित होता है। उसी प्रकार परिवर्ती लागतों के सिद्धान्त के माध्यम से बताया कि लागतें घटती व बढ़ती हुई होती है न की स्थिर। स्थिर लागतों की मान्यता अवास्तविक है , ग्राहम के अनुसार,जब उत्पादन घटती लागतों के अंतर्गत होता है तो विशिष्टीकरण व्यापार कर रहे देशों के उत्पादन की मात्रा बढ़ाएगा।

3.9 शब्दावली

- **तुलनात्मक लागत सिद्धान्त**: कोई देश उन वस्तुओं का उत्पादन करेगा जिसमे उसे अधिकतम तुलनात्मक लाभ होगा और उन वस्तुओं का आयात करेगा जिसमे उसे कम से कम तुलनात्मक हानि होगी।
- **भुगतान शेष:** भुगतान शेष किसी देश के लिए अंतराष्ट्रीय लेन देनों में प्राप्तियों और भुगतानों को दर्ज़ करने का तरीका मात्र है।

- **पैमाने की घटती लागतें** :जब उत्पादन में वृद्धि साधनो के अनुपात से अधिक हो तो वह पैमाने की घटती लागतें कहलाती है।
- **पैमाने की बढ़ती लागतें** : जब उत्पादन में वृद्धि साधनो के अनुपात से कम हो तो वह पैमाने की बढ़ती लागतें कहलाती है।
- **पैमाने की स्थिर लागतें :** जब उत्पादन में वृद्धि साधनो के समान अनुपात में होती है तो वह पैमाने की स्थिर लागतें कहलाती है।
- **अवसर लागत** : एक बेहतर विकल्प का चुनाव हेतु दूसरे विकल्प का परित्याग ही अवसर लागत है।

3.10 बोध प्रश्न

1. रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ का के सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के संदर्भ में अपने तर्क प्रस्तुत कीजिये।
2. एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था में तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ।
3. तुलनात्मक लागतों के सिद्धान्त की व्याख्या परिवहन लागतों के संदर्भ में कीजिये ।
4. घटती लागतों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव की व्याख्या कीजिये।
5. दो से अधिक वस्तुएँ होने पर तुलनात्मक लागतों के क्लासिकी सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
6. ग्राहम के घटती लागतों के सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
7. दो से अधिक देशों के संदर्भ में तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ।
8. "रिकार्डो का तुलनात्म लागत सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। "कथन के संदर्भ में अपने तर्क प्रस्तुत करें।

3.11 संदर्भ पुस्तकें

- F.D. Graham, "The Theory of International Values, 1948.
- F.W.Taussig, InternationalTrade, 1927.
- G.Von Haberler, The Theory of International Trade, 1950.
- M.L. Jhingan, International Economics, 6thEdition,ISBN: 978-8281-130-0

इकाई - 4

मिल के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिपूरक मांग का सिद्धान्त

(Mill's Theory of Reciprocal Demand of International Trade)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मिल का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त

4.2.1 समीकरण के रूप में सिद्धान्त की व्याख्या

4.2.2 बदलती डी.ई.आरों/डी.टीओं/बी.टी.टीओं/डी.आर.टीओं तथा व्यापार की परिधि

4.2.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों (आई.टी.टी) का निर्धारण

4.2.4 उदाहरण

4.3 संक्षिप्तीकरण

4.4 स्वतन्त्र व्यापार पर मिल के विचार

4.5 संरक्षण पर मिल के विचार

4.6 मिल के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन

4.7 शब्दावली

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को तैयार करने के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित को प्रदर्शन एवं व्याख्या करना है :

i. जे.एस.मिल ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त को "मूल्य-सिद्धान्त" के ढांचे के अन्दर विकसित किया जिसमें पूर्ति (लागतें) एवं मांग दोनों पक्षों पर विचार किया जाता है।

ii. उसने अपने सिद्धान्त का विकास केवल रिकार्डो के सिद्धान्त का पूरक के रूप में नहीं बल्कि एक पृथक सिद्धान्त के रूप में किया।

iii. मिल ने सही रूप में सिद्ध किया कि व्यापार की आन्तरिक शर्तें (ड़ी.टी.टी.) जिसे व्यापार की अदल-बदल की शर्तें भी जानी जाती है या आन्तरिक परिवर्तन दर (डी. आर.टी.) या आन्तरिक विनिमय

दर (डी.ई.आर.) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तों के बराबर नहीं हो सकती है। ये आन्तरिक शर्तों से ऊंची होनी चाहिये।

iv. मिल ने सही ही निरूपित किया कि लागत रेखायें (डी.ई.आर.) व्यापार के परिधि को निर्धारित करती है एवं व्यापार की वास्तविक शर्तों जिस पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होगा, वे, दोनों देशों के पारस्परिक मांग और पूर्ति के सापेक्षिक पर निर्भर करेगी।

v. मिल ने पारस्परिक मांग का एक समीकरण प्रतिपादित किया जिसने यह निरूपित किया कि यह अनुपात तब स्थिर रहेगा जब प्रत्येक देश के आयात के भुगतान हेतु निर्यात पर्याप्त हो।

vi. मिल ने यह भी निरूपित किया कि यदि एक देश की दूसरे देश की वस्तुओं के लिये मांग बेलोचदार है और पूर्ति भी बेलोचदार है तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें व्यापार के घरेलू शर्तों (डी.टी.टी.) के अति निकट होगी तथा उसे अधिक वास्तविक वस्तुओं का निर्यात करना पड़ेगा और कम वास्तविक वस्तुओं को स्वीकृत करना होगा।

vii. मिल ने सिद्ध किया कि जहां भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तें व्यापार के परिधि के बीच हो वहां दोनों देश लाभान्वित होंगे यद्यपि सामान्य रूप से नहीं।

viii. मिल ने यह भी सिद्ध किया कि पारस्परिक मांग या प्रति पूरक मांग का समीकरण स्वतन्त्र व्यापार की परिस्थितियों में लागू होगा।

ix. स्वतन्त्र व्यापार में छोटे देश बड़े देशों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

मिल के इस योगदान के कारण अनुवर्ती अर्थशास्त्रियों ने यह तर्क दिया कि "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार" कीमतों के तुलनात्मक अन्तर के कारण होता है न कि तुलनात्मक लागतों के अन्तर के कारण और इस प्रकार इन अर्थशास्त्रियों ने मिल के मांग (प्रभाव) को सम्मिलित किया।

4.1 प्रस्तावना

मिल के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के "पारस्परिक या प्रतिपूरक मांग का सिद्धान्त" अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त का टोरेन्स ने नामकरण किया एवं रिकार्डो ने विकास किया था, का पूरक है।

प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के एडम स्मिथ, टी.आर. माल्थस एवं डेविड रिकार्डो जिन्हें इस समुदाय का 'त्रिमूर्ति' कहा जाता है ने अहस्तक्षेप तथा यथेच्छकारिता के उदारतावादी अर्थशास्त्र का विकास किया। स्वयं के व्यवसाय चयन करने की स्वतन्त्रता या आर्थिक क्रिया के दिशा का चयन करने की स्वतन्त्रता, सौदा करने-वस्तु विनिमय एवं विनिमय करने की स्वतंत्रता, निजी सम्पत्ति के स्वामित्व की स्वतन्त्रता, कीमत निर्धारण करने, कीमत का सौदा करने, निजी स्वार्थ को आगे बढ़ाने आदि की स्वतन्त्रता उसकी आर्थिक प्रणाली की आधार शिला थी। उनके स्वतन्त्र बाजार उदाहरण में (निजीकरण एवं विपणीकरण) कीमत, उत्पादन लागत (जिसमें सामान्य लाभ भी सम्मिलित है) के बराबर थी तथा इसे "अदृश्य हाथ" माना गया जो विनियोग का आबन्टन तथा मांग एवं पूर्ति का नियमन करता था। यह विश्वास किया गया था कि यदि स्वतंत्र व्यापार है (जिसमें स्वर्ण निर्यात-आयात करने की स्वतन्त्रता भी सम्मिलित है) तो उपभोग मूल्य (अर्थात उपयोगितायें) तथा विनिमय मूल्य (कीमतें) अधिक होंगे और आर्थिक विकास स्थिर, संचयी तथा बिना रुकावट (बिना कठिनाई) के होगा।

रिकार्डो ने यह भी प्रमाणित किया कि लागत के निरपेक्ष लाभ तुलनात्मक भी होनें चाहिए अन्यथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं हो सकता है और न होना चाहिए। उसने इसका समर्थन किया कि एक देश को उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करना चाहिए (उसके दो देश, दो वस्तुओं के मॉडल में) जिसमें तुलनात्मक लागत के अन्तर अधिकतम हो। उसने यह भी तर्क किया कि उस देश को उत्पादन के साधनों (भूमि, श्रम,

पूंजी और संगठन) को उस विशिष्टीकृत वस्तु के उत्पादन में लगाना चाहिए, "दूसरी वस्तु" को घरेलू लागत से ऊंची लागत पर आयात किया जा सकता है परन्तु तुलनात्मक हानि न्यूनतम होनी चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पूर्ति पक्ष के सिद्धान्त के सम्बन्ध में रिकार्डो ने यह तर्क किया कि लागत के तुलनात्मक अन्तर में तुलनात्मक लाभ भी सम्मिलित है, जिस आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हो सकता है या होना चाहिये।

4.2 मिल का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त

जे.एस. मिल ने अपना सिद्धान्त इस प्रकार व्यक्त किया :

"वास्तविक अनुपात जिस पर वस्तुओं का व्यापार होता है यह प्रत्येक देश की दूसरे देश की वस्तु के लिये मांग की मात्रा एवं लोच की शक्ति पर निर्भर होगा या पारस्परिक मांग पर निर्भर होगा। यह अनुपात तब स्थिर होगा जब प्रत्येक देश का निर्यात मूल्य उसके आयात के भुगतान करने हेतु पर्याप्त हो"

इस प्रकार निर्यात आगम = आयात भुगतान होना चाहिए।

यदि इंग्लैण्ड फ्रांस को कोयला निर्यात करता है और फ्रांस इंग्लैण्ड को शराब निर्यात करता है तब ये अपने उत्पाद के लिये ऐसी कीमत लेंगे कि ये देश कोयला और शराब की वांछित मात्रा का व्यापार कर सकें । निम्नलिखित **सामान्य निष्कर्ष** निकाला जाता है कि.

(1) यदि इंग्लैण्ड कोयले की कीमत कुछ प्रतिशत से बढ़ा देता है तब फ्रांस भी शराब की कीमत को बढ़ा देगा ताकि मांग की लोच के आधार पर शराब की पूर्ववत मात्रा के बदले कोयला के पूर्ववत मात्रा का आयात लगातार चालू रख सकें।

(2) यदि इंग्लैण्ड कोयले की कीमत बढ़ा देता है जबकि फ्रांस अपने शराब की कीमत बढ़ा नहीं सकता है तब इंग्लैण्ड को कोयले की पूर्ववत मात्रा प्राप्त करने के लिये पहले से ज्यादा शराब निर्यात करना पड़ेगा।

(3) यदि इंग्लैण्ड कोयले की कीमत बढ़ा देता है परन्तु फ्रांस शराब की कीमत बढ़ा नहीं सकता है न ही ऐसी स्थिति में है कि वह ज्यादा शराब निर्यात कर सकता है तब फ्रांस को अपने देश में कोयले का आयात कम करना पड़ेगा।

(इस प्रकार यदि कोयले की कीमत में वृद्धि की जाती है, तब (a) शराब की कीमत बढ़ा दी जायेगी और/या (b) ज्यादा शराब का निर्यात करना पड़ेगा और/या (c) कम कोयला का आयात करना पड़ेगा)

(यदि फ़्रांस शराब की कीमत बढ़ा देता है तब इंग्लैण्ड में इसी प्रकार का समायोजन होगा) इनमें से किसी एक देश के द्वारा कीमत में कमी करने पर समायोजन इसके विपरीत किया जाएगा।

यदि एक देश की आर्थिक स्थिति मजबूत है (दूसरे देश के उत्पात के लिये मांग लोचदार है तथा स्वयं के उत्पाद की पूर्ति लोचदार है), तब वह व्यापार की श्रेष्ठतर शर्तें एवं उसके निर्यात के लिये ऊंचे वास्तविक आयात प्राप्त कर सकेगा।

4.2.1 समीकरण के रूप में सिद्धान्त की व्याख्या

अन्तर्राष्ट्रीय मांग का समीकरण इस प्रकार दिया जा सकता है :

$$Pa \times Qa = Pb \times Qb$$

यहां P = कीमत

Q = मात्रा

a और b = विभिन्न वस्तुओं के आयात एवं निर्यात इंगित करते है संख्यात्मक रूप में

$$10 \times 100 = 5 \times 200$$

इस प्रकरण में निर्यात आयात का भुगतान करता है। यदि निर्यात कीमतों को बढ़ाकर रुपया 20/- - कर दें तथा निर्यात की जाने वाली मात्रा में गिरावट न हो अर्थात पहले की 100 मात्रायें बेची जा सकती है तब

आयात की पूर्ववत कीमत रुपया 05 = 00 में 400 इकाइयां आयात की जा सकती है।

यदि निर्यात की मात्रायें आधी हो जाती है तो कीमत के अपरिवर्तित रहने पर आयात की मात्रायें भी प्रभावित होगी।

एक देश के निर्यात कीमत में यदि वृद्धि हो जाती है परन्तु दूसरे देश, बदले में 200 इकाइयों से अधिक निर्यात नहीं करना चाहता है तब लोच के आधार पर दूसरा देश भी अपनी कीमत में वृद्धि कर रुपया 10 = 00 कर सकता है।

यदि एक परिवर्ती बदल जाता है, यह अवश्यम्भावी है कि कोई अन्य या एक से अधिक परिवर्तियां ऐसे बदल जाती है कि समीकरण के दोनों ओर समान हो जाता है।

4.3.2 बदलती डी.ई.आरों/डी.टीओं/बी.टी.टीओं/डी.आर.टीओं तथा व्यापार की परिधि (Differing DERs/DTTs/BTTs/DRTs and the zone of Trading)

यह विदित है कि साधन सम्पन्नता तथा उनकी कुशलता उत्पादन सम्भावनाओं को निर्धारित करती है। मान लें कि भारत उसके सभी उत्पादन साधनों को गेहूं और चावल के उत्पादन में लगा देता है, तो इन दोनों वस्तुओं की 50 और 30 मेगा इकाइयां उत्पादन कर सकता है, जबकि बंगला देश इन वस्तुओं 20:60 मेगा इकाइयाँ उत्पादन कर सकता है तब उत्पादन सम्भावना रेखायें निम्नलिखित होंगी:

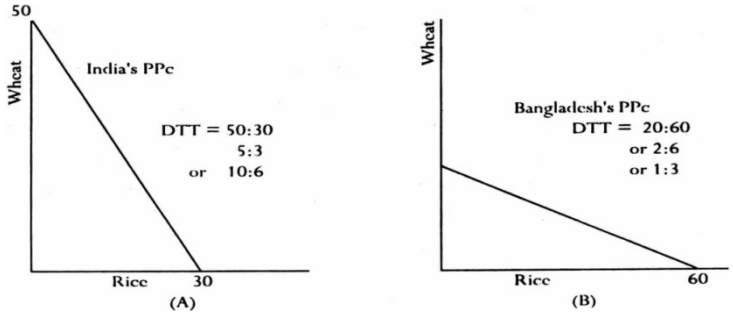

चित्र 4.1

यह भी देखा जा सकता है कि भारत की आन्तरिक विनिमय दर 50:30, या व्यापार की वस्तु विनिमय शर्तें 50:30 हैं तथा आन्तरिक विनिमय अनुपात (डी.ई.आर.) 5:3 लिखा जा सकता है अर्थात उत्पादन के सम्पूर्ण परिधि तथा उपभोग/विनिमय में 5 इकाई गेहूं के बदले 3 इकाई चावल का विनिमय होगा तथा गेहूं सापेक्षिक रूप से सस्ता है।

बंगला देश में 20:60 (डी.आर.टी.) आन्तरिक विनिमय दर व्यापार की आन्तरिक विनिमय शर्तों या व्यापार के वस्तु विनिमय शर्तों (डी.टी.टी.या.बी.टी.टी.) 20:60 निर्धारित करता है तथा डी.ई. आर. 2:6 होगा। इसको एक सार्व भिन्न में परिवर्तित करने पर दोनों देशों के आन्तरिक व्यापार शर्तें (डी.टी.टीओ) से निम्नलिखित होगी:

	भारत		बंगला देश
	50:30	&	20:60
	5:3		2:6
	5:3	&	1:3
या	10:6	&	2:6

ये डी.आर.टी/डी.टी.टी./डी.ई.आर./बी.टी.टी. रेखायें व्यापार के परिधि को निर्धारित करती है। भारत 5:3 की अन्तर्राष्ट्रीय व्यय शर्तें स्वीकार नहीं करेगा। भारत ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तें (आई. टी.टी.) स्वीकार करेगा जिस पर उसे 5 से कम इकाई गेहूं ही 3 इकाई चावल के लिए देना पड़े या 5 इकाई गेहूं के बदले में 3 इकाई से ज्यादा चावल प्राप्त हो) इसी प्रकार बंगला देश 2:6 या 1:3 से कम दर की व्यापार की शर्तें स्वीकार नहीं करेगा। यदि उसे 2 इकाई गेहूं उसके 6 इकाई चावल के बदले मिल सकता या उसे 2 इकाई गेहूं के लिये 6 इकाई चावल से कम भुगतान करना पड़े तो वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रवेश करेगा।

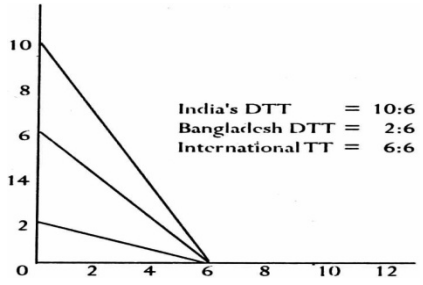

चित्र 4.2

भारत के आन्तरिक विनिमय दर डी.ई.आर./डी.टी.टी. (आन्तरिक व्यापार शर्तों के) (डी.टी.टी.) बांये तरफ उसको हानि हो रही है और बंगला देश के डी.ई.आर./डी.टी.टी. के बांये तरफ बांग्लादेश को हानि हो रही है बीच का क्षेत्र "व्यापार की परिधि" है, जहां अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें निर्धारित होंगी। उदाहरणार्थ वे 6/6 या 1/1 हो सकते हैं।

यदि भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों को (आई.टी.टी.) आन्तरिक व्यापार शर्तों (DTT) के पास लाया जाये तो उसका अर्थ यह होगा कि बंगला देश सशक्त है। (आर्थिक और/या गैर आर्थिक अर्थों में) यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों की (आई.टी.टी.) रेखा को बंगला देश आन्तरिक व्यापार शर्तों को (डी.टी.टी.) रेखा के निकट लाया जायेगा वह यह दर्शायेगा कि भारत सशक्त स्थिति में है और बंगला देश कमजोर स्थिति में। फिर भी कोई भी देश दूसरे देश पर इतना अधिक प्रभाव नहीं डाल सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें (आई.टी.टी.) किसी भी देश के आन्तरिक व्यापार की शर्तों के (डी.टी.टी.) बराबर हो जाये।

यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें (आई.टी.टी.) 6/6 है तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभ बंट जाएगा। यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तों (आई.टी.टी.) की रेखा सापेक्षिक रूप से भारत के आन्तरिक व्यापार के शर्तों की (डी.टी.टी.) रेखा के निकटतर है तब बंगला देश को लाभ का एक बड़ा भाग मिलेगा और यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों की रेखा

(आई.टी.टी.) बंगला देश के आन्तरिक व्यापार शर्तों की रेखा के (डी.टी.टी.) निकटतर है, तो भारत का लाभ अधिकतर होगा।

4.2.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों (आई.टी.टी.) का निर्धारण

मिल ने इस प्रकार प्रमाणित किया "प्रत्येक राष्ट्र के श्रम की सापेक्षिक कुशलता द्वारा स्थापित आन्तरिक विनिमय अनुपात सम्भावित वस्तु विनिमय शर्तों की सीमा निर्धारित करत है।"

अन्य बातों के यथावत रहते मांग और पूर्ति की लोच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों को निर्धारित करती है।

(1) यदि बंगला देश के चावल के लिये भारत की मांग अत्यधिक तीव्र एवं बेलोच है, तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें (आई.टी.टी.) भारत के आन्तरिक व्यापार शर्तों के निकटतम होंगी या बंगला देश के आन्तरिक व्यापार की शर्तों (डी.टी.टी.) से बहुत दूर हो जायेंगी और भारत सापेक्षिक रूप से व्यापार में अधिक गेहूं देगा।

(2) भारत के गेहूं के लिये बंगला देश की मांग ज्यादा तीव्र और बेलोच है, तो सापेक्षिक रूप से बंगला देश भारत को अधिक चावल (कीमत) देगा या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तें (आई.टी.टी.) उसके आन्तरिक व्यापार शर्तों (डी.टी.टी.) के अधिक समीप होंगी तथा भारत के आन्तरिक व्यापार शर्तों से दूर हो जायेंगे।

(3) यदि भारत की पूर्ति बेलोच है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों की (नीची) (आई.टी.टी.) निम्न दर स्वीकार करेगा क्योंकि भारत गेहूँ विक्रय के लिये अत्यन्त विवश है।

(4) यदि बंगला देश को विक्रय करने की विवशता है क्योंकि उसके पास चावल की प्रचुर मात्रा है और भारत को छोडकर अन्य कोई क्रेता नहीं है, ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें (आई.टी.टी.) उसके आन्तरिक व्यापार शर्तों (डी.टी.टी.) के निकटतर होंगी।

चावल के लिये यदि भारत की मांग बेलोच है और गेहूं की पूर्ति बेलोच है तो भारत की स्थिति कमजोर होगी, और बंगला देश की स्थिति तब कमजोर होगी जब गेहूं के लिये उसकी मांग बेलोच है और चावल की पूर्ति बेलोच है।

मिल के अनुसार दोनों वस्तुओं की कीमतें इस ढंग से अपने आप व्यवस्थित हो जाती है कि दोनों देशों की मांगी गई मात्रा ठीक-सन्तुलित हो जाती है। फ्रांस में कोयले की मांग इंग्लैण्ड में फ्रेंच शराब मांग से अधिक है तब इंग्लैण्ड उसके कोयले के बदले में शराब की अधिक मात्रा प्राप्त करेगा और परिणाम स्वरूप और वह अधिक लाभदायक स्थिति में होगा।

मिल ने कहा,

"आयात कीमतों को आयात की मात्राओं से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल निर्यात कीमतों को निर्यात मात्राओं से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल के योग के बराबर होगा"।

यदि दोनों देश समान रूप से शक्तिशाली है या समान रूप से कमजोर हैं, तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तें व्यापार परिधि के वक्रों के बीच होगी (या लगभग होंगी)। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तें (आई.टी.टी.) दोनों देशों के सौदा करने की सापेक्षिक शक्तियों से व्यवस्थित हो जाती है। यदि एक शक्तिशाली है और दूसरा कमजोर तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तें अंतिम सीमा की ओर ढकेल दिया जायेगा..... कमजोर देश के आन्तरिक व्यापार शर्तों के अति निकट होगा परन्तु इस देश के आन्तरिक व्यापार शर्तों के बराबर कदापि नही होगा।

4.2.4 उदाहरण

मान लें कि एक देश के आन्तरिक व्यापार अनुपात (डी.आर.टी.) वस्तु “ए" की 10 है तथा "बी" वस्तु की 15 है और देश "बी" में अनुपात 10:20 है।

वास्तविक व्यापार शर्तें	"ए" राष्ट्र वस्तुयें		“बी’’ राष्ट्र वस्तुयें	
RealTT	“ए’’	“बी‘‘	“ए’’	“बी‘‘
10:15	-	-	20000	30000
10:16	6000	9600	13000	20800
10:17	10000	17000	10000	17000
10:18	11000	19800	8000	14400
10:19	13000	24700	4000	7600
10:20	16000	32000	-	-

(सी.एफ.पेज 249, जे.सी.इंग्राम के अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की पुस्तक)

मिल के अनुसार व्यापार अनुपात के अंतिम शर्तों पर व्यापार संतुलित इस अर्थ में होना चाहिए कि इस अनुपात पर एक राष्ट्र द्वारा निर्यात की गई मात्रा ठीक उस मात्रा के बराबर होनी चाहिए जो दूसरे राष्ट्र खरीदने हेतु तत्पर हैं। प्रत्येक राष्ट्र के निर्यात की पूर्ति दूसरे राष्ट्र के उस वस्तु की मांग के ठीक बराबर होनी चाहिये। इस व्यापार अनुपात की शर्तों पर संतुलन बने रहने हेतु यह एक शर्त है। मिल ने कहा कि यह संतुलन तब तक बना रहेगा जब तक की दोनों देशों की पारस्परिक मांग बराबर रहती है।

4.3 संक्षिप्तीकरण

मिल ने मांग प्रभाव को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त में सम्मिलित किया। उसने सूचित किया कि तुलनात्मक लागतें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें निर्धारित नहीं करती बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों की उच्च एवं न्यूनतम सीमायें निर्धारित करती है। पारस्परिक मांग वास्तविक अनुपात को निर्धारित करती है। वह प्रत्येक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र के उत्पाद के लिये मांग की प्रबलता व लोच पर निर्भर करता है यह अनुमान तब

स्थिर होगा जब प्रत्येक राष्ट्र का निर्यात मूल्य इतना पर्याप्त हो कि उसके आयात का भुगतान कर सकें। यदि एक परिवर्ती बदल जाता है तो समीकरण के अन्य परिवर्तियों में परिवर्तन होगा और यह तब तक होगा जब तक पुन: एक बार निर्यात, आयात का भुगतान न करे। एक राष्ट्र के व्यापार की शर्तों में सुधार का अर्थ यह होता है कि उसे उतनी वास्तविक निर्यात के लिए उतना वास्तविक आयात प्राप्त हो या वही वास्तविक आयात के लिए कम वास्तविक निर्यात की आवश्यकता हो। एक राष्ट्र की व्यापार शर्तों में सुधार तब होगा जब दूसरे देश कमजोर हो, अर्थात दूसरे देश के उसके स्वयं के आयात की मांग बेलोच हो तथा उसके निर्यात की पूर्ति बेलोच हो।

4.4 स्वतन्त्र व्यापार पर मिल के विचार

मिल प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के वह अर्थशास्त्री थे जिसने इसे उसके विकास की चरम सीमा तक पहुंचाया वह बहु पक्षीय व्यापार बगैर बढ़ते हुए तटकर शुल्क और कोटा के चाहते थे। स्वतन्त्र व्यापार का अर्थ है कि "अतिरेक का आवश्यकता से विनिमय" अत: यह उपयोग मूल्यों (उपभोक्ताओं की उपयोगिताओं) तथा विनिमय मूल्यों (उत्पादकों के कीमतों एवं लाभों) को अधिकतम करता है। स्वतन्त्र व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन को प्रोत्साहित करता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री इस पर जोर देते थे कि यदि वस्तुओं, सेवाओं और स्वर्ण आदि के आवागमन पर कोई प्रतिबंध न हो तो व्यापार संतुलन स्वयं-नियमित होगा। आयात से अधिक निर्यात का अर्थ होगा कि (1) वस्तुओं की सापेक्षिक कमी। ओर (2) मुद्रा की पूर्ति का सापेक्षिक आधिक्य। अत: कीमतें बढ़ जायेंगी, आयात सस्ता हो जायेगा, निर्यात महंगा हो जायेगा और व्यापार की प्रवृत्ति विपरीत हो जायेगी। इसी प्रकार यदि वस्तुओं का आयात, निर्यात से अधिक है तो वस्तुओं की सापेक्षिक अधिकता होगी तथा मुद्रा की पूर्ति में कमी होगी,

कीमतें कम हो जायेंगी और निर्यात प्रोत्साहित होंगे, आयात हतोत्साहित होंगे तथा मुद्रा देश के अन्दर आने लगेगी।

मिल का विरोधाभास :

मिल ने एक गरीब देश की तुलना एक "फुटकर व्यापारी" से की तथा एक बड़े देश की तुलना एक "थोक व्यापारी" से की। स्वतन्त्र व्यापार में दोनों देशों को लाभ होता है, बड़े देश की लाभ सीमा कम है परन्तु हेरफेर (turnover) अधिक है। स्वतन्त्र व्यापार में दोनों देशों को लाभ होता है। और गरीब देश को और अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है क्योंकि इसको बड़े देश के लागत अनुपात का लाभ उठाकर बड़े देशों में बाजार मिल सकता है।

मिल का विरोधाभास का कथन यह है कि जैसे ही एक देश आर्थिक अर्थ में बड़ा हो जाता है व्यापार से प्राप्त लाभ कम हो जाता है। यह बहुत सम्भव है कि अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात बड़े देश की कीमत अनुपात के निकट हो जाये क्योंकि यह देश आकार एवं सीमा में वही हो जाता है । इसका अर्थ यह होगा कि इस बड़े देश को व्यापार से प्राप्त लाभ कम हो जाता है।

4.5 संरक्षण पर मिल के विचार

मिल ने तर्क किया कि समान पारस्परिक मांग की स्थिति केवल स्वतन्त्र व्यापार के अन्दर ही प्राप्त हो सकती है। तथापि एक विशेष अपवाद के अन्दर उसने "शिशु उद्योग तर्क" को स्वीकार किया यदि उनके परीक्षण संतोषजनक हो जायें।

मिल ने लिखा, "एक संरक्षण कर एक उचित समय के लिये चालू रहने पर कुछ समय के लिए वह न्यूनतम असुविधाजनक रीति हो सकती है जिससे एक राष्ट्र ऐसे प्रयोग के समर्थन हेतु अपने आप पर करारोपण कर सकता है। परन्तु यह आवश्यक है कि संरक्षण ऐसे प्रकरणों तक सीमित रहना चाहिए जहां यह निश्चितता का अच्छा आधार हो सके कि कुछ समय पश्चात् वह उद्योग जिसे वह राष्ट्र उत्साहित करता है उस कर को

हटा सके। न ही घरेलू उत्पादकों को कदापि यह अपेक्षा करने देना चाहिए कि उनके द्वारा उन उद्योगों का विकास सक्षमता पूर्वक करने हेतु एक उचित प्रयोग करने के लिए आवश्यक समय से अधिक उस कर को चालू रखा जायेगा।" शिशु उद्योग तर्क यह था कि "शिशु का पालन करो, बालक की रक्षा करो, प्रौढ़ को स्वतन्त्र छोड़ो, युवा का मार्गदर्शन करो"। यह तर्क किया गया था कि "स्वतंत्र व्यापार" तब सम्मत है यदि दोनों देश विकास के समान चरण पर हों। उदाहरणार्थ, यदि एक देश "कृषि-उद्योग तथा व्यापार" के विकसित चरण में है जबकि दूसरा देश ठीक "कृषि-विकास के चरण" में है तब संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। स्वतन्त्र व्यापार तात्कालिक लाभ को अधिकतम करता है, परन्तु संरक्षण उत्पादन क्षमताओं के विकास की सहायता कर ऊंचे भविष्य लाभ का दृढ़ विश्वास दिलाता है। संरक्षण कर के द्वारा एक राष्ट्र, निर्माण उद्योगों को प्रोत्साहित कर सकता है।

मिल के परीक्षण के लिये यह आवश्यक था कि :

(a) संरक्षण इसलिये नहीं प्रदान करना चाहिए क्योंकि वह उद्योग अवस्था में है बल्कि वह इसलिये आवश्यक है क्योंकि उसे अनावश्यक कठिन बाहरी प्रतियोगिता से बचा सके।

(b) संरक्षण औद्योगिक विकास के प्रारम्भिक चरण में प्रदान नही करना चाहिये।

(c) संरक्षण जितना जल्दी हो सके हटा देना चाहिये ताकि उद्योग भी कुशलता का सुधार करने का प्रयास करें।

4.6 मिल के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन

मिल के सिद्धान्त को रिकार्डो के सिद्धान्त के पूरक अथवा एक पृथक सिद्धान्त मानना चाहिये इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। एकमत तो यह है कि उसे एक पृथक सिद्धान्त होने का श्रेय देना चाहिये। किडिल बरजर (Kindleberger) के शब्दों में:

"यदि दोनों देशों का आकार असमान है, तो पारस्परिक मांग का पहलू बिल्कुल लागू नहीं होगा। बड़े राष्ट्र का कीमत-अनुपात प्रचलित रहेगा और छोटा राष्ट्र इस प्रचलित कीमत पर जितना चाहे कपड़ा या गेहूं दूसरे देश को बेच सकता है। **यही अमहत्वपूर्ण रहने का महत्व है।** कम से कम सिद्धान्त में तो छोटा राष्ट्र बहुत अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगा। बड़े देश के पूर्व में प्रचलित कीमत के अनुपात के प्रकरण में जो लाभप्रद व्यापार की एक सीमा है हो सकता है कि वह प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आशंका से अधिक बारबार हो सकता है। परन्तु जहां तक एक देश या दूसरे देश की मांग एवं पूर्ति या दूसरे देश की मांग और पूर्ति से उतने अति प्रबल नहीं है वहां प्रतिपूरक या पारस्परिक मांग का नियम कीमत को निर्धारित करता है"।

ऐल्सवर्थ (Ellsworth) मिल के सिद्धान्त का संक्षिप्तीकरण इस प्रकार करता है :

"संक्षिप्त में, (1) व्यापार के अदला बदली (या वस्तु विनिमय) की परिधि, प्रत्येक देश की तुलनात्मक कुशलता द्वारा जो आन्तरिक व्यापार शर्तों से निर्धारित होता है, से निश्चित होता है, (2) इस परिधि के अन्तर्गत वास्तविक शर्तें प्रत्येक देश के दूसरे देश की वस्तु की मांग पर निर्भर करेगी; और (3) अन्त में केवल वही वस्तु विनिमय शर्तें स्थिर रहेंगी, जिस पर प्रत्येक देश के निर्यात उसके वांछित आयात के भुगतान करने के लिये ठीक पर्याप्त है"

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की समान शर्तों का संतुलीकरण न केवल टिकाऊ प्रकृति का है बल्कि आज भी अत्यधिक संतोषजनक है। रिकार्डो का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त का केवल आंशिक व्याख्या ही प्रदान करता है। मिल ने मांग पक्ष को भी सम्मिलित किया और उसका यह सिद्धान्त मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का एक भाग बन गया। उसने सही सूचित किया कि यदि विकसित देश कम विकसित देशों से आयात करते हैं तो कम विकसित देश उनसे ज्यादा आयात कर सकते हैं।

फिर भी मिल के साथ कोई भी इस बात से सहमत नहीं हो सकता है कि बड़े देश छोटे देश से कम लाभ प्राप्त करेंगे। व्यापार की शर्तें परम्परागत रूप से गरीब देश के प्रतिकूल होती रही। यह विकसित देशों के संरक्षण नीति एवं चालाकी के कारण है।

4.7 शब्दावली

अहस्तक्षेप एवं यर्थच्छकारिता (Laissez faire & Laissez passes) : यह एक प्रणाली है जिसमें जनता के विनियोग करने, एक कीमत चुकाने, कीमत निर्धारण करने, विनियोग की दिशा के चुनाव करने, आय कमाने, बचत करने, विनियोग करने, एक परियोजना के स्थान के सम्बन्ध में निर्णय लेने, सम्पत्ति का अर्जन करने आदि की स्वतन्त्रता में सरकार हस्तक्षेप नहीं करती। प्रश्न यह नहीं कि सरकार को क्या करना चाहिए बल्कि क्या नहीं करना चाहिये।

बाजार यन्त्र : बाजार प्रतिमान : बाजारी करण निजीकरण (Market Mechanism, Market Paradigm, Marketization, Privatization) : ऐसी प्रणाली के अन्तर्गत मांग एवं पूर्ति की शक्तियां संतुलन कीमत को निर्धारित करती है। नियम सरल है : यदि दो क्रेता एक विक्रेता के पीछे दौड़े, कीमत में वृद्धि होगी और यदि दो विक्रेता एक क्रेता के पीछे दौड़े तो कीमत कम हो जायेगी। सापेक्षिक दुर्लभता और सापेक्षिक प्रचुरता कीमत का निर्धारण करती है। स्वतन्त्र बाजार प्रणाली में संतुलन केवल एक संतुलन है : "मूल्य सिद्धान्त के चुनाव और स्वीकृति का कोई क्षेत्र नहीं है"। यदि कीमत कम हो जाती है, उत्पादक अपनी पूर्ति कम कर देंगे और/या क्रेतागण अपनी मांग बढ़ा देंगे। कोई कीमत समर्थन की आवश्यकता नहीं। यदि कीमत ऊँची है तो शासन को भी नियन्त्रण करने हेतु हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। कीमत वृद्धि अधिक उत्पादन करने के प्रयास को प्रेरित करेंगे तथा/या मांग कम की जायेगी। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने बाजार कीमत को "अद्‌श्य हाथ" माना था जो अर्थव्यवस्था को नियमित

करता है और शासन को उसे नियमित करने के भार से मुक्त करता है। विगत वर्षों में, नियोजित समाजवादी अर्थ-व्यवस्था भी अधिक बाजारीकरण करने का प्रयास कर रही है (जहां सम्भव हो अधिक निजीकरण के साथ) ताकि सन्तुलन कीमत स्थापित हो।

लागत में तुलनात्मक लाभ और तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त :

हम रिकार्डो द्वारा दिया गया प्रसिद्ध उदाहरण लें :-

(लागत प्रति इकाई उत्पाद के लिए श्रम घन्टों में व्यक्त है।)

देश	**शराब**	**कपड़ा**
पुर्तगाल	80	90
इंग्लैण्ड	120	100

यह देखा जा सकता है कि पुर्तगाल दोनों वस्तुएं सस्ता उत्पादन करता है परन्तु तुलनात्मक सस्तापन शराब के उत्पादन में है जो कि 67% है और कपड़े में 90% जबकि इंग्लैण्ड के तुलनात्मक महंगापन कपड़े में 111% तथा शराब में 150% है। अत: पुर्तगाल यह निर्णय लेगा कि वह शराब विशिष्टीकरण करे और इंग्लैण्ड को कपड़ा उत्पादन करने के लिये छोड़ दें।

निर्यात उस वस्तु का होगा जिसका तुलनात्मक लाभ अधिकतम है और आयात कुछ हानि पर हो सकता है (विशिष्टीकरण को बढ़ावा देने के लिये) यदि तुलनात्मक हानि न्यूनतम हो।

डी.आर.टी./डी.टी.टी./बी.टी.टी./डी.ई.आर. (घरेलू व्यापार दर (Domestic Rate of Transformation) आन्तरिक व्यापार शर्तें (Domestic Terms of Trade) वस्तु विनिमय व्यापार शर्तें (Barter Terms of Trade) आन्तरिक विनिमय दर (Domestic Exchange Ration):

उत्पादन सम्भावना रेखा (जो दो वस्तुओं की अधिकतम मात्राओं को दर्शाता है जिन्हें एक देश अपने साधन सम्पन्नता से उत्पादन कर

सकता हें) वह दर देता है जिस पर घरेलू बाजार में इन दो वस्तुओं का विनिमय होता है। इस दर को विनिमय का आन्तरिक दर जाना जाता है या वस्तु विनिमय शर्त या वस्तु विनिमय दर या आन्तरिक विनिमय अनुपात जाना जाता है।

पारस्परिक मांग (Reciprocal Demand) : एक दी हुई कीमत में (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वास्तविक कीमत जो दूसरे वस्तुओं के प्रति व्यक्त की जाती है) प्रत्येक वस्तु की दूसरे वस्तु के लिये पारस्परिक मांग होती है जो विभिन्न कीमतों पर विभिन्न होगी जब तक एक विशेष कीमत पर मांगी गई एवं पूर्ति की गई मात्रायें समान न हो जाये।

व्यापार की परिधि (Zone of Trading) : दोनों देशों के आन्तरिक विनियम अनुपात (DERs) व्यापार की परिधि निर्धारित करता है।

व्यापार की अन्तर्राष्ट्रीय शर्तें (International Terms of Trade) : ये व्यापार की वे शर्तें है जिनका दोनों देशों के आन्तरिक विनिमय दरों (डी.आर.टी.) के मध्य निर्धारित होती है और जो दोनों देशों को लाभ प्रदान करती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तें (आई.टी. टी.) दोनों देशों के आन्तरिक व्यापार शर्तों (डी.टी.टी.) से अधिक होनी चाहिये।

मिल के प्रतिपूरक या पारस्परिक मांग का सिद्धान्त (Mills Theory of Reciprocal Demand): "प्रत्येक देश की सापेक्षिक श्रम कुशलता द्वारा स्थापित आन्तरिक विनिमय अनुपात अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वस्तु विनिमय शर्तों की सम्भावित सीमायें निर्धारित करती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों के वास्तविक अनुपात पारस्परिक मांग द्वारा निर्धारित होता है। आयात कीमतों को आयात मात्राओं से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल, कुल निर्यात मात्रा को उसकी कीमत से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल के बराबर होगा"।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

"अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" की पुस्तकें जिनके लेखक:

(1) सोडरस्टेन Sodersten

(2) किंडिलबरगर Kindleberger

(3) इंगो वाल्टर Ingo Walter

(4) एल्सवर्थ एवं लीथ Ellsworth and Leith

(5) सिडनी वेल्स Sidney Wells

(6) रे ओर कुंड Ray and Kundu

(7) ओ.एस. श्रीवास्तव (कल्याणी पब्लिसर्स 1/1 राजिन्द्र नगर, लुधियाना)

4.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) आन्तरिक विनिमय अनुपात वह कीमत क्यों नहीं हो सकती है जिस पर एक देश व्यापार करने के लिए सहमत हो तथा दूसरे देश के डी.ई.आर. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें भी क्यों नहीं हो सकती?

(2) यदि दोनों देशों के डी.टी.टीओं (DTTs) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तों की ऊपरी एवं निचली सीमाएँ निर्धारित करती हैं तो क्या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें भी इन दोनों सीमाओं के ठीक मध्य होगी?

(3) क्या यह कथन सही है "यदि बंगला देश भारत के अलावा किसी अन्य देश को पट्सन निर्यात नहीं कर सकता है तो उसे भारत से आयात किये जाने वाले कोयले की सापेक्षिक रूप से कम मात्रायें प्राप्त होगी"?

(4) "यदि बंगला देश में कोयले की मांग तीव्र है, तो उसे पटसन अधिक मात्रा में भारत को निर्यात करना पड़ेगा" क्या वह सही है?

(5) "यदि आयात की हुई वस्तु की कीमत बढ़ जाती है, तब निर्यात की गई वस्तुओं की कीमत में वृद्धि कर दी जायेगी"। क्या यह सही है? (केवल

यदि विदेश की मांग बेलोच है और निर्यात देश से निर्यात कर जाने वाली वस्तु की पूर्ति लोचदार है)।

(6) प्रतिपूरक या पारस्परिक मांग का सिद्धान्त यह निरूपित करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी वस्तु विनिमय ही है। व्याख्या कीजिए?

(7) "मिल के पारस्परिक मांग का सिद्धान्त मूल्य के सामान्य सिद्धान्त की ही प्रकृति का है" व्याख्या कीजिए?

(8) मिल के पारस्परिक मांग के समीकरण की व्याख्या करो और एक परिवर्ती बदल जाने पर उसके फलस्वरूप होने वाले समायोजन के विभिन्न प्रकारों का विस्तार पूर्वक व्याख्या करो?

(9) मिल के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पारस्परिक मांग सिद्धान्त में मांग एवं पूर्ति की लोच के योगदान की व्याख्या करो?

इकाई – 5

टॉजिग का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त
(Taussig's Theory of International Trade)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मान्यताएँ और तीन तरह की लागतें

5.3 लागतों में निरपेक्ष अन्तर

5.4 लागतों में समान अन्तर

5.5 तुलनात्मक लागतें

5.6 भिन्न-भिन्न देशों में मजदूरियां और कीमतें

5.7 मजदूरियां समरूप नहीं, गैर प्रतिस्पर्द्धी समूह

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

विशुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त यह व्यक्त करने का प्रयास करता है कि दो राष्ट्रों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है? उन सभी वस्तुओं का जिनका वे उपयोग करना चाहते है, उन सबका उत्पादन करने की अपेक्षा वे उनके व्यापार के लिये कष्ट क्यों उठाते है? जिस स्थिति में

कोई अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है और जिसमें सभी देश आत्म निर्भर होते है, उसे राष्ट्रीय आत्म निर्भरता की स्थिति कहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने के लिये यह स्पष्ट रूप से दर्शाया जाना चाहिये कि व्यक्तिगत देश आत्मनिर्भरता की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। यह व्यापार से लाभ के रूप में माना जाता है। विशुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त व्यापार से होने वाले लाभ के कारणों को समझाता है। सहायक रूप में यह व्यापार की दिशा और संरचना की निर्धारित करने वाले तत्वों की भी व्याख्या करता है। वास्तविकता से कुछ निष्कर्ष निकाले तो भारत को किन वस्तुओं में विशिष्टीकरण अपनाना चाहिये और किन-किन वस्तुओं का निर्यात करना चाहिये? किन वस्तुओं का भारत को आयात करना चाहिये? यह व्यापार की संरचना कहलाती है। भारत को निर्यात किन-किन देशों को करना चाहिए और आयात किन-किन देशों से करना चाहिये। यह व्यापार की दिशा कहलाती है। और अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किन-किन कीमतों पर सम्पन्न होता है? ये व्यापार की शर्तें कहलाती हैं। विशुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त उन सभी जटिल घटनाओं की विवेचना करने का प्रयास करता है और वास्तविक से कुछ निष्कर्ष लेने के बाद स्पष्ट रूप से व्यावहारिक विचारणीय विषयों पर ध्यान केन्द्रित करता है, जिसकी मांग है। विभिन्न राष्ट्रों के बीच आपसी लाभप्रद व्यापार होने के, आवश्यक रूप से अलग-अलग चार कारण या कारणों के समूह हैं। यह विभिन्न देशों के बीच उत्पादन लागत में भिन्नता संसाधन या साधनों की सम्पन्नता में भिन्नताओं मांग की परिस्थितियों में भिन्नताओं और आय वितरण में भिन्नताओं पर ध्यान केन्द्रित करता है। इनमें सिद्धान्तों के रूप में उत्पादन लागत में भिन्नता और साधनों की सम्पन्नता में भिन्नता अधिक विख्यात है। इनमें से पहला प्रतिष्ठित या रिकार्डो के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त के नाम से और बाद का हैक्सचर - ओहलिन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।

टॉजिग का विश्लेषण प्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण भाग है। यह रिकार्डो की व्याख्या व विश्लेषण का अनुसरण करता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

- प्रतिष्ठित सिद्धान्त के निष्कर्ष समझने के योग्य हो जाएगें,
- प्रतिष्ठित सिद्धान्त की मान्यताओं को समझ सकेंगे,
- विभिन्न प्रकार की लागतों के अन्तर को समझेंगे।
- विभिन्न लागतों के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली के विषय में सीख जाएगें।
- आप उन जटिलताओं को समझते है जो किसी व्यक्ति के मौद्रिक मजदूरियाँ और गैर प्रतिस्पर्द्धी समूह की स्थिति को अपनाने में उत्पन्न होती है।

5.1 प्रस्तावना

दुर्भाग्यवश किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त के प्रमाणिक पुस्तक में सामान्यतया टॉजिग को सम्मिलित नहीं किया गया है। फिर भी उसकी पुस्तक International Trade में अनेक विचार ऐसे हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों और कैसे होता है, के व्यवसाय के प्रारम्भिक बीजारोपण (अंकुरण) के रूप हैं। पुस्तक तीन खण्डों में लिखी गई है। प्रथम खण्ड में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विशुद्ध सिद्धान्त का विस्तार एवं व्याख्या उसी दिशा में है जो मौलिक रूप में रिकार्डो द्वारा और बाद में मिल तथा एजवर्थ द्वारा विकसित किया गया। टॉजिग का मुख्य योगदान उन विभिन्न सुधारों और विस्तारों की पहचान करने में है जिनकी तरफ अन्य संस्थापक लेखकों ने कोई ध्यान नहीं दिया। उनमें से अधिकांश परिणाम सरल संख्यात्मक उदाहरणों की सहायता से गैर-गणितीय रूप में विकसित किये गये हैं। किन्तु टॉजिग का भी उस कहावत में दृढ़ विश्वास था जिसमें सिद्धान्त के लिये सैद्धान्तिकरण करना निराधार होता है। उसका विश्वास था कि एक सिद्धान्त जाँच के अधीन अवश्य होना चाहिये

चाहे ऐसा कार्य सिद्ध करना कितना ही कठिन क्यों न हो। इस पुस्तक का दूसरा खण्ड उस सीमा तक जाँच पर ध्यान केन्द्रित करता था जहां तक प्रतिष्ठित सिद्धान्त द्वारा दर्शाये मार्ग के अनुसार वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता था। उसकी पुस्तक का तृतीय भाग उन जटिलताओं की जाँच करता था जो दो भिन्न मौद्रिक मान वाले देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने से उत्पन्न होती है।

इस इकाई में मुख्यता हम अपने आप को टॉजिग की पुस्तक के प्रथम भाग तक ही सीमित रखेंगे और वहां भी व्याख्या के दृष्टिकोण से। हम यहां पूंजी और बाज, घटते हुये या बढ़ते हुये प्रतिफल, मांग में परिवर्तन, दो देशों की तीसरे के साथ प्रतिस्पर्द्धा, गैर व्यापारिक माल के लेन-देन और आयात कर जैसे विचारणीय विषयों की चर्चा नही करेंगे। यदि आप इन विचारणीय विषयों में रुचि रखते हैं तो आपको सदैव टॉजिग की पुस्तक का उपयोग करना चाहिए।

5.2 मान्यताएँ और लागतों में तीन प्रकार के अन्तर

किसी भी सिद्धान्त के निर्माण के लिये कुछ मान्यताएँ ली जाती है जो सिद्धान्त के लिये यर्थाथ होती है, अन्य मान्यताएँ होती है जो सिद्धान्त के सरलीकरण के उद्धेश्य से बनाई जाती है। अनेक मान्यताएँ बनाई जा सकती है जो पूर्णतया अनधिकृत है और तथ्यात्मक दृष्टि से अनियंत्रित प्रतीत होती है। जहां तक सरलीकृत मान्यताएँ पायी जाती है तब सिद्धान्त खरा उतरता है। सापेक्ष रूप से अनावश्यक विवरणों के पूरे ढेर के दलदल में फंसे बिना ये सरलीकृत मान्यताएँ हमें मुख्य विचारणीय विषयों पर ध्यान केन्द्रित करने में सहायता करती है।

पहली सरलीकृत मान्यता जो बनाई जाती है, वह यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तु विनिमय के आधार पर होता है। उसमें कोई मौद्रिक लेनदेन नहीं होता और साधारणतया अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आशय वस्तुओं या सामग्री का वस्तुओं या सामग्री के साथ विनिमय से होता है। दूसरी सरलीकृत मान्यता जो बनाई जाती है, वह है कि वस्तु

सिर्फ श्रम के सहायता में ही उत्पादित की जाती है। श्रम ही एक मात्र उत्पादन साधन है जो किसी भी उत्पादित प्रक्रिया के लिये आवश्यक है। इसलिये यह मान लिया जाता है कि किसी वस्तु के एक इकाई की जो उत्पादन लागत होती है वही साधारणतया श्रम की लागत होती है जो उस वस्तु के उत्पादन में लगती है। और यह मानते हुये कि एक देश के विभिन्न भागों के बीच श्रम समरूप है और समान मजदूरी पायी जाती है तो इसका आशय यह भी है कि वहां वस्तुओं का विनिमय श्रम की उस मात्रा के अनुसार होगा जो उन वस्तुओं के उत्पादन के लिये आवश्यक है। सापेक्ष कीमतें अर्थात A वस्तु की कीमत B वस्तु की कीमत से विभाजित, किन्तु जो A वस्तु की एक इकाई के उत्पादन के लिये आवश्यक श्रम की मात्रा को B वस्तु की एक इकाई के उत्पादन के लिये आवश्यक श्रम की मात्रा से विभाजित करने के सिवाय कुछ नहीं है। B वस्तु की तुलना में A वस्तु की एक इकाई के उत्पादन में जितने अधिक श्रम की आवश्यकता होगी उतनी वह वस्तु B वस्तु से अधिक महंगी होगी। अन्तिम मान्यता यह है कि उत्पादन श्रम लागत प्रति इकाई स्थिर (Constant) रहती है, चाहे उस वस्तु का कितनी ही मात्रा में उत्पादन क्यों न किया जाय। अन्य शब्दों में एक वस्तु की एक इकाई के उत्पादन के लिये जिस भौतिक श्रम की मात्रा की आवश्यकता होती है, वह अपरिवर्तित रहती है चाहे वस्तु का कितना ही उत्पादन क्यों न हो, उत्पादन के पैमाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह थोड़ी अव्यवहारिक मान्यताएँ है। और यह भी प्रतिष्ठित सिद्धान्तों के कई निष्कर्षों के छान-बीन के लिये आवश्यक है।

लागतों को मौद्रिक लागतों या श्रम लागतों के रूप में व्यक्त करना सम्भव है। चूंकि श्रम ही एक मात्र उत्पादन का आवश्यक साधन है इस लिये लागतों को वस्तु की एक इकाई उत्पादन के लिये आवश्यक श्रम-दिवसों के रूप में भी व्यक्त करना न्याय संगत है। जितनी अधिक श्रम-दिवसों की संख्या होगी उतनी ही अधिक मौद्रिक लागत या श्रम लागत होगी और उसके विपरीत श्रम-दिवसों के कम होने पर उनमें कमी होगी।

हम टॉजिग के अनुसार लागतों को श्रम-दिवसों की अवधारणा के रूप में व्यक्त करेंगे। हम यहां उसके दो देशों - संयुक्त राज्य अमेरिका व जर्मनी और दो वस्तुएं तॉम्बा और वस्त्र तथा उसके संख्यात्मक उदाहरणों तक ही सीमित रहेंगे।

लागतों की निम्न तीन परिस्थितियों पर विचार कीजिए :-

प्रथम स्थिति : - लागतों में निरपेक्ष अन्तर

संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 30 किग्रा. तॉम्बा और 15 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है। जर्मनी में 10 दिन के श्रम से 15 किग्रा0 तॉम्बा और 30 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है।

ध्यान रखिये कि जिस क्षण हम इस प्रकार के उदाहरणों का तुलना करने के लिये उपयोग कर रहे हैं, हम निसंदेह यह मान रहे हैं कि श्रम सिर्फ उसी देश के भीतरी भागों के बीच ही समरूप नहीं है परन्तु वह विभिन्न देशों के बीच भी समरूप है। उपर्युक्त उदाहरण में संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रम ताँबा उत्पादन करने में जर्मनी के श्रम की अपेक्षा दुगुना उत्पादक है। संयुक्त राज्य अमेरिका को ताँबा उत्पादन करने में जर्मनी की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ प्राप्त है। ठीक उसी प्रकार जर्मनी को वस्त्र उत्पादन करने में संयुक्त राज्य अमेरिका की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ प्राप्त है। एक दो देशों के उदाहरण में जब प्रत्येक देश को एक वस्तु के उत्पादन में दूसरे देश की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ प्राप्त है तब यह स्थिति लागतों में निरपेक्ष अन्तर की द्योतक होती है।

द्वितीय स्थिति : - लागतों मे समान अन्तर

संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 30 किग्रा. ताँबा और 15 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है, जर्मनी में 10 दिन के श्रम से 20 किग्रा. ताँबा और 10 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की जर्मनी की अपेक्षा न केवल ताँबा उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है परन्तु वस्त्र के उत्पादन में भी है। इसके

अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रम जर्मनी के श्रम की तुलना में ताँबा व लिनेन के उत्पादन में डेढ़ गुणा उत्पादक है। जब एक देश को दूसरे देश की अपेक्षा दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त होता है और दोनों वस्तुओं के लिए इस निरपेक्ष लाभ की सीमा वही है तब यह स्थिति लागतों में समान अन्तर की द्योतक होती है।

तृतीय स्थिति :- लागतों में तुलनात्मक (सापेक्ष) अन्तर

संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 30 किग्रा. ताँबा और 15 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है। जर्मनी में 10 दिन के श्रम से 15 किग्रा. ताँबा और 10 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका को जर्मनी की अपेक्षा ताँबा और वस्त्र दोनों वस्तुओं के उत्पादन में क्रमिक रूप से निरपेक्ष लाभ प्राप्त हैं। परन्तु दोनों वस्तुओं के लिए लाभ की यह सीमा भिन्न-भिन्न हैं। ताँबा उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका का श्रम जर्मनी के श्रम की अपेक्षा दुगुणा उत्पादक है किन्तु उसका श्रम वस्त्र उत्पादन में जर्मनी की अपेक्षा डेढ़ गुना उत्पादक है और ताँबे के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका का लाभ अधिक है और उसको ताँबे के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त हैं। इस प्रकार की स्थिति लागतों में तुलनात्मक अन्तर की स्थिति कहलाती है।

बोध प्रश्न 1 :-

अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों में अवश्य कीजिये।

1. प्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त में किन-किन प्रमुख मान्यताओं को अपनाया गया है?
2. लागतों में निरपेक्ष अन्तर, लागतों में तुलनात्मक अन्तर और लागतों में समान अन्तर से आपका क्या अभिप्राय है?
3. उस स्थिति पर विचार कीजिये जहां जब संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से ताँबे का 30 किग्रा. और वस्त्र का 15 मीटर उत्पादन होता

है वहां जर्मनी में 10 दिन के श्रम से ताँबे का 15 किग्रा. और लिनेन (वस्त्र) का 30 मी. उत्पादन होता है। आप लागतों में ऐसे अन्तर को क्या कहेंगे?

5.3 लागतों मे निरपेक्ष अन्तर

हम उपर्युक्त उदाहरण पर पुन : विचार करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 30 किग्रा. ताँबा और 15 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है और जर्मनी में 10 दिन के दिन के श्रम से 15 किग्रा. ताँबा और 30 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है।

मान लीजिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अनुपस्थिति में हम राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की स्थिति में कार्यरत हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में सापेक्ष शर्तों में दोनों वस्तुओं के घरेलू मूल्यानुपात क्या होगा? और जर्मनी में क्या होगा? उपर्युक्त दिये हुए अंकों के आधार पर स्पष्ट रूप से यह संयुक्त राज्य अमेरिका में 30 किग्रा. ताँबा 15 मीटर वस्त्र के बराबर होगा। या 2 किग्रा. ताँबा 1 मीटर वस्त्र के बराबर होगा। और जर्मनी में 15 किग्रा. ताँबा, 30 मीटर वस्त्र के बराबर होगा। या 1 किग्रा. ताँबा, 2 मीटर वस्त्र के बराबर होगा।

अब कल्पना कीजिये कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आरम्भ होता है। जर्मनी में 15 मीटर वस्त्र का मूल्य 71/2 किग्रा. ताँबे के मूल्य के समान है। इस दी हुई परिस्थिति में जर्मनी 15 मीटर वस्त्र का संयुक्त राज्य अमेरिका को निर्यात करता है और बदले में 71/2, किग्रा. ताँबे से अधिक ताँबा प्राप्त करता है इससे जर्मनी को लाभ होगा। और इसके विपरीत यदि संयुक्त राज्य अमेरिका 30 किग्रा. ताँबे से अधिक ताँबा प्राप्त करता है इससे जर्मनी को लाभ होगा। और इसके विपरीत यदि संयुक्त राज्य अमेरिका 30 किग्रा. ताँबे से कुछ कम के बदले में जर्मनी से 15 मीटर वस्त्र प्राप्त कर सकता है तो इससे संयुक्त राज्य अमेरिका भी लाभ प्राप्त करने वाला होगा। सरलता की दृष्टि से हम परिवहन लागत भी छोड़ देते हैं। वह सीमा जिसमें पारस्परिक लाभप्रद व्यापार हो सकता है वह वास्तव में 15 मीटर वस्त्र के बदले में 71/2

किग्रा. से 30 किग्रा. ताँबे के बीच में हो सकती है। जर्मनी पूर्णतया वस्त्र के उत्पादन में विशिष्टीकरण अपनायेगा। किसी प्रकार वह ताँबे की किसी भी मात्रा का उत्पादन कर पागलपन करेगा। ताँबे का प्रत्येक किग्रा. जिसको वह देश में ही उत्पादन कर सकता है, उसे 2 मीटर वस्त्र के घरेलू उत्पादन के रूप में त्यागना होगा। किन्तु वह इन 2 मीटर वस्त्र के बदले में संयुक्त राज्य अमेरिका में 4 किग्रा. ताँबे तक कोई भी मात्रा प्राप्त कर सकता है। वास्तव में जर्मनी में ताँबे का कोई भी उत्पादन नहीं होगा, जर्मनी अपनी ताँबे की मांग की पूर्ति के लिये वस्त्र का निर्यात करेगा। और ठीक उसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका ताँबे के उत्पादन में पूर्णतया विशिष्टीकरण करेगा। वहां किस प्रकार से वस्त्र का उत्पादन नहीं होगा। संयुक्त राज्य अमेरिका अपनी वस्त्र की मांग की पूर्ति के लिये ताँबे का निर्यात करेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ होता है। किन्तु किस देश को लाभ अधिक होगा। यह निर्धारित करना असम्भव है जब तक कि हमें व्यापार की शर्तों की कुछ जानकारी नहीं होती है। उदाहरणार्थ मान लिजिये अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में व्यापार की शर्तें ऐसी है कि 15 मीटर वस्त्र के बदले में 8 किग्रा. ताँबे का विनिमय होता है। स्वत: ही यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिक अनुकूल है। इसके विपरीत, मान लीजिये कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में 15 मीटर वस्त्र के बदले में 29 किग्रा. ताँबे का आदान-प्रदान होता है। पुन: यह स्वत: स्पष्ट होता है कि यह जर्मनी के लिये अधिक अनुकूल है। इस प्रकार यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों देश लाभान्वित होते हैं; परन्तु लाभ की मात्रा असमान रूप से वितरित हो सकती है।

मान लीजिये कि अब इस तथ्य की थोड़े ध्यान से जाँच करते हैं। मान लिजिए कि अमेरिका में मौद्रिक मजदूरियाँ 1.50 डालर प्रतिदिन और जर्मनी में 1.00 डालर प्रतिदिन है। श्रम के 10 मानव-दिवस की लागत संयुक्त राज्य अमेरिका में 15 डालर और जर्मनी में 10 डालर होती है। इसलिए संयुक्त राज्य अमेरिका में 30 किग्रा. ताँबा और 15 मीटर वस्त्र की

लागत 15 डालर होती है। ताँबे के प्रत्येक किग्रा. की पूर्ति संयुक्त राज्य अमेरिका में 0.50 डालर से होगी और वस्त्र के प्रत्येक मीटर की 1.00 डालर पूर्ति से होगी। ठीक उसी प्रकार जर्मनी में 15 किग्रा. ताँबा और 30 मीटर वस्त्र की लागत 10 डालर होगी। और जर्मनी में ताँबे की पूर्ति 0.67 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र की पूर्ति 0.33 डालर प्रति मीटर से होगी। संयुक्त राज्य अमेरिका में ताँबे की लागत कम आती है इसलिये जर्मनी के ताँबे उत्पादकों, अमेरिका के ताँबा उत्पादकों द्वारा कम बेचने दिया जायेगा। ताँबा का सिर्फ अमेरिका में ही उत्पादन होगा। जर्मनी में वस्त्र की लागत कम आती है इसलिये अमेरिका के वस्त्र उत्पादकों को जर्मनी के वस्त्र उत्पादकों द्वारा कम बेचने दिया जायेगा। वस्त्र का सिर्फ जर्मनी में ही उत्पादन होगा।

वस्तुएं उपर्युक्त दिशा में लगातार प्रवाहित होती रहेगी यदि मौद्रिक मजदूरियाँ संयुक्त राज्य अमेरिका में 1 डालर प्रतिदिन और जर्मनी में 1.50 डालर प्रतिदिन होती तो संयुक्त राज्य अमेरिका में 1 किग्रा. ताँबे की पूर्ति 0.33 डालर में 1 मीटर वस्त्र की पूर्ति 0.67 डालर में की जाती है। जर्मनी में 1 किग्रा. ताँबे की पूर्ति 1.00 डालर में और 1 मीटर वस्त्र की पूर्ति 0.50 डालर में की जाती है।

किस देश को विनिमय से अधिक लाभ होता है? उत्पादन के पश्चात् चूँकि संयुक्त राज्य अमेरिका ताँबे का उत्पादन करता है इसलिये संयुक्त राज्य अमेरिका में ताँबे की वर्तमान कीमत ही ताँबे की पूर्ति कीमत होगी। अर्थात 0.50 डालर 1.50 डालर प्रति किग्रा., यदि संयुक्त राज्य अमेरिका में मजदूरी की दरें 1.50 डालर प्रतिदिन है और 0.33 डालर प्रति किग्रा., यदि मजदूरी की दरें 1.00 डालर प्रतिदिन है। और जर्मनी में वस्त्र की वर्तमान कीमत वस्त्र की पूर्ति कीमत होगी। अर्थात् 0. 33 डालर प्रति मीटर यदि जर्मनी में मजदूरी की दरें 1.00 डालर प्रतिदिन है, और 0.50 डालर प्रति मीटर यदि मजदूरी की दरें 1.50 डालर प्रतिदिन हैं। मान लीजिये कि

संयुक्त राज्य अमेरिका में मजदूरी की दर 1.50 डालर प्रतिदिन और जर्मनी में 1.00 डालर प्रतिदिन हैं। क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका में सिर्फ ताँबे का ही उत्पादन होता है और जर्मनी में सिर्फ लिनेन का ही उत्पादन होता है, इसलिये वस्तु विनिमय व्यापार की शर्त 30 किग्रा. ताँबा से 45 मीटर वस्त्र तक अवश्य होनी चाहिए क्योंकि वर्तमान कीमतें 0.50 डालर प्रति किग्रा. ताँबा और 0.33 डालर प्रति मीटर वस्त्र है। ठीक इसी प्रकार यदि संयुक्त राज्य अमेरिका में मजदूरी की दरें 1.00 डालर प्रतिदिन और जर्मनी में 1.50 डालर प्रतिदिन है तो वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें 30 किग्रा. ताँबा से 20 मीटर वस्त्र तक होगी। और यदि दोनों देशों में मजदूरी की दरें 1.50 डालर प्रतिदिन है तो वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें 30 किग्रा. ताँबा से 30 मीटर वस्त्र तक होंगी। इस प्रकार वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तों में मापा गया लाभ ऊँची मौद्रिक मजदूरियां वाले देश के लिये अधिक होगा।

बोध प्रश्न 2 :-

1. मान लीजिये परिवहन लागतें लगती है ताँबे के प्रत्येक किग्रा. के थोक को संयुक्त राज्य अमेरिका से जर्मनी और वस्त्र के प्रत्येक मीटर के थोक को जर्मनी से संयुक्त राज्य अमेरिका ले जाने में व्यय होता है। किन सीमाओं के भीतर पारस्परिक लाभप्रद विनिमय हो सकता है?
2. मान लीजिये संयुक्त राज्य अमेरिका में मौद्रिक मजदूरी 2 डालर प्रतिदिन है और जर्मनी में 1 डालर प्रतिदिन है। आपके विचार से क्या होगा?

5.4 लागतों में समान अन्तर

उदाहरण जो दिया गया था वह निम्न प्रकार है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 30 किग्रा. ताँबा और 15 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है; जर्मनी में 10 दिन के श्रम से 20 किग्रा. ताँबा और 10 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है।

दोनों संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अनुपस्थिति में 2 किग्रा. ताँबे के बदले में 1 मीटर वस्त्र का विनिमय होगा। दोनों मैं से कोई भी देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ के लिये पहल नहीं कर सकता है। कल्पना कीजिए कि मौद्रिक मजदूरियाँ अमेरिका में 2 डालर प्रतिदिन और जर्मनी मे 1.33 डालर प्रतिदिन है। तब दोनों संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी में ताँबे की पूर्ति 0.67 डालर प्रति किग्रा. से की जायेगी। और दोनों संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी में वस्त्र की पूर्ति 1.33 डालर प्रति मीटर से की जायेगी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये कोई प्रेरणाएं नहीं होंगी।

बोध प्रश्न 3 :-

1. मान लीजिये कि मौद्रिक मजदूरियाँ संयुक्त राज्य अमेरिका में 2 डालर प्रतिदिन और जर्मनी में 1.00 डालर प्रतिदिन है। आपके विचार से क्या होगा?

5.5 तुलनात्मक लागतें

हम निम्न लागतों को तुलनात्मक अन्तर के उदाहरण के रूप में लेते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 20 किग्रा. गेहूं और 20 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है। जर्मनी में 10 दिन के श्रम से 10 किलोग्राम गेहूं और 15 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका को गेहूं और वस्त्र दोनों के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है परन्तु गेहूं के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ अधिक है।

यह स्पष्ट है कि व्यापार की अनुपस्थिति में, जर्मनी में 1 इकाई गेहूं के बदले में 1 1/2 इकाई वस्त्र का विनिमय होगा। अत: कोई भी दर जो इन सीमाओं के भीतर पायी जाती है, दोनों देश व्यापार से लाभ उठायेंगे। संयुक्त राज्य अमेरिका गेहूं के उत्पादन में विशिष्टीकरण अपनायेगा। और जर्मनी वस्त्र के उत्पादन में विशिष्टीकरण अपनायेगा। मान लीजिये कि मौद्रिक मजदूरियाँ संयुक्त राज्य अमेरिका में 1.50 डालर प्रतिदिन और

जर्मनी में 1.00 डालर प्रतिदिन है। तब संयुक्त राज्य अमेरिका में गेहूं की पूर्ति 0.75 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र की पूर्ति 0.75 डालर प्रति मीटर से होगी। और जर्मनी में गेहूं की पूर्ति 1.00 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र की पूर्ति 0.67 डालर प्रति मीटर से की जावेगी। इस प्रकार इस तथ्य को ध्यान न रखते हुये कि संयुक्त राज्य अमेरिका को दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है, गेहूं का निर्यात संयुक्त राज्य अमेरिका से जर्मनी को और वस्त्र का निर्यात जर्मनी से संयुक्त राज्य अमेरिका को होगा। संयुक्त राज्य अमेरिका के निरपेक्ष लाभ के होते हुए भी जर्मनी संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में वस्त्र का उत्पादन नीची कीमत पर कर सकता है, क्योंकि जर्मनी में मजदूरी की दर नीची है। गेहूं के लिय 0.75 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र के लिये 0.67 डालर प्रति मीटर की वर्तमान कीमतों के दी हुई होने पर वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें 8 किग्रा. गेहूं 9 मीटर वस्त्र तक अवश्य होनी चाहिए। उदाहरण के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका से 800 किग्रा. गेहूं का विनिमय जर्मनी से 900 मीटर वस्त्र के बदले हो सकता है।

बोध प्रश्न 4 :-

1. कल्पना कीजिए की वस्तु विनिमय व्यापार की शर्त 8 किग्रा. गेहूं से 9 मीटर वस्त्र तक है। किन्तु यह मानिये कि 0.75 डालर प्रति किग्रा. गेहूं की वर्तमान दर पर, जर्मनी को 800 किग्रा. गेहूं से अधिक गेहूं की आवश्यकता है। आपके विचार से क्या होगा?

5.6 भिन्न-भिन्न देशों में मजदूरियां और कीमतें

उपर्युक्त तर्क-वितर्कों की प्रमाणिक श्रृंखला नीचे दी गई है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणामस्वरूप वस्तुएं एक देश से दूसरे देश की ओर प्रवाहित होती है। इससे दोनों देशों में वस्तुओं की कीमतें समान होती है। किसी भी तरह दोनों देशों में मौद्रिक मजदूरियां समान नही होगी। वे दोनों देशों में प्रचलित उत्पादकता स्तरों के आधार पर परिवर्तित होती रहे । वे मांग की परिस्थितियों से भी प्रवाहित होंगी । किन्तु यदि व्यापार

के लिए सभी वस्तुएं उपलब्ध न हो तो क्या होगा? क्या होगा जब अन्तर्राष्ट्रीय वस्तुओं और घरेलू वस्तुओं के साथ-2 घरेलू वस्तुएं व्यापार के लिये किसी भी तरह उपलब्ध नहीं है? यह विश्लेषण कैसे बदलेगा?

निम्न उदाहरण पर विचार कीजिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 20 मीटर वस्त्र 20 किग्रा. गेहूं और 2000 ईटों का उत्पादन होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में मौद्रिक मजदूरी की दर 1.50 डालर प्रतिदिन है। तब संयुक्त राज्य अमेरिका में वस्त्र की पूर्ति 0.75 डालर प्रति मीटर, गेहूं की पूर्ति 0.75 डालर प्रति किग्रा. और ईंटों की पूर्ति 0.75 डालर प्रति 100 की दर से की जावेगी। जर्मनी में 10 दिन के श्रम से 15 मीटर वस्त्र, 10 किग्रा. गेहूं और 1000 ईंटों का उत्पादन होता है। जर्मनी में मौद्रिक मजदूरी की दर 1.00 डालर प्रतिदिन है। तब जर्मनी में वस्त्र की पूर्ति 0.67 डालर प्रति मीटर, गेहूं की पूर्ति 1 डालर प्रति किग्रा. और ईटों की पूर्ति 1.00 डालर प्रति 100 की दर से की जावेगी। अब कल्पना कीजिए कि गेहूं और वस्त्र दोनों अन्तर्राष्ट्रीय वस्तुएं हैं। किन्तु ईटें घरेलू वस्तु है। कुछ भी क्यों न हो वे एक देश से दूसरे देश के लिए जहाजों में लादी नहीं जा सकती है।

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में मौद्रिक मजदूरी की दर ऊँची है किन्तु वहां ईटों की कीमत नीची है। इसमें कोई असत्य नहीं है। मान लीजिए कि संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 1500 ईंटों का उत्पादन होता है। तब जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका में ईंटे उसी कीमत से बेची जायेंगी। इसके विपरीत मान लीजिए कि संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 1000 ईटों का उत्पादन होता है। तब जर्मनी की तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका में ईंटें 1.50 डालर प्रति 100 की दर से ऊँची कीमत पर बेची जायेगी।

महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुकूल व्यापार की शर्तों वाले देश में मौद्रिक मजदूरियाँ ऊँची होती है और ऐसा देश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त करता है। मौद्रिक मजदूरियां की सीमा उत्पादकता के

स्तरों से निर्धारित होती है। और वास्तविक मौद्रिक मजदूरियां के स्तर मांग की परिस्थितियों से निर्धारित होते हैं। किन्तु अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणामस्वरूप विभिन्न देशों के बीच मौद्रिक मजदूरियाँ समान करने का कोई कारण निरपेक्ष रूप से नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय वस्तुओं की कीमतें समान हो जायेगी। किन्तु घरेलु कीमतों के समान होने का कोई कारण नही है। या ऊँची मौद्रिक मजदूरियां वाले देश में कीमतें आवश्यक रूप से ऊँची होगी। ऐसा, वास्तव में हो सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की परिवर्तित परिस्थितियों के परिणामस्वरूप एक देश में मौद्रिक मजदूरियाँ बढ़ती है। उत्पादन की अपरिवर्तित तकनीकी परिस्थितियों की कल्पना करने पर भी घरेलू कीमतें भी तब उस देश में बढ़ने लगेगी। किन्तु ठीक ऐसा ही होता जब संयुक्त राज्य अमेरिका में जर्मनी की तुलना में मौद्रिक मजदूरियाँ ऊँची है। तो यह आवश्यक रूप नहीं माना जाता है कि घरेलू कीमतें जर्मनी की अपेक्षा संयुक्त राज्य अमेरिका में ऊँची होती है।

5.7 मजदूरियाँ समरूप नही है, गैर प्रतिस्पर्द्धी समूह

एक देश के भीतर मौद्रिक मजदूरियाँ समस्या है, यदि हम ऐसा नहीं मान सकते हैं तो यह विश्लेषण अत्यन्त ही जटिल हो जायेगा। जिस प्रकार विभिन्न देशों के बीच भिन्नता पायी जाती है ठीक वैसे ही उन देशों के भीतर भी भिन्नता देखने को मिल सकती है।

श्रमिक जो जर्मनी में गेहूं का उत्पादन करते है उन्हें उन श्रमिकों से कम भुगतान किया जा सकता है जो वस्त्र का उत्पादन करते हैं। देश के विभिन्न भागों के बीच समान मजदूरी दरों के लिये यह आवश्यक है कि विभिन्न भागों के बीच श्रम की पूर्ण गतिशीलता हो। और ऐसा सम्भव होना सदैव आवश्यक नहीं है। अनेक व्यवसायों में श्रमिक समूहों में होते हैं जो पूर्णतया एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा नहीं करते हैं। एक समूह से दूसरे समूह में स्थानान्तरणों पर आग्रह-युक्त प्रतिबन्ध होते हैं और इसलिये मजदूरियां में आग्रह-युक्त अन्तर पाये जाते हैं।

खण्ड 5.6 में दिये गये उदाहरण पर विचार कीजिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में गेहूं की पूर्ति 0.75 डालर प्रति किग्रा. की दर से और वस्त्र की 0.75 डालर प्रति मीटर की दर से की जाती है। और जर्मनी में, गेहूं की पूर्ति 1.00 डालर प्रति किग्रा. की दर से और वस्त्र की 0.67 डालर प्रति मीटर की दर से की जाती है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका में 1.50 डालर प्रतिदिन और जर्मनी में 1.00 डालर प्रतिदिन, समरूप मौद्रिक मजदूरी की दर की मान्यता पर आधारित था। किन्तु मान लीजिए कि जर्मनी में गैर प्रतिस्पर्द्धी समूह है जिससे वहां के गेहूं उत्पादक श्रमिक प्रतिदिन सिर्फ 0.67 डालर भुगतान प्राप्त करते हैं। तब जर्मनी में गेहूं की पूर्ति 0.67 डालर प्रतिकिग्रा. की दर से होती है। इसका आशय यह है कि गेहूं और वस्त्र दोनों जर्मनी से अमेरिका की ओर गतिशील होंगे । भुगतान के रूप में स्वर्ण संयुक्त राज्य अमेरिका से जर्मनी की और प्रवाहित होगा और इससे जर्मनी की कीमतों में वृद्धि होगी और संयुक्त राज्य अमेरिका में कमी होगी। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक कि दोनों देशों में मौद्रिक मजदूरियां का पुनर्समायोजन नहीं होता। बात यह है कि जर्मनी के गेहूं श्रमिकों की नीची मजदूरी लागतों का वही प्रभाव है जो गेहूं क्षेत्र में बढ़ी हुई उत्पादकता का। इसके विपरीत यदि संयुक्त राज्य अमेरिका में वस्त्र क्षेत्र के 1.50 डालर प्रतिदिन भुगतान की तुलना में गेहूं के श्रमिकों को 1.00 डालर प्रतिदिन भुगतान किया जाता है तो संयुक्त राज्य अमेरिका में गेहूं की पूर्ति कीमत 0.50 डालर प्रति किग्रा होगी। अब अमेरिका के गेहूं निर्यात और जर्मनी के वस्त्र निर्यात के साथ एक बार फिर से दोनों और वस्तुएं प्रवाहित होंगी।

किसी समय कोई व्यक्ति गैर-प्रतिस्पर्द्धी समूह को स्वीकार करे तो वह विवरण को और भी जटिल बना देता है। एक दी हुई वस्तु न केवल एक ही समूह के श्रमिकों द्वारा उत्पादित की जाती है परन्तु वह विभिन्न समूहों से सम्बन्धित श्रमिकों के एक संयोग द्वारा भी। कोई व्यक्ति यह दर्शाने के लिये उदाहरण बना सकता है कि यदि दो देशों में अनेक प्रकार के श्रमिकों

के संयोग एक जैसे ही हैं तथा जिन्हें भिन्न-भिन्न दरों से भुगतान किये जाते हैं, उनमें व्यापार ठीक उसी प्रकार का होगा जैसे कि वहां गैर-प्रतिस्पर्द्धी समूह नहीं होते। यह स्वयं उद्योगपतियों की प्रबन्ध में भिन्नता है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करती है।

बोध प्रश्न 5 :-

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में 10 दिन के श्रम से 80 किग्रा. गेहूं और 20 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है। और जर्मनी में 10 दिन के श्रम से 15 किग्रा गेहूं और 10 मीटर वस्त्र का उत्पादन होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में मौद्रिक मजदूरियाँ 2.00 डालर प्रतिदिन और जर्मनी में 1.00 डालर प्रतिदिन है। बताइये कि लागतों में समान अन्तर है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए कोई प्रेरणाएं नहीं हैं। अब कल्पना कीजिए कि वहां गैर-प्रतिस्पर्द्धी समूह हैं जिससे जर्मनी वस्त्र श्रमिकों को 0.75 डालर प्रतिदिन मजदूरी चुकायी जाती है। वहां अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किस रूप में होगा? स्पष्ट कीजिए।

5.8 सारांश

विशुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करने का प्रयास करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है? और इसकी प्रकृति कैसी है? सिद्धान्तों का एक समूह प्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त का है जो उत्पादन लागतों की भिन्नता पर ध्यान केन्द्रित करता है । प्रतिष्ठित सिद्धान्तों में टॉजिग का सिद्धान्त एक परम्परागत सिद्धान्त है।

प्रमाणिक मान्यताएँ है :- राष्ट्रों के बीच वस्तुओं की गतिशीलता पायी जाती है परन्तु श्रम की नहीं । न तो परिवहन लागते हैं और न ही व्यापार के लिये कोई प्रतिबन्ध है। श्रम ही उत्पादन का एक मात्र साधन है और श्रम लागतें पायी जाती हैं।

लागतों में निरपेक्ष अन्तर, लागतों में समान अन्तर या लागतों में तुलनात्मक अन्तर हो सकता है । यदि लागतों में निरपेक्ष अन्तर या लागतों में तुलनात्मक अन्तर है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है परन्तु लागतों में समान अन्तर होने पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है।

लागतों की परिस्थितियाँ उस सीमा को निर्धारित करती है जिसमें दो देशों की मौद्रिक मजदूरियाँ अवश्य पायी जाती है। इस सीमा के भीतर मौद्रिक मजदूरियां मांग' परिस्थितियों से निर्धारित होती है। इन दोनों देशों में से किसी भी देश में यदि मौद्रिक मजदूरियाँ इस सीमा से बाहर पायी जाती है तो उनका पुनर्समायोजन अवश्य होना चाहिए। ऊँची मौद्रिक मजदूरियां वाला देश श्रेष्ठ व्यापार की शर्तें प्राप्त करता है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणामस्वरूप दो देशों के बीच मौद्रिक मजदूरियाँ समान नहीं होती है।

गैर-प्रतिस्पर्द्धी समूहों का प्रभाव उत्पादन लागतों को प्रभावी बनाने में योग देता है।

5.9 शब्दावली

निरपेक्ष लाभ वह स्थिति है जिसमें एक देश एक वस्तु के उत्पादन में दूसरे देश की तुलना में श्रेष्ठ होता है।

लागतों मे निरपेक्ष अन्तर का अभिप्राय उस निरपेक्ष लाभ से है प्रत्येक देश को एक वस्तु के उत्पादन में दूसरे की अपेक्षा अधिक प्राप्त होता है।

विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यापार का न होना राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की स्थिति होती है।

वस्तु विनिमय का आशय बिना मौद्रिक लेन-देन के वस्तुओं का आदान-प्रदान करने से होता है।

प्रतिष्ठित या रिकार्डो का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को उत्पादन लागत की भिन्नता के रूप में व्यक्त करता है। तुलनात्मक लाभ, लागतों में तुलनात्मक अन्तर की स्थिति है।

लागतों में तुलनात्मक अन्तर का आशय एक देश को दोनों वस्तुओं के उत्पादन में दूसरे देश की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ का प्राप्त होना है, किन्तु इस लाभ की सीमा परिवर्तित होती रहती है।

पूर्ण विशिष्टीकरण वह स्थिति है जिसमें प्रत्येक देश केवल एक ही वस्तु का उत्पादन करता है।

व्यापार संरचना से अभिप्राय उन भौतिक वस्तुओं की प्रकृति से है जिनका निर्यात और आयात किया जाता है।

सम लागतें वह स्थिति है जिसमें प्रति इकाई उत्पादन लागत उत्पन्न की जाने वाली मात्रा पर निर्भर नहीं करती है।

व्यापार की दिशा का आशय उन देशों से है जिनके साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है।

लागतों में समान अन्तर वह स्थिति है जिसमें एक देश को दूसरे देश की तुलना में दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त होता है, किन्तु दोनों वस्तुओं के लिये इस लाभ की सीमा नहीं रहती है।

राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की तुलना में व्यापार से लाभ का आशय वस्तुओं के आदान-प्रदान से लाभ प्राप्त करना होता है।

हैक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को साधनों की सुलभता के अन्तर के रूप में व्यक्त करता है।

मुद्रा का परिमाण-सिद्धान्त दर्शाता है कि कीमत-स्तर चलन मुद्रा की मात्रा के समानुपात में होता है।

व्यापार की शर्तें उस सापेक्षिक कीमत अनुपात को व्यक्त करती है जिस पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है।

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिकांश पुस्तकों में टॉजिग की चर्चा नहीं की गई है। वास्तव में इसकी केवल एक पुस्तक है और वह :-

एफ.डब्ल्यू.टॉजिग - अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, मेकमिलन, 1927, पुन:मुद्रित 1966, विशेषतया अध्याय -1 से 6 तक।

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1 :

1. न तो परिवहन लागतें लगती है और न ही व्यापार में प्रतिबन्ध है। श्रम ही एक मात्र उत्पादन का साधन है और सम लागतें पाई जाती हैं। श्रम एक देश से दूसरे देश में गतिशील नहीं हो सकता परन्तु वस्तुएँ हो सकती हैं। देश के भीतर श्रम समरूप है और एक भाग से दूसरे भाग में आ-जा सकता है।
2. लागतों में निरपेक्ष अन्तर का आशय उससे है जिसमें प्रत्येक देश को दूसरे देश की अपेक्षा एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त होता है। लागतों मे समान अन्तर का आशय उस स्थिति से है जिसमें एक देश को दूसरे देश की अपेक्षा दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त होता है और दोनों वस्तुओं के लिये इस लाभ की सीमा वही रहती है। लागतों में तुलनात्मक अन्तर का आशय उससे है जिसमें एक देश की दूसरे देश की तुलना में दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त होता है और दोनों वस्तुओं के इस लाभ की सीमा भिन्न-भिन्न होती है।
3. लागतों में तुलनात्मक अन्तर

बोध प्रश्न 2 :

1. 15 मीटर वस्त्र की दर 81/2 किलोग्राम से 29 किग्रा. ताँबे के बीच में है।
2. संयुक्त राज्य अमेरिका में ताँबे की पूर्ति कीमत 0.67 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र की पूर्ति कीमत 1.33 डालर प्रति किग्रा. है। जर्मनी में ताँबे की पूर्ति कीमत 0.67 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र की पूर्ति कीमत 0.33 डालर प्रति मीटर है। वस्त्र का जर्मनी से संयुक्त राज्य अमेरिका को

निर्यात होगा, किन्तु ताँबे का संयुक्त राज्य अमेरिका से जर्मनी को निर्यात नहीं होगा। इसका आशय यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका को वस्त्र का भुगतान जर्मनी को स्वर्ण भेजते हुऐ करना होगा। इससे जर्मनी में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होगी और संयुक्त राज्य अमेरिका में कमी होगी। मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के अनुसार जर्मनी में कीमतों में वृद्धि होगी और संयुक्त राज्य अमेरिका में उनमें कमी होगी। जर्मनी में मौद्धिक मजदूरियां मे भी वृद्धि होगी और संयुक्त राज्य अमेरिका में उनमें कमी होगी। यह पुनर्समायोजन तब तक जारी रहेगा जब तक कि मौद्रिक मजदूरियाँ उस सीमा में है जिसमें वस्तुएँ एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर प्रवाहित होगी।

बोध प्रश्न 3 :

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में ताँबे का पूर्ति मूल्य 0.67 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र का पूर्ति मूल्य 1.33 डालर प्रति मीटर है। जर्मनी में ताँबे का पूर्ति मूल्य 0.50 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र का पूर्ति मूल्य 1.00 डालर प्रति मीटर है। ताँबा और वस्त्र दोनों वस्तुएँ जर्मनी से संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर तथा स्वर्ण संयुक्त राज्य अमेरिका से जर्मनी की ओर प्रवाहित होगा। मौद्रिक मजदूरियाँ और कीमतें पुन: समायोजित होगी जिससे वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अनुरूप हो जाये।

बोध प्रश्न 4 :

1. अगर जर्मनी के निवासी 0.75 डालर प्रति किग्रा. की वर्तमान दर से 800 किग्रा. से अधिक गेहूं की मांग करते है तो इसका आशय यह है कि वर्तमान कीमत साम्य कीमत नहीं है। साम्य कीमत वह कीमत होगी है जिस पर जर्मनी के निवासी गेहूं खरीदना चाहते है उस पर संयुक्त राज्य अमेरिका के निवासी बेचना चाहते हैं, के बराबर हो और जिस कीमत पर अमेरिका के निवासी बेचना चाहते हैं उस पर जर्मनी के निवासी 800 किग्रा. से अधिक गेहूं खरीदना चाहते हैं और संभवतः संयुक्त राज्य अमेरिका के निवासी 900 मीटर वस्त्र से अधिक खरीदना

नहीं चाहते हैं, तो जर्मनी के निवासियों को गेहूं की अतिरिक्त खरीद के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका को स्वर्ण में भुगतान करना पड़ेगा। इससे संयुक्त राज्य अमेरिका में कीमतों और मौद्रिक मजदूरियां में वृद्धि होगी और जर्मनी में उनमें कमी होगी, जो पुन: समायोजन को जन्म देगा। उत्पादन लागतें सिर्फ उस सीमा को निर्धारित करती है जिसके भीतर व्यापार की पूर्ति पायी जाती है। इस सीमा के भीतर, व्यापारिक शर्तें मांग की परिस्थितियों से निर्धारित होती है और व्यापार की शर्तें उस समय साम्य मूल्यानुपात में होंगी जबकि न तो मांग का आधिक्य, आधिक्य और पूर्ति का आधिक्य होगा।

बोध प्रश्न 5 :

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में गेहूं का पूर्ति मूल्य 0.67 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र का पूर्ति मूल्य 1.00 डालर प्रति मीटर है। जर्मनी में गेहूं का पूर्ति मूल्य 0.67 डालर प्रति किग्रा. और वस्त्र का पूर्ति मूल्य 1.00 डालर प्रति मीटर है। स्पष्ट रूप से यह लागतों में समान अन्तर की स्थिति है जिसके परिणामस्वरूप इसमें व्यापार के लिये कोई प्रेरणायें नहीं होती हैं। यदि जर्मनी के वस्त्र के श्रमिकों को 0.75 डालर की दर से प्रतिदिन भुगतान किया जाता है तो जर्मनी में वस्त्र की पूर्ति कीमत 0.75 डालर प्रति मीटर होगी। तब वस्त्र का जर्मनी से अमेरिका में आयात किया जायेगा, यद्यपि गेहूं का निर्यात अमेरिका से जर्मनी हो नहीं होगा। चूंकि स्वर्ण का प्रवाह संयुक्त राज्य अमेरिका से जर्मनी की ओर होता है जिससे दोनों देशों में मौद्रिक मजदूरियां और कीमतों में पुनर्समायोजन की प्रक्रिया हो जायेगी।

इकाई – 6

हेबरलर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त
Haberler's Theory of International Trade

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 उत्पादन सम्भावना वक्र (Production Possibility Curve)

6.3 अवसर लागत

6.3.1 अवसर लागत सिद्धान्त की मान्यताएं

6.4 अवसर लागत वक्र

6.4.1 स्थिर अवसर लागत एवं व्यापार

6.4.2 बढ़ती हुई अवसर लागत एवं व्यापार

6.4.3 घटती हुई अवसर लागत एवं व्यापार

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस अध्याय में गोट्फेड हेबरलर द्वारा "अवसर लागत" के आधार पर दिया गया अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त विस्तार से समझा गया है। जैसाकि पूर्व में पढ़ चुके हैं रिकार्डो द्वारा दिया गया तुलनात्मक लागत

सिद्धान्त "श्रम-मूल्य सिद्धान्त" की महत्वपूर्ण मान्यता पर आधारित है। हेबरलर ने अपने सिद्धान्त में उत्पादन सम्भावना वक्र का उपयोग करके रिकार्डो की श्रम-मूल्य सिद्धान्त की अवास्तविक मान्यता को काफी सीमा तक दूर करने का प्रयास किया है। उत्पादन सम्भावना वक्र का विशद उपयोग एवं विश्लेषण के कारण हेबरलर ने व्यापार सिद्धान्त का विवेचन अधिक स्पष्ट तथा गणितीय बना दिया है। ज्यामिति विधि से व्यापार सिद्धान्तों का विश्लेषण अधिक सार्थक एवं प्रभावशाली बन गया है।

6.1 प्रस्तावना

सर्वप्रथम हम इस अध्याय में उत्पादन संभावना वक्र को स्पष्ट करेंगे। पूर्व के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादना संभावना वक्र भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ति पक्ष पर ही ध्यान केन्द्रित करता है और मांग पक्ष को गौण मानता है जैसा कि एडम स्मिथ व रिकार्डो के क्लासिकल व्यापार सिद्धान्त भी इस स्थिति को लेकर चलते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के विश्लेषण में हेबरलर ने अवसर लागत को आधार माना है इसलिए यहां हम अवसर लागत को परिभाषित करेंगे तथा इन लागतों का प्रभाव व्यापार पर कैसे पड़ता है को उत्पादन सम्भावना वक्र के आधार पर स्पष्ट करेंगे। बढ़ती हुई, घटती हुई एवं स्थिर लागतों की दशाओं में व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों को भी उत्पादन सम्भावना वक्रों की सहायता से समझायेंगे।

6.2 उत्पादन सम्भावना वक्र (Production Possibility Curve)

किसी निश्चित समय पर एक राष्ट्र में उपलब्ध उत्पादक साधनों की मात्रा सामान्यत स्थिर तथा ज्ञात होती है। इन उपलब्ध उत्पादक साधनों (भूमि, श्रम, पूंजी इत्यादि) को वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में काम में लिया जाता है। क्योंकि साधनों की उपलब्धता सीमित है इसलिए वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन भी सीमित ही हो पाता है। इसलिए एक राष्ट्र को अपने पास उपलब्ध साधनों के उपयोग में सावधानी बरतनी पड़ती है तथा यह निर्धारण किया जाता है कि कौनसी वस्तुओं का उत्पादन किया

जाय व कितनी मात्रा में किया जाय। इसी बात को सरल शब्दों में इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक राष्ट्र को केवल दो वस्तुओं, जैसे कपड़ा व गेहूं का ही उत्पादन करना है। ज्ञात तकनीकी ज्ञान तथा उपलब्ध साधनों का उपयोग केवल गेहूं के उत्पादन में किया जाय तो गेहूं की अधिकतम उत्पादन OB मात्रा (चित्र संख्या 6.1) उत्पादित की जा सकती है, किन्तु यदि सम्पूर्ण साधन कपड़ा उत्पादन पर लगाये जाय तो कपड़े की अधिकतम मात्रा OA उत्पादित की जा सकती है। यह स्वाभाविक है कि राष्ट्र दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन करना चाहेगा, ऐसी स्थिति में कपड़ा व गेहूं उत्पादन मात्रा के अनेक संयोग प्राप्त किये जा सकते हैं जैसे C,D,E आदि। इन सब बिन्दुओं A,B,C,D,E आदि को मिलाकर खींचा गया वक्र उत्पादन संभावना वक्र कहलाता है। बिन्दु A,B,C,D,E सभी एक वक्र पर स्थित हैं जो दिये गये साधनों के अधिकतम उपयोग तथा ज्ञात तकनीक के आधार पर दो वस्तुओं के अधिकतम उत्पादन स्थितियों को इंगित करते हैं। बिन्दु A की स्थिति में केवल कपड़े का उत्पादन किया जा रहा है जबकि गेहूं का उत्पादन शून्य है, दूसरे शब्दों में सभी साधनों का उपयोग केवल मात्र कपड़े के उत्पादन पर ही किया जा रहा है। बिन्दु B पर ठीक विपरीत स्थिति है जबकि सभी साधन केवल गेहूं उत्पादन पर लगाये गये हैं यहां गेहूं का अधिकतम उत्पादन OA मात्रा है। C,D व E बिन्दुओं पर गेहूं व कपड़ा दोनों अलग-अलग मात्राओं में उत्पादित किया जा रहा है। C बिन्दु पर अधिक कपड़ा तथा कम गेहूँ जबकि E बिन्दु पर अधिक गेहूँ व कम कपड़ा उत्पादित किया जा रहा है। D बिन्दू पर गेहूँ व कपड़ा लगभग बराबर मात्रा में किया जा रहा है। F बिन्दु जो वक्र के अन्दर स्थित है, दोनों वस्तुओं के उत्पादन को दर्शाता है किन्तु यह स्थिति उपलब्ध साधनों के अधिकतम उपयोग को नहीं दर्शाती जबकि बिन्दु G वक्र के बाहर स्थित है, इस बात को दर्शाती है कि उपलब्ध साधन इतनी मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं कि दोनों वस्तुओं का और ज्यादा

उत्पादन किया जा सके अर्थात् G बिन्दु उपलब्ध साधनों के आधार पर अप्राप्त है।

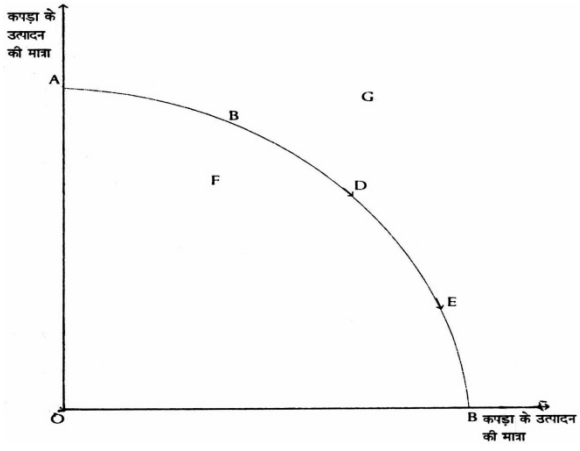

चित्र संख्या 6.1

यदि राष्ट्र को किसी समय किसी वस्तु का अधिक उत्पादन करना है तो उसे दूसरी वस्तु के उत्पादन पर लगाये गये साधनों को हटाकर उस वस्तु के उत्पादन पर लगाने पड़ेंगे जिसका अधिक उत्पादन किया जाना है। वह दर जिसके आधार पर एक वस्तु पर लगाये साधन हटाकर, दूसरी वस्तु जिसका उत्पादन बढ़ाया जाना है पर, लगाने को तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal Rate of Technical Substitutions, MRTS) कहते हैं। यह दर उत्पादन संभावना वक्र की शक्ल को निर्धारित करती है कि वक्र सीधी रेखा के रूप में होगा या उन्नतोदर या नतोदर होगा। उत्पादन संभावना वक्र विश्लेषण में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का उपयोग हेबरलर ने अवसर लागत के रूप में किया है, जिसका विस्तृत अध्ययन हम नीचे करेंगे।

6.3 अवसर लागत

जैसा कि हमने ऊपर बताया कि सीमित साधनों के होते हुए यदि एक राष्ट्र किसी एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाना चाहता है तो उसे दूसरी वस्तु के उत्पादन में कमी करनी पड़ती है। उपर्युक्त उदाहरण में यदि राष्ट्र कपड़े की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करना चाहता है तो उसे गेहूं की

कुछ इकाइयाँ त्यागनी पड़ेगी। दूसरे शब्दों में कपड़े की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने के लिए जितनी इकाइयाँ गेहूं की त्यागनी पड़ेगी उसे साधारणतया हम अवसर लागत कहते हैं। अवसर लागत इस ओर इंगित करती है कि एक वस्तु के उत्पादन हेतु हमें दूसरी वस्तु के उत्पादन को त्यागना पड़ता है। यह अवसर लागत परिवर्तनशील है तथा उत्पादन संभावना वक्र के साथ बदलती है। अवसर लागत को हम अन्य शब्दों में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर भी कह सकने हैं। यदि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर स्थिर रहती है तो उसे हम स्थिर अवसर लागत (या स्थिर उत्पादन के पैमाने) कहते हैं जबकि बढ़ती हुई प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को बढ़ती अवसर लागत (या घटते उत्पादन के पैमाने) तथा गिरती हुई प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती अवसर लागत (या बढ़ते हुए उत्पादन के पैमाने) कहलानी है।

6.3.1 अवसर लागत सिद्धान्त की मान्यताएं

हेबरलर का अवसर लागत सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

1. वस्तु व सेवा तथा साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है।
2. प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त लागत के बराबर होती है।
3. साधनों की विभिन्न इकाइयाँ, जो पूर्णतया गतिशील हो तथा प्रतिस्थापित की जा सकती हो, सभी प्रकार के रोजगार में समान कीमत प्राप्त करती है ।
4. साधनों में पूर्ण रोजगार पाया जाता है तथा साधनों की कीमत सभी प्रकार के रोजगार में उनकी सीमान्त उत्पादन के बराबर होती है।
5. एक राष्ट्र में उपलब्ध साधन स्थिर है तथा उनकी मात्रा ज्ञात है।

6.4 अवसर लागत वक्र

उत्पादन सम्भावना वक्र को हम साधारण शब्दों में अवसर लागत वक्र भी कह सकते हैं। इन वक्रों की शक्ल तकनीक प्रतिस्थापन सीमान्त दर को इंगित करती है। सर्वप्रथम हम स्थिर अवसर लागत को दर्शायेंगे।

6.4.1 स्थिर अवसर लागत एवं व्यापार

चित्र संख्या 6.2 में अमेरिका व इंग्लैंड में स्थिर अवसर लागत वाले उत्पादन संभावना वक्र बनाये गये हैं। (अ) भाग अमेरिका के उत्पादन संभावना वक्र को बताता है जबकि (ब) भाग इंग्लैंड के वक्र को। दोनों देशों में उत्पादन में स्थिर लागत पायी जा रही है। इसलिए वक्र को सीधी रेखा के रूप में खींचा गया है। अमेरिका यदि सभी साधनों का उपयोग एक ही वस्तु के उत्पादन में किया जाय तो गेहूं का अधिकतम उत्पादन 6 इकाई या कपड़े का उत्पादन 10 इकाई ही सम्भव है। यदि साधनों का हस्तान्तरण गेहूं से कपड़े में या कपड़े से गेहूँ उत्पादन में करना होता है तो 10 इकाई कपड़े की त्यागनी पड़ेगी 6 इकाई गेहूं की अतिरिक्त प्राप्त करने के लिए या 6 इकाई गेहूं की त्याग कर कपड़े की 10 इकाई प्राप्त की जा सकती है।

स्थिर अवसर लागतें

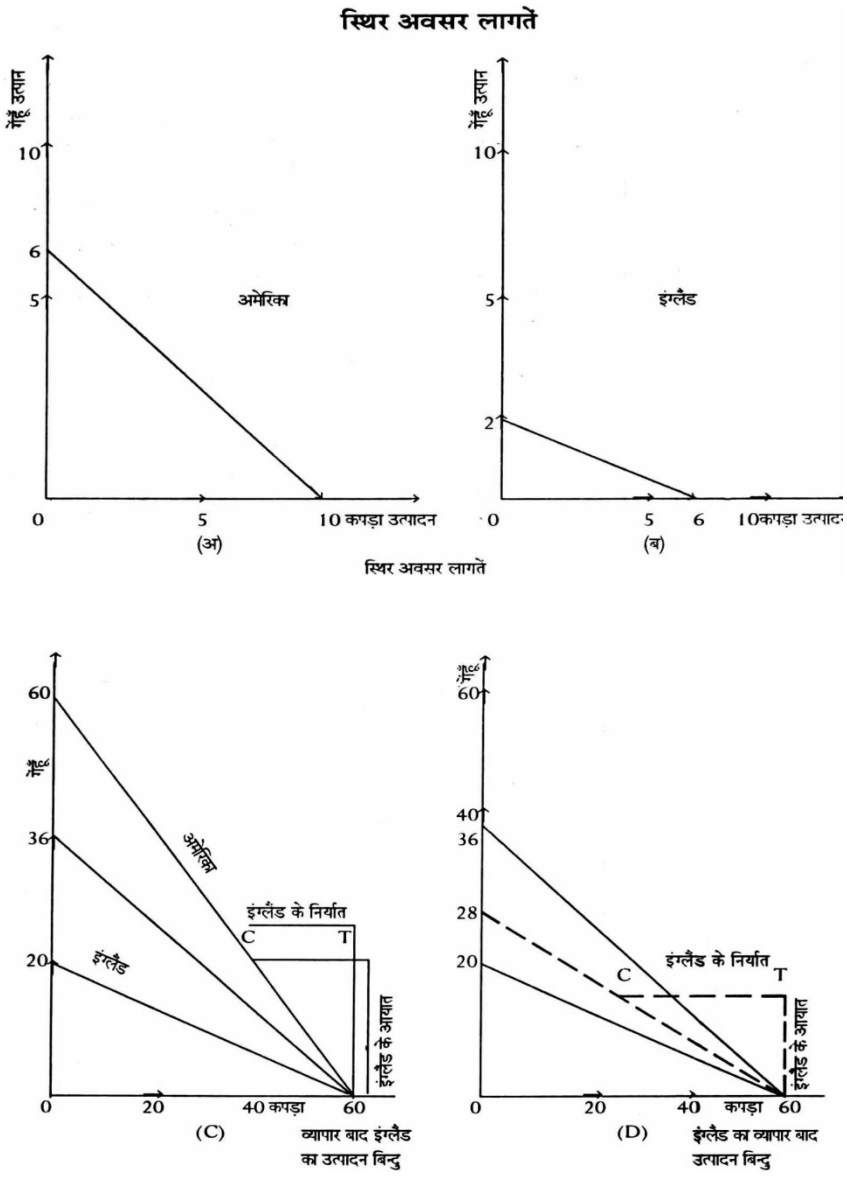

रेखाचित्र 6.2

अत: चाहे सारे या कुछ ही साधनों का स्थानान्तरण किया जाय "6 इकाई गेहूं 10 इकाई कपड़े" के लिए उत्पादन में सीमान्त प्रतिस्थापन दर कहलाती है।

उत्पादन संभावना वक्र जो एक सीधी रेखा के रूप में बनाया गया है केवल स्थिर लागत को ही नहीं दर्शाता अपितु सीधी रेखा का ढाल (Slope) कीमत को भी प्रकट करता है। गेहूं व कपड़ा के बीच विनिमय दर

6:10 के अनुपात में होगी। कपड़े के लिए कोई भी ऊँची कीमत, उदाहरणार्थ 7:10 का अनुपात, साधनों को गेहूं से कपड़ा उत्पादन में स्थानान्तरित कर देगा। तथा उस स्थिति में गेहूँ उत्पादन तब तक गिरता रहेगा जब तक कि विनिमय अनुपात पुन: 6:10 स्थापित नहीं हो जाता। ठीक इसी भांति कोई भी कीमत अनुपात जो कपड़े के लिए नीचा होगा, जैसे 6:9, तो साधन उसी भांति कपड़े से गेहूं में स्थानान्तरित होते जायेंगे और कपड़े का अनुपात तब तक गिरता चला जायेगा जब तक कीमत अनुपात पुन: 6:10 अनुपात में स्थापित नहीं हो जाता। उपर्युक्त स्थितियाँ अमेरिका व इंग्लैंड के लिए चित्र संख्या 6.2 के अ व ब भागों में स्पष्ट चित्रित की गयी है।

अब हम स्थिर लागत के अन्तर्गत दो राष्ट्रों में व्यापार की स्थितियों को स्पष्ट करेंगे जो चित्र संख्या 6.2 के भाग स व द में बताई गयी है। इन दोनों भागों में हमने अमेरिका व इंग्लैंड के उत्पादन संभावना वक्रों को एक दूसरे के साथ एक ही पैमाने पर स्थापित किये हैं। गेहूं, कपड़े अनुपात के दो पृथक वक्रों (जैसा कि भाग अ व ब में दर्शाया गया है) में उन्हीं पैमानों अर्थात गेहूं 6 इकाई व कपड़ा 10 इकाई दोनों राष्ट्रों में क्रमश: बताने के बजाय पैमाने को विस्तृत स व द भाग में उन्हें कपड़े पर ही आरोपित किये हैं जिससे कपड़ा - गेहूं का व्यापार दो राष्ट्रों में बताया जा सके। व्यापार पूर्व की स्थिति में अमेरिका में 60 इकाई कपड़ा 36 इकाई गेहूं के बदले विनिमय किया जायेगा, जबकि इंग्लैंड में वही कपड़ा इकाईयाँ (यानि 60 इकाई) केवल 20 इकाई गेहूं ही विनिमय में काम में आयेगा। व्यापार के पूर्व मांग दशाऐं इस प्रकार थी कि इंग्लैण्ड 10 इकाई गेहूं एवं 30 इकाई कपड़ा (चित्र संख्या 6.2 में C बिन्दु) का उपभोग कर रहा था। कोई भी कीमत, जो कपड़ा गेहूं अनुपात 60:20 से भिन्न हो, इंग्लैंड के उपभोग में वृद्धि कर देगा। चित्र के अनुसार इंग्लैंड उपभोग के C से C' बिन्दु पर पहुंच जायेगा यदि वह अमेरिका की कीमत पर व्यापार करें जहां पर 12 इकाई गेहूं व 40 इकाई कपड़े का उपभोग करेगा। C' बिन्दु पर इंग्लैंड का उपभोग दोनों वस्तुओं

कपड़ा व गेहूं का अधिक होगा। यह स्थिति इंग्लैंड के लिए लाभ की है जो अमेरिका के साथ व्यापार के कारण उत्पन्न हुई। व्यापार की स्थिति में यदि इंग्लैंड अपने सम्पूर्ण साधन केवल कपड़ा उत्पादन पर लगाये तो वह 60 इकाई उत्पादित करेगा और यदि वह इस उत्पादन में से 20 इकाई अमेरिका को निर्यात करे तथा बदले में गेहूं की 12 इकाई अमेरिका से आयात करें (चित्र में यह स्थिति C' बिन्दु से दर्शायी गयी है)। तो इंग्लैंड को व्यापार से लाभ होगा किन्तु अमेरिका को इस विनिमय से कोई लाभ नहीं हो रहा है क्योंकि गेहूं-कपड़े का विनिमय अनुपात व्यापार के पूर्व तथा बाद दोनों स्थितियों में 6:10 ही बना रहता है क्योंकि व्यापार बाद अमेरिका का उत्पादन बिन्दु परिवर्तित होता है और 12 अतिरिक्त गेहूं उत्पादन कर पाता है जबकि कपड़े का उत्पादन 20 इकाई हो जाता है इस प्रकार अनुपात वही बना रहता है।

व्यापार-पूर्व एवं व्यापार-बाद दोनों ही स्थितियों में एक राष्ट्र के लिए कीमत समान हो सकती है किन्तु दोनों राष्ट्रों के लिए समान कीमत नहीं पायी जा सकती। नयी कीमत व्यापार-पूर्व पायी जाने वाली दो कीमतों के मध्य में कहीं पाई जा सकती है।

उदाहरणार्थ यह कीमत 60 इकाई कपड़े के बदले 28 इकाई गेहूं पर स्थापित हो सकती है, जैसा कि चित्र संख्या 6.2 के द भाग में दर्शाया गया है। इस द भाग के चित्र में इंग्लैंड को व्यापार से उतना अधिक लाभ नहीं प्राप्त हो रहा है जैसाकि उसे स भाग में प्राप्त हो रहा था, अब उस लाभ का कुछ भाग अमेरिका भी प्राप्त करने लगा है। दोनों राष्ट्रों के व्यापार से प्राप्त लाभ को दर्शाने के लिए यह जरूरी है कि दोनों राष्ट्रों के कपड़ा-गेहूं अनुपात (उत्पादन संभावना वक्रों) को एक साथ एक ही चित्र में दर्शाया जाय। चित्र 6.2 के (द) भाग में दोनों राष्ट्रों के उत्पादन संभावना वक्रों को दर्शाया गया है तथा दोनों राष्ट्रों के बीच जिस कीमत पर व्यापार होगा उसे टूटी रेखा के रूप में 60 इकाई कपड़ा 28 इकाई गेहूं के रूप में दिखाया

गया है। इस चित्र के अनुसार अमेरिका 60 इकाई कपड़े के बदले 28 इकाई गेहूं निर्यात करेगा जब कि पहले 60 इकाई कपड़े के बदले 36 इकाई गेहूं दे रहा था। इस प्रकार अमेरिका को 8 इकाई गेहूं कम देने पड़ेंगे, जो इंग्लैंड के साथ व्यापार के कारण संभव हो सका है। इस प्रकार अमेरिका को भी व्यापार लाभ प्राप्त होगा। इंग्लैंड का लाभ यह रहेगा कि उन्हीं 6० इकाई कपड़े के बदले पहले उसे केवल 20 इकाई गेहूं मिल रहे थे, व्यापार के बाद उसे 8 अतिरिक्त इकाई गेहूं (अर्थात 28 इकाई) प्राप्त होंगे। इस प्रकार व्यापार से दोनों राष्ट्रों को लाभ होगा।

स्थिर अवसर उत्पादन लागत की दशा में, जहां उत्पादन संभावना वक्र सीधी रेखा के रूप में खींचा जाता है, व्यापार के बाद उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करना संभव है। व्यापार के पूर्व दोनों राष्ट्र दोनों ही वस्तुओं (कपड़ा व गेहूं) का उत्पादन करते हैं किन्तु व्यापार के बाद एक राष्ट्र एक वस्तु में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेता है जबकि दूसरा राष्ट्र दूसरी वस्तु का उत्पादन में ही अपने सारे सीमित साधान लगाकर पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करता है। व्यापार पूर्व इंग्लैंड जहां बिन्दु C (चित्र 6.2 भाग स) पर उत्पादन व उपभोग करता है, व्यापार के बाद कपड़े का उत्पादन अन्तिम बिन्दु पर करता है जहां कपड़े का उत्पादन 60 इकाईयाँ है, अर्थात् सम्पूर्ण साधन केवल कपड़ा उत्पादन पर ही लगा देता है तब उत्पादन संभावना वक्र के आधार पर वह 60 इकाई कपड़ा उत्पादित करता है। व्यापार के बाद इंग्लैंड का उपभोग बिन्दु C' बिन्दु पर पहुंचता है, जो C की तुलना में ऊँचा है, (यह अधिक उपभोग की स्थिति को दर्शाता है), जो व्यापार के कारण उत्पन्न हुआ है और फलस्वरूप व्यापार से उत्पन्न लाभ कहलायेगा। C' बिन्दु की स्थिति पर इंग्लैंड 20 इकाई (C'T के बीच का अन्तर) कपड़ा निर्यात करेगा।

एक बात यहां बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि स्थिर अवसर लागत की दशा में व्यापार, जिस वस्तु में जिस राष्ट्र को तुलनात्मक लाभ प्राप्त हो,

उसके उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करने की स्थिति उत्पन्न करता है। इस उदाहरण में इंग्लैंड को कपड़े के उत्पादन में तथा अमेरिका को गेहूं के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त होता है क्योंकि इंग्लैंड को कपड़ा उत्पादन में तथा अमेरिका को गेहूं उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त है।

6.4.2 बढ़ती हुई अवसर लागत एवं व्यापार

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन ह्रास नियम को प्रतिपादित किया था जिसके अनुसार स्थिर साधनों पर यदि परिवर्तनशील साधनों की मात्रा बढ़ती जाय तो उत्पादन में वृद्धि एक सीमा तक ही होती है बाद में परिवर्तनशील साधनों की वृद्धि उत्पादन में वृद्धि घटती हुई दर से करेगी। उत्पादन ह्रास नियम को लागत के संदर्भ में बढ़ती हुई लागत कहेंगे क्योंकि जब साधनों में वृद्धि (अर्थात साधन लागत में वृद्धि) उत्पादन में वृद्धि अनुपातिक रूप से कम करेगी तो उत्पादन वृद्धि लागत वृद्धि की तुलना में कम होगी। ऐसी स्थिति को उत्पादन ह्रास या लागत वृद्धि कहते हैं। ऐसा इसलिए भी संभव है क्योंकि उत्पादन के साधन सभी स्थानों एवं सभी वस्तुओं के उत्पादन में समान रूप से कुशल नहीं हो सकते।

चित्र संख्या 6.3 में बढ़ती हुई अवसर लागतों के अन्तर्गत उत्पादन संभावना वक्र बताया गया है जहां यह वक्र न तो दर (Concave) खींचा गया है। चित्र 6.3 के अ भाग में यह दर्शाया गया है कि उत्पादन संभावना वक्र AB में गेहूं व कपड़े के बीच प्रतिस्थापना पायी जाती है, अर्थात बिन्दु R व T के बीच गेहूं व कपड़ा में प्रतिस्थापन संभव है। T बिन्दु पर कम गेहूं तथा ज्यादा कपड़ा उत्पादित किया जा सकता है जबकि R पर अधिक गेहूं एवं कम कपड़ा। R बिन्दु के बायें, यदि साधनों को गेहूं पर अधिक लगाये जाय (कपड़ा-उत्पादन से निकालकर) तो गेहूं उत्पादन में बहुत कम वृद्धि होती है, कारण यह है कि ये साधन गेहूं उत्पादन में उतने अधिक कुशल नहीं होते, अर्थात साधनों का प्रतिस्थापन कपड़े से गेहूं में बहुत कम संभव है। ठीक यही स्थिति बिन्दु T के दायी ओर होती है जहां साधनों का प्रतिस्थापन गेहूं से कपड़े में, कपड़ा उत्पादन में उतनी वृद्धि नहीं कर पाते

जितनी ये गेहूं उत्पादन में करते हैं। इस प्रकार प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक छोर से दूसरे छोर की ओर घटती जाती है और यदि साधनों की प्रतिस्थापन फिर भी जारी रहता है तो उत्पादन में वृद्धि कम (अर्थात् उत्पादन ह्रास नियम लागू होता है) तथा लागत में वृद्धि (अर्थात बढ़ती हुई अवसर लागत) अधिक प्राप्त होती है।

बढ़ती हुई लागत के अन्तर्गत उत्पादन संभावना वक्र तथा कीमत रेखा एक जैसी नहीं होती जैसी कि स्थिर अवसर लागत (चित्र संख्या 6.2) में पायी जाती है। बढ़ती हुई लागत की स्थिति में गेहूं-कपड़ा विनिमय दर (कीमत) का निर्धारण उत्पादन संभावना वक्र के आधार पर नहीं होता, इसके लिए मांग के बारे में जानना आवश्यक होता है। इस अध्याय में, जहां हम मांग के बारे में विस्तार से चर्चा नहीं कर रहे हैं, केवल यह बतायेंगे कि गेहूं-कपड़ा कीमत रेखा का निर्धारण बाजार में स्थित कीमत के अनुरूप होता है और इसे एक सीधी रेखा के रूप में उत्पादन संभावना वक्र पर खींची जाती है और जहां यह रेखा उत्पादन संभावना वक्र पर स्पर्श करती है, स्पर्श बिन्दु गेहूं-कपड़ा के बीच विनिमय को निर्धारित करता है। चित्र 6.3 अ भाग में यह रेखा PP है तथा स्पर्श बिन्दु R है। जो OC कपड़े की मात्रा तथा OW गेहूं की मात्रा का संयोग बता रहा है, यह सन्तुलन साम्य की स्थिति है। बिन्दु M जो AB उत्पादन संभावना वक्र पर स्थित है पर कीमत रेखा PP स्पर्श बिन्दु नहीं बना रही है। इस बिन्दु पर गेहूं की अधिक मात्रा अनावश्यक रूप से कम कपड़े की मात्रा के लिए दी जा रही है। यहां कुछ बिना बिके गेहूं की मात्रा तथा कुछ कपड़े की अपूरित मांग कीमत रेखा PP को परिवर्तित करेगी फलत: या तो PP कीमत रेखा परिवर्तित होकर M बिन्दु पर स्पर्श बिन्दु बनायेगी या विनिमय बिन्दु M से हटकर पुन: R हो जायेगा। इसका आशय यह है कि M बिन्दु पर कपड़ा पर प्रतिफल गेहूं से अधिक है इसलिए साधनों का स्थानान्तरण गेहूं से कपड़े की ओर होगा और तब तक होगा जब तक उत्पादन में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर व्यापार

बढ़ती हुई अवसर लागतें

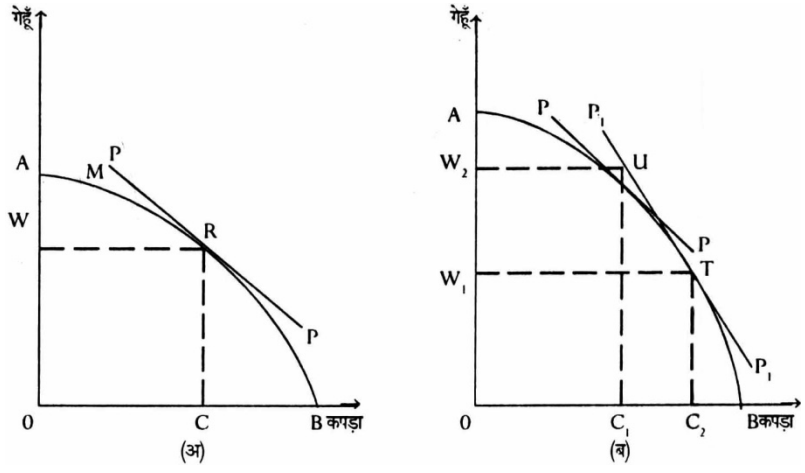

रेखाचित्र 6.3

की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के बराबर नहीं हो जाती। अर्थात पुन: R बिन्दु ही स्पर्श बिन्दु न बन जाय।

बढ़ती हुई अवसर लागत की दशा में व्यापार उसी भांति होगा जैसा कि स्थिर अवसर लागत की दशा में हो रहा था किन्तु बढ़ती हुई लागत में किसी वस्तु के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं होगा। यहां एक वस्तु का उत्पादन संभावना वक्र के वस्तु के अन्तिम छोर पर उत्पादित नहीं होगा अपितु वह राष्ट्र व्यापार के बाद भी दोनों वस्तुओं का उत्पादन जारी रखेगा किन्तु उस वस्तु का सापेक्षिक उत्पादन ज्यादा करेगा जिसमें इसे अधिक लाभ है। चित्र 6.3 के ब भाग में यह स्थिति दर्शायी गयी है।

इंग्लैंड में व्यापार पूर्व उत्पादन बिन्दु Z पर गेहूं-कपड़ा कीमत PP पायी जा रही है। व्यापार के बाद कीमत बदलकर P'P' हो जाती है (यह कैसे व क्यों होगी, का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं) P'P' कीमत PP से कपड़े के लिए ऊँची है (गेहूं के लिए नीची) क्योंकि इस रेखा पर प्रति इकाई कपड़ा गेहूँ की अधिक मात्रा प्राप्त की जा रही है। इसलिये इंग्लैण्ड के लिये यह लाभप्रद स्थिति है कि वह उसके कुछ साधनों को गेहूँ से कपड़े उत्पादन

में स्थान्तरित करे। यह स्थानान्तरण तब तक होता रहेगा जब तक कीमत रेखा व उत्पादन संभावना वक्र पर स्पर्श बिन्दु नहीं बन जाता अर्थात कीमत तथा प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बराबर नहीं हो जाती। यह स्पर्श बिन्दु व्यापार के बाद T बिन्दु पर प्राप्त होता है। अर्थात इंग्लैंड व्यापार शुरू होने पर साधनों के स्थानान्तरण के बाद गेहूं - कपड़े दोनों का उत्पादन T बिन्दु पर करेगा जहां R बिन्दु की तुलना में अधिक कपड़ा व कम गेहूं उत्पादित करेगा। इंग्लैंड का उपभोग बिन्दु भी व्यापार के बाद परिवर्तित होगा जो अब T के बाये U पर स्थित होगा। व्यापार पूर्व यह बिन्दु उत्पादन बिन्दु Z ही था। T बिन्दु पर इंग्लैंड OC2 कपड़ा तथा OW1 गेहूं उत्पादित करेगा तथा U बिन्दु पर OC1 कपड़ा तथा OW2 गेहूं उपभोग करेगा, अर्थात C1C1 कपड़े का निर्यात तथा W1W2 गेहूं का आयात करेगा। व्यापार के बाद इंग्लैंड दोनों वस्तुओं कपड़ा व गेहूं का अधिक उपभोग करेगा जो उसके व्यापार – पूर्व उत्पादन संभावना वक्र से अधिक है।

उत्पादन ह्रास नियम के कारण यहां उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं हो पाता। कम उपयुक्त साधन जब कपड़े उत्पादन में लगायें जाते रहेंगे तो कपड़ा उत्पादन में प्रति इकाई लागत बढ़ने लगेगी। साथ ही जो साधन गेहूं के लिए भी अनुपयुक्त थे वे गेहूं उत्पादन से हटाये जा रहे हैं इसलिए गेहूं में प्रति इकाई उत्पादन लागत गिरने लगेगी। इसके ठीक विपरीत अमेरिका में उत्पादन लागत में परिवर्तन, (अर्थात कपड़ा उत्पादन में लागत कमी तथा गेहूं उत्पादन में लागत वृद्धि) होगा। और दोनों राष्ट्रों में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त होने से पूर्व ही कीमत अनुपातों में बराबरी (समता) आ जायेगी। इसलिए बढ़ती हुई अवसर लागतों में उत्पादन में किसी भी राष्ट्र में पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं पाया जाता।

श्रम-मूल्य सिद्धान्त को निरस्त करके अवसर लागत सिद्धान्त व्यापार के तुलनात्मक लाभ नियम को स्पष्ट करने में सक्षम हुआ है। दो वस्तुओं व दो राष्ट्रों के इस मॉडल में यह स्वीकार किया गया कि एक राष्ट्र जैसे (इंग्लैण्ड) एक वस्तु जैसे (कपड़ा) के उत्पादन में दूसरे राष्ट्र (अमेरिका)

की तुलना में अधिक कुशल है जबकि दूसरा राष्ट्र (अमेरिका) दूसरी वस्तु (गेहूं) के उत्पादन में ज्यादा कुशल है इसलिए एक राष्ट्र जिस वस्तु के उत्पादन में ज्यादा कुशल है का अधिक उत्पादन कर निर्यात करेगा और उस वस्तु का आयात करेगा जिसमें वह अपेक्षाकृत कम कुशल है। इस प्रकार एक राष्ट्र अपनी कुशलता वाली वस्तु के व्यापार से ऊँची कीमत प्राप्त करता है तथा अकुशलता वाली वस्तु का आयात कर कम कीमत चुकाता है।

6.4.3 घटती हुई अवसर लागत एवं व्यापार

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त व नीति में बढ़ते हुए उत्पादन पैमाने या घटती हुई अवसर लागत सदैव ही महत्वपूर्ण चर्चा का विषय रही है। प्रतियोगिता के साथ बढ़ते हुए उत्पादन पैमाने फर्म या राष्ट्र के उत्पादन में विस्तार करते हैं।

बढ़ते हुए उत्पादन के पैमानों को उत्पादन संभावना वक्र के रूप में चित्र संख्या 6.4 के (अ) भाग में दर्शाया गया है जहां A Q B उत्पादन संभावना वक्र उन्नतोदर है जो यातायात, मशीन की कीमत, कृषि मशीन के सन्दर्भ में गिरती हुई बतायी गयी है। कीमत रेखा PP उत्पादन संभावना वक्र पर Q बिन्दु पर स्पर्श बनाती है। यदि Q बिन्दु पर बढ़ते हुए पैमाने आन्तरिक मितव्ययता के कारण हैं तो यह बिन्दु अस्थिर सन्तुलन को बताता है जो प्रतियोगिता दशाओं में लम्बे समय तक ठहर नहीं सकता। थोड़ा सा भी व्यवधान, यातायात मशीन की कीमत कृषि मशीन के सन्दर्भ के रूप में PP कीमत रेखा को परिवर्तित कर देगी। सारे उत्पादन साधनों को कृषि मशीन से यातायात मशीन उत्पादन में स्थानान्तरित कर देंगे। किन्तु इस हस्तानांतरण से उन्हें नया सन्तुलन बिन्दु तब तक प्राप्त नहीं हो पायेगा जब तक कि वे सम्पूर्ण साधनों को यातायात मशीन उत्पादन में नहीं लगा देते अर्थात बिन्दु A पर नहीं पहुंच जाते। इसके ठीक विपरीत स्थिति पर सारे साधन कृषि मशीन-उत्पादन की ओर हस्तांतरित होंगे

और B बिन्दु पर पहुँच जायेंगे। इस प्रकार बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति में उत्पादन का पूर्ण विशिष्टीकरण हो जाता है।

बढ़ते प्रतिफल या घटती अवसर लागत

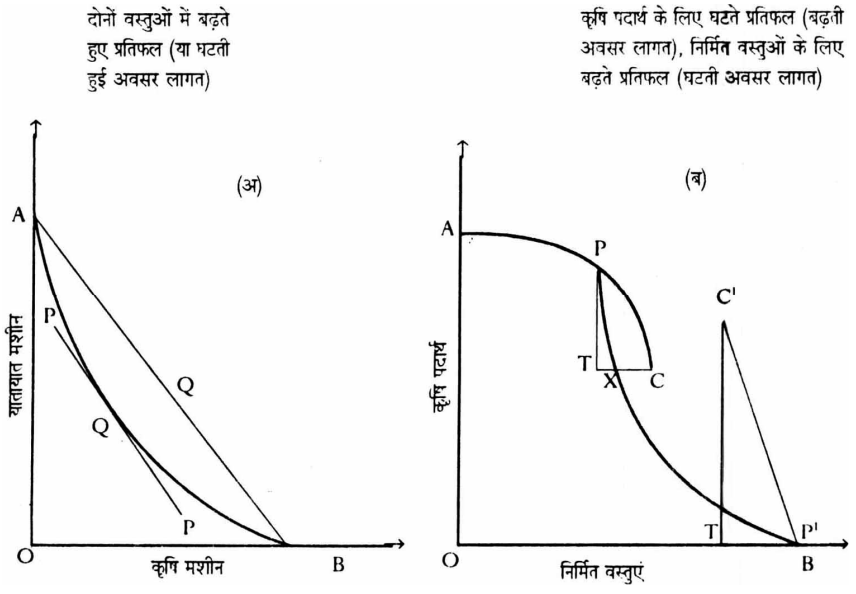

रेखाचित्र 6.4

चित्र 6.4 के ब भाग में एक वस्तु (कृषि पदार्थ) में गिरते हुए प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु (निर्मित वस्तु) में बढ़ते हुए प्रतिफल दर्शाये गये हैं। उत्पादन संभावना वक्र AB कृषि पदार्थ के लिए नतोदर बनाया गया है जबकि निर्मित वस्तु के लिए उन्नतोदर। नतोदर वक्र बढ़ती अवसर लागत तथा उन्नतोदर घटती अवसर लागत दर्शा रहे हैं। यदि राष्ट्र नतोदर वक्र पर उत्पादन करे तो उसे कृषि पदार्थ में (आंशिक) विशिष्टीकरण प्राप्त करने में लाभ है और वह उत्पादन P बिन्दु पर करके PT का व्यापार (निर्यात) करेगा जबकि TC मात्रा निर्मित वस्तुओं की आयात। किन्तु यदि निर्मित वस्तुओं का उत्पादन बिन्दु X से अधिक हो, अर्थात निर्मित वस्तुओं का उत्पादन बढ़े और उत्पादन बिन्दु उन्नतोदर वक्र पर चला जाय तब निर्मित वस्तुओं के उत्पादन में राष्ट्र को पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त हो जायेगा। तब निर्मित वस्तुओं का निर्यात होगा और कृषि पदार्थ की आयात और उपभोग बिन्दु C के स्थान पर C' होगा जो निश्चित रूप से अधिक लाभप्रद

है। इस प्रकार जिस वस्तु में राष्ट्र को बढ़ते प्रतिफल (घटती अवसर लागत) प्राप्त हो उसमें राष्ट्र सम्पूर्ण साधनों को लगाकर पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करता है लेकिन जिस वस्तु में घटते प्रतिफल (बढ़ती अवसर लागत) प्राप्त हो उसमें सम्पूर्ण साधनों का उपयोग नहीं किया जाता बल्कि दूसरी वस्तु का भी उत्पादन जारी रहता है, यद्यपि पहली वस्तु में साधनों की उपलब्धता दूसरी वस्तु की तुलना अधिक होती है और वहां आंशिक विशिष्टीकरण ही प्राप्त होता है।

6.5 सारांश

प्रो. हैबरलर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अवसर लागत रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के ऊपर एक सुधार है। तुलनात्मक लागत की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह श्रम लागत की काल्पनिक मान्यता पर आधारित है लेकिन हैबरलर ने श्रम लागत के आधार को त्याग करके अवसर लागत को आधार बनाया गया है जो अधिक तार्किक व व्यवहारिक है। इसमें विनिमय के एक सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है जिसे प्रत्येक परिस्थिति में क्रियाशील किया जा सकता है। यह सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि तुलनात्मक लागत अंतर केवल साधन सम्पत्तियों की भिन्नता के कारण ही नहीं होते बल्कि लागत ह्रास नियम के कारण भी उत्पन्न होते हैं।

6.6 शब्दावली

(1) तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर :- वह दर जिसके आधार पर एक वस्तु पर लगाये साधन हटाकर, दूसरी वस्तु जिसका उत्पादन बढ़ाया जाना है पर, लगाने को तकनीकी प्रतिस्थापन की दर कहते हैं।

(2) उत्पादन संभावना वक्र :- उत्पादन संभावना वक्र वह वक्र है जो दिये गये साधनों के अधिकतम उपयोग तथा ज्ञात तकनीक के आधार पर दो वस्तुओं के अधिकतम उत्पादन को दर्शाता है।

(3) नतोदर :- जब साधनों की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर क्रमश: घटती जाती है तो उत्पादन संभावना वक्र की आकृति x अक्ष की ओर नतोदर होती है।

(4) **उन्नतोदर :-** जब साधनों की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर क्रमश: बढ़ती जाती है तो उत्पादन संभावना वक्र x अक्ष की ओर उन्नतोदर होता है।

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. G.V. Haberlar : The Theory of International Trade.
2. Jacob Viner : Studies in the Theory of International Trade.
3. K.R. Gupta : International Economics
4. W.R. Allen : International Trade

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

Q.1 वास्तविक लागत सिद्धान्त और अवसर लागत सिद्धान्त की तुलनात्मक विवेचना करते हुए बताइये कि क्या अवसर लागत सिद्धान्त तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की तुलना में एक सुधार है अथवा नहीं?

Q.2. हैबलर द्वारा प्रतिपादित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अवसर लागत सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?

Q.3 "अवसर लागत सिद्धान्त, तुलनात्मक लागत सिद्धान्त और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त के मध्य एक सम्पर्क कड़ी है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए?

Q.4 उत्पत्ति द्वारा नियम का अवसर लागत पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर क्या प्रभाव होता है इसका वर्णन कीजिए?

इकाई - 7

हैक्शचर-ओहलिन का सिद्धान्त तथा साधन कीमत समानीकरण प्रमेय

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 सिद्धान्त की मान्यताएँ

7.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मापदण्ड

7.3.1 मूल्य या कीमत मापदण्ड

7.3.2 भौतिक मापदण्ड

7.4 हैक्शचर-ओहलिन मॉडल

7.5 हैक्शचर-ओहलिन के सिद्धान्त की आलोचनाएँ

7.6 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय

7.6.1 प्रमेय की मान्यताएँ

7.7 साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त की आलोचना

7.8 सारांश

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न सिद्धान्तों के अध्ययन का उद्देश्य उन आधारों की व्याख्या प्रस्तुत करना है जो विभिन्न देशों के बीच व्यापार का कारण बनते हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि साधनों की सापेक्षिक दुर्लभता किस प्रकार लागतों में अन्तर उत्पन्न कर व्यापार का आधार बनती है।

जान पायेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का ही विशेष रूप है एवं मांग व पूर्ति का सामान्य सिद्धान्त जो राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण है वहीं सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लागू होता है।

7.1 प्रस्तावना

आपने पिछले अध्यायों में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक लागतों का सिद्धान्त पढ़ा है। जिसका मूल आधार यह था कि जब भिन्न-भिन्न देशों में वस्तुओं की कीमतों में निरपेक्ष अथवा तुलनात्मक अन्तर होता है तो वे आपस में व्यापार करते हैं अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार वस्तुओं की लागतों का अन्तर है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन तभी होगा जब लागतों में अन्तर होता है। दो या दो से अधिक वस्तुओं के उत्पादन में भिन्न राष्ट्रों में लागतों के तुलनात्मक अन्तर के कारण व्यापार सम्भव होता है परन्तु इस प्रतिष्ठित सिद्धान्त में अनेक त्रुटियां बताई गई हैं जैसे उत्पत्ति का एक साधन श्रम, लागतों को श्रम घंटों में व्यक्त करना, मांग पक्ष की अवहेलना आदि स्पष्ट है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री समस्या की गहराई में नहीं गये। वे भिन्न प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाये।

(i) भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न वस्तुओं की लागतों के अन्तर का मूल कारण क्या है।

(ii) भिन्न-भिन्न देशों में उत्पादन सम्भावना रेखाएं भिन्न-भिन्न आकार की क्यों होती हैं।

इन प्रश्नों का उत्तर प्रो. हैक्शचर तथा बाद में ओहलिन ने दिया। सन् 1919 में हैक्शचर ने अपने लेख – The Effects of Foreign Trade on Distribution में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के साधन अनुपात सिद्धान्त की व्याख्या की। जिसके अनुसार -

(i) दो देशों में लागतों के अन्तर का कारण उत्पत्ति के साधनों की सापेक्षिक दुर्लभता है।

(ii) भिन्न-भिन्न वस्तुओं के उत्पादन में भिन्न-भिन्न साधनों के भिन्न-भिन्न मात्रा की आवश्यकता पड़ती है।

ओहलिन ने हैक्शचर के विचारों को परिमार्जित एवं विस्तृत बनाया। इस कारण साधन अनुपात का सिद्धान्त हैक्शचर ओहलिन के सिद्धान्त के नाम से पुकारा जाता है। वर्तमान समय में हैक्शचर ओहलिन के विचार आधुनिक सिद्धान्त जिसने प्रतिष्ठित व नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त को विस्थापित कर दिया है के विभिन्न अंग है। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि ओहलिन का सिद्धान्त तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को अमान्य घोषित करता है बल्कि यह तो उसकी पूर्ति करता है। वास्तव में दोनों विचारधाराओं में कोई संघर्ष नहीं है। यदि तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की ठीक ढंग से व्याख्या की जाये तो इसका उदय हैक्शचर ओहलिन व्यापार मॉडल से होता है इस प्रकार वास्तव में हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के पूर्व की व्याख्या को प्रस्तुत करता है।

सन् 1933 में प्रकाशित पुस्तक (Inter Regional and International Trade) में ओहलिन ने स्पष्ट किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का ही एक विशेष रूप है। ऐसी परिस्थिति में एक राष्ट्र में लागू कीमत सिद्धान्त दूसरे राष्ट्रों में भी लागू किया जा सकता है अर्थात जिस प्रकार एक देश के समस्त भागों में कीमत निर्धारण में मांग व पूर्ति का सिद्धान्त लागू होता है उसी प्रकार दो देशों में भी कीमतों के निर्धारण में मांग और पूर्ति का सिद्धान्त लागू होगा। मांग निर्भर होती है -

(i) उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं पर और

(ii) उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की दशाओं पर तथा

पूर्ति निर्भर होती है

(i) उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति पर।

(ii) उत्पत्ति की भौतिक दशाओं पर।

ओहलिन के अनुसार उपरोक्त चारों घटकों में से उत्पत्ति की भौतिक दशाएँ सभी स्थानों पर समान होती है। अत: मूल्यों में अन्तर के प्रमुख कारण मांग की दशाएँ और उत्पादन के साधनों की पूर्ति ही शेष रह जाती है यदि ये शेष दशाएं भी दो देशों में समान हों तो दोनों देशों में वस्तुओं की कीमतें समान हो सकती हैं। लेकिन इन दशाओं में से उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति में अन्तर स्पष्ट रूप से अनेक कारणों से स्पष्ट नजर आता है। अत: यह कहना उचित होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का स्पष्ट कारण भिन्न देशों में वस्तुओं की कीमतों में असमानता है पर इस असमानता के पीछे मूल कारण उत्पत्ति के साधनों की सापेक्षिक उपलब्धता है। इसे निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। भिन्न देशों में उत्पत्ति के साधनों की उपलब्धता समान नहीं होती है। कुछ देशों में भूमि की बहुतायता होती है - वे देश भूमिनिष्ठ होते हैं। अन्य में श्रम की बहुतायत होती है वे श्रमनिष्ठ होते हैं और जिनमें पूंजी की बहुतायत होती है वे पूंजीनिष्ठ होते हैं। परिणाम स्वरूप अन्य साधनों की अपेक्षा एक देश विशेष में वह साधन प्रचुरता के कारण अन्य साधन से तुलनात्मक रूप से सस्ता अथवा कम कीमत पर उपलब्ध होगा। और यह देश उन वस्तुओं के उत्पादन में दक्षता प्राप्त करेगा जिनमें इस साधन का अधिक उपयोग होता है तथा उसी वस्तु का निर्यात करेगा। अत: यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भिन्न देश में उत्पादन साधनों की उपलब्धता भिन्न-2 मात्रा में होती है फलस्वरूप उत्पादन लागतों में अन्तर होता है और वह देश उस वस्तु के निर्यात में आगे बढ़ा हुआ होता है जिसके उत्पादन में उस देश में प्रचुर मात्रा में

उपलब्ध साधन का प्रयोग अन्य साधन की तुलना में अधिक किया जाता है, यही साधन अनुपात का सिद्धान्त कहलाता है।

7.2 सिद्धान्त की मान्यताएँ

इस सिद्धान्त की उपरोक्त रूपरेखा को विस्तृत अध्ययन किये बिना गहराई से समझना कठिन है । यह सिद्धान्त अनेक मान्यताओं पर आधारित है जो निम्न प्रकार है :-

1. व्यापार के लिये दोहरे मॉडल (Double Model) को लिया गया है जिसमें दो देश, दो वस्तुऐं और उत्पत्ति के दो साधन है - श्रम और पूंजी।
2. दोनों देशों में, वस्तुओं और उत्पत्ति साधनों - दोनों बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता है।
3. प्रत्येक देश में उत्पत्ति के साधन पूर्ण रूप से गतिशील हैं किन्तु दोनों देशों में उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता का अभाव है।
4. उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति दी हुई है और स्थिर है दोनों देशों में उत्पत्ति के दोनों साधनों के अनुपात में भिन्नता है अर्थात परिमाणात्मक (Quantitative) रूप से दोनों देशों में साधन भिन्न हैं किन्तु गुणात्मक (Qualitative) रूप से प्रत्येक साधन में दोनों देशों में समरूपता है अर्थात वे समान (Homogeneous) हैं।
5. दोनों देशों में न तो कोई व्यापार की बाधाएं है और न परिवहन लागत ही लगती है अर्थात् व्यापार मुक्त एवं परिवहन लागत हीन है।
6. दोनों देशों में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन फलन (Production Function) भिन्न-भिन्न है किन्तु दोनों देशों में प्रत्येक वस्तु के लिए उत्पादन फलन समान हैं यदि दो देश A व B है तथा दो वस्तु X व Y है तब

$$\frac{K}{L}(X)inA = \frac{K}{L}(X)inB$$

या $$\frac{K}{L}(Y)inA = \frac{K}{L}(X)inB\frac{Wxa}{Wxb} \neq \square \frac{Ux}{Uy}\left(\frac{x\phi\varphi\Phi a}{xb}\right)\phi\phi\frac{Px}{Py}\partial\frac{\partial^2 f}{\partial k}$$

लेकिन $\frac{K}{L}(X) \neq \frac{K}{L}(Y)$

7. दोनों देशों में दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन फलन एक डिग्री के समरूप है अर्थात दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन पैमाने के समता प्रतिफल के अनुरूप प्राप्य है। ऐसी स्थिति में साधनों में परस्पर प्रतिस्थापन्नता सीमित हो जाती है। परन्तु दोनों देशों में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन फलन भिन्न होते हैं।
8. उत्पादन के दोनों साधनों को दोनों देशों में पूर्ण रोजगार प्राप्त है।
9. दो देशों में विभिन्न वस्तुओं के लिये उपभोक्ता की इच्छाएं (Consumer Preferences) तथा मांग फलन (Demand Function) समान होते हैं।

उपरोक्त मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उन वस्तुओं की उत्पादन लागत कम होगी जिनके उत्पादन में प्रचुर एवं सस्ते उत्पादन के साधन प्रयोग में लिये जाते हैं। वास्तव में इस सिद्धान्त का आधार प्रचुर और तुलनात्मक रूप से साधनों की उपलब्धि है अर्थात् इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दो आधार हैं-

(i) भिन्न-भिन्न देशों में उत्पत्ति के साधनों की सापेक्षिक उपलब्धता भिन्न होती है परिणामस्वरूप उन साधनों की कीमतों में अन्तर होता है। जिसके कारण इन प्रचुर साधनों की सहायता से उत्पन्न वस्तुओं की कीमतें भी कम होंगी।

(ii) भिन्न वस्तुओं को निर्माण करने में उत्पत्ति के समस्त साधन एक ही अनुपात में प्रयोग में नहीं लिये जाते हैं। भिन्न-भिन्न वस्तुओं के उत्पादन में भिन्न-भिन्न मात्रा में भिन्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है। कहीं श्रम तो कहीं पूंजी का अनुपात अधिक होता है। जो देश श्रम निष्ठ है वह ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जिनके उत्पादन में श्रम की अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ती है।

ओहलिन के शब्दों में दो क्षेत्रों में लागतों में असमानता तथा कीमतों में भिन्नता उत्पत्ति के साधनों के अनुपातों में परिवर्तन के कारण होती है और जब दो क्षेत्रों में व्यापार होता है तो एक क्षेत्र उन वस्तुओं का आयात करता है जिसके उत्पादन में ऐसे साधनों की आवश्यकता होती है जो उस देश में स्वल्प तथा महंगे होते है तथा उनका निर्यात करता है जिसके उत्पादन में ऐसे साधनों की आवश्यकता होती है जो उस देश में प्रचुर मात्रा में और सस्ते होते हैं। अत: स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त "सापेक्षिक साधन प्रचुरता पर" आधारित है।

7.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मापदण्ड

हैक्शचर ओहलिन मॉडल के ढाचें में सापेक्षिक साधन प्रचुरता की धारणा को दो अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।

(ए) मूल्य या कीमत मापदण्ड (The Price Criterion)

(बी) भौतिक मापदण्ड (The Physical Criterion)

7.3.1 मूल्य या कीमत मापदण्ड (The Price Criterion)

इस मापदण्ड के अनुसार साधन प्रचुरता से तात्पर्य उस साधन की तुलनात्मक कम कीमत से है ओहलिन ने साधन प्रचुरता को साधनों की कीमतों के आधार पर परिभाषित किया है उसके अनुसार देश A में पूंजी की प्रचुरता होगी यदि

$$\left(\frac{PK}{PL}\right)A < \left(\frac{PK}{PL}\right)B$$

जहाँ

PK - पूंजी की कीमत

PL - श्रम की कीमत

A - देश A

B - देश B को प्रदर्शित करते हैं

इस प्रकार में स्पष्ट है कि देश A पूंजी प्रधान है अत: उसे पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन व निर्यात करना चाहिये तथा इसके विपरीत देश B श्रम प्रधान है अत: उसे श्रमगत वस्तु का उत्पादन व निर्यात करना चाहिये। इसका सत्यापन निम्न सचित्र उदाहरण द्वारा दर्शाया जा सकता है।

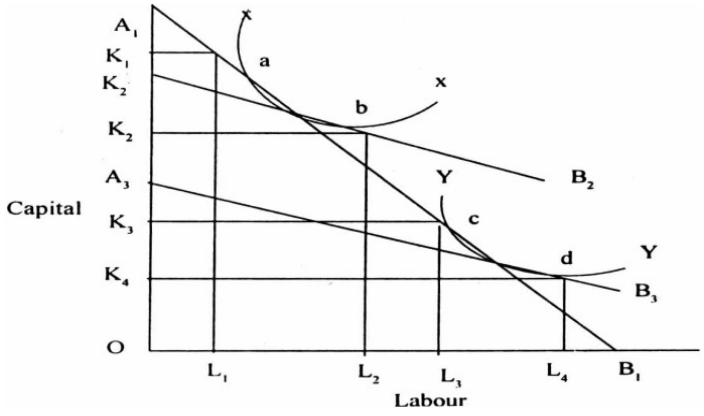

रेखाचित्र – 7.1

जैसा कि पूर्व में कल्पना की गई है कि व्यापार में दो देश A और B संलग्न है। देश A के साधनों की तुलनात्मक मूल्य रेखा A1B1 तथा देश B के साधनों की तुलनात्मक मूल्य रेखा A2B2 है देश। A की साधन मूल्य रेखा A1B1 का ढाल देश B की साधन मूल्य रेखा A2B2 के ढाल से अधिक है जो यह व्यक्त करता है कि देश A में पूंजी तथा B में श्रम तुलनात्मक रूप से सस्ता है $\left(\frac{PK}{PL}\right)A < \left(\frac{PK}{PL}\right)B$ संकेताक्षरों में चरितार्थ होता है।

इसके अतिरिक्त यह मान लिया है कि दो वस्तु X तथा Y का उत्पादन होता है जिसमें वस्तु X पूंजी प्रधान वस्तु है। साथ ही यह भी कल्पना की गई है कि दोनों देशों में वस्तु विशेष का उत्पादन फलन संभाग है। किन्तु दोनों वस्तुओं का उत्पादन फलन भिन्न-भिन्न है चित्र 7.1 में साधन मूल्य रेखा A1B1, वस्तु X के समोत्पत्ति वक्र X को बिन्दु a पर स्पर्श करती है इससे यह प्रकट होता है कि देश A एक इकाई वस्तु X का उत्पादन OK1 पूंजी तथा OL1 श्रम के संयोग से करता है। यदि श्रम को पूंजी के रूप

में बदल दे तो देश A एक इकाई वस्तु X की उत्पादन लागत OA1 पूंजी के बराबर होगी। देश B की साधन मूल्य रेखा A2B2 वस्तु X के समात्पत्ति वक्र XX को बिन्दु b पर स्पर्श करती है जो यह स्पष्ट करता है कि देश B में एक इकाई वस्तु X का उत्पादन OK2 पूंजी तथा OL2 श्रम के संयोग से होता है। यदि श्रम की पूंजी के रूप में परिवर्तित करे तो OL2 श्रम बराबर A2B2 पूंजी के है। इस प्रकार एक इकाई वस्तु X की उत्पादन लागत पूंजी के रूप में OA2 है।

उपर्युक्त विधि को अपनाकर गणना करने पर ज्ञात होता है कि एक इकाई वस्तु Y की उत्पादन लागत देश A व B में क्रमश: OA1 तथा OA3 पूंजी है साधन मूल्य रेखा A3B3 व A2B2 आपस में समानान्तर है कीमत रेखा A3B3 वस्तु Y के समोत्पत्ति वक्र YY के d बिन्दु पर स्पर्श रेखा है जो यह स्पष्ट करती है कि एक इकाई वस्तु Y का उत्पादन OK4 पूंजी व OL4 श्रम द्वारा होता है OL4 श्रम बराबर A3K4 पूंजी के है इस प्रकार देश B में एक इकाई वस्तु Y की उत्पादन लागत पूंजी के रूप में OA3(OK4 + A3K4) है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि देश B में वस्तु Y के उत्पादन के लिए OA3 पूंजी की आवश्यकता होती है जो OA2 से कम है अत: वस्तु Y का उत्पादन श्रम प्रधान है फलत: देश B को वस्तु Y का निर्यात करना चाहिये क्योंकि वस्तु Y श्रम प्रधान वस्तु है और देश B में श्रम की प्रचुरता है इस प्रकार देश A को पूंजीगत वस्तु X का निर्यात करना चाहिये क्योंकि देश A पूंजी प्रधान है। यह निष्कर्ष हैक्शचर ओहलिन प्रमेय की स्थापना करता है।

7.3.2 **भौतिक मापदण्ड** (The Physical Criterion)

इस मापदण्ड के अनुसार एक देश तुलनात्मक रूप में केवल उसी स्थिति में पूंजी प्रधान कहा जाता है जबकि पूंजी श्रम अनुपात दूसरे देश

की तुलना में अधिक हो। अर्थात A देश तभी तुलनात्मक रूप में पूंजी प्रधान होगा जबकि

$$\frac{K_A}{L_A} > \frac{K_B}{K_B}$$

यहां पर K तथा L तथा क्रमश: पूंजी व श्रम की उपस्थित कुल मात्रा को प्रदर्शित करता है जबकि नीचे के लेख (subscripts) A तथा B क्रमश: दो देशों को प्रदर्शित करते हैं।

इसे रेखाचित्रों की सहायता से निम्नलिखित प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है।

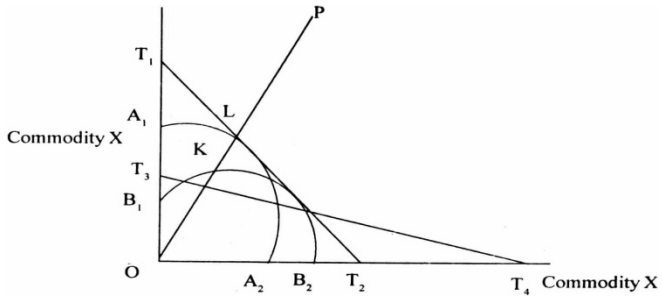

रेखाचित्र - 7.2

रेखा चित्र 7.2 में देश A का उत्पादन सम्भावना वक्र A1A2 तथा देश B का B1B2 द्वारा प्रदर्शित किया गया। मानले कि वस्तु X तुलनात्मक रूप से एक पूंजी प्रधान वस्तु Y है तथा वस्तु Y एक श्रम प्रधान वस्तु है। यदि दोनों देशों में दोनों वस्तुओं का उत्पादन समान अनुपात में OP रेखा पर होता है तो देश A का उत्पादन L बिन्दु पर तथा देश B का K बिन्दु पर होता है। इस स्थिति में देश A की मूल्य रेखा T1T2 तथा देश B की मूल्य रेखा T3T4 है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि देश A, OT2 वस्तु Y का विनिमय OT1 वस्तु X से करेगा और देश B, OT3 वस्तु X का विनिमय OT4 वस्तु Y से करेगा। चूंकि OT1>OT3 तथा OT4>OT2 है। अत: वस्तु X देश A में तथा वस्तु Y देश B में तुलनात्मक रूप से सस्ती है। चूंकि देश A पूंजी प्रधान है अत: पूंजीगत वस्तु X का उत्पादन बढ़ाने के लिये उत्सुक होगा।

इसी प्रकार देश B श्रम प्रधान होने के कारण श्रमगत वस्तु Y का उत्पादन बढ़ाना चाहेगा।

लेकिन इससे हम यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकाल सकते हैं कि देश A अवश्य ही वस्तु X और देश B वस्तु Y का निर्यात करेगा। यह सम्भव है कि दोनों देशों में उपभोग की प्रवृति ऐसी हो कि यह प्रभावहीन हो जाये। अन्य शब्दों में केवल पूर्ति (लागत) की दशाओं के आधार पर यह निश्चित निर्णय नहीं लिया जा सकता है कि दो देश व्यापार में भाग लेंगे और व्यापार की दिशा पूर्ति (लागत) के अनुरूप होगी। मांग की दशाएं व्यापार की दिशा में परिवर्तन कर सकती है यह सम्भव हो सकता है कि देश A वस्तु X के निर्यात की जगह आयात करे तथा देश B वस्तु Y का निर्यात न करके आयात करे। इसका निर्णय दोनों देशों के समुदाय तटस्थता वक्रों की स्थिति पर निर्भर करता है इस स्थिति को चित्र 7.3. के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

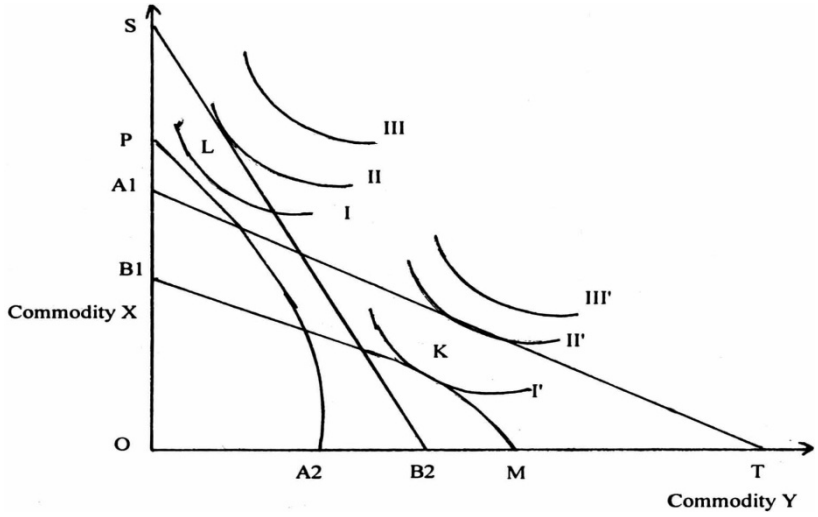

चित्र – 7.3

उपर्युक्त चित्र में दोनों देशों के उत्पादन सम्भावना वक्र प्रदर्शित किये गये हैं और मांग की दशाओं को भी चित्रित किया गया है। देश A की मांग प्रवृत्तियों की I,II,III आदि अधिमान वक्रों द्वारा तथा देश B की मांग प्रवृत्तियां I', II', III' आदि अधिमान वक्रों द्वारा दिखलाया गया है। मांग की

दशाओं से स्पष्ट है कि वस्तु X देश A में तथा वस्तु Y देश B में महंगी है। देश A में OT वस्तु Y का विनिमय OP वस्तु X से होता है जबकि देश B में OM वस्तु Y का (OM<OT) विनिमय OS वस्तु X (OS>OP) से होता है। इस प्रकार दोनों देशों के मध्य व्यापार नहीं होगा। अत: स्पष्ट है कि लागत (पूर्ति) की दशाओं के अनुसार व्यापार की जो दिशा होनी चाहिये उसे मांग की दशाएं उलट देती है।

इस प्रकार हैक्शचर ओहलिन का सिद्धान्त भौतिक मापदण्ड के आधार पर केवल इस स्थिति में सत्य हो सकता है जबकि दोनों देशों में उपभोक्ताओं की पसन्दगी समान हो और आयात मांग की लोच दोनों देशों में इकाई के बराबर हो।

7.4 हैक्शचर ओहलिन मॉडल (A Simple H.O. Model)

इस सिद्धान्त को एजवर्थ बाऊले बाक्स चित्र की सहायता से निम्न प्रकार स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है।

चित्र 7.4 तथा चित्र 7.5 में स्पष्ट है कि दो देशों A व B के एजवर्थ संदूक चित्रों को क्रमश: ABCD तथा A'B'C'D' द्वारा प्रदर्शित किया गया है। दोनों देशों में पूंजी की मात्रा क्रमश: AD तथा A'D' द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार श्रम की मात्रा को क्रमश: AC व A'C' द्वारा दिखलाया गया है। रेखा चित्र से स्पष्ट है कि AD>A'D' तथा A'C'>AC है। अर्थात देश A में पूंजी देश B में श्रम अधिक मात्रा में उपलब्ध है। इससे

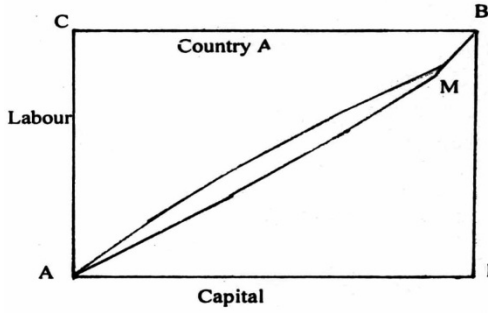

चित्र - 7.4

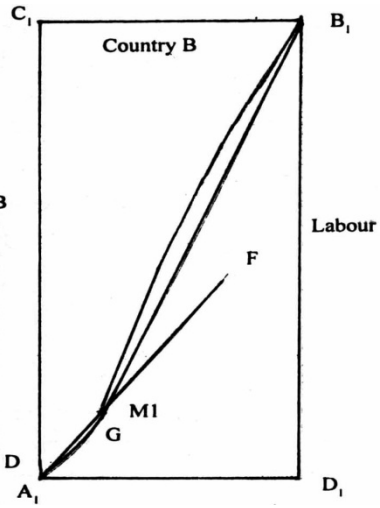

चित्र - 7.5

स्पष्ट है कि देश A पूंजी प्रधान तथा देश B श्रम प्रधान है। दोनों देश दो वस्तुओं वस्तु X तथा वस्तु Y का उत्पादन करते हैं। वस्तु X के उत्पादन के समोत्पाद वक्र का मूल बिन्दु दोनों देशों में क्रमश: A तथा A' तथा वस्तु Y के उत्पादन के समोत्पाद वक्र का मूल बिन्दु B तथा B' है। चित्रों में दोनों देशों के प्रसंविदा वक्र (Contract Curve) AB तथा AC दिये हुए हैं।

अब मान लिजिये कि देश A के प्रसंविदा वक्र पर कोई बिन्दु M है बाक्स A'B'C'D' के भीतर A'F रेखा को इस प्रकार खींचा गया है कि वह संदूक ABCD में खींची गयी रेखा AM के समानान्तर है रेखा A'F की स्थिति से स्पष्ट है कि $\angle$ DAM = $\angle$ D'A'F रेखा B'G इस प्रकार खींची गयी है कि यह BM के समानान्तर है और A'F को M' बिन्दु पर काटती है। तब सम्बन्धित बिन्दुओं के प्रमेय (Theorem of Corresponding points) के अनुसार लेंकास्टर यह बात सिद्ध कर सके हैं कि M और M' बिन्दुओं का एक ऐसा जोड़ा है कि:-

(i) यदि बिन्दु M देश A के प्रसंविदा वक्र पर स्थित है तो बिन्दु M' देश B के प्रसंविदा वक्र पर स्थित है।

(ii) वस्तु X तथा वस्तु Y दोनों के उत्पादन में दोनों उपादानों (श्रम तथा पूंजी) की सीमांत उत्पादकता M व M' बिन्दुओं पर समान हैं।

(iii) वस्तुओं का मूल्यानुपात जो बिन्दु M पर है वही M' पर है।

(iv)M तथा M' बिन्दुओं पर वस्तु X तथा वस्तु Y की उत्पादित मात्रा भिन्न भिन्न है

उत्पादन का अनुपात इस प्रकार है कि पूंजी प्रधान देश, पूंजीगत वस्तु X तथा श्रम प्रधान देश Y श्रमगत वस्तु का अधिक मात्रा में उत्पादन करता है इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक देश उस वस्तु का अधिक मात्रा में उत्पादन करता है जिसके उत्पादन में उस देश के प्रचुर साधनों का गहनता से प्रयोग होता है।

सम्बन्धित बिन्दुओं का प्रमेय सुगमता पूर्वक सिद्ध किया जा सकता है चूंकि उत्पादन फलन दोनों देशों में समरूप है। अत: X समोत्पति वक्रों का कुलक जो संदूक ABCD में A बिन्दु से प्रारम्भ होता है वह संदूक A'B'C'D' में A' बिन्दु से प्रारम्भ वाले X समोत्पाद वक्रों के कुलक के समान है और चूंकि $\angle$ DAM = $\angle$ D'A'M अत: X समोत्पाद वक्रों की जो विशेषताएं AM रेखा के साथ सत्य है वही A'M' रेखा पर भी सत्य है। इसी प्रकार Y समोत्पाद वक्र की जो विशेषताएं BM रेखा पर है वही B'M' रेखा पर भी सत्य है।

परिणाम स्वरूप पूंजी और श्रम की सीमांत उत्पादकतायें वस्तु X के उत्पादन में जो AM रेखा पर है वही A'M' रेखा पर भी है इसी प्रकार वस्तु Y के उत्पादन में श्रम व पूंजी की जो सीमांत उत्पादकता B'M' रेखा पर है वही BM रेखा पर भी है चूंकि M और M' बिन्दु क्रमश: AM तथा BM और A'M' तथा B'M' रेखाओं के उभय बिन्दु हैं अत: वस्तु X व वस्तु Y के उत्पादन में श्रम और पूंजी की सीमांत उत्पादकताएं M तथा M' बिन्दुओं पर समान हैं।

चूंकि बिन्दु M देश A के आंकुचित वक्र पर स्थित है अत:

$$\left(\frac{MP_L}{MP_K}\right)X = \left(\frac{MP_L}{MP_K}\right)Y$$

अर्थात् श्रम व पूंजी की सीमांत उत्पादकता का अनुपात दोनों वस्तुओं वस्तु X तथा वस्तु Y के उत्पादन में समान है।

यही विशेषता देश B के लिये M' बिन्दु पर सत्य है। अत: M' बिन्दु अवश्य ही देश B के आकुंचित वक्र पर स्थित होगा इस प्रकार प्रमेय का (i) भाग का सत्यापन होता है।

प्रमेय के (ii) भाग का सत्यापन अक्षों के मूल बिन्दुओं से गुजरने वाली रेखा की विशेषता द्वारा होता है।

चूंकि वस्तु मूल्यानुपात $\frac{Px}{Py}$ का निर्धारण दोनों उद्योगों में एक साधन की सीमांत उत्पादकता अनुपात $\frac{MP(K \text{ or } L)\ X}{MP(K \text{ or } L)\ Y}$ द्वारा होता है और चूंकि साधन की सीमांत उत्पादकताएं M तथा M' बिन्दुओं पर समान है अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि तथा बिन्दुओं पर वस्तु मूल्यानुपात $\frac{Px}{Py}$ भी समान है। इस प्रकार प्रमेय का (iii) भाग का सत्यापन होता है।

प्रमेय का अन्तिम भाग यह है कि दोनों वस्तुओं X तथा Y के उत्पादन का अनुपात M तथा M' बिन्दुओं पर भिन्न भिन्न होगा। यह मामूली परिवर्तन द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। संदूक चित्र A'B'C'D' को दूसरे संदूक चित्र ABCD पर इस प्रकार रखा जाये कि D' बिन्दु D पर, D'A' तथा D'B' रेखा DB रेखा पर पड़े। जैसा कि निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

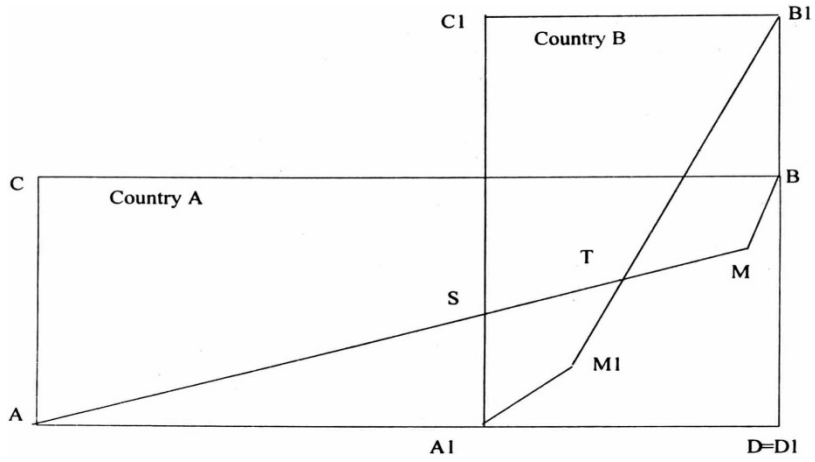

चित्र – 7.6

उपर्युक्त चित्र में स्पष्ट है कि बिन्दु A बिन्दु A' के बायीं ओर है क्योंकि AD>A'D' फलत: AM रेखा A'M' के ऊपर स्थित है। चूंकि BD<B'D' है।

अत: बिन्दु B बिन्दु B' के नीचे स्थित होगा फलत: BM रेखा, BM' रेखा के नीचे स्थित होगी।

यदि हम S तथा T बिन्दुओं पर विचार करें तो AM = AS+ST+TM चूंकि ST रेखा A'M' के समानान्तर है और TM' रेखा कुछ लम्बवत है।

अत: $ST \geq A'M'$

$AM \geq AS+TM+A'M'$

$\therefore \quad AM \geq A'M'$

लेकिन हम जानते हैं कि देश A में वस्तु X का उत्पादन M बिन्दु पर AM का समानुपाती है जबकि देश B में वस्तु X का उत्पादन M' बिन्दु पर A'M' का समानुपाती है चूंकि AM रेखा A'M' से बड़ी है अत: देश A में वस्तु X का उत्पादन देश B की तुलना में अधिक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वस्तु Y का उत्पादन देश B की अपेक्षा देश में अधिक है। चूंकि वस्तु X का उत्पादन पूंजी प्रधान है जो पूंजी सम्पन्न देश A में अधिकता से उत्पादित होता है अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रत्येक देश प्रचुर मात्रा में

उपलब्ध साधनों का गहनता से प्रयोग किये जाने वाली वस्तु का उत्पादन करता है इस प्रकार प्रमेय का भाग (iv) भाग भी प्रमाणित हो जाता है।

सम्बन्धित बिन्दुओं का सिद्धान्त हैक्शर ओहलिन व्यापार मॉडल की महत्वपूर्ण विशेषताओं की व्याख्या प्रस्तुत करता है।

यहां एक प्रश्न उठाया जाता है कि क्या दोनों देशों में पूर्ण विशिष्टीकरण होगा? आमतौर पर यह विचार किया जाता है कि दोनों ही देश प्रत्येक वस्तु का उत्पादन कुछ सीमा तक करते रहेंगे। फिर भी पूर्ण विशिष्टीकरण की संभावना नकारी नहीं जा सकती। प्रो. एस. मुकर्जी इसका निष्कर्ष निम्न शब्दों में देते हैं :-

दोनों देश में से एक देश में पूर्ण विशिष्टीकरण की संभावना इस बात पर निर्भर करती है कि दोनों देशों में साधनों की उपलब्धि दोनों वस्तुओं के साधनों की निष्ठता (Intensities) की तुलना में कितनी भिन्न है जब साधनों की सापेक्षिक उपलब्धि, साधनों की निष्ठता की भिन्नता से काफी ज्यादा है तो प्रत्येक देश में उस वस्तु के उत्पादन के पूर्ण विशिष्टीकरण की प्रवृति होगी जिसमें तुलनात्मक लाभ प्राप्त है।

7.5 हैक्शचर - ओहलिन के सिद्धान्त की आलोचनाएं

यद्यपि हैक्शचर ओहलिन का सिद्धान्त की तुलना में अधिक विस्तृत व तर्क संगत व्याख्या प्रस्तुत करता है फिर भी यह आलोचना से मुक्त नहीं है। इस सिद्धान्त की निम्न आधारों पर आलोचनाएं की गई हैं :-

सर्वप्रथम सिद्धान्त के सरल परन्तु अवास्तविक मान्यताओं को लेकर आलोचना की गई है ये मान्यताएं यथार्थता से दूर है अत: इन पर संदेह होता है और हैक्शचर-ओहलिन सिद्धान्त एक काल्पनिक सिद्धान्त लगने लगता है। वास्तव में पूर्ण प्रतियोगिता, स्थिर लागतों को सिद्धान्त, यातायात लागत का न होना, स्वतंत्र व्यापार आदि भुलावा मात्र के अतिरिक्त क्या है? अन्य बातें समान रहने पर वाक्यांश अर्थशास्त्र को अधिक खरा और पूर्ण बनाने के लिये किया गया प्रयत्न है पर इन स्थिर

बातों को गतिशील संसार में सत्य मान लेना कितनी भारी भूल है। इसी प्रकार यह मान्यता की संसार में लोगों की रुचियां (Tastes), साधनों की उपलब्धि और तकनीकी ज्ञान स्थिर और सीमित है; सत्यता से कितना दूर है।

दूसरी आलोचना का बिन्दु साधन शब्द को लेकर की गई है। उत्पादन के साधन की सही ढंग से परिभाषित करना कठिन है। कारण है कि समस्त साधन कई कार्यों के लिए एक रूप (Homogeneous) नहीं हैं। हम जब यह कहते हैं एक देश विशेष भूमि प्रधान है तो उससे ध्वनि निकलती है कि वह भूमिनिष्ठ वस्तुओं का उत्पादन बढ़ायेगा और उनका निर्यात भी करेगा। ऐसा कहने पर भी हमारा तात्पर्य स्पष्ट नहीं हो पाता है क्योंकि हम स्पष्ट रूप से नहीं कर सकते हैं कि यहां भूमि प्रधानता का क्या तात्पर्य है? क्या साधन भूमि का तात्पर्य चरगाह से ले अथवा ऐसी उपजाऊ भूमि से ले जहां चावल उत्पन्न किया जा सकता है अथवा ऐसी भूमि से ले जो वन सम्पदा से परिपूर्ण है? अत: भूमि का तात्पर्य इतना विस्तृत है कि दो देश एक दूसरे को भूमि निष्ठ वस्तुओं का निर्यात कर सकते हैं जैसे एक देश चावल का निर्यात करे और दूसरा देश पहले देश को मांस (गोश्त) का निर्यात करे। इस तर्क को यदि हम एक चरण आगे बढ़ावे तो यों कह सकते हैं - जिन देशों अथवा क्षेत्रों के साधनों की उपलब्धि एक समान है वहां व्यापार के आधार को समझने में हैक्शचर ओहलिन की उपयोगिता सीमित है।

जिस तरह विभिन्न प्रकार की भूमि, श्रम, पूंजी की परिभाषा देना कठिन है उसी प्रकार पूंजी को श्रम से और पूंजी को भूमि से पृथक करना कठिन है। पूंजी को श्रम से पृथक करने में कठिनाई उस समय और अधिक हो जाती है जब प्रशिक्षित कुशल श्रमिक वस्तुओं के उत्पादन में लगे हुए हैं। इसी प्रकार भूमि और पूंजी को भी पृथक करना कठिन है तो फिर ऐसे साधनों से उत्पादित वस्तुओं के पूंजीनिष्ठ या श्रमनिष्ठ माने?

कभी-कभी एक वस्तु विशेष ज्यादा भूमि अथवा ज्यादा पूंजी दोनों से उत्पन्न की जा सकती है। यहां साधनों का प्रतिस्थापन होता है जो उन साधनों की प्राप्ति पर निर्भर है। किडलबर्गर यहां अंडों का उदाहरण देते हैं। अंडों को ज्यादा भूमि (विस्तृत भूभाग में मुर्गे-मुर्गियों के विचरण करते हुए) पर उत्पन्न किया जा सकता है अथवा ज्यादा पूंजी से भी उत्पन्न किया जा सकता है। जहां आधुनिक तरीकों से अंडों को उत्पन्न किया जाता है। यहां भूमि और श्रम को पूंजी ने प्रतिस्थापित किया है। अत: यह कहना उचित नहीं है कि एक वस्तु विशेष केवल भूमि अथवा श्रम अथवा पूंजी से ही उत्पन्न की जा सकती है।

एक अन्य प्रकार की कठिनाई यह है कि वस्तुओं और उत्पत्ति के साधनों को भी कभी भी पृथक नहीं किया जा सकता है। आजकल विश्व का काफी व्यापार अन्तिम वस्तुओं (Final Product) का न होकर बीच की वस्तुओं (Intermediate Products) का होने लगा है। ये बीच की वस्तुऐं अन्तिम रूप से उपयोग में नहीं ली जाती हैं अपितु अन्य वस्तुओं को निर्माण करने में काम में आती हैं। जैसे जापान कच्चा लोहा आस्ट्रेलिया से मंगाता है और कोयला संयुक्त राज्य अमेरिका से, फिर भी वह इस्पात से बनी वस्तुओं के उत्पादन में दक्षता प्राप्त किये हुए है। यह सब इस बात की पुष्टि करते हैं कि बीच की वस्तुओं के व्यापार ने विशिष्ट साधनों के महत्व को कम कर दिया है और फलस्वरूप साधन अनुपात का सिद्धान्त भी अपने महत्व को खो रहा है।

आज की दुनियां में वस्तुओं की उपयोग करने के स्वभावों और रुचियों में काफी परिवर्तन होता देखा गया है रेग्नर नर्कस ने ठीक बताया है कि प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व की तुलना में आजकल प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration effects) ज्यादा शक्तिशाली है।

जिस तरह से रुचियां बदलती हैं उसी प्रकार से विकास की इच्छा से साधनों की प्राप्ति भी बदलती है। पूंजी और श्रम में तो परिवर्तन होता ही है श्रम शक्ति के वृद्धि और विकास के साथ पूंजी में भी सुधार और अभिवृद्धि

होती है इस प्रकार श्रम की कुशलता के परिवर्तन, पूंजी के तकनीक में परिवर्तन अन्त में वस्तुओं के स्वरूप को भी बदल देगी। इस प्रकार ये परिवर्तन हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त की स्थिर मान्यताओं पर एक असहनीय प्रहार है।

एल्सवर्थ लिखते हैं कि जिन देशों में साधनों के अनुपात समान हैं वे आपस में इसलिये व्यापार करते हैं कि वस्तुओं की लागतों को कम करने के अनेक घटक उत्तरदायी होते हैं वे कहते हैं कि लागतों के तुलनात्मक अन्तर वास्तव में विशुद्ध लागत के अन्तर स्वरूप धारण कर लेते हैं हमें सभी प्रकार के लागतों को जोड़कर देखना चाहिए न केवल श्रम लागत को जैसा कि रिकार्डो ने माना था। ये लागते हैं - श्रम की भिन्नताओं की, पूंजी की भिन्नताओं की प्राकृतिक साधनों की भिन्नताओं की, कच्चे माल के यातायात की भिन्नता की आदि इसके साथ आन्तरिक और बाह्य बचतों के कारण लागतों में जो भिन्नता आती है उसे भी उचित महत्व देना चाहिए। इस प्रकार इन समस्त प्रकार की लागतों के सामुहिक प्रभाव को हैक्शचर-ओहलिन ने नहीं बतलाया था।

हालांकि मांग पक्ष का उल्लेख हैक्शचर-ओहलिन के सिद्धान्त में आता है पर मांग के पीछे इसको भिन्न स्वरूप देने वाले तत्वों का विश्लेषण तटस्थता वक्र रेखाओं द्वारा नहीं समझाया गया है। अत: पक्ष का अधूरा विश्लेषण इस सिद्धान्त में प्राप्त होता है।

इन सब आलोचनाओं के बावजूद भी हैक्शचर ओहलिन का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में एक केन्द्रीय स्थान बनाये हुए है। इस सिद्धान्त से यह समझ में आता है कि विभिन्न साधनों की उपलब्धियों से उन साधनों की कीमतें कम हो जाती है इन कम कीमतों वाले साधनों की सहायता से देश विशेष उन वस्तुओं का निर्माण करते हैं। जिनमें ये सस्ते और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध साधन काम में आते हैं। ये उत्पादित वस्तुऐं दूसरे देशों की तुलना में स्वदेश में सस्ती पड़ेगी। इस सिद्धान्त से यह भी

ज्ञात होता है कि वस्तु विशेष का उत्पादन, भिन्न साधनों को भिन्न अनुपातों में मिश्रित करके किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त से प्रेरणा लेकर अनेक अर्थशास्त्रियों ने इसकी परख करने के लिये अनेक भौतिक जाँचें आरम्भ की है। उनके बारे में अलग अध्याय में पढ़ेंगे।

यह सिद्धान्त अपनी मौलिकता के कारण विवेचना का केन्द्रीय बिन्दु बना। मोटे तौर पर अर्थशास्त्री इसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार मानते हैं। यह सिद्धान्त साधन कीमत समतुल्यता के सिद्धान्त (Factor Price Equalization Theorem) का जन्मदाता है इसे अगले भाग में स्पष्ट करेंगे।

7.6 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय (Factor Price Equalization Theorem)

साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त हैक्शचर ओहलिन के साधन अनुपात सिद्धान्त से निकाला गया एक महत्वपूर्ण उपसिद्धान्त (Corollary) है। इस सिद्धान्त का विकास व वैज्ञानिक विश्लेषण प्रो. सेम्युलसन ने किया है।

यह सिद्धान्त बताता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण देशों के बीच न केवल वस्तुओं की कीमतों में बल्कि साधनों की कीमतों में समानीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है दूसरे शब्दों में यदि अन्य बातें समान रहे तो साधनों के आवागमन की भांति वस्तुओं का स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने के कारण निरपेक्ष प्रतिफल या साधनों की कीमतें प्रत्येक व्यापाररत देश में समान हो जाती हैं।

साधन कीमत समानीकरण की इस प्रवृत्ति को निम्न चार्ट द्वारा दर्शाया जा सकता है। श्रम सम्पन्न देश भारत तथा पूंजी सम्पन्न देश अमेरिका में व्यापार प्रारम्भ होने के कारण साधन कीमतों के परिवर्तन चार्ट में दर्शायेनुसार होंगे।

चार्ट

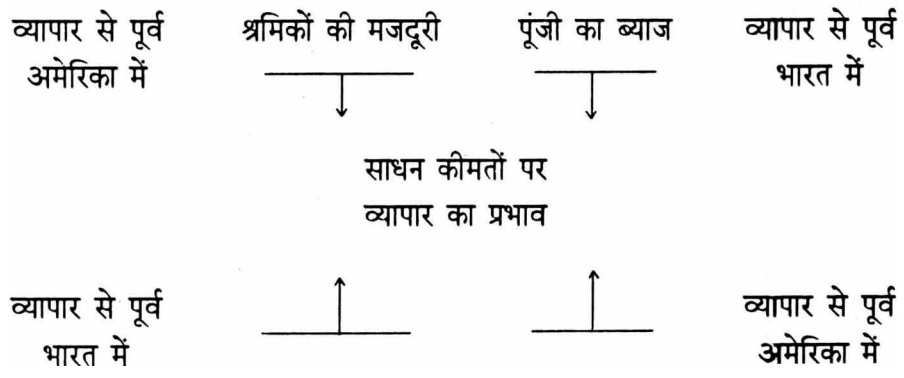

उपरोक्त चार्ट में व्यापार पूर्व साधन कीमतें क्षैतिज रेखाओं की ऊँचाई द्वारा दर्शायी गयी है तथा व्यापार के साधन कीमतों पर प्रभाव को तीरों की दिशा द्वारा दर्शाया गया है। दोनों राष्ट्रों के तीर एक दूसरे की ओर अग्रसर हो रहे हैं। अर्थात् साधन कीमत समानीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई दे रही है। साधन कीमत समानीकरण की चह प्रवृत्ति उस समय तक जारी रहेगी जब तक कि राष्ट्र पूर्ण विशिष्टीकरण न कर ले अथवा साधन कीमतें पूर्णतया समान न हो जायें।

7.6.1 प्रमेय की मान्यताएँ

सैम्युलसन ने साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्तों का कुछ प्रतिबंधक मान्यताओं के अन्तर्गत एजवर्थ बाउले बाक्स रेखाचित्र की सहायता से समझाने की कोशिश की है। प्रमेय की मान्यताएं निम्न हैं।

1. दो देश, दो वस्तुऐं तथा दो साधनों के द्वारा वस्तुए उत्पादित की जाती हैं।
2. साधन बाजार व वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है।
3. प्रत्येक का उत्पादन उत्पत्ति के दो साधनों श्रम और पूंजी से होता है तथा उत्पादन-फलन समता नियम व्यक्त करता है।
4. सीमांत उत्पादका ह्रास नियम लागू होता है।
5. दोनों देशों में श्रम व पूंजी की अलग-अलग मात्रा उपलब्ध है अर्थात यदि देश A पूंजीगहन है तो देश B श्रम गहन होगा गणितीय रूप में

$\left(\frac{K}{L}\right)_A > \left(\frac{K}{L}\right)_B$ लेकिन श्रम और पूंजी की इकाईयां गुणात्मक रूप में समान हैं।

6. दोनों देशों में किसी दी हुई वस्तु के लिये उत्पादन फलन एक समान हैं।
7. पूर्ण विशिष्टीकरण का अभाव है।
8. दोनों देशों के मध्य स्वतंत्र व्यापार होता है और परिवहन लागतों का अभाव है।
9. प्रत्येक देश में उत्पादन के साधनों की मात्राएं अपरिवर्तित रहती हैं।
10. दोनों देशों में उपभोक्ताओं के पसंदगी व स्वाद समान तथा अपरिवर्तनीय हैं अत: एक दिये गये वस्तु कीमत अनुपात पर प्रत्येक देश में वस्तुओं की मांग अनुपात समान होगा क्योंकि वस्तु मांग संरचना समान है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर चित्र 7.7 की सहायता से सैम्युलसन ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता की अपेक्षा वस्तुओं का आदान-प्रदान बेहतर है तथा इस लेन-देन से पूर्ण बाजार में स्वत: ही न केवल वस्तुओं की अपितु उत्पादन के साधनों की कीमतें भी समान हो जायेंगी।

चित्र 7.7 में दो देश A व B जिन्हें बाक्स क्रमश: XZYQ तथा XZ'Y'P' द्वारा प्रदर्शित किया गया है जिनके वस्तु X के उत्पादन का उभय मूल बिन्दु X है। चूंकि दोनों देशों में साधन अनुपात भिन्न-भिन्न हैं अत: वस्तु Y के उत्पादन हेतु मूल बिन्दु दोनों देशों में पृथक है

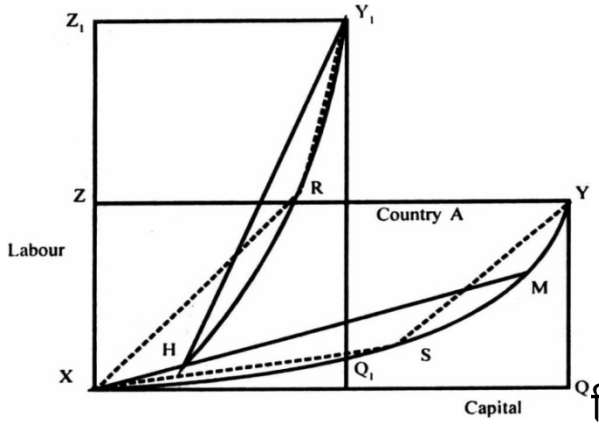

चित्र - 7.7

चित्र में Y', देश B में तथा Y, देश A में हैं। परिणाम स्वरूप देश A का प्रसंविदा वक्र (Contract Curve) XY तथा देश B का XY' है।

यह माना गया है कि व्यापार से पूर्व देश A बिन्दु S पर तथा देश B बिन्दु R पर उत्पादन तथा उपभोग कर रहे हैं अर्थात बिन्दु S व बिन्दु R दोनों देशों में अपने व्यक्तिगत मांग स्थिति के अनुसार निर्धारित साम्य बिन्दु है इन बिन्दुओं पर पूंजी-श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ वस्तु X तथा वस्तु Y के लिये देश A में देश B से अधिक है अर्थात्

$$\left(\frac{KX}{LX}\right)A > \left(\frac{KX}{LX}\right)B \text{ तथा}$$

$$\left(\frac{KY}{LY}\right)A > \left(\frac{KY}{LY}\right)B$$

चित्र में उपरोक्त स्थिति क्रमश: वस्तु X तथा वस्तु Y के लिये इस बात से प्रमाणित है कि रेखा XR, रेखा XS की तुलना में ज्यादा लम्बवत है तथा Y'R रेखा, YS रेखा की तुलना में ज्यादा लम्बवत है।

चूंकि देश A में देश B की तुलना में दोनों वस्तुओं (वस्तु X तथा वस्तु Y) में अधिक पूंजी उपयोग की जाती है जिससे स्पष्ट है कि देश A में पूंजी का प्रतिफल देश B की तुलना में कम है इसका अर्थ है कि देश A में पूंजी श्रम से तुलनात्मक में सस्ती है। अर्थात् (PK)A<(PL)A इसी प्रकार दूसरे

शब्दों में इसके विपरीत यदि दोनों वस्तुओं में श्रम पूंजी अनुपात $\left(\frac{L}{K}\right)$ दोनों वस्तुओं के लिये देश B में अधिक है तो देश B में श्रम पूंजी की तुलना में कम महंगा होगा अर्थात (PK)B<(PL)B

स्वतंत्र व्यापार मान्यता के अन्तर्गत, एक बार व्यापार प्रारम्भ होने के पश्चात्, साम्य बिन्दु पर दोनों देशों में वस्तुओं की कीमतें बराबर हो जाती है। यह तर्क से स्पष्ट है कि उत्पादन फलन समान होने पर, पैमान के स्थिर प्रतिफल की स्थिति तथा उत्पादन कीमत समान होने पर यदि दोनों देशों में प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में साधन अनुपात समान है तो साधन को प्राप्त प्रतिफल भी समान होंगे। चित्र 7.8 में यह तभी संभव है जबकि व्यापार के पश्चात् उत्पादन साम्य बिन्दु H तथा बिन्दु M हों। दोनों देश (A तथा B) में वस्तु X के उत्पादन में साधन अनुपात बिन्दु H तथा बिन्दु M पर समान है क्योंकि बिन्दु H रेखा XM पर उपस्थित है। तथा रेखा YM व रेखा Y'H समानान्तर है जिससे यह स्पष्ट है कि वस्तु Y के उत्पादन में साधन अनुपात दोनो देशों में समान है। यह स्थिति रूपान्तरण वक्त या उत्पादन सम्भावना वक्र की सहायता से अधिक स्पष्ट रूप से समझाई जा सकती है। इसे निम्न चित्र द्वारा बतलाया जा सकता है।

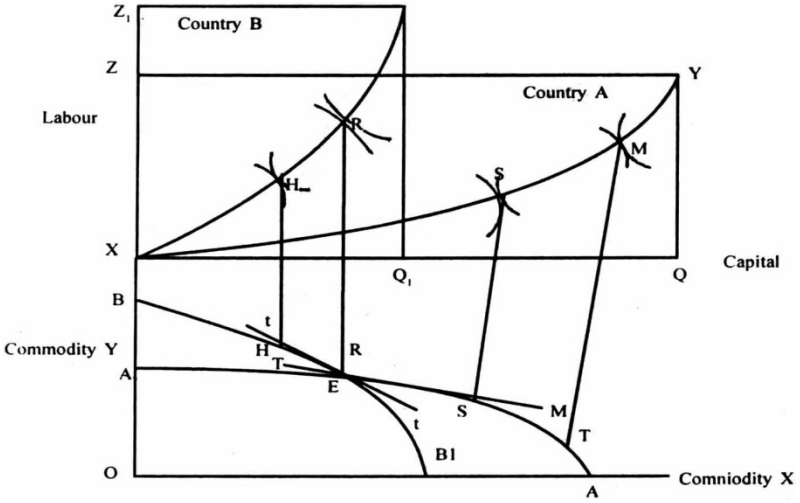

चित्र - 7.8

चित्र 7.8 से स्पष्ट है कि बिन्दु S व बिन्दु R क्रमश: देश A व B देश के व्यापार पूर्व अधिकतम कुशल बिन्दु हैं। देश A व B देश के उत्पादन सम्भावना वक्र क्रमश: AA' तथा BB' है जो कि प्रसंविदा वक्र क्रमश: XY तथा XY' द्वारा निरूपित किये गये हैं। चित्र से स्पष्ट है कि दोनों भागों को अखण्डित रेखायें जोड़ती हैं। जैसा कि यह तभी सम्भव है जबकि बाक्स चित्र में सम्पूर्ण सतह पर समोत्पत्ति वक्र होते हैं जिनके अधिकतम कुशल बिन्दु स्पर्शज्या बिन्दु हैं इसलिये प्रसंविदा वक्र के प्रत्येक बिन्दु न केवल उत्पादन साधन का संयोग प्रदर्शित करते हैं बल्कि वस्तु उत्पादन के कुशल बिन्दुओं के संयोग को भी प्रदर्शित करते हैं अत: स्पष्ट है कि प्रसंविदा वक्र के प्रत्येक बिन्दु के अनुरूप सम्भावना वक्र पर एक ही विशेष बिन्दु होता है। दोनों देशों में उत्पादन फलन संभाग (Homogenous) है अत: उनके सम्भावना वक्र AA' तथा BB' के आकार में अन्तर दोनों देशों में साधन प्रचुरता में अन्तर के होने से है। चित्र 7.8 से स्पष्ट है कि देश A वस्तु X के उत्पादन में तुलनात्मक रूप से लाभ की स्थिति में है और वस्तु X पूंजी गहन वस्तु है इस प्रकार देश B वस्तु Y के उत्पादन में तुलनात्मक रूप से लाभ की स्थिति में है और वस्तु Y श्रम गहन वस्तु है इसका प्रमाण इस बात से स्पष्ट है कि देश B में वस्तु X की उत्पादन की अवसर लागत वस्तु Y के उत्पादन में त्याग के रूप में देश A से अधिक है अर्थात वस्तु X की वस्तु Y के लिये सीमान्त उत्पादन की रूपान्तरण पर (MRPT) किसी भी उत्पादन अनुपात पर देश A की देश B से कम होती है जो इससे प्रदर्शित है कि उत्पादन सम्भावना वक्र AA' का ढाल वक्र BB' के ढाल से बिन्दु E (जो कि दोनों वक्रों का उभय बिन्दु है) पर कम है।

यह माना गया है कि दोनों देशों में मांग संरचना समान है अत: तटस्था वक्र मानचित्र एक ही होगा। यह उपभोक्ता व्यवहार सिद्धान्त से स्पष्ट है कि प्रत्येक देश में उपभोक्ता सन्तुलन उस बिन्दु पर होगा जहां पर

सीमान्त प्रतिस्थापन की दर वस्तु X की वस्तु Y के लिये और वस्तु X व वस्तु Y की कीमतों का अनुपात आपस में समान होगा गणितीय रूप में

$$MRS = \left(\frac{Px}{Py}\right)$$

इसी प्रकार प्रत्येक देश में उत्पादन सन्तुलन उस बिन्दु पर होगा जहां पर सीमान्त उत्पादन की रूपान्तरण दर (MRPT) वस्तु X की वस्तु Y के लिये तथा X व वस्तु Y की कीमतों का अनुपात आपस में समान होगा। गणितीय रूप में

$$MRTP = \left(\frac{Px}{Py}\right)$$

अत: प्रत्येक देश में उपभोग तथा उत्पादन की सन्तुलन शर्त निम्न होगी।

$$MRS = MRTP = \left(\frac{Px}{Py}\right)$$

जहां MRS - सीमान्त प्रतिस्थापन दर

MRPT - सीमान्त उत्पादन की रूपान्तरण दर

PX - वस्तु की कीमत

PY - वस्तु की कीमत

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अनुपस्थिति में यह सन्तुलन शर्त विभिन्न देशों में विभिन्न कीमत अनुपात पर संतुष्ट हो सकती है जबकि साधन प्रचुरता में भिन्नता हो चाहे उत्पादन फलन व मांग संरचना समरूप हो। चित्र 7.9 में ये सन्तुलन की शर्त देश A व देश B के लिये बिन्दु S व बिन्दु R द्वारा प्रदर्शित की गई है। S बिन्दु तटस्थता वक्र IAB व कीमत रेखा PaPa का तथा उत्पादन रूपान्तरण वक्र AA' का स्पर्शज्या बिन्दु है तथा R बिन्दु तटस्थता वक्र IAB, कीमत रेखा PbPb, एवं उत्पादन रूपान्तरण वक्र BB' का स्पर्शज्या बिन्दु है।

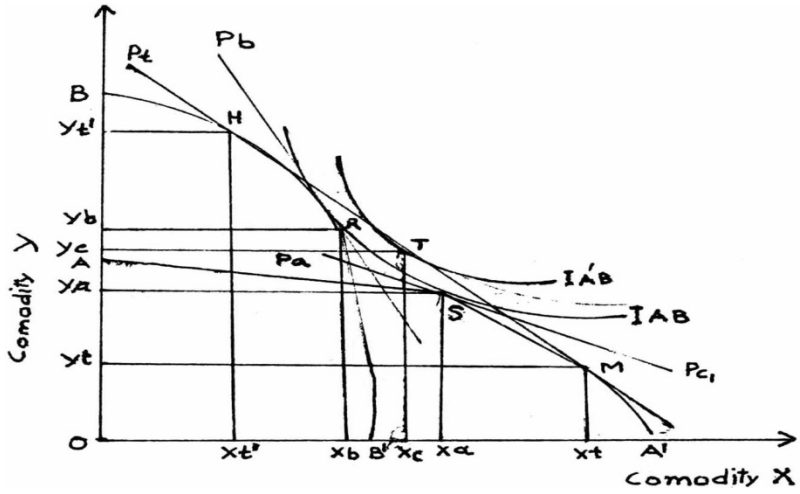

चित्र - 7.9

उपर्युक्त चित्र के अनुसार उत्पादन तथा उपयोग की व्यापार पूर्व सन्तुलन स्थिति निम्न है:

देश A में : OXa - वस्तु X की उत्पादन तथा उपभोग मात्रा

OYa - वस्तु Y की उत्पादन तथा उपयोग मात्रा

देश B में : OXb - वस्तु X की उत्पादन तथा उपभोग मात्रा

OYb – वस्तु Y की उत्पादन तथा उपभोग मात्रा

यहां पर यह स्पष्ट है कि $\left(\frac{Px}{Py}\right)A < \left(\frac{Px}{Py}\right)B$ क्योंकि PaPa रेखा का ढाल PbPb रेखा के ढाल से कम है, जिसका अर्थ है कि देश A में वस्तु X वस्तु Y की तुलना में सस्ती है जबकि देश B में वस्तु Y वस्तु X की तुलना में सस्ती है। इस तुलनात्मक लागत अन्तर के कारण दोनों देशों के मध्य व्यापार प्रारम्भ होता है।

जब दोनों देशों के मध्य व्यापार प्रारम्भ होता है तो देश A वस्तु X के उत्पादन में तथा देश वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं परन्तु यह विशिष्टीकरण अपूर्ण ही रहता है। यहां यह मान्यता लेकर की व्यापार मुक्त है अर्थात् कोई व्यापार प्रतिबन्ध नहीं तथा न ही परिवहन लागते हैं। दोनों देश वस्तुओं का व्यापार समान

कीमत पर करते हैं। अत: व्यापार के पश्चात् कीमत अनुपात $\left(\frac{Px}{Py}\right)t$ चित्र 7.9 में अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा PtPt के ढाल द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। कीमत रेखाओं के विभिन्न ढाल से यह स्पष्ट है कि

$$\left(\frac{Px}{Py}\right)A<\left(\frac{Px}{Py}\right)t<\left(\frac{Px}{Py}\right)B$$

अर्थात व्यापार देश A में वस्तु कीमत अनुपात को बढ़ाता है तथा देश B में कम कर देता है परिणाम स्वरूप देश A में वस्तु X का उपभोग कम होता है तथा वस्तु Y का बढ़ता है जबकि देश B में इसके विपरीत घटना घटती है। लेकिन व्यापार के पश्चात् भी दोनों देशों में उपभोग संरचना समान बनी रहती है परन्तु व्यापार के पश्चात् दोनों देश सन्तुष्टी के उच्चतर बिन्दु पर पहुंच जाते हैं यह तटस्थता वक्र I' AB द्वारा प्रदर्शित है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा PtPt पर स्पर्शज्या है।

अत: व्यापार के अन्तर्गत साम्य के लिये निम्नशर्त होगी :-

$$(MRPT')A = (MRPT')B = \left[\frac{P_X}{P_Y}\right]_A = \left[\frac{P_X}{P_Y}\right]_B = (MRS')B = (MRS')A$$

यहां पर MRS' उच्च तटस्थता वक्र को प्रदर्शित करता है। यह शर्त उपर्युक्त विश्लेषण में जब देश A उत्पादन सम्भावना वक्र के बिन्दु M पर उत्पादन करता है तथा देश B उत्पादन सम्भावना वक्र के बिन्दु H पर उत्पादन करता है तब सन्तुष्ट होती है। तथा दोनों देश तटस्थता वक्र I'AB के T बिन्दु पर उपभोग कर रहे हैं। अत: व्यापार के पश्चात् उपभोग उत्पादन परिस्थिति निम्न है।

उपभोग	**देश A**	**देश B**
वस्तु X	OX_C	OX_C
वस्तु Y	OY_C	OY_C
उत्पादन	**देश A**	**देश B**
वस्तु X	OX_t	OX_t'

वस्तु Y	OY_t	OY_t'

बिन्दु M तथा बिन्दु H पर दो देशों के घरेलू कीमत अनुपात दो वस्तुओं (वस्तु X तथा वस्तु Y) के अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात के समान है क्योंकि इन बिन्दुओं पर अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा PtPt स्पर्शज्या है तथा व्यापार के पश्चात दोनों देशों की घरेलू कीमत रेखा PaPa तथा PbPb का ढाल परिवर्तित होकर अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा PtPt के ढाल के समान हो जाती है। अत: इससे स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात सन्तुलन स्थिति में दो देशों के वस्तुओं के घरेलू कीमत अनुपात आपस में समान हो जाते हैं।

चित्र 7.9 केवल दो देशों में वस्तुओं की कीमतों में समानीकरण को प्रदर्शित करता है जबकि यह साधन कीमतों को नहीं। इसको जानने के लिये हमें पुन: बाक्स चित्र पर जाना पड़ेगा। बाक्स चित्र प्रत्यक्ष रूप से साधन कीमत अनुपात को प्रदर्शित करता है जबकि वस्तु कीमत अनुपात को नहीं । लेकिन जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि प्रसंविदा वक्र के प्रत्येक बिन्दु से सम्बन्धित रूपान्तरण वक्र पर एक निश्चित बिन्दु होता है। अत: इसके विपरीत भी सत्य होगा अर्थात रूपान्तरण वक्र के प्रत्येक बिन्दु से सम्बन्धित प्रसंविदा वक्र पर एक निश्चित बिन्दु होता है।

इसलिये चित्र 7.9 में व्यापार से पूर्व तथा व्यापार के पश्चात साम्य पर वस्तु कीमतों में परिवर्तन साधन कीमतों में परिवर्तन को बतलाता है।

चित्र में बिन्दु R तथा बिन्दु S जो कि दोनों देशों के समोत्पति वक्रों पर स्पर्शज्या है उनसे सम्बन्धित प्रसंविदा वक्र बिन्दु क्रमश: वस्तु X तथा वस्तु Y के उत्पादन में उपभोग के लिये गये साधन अनुपात को प्रदर्शित करते हैं चूंकि वस्तु पूंजीगहन है अत: यह स्पष्ट है कि

$$\left(\frac{Px}{Py}\right)A < \left(\frac{Px}{Py}\right)B$$

इसलिये $$\left(\frac{Pk}{PL}\right)A < \left(\frac{Pk}{PL}\right)B$$

यह कीमत रेखा P_aP_a तथा P_bP_b के ढाल में अन्तर से स्पष्ट नजर आता है।

व्यापार से पूर्व देश A तथा B में सापेक्ष साधन प्रचुरता क्रमश: XS व XR तथा रेखाओं से प्रदर्शित है क्योंकि दोनों के ढाल में अन्तर है। XS रेखा ज्यादा क्षैतिज या लेटी हुई है जो इस बात को बतलाती है कि देश A सापेक्ष रूप में पूंजी प्रचुर है तथा XR रेखा लम्बवत ज्यादा है जो यह प्रदर्शित करती है कि देश B सापेक्ष से श्रम प्रचुर है। लेकिन व्यापार के पश्चात साम्य बिन्दु M तथा H है जिनमें साधन अनुपात रेखा देश A तथा B देश के लिये MY तथा HY' द्वारा बतलाई गई है चूंकि MY तथा HY' रेखायें आपस में समानान्तर हैं जो कि व्यापार के पश्चात समान साधन प्रचुरता को प्रदर्शित करती है अर्थात इसका यह अर्थ है कि व्यापार के पश्चात दो देशों में व्यापार की मांग का प्रभाव सापेक्ष साधन अनुपात के अन्तर को समाप्त कर देता है अत: व्यापार से पूर्व की स्थिति $\left(\frac{Pk}{PL}\right)A < \left(\frac{Pk}{PL}\right)$ जो परिवर्तित होकर व्यापार के पश्चात $\left(\frac{Pk}{PL}\right)B$ के घटने तथा $\left(\frac{Pk}{PL}\right)A$ के बढ़ने के साम्य की स्थिति में $\left(\frac{Pk}{PL}\right)A = \left(\frac{Pk}{PL}\right)B$ हो जाती है।

7.7 साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त की आलोचना

प्रो. सैमुअलसन का समर्थन अनेक लेखकों ने किया है, जिनमें प्रो. जे. आर. हिक्स, प्रो. जे. ई. मीड और प्रो. एच. जी. जानसन प्रमुख हैं। फिर भी आलोचकों की कमी नहीं है। आलोचना के बिन्दुओं को हम संक्षेप में भी समझायेंगे।

चूंकि यह सिद्धान्त हैक्शचर-ओहलिन के सिद्धान्त पर आधारित है। अत: हैक्शचर-ओहलिन के बिन्दु इस सिद्धान्त पर भी लागू होंगे, फिर भी इतने से हम संतोष नहीं कर सकते। प्रो. सैमुअलसन के तर्क के पीछे सुदृढ़ आधार है फिर भी उसकी मान्यताएं बड़ी कड़ी हैं। अत: उनका परीक्षण

करना आवश्यक है। हमें देखना है कि ये मान्यताएं कहां तक वास्तविकता पर आधारित हैं।

प्रो. जे.ई. मीड ने अपनी पुस्तक Trade & Welfare के पाठ 20 और 24 में लिखा है कि निम्नलिखित कारणों से साधन कीमत समानता सूत्र संपूर्ण नहीं हो सकता। निम्नलिखित छ: कारणों से समतुल्यता अधूरी है।

1. व्यापार करते हुए भिन्न-भिन्न देशों के उत्पादन फलन समान नहीं हैं। यह तथ्यों द्वारा तथा तर्क द्वारा सिद्ध किया गया है कि उत्पादन फलन पृथक देशों में पृथक प्रकार के ही होंगे। एक प्रकार के दिये हुए साधन समान प्रकार का उत्पादन दो देशों में नहीं कर सकते। उत्पादन के तकनीक समान होने पर भी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उत्पादन में एकरूपता और समानता असंभव है। उत्पादन की "जलवायु" भौतिक जलवायु, सामाजिक और मानसिक जलवायु भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होती हैं। ऐसी परिस्थितियों में उत्पादन फलनों के समान मान लेना बड़ी भूल होगी। यह ठीक कहा गया है कि एक ही प्रकार की पाठ्य पुस्तकें और एक ही प्रकार के मस्तिष्क नई दिल्ली और न्यूयार्क में समान विचार उत्पन्न नहीं कर सकते।
2. यह जरूरी नहीं है कि उत्पत्ति समता नियम सदैव लागू हो। निम्नलिखित उदाहरण इस स्थिति को अधिक स्पष्ट करता है। मानलो न्यूजीलैंड की अपेक्षा जर्मनी में श्रम साधन से निष्ठ है, इससे मोटर कार उत्पन्न की जाती है। इसके विपरीत जर्मनी की अपेक्षा न्यूजीलैंड भूमि से निष्ठ है। इससे डेयरी का उत्पादन तुलनात्मक रूप से न्यूजीलैंड में ज्यादा होता है। हैक्शचर-ओहलिन के सिद्धान्त के अनुसार मोटरकार और डेयरी के उत्पादन का आदान-प्रदान होने से परिस्थिति में साधन निष्ठता का प्रभाव भी मिट जाता है। जर्मनी में मजदूरी ऊंची होने लगेगी और लगान कम होने लगेगा। न्यूजीलैंड में इसका विपरीत प्रभाव होगा अनेक मान्यताओं के आधार पर (समता उत्पत्ति समता नियम दिया हुआ है।) सैमुअलसन के तर्क यह ध्वनि देते हैं कि आपस में

व्यापार करते हुए दोनों देशों में उत्पत्ति के साधनों की कीमतें भी बराबर हो जायेंगी। इस बिन्दु पर दोनों देशों में श्रम की सीमान्त उत्पादकता बराबर हो जायेगी परन्तु मानलो जर्मनी ने (मोटरकार का बड़ा उत्पादक) कार के उत्पादन में समस्त प्रकार के बड़े पैमाने के लाभ खो दिये हैं। इसके विपरीत न्यूजीलैंड कार का छोटा उत्पादक होते हुए भी अनेक बचतों को करने में समर्थ है। इस प्रकार कार के उत्पादन में उत्पत्ति के साधनों की औसत उत्पादकता जर्मनी में न्यूजीलैंड की अपेक्षा अधिक हो सकती है। क्योंकि जर्मनी में निरपेक्ष पैमाने का क्रियान्वयन अधिक है। न्यूजीलैंड में श्रम की सीमान्त उत्पादकता अधिक हो सकती है। यह संभव है कि न्यूजीलैंड में उत्पत्ति के साधनों की सीमान्त उत्पादकता, जर्मनी की अपेक्षा ऊंची अथवा नीची हो सकती है। लेकिन जहां उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है वहां पर उत्पत्ति के साधनों की सीमान्त उत्पादकता दोनों देशों में बराबर हो सकती है। इस स्थिति की गैर हाजरी में यह अच्छा रहेगा कि उत्पत्ति के साधन एक देश से दूसरे देश की ओर जायें। यह इस बात को दिखायेगा कि जहां साधनों की उत्पादकता नीची है, कम है, वहां से दूसरी देश की ओर जहां साधनों की उत्पादकता अधिक है, साधन गतिशील होंगे। अत: यह सिद्ध होता है कि साधन कीमत समतुल्यता यथार्थता में समाप्त हो जाती है।

3. यातायात के लागत खर्चों को न मानते हुए यह सिद्धान्त स्वत: वास्तविकता से परे सिद्ध होता है। ऐसी परिस्थिति में मक्खन की कीमत बर्लिन में अधिक होगी। (जर्मनी की राजधानी में न्यूजीलैंड की राजधानी) में कम होगी। इसके विपरीत न्यूजीलैंड में मोटर कार की कीमत जर्मनी के अपेक्षा अधिक होगी। क्या स्वतंत्र व्यापार द्वारा वस्तुओं की कीमतें बराबर हो जाती है? नहीं निश्चित रूप से नहीं। ऐसी परिस्थिति में यह लाभदायक होगा कि जर्मनी से न्यूजीलैंड को श्रम शक्ति गतिशील हो।

4. मान लीजिए दोनों देशों में से एक देश में सम्पूर्ण विशिष्टीकरण एक वस्तु के उत्पादन में प्राप्त कर लिया है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में यह सम्पूर्ण विशिष्टता साधन कीमत समतुल्यता के लिये बाधक सिद्ध होगी। यह समतुल्यता तभी प्राप्त हो सकती है जबकि उत्पत्ति के साधन एक देश से दूसरे देश की ओर जायें। प्रो. सैमुअलसन ने तो उत्पत्ति के साधनों के बहिगर्मन की आवश्यकता नहीं समझी थी। इसके बहिगर्मन के अभाव से ही साधन समतुल्यता स्थापित करने का उन्होंने जो दावा किया है, वह गलत सिद्ध होता है।
5. सैमुअलसन ने यह उपकल्पना की है कि दो वस्तुयें और दो साधन मिलकर साधन कीमत समतुल्यता स्थापित हो जायेगी। यह सदैव सत्य नहीं हैं। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में दो साधनों और दो वस्तुओं के स्थान पर अनेक उत्पत्ति के साधन और अनेक वस्तुओं का व्यापार होता है। ऐसी परिस्थिति में हम तीसरा, उत्पत्ति का साधन पूंजी मानते हैं। अब क्या परिणाम होगा? पूंजी की जर्मनी में सापेक्षिक कम कीमत, न्यूजीलैंड की सापेक्षिक भूमि की ऊंची कीमत ही को मिटा देगी। ऐसी परिस्थिति में मोटर कारों की और डेयरी की वस्तुओं की कीमतें बराबर हो जायेगी। यह स्थिति पहली स्थिति की अपेक्षा शीघ्र होने की संभावना है। साथ ही श्रम और पूंजी के साधनों की सीमान्त उत्पादकता के स्थगित हुए बिना ही यह स्थिति विद्यमान हो जायेगी। अत: हम मोटे रूप से कह सकते हैं "साधनों की पुरस्कार की समतुल्यता के लिये यह जरूरी है कि जितनी वस्तुएं व्यापार में काम आती है, उतने ही उत्पत्ति के साधन होने चाहिये। यहां तीन वस्तुयें मानी गयी हैं और तीन ही साधन माने गये हैं।
6. वास्तविक दुनियां में समझदार उत्पादकों का यह प्रयत्न रहता है कि वे उत्पत्ति के साधनों का उनकी सापेक्षिक कीमतों के अनुसार प्रतिस्थापन करें। यह उनकी रूचि होगी कि वे प्रतिस्थापन द्वारा उत्पत्ति को अधिकतम करें और लागतों को कम करें। कभी-कभी यह लाभदायक रहता है कि एक विशेष वस्तु के उत्पादन में एक साधन की

अपेक्षा दूसरे साधन का प्रयोग किया जाये। हम यह मानकर चलते हैं कि जर्मनी भी (न्यूजीलैंड की तरह) अपनी प्रचुर मात्रा की पूंजी की सहायता से "डेयरी फार्म" आरंभ कर लें। अब अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में डेयरी वस्तुओं की कीमतें बराबर होने की प्रवृत्ति दिखलायेगी। यहां पर भी डेयरी वस्तुओं की कीमतें श्रम की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने के पूर्व ही बराबर होने की प्रवृत्ति दिखा रही है। यह सैमुअलसन के तर्कों के विपरीत है। यहां पर भी हम यह बात प्रमाणित करने में सफल हो गये हैं कि उत्पत्ति के साधनों की कीमतें बराबर न होते हुए भी प्रतिस्थापन के नियम ने सामान्य संतुलन को स्थापित कर दिया है। इससे भी यह सूत्र यर्थाथता से कितना दूर है।

उपर्युक्त वर्णित बिन्दु इस बात के लिये पर्याप्त है कि उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में होनी चाहिए तभी साधनों की कीमतों में समतुल्यता होगी। प्रो. एल्सवर्थ लिखते हैं कि यह सूत्र अवास्तविक और स्थिर विश्व में लागू होता है। पर दुनियां कभी स्थिर नहीं रहती। सब बातें परिवर्तनशील हैं। वास्तविक दुनियां में साधनों की पूर्ति तथा तकनीक बदल सकती है और बदलती है। यदि मानलो, एक देश का निष्ठ साधन पूंजी है ऐसी परिस्थिति में व्यापार द्वारा उस साधन की प्राप्ति को बढ़ावा मिलेगा। व्यापार द्वारा समस्त समुदाय की आय बढ़ेगी। इस बढ़ी हुई आय और पूंजी के ज्यादा मात्रा में पुरस्कार मिलने की स्थिति में बचतें भी अधिक होंगी। पूंजी की पूर्ति के बढ़ने पर (जब ब्याज दर कम रखी जाती है) पूंजी निष्ठ उद्योगों का विकास होगा। इससे नये तकनीक का विकास होगा। इससे और भी अधिक वास्तविक आय बढ़ेगी। यह सब, यह ध्वनि देते हैं कि धनवान देश ज्यादा पूंजी से जब उत्पत्ति प्रारम्भ करते हैं तो परिणाम यह होता है कि निकट भविष्य में उनके पास ज्यादा मात्रा में और कम कीमत वाली पूंजी की मात्रा बढ़ जाता है। इसके विपरीत जिन देशों में श्रम का बाहुल्य है और पूंजी की दुर्लभता है, वे गरीबी के कुचक्र में फंसे रहते हैं। हालांकि पूंजी से उत्पादन अधिक होता है। पर गरीब देशों के लिये बचत मुश्किल हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में पूंजी की मात्रा इन

देशों में शनै:शनै बढ़ती है। अज्ञानता और निर्धनता को बढ़ाने वाले और तत्व भी परिलक्षित होते हैं। वे हैं ऊंची जन्म दर । इससे जनसंख्या के बढ़ाने की दर और श्रम शक्ति बढ़ने की दर अधिक हो जाती हे। ऐसे देश श्रम निष्ठ वस्तुओं का उत्पादन करने में लगे रहते हैं। फिर भी मजदूरी की दर इन देशों में शनै :शनै: बढ़ती है, यहां पूंजी का प्रतिस्थापन श्रम द्वारा होता है। श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुएं कीमत में भी ऊंची होती हैं और पूर्ति की दृष्टि से तो बहुत ही कम।

इस तरह बदती हुई परिस्थितियों में साधनों की पूर्ति के बढ़ने पर और तकनीक के बढ़ने पर - साधनों की कीमतें बराबर होने की अपेक्षा कम अधिक हो जाती हैं। वास्तविक दुनियां में ऐसा ही होता हुआ देखा गया है। हालांकि गरीब देशों में प्रति व्यक्ति आय और वास्तविक मजदूरी बढ़ी हैं, पर धनी देशों में इन दोनों में ही वृद्धि तुलनात्मक रूप से अधिक हुई है। आर्थिक कार्यक्रमों का यह उद्देश्य होता है कि आय की खाई कम हो। परन्तु यहां पर तो यह खाई गहरी होती हुई दिखाई देती है।

दो अन्य अर्थशास्त्रियों ने - पीयर्स (Pearce) और जेम्स (James) ने यह विचार प्रकट किया है कि वास्तविक दुनियां में साधनों की कीमतें बराबर नहीं होती। वे लिखते हैं "जिस तरह से साधन कीमत समतुल्यता की आवश्यक शर्तों को परिभाषित करना सरल है उसी प्रकार से वास्तविक दुनियां में यह प्रदर्शित करना सरल है कि व्यापार द्वारा साधनों की कीमतें दिनों दिन बराबर होने की अपेक्षा भिन्न-भिन्न होगी। इसके विपरीत दो वस्तुऐं और दो साधनों से परे इस सिद्धान्त को प्रमाणित करना भी कठिन है। उपर्युक्त विवेचन क्या प्रमाणित करता है? हमारी आस्था यह बन रही है कि सैमुअलसन द्वारा बतायी गई शर्तें कभी भी लागू नहीं होंगी न साधन कीमत समतुल्यता स्थापित होगी ।

व्यापार द्वारा भिन्न देशों को लाभ प्राप्त होना चाहिए। साथ ही आय का वितरण भी समान होना चाहिए। पर यह देखते हैं कि साधनों की आय में दिनों दिन असमानता हो रही है। प्रो. म्रिदल (Myrdal) लिखते हैं कि

"अन्तर्राष्ट्रीय असमानताएं बढ़ती रही हैं और इससे अन्तर्राष्ट्रीय एवं राजनीतिक समस्यायें भी उभरती रही हैं। इन परिस्थितियों में यह कहना उचित है कि व्यापार द्वारा साधनों की कीमतों और आय का बराबर होना दिखाई नहीं देता। इन सबका सामुहिक प्रभाव यह होता है कि साधनों के अनुपात और साधनों की कीमतों का संतुलन स्थापित होता हुआ नहीं दिखाई देता। किण्डलबर्गर इन्हीं विचारों को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते है" यह दावा किया जाता है कि विकसित और विकासोन्मुख देशों के बीच जीवन स्तर का मान दो दिशाओं में बढ़ रहा है। (निर्धन और धनी देशों में) जीवन स्तर में खाई पैदा हो रही है। उनके जीवन स्तर में समतुल्यता नही दिखाई देती। अनेक शताब्दियों के उपरान्त भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के होते हुए भी आज भी धनी और गरीब देश विद्यमान है। कुछ लेखक सैमुअलसन के तर्कों का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि तब सैमुअलसन द्वारा बतायी गयी मान्यताएं वास्तविक दुनिया में विद्यमान नहीं होती है, तो फिर इस सूत्र का लागू होना कैसे सम्भव होगा? यदि यर्थाथ में ये मान्यताएं लागू हो जाय तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि उनका सिद्धान्त गलत सिद्ध होगा। यदि सैमुअलसन द्वारा बतायी गयी शर्तें लागू न हो तो भी यह विश्लेषण उन देशों के लिये उपयोगी हैं, जहां कि अर्थव्यवस्थायें लगभग समान हैं जैसे यूरोपियन साझा बाजार इससे यह बात स्पष्ट होती है कि व्यापार द्वारा एक साझा बाजार के देश लाभ प्राप्त करते हुए एक ही स्तर के जीवन स्तर को प्राप्त कर सकते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस सिद्धान्त में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वतंत्र व्यापार करने पर व्यापारिक देशों को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। इस सूत्र की आवश्यक शर्तें यूरोपियन साझा बाजार में लागू होती दिखाई देती है। इसलिये जहां पर समस्त देश एक समान हैं एक दूसरे के निकट हैं और एक ही प्रकार की निर्मित वस्तुओं के उत्पादन करने में विशिष्टता प्राप्त कर रहे हैं, वहां पर साधन कीमत समतुल्यता की प्रवृति अधिक है। दूसरे देशों में इसका लागू होना अब भी संदेहपूर्ण है।

7.8 सारांश

क्या हमें इस सिद्धान्त को अवास्तविक मानते हुए परित्याग कर देना चाहिये? नहीं। वास्तव में अपनी सीमाओं के साथ यह सिद्धान्त हमको अर्थशास्त्र के सामान्य संतुलन की ओर ध्यान आकर्षित कराता है। आपस में व्यापार करने पर ही सामान्य संतुलन स्थापित होता दिखाई देता है। बिना व्यापार के और लेन देन के वस्तुओं की और साधनों की कीमतों में संतुलन स्थापित होने में कठिनाई होती है। यह तर्क हैक्शचर-ओहलिन सिद्धान्त पर आधारित है, जो मोटे रूप से सही है। अत: इस सिद्धान्त को भी हम स्वीकार करते हैं। यहां तक हमने परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त, हैक्शचर-ओहलिन के सिद्धान्त और साधन कीमत समतुल्यता सत्र का विश्लेषण किया है। इनके सम्बन्ध में अनेक भौतिक जांच हुई है उन जांचों के आधार पर ही हम पूर्णरूपेण जान सकेंगे कि इन सिद्धान्तों को हम कहां तक उपयुक्त मानें। जब तक सिद्धान्त वास्तविक दुनियां में लागू होते हुए नहीं दिखाई देते तब तक उनको कैसे स्वीकार किया जा सकता है।

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सापेक्षिक साधन उपलब्धता की भौतिक अर्थ में परिभाषा देते हुए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के हैक्शचर-ओहलिन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2. हैक्शचर-ओहलिन सिद्धान्त कहां तक उपयुक्त है मूल्यांकन कीजिए।
3. दो देशों के मध्य मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणाम स्वरूप न केवल वस्तुओं की कीमतें समान हो जाती हैं अपितु साधनों के मूल्यों में भी समानता हो जाती है चित्र द्वारा स्पष्ट रूप से समझाइये।
4. साधन कीमत समानीकरण प्रमेय की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें (Reference Books)

1. Kindle Perger, C.P. – International Economics pp. 2730 and 5371
2. Kundu & Ray – International Economics pp. 185231
3. Ellsworth, P.T. – The International Economy, pp. 7398, 198201, 1980.
4. Mithani, D.M. – Introduction to international Economics, 1985.
5. Wells – International Economics, pp. 124125
6. Sodersten, B.O. – International Economics, Macmillian, 1985.

इकाई - 8

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मॉडलों का प्रमाणीकरण (Empirical Verification of International Trade Models)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का प्रमाणीकरण

8.1.1 मेकडोगाल का अध्ययन

8.1.2 स्टर्न का अध्ययन

8.1.3 बलासा का अध्ययन

8.1.4 जगदीश भगवती का अध्ययन

8.2 प्रमाणीकरण जाँचों का आलोचनात्मक अध्ययन

8.3 रिकार्डो सिद्धान्त के प्रमाणीकरण जाँचों के निष्कर्ष

8.4 हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त का प्रमाणीकरण

8.4.1 लियोन्टिफ का अध्ययन

8.4.2 लियोन्टिफ विरोधाभास का मूल्यांकन

8.4.3 लियोन्टिफ विरोधाभास का लियोन्टिफ द्वारा स्पष्टीकरण

8.4.4 लियोन्टिफ विरोधाभास का हैबरलर द्वारा स्पष्टीकरण

8.4.5 लियोन्टिफ विरोधाभास का साधन गहनता प्रतिलोमता द्वारा स्पष्टीकरण

8.4.6 लियोन्टिफ विरोधाभास का ट्राविस द्वारा स्पष्टीकरण

8.4.7 लियोन्टिफ विरोधाभास का निष्कर्ष

8.5 टोटेमोटो व इचीमूरा का अध्ययन

8.6 वाहल का अध्ययन

8.7 स्टालपर व रोसकेम्प का अध्ययन

8.8 आर. भारद्वाज का अध्ययन

8.9 हैक्शचर-ओहलिन प्रमेय के प्रमाणीकरण जॉचों के निष्कर्ष

8.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अधिकतर सिद्धान्त मान्यताओं पर आधारित होते हैं। यह सही है कि मॉडल को सरलतम रूप से प्रकट करने हेतु मान्यताओं का सहारा लिया जाता है परन्तु मान्यताएँ इतनी अवास्तविक होती हैं कि वे यथार्थ जीवन से तालमेल नहीं खाती हैं। परिणामस्वरूप सिद्धान्तों को पूर्णरूपेण जीवन की वास्तविकता में लागू करना कठिन कार्य हो जाता है। वर्तमान युग में सिद्धान्तों को भौतिक जाँच द्वारा परखा जाता है, यदि सिद्धान्त इन जाँचों पर खरे नहीं उतरते हैं तो उस सिद्धान्त का महत्व वास्तविक जगत में कम हो जाता है। अर्थशास्त्र में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रक्रिया को समझाने हेतु अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं जो आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक बिखरे हुए हैं, जबकि इन से संबंधित भौतिक जाँचे 1950 से प्रारम्भ हुई हैं। यह अन्तराल बहुत लम्बा है इसका मुख्य कारण इन सिद्धान्तों की परख करने हेतु यंत्रों (Tools) का पूर्ण विकसित नहीं होना है। वर्तमान में सांख्यिकीय विधियों कि सहायता से अब सर्वेक्षण व विश्लेषण करना संभव हो पाया है। प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित तुलनात्मक लागत सिद्धान्त व आधुनिक हैक्शचर-ओहलीन के सिद्धान्त

की भौतिक जाँच के संदर्भ में कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा किये गये विश्लेषण बतलाये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं।

8.1 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का प्रमाणीकरण

तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की भौतिक जाँच करने वाले प्रमुख अर्थशास्त्री मेकडोगाल (1951-52), राबर्ट स्टर्न (1962) एवं बेला बिलास (1963) हैं। इन्होंने अपने अध्ययन विभिन्न अन्वेषकों द्वारा संग्रहित आकड़ों के आधार पर अमेरिका (USA) व इंग्लैंड (UK) के व्यापार को आधार मानकर प्रस्तुत किये (मेकडोगाल ने 1937, स्टर्न ने 1950 व 1959 तथा बिलास ने 1950 के व्यापार से संबंधित आकड़ों का उपयोग किया था) इन अनुसंधानकर्ताओं के सामने निम्न प्रमुख समस्यायें थीं।

1. व्यापार के पूर्व वस्तुओं की कीमतें क्या थी?
2. सीधे तौर पर अमेरिका व इंग्लैंड के मध्य वस्तुओं के आदान-प्रदान का अध्ययन कठिन था।

उपरोक्त समस्याओं के बावजूद उन्होंने प्रतीपगमन विश्लेषण (Regression Analysis) की सहायता से यह देखने का प्रयास किया कि क्या मूल्य का श्रम सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख घटक है अथवा नहीं। मूल्य के श्रम सिद्धान्त के अनुसार श्रम उत्पादकताओं की भिन्नताओं के कारण भिन्न वस्तुओं की उत्पादन लागत भिन्न होगी जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की व्यापार पूर्व कीमतें भी भिन्न होंगी और यदि किसी राष्ट्र में वस्तु विशेष की कीमत कम है तो वह राष्ट्र उस वस्तु का निर्यात करेगा।

8.1.1 मेकडोगाल का अध्ययन

मेकडोगाल ने अमेरिका और इंग्लैंड के आयात और निर्यातों के 1937 के आंकड़ो का अध्ययन किया। परन्तु उनके समक्ष भौतिक जाँच में यह कठिनाई आई कि वास्तविक दुनिया में प्रशुल्क (Tariff) और यातायात व्यय (Transport Cost) विद्यमान थे जबकि रिकार्डो के तुलनात्मक लागत

सिद्धान्त में प्रशुल्क व यातायात व्यय को सम्मिलित नहीं किया गया था। सन् 1937 के अध्ययन में यह प्रशुल्क व यातायात व्यय इतने अधिक थे कि तुलनात्मक कीमतों से प्राप्त होने वाले लाभ छिप गये थे। परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न देशों के बीच व्यापार के कारण उत्पन्न होने वाले लाभ की मात्रा लोप हो गयी थी। ऐसी परिस्थिति में दो देशों के बीच में होने वाले व्यापार का अध्ययन कठिन था। अत: मेकडोगाल ने अपनी भौतिक जाँच के लिए अप्रत्यक्ष तरीका अपनाया जिसमें उन्होंने यू.एस.ए. व यू.के. के बीच होने वाले आयातों और निर्यातों का अध्ययन छोड़ना पड़ा पर उसके स्थान पर इन दोनों देशों द्वारा विश्व के अन्य देशों को किये गये आयातों, निर्यातों का सहारा लेना पड़ा। इन देशों द्वारा तीसरे बाजारों को (Third Markets) किये गये निर्यातों और आयातों को आपस में किये गये आयात और निर्यातों के समान मान लिया गया। यह धारणा इस बात पर आधारित थी कि अन्य देश भी उसी प्रकार से प्रशुल्क लगाते होंगे और व्यापार में यातायात व्यय होता होगा।

मेकडोगाल की रिकार्डो के सिद्धान्त से व्युत्पत्ति साधारण उपकल्पना यह थी कि अमेरिका, इंग्लैंड की तुलना में तीसरे देशों के बाजारों पर अधिक कब्जा कर लेगा। क्योंकि उसकी श्रम उत्पादकता अधिक थी। यहां श्रम उत्पादकता ही तुलनात्मक लागत खर्च है। इस उपकल्पना के परीक्षण हेतु उन्होंने 25 उद्योगों के आंकड़ो को काम में लिया और इन उद्योगों को अमेरिका में प्रति श्रमिक उत्पादकता व इंग्लैंड में प्रति श्रमिक उत्पादकता के अनुपात (जिसे B अनुपात कहते हैं) के अनुसार श्रेणीबद्ध किया। यदि A* अमेरिका के निर्यात व इंग्लैण्ड के निर्यात का अनुपात है। B* अमेरिका के निर्यात व इंग्लैण्ड के श्रम की उत्पादकता अनुपात हो तो उपकल्पना यह है कि यदि B* अधिक होगा तो A* भी अधिक होगा।

मेकडोगाल द्वारा प्रस्तुत आंकड़ो का विश्लेषण इस उपकल्पना को प्रमाणित करता है। इनके वास्तविक परिणामों में A* को जब उर्ध्व अक्ष

तथा B* क्षैतिज अक्ष पर (दोनों को लघुगणक पैमाने पर लिया जाता है) लेकर चित्र द्वारा प्रदर्शित करना संभव है जिसमें उत्पादकता व निर्यातों में लगभग रेखीय संबंध प्राप्त होता है। जैसा कि चित्र 8.1 में प्रदर्शित है।

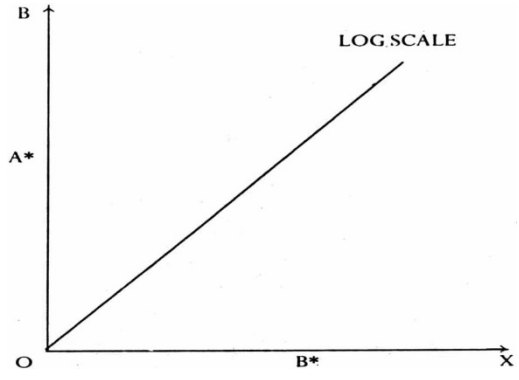

चित्र 8.1

चित्र 8.1 के आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जिन वस्तुओं के उत्पादन में अमेरिका के श्रमिकों की उत्पादकता तुलनात्मक रूप से अधिक है तब अमेरिका तीसरे देश के निर्यात बाजारों के विस्तृत भाग को अपने अधीन कर लेगा और जैसे ही अमेरिका के श्रमिकों की उत्पादकता घटती है तो उनकी सहायता से निर्मित वस्तुए भी निर्यात बाजारों से अपने अधिकार खो बैठती है। तुलनात्मक लागत सिद्धान्त अंशतया तो प्रमाणित हो जाता है क्योंकि कम श्रम लागत वाला देश अधिक निर्यात करने में समर्थ है परन्तु तुलनात्मक लागत सिद्धान्त तो यह भी कहता है कि लागत खर्चों के अन्तर होने पर भिन्न-भिन्न वस्तुओं को उत्पादन करने में, भिन्न-भिन्न देश विशिष्टता प्राप्त कर लेंगे। यह बात मेकडोगाल के अध्ययन से पूर्णरूपेण निम्न कारणों से प्रमाणित नहीं होती है।

1. जिस विश्व में हम रहते हैं वह संघर्षमय है और पूर्ण प्रतियोगिता केवल कल्पना मात्र है इससे संसार में कीमतें बहुधा अल्पाधिकार और एकाधिकार उद्योगों द्वारा निर्धारित होती है। पूर्ण प्रतियोगिता एक कल्पना मात्र ही है। ऐसी परिस्थितियों में उद्योग अपनी कीमत निर्धारित करने की पद्धति के द्वारा पृथक-पृथक बाजार बना लेते हैं। अत: विशिष्टीकरण नहीं होता है।

2. वास्तविक जीवन में यातायात का खर्च भी होता है, अत: जो व्यापार के तुलनात्मक लाभों को बहुत कुछ प्रभावित करता है।
3. अमेरिका व इंग्लैंड द्वारा एक ही प्रकार की उत्पादित वस्तुए अनेक प्रकार से भिन्न होती हैं। इस वस्तु विभेद के कारण एक देश किसी एक बाजार को पूर्णरूपेण नही छीन सकता।

मेकडोगाल ने आंकड़ो के द्वारा यह प्रमाणित किया कि अमेरिका विदेशी बाजारों पर पूर्ण आधिपत्य तभी जमा सकता था जबकि उसके श्रम की उत्पादकता इंग्लैण्ड को श्रम की उत्पादकता से दुगुनी से अधिक थी। मेकडोगाल ने इसे सापेक्षिक मजदूरी की दरें और सापेक्षिक श्रम की उत्पादकता को सम्मिलित शक्ति के रूप में विश्लेषण कर समझाया है। तुलना करके उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि सापेक्षिक श्रम लागतों और निर्यातों के संबंध अधिक घनिष्ठ हैं न कि तुलनात्मक श्रम उत्पादकता और निर्यातों की मात्रा का।

सन् 1937 में अमेरिका में इंग्लैंड की तुलना में औसत रूप में मजदूरी लगभग दुगुनी थी अत: उन्होंने तर्क दिया कि यू.एस.ए. के निर्यात इंग्लैण्ड के निर्यातों की तुलना में तब तक नहीं ठहर सकते थे जबतक कि वस्तुओं की उत्पादन में इंग्लैंड की तुलना में अमेरिका आधी मात्रा के श्रमिकों की मांग (वस्तुओं के उत्पादन के लिए) करते थे। अन्य शब्दों में तीसरे बाजारों में अमेरिका एक प्रमुख निर्यातक देश होना चाहिए। यह तब संभव है जब अमेरिका की कुछ वस्तुओं को उत्पन्न करने में श्रम की उत्पादकता इंग्लैंड की तुलना में दुगुनी हो। उसी तरह इंग्लैण्ड भी अपने यहां से कुछ वस्तुओं का निर्यात कर सकता था जिनको उत्पन्न करने में अमेरिका की तुलना में उसकी उत्पादकता आधे से अधिक हो।

मेकडोगाल के जाँच के परिणाम उसकी आशाओं के अनुरूप ही निकले। वास्तव में अमेरिका से तीसरे बाजारों को कुछ वस्तुओं का निर्यात अधिक होता था। जिन वस्तुओं की उत्पादकता इंग्लैंड की तुलना में दुगुनी थी। जहां उत्पादकता इससे कम थी वहां अमेरिका के निर्यात कम ही रहते थे । उन्हें फिर भी आशा थी कि जहां अमेरिका के श्रम की उत्पादकता

इंग्लैंड के श्रम की उत्पादकता से केवल दुगनी ही थी वहां दोनों के निर्यात बराबर होने चाहिये। पर यह विश्वास गलत निकला वास्तव में अमेरिका के निर्यात इंग्लैंड की अपेक्षा तभी अधिक होते थे जहां अमेरिका के श्रम की उत्पादकता इंग्लैंड के श्रम की उत्पादकता से कम से कम ढाई गुना अधिक थी। इसका कारण यह था कि जो जो श्रम अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में काम में न आकर केवल सेवा के रूप में प्रयुक्त किया गया था वह उत्पादकता के आंकड़ों में शामिल नहीं किया गया। इस प्रकार के श्रम की लागत अमेरिका में अधिक थी जबकि इंग्लैंड में कम। दूसरा कारण यह था कि अमेरिका की वस्तुए "कॉमन वैल्थ" देशों में आसानी से प्रवेश प्राप्त नहीं कर सकती थी। इंग्लैंड की वस्तुओं को तीसरे बाजार में बेचने में सुविधा थी। तथा अमेरिका की उत्पादकता तब तक अधिक नहीं होगी जबतक उसका माल "कॉमन वैल्थ" देशों में आसानी से नहीं बिक सकेगा।

8.1.2 स्टर्न का अध्ययन

स्टर्न ने मैगडोगाल के श्रम की उत्पादकता के आँकड़ो को सन् 1950 के संदर्भ में परखने का प्रयत्न किया। उसकी जाँच भी अमेरिका व इंग्लैंड से संबंधित थी। उनके परिणाम विस्तृत रूप से मैगडोगाल के परिणामों से मिलते-जुलते थे। उनके अनुसार सन् 1937 में ब्रिटेन ने व्यापारिक और वित्तीय नेतृत्व के कारण जो ख्याति अर्जित कर ली थी वह सन् 1950 में घट गयी थी। अर्थात् इंग्लैंड के निर्यातों की उपलब्धि अमेरिका की तुलना में सन् 1950 में घट गयी थी अर्थात् अमेरिका के निर्यात सन् 1950 में बढ़ गये थे।

8.1.3 बलासा का अध्ययन

बलासा का अध्ययन पर्याप्त मात्रा में विस्तृत है। उन्होंने इंग्लैण्ड और अमेरिका के २१३ उद्योगों की उत्पादकता की जाँच की थी। जिसके अन्तर्गत उन्होंने पाया कि तीसरे देशों के बाजारों में उत्पादकता और निर्यात उपलब्धि में घनिष्ठ सहसम्बन्ध है। इसके साथ ही उन्होंने अध्ययन में सापेक्षिक मजदूरी की भिन्नता और सापेक्षिक पूंजी लागत को भी

समझाया जिससे यह जाना जा सकता था कि व्यापार की क्या दशा होगी? उन्होंने अपने विश्लेषण द्वारा यह अर्थ निकाला कि किसी उद्योग के उत्पादकता अनुपात को केवल मौद्रिक मजदूरी की भिन्नतायें हमेशा नगण्य नहीं करती लेकिन साथ ही प्रति इकाई पूंजीगत लागतों के अन्तर का निर्यात पर बहुत ही कम प्रभाव पड़ता है। जिसके अनुसार व्यापार के ढाँचें को जितनी उत्पादकता की भिन्नतायें प्रभावित करने वाली प्रमुख घटक हैं उतनी न तो मजदूरी की भिन्नतायें हैं। और न ही पूंजी लागत की भिन्नतायें हैं फिर भी बालासा स्वयं कहते हैं कि उनके पूंजी लागत के माप सैद्धान्तिक परिभाषा के अनुसार नहीं हैं। अत: पूंजी लागत के व्यापार दशा पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बंधित निष्कर्ष सही नहीं लगते हैं। सापेक्षिक मजदूरी के प्रभाव के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि किसी देश के अन्दर विभिन्न उद्योगों के मध्य मजदूरी दरों में अन्तर होने से व्यापार उस समय तक प्रारम्भ नहीं हो सकता ताकि देशों के मध्य सापेक्षिक मजदूरी की संरचना में भिन्नता है। फिर भी यहां ऐसे प्रमाणिक उदाहरण हैं जहां विभिन्न देशों के मध्य सापेक्षिक मजदूरी संरचना तुलनात्मक रूप से समान है प्रतीक रूप में

$\frac{Wxa}{Wya} \neq 1$ लेकिन $\frac{Wxa}{Wya} \sqcup \frac{Wxb}{Wyb}$ तथा $\frac{Wxa}{Wxb} \sqcup \frac{Wxa}{Wyb}$

यहां W_{xa} - देश A में उद्योग X में मौद्रिक मजदूरी

यहां W_{xb} - देश B में उद्योग X में मौद्रिक मजदूरी

यहां W_{ya} - देश A में उद्योग Y में मौद्रिक मजदूरी

यहां W_{yb} - देश B में उद्योग में मौद्रिक मजदूरी

8.1.4 जगदीश भगवती का अध्ययन

प्रो. जगदीश भगवती ने अपने अध्ययन में मेकडोगाल के अध्ययन के आँकड़ो की प्रतीपगमन विश्लेषण से जाँच करके मेकडोगाल के निष्कर्षों में संदेह व्यक्त किया है। उनके अनुसार हम लघुगुणक ले अथवा नहीं। निर्यात कीमत अनुपात का श्रम उत्पादकता अनुपातों पर रेखीय

प्रतीपगमन पूर्णतया निराशाजनक है। वे लिखते हैं कि तुलनात्मक इकाई श्रम लागतों व निर्यात कीमत अनुपातों के मध्य सम्बन्ध की जाँच करने पर हमें उतने ही निराशाजनक परिणाम प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार निर्यात कीमत अनुपात को श्रम उत्पादकता अनुपातों व मजदूरी पर अनुपात का फलन मानकर प्रतीपगमन गुणांकों का परिकलन करने पर भी कमजोर परिणाम प्राप्त हुए। अत: वे तर्क देते हैं कि उपरोक्त आँकड़े रिकार्डो के सिद्धान्त का खंडन करते हैं।

8.2 प्रमाणीकरण जाँचों का आलोचनात्मक अध्ययन

यह सही है कि वास्तविक जगत में हम आर्थिक मॉडलों की जाँच हेतु प्रत्यक्ष प्रश्न नहीं पूछ सकते हैं बल्कि परोक्ष प्रश्नों पर ही हमें विश्वास करना पड़ता है।

मेकडोगाल ने रिकार्डो मॉडल की जाँच करते समय अप्रत्यक्ष प्रश्न पूछने के लिए उसमें कुछ manipulation किये अत: मेकडोगाल ने अमेरिका व इंग्लैंड के बीच होने वाले व्यापार का अध्ययन न करके इन देशों के अन्य देशों से (तीसरे बाजार के साथ) संबंध जोड़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने सीधे तरीके से रिकार्डो की उपकल्पनाओं की जाँच नहीं कि उन्होंने तीन परोक्ष उपकल्पनाओं के आधार पर रिकार्डो की सिद्धान्त की भौतिक जाँच की है।

1. किसी देश का किसी वस्तु को निर्यात अंश इकाई से अधिक तय होगा जबकि सापेक्षिक मजदूरी व श्रम उत्पादकता के विलोम का गुणनफल इकाई से अधिक होगा अत:

यदि $\left(\frac{Bxb}{Bxa}\right) x \left(\frac{Wxa}{Wxb}\right) > 1$

तब $\left(\frac{xa}{xb}\right) > 1$ होगा।

जहां xa व xb क्रमश: देश ए व देश बी के निर्यात हैं तथा Bxa व Bxb वस्तुओं कि देश A व B में उत्पादकता तथा Wxa व Wxb क्रमश: देश A व B देश में मजदूरी है।

2. किसी दी हुई वस्तु के निर्यात अंश व उस वस्तु के उत्पादन की श्रम उत्पादकता के अनुपात में धनात्मक सह संबंध होना चाहिये। इसका अर्थ है देश का अन्य देश की तुलना में उस वस्तु के निर्यात में अंश अधिक होना चाहिये जबकि उस देश की श्रम उत्पादकता का अनुपात उस वस्तु के उत्पादन में दूसरे देश की श्रम उत्पादकता से अधिक हैं।
3. एक वस्तु के निर्यातों का अंश और मजदूरी उत्पादकता गुणनफल में धनात्मक सह संबंध होना चाहिये।

ये अप्रत्यक्ष प्रश्न तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को परखने के लिए काफी मददगार रहे हैं। साथ ही इन प्रश्नों ने हमको यह रास्ता भी दिखाया है कि इस मौलिक मॉडल में तुलनात्मक मजदूरी भिन्नता व अमजदूरी लागत को किस प्रकार शामिल किया जा सकता है। इस सैद्धान्तिक पैनी दृष्टि ने वास्तव में हमारे ज्ञान को बढ़ाया है।

8.3 रिकार्डो सिद्धान्त के प्रमाणीकरण जाँचों के निष्कर्ष

उपर्युक्त भौतिक जाँचों से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि रिकार्डो के मॉडल को समझने में बहुत कुछ रखा है प्रो. केव्ज इस संदर्भ में लिखते हैं कि तुलनात्मक लागत सिद्धान्त मौलिक सत्यता के कारण अपना स्थान बनाये हुए हैं। फिर भी प्रो. भगवती के नकारात्मक परिणाम हमको सजग कर देते हैं कि मेकडोगाल और उनके अनुयायियों द्वारा की गयी जाँचों को सावधानी के साथ प्रयोग में लेना चाहिये।

8.4 हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त का प्रमाणीकरण

हैक्शचर ओहलिन प्रमेय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रमुख आधुनिक सिद्धान्त है इस की वैधता की परख हेतु अनेक प्रयोगात्मक अध्ययन विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा किये गये जो निम्न प्रकार हैं।

8.4.1 लियोन्टिफ का अध्ययन

हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त की भौतिक जाँच हेतु अनेक अध्ययनों में सर्वाधिक चर्चित अध्ययन लियोन्टिफ का है उन्होंने यह अध्ययन सन् 1954 में प्रस्तुत किया था जिससे आर्थिक जगत में हलचल पैदा हो गयी थी क्योंकि यह हैक्शचर ओहलिन प्रमेय के आधार पर प्रहार करता है।

लियोन्टिफ ने सर्वप्रथम हैक्शचर ओहलिन की मान्यता को प्रस्तुत किया जो इस प्रकार है - कुछ मान्यताओं के अन्तर्गत एक देश उन वस्तुओं का निर्यात करता है जिनके उत्पादन में उन साधनों की अधिक आवश्यकता होती है जो उस देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। अत: ऐसा देश उन वस्तुओं का आयात करेगा जिसके उत्पादन में उन साधनों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है जो उस देश में दुर्लभ होते हैं।

उक्त मान्यता को प्रस्तुत करने के पश्चात् लियोन्टिफ कहते हैं कि जिन देशों के साथ अमेरिका का व्यापार होता है उनकी तुलना में अमेरिका में प्रति श्रमिक पूंजी की मात्रा अधिक है। यदि हैक्शचर ओहलिन का सिद्धान्त सही है तो अमेरिका को पूंजी प्रधान वस्तुओं का निर्यात करना चाहिए और ऐसी वस्तुओं का आयात करना चाहिए जिन्हें यदि अमेरिका में उत्पादन किया जाता तो उनमें सापेक्षिक रूप से अधिक श्रम लगता।

लियोन्टिफ ने अपनी उपकल्पना की परख हेतु अमेरिका के लिए 1947 की आदा-प्रदा सारणी (Input – Output Table) का उपयोग किया जिसमें उन्होंने दो सौ उद्योगों के समूह को विश्लेषण का आधार बनाया तथा इनको 50 क्षेत्रों (Sectors) में विभक्त किया। इनमें से 38 उद्योग विदेशी

व्यापार में भाग लेते हैं। इन विदेशी व्यापार में भाग लेने वाले उद्योग समूहों के संबंध में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से कितनी पूंजी और श्रम काम में लिया जाता है अर्थात् अमेरिकी निर्यात और आयातों की साधन निष्ठताओं का मापन कर तुलना की। दूसरी ओर लियोन्टिफ ने अमेरिका की अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध निर्यात तथा आयात उद्योगों का उत्पादन बढ़ाने हेतु पूंजी की आवश्यकता का अनुमान किया है। उन्होंने ऐसा प्रत्येक एक मिलीयन डालर के मूल्य के निर्यातों और आयातों में कमी करने से साधनों के मुक्त होने पर हुए प्रभावों को ध्यान में रखकर किया है। परन्तु लियोन्टिफ इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अमेरिका श्रम प्रधान वस्तुओं का निर्यात करता है और पूंजी प्रधान वस्तुओं का आयात करता है। वस्तुत: यह निष्कर्ष हैक्शचर ओहलिन के सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है। ऐसा होने का कारण है कि अमेरिका श्रमनिष्ठ वस्तुओं का निर्यात कर अपने यहां पूंजी की बचत करना चाहता है और श्रम निष्ठ वस्तुओं का निर्यात करके अपने अतिरिक्त श्रम को विदेशों में भेजना चाहता है। चूंकि यह स्थिति साधारण ज्ञान व मान्यता के विपरीत है अत: लियोन्टिफ द्वारा प्रस्तुत स्थिति को लियोन्टिफ का विरोधाभास (Leontief Paradox) कहते हैं।

लियोन्टिफ के अध्ययन के अन्तर्गत निकाले गये निष्कर्षों से यह पता चलता है कि अमेरिका में आयात प्रतियोगी वस्तुओं के उत्पाद की तुलना में आयात 1.3 गुनी अधिक पूंजी लगायी जाती है । इसके साथ वह 0.0932 गुणा निर्यात वस्तुओं में श्रम लगाता है। लियोन्टिफ के शब्दों में अमेरिका का अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन में भाग लेना इसलिए संभव है कि उसके द्वारा श्रम निष्ठ उत्पत्ति में विशिष्टीकरण किया जाता है न कि पूंजी निष्ठ विशिष्टीकरण दूसरे शब्दों में यह देश पूंजी की बचत करने के लिए अगर इसके अतिरिक्त श्रम का निर्यात करने के लिए व्यापार करता है न कि इस स्थिति के विपरीत। लियोन्टिफ के विचारों ने आर्थिक जगत में तहलका मचा दिया। अत: इसकी आलोचना विस्तृत वह गहराई इस विश्लेषण से अधिक है।

8.4.2 लियोन्टिफ विरोधाभास का मूल्यांकन

सर्वप्रथम यह कहा गया कि लियोन्टिफ की पद्धति सिद्धान्त को परखने का सीधा तरीका नहीं है। इसके मूल रूप से निर्यात उद्योगों और स्पर्द्धा आयात प्रतिस्थापन के संबंध में विचार प्रकट किये हैं न कि वास्तविक आयातों के अध्ययन का विश्लेषण किया है अत: लियोन्टिफ को ओहलिन के सिद्धान्त में लागू करना एक भूल है। इस संदर्भ में अनेक लेखकों ने इन आंकड़ो के सम्बन्ध में प्रश्न खड़े किये हैं। प्रो. बूचानन ने कहा कि वास्तव में लियोन्टिफ का पूंजी गुणांक केवल निवेश गुणांक ही है इसमें पूंजी की मात्रा के मापने के संबंध में अनेक त्रुटियां बतायी है। इसी तरह प्रो. जी.ए. लोयब की राय है कि निर्यात क्षेत्र और प्रतियोगी आयात क्षेत्र की पूंजी की निष्ठता के अन्तर को कोई भी सांख्यिकी महत्व नहीं दिया जा सकता है। एक अन्य अर्थशास्त्री बी.सी. स्वरलिंग लिखते हैं कि सन् 1947 का वर्ष लियोन्टिफ को नहीं चुनना चाहिए था क्योंकि यह वर्ष काफी मात्रा में एक असाधारण वर्ष था जिसमें विदेशी व्यापार के कई प्रतिबन्ध थे। साथ ही लिखते हैं कि लियोन्टिफ को वस्तुओं के योगिकों को भिन्न-भिन्न समूहों में विभक्त करना भी पक्षपात पूर्ण है। इस तरह से हम देखते हैं कि लियोन्टिफ द्वारा प्रस्तुत सांख्यिकी पद्धतियों के खिलाफ बहुत सी आपत्तियां हैं तब लियोन्टिफ को बाध्य होकर सन् 1956 में अपने मापदण्डों में सुधार करना पड़ा। हालांकि सन् 1956 के पत्र में लियोन्टिफ ने सभी मुद्दों का प्रत्युत्तर नहीं दिया फिर भी इस विवाद के कारण यह निष्कर्ष निकलता है कि आँकड़े कितने ही अपूर्ण हों वह विरोधाभास इस आधार पर नहीं समझाया जा सकता है। अत: सैद्धान्तिक रूप से अन्य बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है।

8.4.3 लियोन्टिफ विरोधाभास का लियोन्टिफ द्वारा स्पष्टीकरण

लियोन्टिफ ने अपने विरोधाभास के संबंध में स्पष्टीकरण देते हुए हैक्शचर ओहलिन के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि अमेरिका के प्रत्येक मजदूर के पास अधिक पूंजी है पर अमेरिका का श्रमिक

अन्य देशों के श्रमिकों की तुलना में तीन गुणा अधिक कार्यकुशल है। अमेरिका के श्रमिक की यह कार्यकुशलता इसलिए है कि उत्पादन क्रियाओं में तुलनात्मक रूप में अमेरिका में पूंजी का अधिक प्रयोग होता है। अत: उन्होंने तर्क दिया है कि श्रम को भिन्न-भिन्न कार्य कुशलता अंशों में विभक्त करते हुए स्टेन्डर्ड युनिवर्स में इसकी परिभाषा देनी चाहिए। इस तरह अमेरिका का श्रमिक औसत श्रमिक से कई गुना अधिक उत्पादन करेगा। इस प्रकार से श्रम की परिभाषा देते हुए लियोन्टिफ कहते हैं कि अमेरिका के प्रति श्रमिक की तुलना में अमेरिका के पूंजी की पूर्ति कम है। यह पूंजी की कमी अन्य देशों की तुलना में वास्तव में कम है। इस तरह से वे हैक्शचर ओहलिन के सिद्धान्त का परोक्ष रूप से समर्थन करते हैं। परन्तु यह स्पष्टीकरण दो तर्को के आधार पर अमान्य है।

1. तार्किक दृष्टि से कोई प्रमाण प्रतीत नहीं होता कि हम श्रम साधन को अधिक कार्यकुशल समझे और उसे स्टेन्डर्ड यूनिवर्स में बदलें।
2. लियोन्टिफ यह समझते हैं कि अमेरिका के श्रमिक की कार्यकुशलता बेहतर प्रकार के प्रबंध से प्राप्त होती है तो वह पूंजी में भी होनी चाहिए। ऐसी परिस्थिति में अमेरिका के श्रमिकों विदेशी श्रम में बदलने पर पूंजी श्रम का अनुपात समान बना रहेगा। अत: यह कहा जा सकता है कि इस स्थिति में लियोन्टिफ का स्पष्टीकरण विरोधाभास के प्रश्न को हल करने में असर्मथ हैं।

लियोन्टिफ ने एक अन्य दिशा में और जाँच का स्पष्टीकरण दिया। उन्होंने उत्पत्ति के दो साधन श्रम व पूंजी माने परन्तु उन्होंने इसे अपर्याप्त बताते हुए कहा कि मेरी सारणियों में एक तीसरा साधन अदृश्य प्रतीत होता है जो कि देश की उत्पादकता को प्रभावित करता है यह प्राकृतिक साधन है। उन्होंने कहा कि इस तीसरे साधन का उपयोग कर विरोधाभास को स्पष्ट किया जा सकता है परन्तु इस विवेचना से एक अन्तर आलोचना का बिन्दु जुड़ा हुआ है। यह सामान्य तौर पर समझा जाता है कि श्रम और पूंजी की तुलना में अमेरिका कम भूमिनिष्ठ है ऐसी स्थिति में वह प्राकृतिक साधनों से निष्ठ वस्तुओं का आयात करेगा। यदि ये आयात अमेरिका में ही

उत्पन्न किये जाये तो इनके लिए तुलनात्मक रूप से श्रम की तुलना में पूंजी ज्यादा लगायी जायेगी। यदि इन आयातों की तुलना निर्यातों से करें तो यह कहा जा सकता है कि निर्यातों के लिए पूंजी की अपेक्षा ज्यादा श्रम की जरूरत पड़ेगी। इसका कारण स्पष्ट है कि अमेरिका को अपने प्राकृतिक साधन की कमी को दूर करने हेतु ज्यादा पूंजी का प्रयोग करना पड़ेगा। परन्तु आलोचक यहां पर कहते हैं कि लियोन्टिफ ने हैक्शचर ओहलिन के अनुसार उत्पत्ति के साधनों की परिभाषा नहीं दी हैं।

8.4.4 लियोन्टिफ विरोधाभास का हैबरलर द्वारा स्पष्टीकरण

हैबरलर कहते हैं कि अनेक आलोचक यह भूल जाते हैं कि लियोन्टिफ अपने मत को अनेक साधन मॉडल के रूप में प्रस्तुत करते हैं न कि दो साधन मॉडल के रूप में। लियोन्टिफ के लिए पूंजी का तात्पर्य गैर श्रम वस्तुओं से नहीं है। अपितु ऐसी वस्तुओं से है जो उत्पत्ति के उत्पादित साधन हैं जैसे :- संयंत्र, औजार, भवन और विभिन्न क़िस्म का माल। हैबलर ने कहा कि श्रम और भूमि के अतिरिक्त अनेक साधन होते हैं जैसे प्राकृतिक साधन, प्रबंधन और साहस। ये सभी विभिन्न किस्म के होते हैं। इन्हें अच्छी प्रकार से पहचाना नहीं जा सकता है, लियोन्टिफ ने इन साधनों को अपने सांख्यिकी मापदण्डों में शामिल नहीं किया था। अत: लियोन्टिफ का श्रम और पूंजी के संदर्भ में उत्पादन फलन भिन्न-भिन्न देशों में न तो एक रूप होता है और न एक समान। हैबरलर ने विरोधाभास का दूसरा कारण भी दिया जिसके अनुसार अमेरिका में आयातों से प्रतियोगिता करने वाले उद्योगों में पूंजी की गहनता से प्रयोग हो रहा है क्योंकि अमेरिका के श्रम की तुलना में वहां की पूंजी विदेशी प्राकृतिक साधन के लिए एक श्रेष्ठ स्थानापन्न है जिसके फलस्वरूप अमेरिका में आयात प्रतिस्थापित उद्योगों में श्रम के स्थान पर पूंजी का प्रयोग हो रहा है। किन्तु उससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि अमेरिका में पूंजी प्रधान वस्तुओं का आयात होता है, अत: इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लियोन्टिफ के विरोधाभास का कारण यह है कि श्रम और पूंजी के

अतिरिक्त उत्पादन के अन्य साधन भी होते हैं जिनकी पूर्ण रूप से सांख्यिकी गणना नहीं की जा सकती है।

8.4.5 लियोन्टिफ विरोधाभास का साधन गहनता प्रतिलोमता द्वारा स्पष्टीकरण

चूंकि लियोन्टिफ ने अमेरिक के आयात प्रतिस्थापन व निर्यात उद्योगों पर ही अपना अध्ययन केन्द्रित किया था। अत: लियोन्टिफ विरोधाभास का स्पष्टीकरण साधन गहनता प्रतिलोमता के रूप में दिया जा सकता है। साधन गहनता प्रतिलोमता की स्थिति में यह सम्भव है कि एक पूंजी प्रधान देश श्रम गहन वस्तुओं का निर्यात करे। लेकिन फिर भी अन्य राष्ट्रों की तुलना में अपने निर्यातक उद्योगों में अधिक पूंजी गहन तकनीकी का उपयोग करें। यह सम्भव है कि प्रो. लियोन्टिफ अपने अध्ययन में अन्य राष्ट्रों को शामिल करते तो अमेरिका के निर्यात उन राष्ट्रों की तुलना में अधिक पूंजी गहन पाये जाते। इस प्रकार साधन गहनता प्रतिलोमता की सहायता। लियोन्टिफ के निष्कर्षों का स्पष्टीकरण सम्भव है।

साधन गहनता प्रतिलोमता की सम्भावना ज्ञात करने हेतु प्रो. मिन्हास आदि ने अध्ययन किया। उन्होंने वह कुछ अर्थशास्त्रियों ने प्रतिस्थापन की स्थिर लोच वाला एक नया उत्पादन फलन प्रतिपादित किया था। इस उत्पादन फलन का परिकलन करते समय प्रो. मिन्हास ने पाया कि विभिन्न राष्ट्रों में सापेक्ष साधन कीमतों की व्यवहारिक रूप से विस्तार सीमा में साधन गहनता प्रतिलोमता, काफी पायी जाती है अत: प्रो. मिन्हास के निष्कर्षों के आधार पर लियोन्टिफ विरोधाभास को साधन गहनता प्रतिलोमता के सहारे स्पष्ट किया जा सकता है।

लेकिन प्रो. मिन्हास के विचारों की आलोचनात्मक समीक्षा करते हुए लियोन्टिफ ने इंगित किया कि 210 सम्भावित प्रतिलोमताओं में से साधन कीमतों की सम्बद्ध विस्तार सीमा के केवल 17 प्रतिलोमिताऐं

घटित हुई। अत: लियोन्टिफ के अनुसार साधन कीमतों की सम्बद्ध विस्तार सीमायें साधन गहनता प्रतिलोमता बहुत कम घटित होती हैं।

8.4.6 लियोन्टिफ विरोधाभास का ट्राविस द्वारा स्पष्टीकरण

प्रो. ट्राविस ने लियोन्टिफ विरोधाभास को अमेरिका की व्यापार नीति के संदर्भ में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। ट्राविस ने इंगित किया कि लियोन्टिफ के अध्ययन के वर्ष में अमेरिका का व्यापार अत्यधिक संरक्षित था अत: लियोन्टिफ विरोधभास तो मात्र प्रकृति का मजाक ही था।

8.4.7 लियोन्टिफ विरोधाभास का निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि लियोन्टिफ विरोधाभास व इसके स्पष्टीकरण से हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त की असत्यता के बारे में निश्चित निर्णय पर पहुंचना सम्भव नहीं है परन्तु इसने आर्थिक जगत में जो हलचल पैदा की है वह उपयोगी सिद्ध हुई है। उपर्युक्त परिस्थिति में इन्हीं मापदण्डों के आधार पर लियोन्टिफ की जाँच के अतिरिक्त अन्य जाँचों की परख करना नितांत आवश्यक है इन जाँचों की समीक्षा निम्न प्रकार है।

8.5 टोटेमोटो व इचीमूरा का अध्ययन

टोटेमोटो व इचीमूरा ने जापान के विदेश व्यापार के अध्ययन से ज्ञात किया है कि जापान शेष विश्व को पूंजी गहन वस्तुओं का निर्यात करता है जबकि स्वयं श्रम गहन वस्तुओं का आयात कर रहा है। चूंकि जापान जनाधिक्य वाला राष्ट्र है अत: यह निष्कर्ष हैक्शचर ओहलिन के निष्कर्ष के विपरीत है। यहां साथ ही इन्होंने पाया कि अमेरिका व जापान के बीच व्यापार में जापान श्रम गहन वस्तुओं का निर्यात करता है व पूंजी गहन वस्तुओं का आयात करता है जो कि हैक्शचर ओहलिन के निष्कर्षों के अनुरूप है।

8.6 वाहल का अध्ययन

वाहल ने कनाडा के व्यापार के अध्ययन से पाया कि कनाडा पूंजीगहन वस्तुओं का निर्यात करता है और श्रम गहन वस्तुओं का आयात करता है। लेकिन कनाडा का अधिकांश व्यापार अमेरिका के साथ होता है अत: यह निष्कर्ष हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त के निष्कर्ष से विपरीत है।

8.7 स्टालपर व रोसकेम्प का अध्ययन

डबन्यू स्टालपर व के. रोसकेम्प शेष पूर्वी यूरोप के साथ पूर्वी जर्मनी के व्यापार का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पूर्वी जर्मनी के निर्यात पूंजी गहन हैं एवं आयात श्रम गहन हैं। चूंकि शेष पूर्वी यूरोप की तुलना में पूर्वी जर्मनी पूंजी सम्पन्न है। अत: यह अध्ययन हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त को सही साबित करता है।

8.8 आर. भारद्वाज का अध्ययन

भारत के संदर्भ में प्रो. भारद्वाज ने सन् 1962 के अध्ययन में पाया कि भारत श्रम गहन वस्तुओं के निर्यात व पूंजीगहन वस्तुओं के आयात करता है अर्थात् निष्कर्ष हैक्शचर ओहलिन के अनुरूप है लेकिन साथ ही भारत व अमेरिका के मध्य व्यापार के अध्ययन में पाया भारत पूंजी गहन वस्तुओं का निर्यात कर रहा था तथा श्रम गहन वस्तुओं का आयात कर रहा था जो कि एक विरोधाभास की स्थिति है।

8.9 हैक्शचर-ओहलिन प्रमेय के प्रमाणीकरण जाँचों के निष्कर्ष

उपर्युक्त विभिन्न जाँचों व विश्लेषणों के आधार पर स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त को सही या गलत सिद्ध करने के लिए कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि इन विश्लेषणों को ध्यान में रखते हुए हैक्शचर ओहलिन के सिद्धान्त में सुधार अपेक्षित है।

8.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. क्या यह सत्य प्रमाणित किया जा सकता है कि अनेक आलोचनाओं के बाद भी हैक्शचर ओहलिन का सिद्धान्त आज भी व्यापार का आधार माना जाता है। समझाइये।

प्रश्न 2. लियोन्टिफ विरोधाभास से आप क्या समझते हैं। हैक्शचर ओहलिन प्रमेय के सम्बन्ध में लियोन्टिफ द्वारा प्रस्तुत जाँच को स्पष्ट रूप से समझाइये।

प्रश्न 3. दो देशों में बाजार की दशाएँ जितनी अधिक समान होंगी विशेषकर आय स्तरों पर उतनी ही किसी दिये गये उत्पाद में सफल निर्यात प्रतिक्रिया के होने की अधिक संभावनाएं हैं। हैक्शचर ओहलिन प्रमेय के संदर्भ में उपयुक्त वक्तव्य की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 4. रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रस्तुत भौतिक जाँचों की स्पष्ट रूप से व्याख्या कीजिए।

8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

REFERENCES: RICARDO MODEL

1. Mac DougII, G.D.A. – British and American Exports: A Study Suggested by the theory of Comparative Costs, Part-I in Economic Journal (Dec. 1951) and Part-II in Economic Journal (Sept. 1952)

2. Stern, R. – British and American productivity and Comparative costs in International Trade – Oxford Economic papers October, 1962

3. Balarsa, B. – An empirical demonstration of classical comparative cost theory, Review of Economics and Statistics (Aug. 1963)

4. Bhagwati, J. – The pure Theory of International Trade : A Survey, Economic Journal, March 1964

5. Kundu, K.B. – International Economics – Pure Theory, Nabahharat Publishers – Calcutta-9,1979

8. Sodersten, B.O. – International Economics Macmillan, 1985

REFERENCES: H.O THEOREM

1. Leontief. W.W. – Domestic Productions and foreign Trade. The American Capital Position Reexamined, Proceedings of the American Philosophical Society, Vol. 97, Sept., 1953 pp. 332

2. Buchanan, N.S. – Lines on the Leontief Paradox, EconomicInternational, Vol. 8 Nov. 1955, pp. 791

3. Swerling, B.C. – Capital Shortage and labour Surplus in U.S.Review of Economics and Statistics, Vol. 36, Aug. 1954

4. Howlhakker, H.S.- – An International Comparison of Household Expenditure pattern Commemorating the Centenary of Engels Law. Econometric Vol. 25 Oct., 1957

5. Arrow, Chenery, – Capital labour Substitution and Economic Minhas and Solow Efficiency, Review of Economics & Statistics

6. Ellsworth, P.T. – The International Economy, pp. 128-43

7. Kindleberger – International Economics pp. 55-67

8. Tatemoto and chaimura – Factor Proposition and Foreign Trade –The Case of Japan 1959.

9. Walh, D.F. – Capital and labour requirements for Canada's Foreign Trade, August, 1961.

10. Stolper and Roskamp – An Input-Output Table forecast Germany with application of foreign Trade 1961.

इकाई 9

अंतराष्ट्रीय व्यापार मॉडलों का प्रमाणीकरण व संतापकारी वृद्धि

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 रिकार्डो के सिद्धान्त के आनुभविक प्रमाणो की जांच

9.2.1 केंद्रीय विचारो पर आधारित रिकार्डो के आनुभविक प्रमाण

9.2.1.1 क्रॉस सेक्शन प्रमाण

9.2.1.2 काल-श्रेणी प्रमाण

9.2.1.3 गैर-व्यापारिक वस्तुए

9.3 हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त के अनुभविक प्रमाण की जांच

9.3.1 वस्तु व्यापार, साधन व्यापार का स्थानापन्न

9.3.2 वैश्विक आंकड़ो का परीक्षण

9.3.3 अनुपस्थित व्यापार का प्रकरण

9.3.4 विकसित व विकासशील देशों के मध्य निर्यातों का ढांचा या आकार या स्वरूप

9.3.5 तुलनात्मक लाभ का बदलता स्वरूप

9.3.6 व्यापार और मजदूरी

9.3.7 आनुभाविक परीक्षणों का निष्कर्ष

9.3.8 साधन गहनता प्रतिलोमता तर्क

9.4 संतापकारी वृद्धि

9.4.1 वृद्धि एवं व्यापार : एक वृहद देश का प्रतिमान

9.4.1.1 आर्थिक विकास और राष्ट्र की व्यापार शर्ते तथा कल्याण

9.4.1.2 वृद्धि से कल्याण व व्यापार शर्तो दोनों में सुधार

9.5 निष्कर्ष

9.6 संदर्भ पुस्तकें

9.7 शब्दावली

9.8 अभ्यासर्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य

रिकार्डो व हैक्शचर ओहलीन के सिद्धान्त जितने महत्वपूर्ण व उपयोगी है अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में, उतना ही इन पर आधारित परीक्षण जो वास्तविक जगत के आंकड़ो व व्यवहारों से ज्ञात आनुभविक परीक्षण व प्रमाण महत्वपूर्ण है। ये दोनों ही सिद्धान्त कुछ अव्यवहारिक मान्यताओ के कारण पूर्ण रूप से यथार्थ विश्व से जुड़ नहीं पाये थे। कई अर्थशास्त्रियों जैसे बलासा-समुएलसन, लेओंतीफ़,फीस्त्र,अशेंफ़ेल्टर और जुरजदा ने अपने शोध से प्रमाणित किया कि कुछ मान्यताएँ इन सिद्धांतों कि व्यावहारिक नहीं है वरन कुछ संदर्भों में ये अपने मूल से विपरीत है। परंतु साथ ही कुछ विचारको ने कुछ मान्यताओ के संदर्भ में परीक्षण प्रस्तुत कर उनकी उपस्थिति के प्रमाण दर्ज किए। यह अध्याय इन सभी प्रमाणो के विश्लेषण को प्रस्तुत करता है। साथ ही संतापकारी वृद्धि पर भी दृष्टिपात करता है। जिसमे एक वृहद देश किस प्रकार आर्थिक विकास करते हुए विकास कि दर में गिरावट लाता है।

9.1 प्रस्तावना

रिकार्डो के सिद्धान्त में एक ही साधन श्रम ही महत्वपूर्ण था जिसकी विवेचना उसने अपने सिद्धान्त तुलनात्मक लागत में की। उसके अनुसार देशों के मध्य व्यापार का मुख्या कारण श्रम उत्पादकता में परिवर्तन का होना है। रिकार्डो के सिद्धांत के अनुसार उसी देश को तुलनात्मक लाभ प्राप्त होता है जिसकी श्रम उत्पादकता अधिक है और जो कम अवसर लागत पर वस्तु का उत्पादन कर पाते है।

हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का मुख्य कारण साधनो की प्रचुरता है, जिस देश में साधन अधिक है वह उसकी उत्पादन की गहनताए निर्धारित होती है। हैक्शचर ओहलीन ने उत्पादन के दो साधनो श्रम व पूंजी पर आधारित अपने सिद्धान्त की विवेचना की। साधन प्रचुरताए, साधनो की सापेक्ष कीमते निर्धारित करती है जिससे ये ज्ञात होता है कि देश पूंजी हेगन है या श्रम गहन। जो देश पूंजी गहन है वह पूंजी निर्मित वस्तुओं का तथा जो देश श्रम गहन है वह श्रम निर्मित वस्तुओ का निर्यात करते है।

परंतु दोनों ही सिद्धान्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कई सजग व महत्वपूर्ण तथ्यो से दूर है , जैसे रिकार्डो का सिद्धान्त, परिवहन लागतो को अपने सिद्धान्त में शामिल नहीं करता, इससे गैर व्यापारिक वस्तुओ का विश्लेषण भी अकथित रेह जाता है। दूसरी तरफ, हैक्शचर ओहलीन का सिद्धान्त साधन प्रतिलोमता के तर्क कि अनुपस्थिति को लेकर चलता है। ये अवश्यंभावी है ओहलिन के सिद्धान्त के लिए कि दोनों देशों की साधन गहनता पृथक हो अन्यथा व्यापार संभव नहीं है। परंतु यह स्थिति प्रतिलोमता की उपस्थिति में संभव नहीं है, और लिओंनतिफ के विश्लेषण ने ये भी साबित कर दिया कि देश जो पूंजी प्रचुर है यह जरूरी नहीं कि वह पूंजी गहन वस्तु का उत्पादन और निर्यात ही करेगा।

संतापकारी वृद्धि प्रो.जगदीश भगवती द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकास कि वह विवेचना है जिससे विकास व्यापार शर्तो तथा कल्याण से प्रभावित होकर वास्तविक रूप से पतन कि और अग्रसर होता है। निर्यातों के विस्तार से, देश कि व्यापार शर्ते प्रतिकूल हो जाती है , यदि विश्व बाज़ार में कीमते स्थायी रहे। इसको विस्तार से बढ़े देश के संदर्भ में इस अध्याय में स्पष्ट किया गया है।

9.2 रिकार्डो के सिद्धान्त के आनुभविक प्रमाणो की जांच

रिकार्डो का सिद्धान्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सबसे उपयोगी सिद्धान्त है जो व्यापार के कारणो व प्रभावों की व्याख्या राष्ट्रीय कल्याण के संदर्भ में करता है। परंतु क्या यह वास्तविक सिद्धान्त है जो पूर्णरूप से विश्व के लिए यथार्थ है?क्या रिकार्डो का सिद्धान्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रवाहों का एक सही व सटीक विवेचन प्रस्तुत करता है?

उत्तर तार्किक रूप से “हाँ “ है। स्पष्टत: अनेकों जगहों पर रिकार्डो के सिद्धान्त ने भ्रमित करने वाली मान्यताओं को दिया है। प्रथम, अव्यापार जनक वस्तुएँ , रिकार्डो ने अपने सिद्धांत में विशिष्टीकरण की परम श्रेणी का चुनाव किया जो की वास्तविक विश्व में उपलब्ध नहीं है। द्वितीय, रिकार्डो का सिद्धान्त इस मान्यता से परे है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रभाव एक देश के भीतर आय के वितरण पर भी पड़ता है, तृतीय, रिकार्डो ने एक महत्वपुर्ण तथ्य, साधनो की विभिन्नता राष्ट्रो के व्यापार का प्रमुख कारण है ,की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भूमिका की उपेक्षा की है। अंतिम, रिकार्डो के सिद्धान्त ने पैमाने की मित्व्य्यताओ की उपेक्षा की है। इन सब असफलताओं के बावजूद भी, जो आधारभूत मान्यता रिकार्डो के सिद्धान्त ने दी है कि राष्ट्रों को उन वस्तुओं का ही उत्पादन करना चाहिए जिनकी उत्पादकीय क्षमता सापेक्षतया ऊंची है, जो कि बहुत सारे अध्ययनो से प्रमाणित हो चुका है। रिकार्डो के सिद्धांत के अनेकों क्लासिक प्रमाण उपलब्ध है जिसमे विश्व युद्ध

द्वितीय के के पश्चात आंकड़ो का प्रयोग कर, ब्रिटेन व अमेरिका के उत्पादन क्षमता व व्यापार की तुलना की गयी थी। यह एक साधारण प्रकाश डालने वाला तुलनात्मक अध्ययन है, क्योंकि यह बताता है कि प्रत्येक क्षेत्र में ब्रिटिश श्रम उत्पादकीय क्षमता, अमरीकी श्रम उत्पादकीय क्षमता से कम है। इसके परिणामस्वरूप, संयुक्त राज्य अमेरिका को उत्पादन में ब्रिटेन की तुलना में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है। निम्न निरपेक्ष उत्पादकीय क्षमता के बावजूद, ब्रिटेन में कुछ ऐसे क्षेत्र अवश्य होंगे जहां उसे तुलनात्मक लाभ प्राप्त होगा। रिकार्डो के सिद्धांत के अनुसार, यह क्षेत्र वो होंगे जहा अमेरिका के उत्पादकीय लाभ सापेक्षतया कम होंगे।

रेखाचित्र 9.1, हुंगरियन के अर्थशास्त्री बेला बालसा (1963) में प्रकाशित आंकड़ो का प्रयोग करते हुए, रिकार्डो के सिद्धान्त का आनुभविक प्रमाण प्रस्तुत करता हैं। यह चित्र,1951 के 26 विनिर्माण ओद्योगिक इकाइयों के अमेरिकी के निर्यातों की ब्रिटिश निर्यातों के अनुपातों की तुलना, अमेरिका के श्रम उत्पादकता की ब्रिटिश श्रम उत्पादकता के अनुपात को प्रस्तुत करता है। उत्पादकता अनुपात, क्षेतिज अक्ष पर तथा निर्यात अनुपात को अनुलंब अक्ष पर लिया गया है। दोनों अक्ष लघुगुणकीय पैमाने पर लिए गए है।

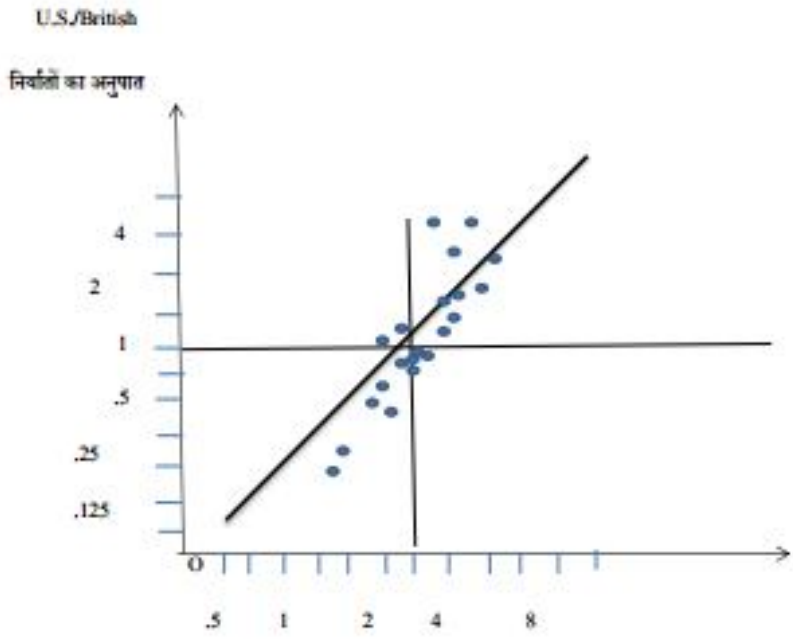

रेखाचित्र 9.1 U.S./British उत्पादकता का अनुपात

यह तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि अमेरिकी निर्यातों का अनुपात ब्रिटिश निर्यातों के अनुपात से ज्यादा है जिसमे अमेरिका की सापेक्षतया ऊंची श्रम उत्पादकता है। चित्र में प्रत्येक बिन्दु एक पृथक उद्योग को प्रकट करता है।रिकार्डो का सिद्धान्त व्यापक रूप से यह संबंध स्थापित करता है कि यदि अमेरिका के उद्योगों में में सापेक्ष उत्पादकता ऊंची है तो अमेरिकी उद्योग, ब्रिटिश फर्मो की तुलना में अधिक निर्यात करेंगे। और यही संबंध रेखाचित्र 9.1 में दर्शाया गया है। चित्र में स्केटर प्लॉट में दर्शाये सभी बिन्दु वक्र के धनात्मक ढाल के काफी नजदीक है तथा जो ये बताते है कि जिन आंकड़ो का तुलना के लिए प्रयोग किया गया है जेसे की सभी प्रकार के आर्थिक आंकड़ो में होता है, कुछ त्रुटियो के माप के साथ , यह फिट काफी समीप है। जैसा की ज्ञात था कि, चित्र के प्रमाण साबित करते है कि किसी भी राष्ट्र के व्यापार तुलनात्मक लाभों पर निर्भर करते है न की निरपेक्ष लाभों पर। जैसा की आंकड़े बता रहे है कि अमेरिका की श्रम उत्पादक क्षमता,

ब्रिटेन की श्रम उत्पादक क्षमता से अधिक है, जो कि ब्रिटेन के औसत के दुगने से अधिक है।

रिकार्डो का सिद्धान्त यह बताता है की किसी राष्ट्र के उद्योगों की उत्पादन क्षमता को विदेशी राष्ट्र के साथ तुलना कर देने से यह प्रमाणित नहीं होता कि वह राष्ट्र उत्पादों का अधिक निर्यात करेगा, उस उद्योग की सापेक्ष उत्पादकता दूसरे उधोगो की उत्पादकता से अधिक होनी चाहिए। जेसा कि चित्र में बताया गया है कि अमेरिका की उत्पादकता ब्रिटेन की उत्पादकता से उन 26 उद्योगों में अधिक थी। 12 उद्योगों में ब्रिटेन के निर्यात अमरीकी निर्यातों से अधिक थे जबकि उत्पादकता लाभ अमेरिकी उद्योगों में अधिक थे। रिकार्डो के सिद्धान्त के सामयिक प्रमाणो से ज्ञात होता है कि 21वी शताब्दी में देश प्राय:उन वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते जिनमे उन्हे तुलनात्मक हानि प्राप्त है, परंतु उनके पास एस कोई उपकरण नहीं है जिससे उन क्षेत्रो की उत्पादकता को मापा जाए। उदाहरण के तौर पर बहुत से ऐसे राष्ट्र है जो हवाई जहाजो का उत्पादन नहीं करते, इसलिए उनके पास आंकड़े उपलब्ध नहीं होते की उन्हे कितने श्रम घंटो की उस उत्पादन के लिए आवश्यकता होगी। प्रमाणो के कई हिस्से है जो श्रम उत्पादकता के अन्तरो का कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को निर्धारित करने मे मुख्य भूमिका निभाते है। रिकार्डो के तुलनात्मक सिद्धान्त ही व्याख्या करता है कि शक्ति घरों के उद्योगों के निर्यातको में चीन एक बड़े निर्यातक के रूप मे उभर के आया है । यद्यपि विनिर्माण में चीन की श्रम उत्पादकता बढ़ रही है, परंतु यह अमेरिकी या यूरोपियन मानको से कम ही रहती है। कुछ उद्योगों में , हालांकि, चीन की उत्पादकता हानि उसके औसत से बढ़ी नहीं है , इसलिए चीन दुनिया का सबसे बड़ा उत्पादक व निर्यातक बन चुका है। तालिका 9.1, 1995 पर आधारित आंकड़ो के आकलन को प्रस्तुत करती है। शोधर्थी ने चीन के उत्पादों व उत्पादकता के साथ जर्मनी के उद्योगों के तुलना की । औसतन उसने

पाया की चीन की उत्पादकता, जर्मनी की उत्पादकता की 5 प्रतिशत थी, और 1995 में, कुल चीनी विनिर्मित उत्पाद, जर्मनी के कुल विनिर्मित उत्पादों से 30 प्रतिशत कम थे।

तालिका 9.1 चीन व जर्मनी की तुलना , 1995

	प्रति श्रमिक चीनी उत्पाद जर्मनी के प्रतिशत में	कुल चीनी उत्पाद जर्मनी के प्रतिशत में
विनिर्मित उत्पाद	5.2	71.6
वस्त्र	19.7	802.2

Source: Ren Rueon and Bai Manying, "China's Manufacturing Industry in an International Perspective: A China-Germany Comparison, "Economic international, no| 92-2002/4.pp.103-130|

वस्त्रों में, हालांकि चीनी उत्पाद, जर्मनी के उत्पादों के समीप थे। चीन को अब भी वस्त्रों के उत्पादन में निरपेक्ष हानि प्राप्त थी जो कि जर्मन उत्पादो का पांचवा हिस्सा था । परंतु क्योंकि चीन की सापेक्ष उत्पादकता वस्त्र उद्योगों में बाकि सभी उद्योगों से अधिक थी , चीन को वस्त्रो के उत्पादन में एक सशक्त तुलनात्मक लाभ की स्थिति प्राप्त हुई जो कि उसे जर्मनी के वस्त्र उद्योगों से आठ गुना अधिक बढ़ा देती है। कुछ अर्थशास्त्री ये मानते हैं कि रिकार्डो का सिद्धान्त विश्व व्यापार के कारण व प्रभावों की व्याख्या का सही विवरण प्रस्तुत करता है जिसमे आधारभूत सिद्धांतो उत्पादकता के अंतरों तथा तुलनात्मक लाभों की निरपेक्ष

लाभों के ऊपर महत्वपूर्ण भूमिका है।

9.2.1 केंद्रीय विचारो पर आधारित रिकार्डो के आनुभविक प्रमाण

9.2.1.1क्रॉस सेक्शन प्रमाण

देशों के बीच मजदूरी में भिन्नता उत्पादकता में अन्तरो को प्रदर्शित करता है। कम मजदूरी वाले देशों में भी कम उत्पादकता होती है। अर्शेंफ़ेल्टर और जुरजदा के शोध पर आधारित निम्न चित्र इस बात का प्रमाण है।

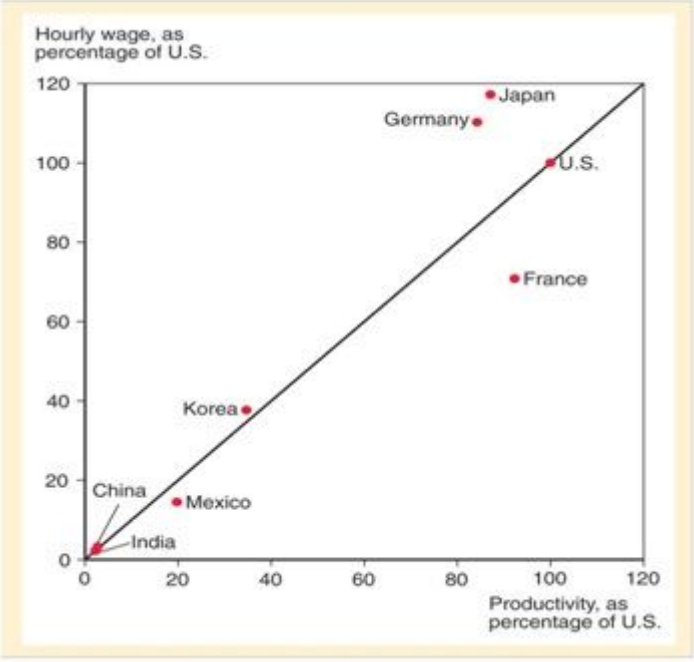

रेखाचित्र 9.2 क्रॉस सेक्शन प्रमाण

9.2.1.2 काल-श्रेणी प्रमाण

समय के अनुसार मजदूरी परिवर्तित होने पर उत्पादकता भी परिवर्तित होती है। फींस्त्र के शोध पर आधारित ये चित्र इसे स्पष्ट करता है, चित्र में अर्थव्यवस्था की औसत श्रम उत्पादकता को प्रदर्शित किया गया है। लेकिन यह उत्पादकता विविध क्षेत्रो में वितरित हो जाती है, और हर देश मे अलग क्षेत्र की उत्पादकता अधिक होती है जिससे देशों की उत्पादकता में अंतर आ जाता है। इन रेखाचित्रों के विविध स्वरूप प्रत्येक देश की अलग उत्पादकता को प्रकट करते है।

रेखा चित्र 9.3 काल-श्रेणी प्रमाण

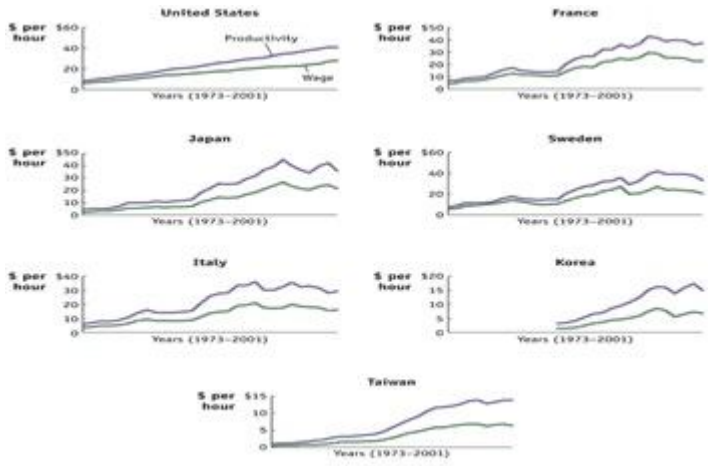

द्विपक्षीय निर्यात स्वरूप द्विपक्षीय सापेक्ष उत्पादकता अन्तरो को प्रकट करता है

इरविन के शोध पर आधारित इसके प्रमाण निम्न चित्र में प्रदर्शित किए गए है:

रेखाचित्र 9.4 सापेक्ष उत्पादकता में वृद्धि 1987 से 1990 तक

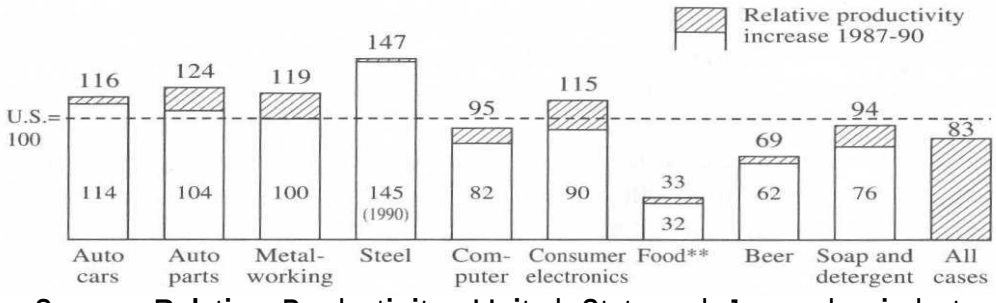

Source: Relative Productivity, United Statesand Japan, by industry, 1990. (Source:Mckiney Global Institute 1993,Exhibit S-1)

ऊपर दिये गए चित्र के अनुसार एक देश को लागत लाभ व्यापार में तभी मिलते है जब वहाँ के उत्पादकता लाभ, उसके मजदूरी अलभो से अधिक हो, या मजदूरी लाभ उसकी उत्पादकता अलाभों से अधिक हो।

9.2.1.3 गैर-व्यापारिक वस्तुए

दो व्यापारिक वस्तुओ के सिद्धान्त में एक गैर व्यापारिक वस्तु Z लेते है। यह हर देश में उत्पादित होनी चाहिये अपनी स्थानीय मांग की पूर्ति हेतु।

मान लो की घरेलू देश X वस्तु का उत्पादन करते है इसलिए $P^TX = W^T AX$,ये Z वस्तु का भी उत्पादन करते है इसलिए $PZ = W^T AZ$

या $PZ / P^TX = AZ / AX$

इसी प्रकार विदेशी क्षेत्र में $P^*Z / P^TY = A^*Z / A^*Y$

इस प्रकार प्रत्येक देश में गैर व्यापारिक वस्तुओं की कीमते, व्यापारिक वस्तुओं की कीमतों से जुड़ी होती है। जो कि संतुलन की अवस्था है।

घरेलू देश में यदिAX घटता है,PZ / P^TX जरूर बढ़ता है। जबकि श्रम Z वस्तु में श्रम की उत्पादकता फले जैसी ही बनी रहती है। इस क्षेत्र को अब वस्तु एक्स से प्रतियोगिता का सामना करना होगा जो उससे अधिक मजदूरी का भुगतान करता है। परंतु वस्तु की उत्पादित मात्राओ का क्या हुआ? यह Z वस्तु की आय लोच तथा X व Y वस्त की स्थानापन्नता पर निर्भर करता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, बहुत सी विनिर्माण वस्तुए आपस में व्यापार की जाती हैं और सेवाएँ गैर व्यापारिक। श्रम उत्पादकता विनिर्माण वस्तुओं में सेवाओं से अधिक बढ़ी है। इसलिए विकसित देशों में सेवाओ की कीमते अधिक ऊंची होती है। यह बलासा समुएल्सन प्रभाव है

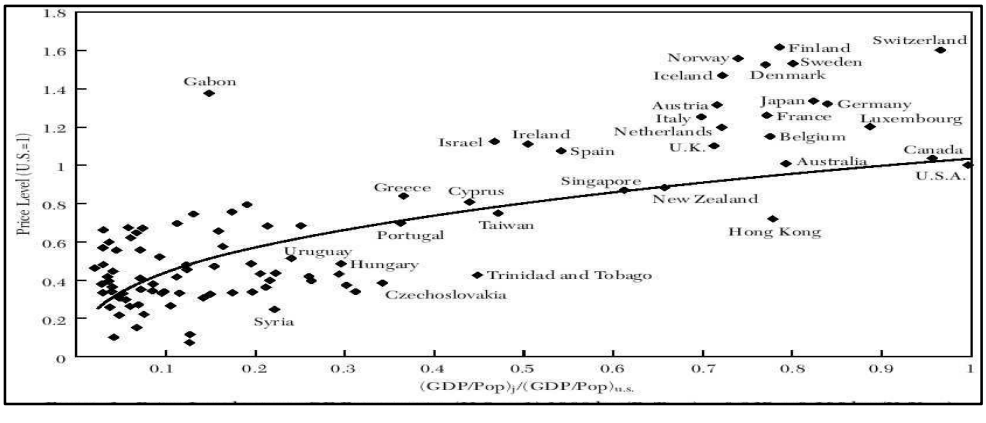

Source: The Penn World Table.Aug. 1994

रेखाचित्र 9.5 पेन्न विश्व तालिका के अनुमान:कीमत स्तर और GDP प्रति व्यक्ति (U.S.=1) 1990 लॉग (P_j/P_{us})=0.035 +0.366 लॉग (Y_j / Y_{us})

यह आंकड़े , अंतर्राष्ट्रीय तुलनाओ के केंद्र (Center for International Comparisons) पेन्स्य्ल्वेनीय विश्वविध्यालय के है जो क्रय शक्ति समता और राष्ट्रीय आय खातो को अंतर्राष्ट्रीय कीमतों पर परिवर्तित करते है। यह देशों के वास्तविक मूल्यो की तुलना के उद्देश्य से उपयोग में लाये जाते है। उसी पर आधारित ये आंकड़े प्रति व्यक्ति कीमत स्तर व GDP के संबंधो को प्रस्तुत करते है। और यह ज्ञात होता है कि विकासशील देशों में औसत कीमत तो कम है और वास्तविक आय ऊंची है। यह एक कारण है क्रय शक्ति समता से पलायन का जो कि एकोनोमिस्ट पत्रिका के द्वारा बिग मैक सूचकांक द्वारा इसे बताया गया है:

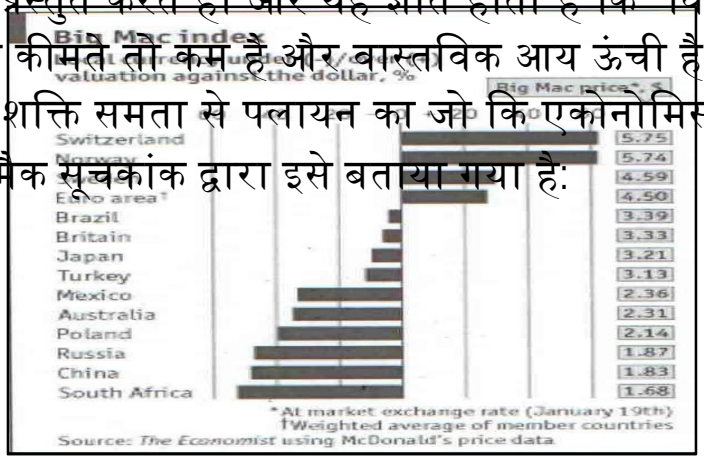

रेखाचित्र 9.6 बिग मैक सूचकांक

9.3 हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त के अनुभविक प्रमाण की जांच

व्यापार का प्रमुख कारण दो देशों के साधन संपन्नताओ में अंतर ही हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त का मूल है । वस्तुओं के व्यापार में अंतर साधनो के व्यापार अन्तरो के कारण उत्पन्न होती है। यह एक बहुत सशक्त मान्यता है जो प्रमाणित की जा सकती है। हालांकि, ऐसे प्रमाणो के परीक्षणों की सफलता बहुत ही सीमित है मुख्यत: साधन कीमत समानीकरण की मान्यता को लेने से या विशेषकर दोनों देशों में एक ही तकनीक मान लेने से। क्या इससे ये अर्थ निकलता है कि साधन संपदा में अंतर , अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्ररूपों की व्याख्या करने में सहायता नहीं करता।? यह सत्य नहीं है। हम यहा देखेंगे की किस प्रकार हैक्शचर ओहलिन का सिद्धान्त विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य व्यापार की रूपरेखा को निर्धारित करता है।

9.3.1 वस्तु व्यापार, साधन व्यापार का स्थानापन्न

अब से कुछ वर्षो पूर्व, यू. एस., बाकि अन्य देशों से अधिक सम्पन्न देशों में से माना जाता था। यू. एस के श्रमिक, अधिक पूंजी प्रति व्यक्ति के साथ प्रयोग किए जाते थे बाकि देशों की तुलना में। अब जबकि , कुछ पश्चिमी यूरोपियन देशों में और जापान में पूंजी-श्रम अनुपात, यू. एस से ज्यादा ऊंचा रहता है। इन स्थितियो को देखते हुए कोई भी ये अनुमान लगा सकता है कि यू. एस, पूंजी गहन वस्तु का निर्यातक देश होगा तथा श्रम गहन वस्तुओं का आयातक।

परंतु आश्चर्यजनक रूप से,यह स्थिति लगभग 25 वर्षो तक, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात नहीं थी। एक बहुत ही प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वासली लियोनतीफ़ (1973 नोबल पुरस्कार प्राप्तकर्ता) के 1953 के प्रकाशित अध्ययन के अनुसार, यू. एस के निर्यात पूंजी गहन आयातों से कम थे। यह परिणाम “लियोनतीफ़ विरोधभास” के नाम से जाना जाता है।

तालिका 9.2, यू. एस के व्यापार प्रारूपों से लियोनतीफ़ विरोधाभास को दर्शाती है। हम यहाँ 1962 के यू. एस में उत्पादन के लिए प्रयुक्त साधनो के $1 मिलियन निर्यातों को 1962 के यू. एस उत्पादो में प्रयुक्त साधनो के $1 मिलियन आयातों के साथ तुलना करते है।

तालिका पहली 2 पंक्तियाँ प्रदर्शित करती है कि लियोनतीफ़ विरोधाभास उन वर्षो में उपास्थित था । यू. एस के निर्यात, उसके आयतों की तुलना में कम पूंजी श्रम अनुपात से उत्पादित थे। यू. एसके निर्यात उसके आयातों की तुलना में श्रम गहन अधिक पाये गए। यू. एसके निर्यात, तकनीकी गहन अधिक पाये गए जिसमे दक्ष श्रम गहनता जैसे अभियांत्रिको व वैज्ञानिकों की आवश्यकता उसके आयतों की तुलना में अधिक थी।

क्यु तब हम लियोनतीफ़ विरोधाभास को प्राप्त करते है? कुछ अध्ययन तर्क देते है कि ये विरोधाभास एक समय सीमा तक ही प्रभावी था। यह इस मान्यता पर भी आधारित है कि एक ही तकनीक यू. एस तथा अन्य व्यापार करने वाले देशों में प्रयोग की जाती है, जो कि सही नहीं है। यू. एस को एक विशेष लाभ प्राप्त है नयी वस्तुओं के उत्पादन जिसे नयी तकनीक के साथ उत्पादित कर सकता है, जैसे ऐयर क्राफ्ट्स व कम्प्युटर चिप्स इत्यादि। ऐसी वस्तुएँ कम पूंजी गहन हो सकती है उन वस्तुओं की तुलना में जिसमे तकनीक को अभी विकसित होने मे समय लगेगा या फिर जिसे सभी तकनीक से उत्पादित किया जा सकता हो। इसीलिए यू. एस, प्राय: दक्ष श्रम व आधुनिक तकनिकियों तथा नवीन उधमीता का प्रयोग करता है, जबकि भारी विनिर्माण की वस्तुएँ जैसे औटोमोबाइल का आयात करता है जिसमे अधिक पूंजी का उपयोग होता है।

तालिका 9.2 वर्ष 1962 यू. एस. के निर्यातों व आयतों में प्रयुक्त साधन		
	आयात	**निर्यात**

पूंजी प्रति मिलियन डॉलर	$2,132,000	$1,876,000
श्रम (व्यक्ति –वर्ष) प्रति मिलियन डॉलर	119	131
पूंजी-श्रम अनुपात (डॉलर प्रति श्रम)	$17,916	$14,321
औसत वर्षीय शिक्षा प्रति श्रम/मजदूर	9.9	10.1
कार्य क्षेत्र में अभियंत्रिकों व वैज्ञानिकों का अनुपात	0.0189	0.0255

Source: Robert Baldwin, "Determinant softhe Commodity Structure of U.S.Trade, "American Economic Review 61 (March 1971), pp. 126-145.

9.3.2 वैश्विक आंकड़ो का परीक्षण

यू.एस. एक विशेष मामला हो सकता है, अर्थशास्त्रियों ने इसे और व्यापक बनाए हेतु, इस परीक्षण को अन्य देशों पर भी लागू किया, साथ ही उत्पादन के अन्य साधनो पर भी। हैरी पी.बोवेन , एडवर्ड ई. लर्नर, और लियो स्वेकौकस ने साधन व्यापार से जुड़े परीक्षण को 27 देशों में 12 उत्पादन के साधनो पर लागू किया। इस सिद्धान्त के पीछे वही परीक्षण लगाया गया जेसा कि यू.एस.के उन उत्पादन के साधनो पर लगाया जो निर्यातक वस्तुओं में प्रयुक्त हुए ।

तालिका 9.3 प्रदर्शित करती है कि बोवेन व अन्य अर्थशास्त्रियों का परीक्षण प्रस्तुत करता है। शोधकर्ताओं ने प्रत्येक देश की सम्पदा के प्रत्येक साधन से उस साधन की विश्व को होने वाली कुल पूर्ति से अनुपात की गरणा की। उसके बाद उन्होने इस अनुपात की तुलना प्रत्येक देश के वैश्विक आय के अनुपात से की जाती है। यदि साधन अनुपात सिद्धान्त सही है, एक देश उस साधन का निर्यात करेगा जिसका साधन अनुपात आय के अनुपात से अधिक हो, और उस साधन का आयात करेगा जिसका अनुपात आय अनुपात से कम हो। दो तिहाई साधनो का उत्पादन के लिए, व्यापार की अनुमानित दिशा उस समय 70 प्रतिशत से कम थी। ये परिणाम, लीओनतीफ़ विरोधाभास को

व्यापक रूप से प्रमाणित करता है, व्यापार हमेशा उस दिशा में नहीं बढता जिस दिशा की ओर हैक्शचर ओहलीन ने इशारा किया था। जेसा कि यू.एस. के लियोनतीफ़ विरोधाभास से ज्ञात होता है कि इस परिणाम की व्याख्या का केंद्रीय बिन्दु समान तकनीक की मान्यता की विफलता है।

तालिका 9.3 हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त का परीक्षण

साधनो का उत्पादन	अनमानित सफलता*
पंजी	0.52
श्रम	0.67
व्यवसायिक श्रम	0.78
प्रबन्धकीय श्रम	0.22
टंकण श्रम	0.59
बिक्री श्रम	0.67
सेवा श्रम	0.67
कषि श्रम	0.63
उत्पादन श्रम	0.70
कषि योग्य भमि	0.70
चरागाह भमि	0.52
वन	0.70

*राष्ट्रो में भिन्नता जिसके लिए साधनो का शुद्ध निर्यात अनमानित
Source: Harry P. Bowen, Edward E.Learner,and Leo Sveikauskas, “multi-

9.3.3 अनुपस्थित व्यापार का प्रकरण

वास्तविक व्यापार की मात्रा तथा हैक्शचर ओहलीन की अनुमानित व्यापार मात्राओ के मध्य भेद से देशों में तकनीकी असमानताओ का संकेत मिलता है। टोरोंटो विश्वविध्यालय के डेनियल ट्रेफ्लर के एक शोध के अनुसार हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त भी देशों के अनुमानित व्यापार मात्राओं को ज्ञात करने मे प्रयोग मे लिया जा सकता है।

जिसका आधार देशों की साधन संपन्नताओ में अंतर है। साधन व्यापार, हैक्शचर ओहलीन के अनुमानो की तुलना में कम ही आकलित होता है। विषमताओं का बहुत बड़ा कारण समृद्ध व गरीब देशों के मध्य बड़े पैमाने की श्रम बिक्री के असत्य अनुमानो की है। एक तरफ यू .एस. व दूसरी तरफ चीन देश को लीजिये। वर्ष 2008 में, यू .एस. के पास 23 प्रतिशत विश्व की आय का हिस्सा था लेकिन उसके पास मात्र के विश्व श्रम का 5 प्रतिशत ही श्रम था। साधन अनुपात सिद्धान्त ये सुझाव देता है कि यू .एस. के लिए श्रम का आयात ज्यादा होगा, कुछ अपने देश के श्रम के 4 गुना श्रम की मांग। परंतु वास्तव में, यू .एस. व्यापार का आकलन यह प्रदर्शित करता है कि यू .एस. श्रम का छोटा हिस्सा ही आयात करता है। इसके विपरीत, चीन के पास विश्व की आय का मात्र 7 प्रतिशत हिस्सा था लेकिन विश्व श्रम शक्ति का 20 प्रतिशत, इस प्रकार उसे अपने श्रम का बहुत बड़ा हिस्सा निर्यात करना चाहिए, परंतु उसने ऐसा नहीं किया।

तकनीकी असमानताओ के अंतर को स्वीकार करने के बाद भी "अनुपस्थित व्यापार" की इस समस्या का कोई समाधान नहीं निकलता। यह परिकल्पना मोटे तोर पर कुछ इस तथ्य का अनुसरण करती है : यदि यू .एस. का श्रम, चीन के श्रम से अधिक दक्ष है , तो प्रभावी श्रम पूर्ति यू .एस. की चीन की तुलना में अधिक होगी और अनुमानित व्यापार की मात्रा श्रम सम्पन्न देश चीन में अधिक व श्रम दुर्लभ देश अमेरिका में कम होगी। यदि एक यह मान्यता ली जाए कि देशों के मध्य तकनीकी असमंताए एक सरल गुणक का रूप ले –जैसे कि, एक दिये हुए साधनो के सैट का उत्पादन एक दिये हुए समय मे जितना चीन में होता है उतना ही यू .एस. में , जिसका मूल्य 1 से कम है –तब साधन व्यापार के आंकड़ो के प्रयोग से विभिन्न देशों की उत्पादन की सापेक्ष दक्षता का आकलन किया जा सकता है। तालिका 9.4 ट्रेफ्लर के आकलनों को,देशों के प्रतिदर्श के लिए प्रस्तुत करती है जो कि सुझाव

देते है कि देशों के तकनीकी अंतर बहुत अधिक होते है। कुछ देशों के तकनीकी लाभ बड़े होते है कुछ विशेष क्षेत्रों में और व्यापार के पूर्वानुमान मिश्रित हो सकते है।

तालिका 9.4, तकनीकी दक्षता का आकलन , 1983,यू .एस.=1

देश	0.03
बांग्लादेश	0.17
होंग्कोंग	0.40
जापान	0.70
पश्चिमी जर्मनी	0.78

Source: Daniel Trefler, "The Case of Missing Trade and Other Mysteries, "American Economic Review 85 (December 1995) pp.1029-1046

9.3.4 विकसित व विकासशील देशों के मध्य निर्यातों का ढांचा या आकार या स्वरूप

यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का ढांचा पूरी तरह से हैक्शचर ओहलीन के सिद्धांतो का अनुसरण करता हुआ प्रतीत नहीं होता , यदि श्रम सम्पन्न व दक्षता दुर्लभ राष्ट्रो के निर्यातों की तुलना दक्षता सम्पन्न व श्रम सुरलाभ राष्ट्रो से की जाए , तो यह सिद्धान्त खरा उतरता है। उदाहरण के लिए , चित्र 9.7, यू.एस. के आयत ढांचो की की तुलना प्रस्तुत करता है ,यू.एस. आयात जो कि बांग्लादेश से किए जाते है तथा जहा कि श्रम शक्ति में शिक्षा का स्तर निम्न है , यू.एस. आयात, जो कि जर्मनी, जहां श्रम शक्ति अधिक शिक्षित है, से किए जाते है ।

चित्र में, यह विश्लेषण शिकागो विश्वविद्यालय के जॉन रोमाइल्स ने प्रस्तुत किया है जिसमे उन्होने वस्तुओ को दक्षता गहनता के आधार पर कोटि प्रदान की है, उत्पादन में उन्होने, दक्ष से अदक्ष श्रम के अनुपात का प्रयोग किया है।

अनुलंब अक्ष पर जर्मनी व बांग्लादेश से किए गए यू.एस. आयातो को लिया गया है जो कि कुल यू.एस. आयातो में उस वस्तु के अंश को प्रकट करते है। जैसा कि आप देख सकते है कि, बांग्लादेश का यू.एस. आयातो में एक बड़ा अंश है जो कि निम्न दक्षता गहन वस्तु वस्त्र है, वही बांग्लादेश का बहुत कम अंश पाया गया ऊंची दक्षता गहन वस्तुओं के आयतों में। जर्मनी ठीक इसकी विपरीत स्थिति में है।

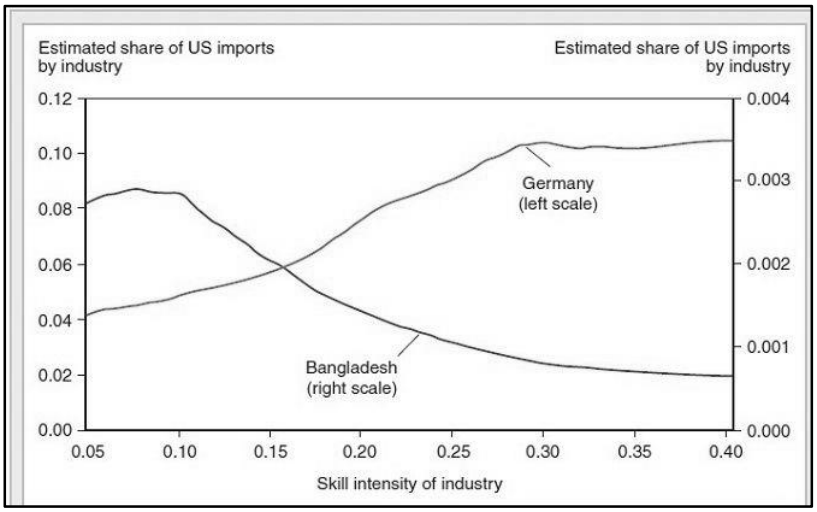

रेखा चित्र 9.7 कुशलता गहन व यू. एस. के आयतों का स्वरूप दोनों देशों से

Source: John Romails, "Factor Proportions and the Structure of commodityTrade", American Economic Review 94.

बदलते समय ने भी हैक्शचर ओहलीन के सिद्धांतो का अनुसरण किया। चित्र 9.8 यू.एस. को होने वाले निर्यातों के बदलते हुए ढांचो को दर्शाता है,जो कि पश्चिमी यूरोप, जापान तथा चार एशियन देशों दक्षिणी कोरिया, हाँग काँग और सिंगापुर से होते थे –1960 से तीव्र गति से

गरीब अर्थव्यवस्थाओ की श्रेणी से आज सापेक्षतया समृद्ध अर्थव्यवस्थाओ के साथ उच्च कुशल श्रम शक्ति के स्तर पर पहुँच चुके है।

9.3.5 तुलनात्मक लाभ का बदलता स्वरूप

चित्र 9.8 का भाग (अ) 1960 के निर्यात ढांचो को दर्शाता है। चमत्कृत कर देने वाली अर्थव्यवस्थाए स्पष्टत: निम्न कुशलता गहन वस्तुओं में विशिष्टीकरण प्राप्त थी। यहाँ तक कि जापान के निर्यात भी कम कुशलता गहन थे । चित्र के दूसरे भाग में , वर्ष 1998, जापान के श्रम शक्ति के शैक्षिक स्तर की तुलना पश्चिमी यूरोप से की गयी थी और जापान के निर्यातों में बदलाव दिखा, वह भी कुशलता गहन बना अन्य यूरोपियन अर्थव्यवस्थाओं की भांति। इसी बीच चमत्कृत कर देने वाली चार अर्थव्यवस्थाओं ने तीव्र गति से अपनी श्रम शक्ति में कुशल श्रम का निर्माण किया और जापान की तुलना में कुछ दशक पहले ही व्यापार ढांचे की और अग्रसर हो गए।

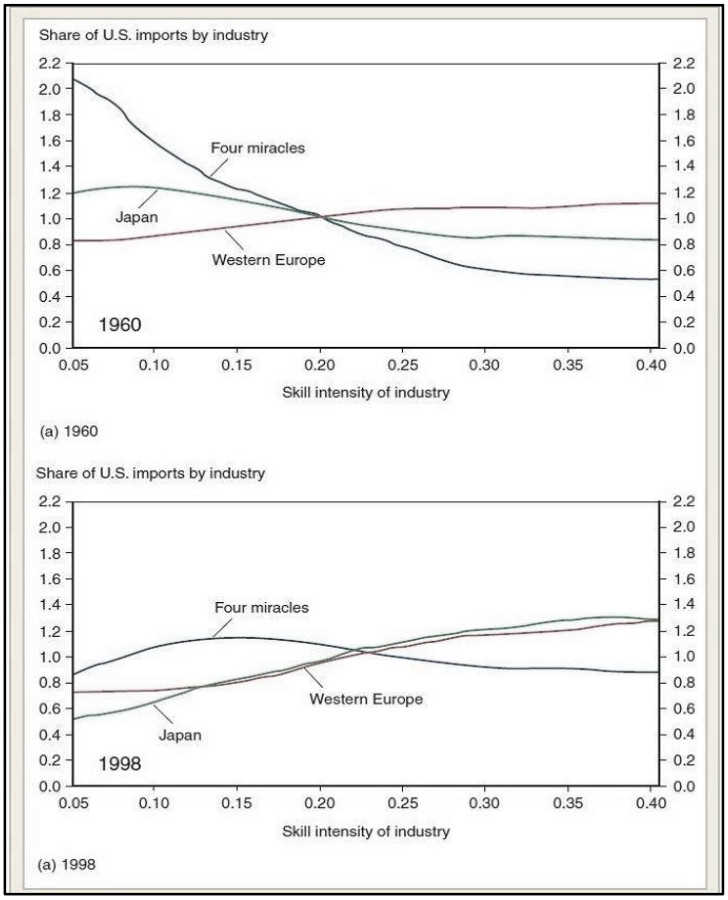

रेखाचित्र 9.8

हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त की एक आधारभूत मान्यता के अनुसार, साधन संपन्नता में कोई भी बदलाव, एक पक्षपातीय विकास की तरफ बदेगी उन क्षेत्रों की तरफ जो कि उस साधन गहनता का उत्पादन में प्रयोग करते है। हम देख सकते है कि एशियन अर्थव्यवस्थाओं पर यह मान्यता बहुत अधिक तर्कसंगत है। जेसे ही कुशल श्रम कि पूर्ति बढ़ती है वैसे ही कुशलता गहन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण बढ़ता है।

9.3.6 व्यापार और मजदूरी दरे - कुछ तात्कालिक दशकों में यू.एस. में मजदूरी की दरो में बहुत कमी आई है। शिक्षा और कुशलता का लाभांश बढ़ा है इन दशको में।

रेखाचित्र 9.9 मजदूरी अनुपात महाविद्यालय /उच्च विद्यालय

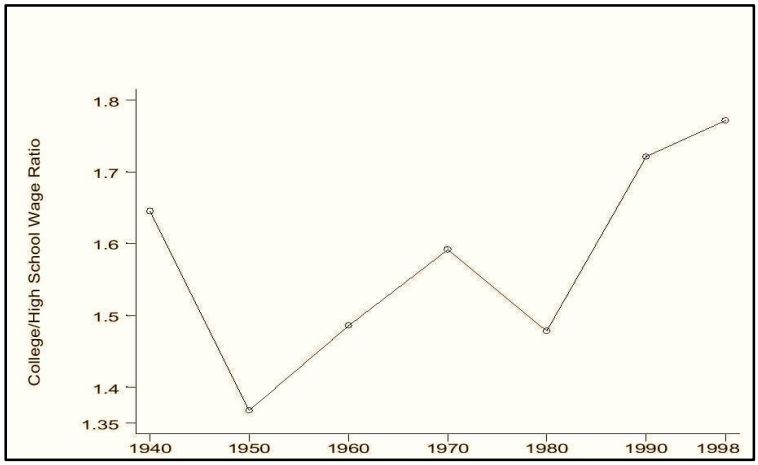

रेखाचित्र 9.10 वास्तविक मजदूरी सूचकांक 1973 से 1998 तक (1979=1)

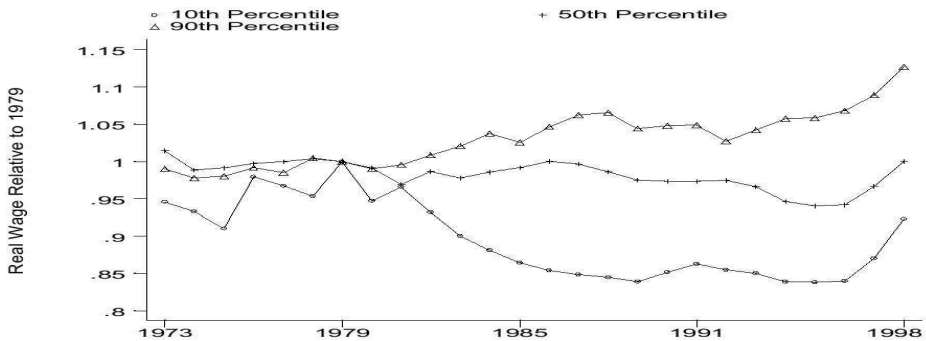

ऊपर दिये चित्रो व आंकड़ो के आधार पर क्या व्यापार ने मजदूरी असमानताओ को बढ़ाया है? हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त के बारे मे सोचते है कि उसमे दो साधन है जिसमे एक कुशल है और एक अकुशल। यू.एस. सापेक्षतया एक कुशल श्रम प्रधान देश है और कुशल श्रम गहन वस्तुओं का उत्पादन करता है और उन ही वस्तुओं का निर्यात भी। स्टोप्लर समुएल्सन के अनुसार, इन ही कारणो से इन दशकों में अकुशल श्रम कि मजदूरी दरे कम हुई है।

आनुभविक प्रश्न ये उठता है : प्रथम, सापेक्ष कीमतों में कितना बड़ा परिवर्तन आया है? द्वितीय, सापेक्ष मजदूरी में कितना बड़ा परिवर्तन आया है?

सेद्धांतिक ढांचे के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद को इस प्रकार लिखते है : GDP = f (P_x,P_y,E_s,E_u), जहां P_x,P_y उत्पादो कि कीमते हैं, और प्रथम कोटि का समरूप फलन है। वही E_s, और E_u कुशल व अकुशल श्रम की दक्षता इकाई है ।

$E_s = A_sL_sE_u = A_uL_u$

जहां L_s,L_u श्रम की भौतिक इकाइयां है वहीं A_s और A_u तकनीकी स्थानांतरण चर है। तब $W_s = A_s$ƏF/ƏES, WU = AU ƏF/ƏEU,इनके अनुपातों का आकलन करने के बाद अनुपातों के लॉग इनमे परिवर्तन लाते है और समरूपता का प्रयोग करते हुए :

$\ln(WU/WS) = \mu \ln(PX/PY) + (1-\beta) \ln(AU/AS) - \beta \ln(LU/LS)$

9.3.6.1 स्पष्टीकरण

स्टोप्लर समुएलसन का प्रभाव है, जो कि < 0 शून्य से कम है अगर यू.एस. के निर्यात कुशलता गहन Xβ = 1/ कुशल व अकुशल श्रम के बीच स्थानापन्न लोच

यदि स्थानापन्न लोच अधिक हैं तो β का मूल्य कम होगा, पूर्ति में बड़े परिवर्तन, मजदूरी में कम परिवर्तन लाते है। तकनीकी प्रगति मजदूरी को प्रभावित कर सकती है। ये साधन की दी हुई मात्रा पर कुल उत्पादकता में वृद्धि करता है लेकिन कुशलता इकाई की पूर्ति में वृद्धि से, सीमांत उत्पादकता को कम करता है। जो कि विविध श्रम प्रकारो, अन्य साधनो, गैर व्यापारिक वस्तुओं, को उलझा देता है।

मजदूरी असमानताओ पर व्यापार के प्रभावों को इससे पृथक करना कठिन है:

- तकनीकी प्रगति कि पक्षपात :अकुशल श्रम की मांग का गिरना
- यू.एस. के कर व्यवस्था और राजकोषीय नीतियों में परिवर्तन

शोध ने कुछ ऐसे मिश्रित परिणाम निकले है जिससे निष्कर्ष नहीं प्राप्त हुआ है:

व्यापार की भूमिका को लेकर संदेहजनक कारणो की व्याख्या करता है:

इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि यू.एस. में वस्तुओ कि कीमते बढ़ी हैं और व्यापार की शर्ते अपरिवर्तित रहती है।

तालिका 9.5 व्यापार शर्तों में औसत वार्षिक प्रतिशत परिवर्तन

	1986–1995	1996–2005
Advanced economies	0.8	−0.1
Developing Asia	−0.4	−1.1

यही प्रक्रिया अनुमान लगाती है विकासशील देशों के लिए कि कुशल व अकुशल श्रम अनुपात श्रम की असमानता को कम करता है। यू.एस के आयात 1970 में विकासशील देशों से बहुत बढ़े। असमानता कम हुई है और कुशलता लाभांश भी कम हुआ है। यू.एस के सकल घरेलू उत्पाद में पूंजी के अनुपात में यदि जरा सा भी परिवर्तन होता है तब व्यापार क्यों बदलता (WU/WS) है पर W/R (मजदूरी अनुपात विनिमय दर) नहीं।

9.3.7 आनुभाविक परीक्षणों का निष्कर्ष

हमने अभी देखा कि हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त के आनुभविक प्रमाणीकरण ने कुछ मिश्रित परिणाम निकाले। विशेषकर , सिद्धान्त कि यह मान्यता बहुत ही कमजोर है कि देशों के बीच तकनीकी अंतर कि अनुपस्थिति है, वस्तु व्यापार, साधन व्यापार एक प्रतिस्थानापन्न है। एक देश के निर्यात सदैव उस देश कि साधन संपन्नता का सूचक नहीं होते, और व्यापार की मात्रा भी उतनी कम पायी गयी जैसा कि देशों के

मध्य अनुमानित साधन संपन्नताओ के बड़े अन्तरो से। हालांकि, वस्तु व्यापार का ढांचा, विकसित और विकासशील राष्ट्रो के मध्य, इन मान्यताओं के आधार पर सटीक है।

हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त, व्यापार के प्रभावों, विशेषकर आय के वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों कि व्याख्या करता है। उतर दक्षिण के विनिर्मित वस्तुओ के व्यापार मे वृद्धि , व्यापार में उत्तर के आयतों की साधन गहनता उसके निर्यातों से पृथक है। इस विचार ने साधन अनुपातों की विचारधारा को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति में केंद्रीय विवाद का मुद्दा बना दिया। इसकी तर्क कि विस्तार से चर्चा अगले बिन्दु में कि गयी है ।

9.3.8 साधन गहनता प्रतिलोमता तर्क

हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित था कि उत्पादन फलां दो वस्तुओं के लिए पृथक होगा परंतु दो देशों में प्रत्येक वस्तु के लिए समान होगा।

दूसरे शब्दो में कहा जाए तो, एक वस्तु पूंजी गहन होगी अथवा ऊंचे पूंजी-श्रम अनुपात वाली व दूसरी वस्तु श्रम गहन या कम पूंजी-श्रम अनुपात वाली। लेकिन वही वस्तु एक देश में पूंजी गहन है दूसरे देश में भी पूंजी गहन होनी चाहिए और श्रम गहन वस्तु श्रम गहन ही रहनी चाहिए दोनों देशों में। ये मान्यता इस तर्क को बल देती है कि यहाँ दो समोत्पाद वक्र केवल एक बार ही एक दूसरे को काट सकते है परंतु दो से अधिक बार नहीं। चित्र में यह बिन्दु स्पष्ट किया गया है । क्या प्रभाव होगा जब साधन प्रतिलोमता कि स्थिति उत्पन्न होगी? यदि यह स्थिति उत्पन्न होती है तो, दो समोत्पाद वक्र एक दूसरे को दो से अधिक बार काटते है और यहा हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त कि मान्यता अतार्किक व अयथार्थ सिद्ध हो जाती है।

दो उत्पादन फलन गेहूं व कपड़े के लिए चित्र में दो से अधिक बार काटते है –एक बार बिन्दु A तथा दूसरी बार बिन्दु B पर । अब हम

परिणाम पर चर्चा करते है। साधन कीमत अनुपात देश A में जो कि पूंजी आधिक्य देश है, समतल रेखा P_0P_0 से प्रदर्शित कि गयी है।

P_1P_1, देश B कि साधन कीमत रेखा को प्रदर्शित करती है, जो कि श्रम आधिक्य देश है। यह चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

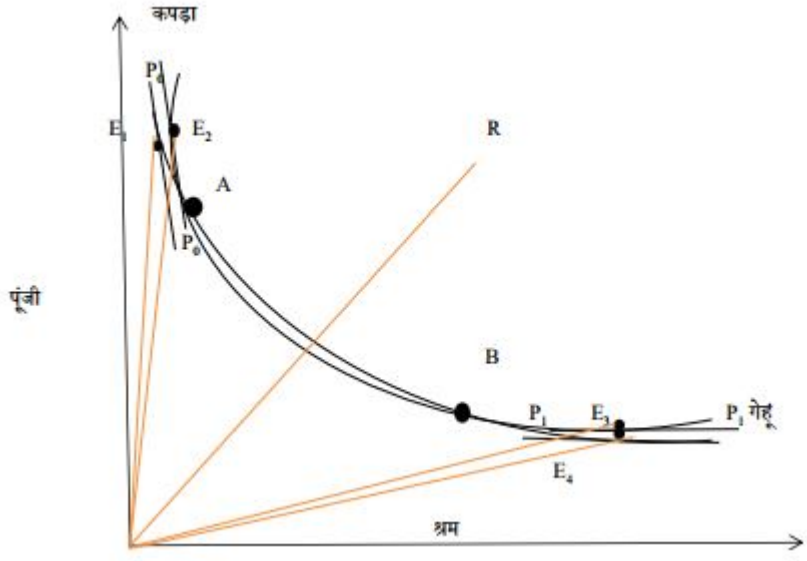

रेखाचित्र 9.11

चित्र में A बिन्दु पर गेहूं श्रम गहन तथा कपड़ा पूंजी गहन वस्तु है। एक गेहूं या कपड़े की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए एक देश को समान मात्रा पूंजी परंतु गेहूं के लिए कपड़े से अधिक श्रम की आवश्यकता होगी। कपड़े का पूंजी श्रम अनुपात गेहूं के पूंजी श्रम अनुपात से अधिक है। इसीलिए, देश A पूंजी सम्पन्न राष्ट्र होने के नाते पूंजी गहन कपड़े का तथा राष्ट्र B जो श्रम सम्पन्न है गेहूं का उत्पादन करेगा। राष्ट्र A कपड़े का निर्यात तथा गेहूं का आयात करेगा और राष्ट्र B गेहूं का निर्यात व कपड़े का आयात करेगा।परंतु ऊपर दिये गए चित्र के अनुसार दोनों देश एक ही वस्तु कपड़े का उत्पादन करते है तथा एक ही वस्तु का निर्यात भी। देश A जो कि पूंजी सम्पन्न राष्ट्र है , कपड़ा वहाँ पूंजी गहन वस्तु है और यही कपड़ा देश B में जो कि श्रम गहन राष्ट्र है,

वहाँ यह श्रम गहन वस्तु है। इसका अर्थ यह है कि एक ही उत्पाद एक देश में श्रम गहन है तो दूसरे देश में पूंजी गहन। यही तथ्य गेहूं पर भी लागू होता है , गेहूं एक देश में श्रम गहन वस्तु है जो कि देश पूंजी गहन राष्ट्र A है , और यही वस्तु पूंजी गहन है देश B में जो कि श्रम सम्पन्न राष्ट्र है। यह स्थिति साधन प्रतिलोमता है जो हैक्शचर ओहलीन कि मान्यता समान साधन गहनता एक वस्तु के लिए दोनों देशों कि मान्यता को खंडित करती है। यदि यह साधन प्रतिलोमता कि स्थिति आती है तो दोनों देश एक ही वस्तु का उत्पादन करेंगे जिससे अंतरराष्ट्रीय व्यापार के कारणो का भी अंत होता है।

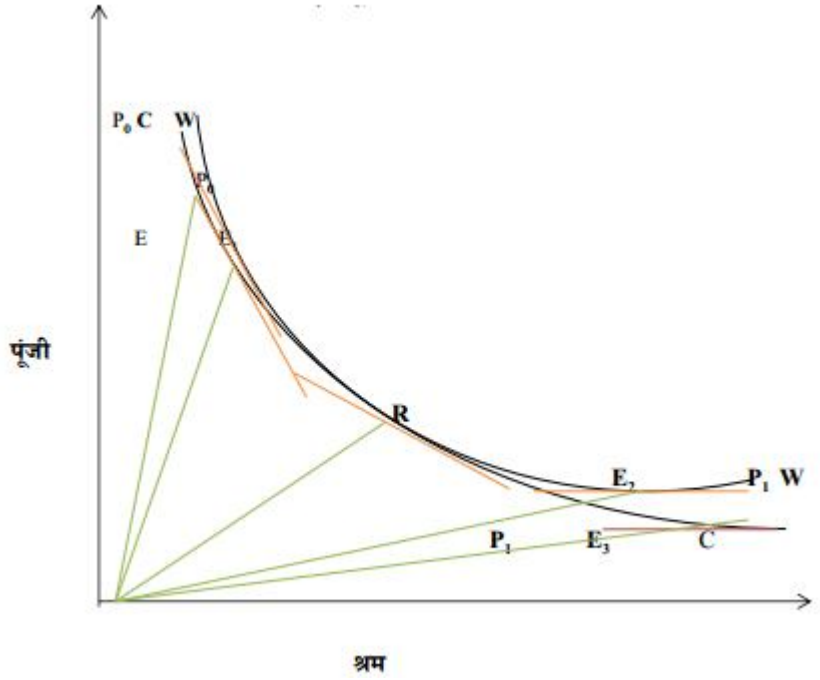

रेखाचित्र 9.12

एकल साधन प्रतिलोमता को ऊपर दिये चित्र में स्पष्ट किया गया है जहां WW गेहूं का तथा CC कपड़े का समोत्पाद वक्र है। R बिन्दु चित्र में दोनों समोत्पाद वक्रो का स्पर्श बिन्दु है। और साथ ही यह बिन्दु अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की एक समान रेखा का भी बोधक है। यह रेखा उस अनुपात को प्रदर्शित करती है जिसमे एक साधन कीमत अनुपात पर

दोनों वस्तुओं के लिए विभिन्न गहनताओ में दोनों साधनो को मिलाया जाता है। लेर्नर ने OR रेखा को सपश्र्ज्यता कि किरण कहा है जो साधन गहनता व्युत्क्रम का प्रतीक है। दोनों सममात्रा वक्रो पर पर इस OR रेखा के बाए अथवा दायें स्थित संतुलन बिन्दुओ से पता पता चलेगा कि साधन गहनता में उत्पादन फलन बादल गए है। साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त से हम जानते है कि देशA (P_0P_0 कीमत रेखा) में गेहूं सापेक्ष रूप से पूँजी गहन है। देश B कि साधन कीमत समानीकरण रेखा P_1P_1 है। चित्र में OR रेखा के बाईं ओर स्तिथ OE तथा OE_1 रेखाओं द्वारा व्यक्त किया गया अनुपात विभिन्न साधन गहनताओं को प्रदर्शित करते है। OE तथा OE_1 रेखाओं द्वारा पता चलता है कि देश A में गेहूं का उत्पादन कपड़े की तुलना में अधिक पूँजी गहन है। देश A में दोनों वस्तूओ का साधन कीमत अनुपात एक समान है जैसा कि CC तथा WW सममात्रा वक्रो के E तथा E_1 बिन्दुओ पर समानान्तर रेखाओ से व्यक्त होता है। दूसरी ओर ,OR रेखा के दायीं ओर स्तिथ OE_2 तथा OE_3 रेखाओ से पता चलता है कि कपड़ा देश B में गेहु उत्पादन कि अपेक्षा श्रम गहन है। इस प्रकार ऊपर दिये गए विश्लेषण से ज्ञात होता है कि गेहूं देश A में सापेक्ष रूप से पूँजी गहन है और कपड़ा देश B सापेक्ष रूप से श्रम गहन है इस प्रकार देश A गेहूं का उत्पादन करता है जबकि देश A कि कीमत रेखाओ के अनुसार ये श्रम गहन है परंतु यह देश इसे पूँजी से प्रतिस्थापित करता है। इससे साधन व्युत्क्रम उत्पन्न होता है। यह बता सकना असंभव है कि कोनसा देश कोनसी वस्तु का उत्पादन करेगा व किस वस्तु का निर्यात करेगा। इस प्रकार साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त विफल हो जाता है।

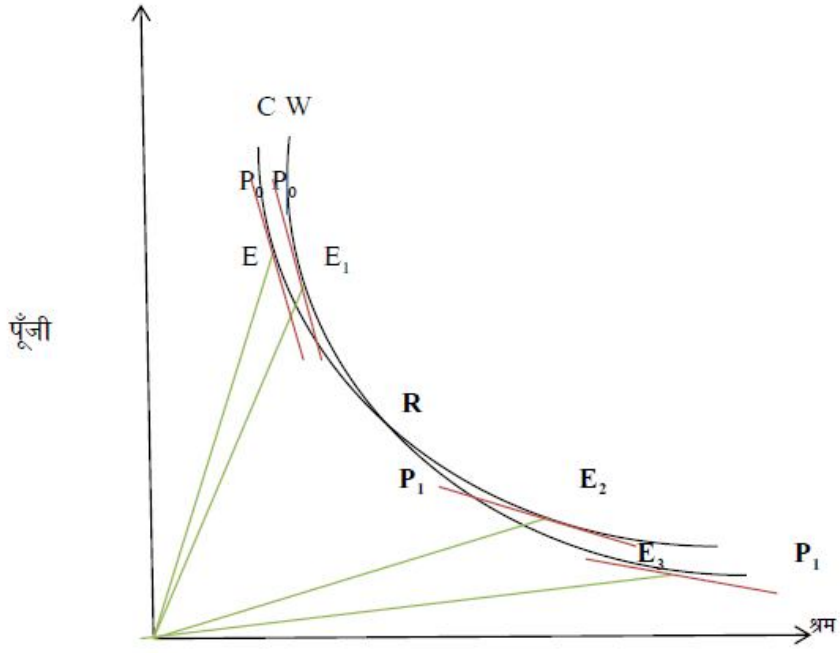

रेखाचित्र 9.13

चित्र में दो सममात्रा वक्र गेहूं और कपड़ा एक दूसरे को एक ही बिन्दु R पर काटते है, और दो उत्पादो की साधन गहनता व्युत्क्रम R बिन्दु के दोनों तरफ बताई है। देश A का साधन कीमत अनुपात कीमत रेखा P_0P_0 से दिखाई गयी है जिससे पता चलता है कि इस देश में कपड़े का उत्पादन ऊंचे पूँजी श्रम अनुपातों पर होता है गेहूं कि तुलना में। यह चित्र में OE तथा OE_1 से ज्ञात होता है। देश B में गेहूं का उत्पादन ऊंचे पूँजी श्रम अनुपातों पर होता है कपड़े कि तुलना में। चित्र में यह OE_2 तथा OE_3 से व्यक्त होता है। दूसरे शब्दो में, कपड़ा पूँजी गहन तथा गेहूं श्रम गहन है देश A में जबकि देश B में गेहूं पूँजी गहन तथा कपड़ा श्रम गहन है । यह साधन गहनता व्युत्क्रम का दूसरा प्रमाण है।

अगले क्रम में साधन गहनता व्युत्क्रम को एक बार फिर से दो से अधिक बार कटे हुए सममात्रा वक्रो के साथ देखते है।

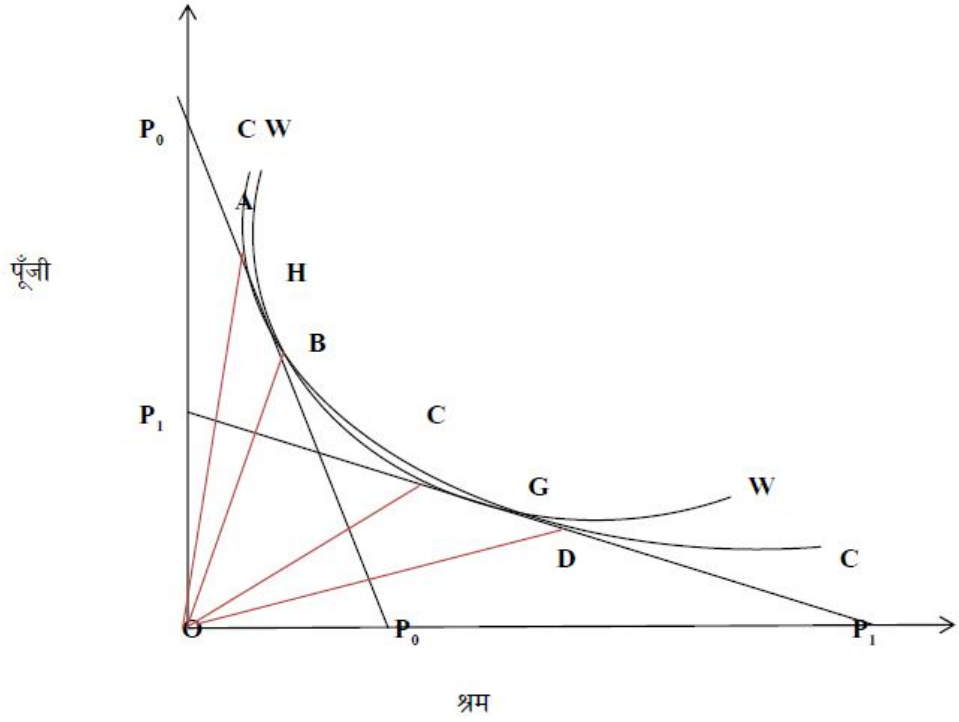

रेखाचित्र 9.14

देश A के साधन कीमत समानीकरण रेखाP_0P_0तथा देश B की साधन कीमत समानीकरण रेखा P_1P_1 है। CC तथा WW, कपड़े व गेहूं के सममात्रा वक्र है। दो रेखाएँ OA तथा OB, देश A में कपड़े व गेहूं में लगे पूंजी-श्रम अनुपातों को प्रदर्शित करते है, और OC व OD रेखाएँ देश B क पूंजी-श्रम अनुपातों को। यह हम आसानी से ज्ञात कर सकते है कि कपड़ा देश A में पूंजी गहन व देश B में श्रम गहन हैं जबकि गेहूं देश A में श्रम गहन व देश B में पूंजी गहन है। ये दोनों सममात्रा वक्र एक दूसरे को बिन्दु H व G पर काटते है।

दो देशों में समान उत्पादन फलन की मान्यता या साधन गहनता की अपरिवर्तनशीलता की मान्यता, हैक्शचर ओहलीन के सिद्धान्त के तर्क हेतु आवश्यक है। प्रश्न ये है कि, क्या साधन प्रतिलोमता या व्युत्क्रम वास्तविक विश्व में आम है? मिनहास, लेओन्तिफ, मोरोने, और अन्य

अर्थशास्त्रियों ने एक वृहद आनुभविक विश्लेषण किया और विवादजनक परिणाम प्रपट किए।

मिनहास, उदाहरण के लिए, 24 उद्योगों का विश्लेषण किया जिसमे उसने 19 अलग देशों के आंकड़ो कि तुलना की और 5 देशों मे साधन प्रतिलोमता की स्थिति पायी गयी।

9.4 संतापकारी वृद्धि

9.4.1 वृद्धि एवं व्यापार : एक वृहद देश का प्रतिमान

उत्पादन, उपभोग , व्यापार , और कल्याण की वृद्धि के प्रभाव के विश्लेषण के व्याख्या एक वृहद देश के संदर्भ में देखेंगे जो कि व्यापार में शामिल सापेक्ष वस्तुओ की कीमतों को प्रभावित करता है। हम विकास का व्यापार की शर्तो व कल्याण पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करेंगे जिसमे हम वृहद देश के प्रतिमान की व्याख्या करेंगे। हम विश्लेषण करेंगे कि क्या एक बड़े देश में विकास या वृद्धि व्यापार की शर्तो में सुधार करते है?हम यहा एक ऐसे विकास की चर्चा करेंगे जो हो सकता है कि राष्ट्र के कल्याण में वृद्धि करे परंतु उसकी व्यापार शर्तो में इतनी गिरावट ला देता है कि राष्ट्र का विकास का स्तर पहले से गिर जाता है।

9.4.1.1 आर्थिक विकास और राष्ट्र की व्यापार शर्ते तथा कल्याण

यदि एक राष्ट्र के व्यापार की मात्रा स्थिर कीमतों पर बढ़ती है, तब उस राष्ट्र की व्यापार की शर्तो मे गिरावट आती है। दूसरी तरफ , विकास राष्ट्र की व्यापार मात्रा में गिरावट लाता है स्थिर कीमतों पर, तो उस राष्ट्र की व्यापार शर्तो में सुधार होता है।

विकास के प्रभाव राष्ट्र के कल्याण पर निर्भर करते है जो कि राष्ट्र के शुद्ध व्यापार शर्तो व संपत्ति प्रभावों पर निर्भर करते है। संपत्ति प्रभावमें

विकास के परिणामस्वरूप, एक राष्ट्र के प्रति श्रम उत्पादो या प्रति व्यक्ति उत्पादो में बदलाव आता है। एक सकारात्मक संपत्ति प्रभाव राष्ट्र के कल्याण में वृद्धि करता है, नहीं तो एक राष्ट्र के कल्याण में कमी होती है या कल्याण स्थायी रहता है। अगर एक राष्ट्र का संपत्ति प्रभाव सकारात्मक है तो राष्ट्र के व्यापार शर्तो में सुधार होगा, इससे राष्ट्र के कल्याण में वृद्धि होगी। परंतु यदि संपत्ति प्रभाव सकारात्मक है तो और व्यापार कि शर्ते विपरीत दिशा में जा रही है तो राष्ट्र का कल्याण या तो घटेगा, या बढ़ेगा या अपरिवर्तित रहेगा, ये उन दोनों प्रभावों के विपरीत बलो के सामर्थ्य पर निर्भर करता है।

उदाहरण के लिए यदि एक राष्ट्र में , श्रम दुगुना हो जाता है , तो संपत्ति प्रभाव के अनुसार उस राष्ट्र का कल्याण कम हो जाता है। यह विकास व्यापार कि मात्रा में वृद्धि करेगा जिससे उस राष्ट्र कि व्यपार शर्तो पर प्रतिकूल प्रभाव बढ़ेगा और व्यापार शर्तो में गिरावट लाएगा। यदि हम ये मान ले कि वह राष्ट्र इतना विशाल है कि सापेक्ष वस्तु कीमतों को प्रभावित कर सकते है, तो विकास इस राष्ट्र कि व्यापार शर्तो में गिरावट लाने के साथ उसके कल्याण में भी गिरावट लाते है।स्केपटिक्स ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाले संभावित लाभों मे एक गंभीर संदेह उत्पन्न हुआ। संतापकारी वृद्धि एक ऐसा ही सिद्धान्त है जिसकी आशंका स्केपटिक्स ने व्यक्त की थी।

संतापकारी वृद्धि का सुझाव बहुत पहले एजवर्थ ने 1894 में दिया था कि निर्यातों के उत्पादन की लागत कम होने पर एक देश के आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से हानिकारक है। यह विचार इस सिद्धान्त को बल देता है कि किसी भी देश में उत्पादन की वृद्धि से अधिक देश के व्यापार शर्तों मे गिरावट लाता है जो कि उस राष्ट्र के आर्थिक वृद्धि व आर्थिक कल्याण को कम करता है। जिसकी व्याख्या प्रो जगदीश भगवती ने संतापकारी वृद्धि के नाम से की। निम्न चित्र में समझाया गया है की किस प्रकार किसी राष्ट्र की उत्पादन की संभावनाएं व क्षमताएं बढ़ने

पर व्यापार की शर्ते प्रतिकूल हो जाती है जो उस राष्ट्र के आर्थिक कल्याण को कम करती है :

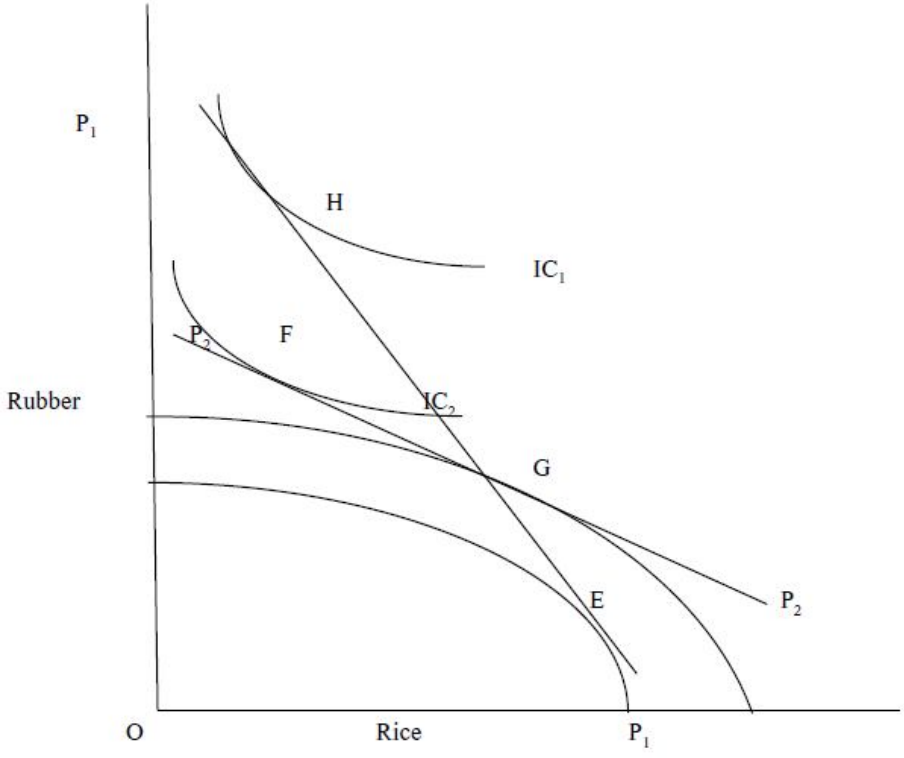

चित्र 9.15 संतापकारी वृद्धि

प्रारम्भ मे देश उत्पादन संभावना वक्र के बिन्दु E पर उत्पादन करता है और उपभोग बिन्दु H पर करता है। अंतर्राष्ट्रीय कीमत रेखा P_1P_1 है और इस देश के उप्भोका व आर्थिक कल्याण का वक्र IC_1 है। जेसे ही इस राष्ट्र की उत्पादन की संभावनाओ में विस्तार होता है , उत्पादन संभावना वक्र AEB से CGD, दायीं ओर परिवर्तित हो जाता है। इसे विस्तार से समझने हेतु हम इसका विश्लेषण बढ़े देश के संदर्भ मे करेंगे, जो की विश्व व्यापार को प्रभावित करने मे सक्षम है ।

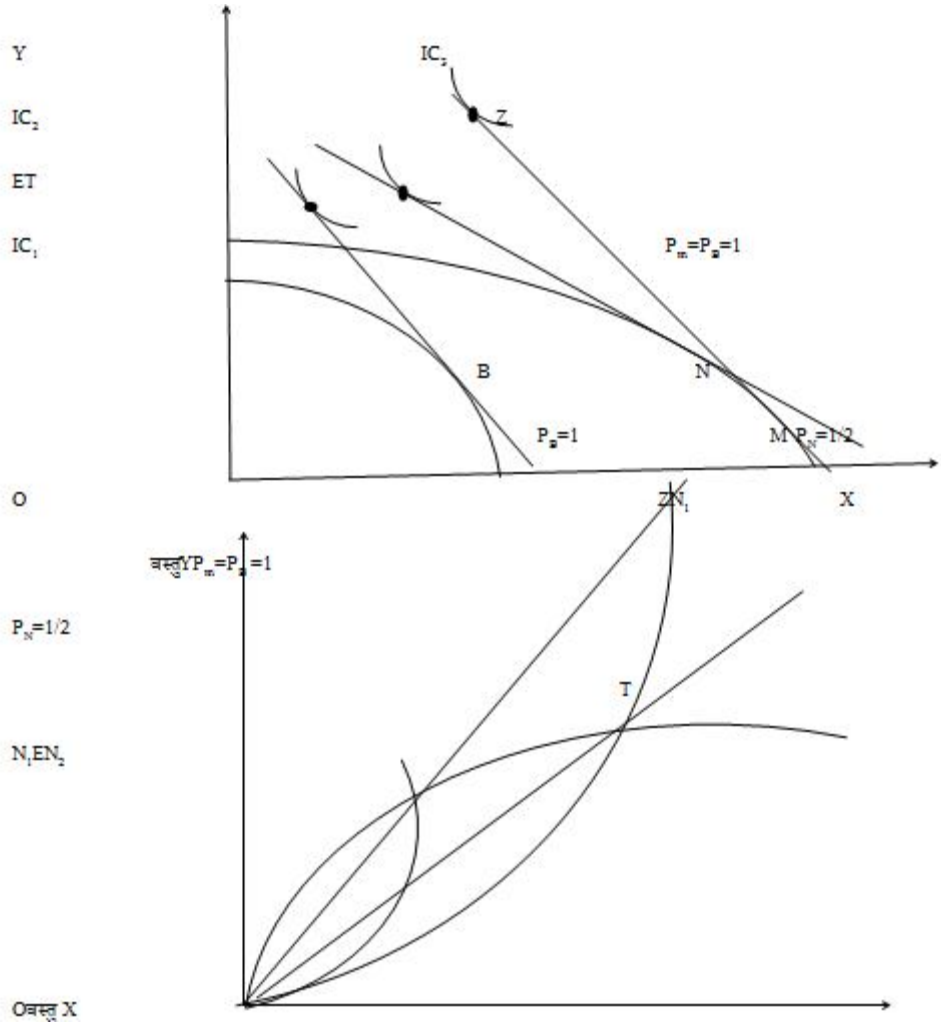

रेखाचित्र 9.16 संतापकारी वृद्धि एवं व्यापार शर्ते

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विस्तार का परिणाम आर्थिक कल्याण मे वृद्धि का सूचक होता है परंतु यह स्थिति एक देश को उसके प्रारम्भिक कल्याण के बिन्दु से निचले स्तर पर ले आती है क्योंकि अब इस देश का उत्पादन अब बिन्दु G पर होता है जो कि नए उत्पादन संभावना वक्र CGD पर स्थित है। इस आर्थिक वृद्धि के परिणामस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय कीमत रेखा भी परिवर्तित होकर P_1P_1 से P_2P_2 हो जाती है, जो इस राष्ट्र कि व्यापार शर्तो को प्रतिकूल बनाता है। उपभोका का उपभोग बिन्दु

भी अब F है जो कि निचले तटस्थता वक्र पर स्थित है। दो आधारभूत कारण इस स्थिति के जनक है :प्रथम, आर्थिक वृद्धि ने सबसे पहले निर्यातों के क्षेत्र में अपनी क्षमता व उत्पादन मे वृद्धि की। द्वितीय, विश्व की मांग इस राष्ट्र के उत्पादों के लिए कम लचीली है। प्रथम कारण, अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में उत्पादन मे वृद्धि कर उसकी पूर्ति की मात्रा मे वृद्धि करता है जबकि द्वितीय कारण ये बताता है कि इसी कारण व्यापार कि शर्ते इस राष्ट्र के लिए प्रतिकूल हो जाती है।

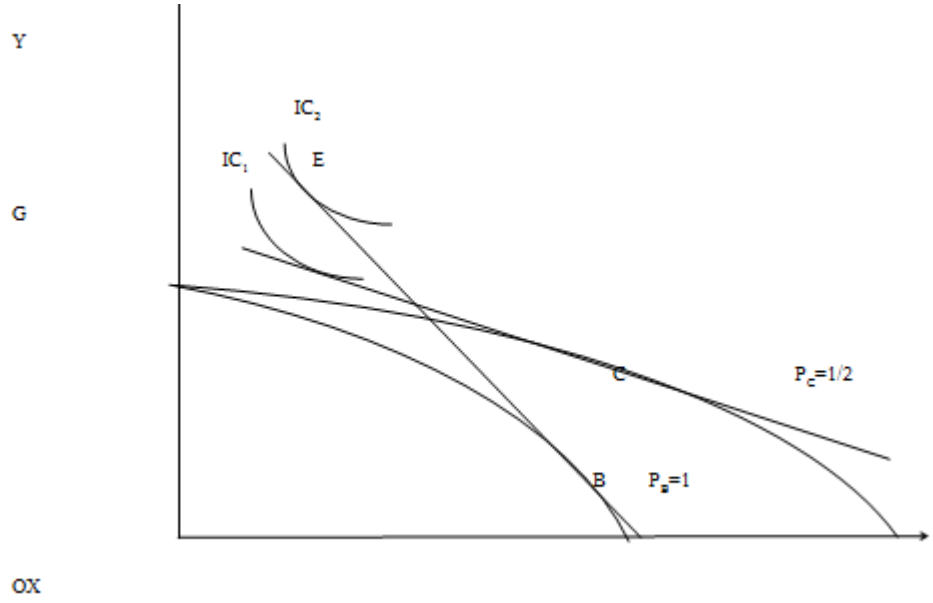

रेखाचित्र 9.17

संतापकारी वृद्धि उन राष्ट्रो पे लागू होती है जो प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन में संलग्न है और जिनके कृषि उत्पादो के लिए विश्व कि मांग कम लचीली है। यह तर्क बहुत सारे विकासशील राष्ट्रो के संधर्भ मे एक सशक्त दावा प्रस्तुत करती है , प्रथम, संतापकारी वृद्धि का यह सिद्धान्त उन राष्ट्रो में लागू होगा जो बड़े और इतने महत्वपूर्ण है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं कीमत रेखा को अपने पूर्ति परिवर्तन से प्रभावित का सकते है और यदि देश छोटा है तो विश्व व्यापार शर्तों से कभी भी प्रभावित हों सकते है । इसलिए संतापकारी वृद्धि छोटे राष्ट्रो के विश्लेषण के लिए सार्थक तर्क प्रस्तुत नहीं करती। संतापकारी वृद्धि की संभावना अल्प

विकसित राष्ट्रो के लिए बहुत अधिक विचारणीय मुद्दा है , विशेषकर वो राष्ट्र जो लैटिन अमेरीकन व दक्षिणी-पूर्वी एशिया से है। यह सिद्धान्त उन राष्ट्रो के लिए चेतावनी है जो विकास के लिए असंतुलित व विभेदकारी नीतियों का अनुसरण करते है और विशेषकर वो देश जो पर्याप्त वृहद है , अंतर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तो को प्रभावित करने में।

9.4.1.2 वृद्धि से कल्याण व व्यापार शर्तो दोनों में सुधार

यदि हम केवल साधन पूंजी (K) जो की राष्ट्र एक का दुर्लभ साधन है का परीक्षण करे, तो संपत्ति प्रभाव राष्ट्र के कल्याण में वृद्धि करेगा। परिणाम बहुत ही समान होंगे स्थायी तकनीकी प्रगति केवल वस्तु Y के उत्पादन में। इस प्रकार की वृद्धि और विकास व्यापार की मात्र को कम करते है स्थायी कीमतों पर। लेकिन राष्ट्र एक की व्यापार शर्तो में भी यहा सुधार होता है। दोनों संपत्ति और व्यापार की शर्ते देश 1 के कल्याण में सुधार करते है।

यह विवेचना नीचे दिये गए चित्र में की गयी है।

रेखाचित्र 9.18 आर्थिक वृद्धि

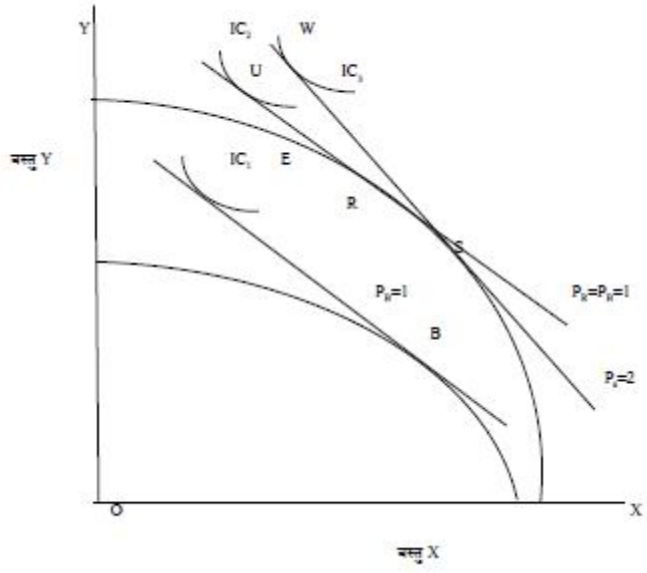

ऊपर दिये गये चित्र में देश 1 का वृद्धि से पूर्व उत्पादन संभावना वक्र दिखाया गया है जिसमे बाद में पूंजी में परिवर्तन आता है जो कि नए उत्पादन संभावना वक्र से इंगित होता है। स्थायी सापेक्ष वस्तु कीमतों पर P_B=1, देश 1,X वस्तु व Y दोनों की अधिक मात्रा उत्पादित करता है। और बिन्दु U पर उपभोग करता है जो कि IC_2 पर स्थित है। यह IC_1 यानि पूर्व तटस्थता वक्र से ऊंचा स्तर है । यदि यह देश अधिक पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन शुरू कर दे तो यह स्तर बढ़ कर IC_3 के बिन्दु W तक पाहुच जाएगा जो अधिक ऊंचे स्तर को इंगित करता है। यदि देश 1 कि जनसंख्या व श्रम कि वृद्धि अपरिवर्तित रहती है तो यह देश निस्संदेह कल्याण में वृद्धि कर पाएगा।

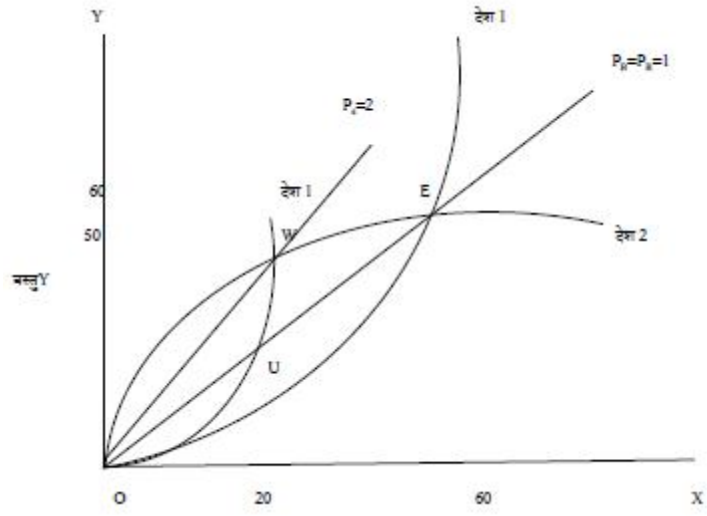

रेखाचित्र 9.19 व्यापार शर्ते

वृद्धि एक देश के व्यापार शर्तो तथा कल्याण दोनों में सुधार करती है। ऊपर दिये गए चित्र के अनुसार देश 1 की व्यापार शर्तो में सुधार होता है। देश 1 का प्रस्ताव वक्र परिवर्तित होकर व्यापार की मात्रा कम करता है परंतु देश 1 की व्यापार शर्तो में सुधार होता है। वस्तु Y की 50 इकाइयों के बदले ये देश X वस्तु की 20 इकाइयों का ही विनिमय करता है।

9.5 निष्कर्ष

यदि वृद्धि स्थायी कीमतों पर देश की व्यापार मात्रा में वृद्धि करता है तो उसकी व्यापार शर्तो में गिरावट आती है। नहीं तो देश की व्यापार शर्ते अपरिवर्तित रहेगी।एक देश की व्रिद्ध का प्रभाव देश के कल्याण पर कितना पड़ता है ये उसके संपत्ति प्रभाव पर निर्भर करता है। ये प्रभाव प्रति व्यक्ति उत्पाद में परिवर्तन लता है। यदि दोनों व्यापार शर्ते और संपत्ति प्रभाव पक्ष में है तो देश का कल्याण जरूर बढ़ेगानहीं तो वो या तो अपरिवर्तित रहेगा या घटेगा जो की इन दोनों प्रभावों पर निर्भर करता है। वह स्थिति जब व्यापार कीशर्तो का प्रभाव नकारात्मक है पर संपत्ति प्रभाव पक्ष में है और वह राष्ट्र के कल्याण में

कमी करे तो इसे संतापकारी वृद्धि वृद्धि कहते है। वृद्धि के साथ यदि राष्ट्र के रुचि व अधिमान में परिवर्तित हो जाए तो व्यापार की मात्र तो कम होती है पर देश की व्यापार शर्तो में सुधार होता है।

9.6 संदर्भ पुस्तकें

- Mannure HG, International Economics (Vikas Publishing House PVT LTD) Chapter 1 (PP.3-19)
- Salvatore Schiaro-Campo, International Economics (Cambridge, Massachusetts:Winthrop Publishers, 1978) Chapter 1 (pp. 1-11)
- International Economics: Theory and Policy, Sixth Editionby Paul R. Krugman and Maurice Obstfeld

9.7 शब्दावली

- **काल-श्रेणी** आंकड़ो के बिन्दुओ का एक व्यवस्थित क्रम जो समय अंतरालों से बंता है । जैसे प्रतिदिन की डो जोंस के औद्योगिक औसत का बंद होने वाला मूल्य
- **बलासा- समुएलसन प्रभाव**-वह परिकल्पना जो व्यापारिक वस्तु की उत्पादकता को गैर व्यापारिक वस्तु की तुलना में बढाता है जिससे उस देश की वास्तविक विनिमय दर कम हो जाती है और मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है। बलासा और समुएलसन ने ये 1964 में दिया था। बहुत सी विनिर्माण वस्तुए आपस में व्यापार की जाती हैं और सेवाएँ गैर व्यापारिक। श्रम उत्पादकता विनिर्माण वस्तुओं में सेवाओं से अधिक बढ़ी है। इसलिए विकसित देशों में सेवाओ की कीमते अधिक ऊंची होती है। यह बलासा समुएल्सन प्रभाव है
- **व्यापार शर्तो का प्रभाव** -स्थायी कीमतों पर निर्यातों में अभिवृद्धि से, उस देश कि व्यापार शर्तो में गिरावट आती है क्योंकि वह देश समान मात्रा पर अधिक वस्तुओ का आदान

प्रदान करने के लिए तैयार है। इससे उस देश की वस्तु आयातित वस्तु कि तुलना में विश्व बाज़ार में सस्ती हो जाती है।

- **संतापकारी वृद्धि-** आर्थिक वृद्धि जो देश को पतन की और अग्रसर करती है । प्रो. जगदीश भगवती (1958) में बताया कि विकास के लिए निर्यातों का विस्तार, व्यापार शर्तो में गिरावट लाता है जीसे देश कि वास्तविक आय कम हो जाती है। इससे देश के वास्तविक कल्याण में कमी होती है।
- **साधन गहनता प्रतिलोमता-**दो उद्योगों या देशों के तकनीकी स्वामित्व कुछ इस क्रम में है कि उनकी सापेक्ष साधन गेहंताएन भिन्न है, भिन्न साधन कीमतों पर। उदाहरण के लिए , एक उद्योग सापेक्षतय पूंजी गहन हो सकता है ऊंची मज़दूरियों कि तुलना में, और श्रम गहन है कम मजदूरी पर।
- **लीओनतीफ़ विरोधाभास-**अर्थशास्त्र में लीओनतीफ़ विरोधाभास वह है है जिसमे देश को जो विश्व का सबसे ऊंचा पूंजी प्रति श्रम रखता है उसके निर्यातों में निम्न पूंजी प्रति श्रम अनुपात, आयतों की तुलना में अधिक देखने को मिलता है। यह अर्थमिति परिणाम वासिली लीओनतीफ़ के थे जिसने हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त पर परीक्षण किए थे।
- **तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त -**अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार , एक व्यक्ति, फ़र्म, या देश को एक वस्तु के उतपदन पर तुलनात्मक लाभ प्राप्त होता है, जो सापेक्षतय कम अवसर लागत या सापेक्षतया कम सीमांत लागत पर उत्पादित की गयी है।
- **निरपेक्ष लाभ-** अर्थशास्त्र में निरपेक्ष लाभ दल जो कि व्यक्ति, फर्म, या देश की योग्यता को प्रकट करता है जो वस्तुओ और सेवाओं की अधिक मात्रा उत्पादित करने मे अपने प्रतियोगियो की तुलना में अधिक सक्षम है, वो भी उतने ही मात्रा में उपलब्ध साधनो के माध्यम से।

- **गैर व्यापारिक वस्तुए-** वस्तुए जिनका व्यापार नहीं किया जा सकता, गैर व्यापारिक वस्तुए कहलाती है।गैर व्यापारिक वस्तुओं की मांग लोच कम होती है।
- **आनुभविक प्रमाणीकरण-** कुछ एस जो वास्तविक जगत से जुड़े आंकड़ो या आभासों पर आधारित हो, जिसके परिप्रेक्ष्य में कुछ सिद्धान्त के संदर्भ में निष्कर्ष निकाला जाए।

9.8 अभ्यासर्थ प्रश्न

1. हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त के आनुभविक प्रमाणो की व्याख्या कीजिये।
2. रिकार्डो के सिद्धान्त के आनुभविक प्रमाणो की व्याख्या कीजिये।
3. व्यपार शर्तो का वृद्धि प्रभाव क्या है? संपत्ति का वृद्दि प्रभाव क्या है? वृद्धि के परिणामस्वरूप एक देश के कल्याण व व्यापार पर पढ़ने वाले प्रभावों की गरणा हम कैसे कर सकते है ?
4. व्यापार और उसकी शर्तो पर क्या प्रभाव होगा यदि एक देश का प्रस्ताव वक्र उसकी निर्यात जनक वस्तु से परिवर्तित होता है? किस प्रकार की वृद्धि या रुचि परिवर्तन, इस देश के प्रस्ताव वक्र को परिवर्तित करता है।
5. संतापकारी वृद्धि क्या है इसे चित्रो की सहता से बढ़े देश के संदर्भ में स्पष्ट कीजिये।
6. साधन गहनता प्रतिलोमता तर्क क्या है? स्पष्ट कीजिये।
7. साधन गहनता प्रतिलोमता तर्क स्पष्ट कीजिये जब समोत्पाद वक्र एक दूसरे को स्पर्श करते हो।
8. साधन गहनता प्रतिलोमता तर्क स्पष्ट कीजिये जब समोत्पाद वक्र एक दूसरे को दो बार काटते हो।

9. साधन गहनता प्रतिलोमता तर्क स्पष्ट कीजिये जब समोत्पाद वक्र एक दूसरे को एक बार ही काटते है।
10. लियोंन्तिफ विरोधाभास क्या है? स्पष्ट कीजिये।
11. बलासा के तर्क का आनुभविक विवेचन रिकार्डो के सिद्धान्त के संदर्भ में स्पष्ट कीजिये।
12. गई व्यापारिक वस्तुए किस प्रकार व्यापार पर प्रभाव डालती है? रिकार्डो के सिद्धान्त के संदर्भ में स्पष्ट कीजिये।
13. रिकार्डो के केंद्रीय विचारो के संदर्भ में प्रस्तुत आनुभविक प्रमाण स्पष्ट कीजिय

इकाई – 10

व्यापार - स्वरूप के निर्धारक : नवीन सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 आधुनिक पूर्ति-मांग सिद्धान्त

10.2.1 व्यापार से पूर्व कीमत - भिन्नताओं के कारण

10.3 नवीन सिद्धान्त

10.3.1 तकनीक में अन्तर

10.3.2 उत्पाद में अन्तर

10.3.3 प्राकृतिक संसाधन - उत्पादन के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में

10.3.4 उद्यमिता

10.3.5 शोध एवं विकास

10.3.6 उत्पाद-चक्र सिद्धान्त

10.4 बोध-प्रश्न

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.8 बोध-प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं :-

(अ) आधुनिक वर्षों में राष्ट्रों के मध्य व्युत्पन्न व्यापार स्वरूप का विश्लेषण करने की दृष्टि से आपको को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नवीन सिद्धान्तों से अवगत कराना।

(ब) कुछ प्राचीन सिद्धान्तों की अनुभाविक आँकड़ों के आधार पर जाँच की जानकारी देना तथा नवीन सिद्धान्तों के संदर्भ में व्यापार के नवीन स्वरूप के विश्लेषण की आवश्यकता को स्पष्ट करना। प्राचीन सिद्धान्त मुख्य रूप से :- (i) परम्परावादी अथवा तुलनात्मक लागत सिद्धान्त एवं (ii) नवीन परम्परावादी अथवा हैक्शचर-ओहलिन सिद्धान्त है।

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परम्परावादी एवं नवीन-परम्परावादी सिद्धान्तों का अध्ययन कर चुके हैं। पिछले अध्ययन के अनुसार यह स्पष्ट है कि दो देशों में किसी वस्तु के उत्पादन की लागत में तुलनात्मक अन्तर व्यापार का आधार प्रस्तुत करता है। (परम्परावादी सिद्धान्त) जबकि नवीन-परम्परावादी सिद्धान्त के अनुसार साधन प्रचुरता में अन्तर व्यापार का आधार प्रस्तुत करता है। विभिन्न देशों के मध्य व्यापार-स्वरूप के व्यवहार की व्याख्या मुख्य रूप से इन्हीं सिद्धान्तों के संदर्भ में की जा सकती है। ये सिद्धान्त मुख्य रूप से पूर्ति-पक्ष पर आधारित थे। मांग पक्ष तथा उन तत्वों, जिनकी व्याख्या प्राचीन सिद्धान्तों में नहीं की गई है, की व्याख्या नवीन सिद्धान्तों के आधार पर की जा सकती है। आधुनिक सिद्धान्त में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वरूप को प्रभावित करने वाले पूर्ति एवं मांग सम्बन्धी तत्वों को सम्मिलित करने

का प्रयास किया गया है। "उत्पाद-चक्र सिद्धान्त" 'आधुनिक समय में विकसित सिद्धान्तों में से एक है। अन्य सिद्धान्तों में व्यापार के निर्धारक कारकों के रूप में प्राकृतिक साधनों, उद्यमिता, उत्पाद-भिन्नता एवं तकनीक - भिन्नता की भूमिका को शामिल किया गया है।

इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित इन नवीन सिद्धान्तों की व्याख्या की जा रही है।

10.2 आधुनिक पूर्ति-मांग सिद्धान्त

10.2.1 व्यापार से पूर्व कीमत - भिन्नताओं के कारण

आधुनिक पूर्ति - मांग सिद्धान्त राष्ट्रों के मध्य व्यापार से पूर्व वस्तुओं की कीमतों में भिन्नता के लिए उत्तरदायी तत्वों की व्याख्या करता है। इन तत्वों का विश्लेषण पूर्ति एवं मांग पक्ष के द्वारा किया जा सकता है। पूर्ति पक्ष के अनुसार विभिन्न राष्ट्रों की साधन-प्रचुरता अथवा साधन अनुपात व्यापार का प्रमुख निर्धारक तत्व है। मांग पक्ष के अनुसार उपभोक्ताओं की रूचियां मुख्य रूप से वस्तुओं के प्रति सापेक्ष पसंदगी का निर्धारण करती है। उपभोक्ताओं की रूचियों में अन्तर मुख्य रूप से प्रति इकाई आय में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है। अर्थात मांग पक्ष के अनुसार राष्ट्रों के आय - उपभोग स्वरूप एवं इसमें पाये जाने वाले अन्तर व्यापार के मुख्य निर्धारक तत्व हैं।

मांग-सिद्धान्त के अनुसार इसकी व्याख्या की जा सकती है। आप जानते हैं कि वास्तविक आय में वृद्धि (आय-प्रभाव) सामान्यतया उपभोग वस्तुओं की क्रय-मात्रा में वृद्धि करता है। जिस प्रकार एक उपभोक्ता क्रय में वृद्धि करता है उसी प्रकार देश के समस्त उपभोक्ता भी क्रय में वृद्धि करेंगे। चित्र 10.1 में "A" देश के आय - उपभोग स्वरूप की व्याख्या की गई है। "A" देश मुख्य रूप से दो वस्तुएँ "X" एवं "Y" का उपभोग करता है। "X" एक आवश्यक वस्तु है तथा "Y" एक विलासिता की वस्तु है।

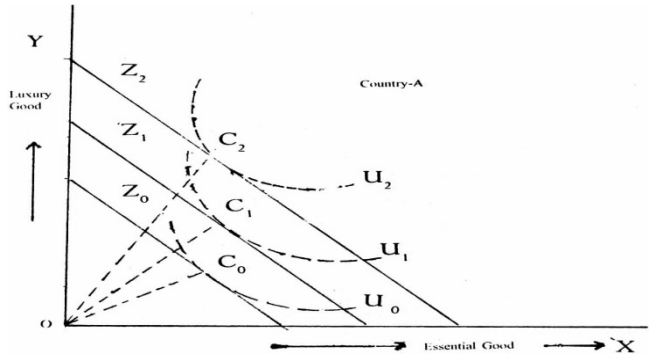

रेखाचित्र 10.1

रेखाचित्र 10.1 में बजट रेखा "Z_0", "Z_1" तथा "Z_2" समानान्तर है ये रेखाएँ आय में क्रमिक वृद्धि को व्यक्त करती है। उदासीनता वक्र U_0, U_1 तथा U_2 है। ये वक्र बताते हैं कि - उपभोक्ताओं की संतुष्टि के स्तर में वृद्धि हुई है तथा उनकी पसंदगी विलासिता की वस्तु "Y" के प्रति आवश्यक वस्तु "X" की तुलना में बढ़ी है। उदासीनता वक्रों का स्वरूप इस तथ्य को स्पष्ट करता है। प्रति इकाई आय का स्तर जब Z_0 है तो संतुलन बिन्दु C_0 है। जहां पर आवश्यक वस्तु "X" का उपयोग तुलनात्मक रूप से अधिक है। Z_1 प्रति इकाई आय के स्तर पर संतुलन C_1 पर है जहां पर उपभोक्ता तुलनात्मक रूप से "Y" को अधिक पसंद कर रहे है। इसी प्रकार Z_2 आय के स्तर पर संतुलन C_2 पर है। C_2 बिन्दु भी "Y" वस्तु के प्रति अधिक पसंदगी को व्यक्त करता है।

इस प्रकार "A" देश में प्रति इकाई आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप दो वस्तुओं के सापेक्षिक मांग-स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। Y वस्तु की मांग बढ़ जाती है परिणामस्वरूप "A" देश में "Y" वस्तु की कीमतें बढ़ेगी और यह वस्तु तुलनात्मक रूप से महंगी हो जायेगी।

"B" में प्रति इकाई आय का स्तर तथा वस्तुओं का आय उपभोग स्वरूप समरूप नहीं है, परिणामस्वरूप "B" देश के उपभोक्ताओं की पसंद आवश्यक वस्तु "X" के प्रति अधिक रहेगी और इस देश में यह वस्तु तुलनात्मक रूप से महंगी होगी। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के प्रति

पसंदगी में पाये जाने वाला अन्तर व्यापार का आधार प्रस्तुत करता है। पसंदगी में अन्तर मुख्य रूप से प्रति इकाई आय-स्तर में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है। जब व्यापार प्रारम्भ होता है तो अन्तर्राष्ट्रीय संतुलन कीमत का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जहां पर "A" देश X वस्तु का निर्यात "B" देश को करेगा और "Y" वस्तु का आयात "B" देश से करेगा।

इस प्रकार "A" देश के उपभोक्ता "Y" वस्तु का तथा "B" देश के उपभोक्ता "X" वस्तु का अधिक उपभोग कर सकेंगे।

इस प्रकार राष्ट्रों के मुख्य प्रति इकाई आय-स्तर में पायी जाने वाली भिन्नताएं व्यापार का लाभप्रद आधार प्रस्तुत करती है।

10.3 नवीन सिद्धान्त

10.3.1: तकनीक में अन्तर

दो राष्ट्रों के मध्य तकनीक में अन्तर अप्रत्यक्ष रूप से व्यापार का महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। दो राष्ट्र "A" तथा "B" हैं तथा वे "X" तथा "Y" दो वस्तुओं का उत्पादन कर रहे हैं। माना कि "A" देश में "X" वस्तु के उत्पादन में तकनीकी प्रगति होती है तथा बाकि सभी बातें दोनों देशों में स्थिर हैं "X" वस्तु के उत्पादन में होने वाला तकनीकी परिवर्तन "A" देश में "X" वस्तु के उत्पादन फलन को परिवर्तित कर देगा। उत्पादन संभावना वक्र के रूप में यह परिवर्तन चित्र 10.2 के अनुसार होगा।

तकनीकी परिवर्तन के परिणाम स्वरूप उत्पादन संभावना वक्र Y_0X_0 से परिवर्तित होकर Y_0X, हो गया है। मानाकि यह परिवर्तन 'के' (K) गुना है। Y_0 बिन्दु में कोई परिवर्तन नहीं हुआ

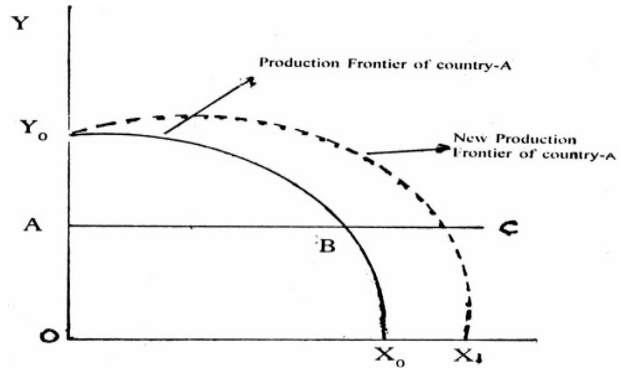

रेखाचित्र 10.2

है क्योंकि वाई वस्तु के उत्पादन की तकनीक पूर्ववत है और इसमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ है। यदि किसी समय विशेष में "B" देश में "X" वस्तु के उत्पादक इस तकनीकी परिवर्तन से अवगत नहीं हैं तो दोनों देशों के मध्य तकनीक में अन्तर उत्पन्न हो जाएगा।

तकनीक में अन्तर के व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की जा सकती है। "A" देश में "X" वस्तु की उत्पादन तकनीक में परिवर्तन से इसकी लागत कम हो जाएगी और "X" वस्तु तुलनात्मक रूप से सस्ती हो जाएगी। यह अन्तर "X" वस्तु के व्यापार का आधार प्रस्तुत करेगा। व्यापार प्रारम्भ होने पर अन्तर्राष्ट्रीय संतुलन कीमत का निर्धारण दोनों देशों के घरेलू कीमत अनुपातों के मध्य होगा। A देश X वस्तु का निर्यात करेगा और Y वस्तु जो तुलनात्मक रूप से घरेलू बाजार में महंगी है, का आयात B देश से करेगा। इस प्रकार तकनीक में अन्तर व्यापार का आधार प्रस्तुत करता है।

10.3.2: उत्पाद में अन्तर

उत्पादन वस्तुओं में पाये जाने वाला अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। यह विशेष रूप से विनिर्मित वस्तुओं की दशा में सत्य है। अपूर्ण प्रतियोगी उद्योग की स्थिति में वस्तु-विभेद के द्वारा व्यापार को "व्यक्ति-प्रधान" बनाना फर्म के लिए लाभदायक होता है। वस्तु-विभेद के द्वारा उत्पादक अपनी वस्तु के प्रति प्रतियोगिता को कम

करने में सफल होते हैं। वस्तु में गुणात्मक परिवर्तन, पैकिंग में अन्तर तथा विज्ञापन के द्वारा वस्तु को उपभोक्ताओं की निगाह में भिन्न दिखाने का प्रयास किया जाता है। ऐसा सामान्यतया एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की दशा में होता है। वस्तु-विभेद की दशा में किसी फर्म विशेष का उत्पादन क्रेताओं की दृष्टि से अच्छा हो जाता है और उस वस्तु के प्रति पसंदगी बढ़ जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं का निर्यात आवश्यक होता है इसके लिए विभिन्न प्रकार की विपणन तकनीकों का प्रयोग भी जरूरी होता है। तुरंत निर्यात के लिए भंडारण सुविधाएँ, सेवा सुविधाएँ और इन निर्यात गतिविधियों को जारी रखने के लिए संयंत्रों में विनियोग आवश्यक होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उत्पाद-भिन्नताएँ कई प्रकार के द्विमार्गीय व्यापार प्रवाह स्थापित कर देती है। जिस प्रकार भारतीय घड़ियां निर्यात की जा रही हैं और कई विदेशी बाजारों में बिक रही है जबकि कई विदेशी घड़ियाँ भारतीय बाजारों में भी बिक रही है। योरोपियन कारें अमेरिका के बाजारों में बिक रही हैं। इसी तरह जर्मनी, स्विस तथा फ्रांस में बने टाइपराईटर पश्चिमी यूरोप के सभी बाजारों में एक - दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं।

10.3.3 प्राकृतिक संसाधन - उत्पादन के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परम्परागत सिद्धान्तों में उत्पादन के दो साधनों श्रम और पूंजी को शामिल किया गया था। इन सिद्धान्तों में व्यापार-स्वरूप के निर्धारण में प्राकृतिक संसाधनों एवं भूमि के योगदान की व्याख्या नहीं की गई जबकि वास्तव में प्राकृतिक संसाधन मुख्य रूप से, खनिज, वन, मछली पालन एवं कृषि भूमि व्यापार के स्वरूप निर्धारण में मुख्य भूमिका अदा करते हैं। उदाहरणार्थ - जिन देशों में लौह अयस्क, तांबा या मैगनीज के भण्डार अधिक हैं वे इनका निर्यात कर सकते हैं। यद्यपि श्रम और पूंजी का सहयोग बहुत जरूरी है किन्तु खनिजों के पर्याप्त

भण्डार के अभाव में इनका निर्यात असम्भव होगा। वर्तमान में मध्य-पूर्व देश पेट्रोलियम उत्पादों का निर्यात कर रहे हैं क्योंकि इनके भण्डार वहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पेट्रोलियम पदार्थों का भण्डार पर्याप्त मात्रा में है फिर भी खाड़ी प्रदेशों से आयात उनके लिए लाभदायक है क्योंकि वहां कीमतें तुलनात्मक रूप से कम हैं। इसी तरह विभिन्न प्रकार की कृषि भूमि की उपलब्धता विभिन्न देशों में फसलों की उत्पादन लागत में अन्तर उत्पन्न कर देती है। इस दृष्टि से विश्व की कृषि भूमि को निम्नांकित भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

1. समशीतोष्ण : प्रचुर पानी एवं तुलनात्मक रूप से उपजाऊ क्षेत्र जो कि विश्व के प्रमुख अनाज उत्पादक क्षेत्र हैं।
2. भूमध्य सागरीय : उपजाऊ, उष्ण किन्तु तुलनात्मक रूप से कम वर्षा एवं अधिक गर्मी वाले क्षेत्र (जैतून, अंगूर इत्यादि के लिए उपयुक्त)
3. उष्णकटिबंधीय मैदान : (गन्ना, केले, अनानास, कहवा एवं नारियल के लिए उपयुक्त)
4. मध्यम ऊंचाई के उष्ण क्षेत्र जो समान गर्म जलवायु के कारण चाय एवं कॉफी के लिए उपयुक्त हैं।

ये चार प्रकार की जोतने-बोने योग्य भूमि तथा चरागाह सामान्य अनुमान के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। किन्तु किसी फसल विशेष की उत्पादन लागत की तुलना करते समय इन चार श्रेणियों में से किसी एक में भी पाया जाने वाला गुणात्मक अन्तर महत्वपूर्ण हो सकता है।

10.3.4 उद्यमिता

परम्परागत सिद्धान्तों में उत्पादन-साधन के रूप में उद्यमिता को शामिल नहीं किया गया था। वास्तव में उद्यमी उत्पादन की व्यूह रचना का प्रमुख निर्धारक है वह पूंजी, श्रम और साधनों को संगठित कर उत्पादन प्रक्रिया को प्रारम्भ करता है एवं अनिश्चितता वाले संसार में वह जोखिम वहन करता है।

विभिन्न संस्कृति वाले देशों में उद्यमिता की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पूर्ण रूप से विकसित एवं विशिष्ट संगठन की योग्यता सैद्धान्तिक रूप से अधिक विकसित देशों में पायी जाती है और यह बड़े पैमाने के उद्योगों एवं उनकी गुण विशिष्टता मुख्य रूप से शिक्षा एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण के परिणाम स्वरूप है।

10.3.5 शोध एवं विकास

शोध एवं विकास पर किया जाने वाला व्यय व्यापार-स्वरूप का मुख्य निर्धारक तत्व बन गया है। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार शोध एवं विकास पर किया जाने वाला व्यय व्यापार-स्वरूप से सम्बन्धित होता है। जिस प्रकार तकनीक में अन्तर व्यापार के स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है उसी प्रकार किसी देश विशेष में किसी वस्तु विशेष की उत्पादन-तकनीक के सन्दर्भ में शोध एवं विकास गतिविधि को सफलतापूर्वक संचालित किया जा रहा है तो यह क्रिया व्यापार का आधार प्रस्तुत कर सकती है। इस प्रकार शोध एवं विकास गतिविधियों में तुलनात्मक अन्तर देशों के मध्य व्यापार का एक प्रमुख निर्धारक बन जाता है। शोध एवं विकास तत्व की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भूमिका की अनुभाविक आधार पर कुछ लेखकों ने जांच, मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका के निर्यातों के सम्बन्ध में की और इस नतीजे पर पहुंचे कि संयुक्त राज्य के उद्योगों की निर्यात कुशलता शोध एवं विकास प्रयासों का घनिष्ठ समानान्तर प्रतीक है।

10.3.6 उत्पाद-चक्र सिद्धान्त (परिकल्पना)

परिकल्पना के रूप में व्यापार का उत्पाद-चक्र स्पष्टीकरण इस बात पर प्रकाश डालता है कि एक देश को किसी समय विशेष पर किसी वस्तु विशेष के उत्पादन में तकनीकी लाभ क्यों प्राप्त है? उत्पाद-चक्र परिकल्पना के अनुसार प्रत्येक उत्पाद जो विक्रय के लिए बाजार में उपलब्ध कराया जाता है उसकी साधन लागतें विभिन्न प्रकार की होती हैं। जैसे :- उत्पाद-विकास, विपणन, उत्पादन सामग्री एवं अन्य प्राथमिक

तत्व। प्रत्येक साधन की विशेषता भिन्न प्रकार की होती है और विभिन्न समयों पर उनका तुलनात्मक महत्व भी परिवर्तित होता रहता है। चूंकि विभिन्न देशों में किसी साधन विशेष के तुलनात्मक लाभ भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। अत: उस उत्पादन की जीवन अवधि के दौरान साधन विशेष के महत्व में होने वाला परिवर्तन उस वस्तु से प्राप्त होने वाले तुलनात्मक लाभ को परिवर्तित कर देता है। उत्पाद-चक्र सिद्धान्त उत्पादन की तीन अवस्थाओं की व्याख्या करता है :- नया उत्पाद, परिपक्व उत्पाद एवं प्रमाणिक उत्पाद। नवीन उत्पाद स्थिति में तकनीक पूर्ण रूप से परिभाषित नहीं हो पाती है। अत: उत्पाद-विकास व्यय लागत का मुख्य अंग होता है। जिस देश को उत्पाद-विकास व्यय लागत का मुख्य अंग होता है। जिस देश को उत्पाद-विकास गतिविधि में तुलनात्मक लाभ प्राप्त होंगे, वह देश इस स्थिति में उस वस्तु का निर्यात कर सकेगा। उत्पाद जब परिपक्व हो जाता है विपणन एवं पूंजीगत लागतें प्रमुख हो जाती है जब उत्पाद प्रमाणिक हो जाता है तो तकनीकी स्थिर हो जाती है तथा तुलनात्मक लाभ के निर्धारण में उत्पादन लागतें (मुख्यतया उत्पादन सामग्री, पूंजी एवं अकुशल श्रम की लागतें) प्रमुख हो जाती हैं। आर. वर्नन तथा अन्य उत्पाद-चक्र सिद्धान्त के प्रमुख व्याख्याकार थे। बाद में एस. हिर्च ने इस सिद्धान्त की जाँच की। हिर्च के अनुसार प्रत्येक उत्पाद को इसी प्रक्रिया से गुजरना होता है। प्रारम्भ में मांग बहुत कम होती है। धीरे-धीरे विकास के परिणाम स्वरूप तीव्र विस्तार होता है और विश्व बाजार स्थापित हो जाते हैं। नवीन उत्पादन की प्रथम अवस्था में बड़े-पैमाने पर उत्पादन सम्भव नहीं होता है, साधन अनुपात इस प्रकार का होता है जिसमें कम पूंजी एवं कम मात्रा में अकुशल श्रमिकों के साथ बहुत अधिक मात्रा में दक्ष श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है। उत्पाद-चक्र की दूसरी अवस्था पूंजी गहनता बढ़ती है किन्तु प्रबन्ध एवं लागत-नियंत्रण तकनीक तथा बड़े पैमाने के उत्पादन को सम्भव बनाने के लिए कुशलता अति-आवश्यक होती है। उत्पाद-चक्र की अन्तिम तीसरी अवस्था जिसमें उत्पाद

प्रमाणिक हो जाता है उस समय में पूंजी एवं अकुशल श्रमिकों की मात्रा बढ़ जाती है एवं कुशल श्रमिकों का अनुपात कम हो जाता है। प्रमाणिकता उत्पादन को लागत अन्तर के प्रति बहुत अधिक मात्रा में सचेतन बना देती है।

उत्पाद-चक्र सिद्धान्त की इस व्याख्या के अनुसार छोटे विकसित राष्ट्र, जिनकी जनसंख्या कम किन्तु बहुत अधिक दक्ष है और पूंजी की प्रचुरता सामान्य है, उनके लिए उत्पाद-चक्र की प्रथम अवस्था में उत्पादन करना उपयुक्त होगा। बड़े विकसित राष्ट्र जिनके पास विस्तृत बाजार है, प्रचुर मात्रा में दक्ष श्रमिक एवं पूंजी है, उनके लिए उत्पादन की द्वितीय अवस्था उपयुक्त है। कम विकसित राष्ट्र जिनके पास अदक्ष श्रमिकों की प्रचुरता है उन्हें उत्पादन की तीसरी या परिपक्व अवस्था में उत्पादन करना चाहिए।

विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में विशिष्टता प्राप्त कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार किया है इस दृष्टि से इस सिद्धान्त में कुछ वास्तविकता दिखाई देती है। कुछ कम विकसित देशों ने कुछ प्रमाणिक वस्तुओं जैसे-कपड़ा, सीमेन्ट, रासायनिक खाद एवं स्टील इत्यादि का प्रचुर मात्रा में निर्यात करने में सफलता हासिल की है। छोटे विकसित देश-जेसे-हॉलैण्ड, डेनमार्क तथा स्वीडन ने इंजीनियरिंग उद्योग तथा मशीनरी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। जहां नवीन प्रवर्तन निरन्तर हो रहे हैं। बड़े विकसित देश जैसे - जर्मनी तथा जापान ने बड़े पैमाने पर उत्पादन की तकनीक एवं पूंजी गहन प्रक्रियाओं को आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीक के साथ लागू करने की पहल की है।

10.4 बोध-प्रश्न

1. राष्ट्रों के मध्य प्रति इकाई आय में अन्तर से उत्पन्न मांग में अन्तर किस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार प्रस्तुत करता है। स्पष्ट कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वरूप निर्धारण में उत्पादन तकनीक में अन्तर की भूमिका को स्पष्ट कीजिये।

3. ऐसा अनुभव किया गया कि कई भारतीय वस्तुएँ विदेशी बाजारों में बिक रही हैं और वे ही विदेशी वस्तुएँ भारतीय बाजारों में भी बिक रही है इस तथ्य का मुख्य स्पष्टीकरण क्या है?
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वरूप निर्धारण में प्राकृतिक संसाधन किस प्रकार अपनी भूमिका अदा करते हैं? समझाईये।
5. उत्पाद-चक्र सिद्धान्त क्या है? इस सिद्धान्त के मुख्य व्याख्याकार कौन हैं?

10.5 सारांश

1. परम्परावादी एवं नवीन-परम्परावादी दोनों सिद्धान्त राष्ट्रों के मध्य व्यापार के स्वरूप की व्याख्या करने के सम्बन्ध में पर्याप्त नहीं है।
2. एक विस्तृत व्यापार-सिद्धान्त की व्याख्या करने के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नवीन सिद्धान्तों में पूर्ति एवं मांग पक्ष को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों को ध्यान में रखा गया है।
3. साधन प्रचुरता एवं तकनीक के अतिरिक्त मांग सम्बन्धी तत्व जैसे - विभिन्न राष्ट्रों में प्रति इकाई आय में अन्तर तथा उपभोक्ताओं की पसंदगी में भी व्यापार स्वरूप के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।
4. प्राचीन सिद्धान्तों ने कुछ महत्वपूर्ण तत्वों को ध्यान में नहीं रखा था। इनमें अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के कारण उत्पन्न उत्पाद-विभेद, उत्पादन साधन के रूप में प्राकृतिक साधनों की भूमिका तथा उद्यमिता प्रमुख हैं।
5. आधुनिक वर्षों में शोध एवं विकास गतिविधियों पर किया जाने वाला व्यय भी राष्ट्रों के मध्य व्यापार के स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण बन गया है।
6. उत्पाद-चक्र सिद्धान्त किसी उत्पाद विशेष के उत्पादन में किसी समय विशेष पर किसी देश को अन्य देशों से प्राप्त तकनीकी लाभ पर प्रकाश

डालता है। सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ उस वस्तु की जीवन अवधि के दौरान साधन विशेष के महत्व में होने वाले परिवर्तनों से परिवर्तित हो जाते हैं।

7. आर. वर्नन तथा एस. हिर्च इस सिद्धान्त के मुख्य व्याख्याकार हैं, किन्तु अभी तक इस सिद्धान्त की जाँच नहीं की गई है।

10.6 शब्दावली

साधन प्रचुरता, तकनीकी नव-प्रवर्तन, उत्पादन सम्भावना वक्र, उत्पाद-भिन्नता, शोध एवं विकास व्यय, उत्पाद-चक्र।

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पी.टी. एल्सवर्थ एवं - "द इंटरनेशनल इकोनॉमी" पाँचवा संस्करण जे. क्लार्क लैथ
2. बी. सोडरस्टन- "इंटरनेशनल इकोनोमिक्स"
3. राय हैरड एण्ड डी.सी. हेग - "इन्टरनेशनल ट्रेड थ्योरी इन डवलपिंग वर्ल्ड'

10.8 बोध-प्रश्नों के उत्तर

1. इकाई संख्या 10.2.1
2. इकाई संख्या 10.3.1
3. अपूर्ण प्रतियोगी संसार में ऐसा देखने को मिलता है, जहां वस्तु-विभेद पाया जाता है। व्यक्तिगत उत्पादक अपनी वस्तु को अन्य वस्तुओं से भिन्न दिखाने के लिए भिन्न नाम, पैकिंग में अन्तर तथा विज्ञापन का सहारा है। गुणात्मक अन्तर के कारण एक सी वस्तुएँ होते हुये भी इनका द्वी-व्यापार होता है।
4. इकाई संख्या 10.3.3
5. इकाई संख्या 10.3.6

इकाई 11

अंतर व अंतरा व्यापार सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 पैमाने की मितव्ययिताये एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त

11.3 अपूर्ण बाज़ार व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

11.3.1 उत्पादन विभेदीकरण पर आधारित व्यापार

11.3.2 अंतरा उद्योग व्यापार का माप

11.3.3 अंतरा उद्योग व्यापार मॉडल

11.3.4 अंतरा उद्योग व्यापार का अन्य संस्करण

11.3.5 बाह्य मितव्ययिताये तथा व्यापार की प्रवर्तियाँ

11.3.6 गत्यात्मक बाह्य मितव्यवताए और विशिष्टीकरण

11.4 सारांश

11.5 संदर्भ पुस्तकें

11.6 शब्दावली

11.7 अभ्यासर्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य

हमने हैक्शचर ओहलिन सिद्धान्त के माध्यम से देखा की एक राष्ट्र को साधन गहनता के आधार पर तुलनात्मक लाभ प्राप्त होते हैं। यह सिद्धान्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के एक महत्वपूर्ण हिस्से को बिना समझाये

छोड़ देता है। यह सिद्धान्त अपने आप मे रिकार्डो के सिद्धान्त के बाद आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार जगत में एक नया कदम था परंतु साथ ही कुछ अवास्तविक मान्यताओं जैसे पूर्ण प्रतियोगिता, स्थिर लागतों के प्रतिफलो इत्यादि के कारण पूर्णत: आधुनिक नहीं बन पाया । कुछ नवीन अर्थशास्त्रियों द्वारा दिये गए नवीन सिद्धांतो में अंतर्राष्ट्रीय सिद्धांतो की चर्चा अपूर्ण प्रतियोगिता, घटती लागतो के व्यापार तथा पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं का उल्लेख किया है। यह समस्त प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मे गत्यात्मक कारकों जैसे तकनीकी परिवर्तनो, परिवनहन लागतों, व पर्यावरणीय मापदंडो के कारण उत्पन्न होते हैं। यही गत्यात्मक कारक ही अंतर व अंतरा व्यापार मे अंतर उत्पन्न करते हैं।

11.1 प्रस्तावना

हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त में साधन संपदाओ के अन्तरो के साथ पूर्ण प्रतियोगिता व्यापार में देशों को तुलनात्मक लाभ प्राप्त होते है। यह व्यापार समरूप वस्तुओ व स्थिर लागत प्रतिफल के व्यापार से जुड़ा है। परंतु वास्तविक विश्व में व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है। वस्तु विभेदीकरण व पैमाने के बढ़ते प्रतिफल देशों के आढ्य व्यापार का मुख्य कारण है। देश जो समान साधन सम्पदा लिए हुए है उनका परस्पर लाभ व्यापार अंतरा उद्योग व्यापार से संभव है जो की पैमाने के प्रतिफलों पर आधारित है। यह व्यापार बढ़ते हुए प्रतिफलों पर निर्भर करता है जो बदलती हुई तकनीकों तथा श्रम कुशलता पर आधारित है। यह व्यापार भी तुलनात्मक लाभ प्राप्त करता है परंतु वह प्राकृतिक नहीं है। फार्म को कई करको से आंतरिक व बाह्य प्रतिफल प्राप्त होते है। आंतरिक प्रतिफलों में फर्म नवीन तकनीकों तथा श्रम कुशलताओ से उत्पादन में वृद्धि करता है। जिससे उद्योग के उत्पादन में वृद्धि होती है । फर्म को बाह्य प्रतिफल भौगोलिक तथा नीतिगत करको से प्राप्त होते है। गत्यात्मक बाह्य प्रतिफल फार्म को नवीन तकनीक तथा

बदलाव को ग्रहण करने से प्राप्त होते है। जिस फार्म को आंतरिक प्रतिफल के साथ संयत्र के आकार में वृद्धि होती है वह एकाधिकार या अल्पाधिकर की प्राप्ति करता है।

11.2 पैमाने की मितव्यवताए एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त

हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त की एक मान्यता कि दोनों देश उत्पादन स्थिर पैमाने कि मितव्यवताओ के अंतर्गत करते है । यदि पैमाने कि मितव्ययिताये बढ़ती हुई है तो दोनों देश परस्पर लाभों का व्यापार कर सकते है चाहे वो एक समान क्यों न हो हर क्षेत्र में। व्यापार का यह प्रकार हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त स्पष्ट नहीं कर पाया।

पैमाने कि बढ़ती हुई मितव्ययिताये उत्पादन कि उन स्थितियों को प्रकट करती है जो उत्पादन में वृद्धि साधनो की आनुपातिक वृद्धि से अधिक करती है। यदि साधन दुगुने कर दिये जाए, तो उत्पादन में वृद्धि दुगुने से अधिक होगी। पैमाने की बढ़ती हुई मितव्ययिताये इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि श्रम का विभाजन व विशिष्टीकरण इसे संभव बनाता है। प्रत्येक श्रम विशिष्टीकरण प्राप्त कर उत्पादकता में वृद्धि का प्रयास करता है।

इसके आगे, एक वृहद पैमाने पर अधिक उत्पादन नवीन विशिष्टीकरण एवं उत्पादन की मशीनों का परिचय करता है। अंतवेलेर एवं ट्रेफेलर (2002) में पाया कि उत्पादन में शामिल सभी उद्योगों का तीसरा हिस्सा बढ़ती हुई मितव्यवताओ कि विशेषताएँ लिए हुए था।

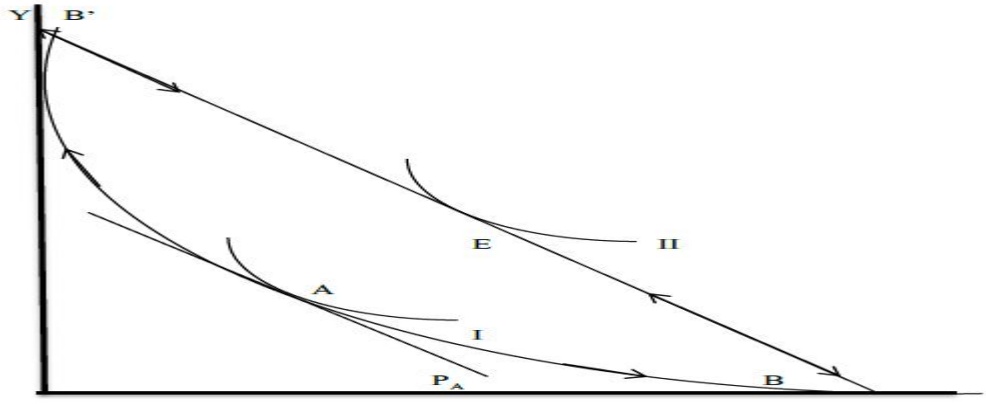

रेखाचित्र 11.1

चित्र 11.1 देशों के परस्पर व्यापार जो बढ़ती हुई मितव्यवताओं पर आधारित है को प्रस्तुत करता है। यदि दो देश एक दूसरे के समान है, तब हम एकल उत्पादन संभावना वक्र तथा एकल तटस्थता मानचित्र को दोनों देशों के लिए प्रयोग कर सकते है। बढ़ती हुई मितव्यवताओं का उत्पादन संभावना वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है। एक समान उत्पादन संभावना वक्र एवं तटस्थता वक्र के होते हुए दोनों देशों के बिना व्यापार कि स्थिति में सापेक्ष कीमते समान है। चित्र में दोनों देशों की कीमत रेखा $P_x/P_y=P_A$ है, जो दोनों देशों की समान स्पर्श रेखा के बिदु A पर स्पर्श करता है।

व्यापार शुरू होता है तो , देश 1 वस्तु X में पूर्ण रूप से विशिष्टीकरण प्राप्त कर सकता है और B बिन्दु पर उत्पादन करता है। देश 2 वस्तु Y में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है और बिन्दु B' पर उत्पादन करता है। प्रत्येक देश वस्तु का आदान प्रदान करता है तटस्थता वक्र II के बिन्दु E पर । व्यापार के ये लाभ इसलिए उत्पन्न होते है क्योंकि प्रत्येक देश एक वस्तु का उत्पादन करता है। व्यापार की अनुपस्थिति में दोनों देश एक ही वस्तु में विशिष्टीकरण नहीं प्राप्त करेंगे, क्योंकि दोनों देश दोनों वस्तुओ का उपभोग करते है।

अनुपस्थित व्यापार का बिन्दु A एक अस्थिर बिन्दु है, देश 1 बिन्दु A से दायी तरफ उत्पादन संभावना वक्र की तरफ बढ़ता है जहा वस्तु X की सापेक्ष कीमते गिरती है और निरंतर गिरती है और तब तक गिरती है जब तक देश 1 पूर्णरूप से विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेता है, वही दूसरी तरफ देश 2 बिन्दु A के बायी तरफ बढ़ता है जहा P_x/P_y बढ़ता है अर्थात वस्तु Y की कीमत कम होती है। और तब तक गिरती है जब तक देश 2 वस्तु Y में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त नहीं कर लेता।

परंतु इस विश्लेषण के साथ कई महत्वपूर्ण बिन्दु जुड़े है जैसे सर्वप्रथम, ये विश्लेषण दोनों देशों के पूर्ण उदासीन दृष्टिकोण से है कि कौन से दो देश वस्तु X या वस्तु Y का पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करते है। द्वितीय, ये भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि दोनों देशों के हर क्षेत्र में समान होने कि आवश्यकता नहीं है परस्पर लाभ कि बढ़ती हुई मितव्यवताओ के व्यापार हेतु। तृतीय, यदि पैमानें कि मितव्यवताए पर्याप्त रूप से अधिक उत्पादो में शामिल हो तो देश की बडी फ़र्मे उस पर आधिपत्य कर एकाधिकार उत्पन्न करती है। चतुर्थ, पिछले दशको में बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के उपकरणो व सुविधाओ में अभिवृद्धि से अंतर्राष्ट्रीय पैमाने की मितव्यवताओ के नए आयाम व महत्ता बड़ी है।

पैमाने की मितव्यवताओ मे वृद्धि, बाह्य अर्थव्यवस्थाओ के प्रभाव से ही वृहद हुई है। औसत लागत में कमी तब हुई जब फ़र्मों के उत्पादो में विस्तार व वृद्धि हुई। इस प्रकार पैमाने की मितव्यवताए अर्थात बढ़ते हुए प्रतिफल एक फर्म का आंतरिक हिस्सा है। दूसरी तरफ, बाह्य अर्थव्यवस्थाए, प्रत्येक फर्म की औसत लागत मे कमी से है जो समस्त उद्योग के उत्पादन का विस्तार करती है। अंतिम रूप से, लिंडर द्वारा 1961 में दी गयी परिकल्पना कि एक देश विनिर्माण उत्पादो का निर्यात तभी करता है जहां वृहद घरेलू बाज़ार स्थित हो। ये वो उत्पाद है जो अधिकांश जनसंख्या मांग करती है। ऐसे बाज़ारो को संतुष्ट करने कि प्रक्रिया में, एक देश आवश्यक अनुभवो और क्षमताओ को प्राप्त करता है

अपने आपको ऐसे निर्यातों में समर्थ बनाने हेतु, और ऐसे ही समान रुचियो व आय के देशों को निर्यात करता है। देश ऐसी वस्तुओ का आयात करता है जिसकी मांग कम हो तथा जो उच्च वर्ग के कुछ भागो से जुड़ा है। इस तरह की समान अधिमान या अतिव्यापी मांगो की परिकल्पना व्यापार में विनिर्माण के क्षेत्र में ऐसे देशों के मध्य अधिक है जो समान आय व अधिमान रखते है। यद्यपि लिंडर की ये परिकल्पना कुछ देशों जैसे स्वीडन, जापान व कोरिया में यथार्थ होने के अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिले है। लिंडर इस बात की व्याख्या नहीं कर पाया कि अमिशनरी देशों जैसे कोरिया व जापान जिनके यहा क्रिसमस के काड्र्स व पेड़ो का बाज़ार न होते हुए भी कैसे इनका निर्यात कर पाता है?

11.3 अपूर्ण बाज़ार व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

यह खंड अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अपूर्ण बाज़ार के बीच महत्वपूर्ण संबंध को स्पष्ट करता है। प्रथम सहज ज्ञान युक्त और उसके पश्चात औपचारिक सिद्धान्त से। इसमे अंतरा उद्योग के परिमाण की पद्धति की भी व्याख्या कि जाएगी।

11.3.1 उत्पादन विभेदीकरण पर आधारित व्यापार

आधुनिक बाज़ार व अर्थव्यवस्थाओ का एक बहुत बड़ा हिस्सा वस्तु विभेदीकरण पर आधारित है न कि समरूप वासतों पर। इसी कारण पेप्सोडेंट, कोलगेट के समरूप नहीं है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणामस्वरूप, एक ही उद्योग के वस्तु विभेदीकरण का विनिमय संभव हो पाया है। और यह अंतरा उद्योग व्यापार कि सबसे बड़ी विशेषता है जो अंतर उद्योग व्यापार से पूरी तरह भिन्न है।

अंतरा उद्योग व्यापार, महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्थाओ के पैमाने कि मितव्यवताओ का लाभ उठाने के लिए उत्पन्न हुआ। अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के दबावो ने प्रत्येक फर्म को समान वस्तु उद्योग के

औद्योगिक देशों में केवल एक या कुछ विविध वस्तुओ के उत्पादन करने पर ही ज़ोर दिया बहुत अधिक विविधताओ के उत्पादन की तुलना में ।यह उत्पादन की प्रति इकाई लागत को कम रखने मे मदद करता है। कुछ ही विविध वस्तुओ के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेने से तीव्रतर मशीन व आपरेशन क्षमता का विकास हो सकता है जो कि अधिक संख्या मे उत्पादन में वृद्धि कर सकता है । ऐसे में देश वस्तु कि अन्य विविधताओ व प्रकारो को दूसरे देश से आयात कर सकता है। अंतरा उद्योग व्यापार उपभोक्ताओ को वस्तुओ की विविध किस्मे प्रदान कर लाभान्वित करता है, जो की संभवत: पैमाने के प्रतिफलों के कारण कम कीमतों पर उपलब्ध होती है।

अंतरा उद्योग व्यापार और भी अधिक महत्वपूर्ण तब बन गया जब प्रशुल्क, व अन्य बाधाओ को व्यापार के प्रवाह से 1958 में यूरोपियन यूनियन के निर्माण ने हटा दिया। बलासा ने पाया कि व्यापार कि मात्रा बढ़ी है, लेकिन अधिकांशत: ऐसी विविध वस्तुओ का विनिमय व्यापक वर्गिकरण वाले देशों के मध्य ही हो पाया। जर्मन कारे, फ्रेंच व इटालियन कारों से विनिमय हुई, फ्रेंच वॉशिंग मशीन, जर्मन वशीन मशीन से तथा इटालियन टाइपराइटर , फ्रेंच टाइपराइटर से।

यूरोपियन यूनियन के निर्माण से पूर्व, कई उद्योगों में संयत्रों का आकार भी लगभग यूरोप व अमेरिका के देशों में समान था। हालांकि, प्रति इकाई उत्पादन लागत यूरोप में अमेरिका से अधिक थी। परंतु यूरोपियन देश अमेरिका से अधिक विविध वस्तुए उत्पादित करने की क्षमता रखता था। जैसे ही यूरोपियन यूनियन का निर्माण हुआ, और सारे प्रशुल्कों को हटाया गया, व्यापार यूरोपियन देशों का तीव्र गति से बढ़ने लगा। साथ ही यूरोपियन यूनियन केवल कुछ ही विविध वस्तुओ के निर्माण को प्राथमिकता देने लगा जिससे उसकी प्रति इकाई उत्पादन लागत भी कम हुई।

अंतरा उद्योग व्यापार जो कि हेल्पमन, कृग्मेन, लैनकेस्टर व अन्य ने 1979 में विकसित किया निम्न बिन्दुओ पर प्रकाश डालता है:

प्रथम, हैक्शचर ओहलीन मोडेल का व्यापार, तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त या देशों के साधन संपदाओ के अन्तरो पर आधारित था जबकि अंतरा उद्योग व्यापार उत्पादन विविधताओ तथा पैमाने कि मितव्यवताओ पर आधारित है। इस प्रकार व्यापार जो तुलनात्मक लाभ पर आधारित है, तब वृहद प्रतीत होता है जब साधन संपदाओ में अंतर देशों के बीच अधिक हो, जबकि अंतरा उद्योग समान संयत्र के आकारो में व साधन अनुपातों में वृहतर प्रतीत होता है।

द्वितीय, वस्तु विभेदीकरण के साथ, पैमाने कि मितव्यवताओ के अंतर्गत उत्पादित वस्तुओ से व्यापार के पैटर्न व सापेक्ष कीमतों का ठीक से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। विशेषत: एक विशाल देश व्यापार कि अनुपस्थिति में कम कीमतों पर वस्तु का उत्पादन कर सकता है किसी भी छोटे देश कि तुलना में । परंतु व्यापार की उपस्थिति में, पैमाने की मितव्यवताओ का लाभ उठाकर छोटे देश भी एक विशाल देश की भांति कम लागत पर वस्तु का उत्पादन कर सकते है।

तृतीय, हैक्शचर ओहलीन मोडेल के संदर्भ में, कि व्यापार दुर्लभ साधन का प्रतिफल कम कर देता है,पैमाने के प्रतिफलों पर आधारित अंतरा उद्योग व्यापार के साथ दुर्लभ साधन भी प्रतिफल प्राप्त करते है।

अंतिम, अंतरा उद्योग व्यापार अंतरराष्ट्रीय व्यापार में बढ़ते हुए उपकरणो, उत्पादो से संबन्धित है। कई अंतर्राष्ट्रीय निगम प्राय: ऐसे उपकरणो का उत्पादन या आयात करता है जो लागत न्यूनतमीकरण में सहायक है। प्रत्येक देश के तुलनात्मक लाभ के उपयोग हेतु उत्पादन के लागतो में कमी लाना हैक्शचर ओहलीन मोडेल का विस्तारित व आधुनिक रूप हो सकता है। यह पैटर्न विकासशील देशों के लिए रोजगार के नए अवसर उत्पन्न करता है।

अनुमानित सारांश यह है कि, तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त, अंतरा उद्योग व्यापार का मार्ग निर्धारित करता है। जबकि वस्तु विभेदीकरण व पैमाने के प्रतिफल अंतरा उद्योग व्यापार में वृद्धि लाते है। दोनों ही प्रकार के व्यापार इस विश्व में होते है। जीतने अधिक साधन संपदाए भिन्न होगी उतना ही तुलनात्मक लाभ व अंतरा उद्योग व्यापार महत्वपूर्ण होते है। दूसरी तरफ, अंतरा उद्योग व्यापार अधिक हावी होता है यदि साधन संपदाए समान है (विशेषकर विकसित देशों में)। जैसा कि लैनकेस्टर (1980) में बताया कि अंतरा उद्योग व्यापार में भी तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त कही भूमिका में है। अंतर उद्योग व्यापार प्राकृतिक तुलनात्मक लाभ जबकि अंतरा उद्योग व्यापार प्राप्त तुलनात्मक लाभ को प्रदर्शित करता है।

सबसे महत्वपूर्ण, सबसे तात्कालिक आनुभविक परीक्षण हैक्शचर ओहलीन मोडेल का प्रदर्शित करता है कि तकनीक तथा साधन कीमतों में अंतर देशों के भीतर, जब गैर व्यापारिक वस्तुओ कि उपस्थिति हो, परिवन लगते हो, और अधिक साधन संपदाओ के उपयोग से, अंतरा उद्योग व्यापार अंतर्राष्ट्रीय साधन संपदाओ व तुलनात्मक लागत के अन्तरो पर निर्भर करता है। इस प्रकार, अंतरा उद्योग व्यापार और हैक्शचर ओहलीन मोडेल के बीच कम संघर्ष है जितना कि दिखता है। उदाहरण के तौर पर, यूनाइटेड स्टेट द्वारा मेक्सिको से कम्प्युटर का आयात, यू.एस. कम्प्युटर चिप्स का निर्यात भी शामिल करता है जो कि यू.एस. के कुशल श्रम द्वारा निर्मित है।

11.3.2 अंतरा उद्योग व्यापार का माप

अंतरा उद्योग व्यापार का स्तर अंतरा उद्योग सूचकांक से ज्ञात कर सकते है:

$$T = 1 - \frac{|X - M|}{|X + M|}$$

जहां X और M निर्यातों व आयतों के निरपेक्ष मूल्य है, और T अंतरा उद्योग सूचकांक है। जिसका मूल्य 0 से 1 मध्य है। यदि T का मूल्य 0 है तो वह देश या तो निर्यात करता है या आयात। यहा अंतरा उद्योग व्यापार कि अनूपस्थिति है। यदि T का मूल्य 1 है , ऐसे में नियात व आयात का मूल्य समान हो जाता है। ग्रूनेल व लॉय्ड ने T के मूल्य का आकलान किया कुछ उद्योगों पर जो 10 औद्योगिक देशों से लिए गए है। उन्होने पाया कि T का औसत भार मूल्य 0.30 ,खनिज , ईर्धन व इससे सबंधित वस्तुओं के लिए तथा अन्य संबन्धित उद्योगों जैसे रसायन के लिए 0.66तथा सभी का संयुक्त औसत भर 10 देशों के लिए 0.48 पाया गया। इसका ये अर्थ निकलता है कि 1967 में इन 10 देशों में व्यापार का आधा हिस्सा एक ही उद्योग के वस्तु विभेदीकरण के विनिमय से जुड़ा था।

लेकिन T सूचकांक के प्रयोग कि एक कमी है। T का मूल्य वस्तु समूह या उद्योग की कितनी व्यापक परिभाषा है, पर निर्भर करता है। जितना व्यापक उद्योग की परिभाषा, उतना ही T का मूल्य ज्यादा होगा। ज्यादा व्यापक उद्योग की परिभाषा के अनुसार, एक देश जो कि विविध वस्तुओ का निर्यात करेगा और बाकि का आयात। इसलिए T सूचकांक का प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए।

11.3.3 अंतरा उद्योग व्यापार मॉडल

नीचे दिया गया चित्र अंतरा उद्योग व्यापार का मोडेल प्रस्तुत करता है। इस चित्र में मांग वक्र D फ़र्मों का मांग वक्र है जो विविध वस्तुओ का है जो ये फ़र्मे बेचती है। जैसा कि बाकि अन्य फ़र्मे समान वस्तुए विक्रय करती है ऐसी फ़र्मों का मांग वक्र लोचदार होता है। इसका अर्थ यह है कि यदि कीमतों में जरा सा भी परिवर्तन होता है तो फ़र्मों कि बिक्री में परिवर्तन अधिक होता है। बाज़ार का वो रूप जिसमे इस प्रकार कि फ़र्मे विविध वस्तुओ कि बिक्री करती है, और जहां

बाज़ार प्रवेश और छोडने पर कोई बाध्यता न हो, एकाधिकारात्मक बाज़ार कहलता है। क्योंकि यदि फर्म को अपनी बिक्री में वृद्धि करनी है तो वस्तु कि कीमतों को कम रखना होगा। इस हेतु सीमांत आगम वक्र मांग वक्र से नीचे रहना आवश्यक है ताकि सीमांत आगम कीमत से कम रहे। उदाहरण के तौरपर, फर्म कीमत $11.50 पर वस्तु कि 2 इकाई बेच सकती है और उसका कुल आगम $9 होता है, और कीमत $4 पर कुल आगम बढ़ कर $12 होता है। इस प्रकार, सीमांत आगम $3 हो जाता है जो कि कीमत $4 से कम है ।

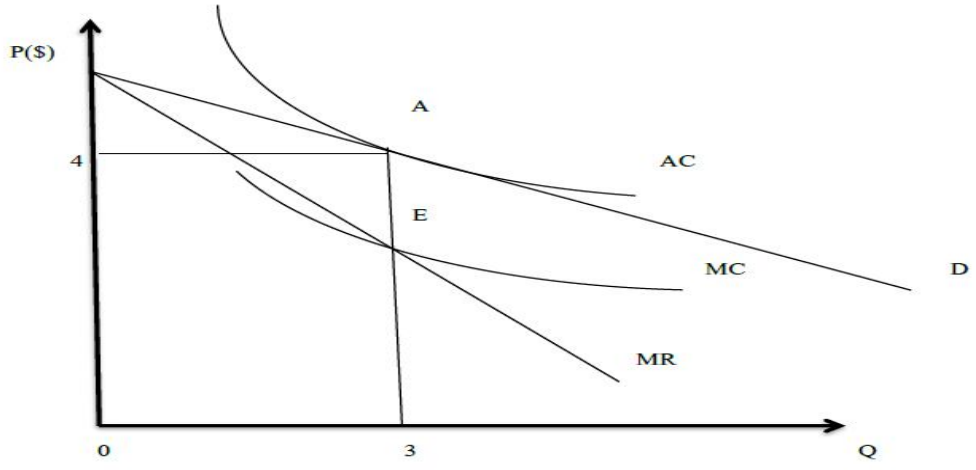

रेखाचित्र 11.2

एक ही वस्तु की कुछ ही किस्मे उत्पादित करने पर , एक फर्म को बढ़ते हुए प्रतिफल प्राप्त होते है, इसलिए इन फ़र्मों का औसत लागत वक्र हमेशा नीचे की और गिरता हुआ होता है। इसके परिणामस्वरूप फर्म का सीमांत लागत वक्र, औसत लागत वक्र से नीचे होता है। अर्थात सीमांत लागत, औसत लागत से कम रहती है। फर्म का सबसे उत्तम उत्पादन 3 इकाई है जहा सीमांत लागत वक्र बिन्दु E पर काटता है और औसत लागत वक्र बिन्दु A पर। 3 इकाई जैसे कम उत्पादन स्तर पर सीमांत आगम, सीमांत लागत से अधिक रेहता है। यदि उपदान 3 से अधिक हो जाता है तो सीमांत आगम, सीमांत लागत से कम हो जाएगा

जब भी फर्म दीर्घकाल में लाभ अर्जित करती है तो उसका मांग वक्र, औसत लागत वक्र की स्पर्श रेखा होगा, दूसरे शब्दो में फर्म को सदेव सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

अब हम अंतरा व अंतर उद्योग व्यापार के बीच संबंध ज्ञात कर सकते है। इसे समझने के लिए हम मान लेते है कि देश 1 श्रम प्रचुर है और वह कि वस्तु X श्रम गहन है, जबकि देश 2 पूंजी प्रचुर है और वह कि वस्तु Y पूंजी गहन है। यदि वस्तुएँ X तथा Y देश 1 में समरूप है तो देश 1 वस्तु X का निर्यात तथा वस्तु Y का आयात करेगा जबकि देश 2 वस्तु Y का निर्यात और X का आयात करेगा। यह अंतर उद्योग व्यापार है और केवल तुलनात्मक लाभ को प्रदर्शित करता है। दूसरी तरफ , यदि वह वस्तु X और Y कि विविध प्रकार या किस्मे उपलब्ध हो तो देश 1 अब भी वस्तु X का शुद्ध निर्यातक रहेगा लेकिन वह अब वस्तु X कि कुछ किस्मे देश 2 से आयात करेगा और वस्तु Y कि कुछ किस्मों का निर्यात भी करेगा। यह अंतरा उद्योग व्यापार का प्रकार है जो वस्तु विभेदीकरण तथा पैमाने के प्रतिफलों पर आधारित है। इसी प्रकार देश 2 भी वस्तु Y का शुद्ध निर्यातक रहेगा पर वह भी वस्तु Y की कुछ किस्मे देश 1 से निर्यात करेगा और वस्तु X की कुछ किस्मों का निर्यात भी करेगा।

देश 1 और 2 वस्तु X और Y के शुद्ध निर्यातक है, जो कि अंतर उद्योग व्यापार को प्रकट करते है, जो कि तुलनात्मक लाभ पर आधारित है, दूसरी तरफ, वास्तविकता यह है कि देश 1 आयात करता है वस्तु X की कुछ किस्मों को और निर्यात करता है वस्तु Y की कुछ किस्मों को और देश 2 आयात करता है वस्तु Y की कुछ किस्मों का और निर्यात करता है वस्तु X की कुछ किस्मों का। इस प्रकार का बाज़ार अंतरा उद्योग व्यापार को प्रकट करता है जो वस्तु विभेदकरण तथा पैमाने के प्रतिफलों पर आधारित है। इस प्रकार हम कह सकते है कि जब उत्पाद

समरूप हो तब अंतर उद्योग व्यापार है और जब वस्तु विभेदीकरण हो तब अंतरा उद्योग व्यापार है। समान साधन सम्पदा तथा तकनीकों पर आधारित देशों में अंतर से अंतरा उद्योग व्यापार में वृद्धि हुई है। अंतरा उद्योग व्यापार अंतर्राष्ट्रीय साधन संपदाओ में अंतर पर आधारित है ।

11.3.4 अंतरा उद्योग व्यापार का अन्य संस्करण

हम यहा अंतरा उद्योग व्यापार का स्पष्टीकरण एक अन्य संदर्भ में करेंगे। इसे निम्न चित्र से स्पष्ट किया गया है:

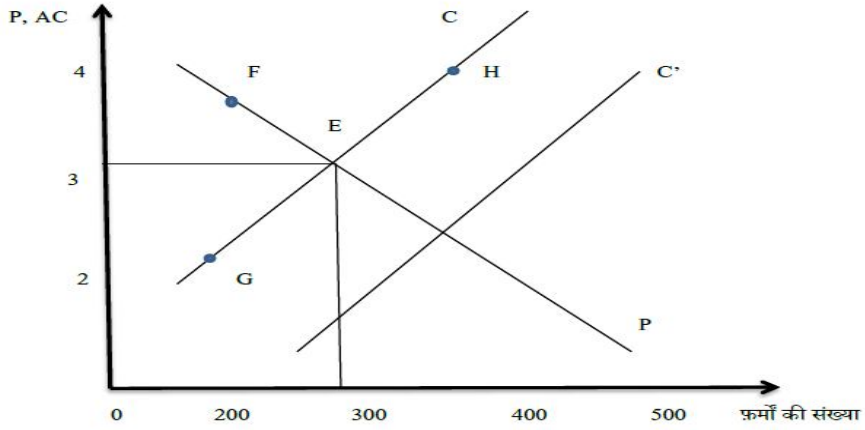

रेखाचित्र 11.3

चित्र के क्षेतिज़ अक्ष पर एकाधिकारात्मक बाज़ार में फ़र्मों की संख्या तथा अनुलंब अक्ष पर वस्तु की कीमत व उत्पादन की औसत लागत को लिया गया है। सभी फ़र्मे इस कीमत पर विविध व असमरूप वस्तुओ की बिक्री करने में संलग्न है। सभी फ़र्मे एकाधिकार के इस बाज़ार में एक ही मांग व लागत वक्र का सामना करती है।

चित्र में वक्र P उद्योग में फ़र्मों की संख्या व वस्तु की कीमत के बीच संबंध को प्रकट करता है। वक्र P ऋणात्मक ढाल का है जो ये प्रदर्शित करता है कि जितनी अधिक संख्या में उद्योग में फ़र्मे हैं वस्तु की कीमत उतनी ही कम होगी, क्योंकि उतनी ही अधिक प्रतियोगिता रहेगी जितनी संख्या में फ़र्मे होंगी। उदाहरण के तौर पर वस्तु कि

कीमत यदि $4 है, 200 फ़र्मों की संख्या के साथ, वस्तु की कीमत यदि $3 है, तो फ़र्मों की संख्या 300 और वस्तु की कीमत $2 हो जाती है जब फ़र्मों की संख्या बढ़कर 400 हो जाती है। वक्र C दूसरी तरफ, दिये हुए उद्योग के उत्पाद पर, फ़र्मों की संख्या तथा उत्पादन की औसत लागत के बीच संबंध प्रदर्शित करता है। वक्र C धनात्मक ढाल लिए हुए है, प्रदर्शित करता है कि जितनी फ़र्मों कि संख्या अधिक होगी उतनी ही औसत लागत अधिक होगी। इसका कारण यह है कि जब दिये उद्योग के उत्पादन पर फ़र्मों की संख्या बढ़ जाएगी, तो प्रत्येक फर्म का उद्योग के उत्पादन में उतना ही हिस्सा कम हो जाएगा। इसलिए हर फर्म की औसत लागत बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, औसत लागत यदि $2 है तो फ़र्मों की संख्या 200, औसत लागत यदि $3 है तो फ़र्मों की संख्या भी बढ़कर 300, और औसत लागत $4 होने पर फ़र्मों की संख्या 400 हो जाती है।

दोनों वक्र P और C जब एक दूसरे को काटते है तो साम्य बिन्दु E पर निर्धारित होता है, जहा वस्तु की कीमत और औसत लागत दोनों एक समान $3 होता है और प्रत्येक फर्म को इस बिन्दु पर सामान्य लाभ की प्राप्ति होती है। 200 फर्म की संख्या पर कीमत $4 जबकि औसत लागत $2 है। फ़र्मों जब तक लाभ अर्जित करेंगी जब तक दीर्घकाल में फ़र्मे साम्य बिन्दु E पर नहीं पहुँच जाती। जैसे ही फ़र्मों की संख्या 400 हो जाती है वस्तु की कीमत $2 तथा औसत लागत $4 हो जाती है। यह नए साम्य बिन्दु E' पर ज्ञात होता है। अभी समस्त फ़र्मे हानि की स्थिति में है कुछ फ़र्मे बाज़ार को छोड़ देंगी जब तक साम्य बिन्दु E को दीर्घकाल में पुन: नहीं प्राप्त कर लेते।

जैसे ही व्यापार का विस्तार होता है, उतने ही विशाल एकीकृत वैश्विक बाज़ार बनते जाते है। देशों की फ़र्मे किसी भी वस्तु की किसी भी छोटी शृंखला में विशिष्टीकरण प्राप्त कर सकते है और कम उत्पादन

लागत को प्राप्त कर सकते है। परस्पर लाभ व्यापार में फ़र्मे समान साधन संपदाओ तथा तकनीक वाले देशों से व्यापार करते है। उन देशों के उपभोक्ता वस्तु की नयी किस्मों के साथ कम कीमत दोनों का आनंद उठाते है। यह चित्र में वक्र C के C'का नीचे की और परिवर्तित होने पर बताया गया है। उद्योग की बिक्री बढ़ने पर P वक्र प्रभावित नहीं होता।

11.3.5 बाह्य मितव्यवताए तथा व्यापार की प्रवर्तियाँ

जब एक भौगोलिक दृष्टिकोण से सम्पन्न विशाल अर्थव्यवस्था विशिष्ट श्रम व अन्य विशिष्टीकृत सेवाएँ प्रदान करती है, तब बाह्य मितव्यवताए इसलिए उत्पन्न होती है, जो कि उस देश के उद्योग की सभी फ़र्मों की ऊंची उत्पादकता तथा नीची औसत लागत में सहायक है। यही कारण है की बहुत सी कम्प्युटर फ़र्मे कैलिफोर्निया की सिलिकन वैलि में एकत्रित हो गयी है और वित्तीय संस्थाएं तथा बैंक भी न्यूयॉर्क सिटि में ही स्थित है।

ये बाह्य मितव्यवताए फ़र्मों की संख्या बढ़ने पर निर्भर करती है, फ़र्मों के आकार की तुलना में। और ये पूर्ण रूप से पूर्ण प्रतियोगिता में तर्कसंगत है। इन बाह्य मितव्यवताओ व बढ़ते हुए प्रतिफलों के साथ, कुछ फ़र्मे जिनके संयत्र के आकार में भी वृद्धि हो वो एकाधिकार या अल्पाधिकर की और अग्रसर होती है। और यहाँ पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता का खंडन हो जाता है।

बाह्य मितव्यवताए भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पैटर्न को प्रभावित करती है। विशेषकर, देश जहा विशाल उद्योग है उनकी उत्पादन की औसत लागत कम होती है और इस प्रकार वह उद्योग उस वस्तु का निर्यातक बन जाता है। देश जहां वह उद्योग सबसे पहले बना या स्थापित हुआ जो कि एक ऐतिहासिक घटना हो सकता है, ऐसे मैं वह देश जहां ये उद्योग पहले बना उसे अधिक लागत का लाभ मिलता है उस देश कि तुलना में जिसमे यह बाद में स्थापित हुआ। और इस प्रकार संचयी रूप से यह लाभ बढ़ते ही जाते है। यदि दूसरा देश किसी

प्रकार कम लागत उत्पादक बन भी जाए उस वस्तु में तब भी उसके लिए पहले देश से प्रतियोगिता कर पाना संभव नहीं होगा। ऐसे में बाह्य मितव्यवताओं की उपस्थिति में व्यापार कि प्रवृत्तियों का ठीक से अनुमान लगाना मुश्किल है।

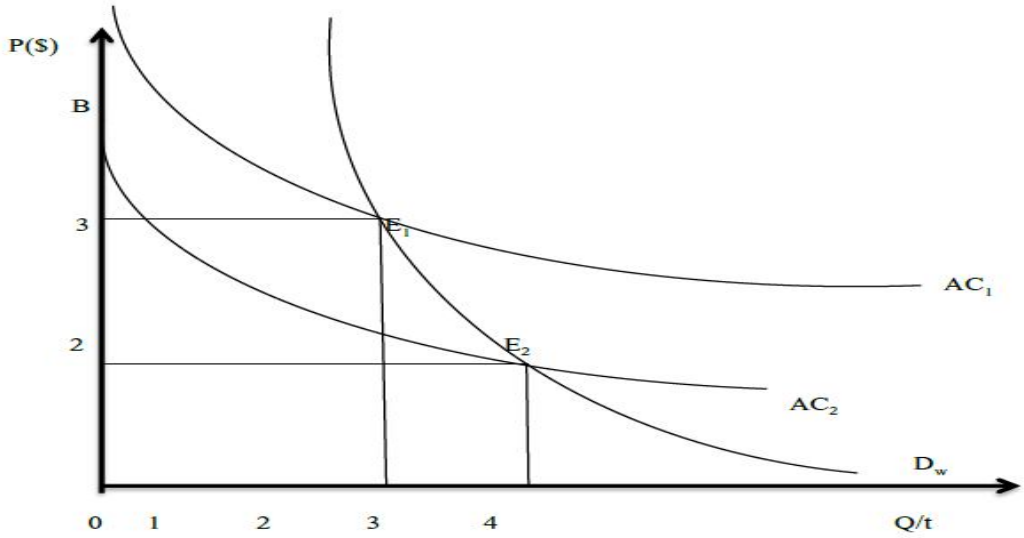

रेखाचित्र 11.4

ऊपर दिये गए चित्र में बाह्य मितव्यवताओ से व्यापार के पैटर्न को समझाया गाय है। चित्र में D_W वस्तु का मांग वक्र है। यह वस्तु देश 1 तथा देश 2 दोनों ही उत्पादित कर सकते है जिसमे देश 1 का औसत लागत वक्र AC_1तथा देश 2 का औसत लागत वक्र AC_2 है। वस्तु के उत्पादन की औसत लागत कम है प्रत्येक देश में क्योंकि दोनों देशों का उधोगीय उत्पादन विशाल है और उनको बाह्य मितव्ययिताये प्राप्त है। दोनों देशों के उद्योगों की फ़र्मों की प्रतियोगिता से कीमते उत्पादन की औसत लागत के बराबर हो जाती है।

मान लेते है कि एक ऐतिहासिक घटना के परिणामस्वरूप यह उद्योग सबसे पहले देश 1 में विकसित हुआ, देश 2 में नहीं। तब देश 1 वस्तु कि 3 इकाई का उत्पादन कर विश्व को पूर्ति प्रदान करता है, जहां उसकी औसत लागत कीमत के बराबर हो जाती है $3 पर। चित्र में यह E_1

बिन्दु से प्रदर्शित होता है। । देश 2 में यह पूर्ति वस्तु कि 2 इकाई उत्पादित करके करता है जहा उसकी औसत लागत कीमत $2 के बराबर हो जाती है। चित्र में यह E_2 बिन्दु से प्रदर्शित होता है। जब देश 1 पहले से ही बाज़ार में है तो देश 2 बाज़ार में प्रवेश नहीं कर सकता। विशेषकर जब देश 2 औसत लागत $4 का सामना बिन्दु B पर करेगा, और ये कीमत देश 1 कि कीमत से ऊंची है जो कि पहले से ही इस वस्तु की पूर्ति विश्व बाज़ार मे करता आ रहा है। ऐसे मे देश 2 ये वस्तु उत्पादित नहीं करेगा। इस प्रकार विशाल बाह्य मितव्यवताओ के साथ व्यापार का पैटर्न या प्रवर्ति को ज्ञात करना, कम औसत लागत के आधार पर कठिन है।

11.3.6 गत्यात्मक बाह्य मितव्यवताए और विशिष्टीकरण

एक फर्म उत्पादन में अपने अनुभवो से लाभ प्राप्त करती है। वे हमेशा उत्पादन व तकनीक के सुधार में संलग्न रहती हैं। दूसरी फ़र्मे उनका अनुसरण करती है और वेसा ही नवीनीकरण करती है ताकि औसत लागत कम हो सके। जो फर्म समय के साथ अपने ज्ञान व अनुभवो से प्रेरणा लेकर अपने फर्म के उत्पादन में वृद्धि व विस्तार करती है और सम्पूर्ण उद्योग के उत्पादन में अभिवृद्धि करती है, ऐसी फ़र्मे गत्यात्मक बाह्य मितव्यवताओ से प्रभावित होती है। जब समय के अनुसार उद्योग के उत्पादन में वृद्धि हो तो साधारण बाह्य मितव्यवताए होती है, परंतु गत्यात्मक बाह्य मितव्यवताए उद्योग की संचयी उत्पादन में वृद्धि करती है जो फ़र्मों के नवीन ज्ञान व अनुभवो से प्रेरित है। उदाहरण के तौरपर, 1000 घंटो लग सकते है 100 ऐरक्राफ्ट के निर्माण में,परंतु केवल 700 घंटो में ही 200 ऐरक्राफ्ट का निर्माण हो जाता है क्योंकि उस फर्म के प्रबन्धक, श्रम तथा तकनीक अनुभवो के साथ अधिक कुशल हो जाती है। वास्तविक विश्व के अनुभव दर्शाते है कि औसत लागत 20 से 30 प्रतिशत कम हुई है ऐसे उद्योगों में जहां संचयी उत्पादन में वृद्धि से उद्योग का उत्पादन लगभग दुगुना हुआ है।

गत्यात्मक बाह्य मितव्यवताओ को चित्र द्वारा समझाया जा सकता है। एक रफ्तार वक्र प्रदर्शित करता है एक श्रेणी जिससे उत्पादन की औसत लागत समय के अनुसार उद्योग के संचयी उत्पादन के बढ़ने से गिरता है। उदाहरण के तौरपर धितर में दिखाये अनुसार देश 1 की उद्योग की औसत लागत $2.50 है जब उत्पादन 200 इकाई है (बिन्दु F,L_1 पर), और $2 हो जाती है जब संचयी उत्पादन दुगुना होकर 400 इकाई हो जाता है (बिन्दु C) और $ 1.60 हो जाता है जब उत्पादन और दुगुना होकर 800 इकाई हो जाता है (बिन्दु H पर)।

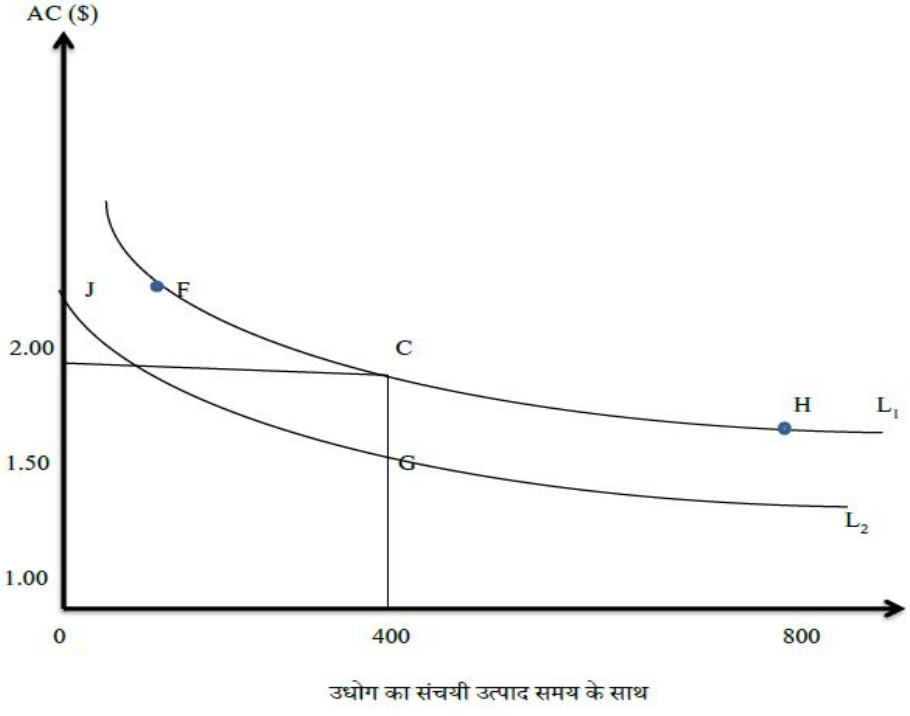

रेखाचित्र 11.5

चित्र यह प्रदर्शित करता है कि देश 2 , 400 इकाई वस्तु का उत्पादन कर सकता है,$1.50 प्रति इकाई उत्पादन लागत पर, यह चित्र में बिन्दु G से प्रदर्शित होता है। लेकिन जैसे ही यह उत्पादन लागत $3 पर पाहुचता है तब यह देश बाज़ार में प्रवेश नहीं कर सकता (बिन्दु J)। देश 2 के पास बाज़ार में प्रवेश का एक ही रास्ता था कि उसकी

सरकार संरक्षण या अनुदान प्रदान करे जब तक कि वो अनुभवो और संचयी उत्पादन से प्रेरणा लेकर वृद्धि कर सके।

11.4 सारांश

हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त तुलनात्मक लाभ प आधारित देशों कि साधन संपदाओ में अन्तरो कि व्याख्या करता है। लेकिन ये सिद्धान्त,आज के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कि महत्वपूर्ण हिस्से को बिना व्याख्या किए छोड़ देता है। इस अंतर को भरने के लिए, कुछ ऐसे सिद्धान्त कि आवश्यकता पड़ी जो पैमाने कि मितव्यवताओ तथा बढ़ते हुए प्रतिफलों कि व्याख्या करे।

यदि देश एक दूसरे के समान है तो भी पैमाने कि मितव्यवताओ के आधार पर परस्पर लाभ व्यापार संभव है, जो कि पैमाने कि मितव्यवताओ पर आधारित है। जब प्रत्येक देश एक वस्तु में विशिष्टीकरण करता है तब संयुक्त विशिष्टीकृत उत्पाद दोनों वस्तुओ का बिना विशिष्टीकृत वस्तु के उत्पाद से अधिक होगा जब पैमाने कि मितव्यवताए उपस्थित हो। व्यापार के साथ देश इन लाभों में हिस्सा प्राप्त करते है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक बहुत बढ़ा भाग विविध वस्तुओ के विनिमय से जुड़ा हुआ है। एस अंतरा उद्योग व्यापार उत्पादन में पैमाने की मितव्यवताओ से लाभ अर्जित करता है जिसमे फ़र्मे कुछ किस्मों के उत्पादन में संलग्न है। अंतरा उद्योग व्यापार का सूचकांक से किया जा सकता है। विविध वस्तुओ से फर्म को एक गिरते हुए मांग वक्र का सामना करना पड़ता है जो कि औसत लागत के गिरते हुए वक्र को उत्पन्न करता है, और उसको काटता है। एक दिये हुए उत्पाद पर एकाधिकारात्मक बाज़ार में फ़र्मों की संख्या जितनी अधिक होगी, वस्तु की कीमत उतनी ही कम और औसत लागत उतनी ही ऊंची होगी। जो देश साधन संपदाओ में समान है वो उतने ही अधिक अंतरा उद्योग व्यापार को अंतर उद्योग व्यापार पर प्राथमिकता देते है।

11.5 संदर्भ पुस्तकें

- D. Salvatore, Theory and Problems of International Economics, 4th ed. (New York McGraw-Hill, 1996), ch.4 (sects.11.3-11.6)
- D. Salvatore, Theory and Problems of International Economics, 6th ed. (New York McGraw-Hill, 1996), ch.6
- E.Helpman,"Increasing Returns, Imperfect Markets, and Trade Theory", in R.W. Jones and P.B. Kenen, eds., Handbook of International Economics, Vol. 1, International Trade (Amsterdam: North-Holland, 1984), pp.325-365.

11.6 शब्दावली

- **बढ़ते हुए प्रतिफल :** जब उत्पादन में वृद्धि साधनो की आनुपातिक वृद्धि से अधिक हो तो वहाँ बढ़ते हुए प्रतिफल प्राप्त होते है।
- **एकाधिकार:** बाज़ार जिसमे एक ही विक्रेता हो और जो एक विशेष उत्पाद का विक्रेता हो जिसकी कोई निकट स्थानापन्न वस्तु बाज़ार में उपलब्ध न हो, एकाधिकार बाज़ार कहलता है।
- **अल्पाधिकर:**इस प्रतियोगिता का बाज़ार जिसमे कुछ ही विक्रेता या फ़र्मे भाग लेती है।
- **अंतरा उद्योग व्यापार:** वस्तु विभेदीकरण का बाज़ार जो पैमाने की मितव्यवताओ पर आधारित देशों के परस्पर लाभ व्यापार का कारण है। यह बाज़ार अपूर्ण प्रतियोगिता की विशेषता लिए हुए है।
- **अंतर उद्योग व्यापार:** देशों के साधन संपदाओ में अंतर पर आधारित व्यापार जो समरूप वस्तु तथा पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषता लिए हुए है।

- **एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता:** बाज़ार जो वस्तु विभेदीकरण की विशेषता लिए हुए, अपूर्ण स्थानापन्न वस्तुओ के बीच प्रतियोगिता करता है।
- **बाह्य मितव्यवताए** : फर्म की लागत में कमी तथा उत्पादकता में वृद्धि बाह्य मितव्यवताओ के कारण जैसे भौगोलिक, व सरकारी नीतियो के कारण हो, तो उसे बाह्य मितव्यवता कहते है।

11.7अभ्यासर्थ प्रश्न

1. हैक्शचर ओहलीन सिद्धान्त की क्या सीमाए है?
2. पैमाने की मितव्यवताओ से क्या अर्थ है? वो किस प्रकार से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है? नयी अंतर्राष्ट्रीय पैमाने की मितव्यवताओ से क्या अभप्राय है ?
3. वस्तु विभेदीकरण से आपका क्या अर्थ है? इसका परिणाम क्यों अपूर्ण प्रतियोगिता है? कैसे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तु विभेदीकरण पर आधारित है?
4. अंतरा उद्योग व्यापार कैसे मापा जाता है? इस प्रकार के परिमाण की क्या कामिया है?
5. हम एकाधिकारात्मक बाज़ार से क्या समजते है? हम इसका प्रयोग अंतरा उद्योग व्यापार विश्लेषण हेतु क्यों करते है?
6. क्यों एक एकाधिकारात्मक बाज़ार में, दिये हुए उत्पादन पर फर्मो की संख्या बढ़ने से उद्योग में वस्तु की कीमत कम परंतु औसत लागत अधिक हो जाती है ?
7. अंतरा उद्योग व्यापार सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
8. अंतरा उद्योग व्यापार व अंतर उद्योग व्यापार में अंतर बताइये।

9. अंतरा उद्योग व्यापार में बाह्य मितव्यवताओ की भूमिका की व्याख्या कीजिये।
10. बाह्य मितव्यवताए किस प्रकार व्यापार पैटर्न निर्धारित करती है?
11. गत्यात्मक बाह्य मितव्यवताए किस प्रकार व्यापर को प्रभावित करती है?
12. चित्र के द्वारा समझाइए किस प्रकार दो देश पैमाने की मितव्यवताओ पर आधारित परस्पर लाभ व्यापार कर सकते है जब उनके उत्पादन संभावना वक्र समान हो तथा रुचि अधिमान पृथक हो।

इकाई - 12

उत्पादन, उपभोग तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सामान्य संतुलन

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 समुदाय अधिमान वक्र (Community Indifference Curve)

12.2 समुदाय अधिमान वक्र और व्यापार शर्तों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में साम्य का निरूपण (Equilibrium in International Trade in Terms of the Community Indifference Curve and Terms of Trade)

12.2.1 स्थिर पैमाने के प्रतिफल की स्थिति में साम्य का निरूपण (Equilibrium under Constant Returns to Scale)

12.2.2 ह्रासमान पैमाने के प्रतिफल की स्थिति में साम्य का निरूपण (Equilibrium under Diminishing Returns to Scale)

12.3 अर्पण वक्रों के माध्यम से व्यापार में साम्य का निरूपण (Equilibrium in International Trade in Terms of the Offer Curve)

12.3.1 मॉडल का गणितीय निरूपण (A Mathematical Formalisation of the Model)

12.4 सामान्य साम्य की व्याख्या व्यापार देय वक्रों के रूप में (General Equilibrium in Terms of Trade Offer Curve)

12.4.1 व्यापार उदासीनता वक्र का निरूपण (Construction of Trade Indifference Curve)

12.4.2 व्यापार अधिमान वक्रों द्वारा व्यापार देय वक्रों का निरूपण (Construction of Trade Offer Curve from Trade Indifference Curve)

12.5 व्यापार में सामान्य संतुलन (General Equilibrium in Trade)

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.7 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संतुलन को प्रभावित करने वाले तथा निर्धारित करने वाले विभिन्न चरों के समाकलन की समस्या का अध्ययन सामान्य सन्तुलन के अन्तर्गत करेंगे। इस विश्लेषण हेतु यह मान्यता लेकर चलते हैं कि व्यापार दो देशों और दो वस्तुओं जो दो साधनों - पूंजी तथा भूमि द्वारा उत्पादित होती है के मध्य होता है। विश्लेषण में मांग की दशाओं को स्पष्ट करने हेतु समुदाय अधिमान वक्र (Community Indifference Curve) मांग तथा पूर्ति की दशाओं को समझाने के लिये अर्पण वक्र (Offer Curve), उत्पादन सम्भावना वक्र तथा व्यापार उदासीनता वक्र का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करेंगे और अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की व्याख्या के लिये सभी प्रस्तुत विश्लेषणात्मक यन्त्रों का संकलन करके दो देशों के मध्य व्यापार में सामान्य सन्तुलन का अध्ययन करेंगे।

12.1 समुदाय अधिमान वक्र (Community Indifference Curve)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त में विभिन्न देश व्यापार से पूर्व और व्यापार के पश्चात् किस प्रकार साम्य प्राप्त करते हैं और लाभ कमाते हैं को स्पष्ट करने के लिये मांग पक्ष को प्रस्तुत करने में समुदाय अधिमान वक्रों

का विस्तृत प्रयोग किया जाता है। समुदाय अधिमान वक्रों की अवधारणा उपभोक्ता के अधिमान वक्रों की अवधारणा से अधिक जटिल है। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक उपभोक्ता के अधिमान वक्रों में कल्याण के स्तरों की अन्तर व्यक्ति तुलना की समस्या उत्पन्न नहीं होती है। जबकि समुदाय अधिमान वक्रों के निर्माण में यह समस्या प्रमुख समस्या है यदि हम यह मानले कि समुदाय की अभिरूचियों का प्रतिनिधित्व उपभोक्ता विशेष की अभिरूचियों द्वारा किया जा सकता है तथा समुदाय के प्रत्येक सदस्य की आय समान है तो व्यक्तिगत अधिमान वक्र से समग्र उपयोगिता फलन प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। समुदाय के सदस्यों की अभिरूचियां समान मान लेना तो विशेष अवास्तविक नहीं है लेकिन समुदाय के सदस्यों की आय समान होना पूर्णतया असंभव है। समुदाय अधिमान वक्र की व्युत्पति का निरूपण इस मान्यता पर है कि समुदाय में केवल दो उपभोक्ता X और Y है दो वस्तु A तथा B है चित्र 12.1 में दिखाया गया है।

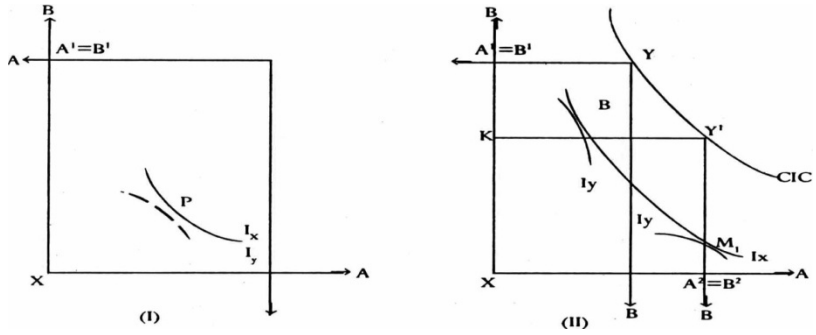

चित्र 12.1

देश में उपलब्ध वस्तु A तथा B की सम्पूर्ण मात्रा को आयत द्वारा उपरोक्त चित्र 12.1 में प्रदर्शित किया गया है।

आयत की भुजायें XA(YA^1) और XB^1 (या YB) क्रमश: देश में वस्तु A तथा वस्तु B की सम्पूर्ण मात्रा को प्रदर्शित करती है X और Y उपभोक्ताओं के अधिमान वक्र क्रमश: I_X तथा I_Y द्वारा दिखलाये गये हैं जो एक दूसरे को बिन्दु P पर स्पर्श करते हैं। बिन्दु P दोनों उपभोक्ताओं की साम्य की स्थिति

को चित्रित करता है। अब हमें I_X तथा I_Y अधिमान वक्रों को इस प्रकार फिसलाना (Slide) चाहिये कि दो निर्देशांक पद्धतियों (Coordinate System) सदैव एक दूसरे के समानान्तर रहे जैसे चित्र 12.1 में दिखाया गया है X उपभोक्ता के अक्षों को स्थिर रखते हुए Y उपभोक्ता के अधिमान वक्र I_X को जिसकी प्रारम्भिक स्थिति Y है को घुमाना चाहिये। प्रारम्भिक स्थिति में दोनों उपभोक्ता M बिन्दु पर साम्य अवस्था में हैं क्योंकि यह बिन्दु I_X तथा I_Y दोनों का उभय बिन्दु है। निर्देशांक पद्धति (Coordinate System) तथा अधिमान मानचित्र को दाहिनी ओर नीचे की तरफ इस प्रकार घुमाया कि I_Y अधिमान वक्र X के अधिमान वक्र I_X के M_1 बिन्दु पर स्पर्श रेखा है M_1 बिन्दु पर दोनों उपभोक्ताओं द्वारा प्राप्त कुल संतुष्टि का योग पूर्ववत ही है, किन्तु बिन्दुओं का संयोग परिवर्तित है। परिवर्तनीय बिन्दुओं द्वारा निर्मित पथ को समुदाय अधिमान वक्र (CIC) कहते हैं यह वक्र वस्तु A तथा वस्तु B के उन विभिन्न संयोगों को चित्रित करता है जिनके प्रति समुदाय के उपभोक्ता उदासीन हैं इस प्रकार समुदाय अधिमान वक्र वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे समुदाय के सदस्यों को व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से समान उपयोगिता मिलती है[8]।

---

[8] व्यक्तिगत अधिमान वक्र की धारणा जितनी संतोषजनक है उतनी संतोषजनक समुदाय अधिमान वक्र की धारणा नहीं है क्योंकि समुदाय के भीतर कल्याण की अन्तर व्यक्ति तुलना आसान नहीं है।

12.2 समुदाय अधिमान वक्र और व्यापार शर्तों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में साम्य का निरूपण (Equilibrium in International Trade in Terms of the Commodity Indifference Curve and Terms of Trade)

उत्पादन संभावना वक्रों और व्यापार शर्तों के दिये हुए होने पर समुदाय अधिमान वक्रों के माध्यम से व्यापार के पूर्व तथा व्यापार के बाद साम्य की स्थिति का निर्धारण किया जा सकता है। उत्पादन में दीर्घकाल में स्थिर पैमान के प्रतिफल, क्रियाशील हो सकते हैं परन्तु वास्तविकता में यदि उत्पादन के प्रारम्भिक चरण में वर्तमान या स्थिर प्रतिफल क्रियाशील होते भी हैं तो अंतत: ह्रासमान प्रतिफल ही प्रभावशाली होता है अत: यहां पर उत्पादन में स्थिर प्रतिफल तथा ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति में साम्य की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

12.2.1 स्थिर पैमाने के प्रतिफल की स्थिति में साम्य का निरूपण (Equilibrium under Constant returns to scale)

इस को स्पष्ट करने हेतु यह मान लेते हैं कि दो देश A तथा B दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन करते हैं। यह हम जानते हैं कि स्थिर पैमाने के प्रतिफल एवं पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में उत्पादन संभावना वक्र एक सीधी ऋणात्मक ढाल युक्त रेखा होता हैं अत: निम्न चित्र 12.2 द्वारा उत्पादन में स्थिर पैमाने के प्रतिफलों की स्थिति में साम्य की व्याख्या स्पष्ट रूप से समझाई जा सकती है।

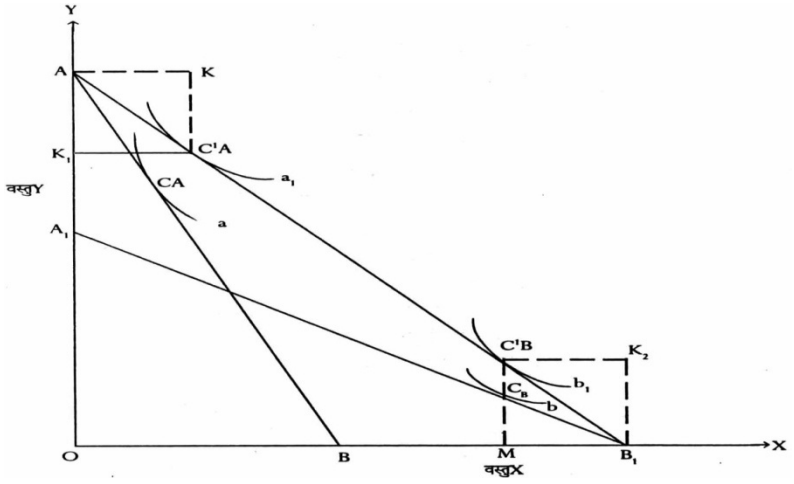

चित्र 12.2

उपरोक्त चित्र 12.2 में देश A तथा B के उत्पादन संभावना वक्रों को क्रमश: AB तथा A_1B_1 रेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है। व्यापार से पूर्व देश के उत्पादन तथा उपभोग में साम्य बिन्दु C_A है जहां पर उसका उत्पादन संभावना वक्र AB उसके समुदायिक अधिमान वक्र a को स्पर्श करता है। इसी प्रकार देश B में व्यापार से पूर्व उत्पादन तथा उपभोग में साम्य का बिन्दु C_B है जहां पर उसका उत्पादन संभावना वक्र A_1B_1 उसके अधिमान वक्र b पर स्पर्श रेखा है।

व्यापार प्रारम्भ होने के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्तों के अनुसार देश A वस्तु Y में तथा देश B वस्तु X के उत्पादन के विशिष्टीकरण प्राप्त करता है क्योंकि देश A को वस्तु Y के तथा देश B को वस्तु X के उत्पादन में तुलनात्मक रूप से लाभ प्राप्त है। जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्तों से हम जानते हैं कि स्थिर पैमाने के प्रतिफल की स्थिति में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त होता है। अत: पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात देश A और B देश के उत्पादन बिन्दु क्रमश: A और B_1 हैं। दोनों बिन्दुओं के जुड़ने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात रेखा देश के समुदाय अधिमान वक्र को स्पर्श करती है। चित्र 12.2 में स्पष्ट है कि देश A के समुदाय अधिमान वक्र a_1 तथा देश B के समुदाय अधिमान वक्र b_1 अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय रेखा

AB_1 को क्रमश: बिन्दु C_A' तथा C_B' पर स्पर्श करते हैं जो कि दोनों देश A व B के क्रमश: उपभोग बिन्दु हैं। इस साम्य अवस्था में एक देश का निर्यात उसके आयात के भुगतान के लिये पर्याप्त है। अन्य शब्दों में एक देश का निर्यात दूसरे देश के आयात के बराबर है उदाहरण के लिए A देश का निर्यात $AK_1(=KC^1_A)$ वक्र Y के बराबर है। जो देश B के आयात MC'_B $(=K_2B_1)$ के बराबर है इसी प्रकार A का आयात $AK(=K_1C'_A)$ वस्तु X है जो देश B के निर्यात $MB_1(=K_2C'_B)$ के समान है।

12.2.2 ह्रासमान पैमाने के प्रतिफल की स्थिति में साम्य का निरूपण (Equilibrium under Diminishing returns to scale)

ह्रासमान प्रतिफल नियम की क्रियाशीलता के कारण उत्पादना संभावना वक्र का आकार मूल बिन्दु के नतोदर (Concave) अर्थात घटती हुई रूपान्तरण दर (या व वर्तमान सीमान्त अवसर लागत दर) होता है। इसी प्रकार का नतोदर वक्र स्थिर पैमाने के प्रतिफल की स्थिति में भी प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन उत्पादन के साधन विभिन्न अनुपातों में उपयोग लिये जायें।

यद्यपि उत्पादन संभावना वक्र पर वस्तुओं के किसी भी संयोग को प्राप्त किया जा सकता है तथापि अनुकूलतम उत्पादन का बिन्दु वह है जहां समुदाय अधिमान वक्र उत्पादन संभावना वक्र को स्पर्श करता है। व्यापार प्रारम्भ होने के पश्चात् अनुकूलतम उत्पादन संयोग में भी परिवर्तन हो जायेगा। इसका निरूपण दो देश A व B दो वस्तु X व Y और दो साधन K व L के मॉडल द्वारा निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है।

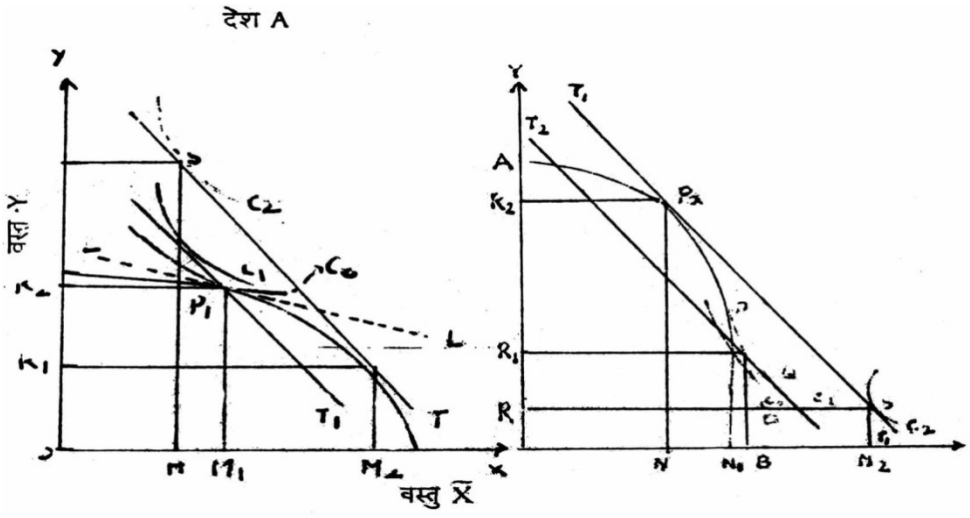

इस मॉडल में यह कल्पना की गई है कि देश A व B में साधन संपन्नता असमान हैं किन्तु उपभोक्ताओं की पसन्दगी समान है तथा साधनों की उपलब्धता की तुलनात्मक स्थिति इस प्रकार है कि देश A वस्तु X तथा देश B वस्तु Y के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ की स्थिति में है। जिसे चित्र 12.3 A व 12.3 B में उत्पादन सम्भावना वक्रों के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 12.3 में स्पष्ट है कि व्यापार की अनुपस्थिति में देश A के उत्पादन तथा उपभोग का बिन्दु P_1 है जहां समुदाय अधिमान वक्र C_0 उत्पादन सम्भावना वक्र AB को स्पर्श करता है। इस प्रकार वस्तु तथा साधन दोनों के बाजार में संतुलन की स्थिति है। साधन के बाजार में श्रम और पूंजी की सीमान्त उत्पादकता का अनुपात प्रत्येक उद्योग में समान है और प्रत्येक साधन का मूल्य उसकी सीमांत लागत अनुपात के बराबर है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि घरेलू मूल्य रेखा LL की ढाल P_1 बिन्दु पर उत्पादन संभावना वक्र AB की ढाल के बराबर है। बिन्दु P1 पर मूल्य रेखा LL समुदाय अधिमान वक्र C_0 को स्पर्श करती है जिसका अर्थ यह है कि वस्तु की सीमान्त प्रतिस्थापन दर वस्तु मूल्यानुपात के बराबर है। इस प्रकार बिन्दु P_1 पर जिस विनिमय अनुपात में उत्पादक वस्तु X व वस्तु Y का व्यापार करना चाहता है उसी अनुपात में वस्तु विनिमय भी होता है।

इसी प्रकार की दशा देश B के लिये भी बिन्दु P_2 पर सत्य है। फिर भी देश B में घरेलू विनिमय अनुपात देश A के घरेलू विनिमय अनुपात से भिन्न है। जो यह बतलाता है कि देश B में वस्तु Y वस्तु X सें तुलनात्मक रूप में सस्ती है। जबकि वस्तु Y के रूप में वस्तु X देश A में सस्ती है। वस्तुओं के तुलनात्मक सस्ते पल के कारण लाभदायक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये पर्याप्त अवसर है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक नवीन विनिमय अनुपात रेखा TT अब T_1T_1 की स्थापना करता है। इस विनिमय अनुपात पर देश A या B देश के उपभोक्ता केवल वस्तु विनिमय के द्वारा लाभ कमा सकते हैं। उत्पादकों की प्रतिक्रिया पर विचार नहीं किया जाता है। देश A विनिमय अनुपात की रेखा T'T' जो TT के समानान्तर है और उत्पादन में सन्तुलन प्रारम्भिक बिन्दु P_1 से गुजरती है के साथ गमन करेगा। इसी प्रकार देश B विनिमय अनुपात की रेखा T_2T_2 जो T_1T_1 के समानान्तर है और उत्पादन में संतुलन के प्रारम्भिक बिन्दु P_2 से गुजरती है कि साथ गमन करेगा। वस्तु विनिमय के कारण दोनों देश के उपभोक्ता अपने प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु Q पर पहुंच जायेंगे जो ऊंचे अधिमान वक्र C_1 पर स्थित है। प्रारम्भिक अधिमान वक्र C_0 से C_1 तक की गति उत्पादन के अपरिवर्तनीय रहते हुए व्यापार से लाभ को प्रदर्शित करती है।

किन्तु उत्पादक निष्क्रिय नहीं रहेंगे। वे भी उत्पादक साधनों को इस प्रकार पुन: समायोजन करेंगे कि अधिकतम लाभ कम हो सके। चूंकि देश A में वस्तु Y के रूप में वस्तु X तुलनात्मक रूप में महंगी है। अत: देश A वस्तु X के उत्पादन में तब तक वृद्धि करेगा जब तक कि साम्य का बिन्दु P_1'. जहां अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात सीमान्त प्रतिस्थापन दर के समान है प्राप्त नहीं हो जाये । इसी प्रकार देश B वस्तु Y के उत्पादन में वृद्धि करके P_2 बिन्दु पर पहुंच जाये। विनिमय के बाद दोनों देश ऊंचे अधिमान वक्र C_2 पर स्थित बिन्दु S पर उपभोग करेंगे। इस प्रकार Q से S तक की गति

उत्पादन में बढ़ी हुई दक्षता के कारण व्यापार से लाभ है। बिन्दु S पर देश A का निर्यात P_1K (वस्तु X) देश B द्वारा वस्तु X के आयात SH के समान है इसी प्रकार देश A का आयात KS (वस्तु Y) देश B के निर्यात HP_2 (वस्तु Y) के बराबर है। बिन्दु S पर सीमान्त रूपान्तरण दर सीमान्त प्रतिस्थापन दर के समान है और यह दोनों दरें अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात के बराबर है और दोनों देश साम्यावस्था में हैं।

गणितीय रूप में इसे निम्न प्रकार स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है। प्रत्येक देश में पूर्ति का कुल मूल्य तथा मांग का कुल मूल्य समान होता है अर्थात

$$P_xX^C_a + P_yY^C_a = P_xX^P_a + P_yY^P_a \quad \text{.....} (1)$$

$$P_xX^C_b + P_yY^C_b = P_xX^P_b + P_yY^P_b \quad \text{.....} (2)$$

यहां पर A व B संकेत देश A व देश B को प्रदर्शित करते हैं।

समीकरण (i) व समीकरण (ii) को जोड़ने पर

$$P_x (X^C_a+X^C_b) + P_y (Y^C_a+Y^C_b) = P_x (X^P_a+X^P_b) + P_y (Y^P_a+Y^P_b) \quad \text{.....} (3)$$

मान लेते हैं कि किसी निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात पर जैसा कि चित्र में रेखा TT II T_1T_1 के ढाल द्वारा प्रदर्शित है वस्तु का बाजार साम्य अवस्था में है अत:

$$(X^C_a+X^C_b) = (X^P_a+X^P_b) \quad \text{....} (4)$$

समीकरण (4) को दोनों ओर P_X से गुणा करने के पश्चात समीकरण (3) से घटाने पर

$$P_y (Y^C_a+Y^C_b) = P_y (Y^P_a+Y^P_b) \quad \text{....} (5)$$

समीकरण (5) में P_y से भाग देने पर

$$(Y^C_a+Y^C_b) = (Y^P_a+Y^P_b) \quad \text{....} (6)$$

अत: स्पष्ट है कि वस्तु X बाजार में साम्यवस्था होने पर वस्तु Y बाजार में भी साम्यावस्था होगी समीकरण (3) व (4) से स्पष्ट है कि

$$X^C_a - X^C_a = X^C_b - X^P_b \text{ or } E_x^a = E_x^b \qquad \text{..... (7)}$$

$$Y^C_a - Y^C_a = Y^C_b - Y^P_b \text{ or } E_y^a = E_y^b \qquad \text{.....(8)}$$

अर्थात यह स्पष्ट होता है कि देश के एक वस्तु के विशुद्ध निर्यात (आयात) अन्य देश के विशुद्ध आयात (निर्यात) के समान होते हैं। समीकरण व इस बात को स्पष्ट रूप से बतलाते हैं कि कोई भी देश न तो दोनों वस्तुओं का विशुद्ध निर्यात न ही विशुद्ध आयात कर सकता है।

12.3 अर्पण वक्रों के माध्यम से व्यापार में साम्य का निरूपण (Equilibrium in International Trade in Terms of the offer Curve)

पूर्व में प्रस्तुत विश्लेषण में संतुलित व्यापार शर्तों को दिया हुआ स्वीकार कर लिया गया था जबकि सामान्य रूप से व्यापार शर्तें दी हुई नहीं होती अपितु इनमें परिवर्तन व इनका निर्धारण दोनों देशों बाजारों की व्यापार के प्रति इच्छा की पारस्परिक क्रिया द्वारा संभव होता है। किसी देश की व्यापार के प्रति इच्छा का निर्धारण पसंदगी तथा उत्पादन शक्ति द्वारा होता है। इस समस्या को ज्यामिति में मार्शल द्वारा निरूपित अर्पण वक्र की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है। अर्पण वक्र एक ओर किसी देश द्वारा वस्तु विशेष की निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु कीं एक निश्चित मात्रा देने की इच्छा को व्यक्त करता है और दूसरी ओर किसी दूसरे देश द्वारा विभिन्न मूल्य रेखाओं पर वस्तु विशेष की मांग को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार इस वक्र में मांग और पूर्ति दोनों के ही तत्व विद्यमान होते हैं। अत: दो देशों के अर्पण वक्रों की पारस्परिक क्रिया द्वारा व्यापार की शर्तों का निर्धारण किया जा सकता है।

अर्पण वक्र की व्युत्पति को **निम्न चित्र 12.4** के द्वारा स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है।

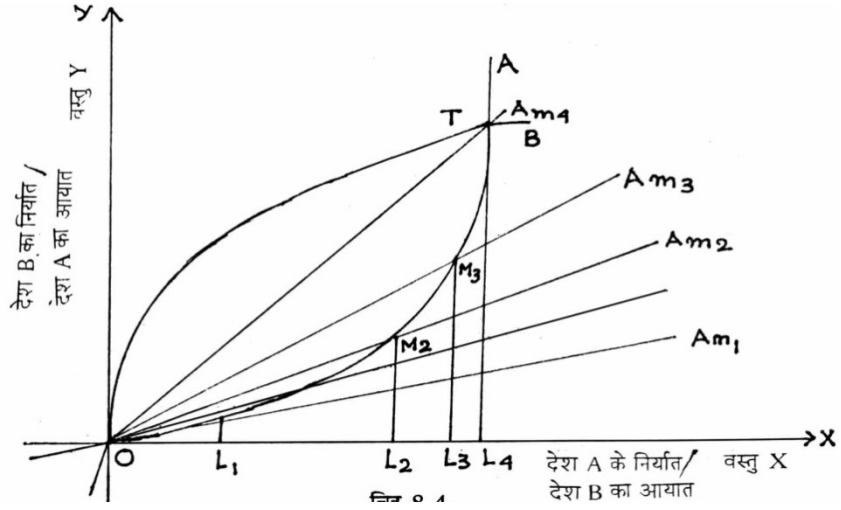

देश A के अर्पण वक्र की व्युत्पति हेतु देश A की विभिन्न वैकल्पिक अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति प्रतिक्रिया देखते हैं। चित्र में क्रमश: X व Y अक्षों पर देश A के निर्यात तथा आयात की माप की जा रही है। वस्तु Y के रूप में वस्तु X के वैकल्पिक मूल्यों को OAm_1, OAm_2, OAm_3 व OAm_4 आदि रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है व्यापार पूर्व देश A बिन्दु M_1 पर उपयोग करते है जो यह बतलाता है कि बड़ी थोड़ी मात्रा के आयात की स्थिति में देश A व्यापार के प्रति उदासीन है। यदि विदेशी व्यापारी बेहतर विनिमय अनुपात प्रस्तुत करता है जैसा कि रेखा OAm_2 द्वारा दिखलाया है तो देश A के उपभोक्ता OL_2 वस्तु X को M_2L_2 वस्तु Y से प्रतिस्थापित करके अधिक संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार OAm_3 विनिमय अनुपात की रेखा पर देश A,OL_3 वस्तु X को M_3L_3 वस्तु Y के बदले प्रस्तुत करेगा। अंत में बिन्दु T प्राप्त होगा जबकि देश A वस्तु Y की अतिरिक्त मात्रा के लिये अतिरिक्त वस्तु X देने को तत्पर नहीं होगा M_1,M_2,M_3 तथा T बिन्दुओं को मिलाने वाला वक्र OA देश A का अर्पण वक्र है। इस प्रकार अर्पण वक्र किसी देश द्वारा निर्यात की विभिन्न मात्राओं को प्रदर्शित करता है जो वह आयात की विभिन्न मात्राओं के बदले देने के लिये इच्छुक होता है। इसी प्रकार देश B का अर्पण वक्र भी चित्रित किया जा सकता है और देश B का अर्पण वक्र OB जैसा होगा। जैसा कि चित्र 12.4 से स्पष्ट है। दोनों देश A व B

के अर्पण वक्र क्रमश: OA तथा OB एक दूसरे को बिन्दु T पर काटते हैं। बिन्दु O और T को मिलाने वाली रेखा OT साम्य विनिमय शर्त की रेखा है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय शर्त की रेखा दोनों देशों की घरेलू विनिमय अनुपात की रेखाओं के मध्य स्थित है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा। यद्यपि एक देश को अधिक तथा दूसरे देश को कम लाभ होगा। यदि अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात की रेखा घरेलू विनिमय अनुपात के आन्तरिक भाग में स्थित है तो व्यापार से एक देश को हानि, किन्तु दूसरे देश को लाभ होगा। यदि व्यापार साम्य विनिमय अनुपात की रेखा पर होता है तो एक देश का आयात उसके निर्यात के बराबर होगा।

उपर्युक्त विश्लेषण तुलनात्मक लागत सिद्धान्त पर आधारित है जैसा कि स्पष्ट है कि उत्पादन के साधनों की प्रचुरता में अन्तर तुलनात्मक लागतों में अन्तर उत्पन्न करता है जो कि व्यापार को बढ़ाता है तथा व्यापार के परिणाम स्वरूप वस्तुओं की कीमतें समान हो जाती हैं तथा तुलनात्मक लागतों का अन्तर समाप्त हो जाता है। यह मॉडल दो देश तथा दो वस्तुओं के लिये प्रस्तुत किया गया था लेकिन निकाले गये निष्कर्ष अनेक देश, अनेक वस्तु तथा अनेक साधनों पर भी लागू होता है।

12.3.1 मॉडल का गणितीय निरूपण (A Mathematical Formalisation of the Model)

खण्ड 12.3.1 में प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सरल सामान्य सन्तुलन मॉडल को गणितीय प्रतीकों द्वारा भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया जा सकता है। यदि हम पहले देश A पर केन्द्रित करते हैं। यह देश दो वस्तु X तथा Y को उत्पादित करने में सक्षम है उनके उत्पादन फलन निम्न प्रकार है-

$X^P = F(Lx,Kx)$ तथा $Y^P = G(Ly,Ky)$

जहां Li तथा Ki (i=x,y) ith उद्योग में क्रमश: साधन श्रम व पूंजी है तथा P उत्पादन पूर्ति को प्रदर्शित करता है। इन उत्पादन फलनों से उत्पादन

रूपान्तरण वक्र प्राप्त होता है जिसे निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

$Y^p = \phi(X^p)$ - - - - - - - - - - (i)

यहां पर $X_p \geq 0$ तथा $Y^p \geq 0$ उत्पादन रूपान्तरण वक्र यह माना जाता है कि मूल बिन्दु के उन्नोदर है अत:

$\emptyset' < 0$ तथा $\phi'' < 0$ - - - - - (2)

X^p के सभी स्तरों के लिये है। यदि P_x तथा P_y क्रमश: वस्तु X तथा वस्तु Y की कीमतों के प्रतीक है तथा यदि $P = \frac{Px}{Py}$ दोनों वस्तुओं की तुलनात्मक कीमत है तथा प्रतियोगिता की स्थिति में उत्पादन का साम्य

$P = -\phi'$ - - - - - - - - - - - - - - (3)

अत: दिये गये P के लिये यह सम्बन्ध उत्पादन रूपान्तरण वक्र के एक निश्चित बिन्दु पर स्थित होगा। यह बिन्दु X वस्तु के उत्पादन का निर्धारण करेगा तथा समीकरण (1) से स्पष्ट है कि यह वस्तु Y के उत्पादन का निर्धारण कर सकता है।

यदि X^C तथा Y^C देश A में क्रमश: वस्तु X तथा वस्तु Y की उपभोग मात्राएँ हैं। यह मानते हैं कि देश एक उपभोक्ता की तरह व्यवहार करता है तथा इसका उपयोगिता फलन निम्न प्रकार लिख सकते हैं -

$U = U(X^C, Y^C)$

तथा किसी दिये गये कीमत अनुपात पर उपभोक्ता का सन्तुलन निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

$P = Ux/Uy$ ---------- (4)

जहां $Ux = \frac{\partial u}{\partial x^c}$ तथा $Uy = \frac{\partial u}{\partial y^c}$ एव यदि $V = \frac{Ux}{Uy}$ है तब V, X^C तथा Y^C का फलन होगा अत: $P = V(X^C, Y^C)$ -------- (5)

माना Ex वस्तु X की देश में अतिरिक्त (अतिरिक्त पूर्ति) के रूप में परिभाषित करते है यदि Ex > O(Ex > O) है इसी प्रकार Ey को भी परिभाषित कर सकते हैं तथा

$X^C = X^P + Ex$ ---------- (6)

$Y^C = Y^P + Ey$ ---------- (7)

स्पष्ट है कि Ex>O देश द्वारा वस्तु X की आयातित मांग को प्रदर्शित करती है जबकि Ex<O वस्तु X की निर्यातित पूर्ति को प्रदर्शित करती है। अब Ex तथा Ey के रूप में देश के बजट समीकरण को निम्न प्रकार बतलाया जा सकता है।

$P_xE_x + P_yE_y = O$ या $PE_x + E_y = O$ ----------(8)

यहां पर छः समीकरण (1), (2), (5), (6), (7), तथा (8) सात चर XP, YPXC, YC, Ex, Ey तथा P को निर्धारित करने के लिये दी गई है। फिर भी तंत्र को निर्धारित बनाने हेतु प्रत्येक X^P, Y^PX^C, Y^C, E_x तथा E_yको कीमत अनुपात P का फलन मानते हैं। यदि देश शेष संसार की तुलना में बहुत छोटा है तो P इस देश के लिये बाहर से दिया हुआ होगा। तब तंत्र निर्धारित होगा क्योंकि छः समीकरण तथा छः अनिर्धारित चर होंगे।

यदि देश छोटा नहीं होगा तब P का निर्धारण इस देश तथा शेष संसार (देश B) के मध्य पूर्ति तथा मांग की प्रतिक्रिया (interaction) द्वारा निर्धारित होगा। देश B के मॉडल में प्रवेश होने के पश्चात् 12 समीकरण होंगे तथा 13 अनिर्धारित चर होंगे। देश A के लिये $X^P_{a,}$ $Y^P_{a,}$ X^C_a, $Y^C_{a,}$ $E_x^{a,}$ E_y^a तथा देश B के लिये $X^P_{b,}$ $Y^P_{b,}$ X^C_b, $Y^C_{b,}$ $E_x^{b,}$ E_y^b तथा कीमत अनुपात होगा। तंत्र को संगत Consistent बनाने हेतु यह ध्यान रखना चाहिये कि संतुलन अवस्था में संसार की प्रत्येक वस्तु के लिये अतिरिक्त मांग शून्य होनी चाहिये अर्थात

$E_x^a + E_x^b = 0$तथा $E_y^a + Eyb = 0$ ------ (9)

एक देश की निर्यात पूर्ति दूसरे देश की आयात मांग के समान होनी चाहिये। समीकरण 8 में दोनों समीकरणें स्वतंत्र नहीं हैं क्योंकि दो बजट समीकरण $PE_x^a + E_y^a = 0$ तथा $PE_x^b + E_y^b = 0$ होती है अर्थात एक से दूसरे का निर्धारण किया जा सकता है। इसलिये समीकरण 8 से किसी भी एक समीकरण को 12 समीकरणों के साथ सम्मिलित किया जा सकता है, जिससे कि 13 समीकरण व 13 अनिर्धारित चर हो जायेंगे या किसी भी एक बजट समीकरण को सम्मिलित कर सकते हैं जिससे कि 12 समीकरण से 13 समीकरण मॉडल में बन जाती है। इस प्रकार सामान्य संतुलन की अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात P का निर्धारण किया जा सकता है।

12.4 सामान्य साम्य की व्याख्या व्यापार देय वक्रों के रूप मे (General Equilibrium in Terms of Trade offer Curve)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सामान्य सन्तुलन की व्याख्या एक अन्य नव-प्रतिष्ठित तकनीक द्वारा ज्यामिति की सहायता से स्पष्ट रूप से की जा सकती है इसे व्यापार अर्पण वक्र के नाम से जाना जाता है। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम लियोन्टीफ तथा लर्नर ने किया तथा अन्त में प्रो. मीड ने सन् 1952 में अपनी पुस्तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की ज्यामिती (Geometary of International Trade) में स्पष्ट रूप से व्यापार उदासीनता वक्र की तकनीक का प्रयोग करके व्यापार में संतुलन का निरूपण किया। इस तकनीक की विशेषता यह है कि इसमें अर्पण वक्र का उत्पादन रूपान्तरण वक्र तथा उपभोक्ता उदासीनता मानचित्र के सम्बन्ध को दिखलाकर सन्तुलन की समस्या का निरूपण करता है। यह सरलतापूर्वक व्यापार का उत्पादन, उपभोग तथा व्यापार से प्राप्त लाभ पर पड़ने वाले प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं।

व्यापार उदासीनता वक्र विदेशी व्यापार की विभिन्न मात्राओं - आयात व निर्यात के उन विभिन्न संयोगों के पक्ष को प्रदर्शित करता है जिससे किसी देश के उपभोक्ताओं को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। अन्य

शब्दों में व्यापार उदासीनता वक्र विदेशी व्यापार के उन विभिन्न संयोगों का वक्र है जिनके प्रति उपभोक्ताओं में समान अनुराग है।

व्यापार उदासीनता वक्र का निर्माण निम्न मान्यताओं के अन्तर्गत ही संभव है :-

1. एक द्विसूत्रित ढांचे पर विचार किया जा सकता है जिसमें दो A देश B व तथा दो वस्तु X व Y को सम्मिलित किया जा सकता है।
2. बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है तथा न तो बाह्यमितव्ययतायें (External Economics) है व न ही अमितव्ययताएं (Diseconomies) है।
3. यहां पर कुछ कीमत स्थिरता है जो कि साधनों को पूर्ण रोजगार की ओर अग्रेषित करती है।
4. प्रत्येक देश में व्यक्तिगत स्वाद तथ्य साधन प्रचुरता समान है। अर्थात दो देशों के बीच भिन्नता संभव है। परिणाम स्वरूप व्यक्तिगत उदासीनता वक्र से सीधे समुदाय उदासीनता वक्र का निरूपण संभव है।
5. व्यक्तिगत उदासीनता वक्र ऋणात्मक ढाल युक्त तथा मूल बिन्दु के उन्नतोदर (Convex) होते हैं।
6. उत्पादन के साधनों की पूर्ति सभी देशों में स्थिर रहती है।
7. सामान्य रूप से वर्तमान लागतें मानी जाती हैं जो यह बतलाती है कि समाज के उत्पादन रूपान्तरण वक्र मूल बिन्दु के नतोदर (Concave) होते हैं।

   उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर व्यापार उदासीनता वक्र का निरूपण स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है।

12.4.1 व्यापार उदासीनता वक्र का निरूपण (Construction of Trade Indifference Curve)

इसके लिये एक ऐसे धरातल की रचना करनी चाहिये जो चार चतुर्शों (Quadrant) में दो आयाताकार अक्षों XOX' तथा YOY' से बना हो जैसा कि चित्र 12.5 में प्रदर्शित किया गया है।

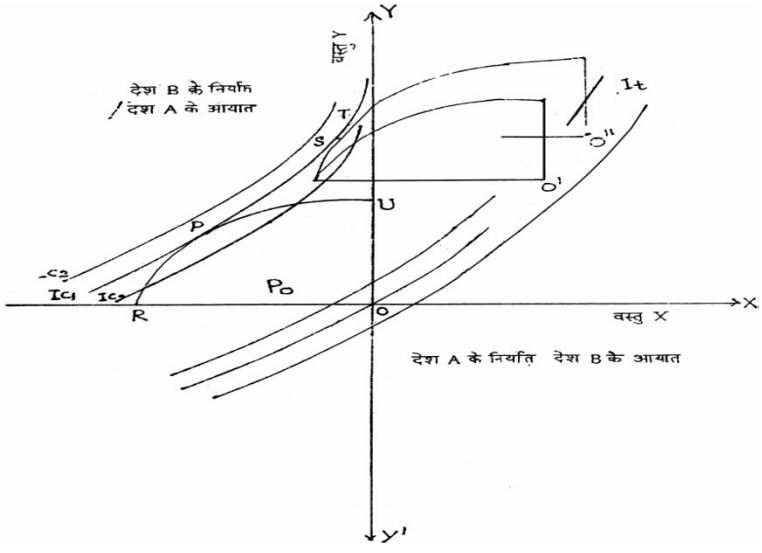

चित्र 12.5

उपर्युक्त चित्र 12.5 में क्षैतिज अक्ष पर वस्तु X की माप की जाती है। मूल बिन्दु से दायी ओर वस्तु X का निर्यात प्रदर्शित किया गया है तथा लम्बवत अक्ष पर वस्तु Y का माप किया जाता है । मूल बिन्दु से ऊपर की ओर वस्तु X के आयात को प्रदर्शित किया गया है। अर्थात दूसरे शब्दों में अक्ष OX पर देश A के निर्यात तथा अक्ष OY पर देश A के आयात एवं अक्ष OX' पर देश A में वस्तु X का उपभोग तथा अक्ष OY पर देश A के वस्तु Y का उपभोग प्रदर्शित किया गया है । अत: स्पष्ट है कि खण्ड द्वितीय X'OY में समुदाय अधिमान वक्रों का एक कुलक Ic0, Ic_1 तथा Ic_2 आदि द्वारा दिखलाया गया है। इसी खण्ड में उत्पादन का ब्लॉक P_0 भी दिखलाया गया है जो समुदाय अधिमान वक्र Ic_1 को बिन्दु P_1 पर स्पर्श करता है। बिन्दु P व्यापार से पूर्व देश A के उत्पादन तथा उपभोग की दशा को चित्रित करता

है। चित्र से स्पष्ट है कि इस स्थिति में वस्तु X की OR मात्रा तथा वस्तु Y की OU मात्रा का उत्पादन तथा उपभोग किया गया है।

अब उत्पादन खण्ड P0 को इस भांति फिसलाना संभव है कि वह समुदाय अधिमान वक्र Ic_1 के स्पर्शज्या रहे तथा क्षैतिज अक्ष के समानान्तर रहे। चित्र 12.5 में स्पष्ट है कि उत्पादन खण्ड P0 समुदाय अधिमान वक्र Ic_1 को P,S तथा T बिन्दु पर स्पर्श करता है। चूंकि उपभोक्ता अपने पूर्व अधिमान वक्र पर ही स्थिर रहता है। अत: वह वस्तुओं के किसी भी संयोग के प्रति उदासीन रहता है। इन तीनों बिन्दु P,S तथा T से सम्बन्धित उत्पादन खण्ड के क्रमश: तीन मूल बिन्दु O,O^1 हैं। ये तीनों बिन्दु आयात तथा निर्यात के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करते हैं जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। इन बिन्दुओं तथा इनके समान अन्य बिन्दुओं के पथ को व्यापार उदासीनता वक्र (It) कहते हैं। उत्पादन खण्ड, समुदाय अधिमान वक्र तथा उदासीनता वक्रों के सम्बन्धित बिन्दुओं पर उत्पादन में सीमान्त रूपान्तरण दर, उपभोग में सीमान्त प्रतिस्थापन दर और व्यापार में सीमान्त आयात निर्यात प्रतिस्थापन दर समान हैं। इसका अर्थ यह है कि समुदाय अधिमान वक्र का ढाल बिन्दु P,S व T पर उत्पादन सम्भावना वक्र के ढाल के बराबर है और समुदाय अधिमान वक्र, उत्पादन सम्भावना वक्र का P,S व T बिन्दुओं पर ढाल व्यापार अधिमान वक्र It के क्रमश: O,O' व O" बिन्दुओं पर समान है। इस प्रकार हम Ic_0, Ic_1 व Ic_2 आदि समुदाय अधिमान वक्रों से सम्बन्धित व्यापार उदासीनता वक्र भी खींच सकते हैं।

इसी प्रकार देश B के लिये भी व्यापार उदासीनता वक्र प्राप्त किये जा सकते हैं। उनकी दिशा इनके विपरीत होगी तथा देश B के उपभोग व उत्पादन को चतुर्थ चर्तुश में प्रदर्शित किया जायेगा क्योंकि जो देश A के निर्यात हैं वे देश B के उपभोग हैं तथा जो देश A के आयात हैं वह देश B का उत्पादन हैं। परिणाम स्वरूप B देश के व्यापार उदासीनता वक्र प्रथम

चर्तुशा में प्राप्त होंगे परन्तु वे क्षैतिज अक्ष के उन्नोतोदर (Convex) होंगे। चित्र में केवल देश A के व्यापार उदासीनता वक्र सरलता तथा स्वच्छता के कारण से प्रदर्शित किये गये हैं।

12.4.2 व्यापार अधिमान वक्रों द्वारा व्यापार देय वक्रों का निरूपण (Construction of Trade offer Curve from Trade Indifference Curve)

जैसा कि उपर्युक्त विश्लेषण में स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक समुदाय उदासीनता वक्र के तदनुरूपी व्यापार अधिमान वक्र होते हैं। अत: प्रत्येक समुदाय अधिमान वक्र मानचित्र के अनुरूपी व्यापार अधिमान वक्र पर पहुंच जाता है तो उसे व्यापार से लाभ होता है और व्यापार अधिमान वक्र समुदाय अधिमान वक्र के दिये हुए होने पर हम व्यापार देय वक्र की रचना कर सकते हैं। जैसा कि निम्न चित्र 12.6 में स्पष्ट है।

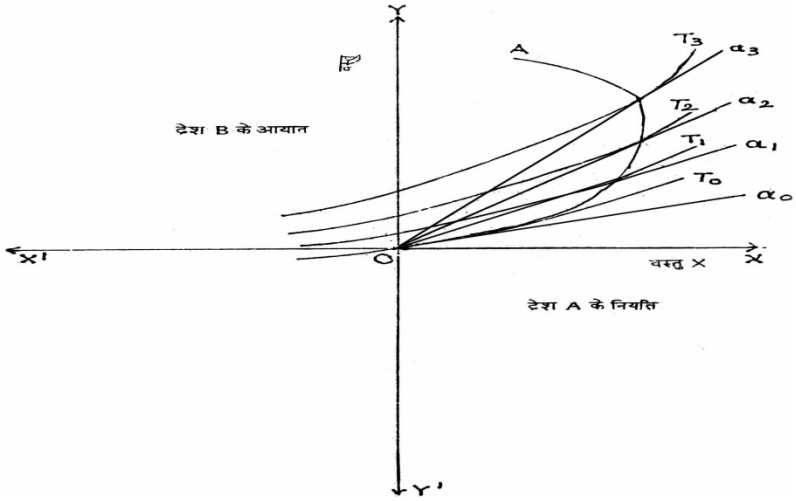

चित्र 12.6

उपर्युक्त चित्र संख्या 12.6 में देश A के व्यापार अधिमान वक्र को T_0, T1, T2 और T3 आदि द्वारा तथा व्यापार शर्तों की रेखाओं को क्रमश: a_0, a_1, a_2, तथा a_3 द्वारा दिखलाया गया है जो मूल बिन्दु O से गुजरती है। जैसे-जैसे व्यापार शर्तों की रेखा अधिक ढालुवां होती जाती है देश A दिये हुये निर्यात के बदले अधिक आयात प्राप्त करता जाता है। उत्पादन और उपभोग से सामंजस्य स्थापित करने वाला आयात और निर्यात के

अनुकूलतम संयोग का बिन्दु M_0, M_1, M_2 और M_3 है जहां पर व्यापार की शर्तें a_0, a_1, a_2 तथा a_3 क्रमश: T_0, T_1, T_2 व T_3 व्यापार उदासीनता वक्रों पर स्पर्श करती है। आयात निर्यात के कुशलतम संयोग के बिन्दुओं M_0, M_1, M_2 व M_3 आदि को मूल बिन्दु O से मिलाने वाली रेखा OA देश A का व्यापार देय वक्र है। इसी प्रकार देश B के देय वक्र की रचना भी की जा सकती है। दोनों देशों के वक्र जिस बिन्दु पर एक दूसरे का छेदन करते हैं वहां संतुलन स्थापित होता है इस बिन्दु पर दोनों देशों के व्यापार उदासीनता वक्र व्यापार शर्त रेखा के स्पर्शज्या होते हैं। जैसा कि निम्न **चित्र 12.7** में दिखाया गया है।

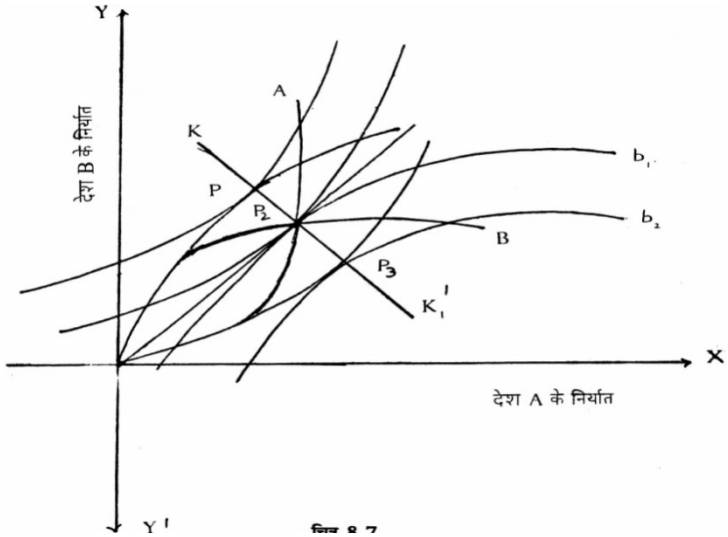

चित्र 12.7

चित्र 12.7 में देश A के व्यापार उदासीनता वक्र को a_0, a_1, a2 देश B के व्यापार उदासीनता वक्र b_0, b_1, b_2 आदि द्वारा दिखलाया गया है। दोनों देशों के व्यापार अधिमान वक्रों की वक्रता एक दूसरे के विपरीत है। दोनों देशों के अधिमान वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं का छेदन करने वाली तथा मूल बिन्दु से खींची गई रेखा संतुलित व्यापार शर्त की रेखा कहलाती है। सन्तुलित व्यापार की शर्त की रेखा OP_2 को द्वारा दिखलाया गया है। इस व्यापार शर्त पर देश A का निर्यात उसके कुल आयात के समान है तथा दोनों देशों के व्यापार उदासीनता वक्रों के स्पर्श बिन्दु P_1, P_2 तथा P_3 को मिलाने वाली रेखा को आंकुचित वक्र कहते हैं।

12.5 व्यापार में सामान्य संतुलन (General Equilibrium in Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को स्पष्ट रूप से समझाने के लिये आवश्यक विश्लेषणात्मक यन्त्रों जैसे उत्पादन सम्भावना वक्र, समुदाय अधिमान वक्र, व्यापार उदासीनता वक्र आकृति का विकास करने के बाद प्रो. मीड ने दो देशों के मध्य मुक्त व्यापार संतुलन बिना व्यापार शेष आधिक्य और न कोई घाटे को निम्न चित्र की सहायता से स्पष्ट रूप से समझाया

चित्र 12.8

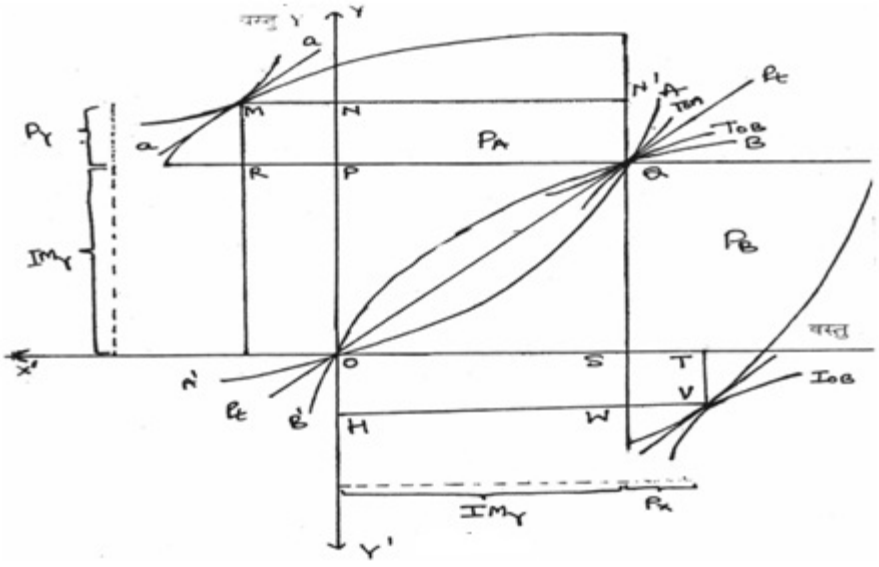

चित्र 12.8 में अक्ष YOY' तथा XOX' क्रमश: वस्तु Y तथा वस्तु X की माप करते हैं। देश A में वस्तु Y का उपभोग जो घरेलू उत्पादन तथा देश B से आयात का योग है की OY माप अक्ष पर तथा वस्तु X के उपभोग जिसकी पूर्ति घरेलू उत्पादक द्वारा की जाती है OX' पर की जाती है। उपभोग बिन्दुओं से संगत करते हुए अनेक समुदाय अधिमान वक्र है एक ऐसा ही अधिमान वक्र Io_A द्वारा प्रदर्शित किया गया है। समुदाय अधिमान वक्र Io_A की स्थिति का निर्धारण करने के बाद उसके उत्पादन खण्ड Pa को इस प्रकार रखा गया है कि Io_A को स्पर्श करता है। देश A के निर्यात (वस्तु X)

को क्षैतिज वक्र अक्ष पर तथा आयात (वस्तु Y) को लम्बवत अक्ष पर दिखलाते हुए उत्पादन खण्ड P_A को इस प्रकार फिसलाया जाता है कि उसका किनारा Q उच्चतम व्यापार उदासीनता वक्र To_A को स्पर्श करता है। अब हम अनेकों मूल्यानुपात की रेखायें मूल बिन्दु से खींचेंगे जो व्यापार उदासीनता वक्रों पर स्पर्श रेखायें हैं। मूल्यानुपात की रेखाओं और व्यापार उदासीनता वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं को मिलाने पर देश A का अर्पण वक्र OA प्राप्त होता है। इसी तकनीक का प्रयोग करके देश B का अर्पण वक्र भी प्राप्त कर सकते हैं जो OB द्वारा प्रदर्शित किया गया है। दोनों अर्पण वक्र एक दूसरे को Q बिन्दु पर काटते हैं। मूल बिन्दु O तथा Q को मिलाने वाली रेखा OQ संतुलित व्यापार शर्त की रेखा है। इस स्थिति में देश A में उपभोग का बिन्दु M है जहां पर कीमत रेखा aa का ढाल देश A के समुदाय अधिमान वक्र तथा देश A के उत्पादन खण्ड के ढाल के समान है और वह अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा PtPt के ढाल के समान है। यहां पर चित्र 12.8 से स्पष्ट है कि देश A के वस्तु X का उपभोग OL अर्थात कुल उत्पादन के PQ भाग को निर्यात के लिये छोड़ दिया जायेगा। तथा वस्तु Y की कुल ON मात्रा का उपभोग होगा जिसमें से PN भाग देश में उत्पादित किया जायेगा और शेष OP देश B से आयात किया जायेगा। देश B में वस्तु X का कुल उपभोग OT होगा जिसमें से ST भाग देश B में उत्पादित होगा तथा OS भाग देश A से आयात किया जायेगा एवं वस्तु Y कुल उत्पादन QW होगा जिसमें से SW भाग देश B में उपभोग होगा तथा शेष QS का देश A को निर्यात किया जायेगा । देश B में उपभोग बिन्दु V पर समुदाय अधिमान वक्र Io_B तथा उत्पादन खण्ड का ढाल कीमत रेखा bb के ढाल के समान है तथा ये अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा PtPt के ढाल के समान है। अर्थात दोनों देश व्यापार सन्तुलन की अवस्था में है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ प्राप्त कर रहे हैं। अत: व्यापार की अनुपस्थिति से बेहतर स्थिति में हैं। यह हमारे दो व्यापारिक

अर्थव्यवस्थाओं में पूर्ति तथा मांग की दी गई स्थिति में सामान्य संतुलन के अध्ययन का पूर्ण हल प्रस्तुत करते हैं।

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अर्पण वक्र से आप क्या समझते हैं। इनकी सहायता से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में साम्य कैसे प्राप्त होता है। क्या ये वक्र एक सामान्य साम्य को दर्शाते हैं?
2. व्यापार की जिस मात्रा पर दो देशों के अर्पण वक्र एक दूसरे को काटते हैं वहां केवल आयातक और निर्यातक ही नहीं अपितु दोनों देशों के उपभोक्ता और उत्पादक भी साम्यावस्था में होते हैं। स्पष्ट कीजिए।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए।

   (अ) सामुदायिक अधिमान वक्र

   (ब) अर्पण वक्र

   (स) व्यापार अधिमान वक्र

12.7 संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. Kindleberger, C.P. – **International Economics**, 1980
2. Kundu & Ray – **International Economics**, 1980
3. Ellsworth, P.T. – **The International Economy**, 1988
4. Mithani, D.M. – **Introduction to International Economics**, 1985
5. Wells – **International Economics**, 1978
6. Sodersten, B.O. – **International Economics, Macmillian**, 1985.

इकाई - 13

व्यापार तटस्थता-रेखायें तथा ऑफर-रेखायें

Trade Indifference Curve and Offer Curve

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 व्यापार तटस्थता-रेखायें

13.2.1 उत्पादन सम्भावनायें

13.2.2 परिवर्तन की सीमान्त-दर

13.2.3 व्यापार एवं प्राथमिकता

13.2.4 तटस्थता की रेखायें

13.2.5 तटस्थता की रेखायें तथा व्यापार

13.2.6 समरूप माँग तथा पूर्ति की विभिन्न अवस्थायें

13.2.7 समरूप पूर्ति तथा माँग की विभिन्न अवस्थायें

13.3 मार्शल-एजवर्थ ऑफर-रेखा

13.3.1 पारस्परिक माँग का नियम

13.3.2 ऑफर वक्र क्या है?

13.3.3 व्यापार के शर्तों का संतुलन

13.3.4 माँग तथा ऑफर वक्रों में परिवर्तन

13.3.5 ऑफर वक्र तथा पूर्ति में परिवर्तन

13.4 सारांश

13.5 शब्दावली

13.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस ईकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

- व्यापार के शर्त, व्यापार-तटस्थता की रेखाओं तथा ऑफर रेखाओं के विचारधारा की व्याख्या करना अंतर्राष्ट्रीय-व्यापार के क्षेत्र में इन विचारधाराओं के प्रयोग की व्याख्या करना।
- प्राचीन सिद्धान्त की तुलना में व्यापार-तटस्थता की रेखाओं तथा ऑफर रेखाओं के लाभों की व्याख्या करना।

13.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाइयों में आपने व्यापार के प्राचीन सिद्धांत तथा मिल के पारस्परिक माँग के सिद्धांत का अध्ययन किया। इस इकाई में हम लोग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में तटस्थता की रेखाओं के प्रयोग का अध्ययन करने जा रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सहित सभी आर्थिक क्रियाओं को नियंत्रित करने वाली दो आधारभूत शक्तियाँ हैं - पूर्ति तथा माँग। राष्ट्र व्यापार करते हैं क्योंकि व्यापार से उन्हें लाभ होता है। व्यापार के द्वारा देशों को मिलने वाली लाभ की मात्रा कत हद तक साधनों की कुशलता पर आधारित विशिष्टीकरण पर निर्भर करती है।

प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने पूर्ण-विशिष्टीकरण की कल्पना की थी जिसका अर्थ यह था कि एक देश दूसरे देश से किसी वस्तु का आयात

करता है तो उस वस्तु का उत्पादन उस देश में बिलकुल नहीं होता है। फिर भी, वास्तविक संसार में इस तरह का पूर्ण विशिष्टीकरण प्राय: असंभव है। हम व्यवहार में केवल अपूर्ण या अधूरे विशिष्टीकरण को पाते हैं। इसका अर्थ यह है कि एक देश वस्तु का आयात करने के स्थान पर उसका-उत्पादन अपने देश में भी कर सकता है लेकिन उसका उत्पादन-व्यय अपेक्षाकृत ऊंचा होगा। इसकी व्याख्या कॉडफ्रिड हैबरलर द्वारा अवसर-व्यय-सिद्धांत के अंतर्गत किया गया है जिसे उत्पादन-सम्भावना रेखा के संदर्भ में देखा जा सकता है। इसका अध्ययन भी आपने पूर्व इकाइयों में किया है। इस इकाई में आप व्यापार-तटस्थता-रेखाओं का अध्ययन करेंगे जो माँग-पक्ष से व्यापार की व्याख्या करता है तथा ऑफर-रेखाओं का अध्ययन करेंगे जो पूर्ति-पक्ष से व्यापार की व्याख्या करता है।

13.2 व्यापार तटस्थता - रेखायें

आपने स्नातक-स्तर में तटस्थता वक्रों का अध्ययन किया है। जैसा कि आप पहले से ही जानते हैं - एक तटस्थता वक्र विभिन्न बिन्दुओं पर दो वस्तुओं के संयोग को प्रदर्शित करता है जिससे उपभोक्ता को समान संतुष्टी प्राप्त होती है। उपभोक्ता के स्थान पर यहां हम देश को रखते हैं तथा लगभग उसी तर्क को लागू करते हैं। जिस तथ्य का निरूपण किया जाता है उसकी व्याख्या उत्पादन-संभावना-रेखा तथा तटस्थता की मदद से विस्तृत रूप में की जाती है।

13.2.1. उत्पादन-संभावनायें

अपूर्ण विशिष्टीकरण की व्याख्या उत्पादन-सम्भावना-विवेचना की मदद से की जा सकती है। उत्पादन-सम्भावना का तात्पर्य वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों से है जिन्हें कोई देश दिये हुये संसाधनों के द्वारा उत्पादित कर सकता है। इसकी स्पष्ट व्याख्या उत्पादन-संभावना-रेखा के द्वारा व्यय-वृद्धि स्थितियों के अंतर्गत किया जा सकता है। प्रत्येक देश के लिये

उत्पादन - संभावनाओं की जाँच अलग-अलग की जा सकती है। हम लोग निम्नलिखित मान्यताओं पर आगे बढ़ेंगे -

1. साधन तथा वस्तु-बाजार में पूर्ण-प्रतियोगिता की स्थिति रहती है।
2. वस्तु का मूल्य सीमांत-उत्पादन व्यय के बराबर होता है।
3. साधन का मूल्य सीमांत-उत्पादकता के बराबर होता है।
4. पूर्ण-रोजगार-संतुलन रहता है।
5. साधनों की पूर्ति सीमित होती है।
6. व्यय-वृद्धि की स्थितियाँ रहती हैं।

इन मान्यताओं के आधार पर हम अमेरिका तथा ब्रिटेन नामक दो देशों को लेंगें तथा विभिन्न उत्पादन-संभावनाओं पर विचार करेंगे। चित्र 13.1 तथा 13.2 इसकी व्याख्या करते हैं-

चित्र 13.1

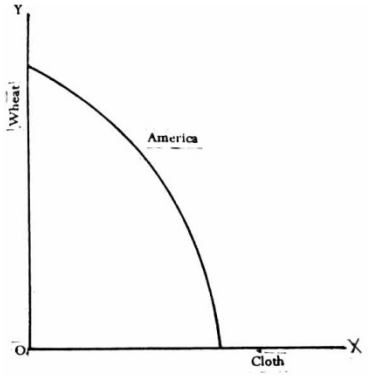

चित्र 13.2

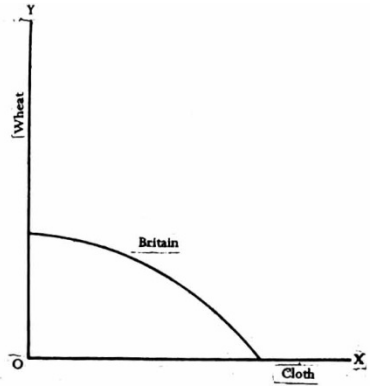

13.2.2. परिवर्तन की सीमान्त-दर

परिवर्तन की सीमांत-दर वह दर है जिस पर एक वस्तु के उत्पादन को दूसरे वस्तु के उत्पादन की मात्रा में कटौती करके बढ़ाया जा सकता है। कारण यह है कि ऐसा मान लिया गया है कि साधनों की पूर्ति निश्चित रहती है तथा अर्थव्यवस्था पूर्ण-रोजगार की स्थिति में कार्यरत रहती है। इसकी व्याख्या निम्नांकित चित्र संख्या 13.3 में दिखाई गयी है -

चित्र 13.3

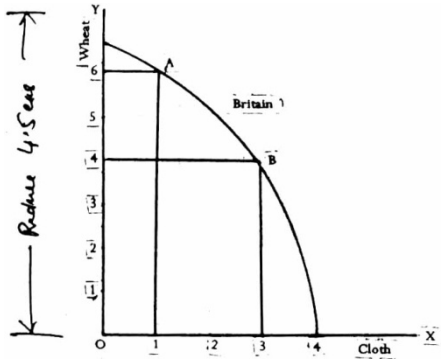

इस चित्र में देश संयोग अ से संयोग ब पर जाना चाहता है। ऐसा करने के लिये इसे गेहूँ की दो इकाईयों का त्याग करना पड़ता है जिससे यह कपड़े के दो और इकाईयों का उत्पादन कर सके, जैसाकि संयोग व द्वारा दिखाया गया है। इस तरह परिवर्तन की सीमांत-दर गेहूँ की 2 इकाईयाँ कपड़े की 2 इकाईयों के बराबर है।

13.2.3. व्यापार एवं प्राथमिकता

हैबरलर द्वारा विवेचित उत्पादन-संभावना व्याख्या दो वस्तुओं के घरेलू मांग को महत्व नहीं देता है। इस दोष को दूर करने के लिये तटस्थता-वक्र विवेचना को व्यापार-सिद्धांत के संदर्भ में लागू किया गया है।

पूर्व की मान्यताओं के साथ-साथ हम लोग अब यह मानते हैं कि दो वस्तुओं के लिये प्रत्येक देश के लिये अपनी मांग एवं पूर्ति की स्थितियाँ होती हैं तथा मूल्य-ढांचे का नियन्त्रण घरेलू मांग एवं पूर्ति की स्थितियों द्वारा होता है। इसलिये यह धारणा कि निम्न व्यय-मूल्य ढाँचे में पर्याप्त वस्तुओं का उत्पादन होगा, समाप्त हो जाती है। कारण यह है कि जब माँग एवं पूर्ति दोनों ऊंचे स्तर पर रहते हैं तब मूल्य भी ऊंचे स्तर पर रहेगा।

इसलिए जब दो देश व्यापार में संलग्न रहते हैं तो अकेले उत्पादन संभावनायें व्यापार-ढाँचे को निश्चित नहीं करती। देशी बाजार के संतुलन

अवस्था में प्रत्येक देश अपने उत्पादन-संभावना-वक्र पर एक ऐसे बिन्दु का चुनाव करता है जिस पर यह उत्पादन तथा उपभोग कर सके । इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक देश दो वस्तुओं के उत्पादन एवं उपभोग के लिए अपना स्तर निर्धारित कर लेता है। दूसरे शब्दों में - प्रत्येक देश उपभोग की अपनी निजी प्राथमिकतायें रखता है जो उसके निर्यात तथा आयात को निर्धारित करेगी निम्नलिखित खण्ड में हम इसकी विवेचना करेंगे -

13.2.4: तटस्थता की रेखायें

ऊपर हमने देखा है कि व्यापार माँग के विभिन्न प्राथमिकताओं तया पूर्ति-पक्ष के विभिन्न उत्पादन-संभावनाओं पर आधारित हो सकता है। तटस्थता-रेखाओं के तीन मुख्य गुण इस प्रकार है -

(अ) तटस्थता की रेखायें सदैव ऊपर से नीचे, बायें से दायें ओर झुकी रहती हैं।

(ब) वे सदैव मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) होती हैं।

(स) कोई भी दो तटस्थता की रेखायें एक दूसरे को नहीं काट सकतीं।

अब चित्र 13.4 को देखें तथा इन गुणों का निरीक्षण करें

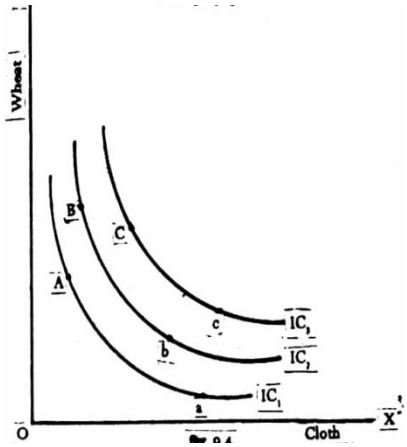

तटस्थता वक्र कपड़ा एवं गेहूँ के विभिन्न संयोगों को अभिव्यक्त करते है। अत: किसी वक्र के कोई दो बिन्दु, जैसे IC_1 पर A तथा a, IC_2 पर B तथा b तथा IC_3 पर C एवं c, समान संतुष्टि के स्तर को अभिव्यक्त करते हैं।

यद्यपि प्रत्येक बिन्दु पर संयोगों में अन्तर रहता है। यह ध्यान देने की बात है कि IC_2 की कोई भी बिन्दु IC_1 के किसी भी बिन्दु से ऊंचे संतोष के स्तर को अभिव्यक्त करता है। इसी तरह IC_3 का कोई भी बिन्दु IC_2 के किसी भी बिन्दु से ऊंचे संतोष की मात्रा को परिलक्षित करती है। जब व्यापार में इसका प्रयोग किया जाता है तो तटस्थता वक्रों को समुदाय तटस्थता-वक्र कहते है। समुदाय-तटस्थता-वक्र यह परिलक्षित करते है कि समुदाय दो वस्तुओं के बीच चुनाव करता है।

13.2.5: तटस्थता वक्र तथा व्यापार

इस संदर्भ में दो मौलिक प्रश्न उठते हैं, वे हैं -

(अ) उत्पादन-संभावना वक्र पर किस बिन्दु को कोई देश अपना संतुलन-बिन्दु चुनता है।

(ब) व्यापार में भाग लेने वाले देशों को क्या लाभ मिलता है?

समुदाय तटस्थता वक्र तथा उत्पादन-संभावना रेखा इन प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करती है।

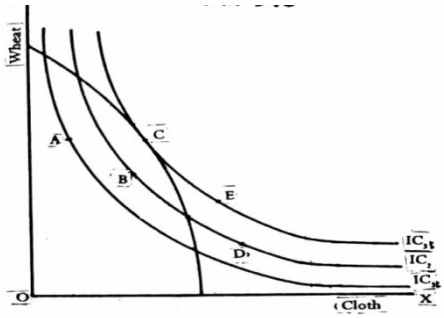

चित्र 13.5

यह स्पष्ट है कि दो वस्तुओं के संयोग द्वारा, जैसे कपड़ा एवं गेहूँ से, देश अधिकतम संभावित संतोष के स्तर को प्राप्त करने की चेष्टा करेगा। चित्र 13.5 में देश IC_3 पर A तथा B के ऊपर C संयोग का चुनाव करता है। विद्यमान उत्पादन-संभावना के अंतर्गत संयोग D तथा E उसकी पहुंच से

परे है। इसकी प्राप्ति चित्र 13.5 में दिखाये गये उत्पादन-संभावना वक्र तथा समुदाय-तटस्थता-वक्र के स्पर्श-बिन्दु द्वारा होता है।

दूसरा प्रश्न व्यापार द्वारा लाभ से संबंधित है। प्राचीन-सिद्धांत दोनों देशों के घरेलू मूल्य-अनुपातों तथा कैसे दोनों देशों द्वारा उनका वहन किया जाता है, उनके अन्तर के रूप में इसकी व्याख्या करता है। इसके अतिरिक्त यह ऐसा मान कर चलता है कि लाभ का भाग दूसरे देश में वस्तु के माँग पर निर्भर करता है। तो भी यह विवेचना अपरिस्कृत तथा अमापशील है।

तटस्थता-वक्र के रूप में व्यापार द्वारा किसी देश को हम तब लाभान्वित मान सकते हैं जब व्यापार इसे ऊँचें तटस्थता वक्र पर पहुंचाने में समर्थ हो जाता है। अनुकूल-वस्तु के विशिष्टीकरण की मात्रा में वृद्धि लाकर व्यापार द्वारा कोई देश ऊंची तटस्थता रेखा पर पहुंचने में समर्थ होता है। इसकी विवेचना चित्र 13.6 में की गयी है-

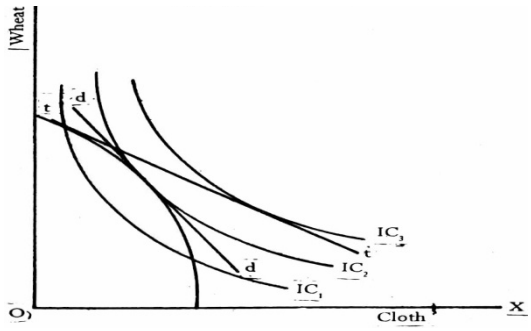

चित्र 13.6 एक देश के उत्पादन-संभावनाओं को दर्शाती है जो गेहूँ तथा कपड़े का उत्पादन करता है तथा इसकी तटस्थता-रेखायें प्राथमिकतायें दिखलाती हैं। सरल-रेखा dd, जो उत्पादन संभावना रेखा को स्पर्श करती है। स्पर्श बिन्दु पर घरेलू परिवर्तन के दर को परिलक्षित करती है। यह व्यापार के पूर्व विद्यमान मूल्य-दर भी है। सरल-रेखा tt व्यापार के बाद की रेखा है जो देश के ऊँची तटस्थता की रेखा IC_2 पर ले जाती है। दोनों तटस्थता की रेखाओं का अन्तर अर्थात पूर्व व्यापार तथा

व्यापार के बाद की रेखा का अन्तर, व्यापार के फलस्वरूप देश को प्राप्त होने वाले लाभ को दर्शाती है।

13.2.6 समरूप माँग तथा पूर्ति की विभिन्न स्थितियाँ

इस भाग में हम अमेरिका तथा ब्रिटेन दोनों देशों की व्यापार के पूर्व तथा बाद की स्थितियों को यह मानते हुये देखेंगे कि उनकी समरूप माँग लेकिन विभिन्न पूर्ति की स्थितियाँ हैं। समरूप माँग का आधार यह है कि दोनों देशों की तटस्थता-रेखायें बिल्कुल एक समान हैं तथा विभिन्न पूर्ति का अर्थ है कि उनकी उत्पादन संभावनायें भिन्न-भिन्न हैं। चित्र 13.7 इसकी विवेचना करती है।

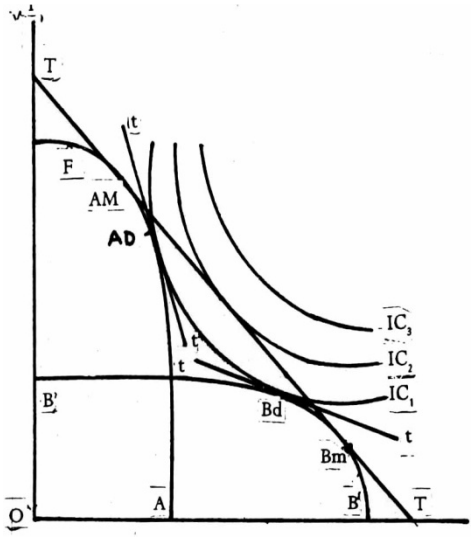

चित्र 13.7

AA - अमेरिका की उत्पादन-संभावनायें

BB - ब्रिटेन की उत्पादन-संभावनायें

Ad - अमेरिका के व्यापार का पूर्ण-संतुलन

Bd - ब्रिटेन के व्यापार का पूर्ण-संतुलन

at - अमेरिका की घरेलू व्यापार-रेखा या घरेलू विनिमय-दर

bt - ब्रिटेन की घरेलू व्यापार-रेखा या घरेलू विनिमय-दर

Ic - अमेरिका तथा ब्रिटेन की समरूप मांगें

TT - अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार रेखा अर्थात अमेरिका तथा ब्रिटेन के बीच व्यापार

Am - अमेरिका का व्यापार के बाद का संतुलन

Bm - ब्रिटेन का व्यापार के बाद का संतुलन

यह दृष्टव्य है कि व्यापार के पूर्व अमेरिका तथा ब्रिटेन का घरेलू-संतुलन क्रमश: at तथा bt पर है। व्यापार के पूर्व Ad तथा Bd दोनों एक ही तटस्थता की रेखा IC_1 पर दो विभिन्न स्पर्श-बिन्दु हैं। जब दोनों देशों के बीच TT अंतर्राष्ट्रीय व्यापार-रेखा के माध्यम से व्यापार होता है तो दोनों देश अपना-अपना घरेलू-संतुलन क्रमश: Am तथा Bm पर परिवर्तित करते हुये IC_2 पर पहुंच जाते हैं जो IC_1 से ऊँचा है। इस तरह यह सिद्ध हो जाता है कि यदि समरूप माँग तथा विभिन्न पूर्ति अवस्थाओं में दो देश एक दूसरे से व्यापार करते हैं तो उन्हें आपसी लाभ होता है।

13.2.7 : समरूप पूर्ति तथा मांग की विभिन्न अवस्थाएं

अब हम उस स्थिति की विवेचना करेंगे जिसमें दो देशों की समरूप पूर्ति लेकिन विभिन्न माँग की स्थितियाँ होती हैं। चित्र 13.8 इसकी विवेचना करती है। अमेरिका तथा ब्रिटेन- दोनों की पूर्ति की स्थितियाँ पूर्णत: समान हैं जिन्हें समान उत्पादन-संभावना रेखा से दिखाया गया है। लेकिन अमेरिका तथा ब्रिटेन की तटस्थता-रेखायें व्यापार के पूर्व दोनों वस्तुओं के मांग के विभिन्न स्तरों को दर्शाते हुए विभिन्न बिन्दुओं को स्पर्श करती है। अब निम्नलिखित चित्र 13.8 को देखें –

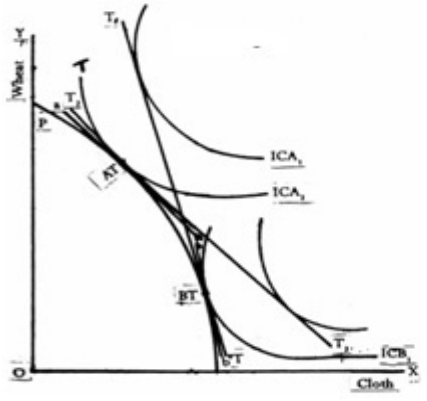

चित्र 13.8

pp - अमेरिका तथा ब्रिटेन की उत्पादन-संभावना वक्र

IC_A - अमेरिका की तटस्थता रेखा

IC_B - ब्रिटेन की तटस्थता रेखा

aa - अमेरिका का घरेलू विनिमय-दर

bb - ब्रिटेन का घरेलू विनिमय-दर

at - अमेरिका का व्यापार के पूर्व संतुलन

bt - ब्रिटेन का व्यापार के पूर्व संतुलन

TT_1 - पूरी लाभदायक अमेरिका के लिये नयी व्यापार-रेखा

TT_2 - पूरी लाभदायक ब्रिटेन के लिये नयी व्यापार-रेखा

यह उल्लेखनीय है कि व्यापार अमेरिका या ब्रिटेन को ऊँचे तटस्थता-रेखा पर पहुंचने में समर्थ बनाता है।

13.3 मार्शल-एजवर्थ ऑफर-रेखा

पिछले भाग में हमने दो देशों के बीच व्यापार के आधार देशों को प्राप्त होने वाले लाभ तथा व्यापार के ढाँचे को नियंत्रित करने वाले मांग एवं पूर्ति की स्थितियों को देखा है। इस भाग में हम ऑफर वक्र पर प्रकाश

डालेंगे जो व्यापार के शर्तों को स्पष्ट करता हैं अर्थात् देश का निर्यात जिस विनिमय-दर पर आयात के लिये निर्धारित होता है।

13.3.1 : पारस्परिक माँग का नियम

जे.एस. मिल ने सर्वप्रथम व्यापार के शर्तों के समस्या का पारस्परिक माँग के संदर्भ में क्रमबद्ध रूप में विश्लेषण करने का प्रयास किया था। लेकिन वे इस विचार को तालिकाबद्ध रूप देने से अधिक कुछ नहीं कर सके। मार्शल तथा एजवर्थ ने व्यापार के शर्तों को चित्र के रूप में अभिव्यक्ति दी है। इसे मार्शल-एजवर्थ ऑफर वक्र या सामान्यत: ऑफर वक्र के रूप में जाना जाता है।

13.3.2 : ऑफर वक्र क्या है?

यदि तुलनात्मक लागत का सिद्धांत यह बताता है कि दो देशों के बीच किस वस्तु का व्यापार किया जाये तो पारस्परिक माँग का सिद्धांत बताता है कि दो देशों द्वारा विभिन्न मूल्यों पर कितनी मात्रा दी जाये। पहले जैसा हम दो देशों - अमेरिका तथा ब्रिटेन, दो वस्तुओं गेहूँ तथा कपड़ा को इस मान्यता के साथ लेंगे कि दोनों देशों में अपूर्ण विशिष्टीकरण है। सामान्यत: कोई भी देश जितना देता है उससे अधिक उसके बदले वापस पाना चाहता है। दूसरे शब्दों में वह कम निर्यात के बदले अधिक आयात चाहता है और इस प्रकार अपने व्यापार के शर्तों को अनुकूल बनाये रखना चाहता है। वास्तव में यह दोनों देशों में वस्तुओं के संबद्ध माँग की गहनता तथा उनकी पूर्ति करने की उनकी क्षमता पर निर्भर करती है।

इसकी विवेचना हम ब्रिटेन के उदाहरण से करेंगे जो कपड़े का उत्पादन तथा निर्यात अमेरिका से गेहूँ के आयात के संदर्भ में करता है। चित्र 13.9 ब्रिटेन के व्यापार के शर्तों तथा उसके ऑफर वक्र को दिखाता है।

चित्र 13.9

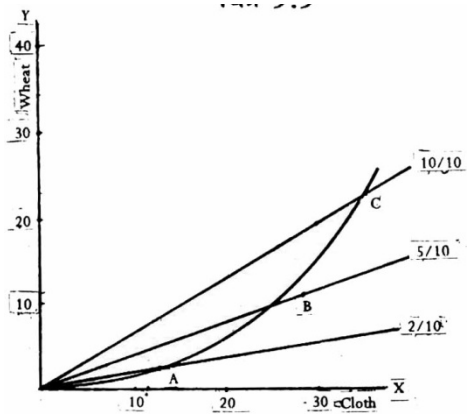

माँग का सरल नियम यह बताता है कि ऊँचे मूल्यों की अपेक्षा निम्न मूल्यों पर अधिक खरीद की जाती है। व्यापार की शर्तों के पीछे भी यही तर्क काम करती है। बिन्दु A, B और C विभिन्न व्यापार-शर्तों को दर्शाते हैं तथा बिन्दु OA व्यापार के विभिन्न शर्तों पर ब्रिटेन द्वारा दिये जाने वाले मात्रा को दिखाता है। यह निमांकित तालिका से स्पष्ट है –

बिन्दु	व्यापार की शर्तें	अमेरिकी गेहूँ (W) के विरुद्ध ब्रिटेन द्वारा दिया जाने वाला कपड़ा(C)
A	2/10	2w के लिये 10C
B	5/10	10w के लिये 20C
C	10/10	30w के लिये 30C

दृष्टव्य है कि व्यापार-शर्तें कपड़े के हित में (अनुकूल) जाती है जिससे ब्रिटेन गेहूं के विनिमय के लिये अधिक कपड़े का निर्यात करने के लिये तैयार है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कोई देश अनुकूल व्यापार-शर्तों के अंतर्गत अधिक निर्यात करने की चेष्टा करता है। व्यापार-शर्त 2w: 10C रहने पर ब्रिटेन कपड़े के केवल 10 इकाई का निर्यात करना चाहता है। जब यह मात्रा बढ़कर 5w : 10C हो जाता है तो वह कपड़े की 20 इकाई का तथा 10w : 10C हो जाने पर गेहूं के 30 इकाई के लिये कपड़े के 30 इकाई का निर्यात करने को तैयार हो जाता है। दूसरे देश, अर्थात् अमेरिका के लिये भी यही तर्क लागू हो सकता है। अमेरिका की व्यापार-शर्तें तथा ऑफर-वक्र चित्र 13.10 में दिखाया गया है-

चित्र 13.10

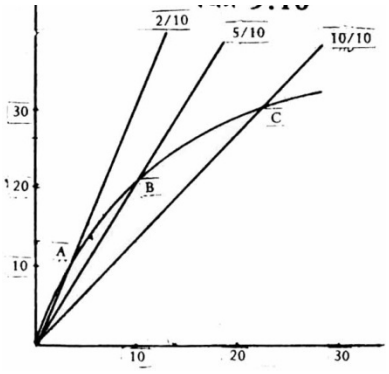

बिन्दु	अमेरिका की	अमेरिकी कपड़े (C) के विरुद्ध अमेरिका गेहूँ
A	2/10	2C के लिये 10W
B	5/10	10C के लिये 20W
C	10/10	30C के लिये 30W

13.3.3 : **व्यापार के शर्तों का संतुलन**

ऊपर दी गयी दोनों तालिकायें दिखलाती हैं कि अमेरिका तथा ब्रिटेन का देय केवल C बिन्दु पर संतुलन की अवस्था में हैं। व्यापार के इस शर्त पर, जो गेहूँ तथा कपड़े के 1:1 अनुपात को दर्शाती है, ब्रिटेन गेहूँ के 30 इकाईयों के बदले कपड़े के 30 इकाईयों को देने को तैयार है। इसी तरह अमेरिका भी कपड़े के 30 इकाईयों के बदले गेहूँ के 30 इकाईयों का विनिमय करने के लिये तैयार है। इस तरह दोनों देश C बिन्दु पर व्यापार-शर्तों के संतुलन पर हैं। चित्र 13.11 के C बिन्दु पर व्यापार-शर्तों के संतुलन की विवेचना करता है जहां दो ऑफर-वक्र व्यापार-शर्तों का 10:10 दिखाते हुये मिलती हैं –

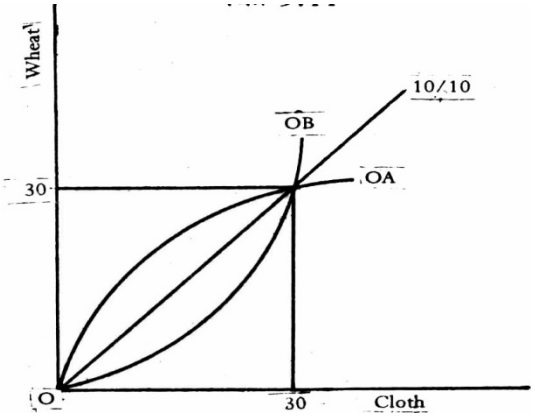

इसके अतिरिक्त दूसरे व्यापार शर्त को अर्थ यह होगा कि दोनों देशों में से एक के लिये यह प्रतिकूल होगा। इस तरह, माँग तथा पूर्ति की अवस्थाओं में परिवर्तन से ऑफर वक्र तथा व्यापार-शर्तों का संतुलन C बिन्दु से हटकर अन्यत्र हो सकता है। इसकी विवेचना निम्नांकित भाग में की गयी है।

13.3.4 : माँग तथा ऑफर वक्रों मे परिवर्तन

हम मान लें कि कपड़े के लिये ब्रिटेन की माँग बढ़ रही है। इसका अर्थ यह है कि ब्रिटेन को घरेलू उपयोग के लिये और कपड़े चाहिये इसलिये वह कपड़े की केवल छोटी मात्रा का निर्यात करने को तैयार है। हम यह भी मान कर चलें कि अमेरिकी-गेहूँ की पूर्ति लोचदार है। ब्रिटेन के ऑफर-वक्र को ऊपर की तरफ मोड़ देने से यह संभव हो सकता है। इसे निम्नांकित चित्र 13.12 में दिखाया गया है –

चित्र 13.12

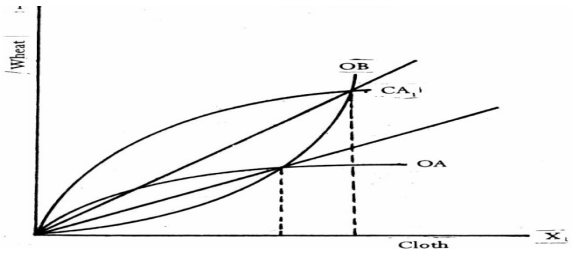

यह मानते हुए कि अमेरिकी गेहूँ की पूर्ति पूर्णत: लोचदार है, नया संतुलन का बिन्दु D होगा जो व्यापार-शर्त 10W:5C को दर्शाता है। इससे

यह स्पष्ट होता है कि कपड़े के लिये घरेलू-माँग में वृद्धि होने के कारण ब्रिटेन के कपड़े की पूर्ति में कमी आई है।

13.3.5: ऑफर वक्र तथा पूर्ति में परिवर्तन

इस भाग में हम ऑफर-वक्र पर पूर्ति में परिवर्तनों के प्रभावों को देखेंगे। हम अमेरिका को लेते हुये यह मानेंगे कि कृषि-समृद्धि के कारण अमेरिकी गेहूँ की पूर्ति में वृद्धि हुई है। यह ऑफर वक्र को एक नये संतुलन बिन्दु OA1 पर पहुंचा देगा, जैसा कि चित्र 13.13 में दिखाया गया है। इस परिवर्तन का अर्थ यह होगा कि अब अमेरिका प्रत्येक गज कपड़े के लिए और अधिक गेहूँ देने में समर्थ है। यह भी कहा जा सकता है कि अमेरिका गेहूँ के किसी भी मात्रा के बदले कपड़े की कम मात्रा स्वीकार करने के लिये तैयार है।

दूसरा प्रभाव यह है कि ब्रिटेन से अतिरिक्त कपड़े के विनिमय के लिये अमेरिकी गेहूँ के बढ़े हुये मात्रा की पूर्ति की जाती है जिससे व्यापार की मात्रा में वृद्धि होती है।

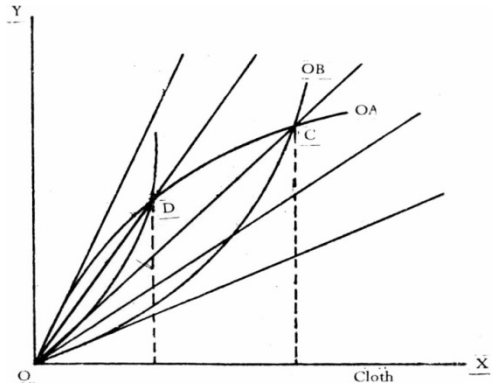

चित्र 13.13

इस तरह ऑफर वक्र के माध्यम से व्यापार-शर्तों की व्याख्या से व्यापार-शर्तों पर माँग एवं पूर्ति में परिवर्तन के प्रभाव तथा व्यापार की मात्रा को समझने में मदद मिलती है।

13.4 सारांश

संसाधनों में अंतर के कारण किन्हीं दो देशों के बीच व्यापार का उदय होता है। इससे व्यय-ढांचे में अंतर आ जाता है। व्यापार के द्वारा तुलनात्मक व्यय के अंतर के आधार पर देश लाभान्वित हो सकते हैं।

किसी देश को व्यापार में सहयोग करने की क्षमता उसके उत्पादन-संभावनाओं द्वारा निर्धारित होता है। बढ़ते हुए उत्पादन व्यय वाले देश की प्रवृति व्यापार में शामिल होने की अपेक्षा विशिष्टीकरण करने की कम रहती है।

किसी देश के घरेलू संतुलन-अवस्था तथा व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभ की मात्रा के निर्धारण के लिये तटस्थता की रेखायें उपयोगी होती हैं। दिये हुये व्यापार-शर्तों के अन्तर्गत किसी देश का व्यापारिक-ढाँचा घरेलू बाजार में माँग एवं पूर्ति की स्थितियों पर निर्भर करती है। यदि उनके माँग तथा पूर्ति की स्थितियों में अंतर हो तो देश एक-दूसरे के साथ व्यापार कर सकते हैं।

ऑफर-वक्र व्यापार में संलग्न देश के लिये ग्राह्य दो वस्तुओं के सभी संभव-संयोगों को प्रस्तुत करता है। व्यापार के शर्तों के संतुलन का निर्धारण व्यापार में संलग्न दोनों देशों के ऑफर-वक्र के विच्छेदन द्वारा होता है।

1. व्यापार द्वारा देशों को प्राप्त होने वाले लाभ की मात्रा संसाधनों की कुशलता पर आधारित विशिष्टीकरण की मात्रा पर निर्भर करती है।
2. दिये हुये संसाधनों द्वारा कोई देश दो वस्तुओं के जिन विभिन्न संयोगों का उत्पादन कर सकता है उन्हें उत्पादन-संभावना कहते हैं।
3. घरेलू संतुलन में प्रत्येक देश अपने उत्पादन-संभावना वक्र पर एक बिन्दु का चुनाव करता है जिसपर वह उत्पादन एवं उपभोग करेगा।

4. यदि व्यापार किसी देश को ऊंचे तटस्थता वक्र तक पहुंचने में समर्थ बनाता है तो वह देश व्यापार से लाभान्वित माना जाता है।
5. ऑफर-वक्र व्यापार के विभिन्न शर्तों पर निर्यात एवं आयात के विभिन्न मात्राओं के बीच किसी देश के विकल्पों को प्रस्तुत करता है। एक तरह से यह माँग के सरल नियम पर आधारित है। जैसे यदि व्यापार की शर्तों में सुधार आता है (अर्थात् न्यून-निर्यात के बदले अधिक आयात प्राप्त होने लगता है) तो देश अधिक मात्रा में निर्यात करने की चेष्टा करेगा।
6. जब दो देशों के ऑफर वक्र मिलते तथा एक दूसरे को काटते हैं तब दो देशों के बीच व्यापार के शर्तों के संतुलन की प्राप्ति होती है।

13.5 शब्दावली

घरेलू मूल्य-अनुपात - इसका अर्थ वह अनुपात है जिस पर घरेलु-बाजार में दो वस्तुओं का विनिमय होता है। औटार्की (Autarky) - घरेलू बाजार में जब कोई देश माँग एवं पूर्ति के संदर्भ में संतुलन की प्राप्ति करता है तो इसे औटार्की कहते हैं।

व्यापार तटस्थता-रेखायें - सामान्य तटस्थता-रेखाओं का प्रयोग जब अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिये किया जाता है तो उन्हें व्यापार तटस्थता रेखायें कहते हैं।

उत्पादन-सम्भावनायें - उपलब्ध संसाधनों की मदद से दो वस्तुओं के विभिन्न संभावित संयोगों के उत्पादन को उत्पादन संभावना कहते हैं।

परिवर्तन की सीमांत दर - यह वह दर है जिसपर कोई देश साधनों को स्थानान्तरित करके एक वस्तु के उत्पादन को बढ़ा या घटा सकता है। सामान्यत: उत्पादन संभावना वक्र के परिवर्तन की सीमांत दर बढ़ते हुये व्यय-स्थितियों को प्रकट करता है।

व्यापार की शर्तें - यह वह अनुपात है जिस पर किसी देश के निर्यात का विनिमय आयात से किया जाता है।

ऑफर वक्र - ऑफर-वक्र विभिन्न व्यापार-शर्तों पर किसी देश द्वारा निर्यात एवं आयात किये गये दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों का समूहीकरण है।

13.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. फ्रेडरिक : 'इंटरनेशनल इकॉनोमिक्स - कन्सेप्ट्स एन्ड इस्सूज' मेक ग्रा हिल, कोगाकुशा लि. न्यू देहली 1974.
2. चार्ल्स पी. किंडलबर्जर : इंटरनेशनल इकॉनोमिक्स' रिचार्ड डी. इरविन, यू.एस.ए. 1976.
3. गौटफ्रेड हैबरलर : 'द थ्योरी ऑफ इंटरनेशनल ट्रेड' मैकमिलन, न्यूयॉर्क, 1950.

इकाई – 14

आर्थिक विस्तार और व्यापार

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 उत्पादन प्रभाव और व्यापार

14.2.1 साधन देनों के उत्पादन प्रभाव

14.2.2 तकनीकी प्रगति के उत्पादन प्रभाव

14.3 उपभोग प्रभाव और व्यापार

14.4 कुल मिलाकर आर्थिक विस्तार के व्यापार पर प्रभाव

14.5 प्रावैगिक साधन, व्यापार और विकास

14.6 सारांश

14.7 शब्दावली

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.9 अभ्यास प्रगति की जाँच के लिये उत्तर

14.0 उद्देश्य

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का परम्परागत सिद्धान्त एक प्राचीन सिद्धान्त है जोकि प्रकृति से विशुद्ध रूप से स्थैतिक है। आर्थिक विकास और व्यापार का सिद्धान्त सिर्फ हाल के वर्षों में ही विकसित किया गया है। स्थैतिक विश्व का अस्तित्व कभी नहीं होता है। प्रावैगिक साधन एक विकासशील राष्ट्र के व्यापार स्वरूप को अधिकता से प्रभावित करते हैं। इस इकाई का उद्देश्य रूचियों में आन्तरिक परिवर्तनों, साधन देनों और प्रौद्योगिकी में

परिवर्तनों के मध्य स्वतंत्रता की पूर्ण समझ की ओर अग्रसर होना हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप

- आर्थिक विस्तार, साधन देनें, तकनीकी प्रगति की परिभाषा दे सकेंगे।
- व्यापार का वर्गीकरण निर्यात-अभिनत, अति-निर्यात-अभिनत, तटस्थता, आयात- अभिनत, अति-आयात-अभिनत में करने के योग्य हो जाएंगे।
- आर्थिक विस्तार के उत्पादन प्रभाव और उपभोग प्रभाव को व्यक्त करने, और
- अल्प-विकसित देशों के लिये प्रावैगिक साधन, व्यापार और विकास का वर्णन करने में समर्थ हो सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम विस्मृत विवादों पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करते हैं। किसी व्यक्ति को संदेह होता है कि व्यापार सिद्धान्त का संस्थापक वर्णन, जो स्थैतिक स्थितियों में मान्य होना है, वह उस विश्व में भी लागू होता है जो आवश्यक रूप से प्रावैगिक है। समय गुजरने के साथ-साथ रुचियाँ परिवर्तित होती हैं, प्रौद्योगिक नवाचार (नई पद्धतियाँ) उत्पादन फलन में नई तकनीकें प्रवृत्त करती हैं, साधन पूर्तियाँ भी प्रत्येक देश में बदलती हैं। ये सभी शक्तियाँ, या जिन्हें प्रावैगिक साधन कहना अधिक उपयुक्त है, किसी देश के व्यापार आकार को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं।

आर्थिक विस्तार का प्रभाव किसी देश की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना होता है या चित्र की भाषा में मानें, तो उसका प्रभाव देश के उत्पादन सम्भावना वक्र (PPC) में बाहर और ऊपर की ओर विवर्तन करना होना है। ठीक वैसा ही आर्थिक विस्तार या विकास का प्रभाव आय में वृद्धि या रुचियाँ इत्यादि में परिवर्तन के कारण उपभोग वक्र या आकार के

परिवर्तन में प्रतिम्बिबित होता है । आर्थिक विस्तार का कुल प्रभाव, जो इन दोनों वक्रों में विवर्तन का परिणाम होता है (पूर्ति पक्ष में उत्पादन सम्भावना वक्र और मांग पक्ष में तटस्थता वक्र द्वारा प्रदर्शित)। अन्य शब्दों में, उत्पादन व उपभोग के विवर्तनों का संयुक्त विशुद्ध प्रभाव विकासशील देश के अर्पण वक्र में विवर्तन की दिशा और विवर्तन की सीमा निर्धारित करेंगे और उसके अनुसार व्यापार की मात्रा और बनावट में परिवर्तन होंगे।

उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफल, पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तें, और अपरिवर्तित व्यापार की शर्त की मान्यता लेते हुये आपको इस इकाई में दो-देश, दो-साधन, दो-वस्तुओं के प्रमाणित निदर्श (Model) से परिचित कराया जायेगा।

14.2 आर्थिक विस्तार के उत्पादन प्रभाव और व्यापार

आर्थिक विस्तार के उत्पादन प्रभावों पर विचार करने में, हम उसे दो भागों में विभाजित करते हैं : प्रथम, साधन देनें जो उत्पादन फलन में बिना परिवर्तन करते हुये आयताकार चित्र की लम्बाई और चौड़ाई में विस्तार करती है; और द्वितीय तकनीकीय प्रगति, जो अर्थव्यवस्था के उत्पादन फलनों को बदलती है। सर्वप्रथम हम साधन देनों के उत्पादन प्रभावों पर विचार-विमर्श करेंगे।

14.2.1. साधन देनों के उत्पादन प्रभाव

हम कल्पना करते हैं कि सुधरी हुई स्वास्थ्य सेवाओं के परिणामस्वरूप समय गुजरने के साथ-साथ एक देश की जनसंख्या में वृद्धि श्रमशक्ति में वृद्धि को जन्म देती है। बचत व पूंजी संचय की प्रक्रिया पूंजी की पूर्ति को बढ़ाती हैं। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप संस्थागत परिवर्तन होते हैं, बचत की ऊँची सीमान्त प्रवृति के समूहों पर लोगों में मितव्यियिता की आदतों के पक्ष में आय वितरण में परिवर्तन होते हैं।

अन्वेषणों और आविष्कारों के द्वारा भी प्राकृतिक साधनों को बढ़ाया जा सकता है या पूर्णतया उपयोग करने पर कम किया जा सकता है।

समय समय के साथ-साथ न केवल साधन पूर्ति बदलती (वृद्धि या कमी) है, किन्तु यह भी सम्भव है कि एक राष्ट्र की सापेक्ष देनें भी बदल सकती हैं। उदाहरण के लिये उन्नीसवीं शताब्दी में अमेरिका जिसमें भूमि प्रचुर मात्रा में और श्रम व पूंजी सापेक्षरूप से स्वल्प थी, से एक ऐसे राष्ट्र में परिणित हुआ जिसमें पूंजी प्रचुर साधन था।

अब आपको एक देश में रूपान्तरण फलन में परिवर्तनों के रूप में साधन देनों में परिवर्तनों से अवगत कराया जाता है। हम एक कल्पित देश A की स्थिति पर विचार करते हैं। जहां तक सम्भव हो विश्लेषण को सरल रखने के लिये, हम यह भी कल्पना करते हैं कि व्यापार के लिये एक आधार का अस्तित्व है, जैसे कुल साधन देनों में वृद्धि चित्र 14.1 में दो भागों में दर्शायी गई है : भाग (a) और भाग (b) में। भाग 14.1 (a) में ऊपर और दाहिनी ओर (श्रम वृद्धि) विस्तार द्वारा और भाग 14.1 (b) में उत्पादन सम्भावना वक्र के A B से

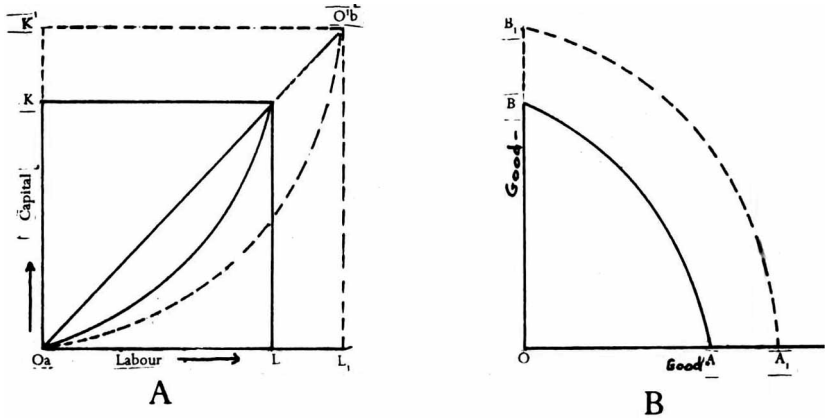

रेखाचित्र 14.1

A'B' तक बाहरी और ऊपर की ओर विवर्तन द्वारा। प्रदर्शित की गई स्थिति में, पूंजी (K) और श्रम (L) दोनों की पूर्ति समान अनुपात में बढ़ती है क्योंकि वे विकर्ण OaO'b के विस्तार के साथ-साथ बढ़ते हैं। अत: साधन अनुपात

बदलता नहीं है, और बढ़ा हुआ रूपान्तरण वक्र पहले जैसे ही आकृति बनाये रखता है।

रूपान्तरण पर फलन प्रभाव - अब आपको स्थिर सापेक्ष कीमतों पर रूपान्तरण फलनों पर साधन दोनों की वृद्धि के प्रभाव से परिचित कराया जाता है। यह चित्र 14.2 में प्रदर्शित किया गया है, जहां बिन्दु Q वृद्धि के बिना उत्पादन का प्रारम्भिक उत्पादन बिन्दु है। वृद्धि आरम्भ होने के साथ-2 उत्पादन सम्भावना वक्र ऊपर तथा बाहर की ओर विवर्तित होता है (AB से A'B' तक)। स्पर्शिता का बिन्दु कुछ अंश तक Yi रेखा के सहारे है। चित्र 14.2 से हम प्राप्त करते हैं;

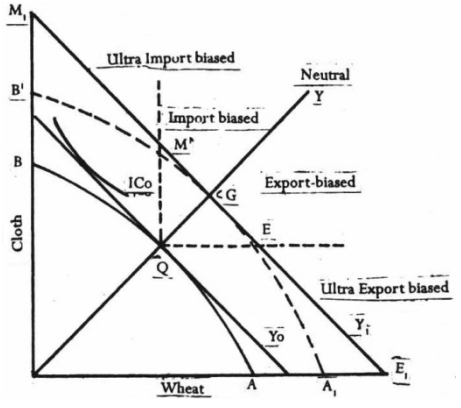

(वृद्धि और उत्पादन का स्वरूप)

चित्र 14.2

(अ) यदि उत्पादन का नया बिन्दु G पर है, तो वृद्धि स्पष्ट रूप से उत्पादन की ओर तटस्थ है, क्योंकि उत्पादित गेहूँ और वस्त्र का अनुपात अप्रभावित है;

(ब) (i) यदि उत्पादन G और E के बीच किसी भी स्थान पर किसी भी स्थान पर किसी बिन्दु की ओर बढ़ता है तो उत्पादन सम्भावना की वृद्धि निर्यात अभिनत कहलाती है, क्योंकि सापेक्ष रूप से निर्यात वस्तु 'गेहूँ' की अधिकता निर्यात के लिये उपलब्ध होती हैं

(ii) विकास के लिये भी होना सम्भव है जिसे 'अति-निर्यात-अभिनत' कहा जाता है, अब निरपेक्ष रूप से वस्तु 'गेहूँ' की अधिकता और निरपेक्ष रूप से वस्तु 'वस्त्र' की कमी E और Ei के बीच की सीमा में उत्पन्न किये जाते हैं।

(स) ठीक उसी प्रकार, यदि उत्पादन बिन्दु G और M के बीच की सीमा पर पड़ता है तो यह आयात अभिनत तथा M और M_1 के मध्य किसी भी बिन्दु पर पड़ता तो यह 'अति-आयात-अभिनत' होती है। संक्षेप में, कुछ समय के लिये, यह सिर्फ ध्यान देना पर्याप्त है कि उत्पादन का बदलता हुआ (स्वरूप सामान्य रूप से विकास के साथ जुड़ा हुआ होता है)।

हमने दोनों देशों में एक समय में होने वाले विकास के प्रभावों का अध्ययन किया है। अब स्पष्टरूप से केवल एक देश का वर्णन करना ही पर्याप्त होगा और इस भाग में हम अध्ययन करेंगे कि दोनों देशों के व्यापारिक संबंधों को क्या होता है यदि दोनों देशों मे से किसी एक देश में श्रम शक्ति या पूंजी की मात्रा में वृद्धि होती है। यह रिबजेन्स्की द्वारा प्रतिपादित रिबजेन्स्की नामक प्रमेय से, रेखा-गणित के रूप में व्यक्त की जायेगी। प्रमेय व्यक्त करता है कि

"उत्पादन के साधनों में से किसी एक साधन को बढ़ाया जाता है, दूसरे को स्थिर रखा जाता है, तो संचयी साधन का गहनता से उपयोग करने वाली वस्तु का उत्पादन बढ़ेगा और दूसरे साधन के उत्पादन में निरपेक्ष मात्रा में कमी होगी, बशर्त कि उस वस्तु और साधन की कीमतों को स्थिर रखा जाता है।" इस प्रमेय का ज्ञान आपको व्यापार पर साधन देनों के परिवर्तनों के पड़ने वाले प्रभावों को ज्ञात करने के लिए समर्थ बनायेगी। यह प्रमेय दो प्रमुख मान्यताओं पर आधारित है:-

(अ) वस्तु-बाजार और साधन-बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है।

(ब) उत्पादन फलन प्रथम डिग्री के समरूपी उत्पादन फलन है।

हम यह कल्पना करते हुये, मान कर आरम्भ करते हैं कि दो देश व्यापार कर रहे हैं और चित्र 14.3 में दर्शाये अनुसार देश-A साम्यावस्था है। विकास के पूर्व देश की (प्रारम्भिक) साधन देने आयताकार सन्दूक OAO'B के द्वारा मापी जाती है। पूंजी लम्बवत् अक्ष की ओर और श्रम क्षितिज अक्ष की ओर नापी जाती हैं। देश की निर्यात वस्तु जैसे गेहूँ का उत्पादन नीचे की ओर से बायें कोने से मापा जाता है और उसकी आयात प्रतियोगी वस्तु जैसे वस्त्र को ऊपरी दाहिने कोने की ओर से नापी जाती है। यह माना है कि निर्यात वस्तु श्रम प्रधान है और आयात प्रतियोगी वस्तु पूंजी प्रधान हैं।

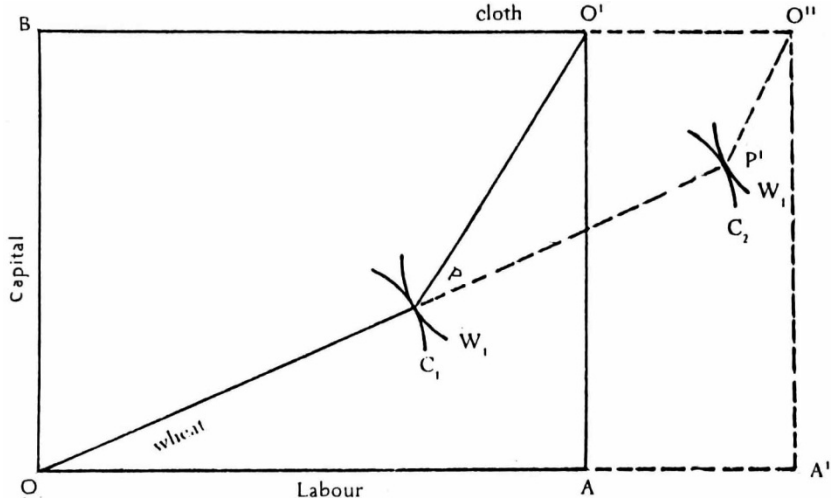

रेखाचित्र 14.3

विकास के पूर्व की स्थिति :

हम यह कल्पना करते हैं कि देश- A साधन (श्रम) वृद्धि के रूप में आर्थिक विस्तार के पूर्व, उसमें प्रसविदा वक्र OPO' के बिन्दु P पर उत्पादन करता है। तब निर्यात योग्य वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त साधन प्रधानता OP (श्रम प्रधान) होगी और आयात योग्य वस्तुओं में प्रयुक्त साधन प्रधानता O'P (पूंजी प्रधानता) होगी।

विकास के बाद की स्थिति :

अब देश-A स्थिर पूंजी मात्रा (OB=A'O'') के साथ उसकी श्रम शक्ति में (OA से OA' तक) वृद्धि प्राप्त करता है अब नया आयताकार सन्दूक चित्र

OA' O"B है। आप देखेंगे कि उत्पन्न की जाने वाली मात्राओं, व्यापार की शर्तों और अन्य पर उसके प्रभाव क्या होंगे।

प्रभाव:

(i) इन प्रश्नों पर विचार करने के लिये, हम यह कल्पना करते हुये आरम्भ करते हैं कि वस्तु कीमतें स्थिर रखी जाती हैं। वस्तु कीमतें स्थिर रखने के लिए हमें साधन कीमतें भी स्थिर रखनी होती हैं। साधन कीमतें स्थिर रखने के लिए, उत्पादन की प्रत्येक दिशा में सीमान्त उत्पादकताओं (MPs) को स्थिर टिकना होता है। क्योंकि उत्पादन फलन प्रथम डिग्री के समरूपी फलन होते हैं, इसलिये सीमान्त उत्पादकताओं का अनुपात भी केवल साधन प्रधानताओं का फलन होता है। जब तक साधन प्रधानताएँ स्थिर रहती हैं तब तक प्रत्येक सीमान्त उत्पादकता का अनुपात नहीं बदलता है। नये आयताकार सन्दूक के सिर्फ जिस बिन्दु पर उत्पादन के साधनों को उसी अनुपात में मिलाया जाता है जैसे P पर, वह है P', बिन्दु P व P' पर साधन प्रधानताएँ वही रहती हैं। साधन प्रधानताएँ OP' = OP के है और साधन प्रधानताएँ O'P = O"P के है। इसके अतिरिक्त दोनों बिन्दुओं P और P' पर सीमान्त उत्पादकताओं का अनुपात भी वहीं रहता है। अत: बिन्दु P' इष्टतम की शर्त पूरी करता है और यह आयताकार संदूक OA' O"B में प्रसंविदा वक्र पर है।

(ii) दूरी O"P' दूरी O'P से कम है। इसलिये P बिन्दु की अपेक्षा P' बिन्दु पर आयात-प्रतियोगी वस्तु (वस्त्र) का कम उत्पादन किया जाता है। समानता की दृष्टि से, बिन्दु P' पर की अपेक्षा निर्यात योग्य वस्तु (गेहूँ) का अधिकता से उत्पादन किया जाता है। यह प्रमेय को सिद्ध करता है कि यदि साधनों में से किसी एक साधन को बढ़ाया जाता है जबकि अन्य को स्थिर रखा जाता है तो स्थिर वस्तु कीमतों पर उस वर्द्धमान

साधन में वस्तु प्रधान का उत्पादन निरपेक्ष राशि में बढ़ेगा, जबकि अन्य वस्तु का उत्पादन निरपेक्षरूप से कम होगा।

आर्थिक जटिलताएँ :

स्थिर वस्तु कीमतों के विषय में मान्यता का आशय स्थिर साधन कीमतों से है जिसका आशय दो उद्योगों में श्रम/पूंजी के स्थिर अनुपातों के यथाक्रम से है। किन्तु हम दो अनुपातों को कैसे स्थिर रख सकते हैं जबकि साधनों में से किसी एक साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है?

यह उत्पादन की दोनों दिशाओं के बीच (गेहूँ और वस्त्र) साधनों के पुन: आवंटन करने के द्वारा सम्भव होता है। जब श्रम की कुल मात्रा में वृद्धि की जाती है, तब सभी नये श्रम को श्रम-प्रधान उद्योग की ओर जाना होगा। पुराने साधन अंश को स्थिर रखने के लिये हमें पूंजी प्रधान उद्योग से कुछ पूंजी की मात्रा को मुक्त करना होगा और उसे नये श्रम के साथ मिलाने देना होगा। जहां तक श्रम शक्ति वृद्धि जारी रखती है, तब तक हमें उत्पादन के साधनों को पूंजी-प्रधान से श्रम-प्रधान उद्योग की दिशा की ओर गतिशील करना होगा। इसका आशय यह है कि श्रम-प्रधान उद्योग में उत्पादन का विस्तार करना होगा जबकि पूंजी-प्रधान उद्योग में उत्पादन में कमी करनी होगी। यदि यह प्रक्रिया बिना किसी समय-सीमा के जारी रहती है तो देश पूर्ण-रूप से विशिष्ट होगा।

सारांश :

विकास रुचियों में परिवर्तनों, औद्योगिकी में परिवर्तनों और साधनों की पूर्ति में परिवर्तनों को सूचित करता है । न तो संस्थापकों का एक-साधन निदर्श और नहीं हैक्शर-ओहलिन का दो-साधन निदर्श विशेषरूप से एक विकासशील अर्थव्यवस्था में दृष्टिगोचर इन परिवर्तनों पर पर्याप्त ध्यान देता है। जिन पर परिवर्तनों को आपने ध्यान से देखा है, वे

अन्य बातों के साथ-साथ, एक विकासशील अर्थव्यवस्था की तुलनात्मक लाभ की स्थिति को भी प्रभावित करते हैं। उसी समय विकासशील देश की व्यापार शर्तों पर उनका महत्वपूर्ण प्रभाव होता है।

बोध प्रश्न 1.

बोध प्रश्न 1. किसी देश के उत्पादन सम्भावना वक्र का आकार किस पर निर्भर करता है?

प्रश्न 2. एक देश में समय गुजरने के साथ-साथ क्या परिवर्तन होते हैं, जो उसकी वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन करने की क्षमता को प्रभावित करते है?

14.2.2 तकनीकी प्रगति के उत्पादन प्रभाव

अभी-अभी आपने व्यापार पर साधन वृद्धि के प्रभावों का अध्ययन किया है। आधुनिक आर्थिक जीवन में अन्य अधिक महत्वपूर्ण तत्व तकनीकी प्रगति है। प्रौद्योगिकी को नवाचारों के द्वारा परिवर्तित किया जाता है। नवाचार, नये उत्पादन फलनों की प्रस्तावनों को उसके राष्ट्रीय उत्पत्ति पर प्रभावों के रूप में विचार करना होगा।

संस्थापक न नवसंस्थापक अर्थशास्त्रियों ने तकनीकी प्रगति के अध्ययन में कोई भारी दिलचस्पी नहीं दिखाई थी, क्योंकि वे एक विशेष किस्म की साधन वृद्धि अर्थात् जनसंख्या में वृद्धि से पहले से ही इतने लीन थे कि वे आर्थिक विकास के लिये तकनीकी के महत्व को समझने में पूर्णतया असफल हो गये थे। यह प्रो. हिक्स था जिसने 1953 में इसे महत्वपूर्ण समझा था। इस खण्ड में आपको व्यापार पर तकनीकी प्रगति के प्रभावों से परिचित कराया जायेगा।

प्रौद्योगिकी में परिवर्तन :

इस प्रावैगिक विश्व में प्रौद्योगिकी निरन्तर रूप से परिवर्तित हो रही है। देश के लिये किसी विशेष उद्योग में या पर्याप्त संख्या में उद्योगों में भी नयी तकनीक के विकास को आरम्भ करने में अग्रसर होना स्वाभाविक

है। लगातार रचनात्मक शक्तियों व सुधारों को अपनाने से नवाचारित उद्योग पर्याप्त समय तक, अपनी पहल को बनाये रख सकता है, या पहल तुरंत अन्य देश में स्थानान्तरित हो सकती है, जहां कर्मठ प्रतियोगी प्रारम्भिक नवाचार को अपनाते हैं और सुधार करते हैं।

प्रौद्योगिकी में परिवर्तन-व्यापार करने वाले देशों के मौलिक तुलनात्मक लागत संरचना को परिवर्तित कर सकते हैं। प्रौद्योगिक रूप से विकसित देश और एक अल्प विकसित देश के बीच व्यापार साधन अनुपातों की अपेक्षा प्रौद्योगिकीय अन्तर भली प्रकार आधारित हो सकते हैं। किन्तु यह व्यापार समाप्त हो सकता है या उसकी दिशा भी विपरीत हो सकती है यदि समय गुजरने के साथ-साथ पिछड़ा देश प्रौद्योगिकी से साधन सम्पन्न हो जाता है।

तटस्थत तकनीकी प्रगति :

व्यापार पर तकनीकी प्रगति के प्रभावों का अध्ययन करने के लिये, हम पुन: उत्पादन के दो साधनों का उपयोग करने वाली दो वस्तुओं का उत्पादन व उपभोग वाले दो देशों के प्रमाणिक निदर्श का उपयोग करेंगे। हम कल्पना करते हैं कि हमारे पास एक ऐसा देश है जिसे दो क्षेत्र - विनिर्माण व कृषि हैं। विनिर्माण पूंजी प्रधान क्षेत्र है और कृषि श्रम-प्रधान क्षेत्र है। दोनों क्षेत्रों के समोत्पत्ति वक्र चित्र 14.4 में प्रदर्शित किये गये हैं। हम कल्पना करते हैं कि केवल एक ही बार फसल लेते हैं और विनिर्माण क्षेत्र को नवाचारित उद्योग होना माना जाता है। हम एक साम्य स्थिति से आरम्भ करते हैं जिसमें सापेक्ष साधन कीमतें साधन कीमतें रेखा PoPo द्वारा दी गई है। विनिर्माण क्षेत्र में प्रयुक्त पूंजी-श्रम अनुपात OR है और कृषि क्षेत्र में यह OQ हैं। तटस्थत नवाचार के आरम्भ होने के साथ, उत्पादन के दोनों दिशाओं में पूंजी/श्रम OR_1 अनुपात और OQ_1 होता है।

रेखाचित्र 14.4

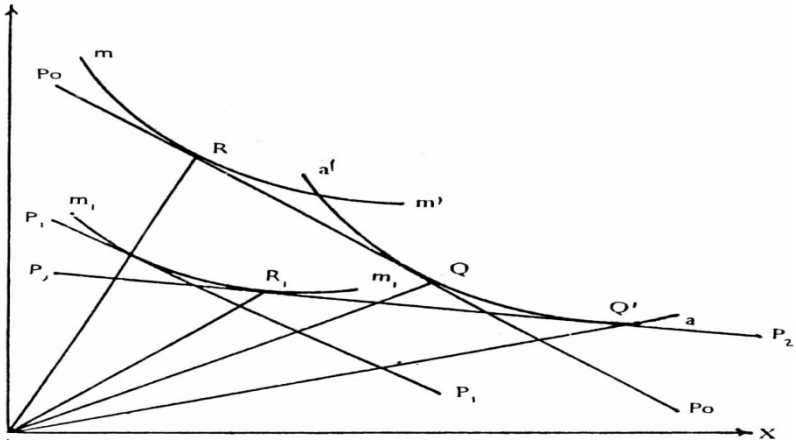

तटस्थत तकनीकी प्रगति के विनिर्माण क्षेत्र में उत्पत्ति पर प्रभाव :

वस्तु कीमतों को स्थिर रखने के लिए, साधन कीमतों को P_2P_2 में परिवर्तित करना होगा। यह प्रदर्शित करता है कि विनिर्माण क्षेत्र में तटस्थत नवाचार के कारण पूंजी की सापेक्ष कीमत बढ़ेगी। इस घटना की आर्थिक व्याख्या यह है कि नवाचार के कारण विनियोग क्षेत्र में उत्पादन के दोनों साधनों की सीमान्त भौतिक उत्पादकता बढ़ी है। इसलिये स्थिर-साधन कीमत पर उत्पादक इस क्षेत्र में उत्पादन के अधिक साधनों के लिए सौदेबाजी करेंगे क्योंकि यह उद्योग पूंजी प्रधान है। वे अधिक पूंजी को आकर्षित करने के इच्छुक होते हैं और इससे उसकी सापेक्ष कीमत बढ़ने लगेगी। दोनों क्षेत्रों में उत्पादन की विधियां श्रम-प्रधान होगी जैसा कि OR_1 और OQ_1 के द्वारा दर्शाया गया है। जब उत्पादन की दोनों दिशाओं में उत्पादन की विधियों श्रम-प्रधान अधिक होती हैं तो इसका आशय नया बिन्दु S' प्रसंविदा वक्र पर S के बायीं ओर कहीं भी होगा। सारांश में, विनिर्माण क्षेत्र में तटस्थत तकनीकी प्रगति का वास्तविक परिणाम, स्थिर वस्तु कीमतें, निरपेक्ष रूप में विनिर्माण वस्तुओं के बड़े पैमाने में उत्पादन, और निरपेक्षरूप में कृषिगत वस्तुओं का उत्पादन कम होगा।

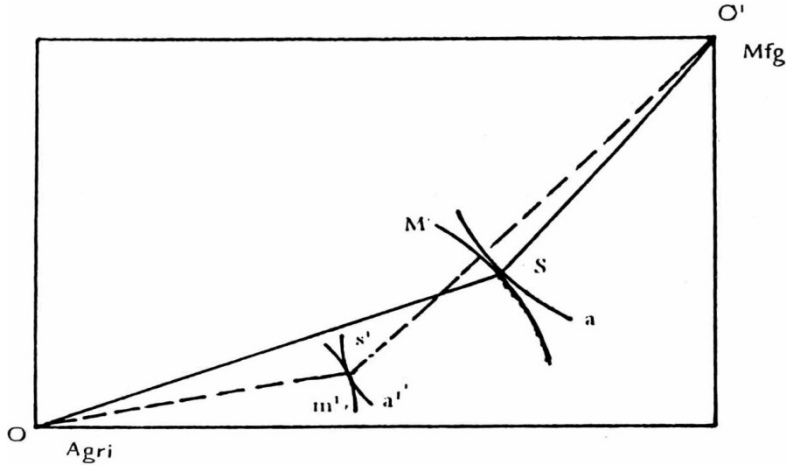

चित्र 14.5

तटस्थत प्रौद्योगिकी की आर्थिक जटिलताएँ

(i) तकनीकी प्रगति राष्ट्रीय आय में वृद्धि को जन्म देगी। घटिया वस्तुओं के अस्तित्व को रोकते हुये, दोनों वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी।

(ii) एक देश के निर्यात क्षेत्र में तटस्थत तकनीकी प्रगति सदैव देश की व्यापार शर्तों में कमी को जन्म देगी जबकि तटस्थत तकनीकी प्रगति एक देश के आयात प्रतियोगी क्षेत्र में सदैव देश को सुधारात्मक (श्रेष्ठ) व्यापार शर्तें देती है।

(iii) तटस्थत तकनीकी प्रगति के अति-अभिनत उत्पादन प्रभाव होते हैं। इसका आशय यह है कि यदि पूंजी-प्रधान उद्योग, जोकि देश का निर्यात उद्योग है, में तटस्थत नवाचार घटित होता है तो उत्पादन प्रभाव अति-निर्यात-अभिनत (या अति-अनुकूल-व्यापार-अभिनत) होते हैं। उसी तर्क के अनुसार आयात प्रतियोगी पूंजी-प्रधान उद्योग में तटस्थत नवाचार के उत्पादन प्रभाव अति-आयात-अभिनव' (या अति-प्रतिकूल-व्यापार-अभिनत) होते हैं। आगे हम अभिनत तकनीकी प्रगति की स्थिति पर विचार करते हैं अर्थात श्रम बचत तकनीकी प्रगति और पूंजी बचत तकनीकी प्रगति । प्रत्येक ऐसी प्रगति के दो प्रभाव होते हैं।

(i) यह उद्योग में उत्पादन लागत में कमी करती और जिस साधन की मात्रा में कमी करती है उसे मुक्त करती है।

(ii) लागत में कमी करना और साधन में बचत करना - दोनों साथ मिलकर अभिनत तकनीकी प्रगति के उत्पादन प्रभाव निर्धारित करते हैं।

मान लीजिये कि श्रम प्रधान निर्यात उद्योग (गेहूँ उत्पादन) में श्रम-बचत नवाचार घटित होता है। यह गेहूँ में उत्पादन लागत को कम करेगा और श्रम की कुछ मात्रा को मुक्त करेगा। तटस्थत तकनीक प्रगति की स्थिति की तरह, लागत में कमी के लिये वस्त्र से नवाचारित उद्योग गेहूँ की ओर साधनों का विवर्तन आवश्यक होता है, जिससे साधन कीमत अनुपात प्रारम्भिक उत्पत्ति कीमत अनुपात को पूर्वावस्था में प्राप्त करते हुये परिवर्तित होता है। पुन: श्रम की पूर्ति की वृद्धि के समान, गेहूँ के नवाचार द्वारा जो श्रम युक्त किया जाता है, उसे निर्यात योग्य वस्तु (गेहूँ) के उत्पादन के विस्तार द्वारा अवश्य समायोजित किया जाना चाहिये, जो समान रूप से आयात योग्य वस्तु (वस्त्र) की लागत पर श्रम का प्रधानता से उपयोग करता है। उत्पादन प्रभाव वास्तव में, अति-निर्यात-अभिनत (या अति-अनुकूल-) अभिनव होते हैं।

तकनीकी प्रगति पर विशेष विवरण और व्यापार शर्तें :

तकनीकी प्रगति उत्पादन-फलन में विवर्तन को जन्म देती है, दिये हुये उत्पादन साधनों (इनपुटों) से अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा उत्पन्न की जायेगी। तकनीकी प्रगति सहित एक उत्पादन फलन के लिये विश्लेषणात्मक वर्णन के रूप में, हम लिख सकते है :

$$Q = f(L, K, t)$$

जहां Q उत्पादन की मात्रा के लिये L और K क्रमश: श्रम व पूंजी की मात्रा के लिये प्रयुक्त हैं और t तक प्रगति

को दर्शाता है।

उत्पादन फलन में विवर्तन को आंशिक अवकलन (Partial Derivative) $\frac{\partial f}{\partial t}$ द्वारा व्याख्या की जाती है, जहां $\frac{\partial f}{\partial t}$ शून्य से अधिक है। आंशिक अवकलज सदैव धनात्मक होता है, क्योंकि हम तकनीकी प्रगति के आशय को एक बढ़ी हुई उत्पादन क्षमता से लेते हैं।

हम t के संदर्भ में अन्य दो आंशिक अवकलनों $\frac{\partial^2 f}{\partial L}$ dt. और $\frac{\partial^2 f}{\partial k}$ .dt को ले सकते हैं। इनमें से प्रथम श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति पर तकनीकी प्रगति के प्रभाव का दर्शाता है और द्वितीय पूंजी की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति पर तकनीकी प्रगति के प्रभाव को दर्शाता है। ये आंशिक अवकलज व्यापार शर्तों पर और निदर्श में अन्य चरों पर, तकनीकी प्रगति के प्रभावों को निर्धारित करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

हम कल्पना करते हैं कि तकनीकी प्रगति सिर्फ निर्यात क्षेत्र में ही सम्पन्न होती है। हम जानते है कि इसका आशय है कि दिये हुये साधनों से अपेक्षाकृत अधिक निर्यात योग्य वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है या अन्य शब्दों में, यह $\frac{\partial f}{\partial t}$ धनात्मक होता है। यदि तकनीकी प्रगति का उत्पादन के दोनों साधनों की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति पर धनात्मक प्रभाव होता है, तो इसका आशय $\frac{\partial^2 f}{\partial L}$ .dt और $\frac{\partial^2 f}{\partial k}$ .dt दोनों धनात्मक होते हैं। यह सूचित करता है कि देश के लिये व्यापार शर्तों में ह्रास होगा।

इसे समझना आसान है कि ऐसा क्यों होना चाहिये।

प्रथम, सभी तीनों साधन (तकनीकी प्रगति, श्रम और पूंजी की सीमान्त भौतिक उत्पादकताएँ) एक ही दिशा में प्रवाहित होते हैं और स्थिर वस्तु कीमतों पर निर्यात योग्य वस्तु की पूर्ति का आधिक्य होगा। बाजार को मुक्त करने (वस्तु की बिक्री) के लिये, निर्यात वस्तुओं की कीमतों को गिराना होगा अर्थात व्यापार शर्तें देश के प्रतिकूल होंगी।

द्वितीय, आयात-प्रतियोगी क्षेत्र में तकनीकी प्रगति के प्रभाव पूर्णतया एक जैसे होंगे, बशर्ते की तकनीकी प्रगति के कारण दोनों भौतिक उत्पादकताएँ बढ़ती हैं अर्थात् सुधरी हुई व्यापार की शर्तों के वास्तविक आय पर सदैव धनात्मक प्रभाव होते हैं।

तृतीय, यदि निर्यात क्षेत्र में तकनीकी प्रगति होती है और यह प्रगति इस प्रकार की है जो उत्पादन के साधनों की सीमान्त भौतिक उत्पादकता को कम करती है या उसे अपरिवर्तित छोड़ती है, तो निश्चित रूप से राष्ट्रीय आय पर उसके धनात्मक प्रभाव होंगे।

चतुर्थ, तकनीकी प्रगति जो व्यापार शर्तों को सुधारती है, का वास्तविक आय की वृद्धि पर प्रबल धनात्मक प्रभाव होते हैं, नवाचार व्यापार शर्तों में ह्रास को जन्म देते हैं, इससे यह स्थिति काफी जटिल बन जाती है। यदि व्यापार शर्तों में हानियाँ अधिक होती हैं, तो वे अधिकांश आय वृद्धि में भावी लाभों को रद्ध कर सकती है।

पंचम, तकनीकी प्रगति साधन पुरस्कारों और आय वितरण को भी प्रभावित करती है। यदि तकनीकी प्रगति तटस्थत है तो साधन पुरस्कारों पर प्रभाव नवाचरित क्षेत्र में साधन-प्रधानताओं पर निर्भर करती है। यदि उद्योग श्रम प्रधान है, तो तटस्थत नवाचार मजदूरी में सापेक्ष वृद्धि उत्पन्न करेंगे। इसके विपरीत यदि क्षेत्र पूंजी प्रधान है, तो तटस्थत नवाचार पूंजी के प्रतिफल में वृद्धि को जन्म देंगे।

श्रम बचत तकनीकी प्रगति श्रम को लाभान्वित करती है, और पूंजी बचत तकनीकी प्रगति श्रम को लाभान्वित करती है, क्योंकि यह श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता में वृद्धि करती है। जिस विषय (विशेषता) पर बल देना है वह यह है कि, इसके विपरीत जो परम्परागत व्यापार सिद्धांत बतलाता है कि एक देश सदैव व्यापार के पहले उसके उत्पादक साधन की साधन पूर्ति के अनुसार विशिष्टीकरण नहीं करता है। यह उसकी तकनीकी योग्यता द्वारा दिये गये दिशा निर्देशों के अनुसार

विशिष्टीकरण कर सकता है; उसके प्रारम्भिक व्यापार का आकार इन तकनीकी विचार-विमर्शों के अनुसार मार्गदर्शन किया जायेगा। पर्याप्त समय गुजरने पर देश अन्यत्र विकसित की गई उन्नत तकनीकी को अपना सकता है, जिससे उसके उत्पादन फलन और उसके तुलनात्मक लाभ की स्थिति भी बदल सकती है। एक प्रावैगिक विश्व में ऐसी घटना अक्सर होती रहती है।

बोध प्रश्न 2.

प्रश्न 1. यदि भारत की श्रम और पूँजी की पूर्ति में समान अनुपात में वृद्धि होती है, तो भारत में प्रौद्योगिकी में परिवर्तन किस प्रकार का होगा और यह परिवर्तन किसके' अनुरूप होगा?

प्रश्न 2. एक निर्यात-अभिनत, आयात-अभिनत और अनभिनत या तटस्थत प्रौद्योगिकी प्रगति या नवाचार से आपका क्या आशय है?

14.3 आर्थिक विस्तार के उपभोग प्रभाव और व्यापार

हमने एक विकासशील देश में विभिन्न प्रकार के विकासात्मक परिवर्तनों से उत्पन्न विभिन्न सम्भाव्य उत्पादन प्रभावों का परीक्षण किया है, किन्तु ये उत्पादन प्रभाव अकेले ही देश की बढ़ती आयातों की मांग और निर्यातों की पूर्ति को निर्धारित नहीं करते हैं। विश्लेषणात्मक उद्देश्यों के लिये, इन विकासात्मक परिवर्तनों के विभिन्न सम्भाव्य उपभोग प्रभावों पर विचार करना आवश्यक होता है।

दो देशों के बीच तुलनात्मक लागत का संस्थापक सिद्धांत स्थिर रूचियों के पाये जाने की मान्यता पर आधारित है। हालांकि यह मान्यता एक प्रावैगिक विश्व में शायद ही अनुरूप और न्याय संगत होती है। अधिकांश व्यापार की एतिहासिक शुरूआतों मे, प्रारम्भिक आदान-प्रदान नयी आवश्यकताओं के सृजन और उनकी संतुष्टि से संबद्ध होता था। "व्यापार के साथ-साथ रूचियां परिवर्तित होती हैं, यद्यपि व्यापार वर्तमान आवश्यकताओं को अधिक पूर्णरूप से सन्तुष्ट करती है ।" कपास,

मलमल, शक्कर, तम्बाकू, मदिरा और आलू इत्यादि की उत्पत्ति की याद करने के पीछे, उसकी विशेषता का महत्व होता है। रेग्नर नर्क्से ने प्रदर्शनात्मक प्रभाव की ओर संकेत किया है जिसके अन्तर्गत अल्प-विकसित देश उन्नत (विकसित) यूरोपीय देशों के श्रेष्ठ जीवन स्तरों के विषय में भली-भांति जान चुके हैं। उपभोग प्रभाव इतना प्रबल होता है कि इसने पूरे विश्व-भर में लोगों के उपभोग स्वरूप को विशेषरूप से बदल दिया है। परस्पर भोजन करना सर्वसाधारण हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी में "इंग्लैंड के निवासी महाद्वीपीय नाश्ते से भिन्न होते थे, और स्वयं महाद्वीप पर भी इटली के निवासियों, फ्रांसीसियों और स्केनीविया के निवासियों का भोजन पकाना बिलकुल भिन्न होता था। आज इंडोचीन के निवासी शिकायत करते हैं कि एशियाई देशी नाश्ता यूरोपीय अंडे, सुअर का माँस, और कॉफी का स्थान ले रहा है; जापान में चावल को गेहूँ के लिये अधिकता से त्यागा जा रहा है; कोका-कोला विश्व में चारों ओर व्यापार चिन्ह हो गया है। प्रदर्शनात्मक प्रभाव अल्प-विकसित देशों के लिये अधिक महत्वपूर्ण हैं, जो स्वीस घड़ियों, ब्रिटिश साइकिलों और अमेरिका की पेनों का अधिकता से आयात करना चाहते हैं।" (सी.पी. किन्डल वर्गर)

एक प्रावैगिक विश्व में रुचियाँ स्थिर नहीं रहती हैं। वास्तव में रूचियों में परिवर्तन अनेक जटिल समस्याओं को जन्म देता है। संस्थापक सिद्धान्त में व्यापार से लाभ सही कथन हो सकता है। जब तक रूचियां स्थिर रहती हैं किन्तु व्यापार शर्तों में सुधार के साथ-साथ आयातों के लिये मांग में वृद्धि होती है, इससे स्थिति और भी जटिल हो जाती है। उत्पादन प्रभावों के समान, उपभोग प्रभावों के निम्न रूप हो सकते हैं।

(i) तटस्थत उपभोग प्रभाव

(ii) निर्यात-अभिनत या जिसे जोहन्सन कहते हैं "अनुकूल-व्यापार-अभिनत"

(iii) आयात-अभिनत या जिसे जोहन्सन कहते हैं "प्रतिकूल-व्यापार-अभिनत"

(iv)अति-निर्यात-अभिनत या अति-अनुकूल-व्यापार-अभिनत और

(v) अति-आयात-अभिनत या अति-प्रतिकूल-व्यापार-अभिनत।

इस उद्देश्य के लिये, हम एक देश, जैसे भारत में आर्थिक विस्तार के परिणामस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि पर विचार करते हैं। अब प्रश्न यह है कि : माँग कैसे प्रभावित होगी जैसे-जैसे वास्तविक आय बढ़ती जाती है? आरम्भ में, हम कल्पना करते हैं कि रुचियाँ स्थिर हैं और आय वितरण नहीं होता है, इसलिये माँग का स्वरूप (अर्थात् सामाजिक तटस्थता वक्र) अपरिवर्तित रहता है।

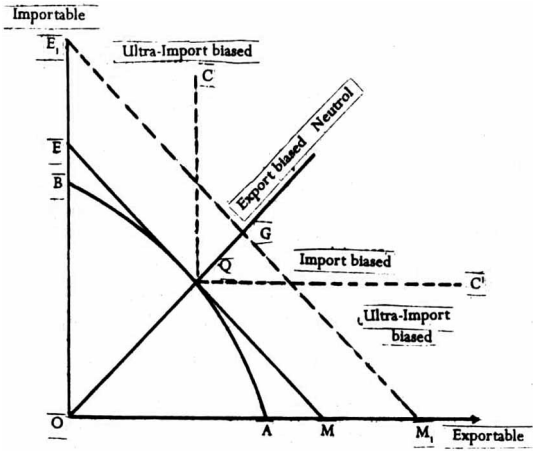

रेखाचित्र 14.6

चित्र 14.6 में बिन्दु Q जिस पर प्रारम्भिक व्यापार शर्त रेखा EM तटस्थता वक्र की स्पर्श रेखा है, जो आर्थिक विस्तार से पूर्व के उपभोग साम्य बिन्दु को प्रदर्शित करता है। EM के समानान्तर और दाहिनी ओर खींची गई E'M' रेखा उसी व्यापार शर्त को दर्शाती है, किन्तु यह आर्थिक विस्तार से बढ़ी हुई आय के कारण है। यदि आयात के लिये मांग की आय लोच इकाई (Yअक्ष) है और निर्यात के लिए यह इकाई (Xअक्ष) है उपभोग का नया बिन्दु G मूल बिन्दु से गुजरने वाली सीधा रेखा "आय-उपभोग

वक्र" OQG पर होगा। दी गई व्यापार शर्त पर क्रय किया Y:X का अक्ष पर G भी वहीं होता है। इस स्थिति में, आय का विस्तार आयात योग्य Y निर्यात योग्य X की मांग को उसी अनुपात में बढ़ाता है, तो उपभोग 'तटस्थत' होता है।

आय-उपभोग-वक्र क्षेत्र CQG में QG के बायीं ओर विवर्तित होता हुआ होता है इसका आशय यह होता है कि इस स्थिति में आय का विस्तार आयात योग्य की मांग को जो यह निर्यात योग्य X की मांग को बढ़ाता है, से अधिक अनुपात में बढ़ाता है। तब उपभोग प्रभाव निर्यात-अभिनत कहलाता है। क्योंकि कुल उपयोग मे आयात योग्य वस्तुओं के अपेक्षाकृत बड़े आनुपातिक भाग का भुगतान करने के लिये यह सापेक्षरूप से निर्यात योग्य वस्तुओं की पूर्ति में अधिक वृद्धि की मांग करता है। ठीक उसी प्रकार, आय उपभोग वक्र के C'QG क्षेत्र में QG के दाहिनी तरफ के विवर्तन का आशय उपभोग प्रभाव के आयात-अभिनत होने से होता है। आर्थिक विस्तार के और दो सम्भाव्य उपयोग प्रभाव होते हैं। आय उपभोग वक्र C'Q के दाहिनी ओर या नीचे हो सकता है। यह अति-आयात-अभिनत उपभोग प्रभाव होता है। यदि आय-उपभोग-वक्र CQ के बायीं तरफ होता है, तो यह अति-निर्यात अभिनत होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण स्थिर रूचियों की कल्पना करता है और आय वितरण पर आर्थिक विस्तार के प्रभावों की ओर ध्यान नही देता है। किन्तु आर्थिक विस्तार के साथ-साथ रुचियाँ और आय वितरण भी परिवर्तित होते रहते हैं। साधनों के बीच आय का पुन: वितरण भी दोनों वस्तुओं की साप्रेक्ष मांग में अच्छा परिवर्तन उत्पन्न कर सकता हैं। जिस बात पर हम बल देते हैं वह यह है कि आर्थिक विस्तार के उपभोग प्रभाव सिर्फ आय में परिवर्तनों द्वारा ही निर्धारित नहीं होते हैं किन्तु रुचियों और आय वितरण में परिवर्तनों द्वारा भी निर्धारित होते हैं।

इन विचार-विमर्शों के अन्तर्गत, प्रो. कॉरडन की "मांग विस्तार रेखा" का उपयोग करना लाभदायक होता है, जो स्थिर कीमतों पर, वस्तुओं की सापेक्ष मांग पर आय और पसन्दगियों में परिवर्तनों के संयुक्त परिणाम को दर्शाती है। मांग विस्तार रेखा आय उपभोग वक्र की तुलना में श्रेष्ठ है क्योंकि आय उपभोग वक्र विशुद्ध रूप से आय की मांग लोच पर निर्भर करती है जबकि मांग विस्तार रेखा वस्तुओं की सापेक्ष मांग पर आय और पसन्दगियों में परिवर्तनों के संयुक्त परिणाम को दर्शाती है। मांग विस्तार रेखा चित्र 14.7 में दिये गये एक आय उपभोग वक्र (ICC) के दाहिनी तरफ होगी, यदि रूचियों X वस्तु के पक्ष में परिवर्तित होती है या आय उस साधन के पक्ष में पुन: वितरित होती है जिसकी X निर्यात योग्य वस्तु की उपभोग की ओसत और सीमान्त प्रवृति दूसरे साधन से ऊंची हैं। इसके विपरीत, यह एक दिये गये आय उपभोग वक्र के बायीं ओर होगी, यदि रूचियों और आय वितरण में परिवर्तन निर्यात योग्य वस्तु X की तुलना में आयात योग्य Y वस्तु के उपभोग का पक्ष करती है।

हम स्पष्ट करते हैं कि भारत में गेहूँ से वस्त्र की ओर रुचियों में परिवर्तन (विवर्तन) भारत के तटस्थता मान-चित्र को कैसे प्रभावित करता है।

भारत में गेहूँ से वस्त्र की ओर रुचियों में विवर्तन भारत के सामाजिक तटस्था वक्रों के नीचे और दाहिनी ओर विवर्तित करेगा और वे अधिक ढालू होंगे वे नीचे और दाहिनी ओर विवर्तित होते हैं क्योंकि वास्तविक आय और अपरिवर्तित वस्त्र की कीमत गेहूँ की कीमत (Pc / Pw) के प्रत्येक स्तर पर, भारत पहले की अपेक्षा गेहूँ की कम मात्रा और वस्त्र की अधिक मात्रा की मांग करता है । वे अधिक ढालू होते हैं (अर्थात् गेहूँ के लिये वस्त्र की प्रतिस्थापन सीमान्त दर, MRScw) भारत में बढ़ती है। यदि इसके विपरीत भारत की पसन्दगी वस्त्र से गेहूं की ओर विवर्तित होती है, तो भारत के तटस्थता वक्र ऊपर और बायीं ओर विवर्तित होंगे और अधिक समतल होंगे। किसी भी परिस्थिति में, जब रुचियाँ परिवर्तित

होती हैं, तो एक राष्ट्र के तटस्थता वक्र अपना आकार बदलते हैं और राष्ट्र के प्रारम्भिक तटस्थता वक्रों को पार करते हैं (अर्थात् उनका आशय रूचियों में परिवर्तन से पहले के वक्रों से)।

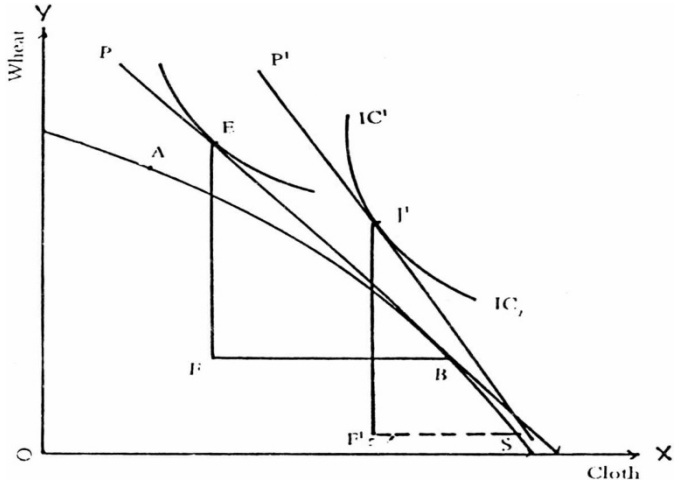

चित्र 14.7

भारत B बिन्दु पर उत्पादन करता है, FE गेहूँ के बदले FB वस्त्र देता है, और तटस्थता के E बिन्दु पर उपभोग करता है, तटस्थता वक्र IC' रूचियों में परिवर्तन से पहले का है। क्योंकि भारत की रूचियाँ गेहूं सें वस्त्र की ओर विवर्तित होती हैं, इसलिये भारत अपरिवर्तित आय और Pc / Pw पर पहले की अपेक्षा गेहूं की कम मात्रा और वस्त्र की अधिक मात्रा की मांग करता है। यह, इस प्रकार प्रति समय अवधि में भारत द्वारा मांगे जाने वारने गेहूँ की मात्रा में थोड़ी कमी करते और वस्त्र की मात्रा में थोड़ी वृद्धि करते हुये Pc / Pw (अर्थात् भारत की व्यापार शर्त) में वृद्धि उत्पन्न करेगा। P' भारत की नयी और ऊंची व्यापार शर्त है उस पर भारत F'J' गेहूँ के लिए F'S कपड़ा देता है। इस प्रकार भारत को S बिन्दु पर उत्पादन और J' बिन्दु उपभोग करना चाहिये। J' बिन्दु पर, नया सामाजिक तटस्थता वक्र IC_2 है जो IC' से नीचे है दाहिनी ओर अधिक ढालू है और जो P'S की स्पर्श रेखा होनी चाहिए। यह दर्शाता है कि तुलनात्मक लागत की स्थिति रुचियों में परिवर्तन के साथ-साथ बदलती है। ध्यान रखिये, क्योंकि यहां भारत की

प्रौद्योगिकी और साधन दोनों अपरिवर्तित मानी गई है इसलिये उत्पादन सम्भावना-वक्र परिवर्तित नहीं हुआ है।

14.4 कुल मिलाकर आर्थिक विस्तार के व्यापार पर प्रभाव

आयात योग्य वस्तुओं की मांग उसके उत्पादन और उपभोग प्रभावों का संयुक्त परिणाम होती है, जो इस स्थिति पर निर्भर करती है कि क्या वहां पूर्ण विशिष्टीकरण है या अपूर्ण विशिष्टीकरण। हमने पूर्ण विशिष्टीकरण सहित, आर्थिक विस्फोट को देखा है। पूर्ण विशिष्टीकरण में विकासशील देश के आयातों की मांग पर कुल मिलाकर पांच प्रकार के विभिन्न प्रभाव हो सकते है। वे हैं : तटस्थत, निर्यात-अभिनत, अति-निर्यात-अभिनत, आयात-अभिनत, और अति-आयात-अभिनत। किन्तु, अपूर्ण विशिष्टीकरण में देश के आयातों की मांग सम्बन्धित वस्तु की कुल मांग और उसकी घरेलू पूर्ति का अन्तर होती है। अत: एक ऐसे देश की आयातों की कुल मांग पर विकास के कुल प्रभाव को आयातों की घरेलू पूर्ति में परिवर्तन को भारांकित द्वारा प्राप्त किया जाता है, जैसा कि उत्पादन प्रभाव में दिया गया है। आयातों की मांग में परिवर्तन के प्रतिकूल, जैसा कि उपभोग प्रभाव द्वारा दिया गया है। यह आर्थिक विस्तार का कुल प्रभाव है जो एक विकासशील देश के अर्पण वक्र में विवर्तन की दिशा और विस्तार को निर्धारित करता है।

बोध प्रश्न 3.

प्रश्न 1. समझाइये कि रूचियों में परिवर्तन (विवर्तन) एक विकासशील राष्ट्र के तटस्थता मानचित्र को कैसे प्रभावित करता है। एक उपयुक्त चित्र खींचिये और रूचियों में परिवर्तन के पहले और बाद एक राष्ट्र के लिये उत्पादन व उपयोग के बिन्दुओं को दर्शाइये।

प्रश्न 2. आर्थिक विस्तार के परिणामस्वरूप निर्यात-अभिनत उपभोग प्रभाव की व्याख्या कीजिये। अन्य सम्भाव्य उपभोग प्रभाव क्या होते हैं?

14.5 प्रावैगिक साधन, व्यापार और विकास

पश्चिमी यूरोप में कुछ मुट्ठीभर राष्ट्रों और एशिया और लेटिन अमेरिका में कुछ राष्ट्रों को छोड़कर विश्व के अधिकांश राष्ट्रों को अल्प विकसित देशों (LDCs) के रूप में वर्गीकृत किया जाता है या अन्य शब्दों में उन्हें दक्षिण या तीसरी दुनियां के देश कह सकते हैं, जैसा कि वे अक्सर पुकारे जाते हैं। वर्तमान में अल्पविकसित देशों का विश्व व्यापार में एक चौथाई से भी कम भाग माना जाता है। विशेषकर निर्मित वस्तुओं के बदले में उनका अधिकांश व्यापार औद्योगिक विश्व को कच्ची सामग्री, ईंधन, खनिजों और कुछ खाद्य पदार्थो के निर्यात से सम्बद्ध हैं। अल्प विकसित देश शिकायत करते हैं कि व्यापार शर्तों की संरचना उनके विरुद्ध की जाती है और न वे व्यापार के लाभ का अनुभव करते हैं।

प्रो. रेग्नर नर्क्से तर्क के रूप में छ: कारण देते हैं :-

1. उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में औद्योगिक उत्पादन के विशेष दबाव के कारण 'हल्के' उद्योगों से 'भारी' उद्योगों की ओर विवर्तन हो रहा है अर्थात् उन उद्योगों से जहां अन्तिम उत्पत्ति की कच्चे माल की सामग्री महंगी है, से वहां जहां पर यह सस्ती है।
2. औद्यौगिक देशों के कुल उत्पादन में सेवाओं का अंश बढ़ रहा है, जिसके कारण उनके कच्चे माल की मांग उनकी राष्ट्रीय उत्पत्ति में वृद्धि से पीछे रह जाती है।
3. अनेक कृषिगत वस्तुओं के लिये उपभोक्ता मांग की आय लोच, कम होने लगती है।
4. कृषिगत संरक्षणवाद ने प्राथमिक पदार्थों के आयातों को बुरी तरह से प्रभावित किया है।
5. प्राकृतिक पदार्थों के औद्योगिक उपयोगों में पर्याप्त मितव्यितताएँ प्राप्त की जा चुकी हैं।

6. प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों का अधिकाधिक झुकाव प्राकृतिक कच्चे माल को कृत्रिम व अन्य मनुष्यकृत स्थानापकों से प्रतिस्थापित करना है। अल्पविकसित देश (LDC) साधारणतया अनुभव करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त विकास के मार्गदर्शक के रूप में असम्बद्ध है। अल्पविकसित देश दृढ़ता पूर्वक कहते हैं कि परम्परागत व्यापार सिद्धान्त की प्रकृति-पूर्णरूप से स्थैतिक है। उदाहरण के लिये, अल्पविकसित देश (LDC) और उन्नत देशों के बीच साधन देनों और औद्योगिकी के वर्तमान वितरण की स्थिति में, परम्परागत सिद्धान्त भविष्यवाणी करता है कि LDC को कच्चे माल, ईंधन, खनिजों और खाद्य पदार्थों के उत्पादन व निर्मित माल के बदले में उनके विकसित देशों को निर्यात में विशिष्टीकरण जारी रखना चाहिये। अल्प विकसित देश अनुभव करते हैं कि यद्यपि यह व्यापार स्वरूप अल्पकाल में उनके कल्याण को अधिकतम कर सकता है, किन्तु दीर्घकाल में, यह उन्हें उद्योग के प्रावैगिक लाभों को प्राप्त करने और उनके कल्याण व विकास को अधिकतम करने का लगातार बहिष्कार करेगा। अल्प विकसित देशों का विश्वास था कि अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक पद्धति जो कम से कम 1974 तक क्रियाशील रही, प्राथमिक रूप से उनकी आवश्यकताओं को प्रतिम्बिबित करने व उनको संतुष्ट करने के लिये उन्नत (विश्व) राष्ट्रों द्वारा सृजित की गई थी। सुधारों मे से जिसकी विकासशील देश मांग कर रहे हैं वह नये अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सुरक्षित कोषों का उनमें वितरण करना है, जिससे वे उन्हें विकास पर खर्च कर सकें और विकासशील देश नयी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता पर भी बल दे रहे हैं।

बोध प्रश्न 4.

प्रश्न 1. व्याख्या कीजिये कि अल्पविकसित देश साधारणतया क्यों अनुभव करते हैं कि परम्परागत व्यापार सिद्धान्त विकास के मार्गदर्शिका के रूप में असम्बद्ध है?

14.6 सारांश

हमारा संस्थापक व नव संस्थापक द्वारा प्रतिपादित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त के दोनों पक्षों पूर्ति-पक्ष और मांग-पक्ष पर विचार-विमर्श हमारा ध्यान स्थैतिक स्थितियों की ओर केन्द्रित कर रहा है। तुलनात्मक लाभ का संस्थापक सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर देता है कि स्थिर रूचियों, स्थिर संसाधनों और स्थिर प्रौद्योगिकी के विश्व में कौन-कौन सी वस्तुएं किन-किन कीमतों पर निर्यात और आयात की जावेगी, और व्यापार से कौन लाभ प्राप्त करेगा स्थैतिक विश्व का अस्तित्व कभी भी नहीं रहा है। विशेष रूप से, व्यापार का सिद्धान्त उस समय असम्बद्ध और अर्थहीन हो जाता है जब प्रावैगिक साधन उत्पादन सम्भावना-वक्र और तटस्थता मानचित्र में कुछ परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समय गुजरने पर रूचियाँ परिवर्तित होती हैं, विशेषरूप से, जैसे प्रदर्शनात्मक प्रभाव दूसरे देशों में विकसित उपभोग की वस्तुओं या उत्पादन के साधनों से एक देश को प्रभावित करना है। प्रोद्योगिकी नवाचार उत्पादन फलनों में नयी तकनीकें आरम्भ करते हैं। आर्थिक विस्तार के परिणामस्वरूप प्रत्येक देश में साधन पूर्तियां भी परिवर्तित होती हैं। ये सभी शक्तियां स्थैतिक साम्य की अनवरत या बार-बार होने वाली बाधाएँ उत्पन्न करती हैं।

यह प्रो. हिक्स था जिसने 1953 में प्रथम बार इस कथन प्रस्ताव किया था कि एक दो-देशीय निदर्श जिसमें एक देश विकासशील और दूसरा स्थैतिक है। विकासशील देश में तकनीकी प्रगति व्यापार की शर्तों को उसके प्रतिकूल करेगी यदि प्रगति मुख्य रूप से निर्यात उद्योगों या 'निर्यात अभिनत' तक ही सीमित रहती है, और उसके अनुकूल होती है यदि प्रगति मुख्यरूप से आयात उद्योगों में या "आयात-अभिनत" होती है। हिक्स के विश्लेषण में अनेक कमियां थी और जिससे उसकी आलोचना की गई थी। डॉ. ई.जे. मिशन ने व्यापार शर्तों में परिवर्तन की दिशा के लिये

उपभोग पर आय-प्रभाव के महत्व पर जोर देते हुये उसमें सुधार किया। प्रो. जोहन्सन, डॉ कारडॉन और प्रो. भगवती ने इस विकासशील देश के व्यापार शर्तों पर विकास के कुल प्रभाव प्राप्त करने के लिये विश्लेषण में आगे विस्तार किया और विकास के उत्पादन प्रभाव व आय प्रभावों को संकलित करने के लिये ढूंढा हैं।

इस प्रभाव के कथनों को मालूम करना सर्वथा अनुपयोगी नहीं होता है कि तुलनात्मक लागत सिद्धान्त में कुछ दोष हैं क्योंकि यह विकासशील देशों के लिये उपयोगी नहीं है। तुलनात्मक लागत का यह सिद्धान्त यह जिम्मेवारी नहीं लेता है कि किसी दिये हुये समय में एक देश को उत्पादन की विशिष्ट दिशा में तुलनात्मक लाभ प्राप्त होने के कारण, उन्हें उन्हीं दिशाओं के अनुसार विकास और विस्तार करना चाहिये। हमने विकास और व्यापार सिद्धान्त से देखा है कि आर्थिक विकास के एक व्यापारिक देश की वास्तविक राष्ट्रीय आय पर प्रभाव बिल्कुल विपरीत हो सकते हैं।

14.7 शब्दावली

1. **आर्थिक विस्तार** से आशय समय अवधि गुजरने के साथ-साथ राष्ट्रीय आय जनसंख्या, साधन देनें, तकनीकी प्रगति में वृद्धि और उपभोग में सुधार इत्यादि से होता है।
2. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** से आशय राष्ट्रीय सीमाओं के परे एक देश या प्रदेश और अन्य देश या प्रदेश के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान से होता है अर्थात एक देश और दूसरे देश के बीच व्यापार से है।
3. **साधन देनें** का आशय एक देश में उत्पादन साधनों की उपलब्धता से होता है।
4. **तकनीकी प्रगति** का अर्थ औद्योगिक विज्ञान की प्रगति से है। इसमें उत्पादन की विधियों और प्रकार में सुधार होता है। इस प्रकार, तकनीकी प्रगति तब प्रकट होती है जब एक दिया हुआ इंपुट (साधन) से पहले की अपेक्षा, अधिक उत्पादन कर सकता है या एक दी हुई उत्पत्ति

मात्रा के लिये पहले की अपेक्षा कम इंपुटों की आवश्यकता होती है। यहां तकनीकी प्रगति को आर्थिक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, का आशय वैज्ञानिक आविष्कारों की अपेक्षा नवाचारों में प्रगति से है।

5. **तटस्थत तकनीकी प्रगति** का आशय तटस्थत नवाचार से है - एक उत्पादन की नवीन प्रक्रिया से है, जैसे कि प्रो. हिक्स इसे दो-साधन उत्पादन फलन के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जैसे श्रम व पूंजी; तटस्थत नवाचार के प्रभाव से दोनों साधन-श्रम व पूंजी की सीमान्त उत्पादकताओं को उसी अनुपात में बढ़ाता होता है। इस प्रकार तटस्थत तकनीकी प्रगति श्रम व पूंजी के बीच सम्बन्ध की अपरिवर्तित रखती है।
6. **श्रम-बचत (या पूंजी उपयोग) तकनीकी** प्रगति प्रो. हिक्स के सिद्धान्त के अनुसार, इसका आशय तकनीकी प्रगति और उत्पादन प्रक्रिया में उस परिवर्तन से है जो श्रम की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि करती है। श्रम-बचत नवाचार के अन्तर्गत पूंजी की बढ़ती हुई मात्रा और श्रम की कम मात्रा के साथ उत्पादन फलन को संशोधित किया जाता है।
7. **पूँजी-बचत (या श्रम उपयोग) तकनीकी प्रगति** इसका आशय तकनीकी सुधार और उत्पादन प्रक्रिया में उस परिवर्तन से है जो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि की अपेक्षा श्रम की सीमान्त उत्पादकता में अपेक्षाकृत, अधिक वृद्धि करती है। उत्पादन फलन पर पूंजी-बचत नवाचार के प्रभाव से पूंजी साधन में कमी और श्रम की मात्रा में वृद्धि करना होता है।
8. **मानव पूँजी** से आशय शिक्षा और प्रशिक्षण के द्वारा किसी व्यक्ति या समुदाय में ज्ञान और कौशल के संचय से होता है। मानव पूंजी उत्पादन बढ़ाने में सहायता करती है और आय में वृद्धि करने का भी एक स्रोत होती है।
9. **व्यापार शर्तों** से आशय उस दर से होता है जिस पर एक देश की वस्तुओं का दूसरे देश की वस्तुओं के साथ आदान-प्रदान किया जाता है। अर्थात निर्यात की कीमतें उसके आयातों की कीमतों के बीच में सम्बन्ध

और ये देश के लिए अनुकूल तब होती है जब उसके निर्यातों की कीमतें उसके आयातों की कीमतों की अपेक्षा ऊंची होती हैं। जब एक देश के आयातों की कीमतों उसके निर्यातों की कीमतों की अपेक्षा ऊंची होती है, तब उस देश की व्यापार शर्तें प्रतिकूल होती है।

10. **तटस्थता वक्र** तटस्थता वक्र निर्यात योग्य और आयात योग्य वस्तुओं के संयोगों के असंख्य बिन्दुओं का एक बिन्दु पथ होता है जो संतुष्टि का समान स्तर दर्शाता है। तटस्थता वक्र का प्रमुख लक्षण होता है कि 'ऊंचे तटस्थता वक्र से, अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि प्राप्त होती है और नीचे तटस्थता वक्र से कम संतुष्टि प्राप्त होती है।
11. **आय उपभोग वक्र** स्थिर व्यापार शर्तों को मानते हुये, निर्यात योग्य वस्तुओं या आयात योग्य वस्तुओं की मांग पर वास्तविक राष्ट्रीय आय में परिवर्तन के प्रभाव को दर्शाता है।

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पी.टी. एल्सवर्थ और जे. क्लार्क लीथ	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, कोली - मेक्मिलन प्रकाशक, लंदन
सी.पी. किण्डल बर्गर	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, प्रकाशक रिचर्ड डी. इरविन
पी.के.रे और के.बी. कुन्डु	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, विशुद्ध सिद्धान्त और व्यापार नीति नव भारत, प्रकाशक कलकत्ता
साल्वाटोर डोमिनिक	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के सिद्धान्त और समस्याएं, मक्ग्रा हिल बुक कम्पनी
सोडर्स्टन बो	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, मेक्मिलन प्रेस लि.

14.9 अभ्यास प्रगति की जाँच के लिये उत्तर

बोध प्रश्न 1.

उत्तर 1.एक राष्ट्र के उत्पादन सम्भावना वक्र का आकार उस देश में उपलब्ध उत्पादन साधनों की मात्रा और प्रौद्योगिकी के स्तर पर निर्भर करता है। जितने अधिक मात्रा में किसी राष्ट्र में उत्पादन के साधन उपलब्ध होते हैं और जितनी अधिक उन्नत प्रौद्यौगिक के साथ उन्हें उत्पादन में मिलाया जाता है, राष्ट्र उतनी अधिक दोनों वस्तुओं की मात्राएँ उत्पन्न करने में समर्थ होता है, और राष्ट्र जितनी अधिक मात्रा में दोनों वस्तुओं का उत्पादन करने में समर्थ होता है उत्पादन सम्भावना वक्र का आकार उतना ही अधिक बाहर और ऊपर की ओर बड़ा होता है।

उत्तर 2.समय गुजरने के साथ-साथ एक राष्ट्र को उपलब्ध उत्पादन साधनों की मात्रा में परिवर्तन होते रहते हैं। उदाहरण के लिए किसी राष्ट्र की जनसंख्या में वृद्धि होती रहती है और यह उनकी श्रम पूर्ति को बढ़ाती है। राष्ट्र में शिक्षा और कौशल का स्तर अक्सर जिसे मानव पूंजी कहा जाता है में भी वृद्धि हो सकती है और ऐसी ही उसकी भौतिक पूंजी अर्थात मशीनरी और फैक्ट्रियों, कार्यालयों भवनों और साज-सज्जा (साधन व सामग्री), विद्युत उत्पन्न करने के संयंत्रों, ट्रकों और सड़कों, जहाजों और बन्दरगाहों, वायु-यानों और इवाई अड्डों इत्यादि की मात्रा में होती है। दूसरी ओर, कुछ प्राकृतिक साधन जैसे खनिज भंडारों का रिक्त होना और कृषिगत भूमि में कमी होना सम्भव हो सकता है, जबकि अन्य को नवीन खोजों के द्वारा ज्ञात किये जा सकते हैं और उनके उपयोग ढूंढे जा सकते हैं। इस प्रकार एक राष्ट्र को उपलब्ध साधनों की मात्रा में परिवर्तन हाते रहते हैं, सामान्यतया समय गुजरने के साथ-साथ वृद्धि होती है। समय गुजरने के साथ-साथ प्रौद्योगिकी में सुधार होता है।

बोध प्रश्न 2

उत्तर 1. यदि भारत की प्रौद्योगिकी उसी अवस्था में रहती है किन्तु उसकी श्रम और पूंजी की पूर्ति में समान अनुपात में वृद्धि होती है, तब भारत का उत्पादन सम्भावना वक्र उसकी सम्पूर्ण लम्बाई के साथ-साथ समानरूप सें बाहर और ऊपर की ओर विवर्तित होता है जैसा कि चित्र 14. 1(b) या 14.2 में प्रदर्शित किया गया है। इसका आशय है कि मूल बिन्दु से किसी सीधी रेखीय किरण द्वारा जिन बिन्दुओं पर वे काटे जाते हैं वहां पर AB और A'B' के ढाल समान होते हैं या दोनों वस्तुओं की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होती हैं। इस प्रकार भारत के उत्पादन सम्भावना वक्र में बाहरी विर्वतन होगा यदि साधनों की पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता किन्तु भारत में वस्त्र और गेहूं उत्पादन में तटस्थत नवाचार होता है।

उत्तर 2. एक निर्यात अभिनत प्रौद्योगिकीय नवाचार वह होता है जो उसके आयात प्रतियोगी वस्तु की तुलना में राष्ट्र के निर्यात वस्तु की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि करती है। एक आयात अभिनत नवाचार ठीक उसके विपरीत दिशा में होता है। एक अनभिनत या तटस्थत नवाचार वह होता है जो राष्ट्र के निर्यात और आयात-प्रतियोगी वस्तुओं के उत्पादन में ठीक उसी मात्रा में वृद्धि करता है।

बोध प्रश्न 3.

उत्तर 1. यदि गेहूँ को Y अक्ष के सहारे और वस्त्र को X अक्ष के सहारे मापा जाये तों एक राष्ट्र में वस्त्र से गेहूं की ओर रूचियों में विवर्तन राष्ट्र के सामाजिक तटस्थता वक्र को नीचे और दाहिनी तरफ विवर्तित करेगा और वे अधिक ढालू होंगे। वे नीचे और बायीं ओर विवर्तित होते हैं क्योंकि वास्तविक आय और अपरिवर्तित Pc / Pw (वस्त्र कीमत/गेहूँ कीमत) के प्रत्येक स्तर पर राष्ट्र पहले की तुलना में गेहूँ की कम मात्रा और वस्त्र की अधिक मात्रा की मांग करता है। इसलिये वे अधिक ढालू होते हैं। इसके विपरीत, यदि राष्ट्र की

रूचियाँ वस्त्र सें गेहूँ की ओर विवर्तित होती है, तो राष्ट्र का तटस्थता वक्र ऊपर तथा बायीं और विवर्तित होगा और अधिक समतल होगा। किसी भी अवस्था में जब रुचियाँ परिवर्तित होती हैं, तब राष्ट्र की तटस्थता वक्र आकार बदलते हैं और उसके प्रारम्भिक तटस्थता वक्रों अर्थात् इसका आशय रुचियों में परिवर्तन से पहिले को पार करते हैं। (b) चित्र 14.7 को देखिये।

उत्तर 2. उपभोग प्रभाव निर्यात-अभिनत कहलाते हैं, क्योंकि कुल उपभोग में आयात योग्य वस्तुओं के अपेक्षाकृत बड़े आनुपातिक भाग का भुगतान करने के लिये यह सापेक्षरूप से निर्यातों की पूर्ति में वृद्धि की मांग करता है। उपभोग प्रभावों के अन्य रूप भी हो सकते हैं : 'तटस्थत उपभोग प्रभाव', 'निर्यात-अभिनत' या 'अनुकूल व्यापार अभिनत', आयात-अभिनत या 'प्रतिकूल-व्यापार-अभिनत' 'अति-निर्यात-अभिनत' और 'अति-आयात-अभिनत। (चित्र 14.6 को देखिये)

बोध प्रश्न 4.

उत्तर 1. प्रावैगिक साधन, व्यापार और विकास के लिये खण्ड 14.5 को देखिये।

इकाई – 15

व्यापार की शर्तें
Terms of Trade

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 व्यापार की शर्तों का अर्थ

15.3 अनुकूल तथा प्रतिकूल व्यापार की शर्तें

15.4 व्यापार की शर्तों के विभिन्न रूप

15.4.1 वस्तुओं के विनिमय अनुपात से सम्बन्धित

15.4.2 उत्पादन संसाधनों के विनिमय से सम्बन्धित

15.4.3 व्यापार से होने वाले लाभों से सम्बन्धित

15.5 व्यापार की शर्तों को मापने में कठिनाइयां

15.6 व्यापार की शर्तों के निर्धारक तत्व

15.7 व्यापार की शर्तों का महत्व

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.11 अभ्यासों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको व्यापार की शर्तों का अर्थ स्पष्ट किया जायेगा और इनके विभिन्न रूपों से परिचित कराया जायेगा। साथ ही आपको इन शर्तों का महत्व भी बताया जायेगा। इस ईकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

– व्यापार की शर्तों का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे;

– व्यापार की शर्तों के विभिन्न रूपों की व्याख्या कर सकेंगे;

– व्यापार की शर्तों को मापने में होने वाली कठिनाइयों को बता सकेंगे;

– व्यापार की शर्तों का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

व्यापार की शर्तों का विषय कोई नया नहीं है। व्यापार शर्तों का एक देश के लिए अत्यधिक महत्व है, उसकी आर्थिक स्थिति इन शर्तों पर निर्भर हैं। शर्तों के महत्व को प्रतिपादित करने के पूर्व हम शर्तों का आशय और उनके जो विभिन्न रूप हैं, उनका अध्ययन करेंगे। साथ ही हम यह ज्ञात करने का प्रयास करेंगे कि शर्तों को मापने में क्या समस्याएं आती हैं और कौन से घटक है जो कि शर्तों को प्रभावित करते हैं।

15.2 व्यापार की शर्तों का अर्थ

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में जिस मूल्य पर वस्तुओं का विनिमय होता है, उसे व्यापार की शर्तों का नाम दिया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि दो देशों में जिन दो वस्तुओं का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाता है, उनके विनिमय अनुपात का सम्बन्ध व्यापार की शर्तों से होता है। पर, जब व्यापार दो से अधिक वस्तुओं का होता है तो व्यापार की शर्तों का सम्बन्ध उस दर से होता है जिस पर आयातों और निर्यातों का विनिमय होता है। संक्षेप में यह भी कहा जा सकता है कि व्यापार की शर्तें निर्यात

और आयात कीमतों में सम्बन्ध को प्रदर्शित करती हैं। सूत्र के रूप में यदि हम व्यक्त करें -

$$\text{व्यापार शर्तें} = \frac{\text{आयात का कुल मूल्य}}{\text{निर्यात का कुल मूल्य}}$$

15.3 अनुकूल तथा प्रतिकूल व्यापार की शर्तें

व्यापार की शर्तें अनुकूल अथवा प्रतिकूल किसी देश के लिए हो सकती है। अनुकूल तो तब होती है जब आयातों के मूल की अपेक्षा निर्यातों का मूल्य अधिक होता है। यह भी कहा जा सकता है कि जब आयात की दी हुई मात्रा के लिए कम वस्तुओं का निर्यात किया जाता है तो व्यापार की शर्तें अनुकूल होती हैं। प्रतिकूल तब होती है जबकि निर्यातों के मूल्य की अपेक्षा आयातों का मूल्य अधिक होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब दी हुई आयात की मात्रा के लिए अधिक वस्तुओं का निर्यात किया जाता है तो व्यापार की शर्त प्रतिकूल होती है।

बोध प्रश्न- **1**

1. व्यापार की शर्तों से क्या अभिप्राय है?
2. व्यापार की शर्तें अनुकूल तथा प्रतिकूल कब कही जाती हैं?

15.4 व्यापार की शर्तों के विभिन्न रूप

अब हम शर्तों का अर्थ समझने के पश्चात इनके विभिन्न रूपों का अध्ययन करेंगे। विस्तृत रूप से हम शर्तों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं :

15.4.1 वस्तुओं के विनिमय अनुपातों से सम्बन्धित शर्तें

(i) शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें (Net Barter Terms of Trade) प्रो. टॉजिग (F.W. Taussig) ने शुद्ध और सकल वस्तु विनिमय व्यापार शर्तों में अंतर किया है। उसके अनुसार शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार शर्तें एक देश के आयात और निर्यात कीमतों का अनुपात

है। इन्हें वस्तु व्यापार शर्तें (Commodity Terms of Trade) भी कहते हैं। इन शर्तों को सूत्र से भी बता सकते हैं :-

$$N = \frac{Px}{Pm}$$

यहां P = मूल्य निर्देशांक

X = निर्यात

M = आयात

N = शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें

यदि Px > Pm तब व्यापार की शर्तें अनुकूल होंगी।

समय की दो अवधियों में शर्तों के परिवर्तन को ज्ञात करने के लिए दोनों अवधियों के आयात और निर्यात कीमतों के अनुपात को निकाला जाता है। सूत्र में –

$$\frac{Px_1}{Pm_1} = \frac{Px_0}{Pm_0}$$

यहां Px_0 = आधार वर्ष के निर्यात मूल्य

Px_1 = वर्तमान वर्ष के निर्यात मूल्य

Pm_0 = आधार वर्ष के आयात मूल्य

Pm_1 = वर्तमान वर्ष के आयात मूल्य

यदि हम यह मान लें कि भारत के लिए आधार वर्ष 1980 है तो आधार वर्ष में आयात और निर्यात दोनों की ही कीमतों का निर्देशांक 100 होगा। अब यदि 1990 में आयात कीमतों का निर्देशांक 120 और निर्यात कीमतों का निर्देशांक 160 हो जाते हैं तो व्यापार की शर्तें इस प्रकार होंगी

$$N = \frac{160}{120} \times \frac{100}{100} = 1.33$$

इसका अर्थ यह हुआ कि 1980 की तुलना में 1990 में व्यापार की शर्तों में 33 प्रतिशत सुधार हुआ है। शर्तों में सुधार के कारण निश्चित निर्यातों के द्वारा 33 प्रतिशत अधिक आयातों को 1990 में 1980 की अपेक्षा किया जा सकता है। इसके विरूद्ध यदि आयात-कीमतों में निर्यात-कीमतों की अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है तो व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं।

(ii) सकल वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें (Gross Barter Terms of Trade)

शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें व्यापार की मात्रा की उपेक्षा करती है, ये इसलिए भुगतान संतुलन के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं देती है - प्रो. मार्शल ने शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तों का प्रतिपादन किया था। इन शर्तों की इस कमी को दूर करने के लिए प्रो. टॉजिग ने सकल वस्तु विनिमय व्यापार शर्तों का विकास किया था। टॉजिग ने कहा कि आयात और निर्यात कीमतों में सम्बन्ध स्थापित करने के स्थान पर आयात और निर्यात की कुल मात्राओं मे सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें आयात की कुल भौतिक मात्रा और निर्यात की कुल भौतिक मात्रा के मध्य सम्बन्ध बताती है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि सकल वस्तु विनिमय व्यापार की पूर्ति एक देश के कुल निर्यातों और कुल आयातों के मध्य विनिमय दर को स्पष्ट करती है। सूत्र के रूप में -

$$G = \frac{Qm}{Qx}$$

सूत्र में G = सकल वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें

Q = मात्रा

X = निर्यात

M = आयात

यदि $Qm > Qx$ तब व्यापार की शर्तें अनुकूल होंगी।

समय की दो अवधियों में व्यापार शर्तों में परिवर्तन को देखने के लिए सूत्र हैं-

$$\frac{Qm_0}{Qx_1} : \frac{Qm_0}{Qx_0}$$

यहां Qm_0 = आधार वर्ष के आयात की मात्रा

Qm_1 = चालू वर्ष के आयात की मात्रा

Qx_0 = आधार वर्ष के निर्यात की मात्रा

Qx_1 = चालू वर्ष के निर्यात की मात्रा

यदि चालू वर्ष में G में वृद्धि होती है तो इसका अर्थ यह है कि आधार वर्ष की अपेक्षा आयात की मात्रा दी हुई निर्यात की मात्रा से अधिक रहेगी।

सकल वस्तु विनिमय व्यापार शर्तें भुगतान संतुलन के सम्बन्ध में विशेष जानकारी देती है। पर, ये कीमतों में परिवर्तन के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं देती है। इसलिए अनेक अर्थशास्त्री शुद्ध विनिमय व्यापार की शर्तों का प्रयोग अधिक ठीक मानते हैं।

(iii) आय व्यापार की शर्तें (Income terms & Trade)

जी. एस. डोरेन्स ने आय पर आधारित व्यापार की शर्तों का निर्धारण करने की एक विधि बताई है । उसने कहा है कि किसी देश की आयात करने की क्षमता का निर्धारण निर्यात वस्तुओं की कीमत और मात्रा तथा आयात वस्तुओं की कीमत और मात्रा से होता है। एक देश की आयात क्षमता में निम्न परिस्थितियों में वृद्धि हो जाती है –

(अ) जब निर्यात मूल्यों (Px) में वृद्धि हो जाती है,

(ब) जब निर्यात की मात्रा (Ox) में वृद्धि हो जाती है,

(स) जब आयात मूल्य (Pm) कम हो जाते हैं।

देश की वर्तमान आयात-क्षमता (आय-व्यापार शर्तों) को सूत्र के रूप में व्यक्त किया जा सकता है-

$$Om = \frac{Px_1 \times Ox_1}{Pm_1}$$

यहां Om_1 = देश की वर्तमान आयात-क्षमता

Px_1 = वर्तमान निर्यात मूल्य

Ox_1 = वर्तमान निर्यात की मात्रा

Pm_1 = वर्तमान आयात का मूल्य

15.4.2 उत्पादक संसाधनों के विनिमय से सम्बन्धित शर्तें

एक घटकीय व्यापार की शर्तें (Single Factorial Terms of Trade)

वाइनर ने एक घटकीय व्यापार की शर्तों का प्रतिपादन किया है। ये व्यापार की शर्तें निर्यात-कीमतों के निर्देशांक और आयात कीमतों के निर्देशांकों के बीच सम्बन्ध बताती है। वाइनर के अनुसार यदि वस्तु व्यापार शर्तों के निर्देशांक को निर्यात – वस्तु के तकनीकी गुणांकों (Coefficient) के निर्देशांक के व्युत्क्रम से गुणा करने से जो निर्देशांक आयेगा वह व्यापार से लाभ की प्रवृति का व्यापार शर्तों के निर्देशांक से उत्तम है।

एक तत्व वाली व्यापार शर्तों के सूत्र में -

$$S=NZx$$

यहां S=एक तत्व वाली व्यापार शर्तें

N=शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें

Zx=निर्यात की उत्पादकता का निर्देशांक

यदि S में वृद्धि होती है तो वह लाभप्रद है। ऐसा इसलिए है - वस्तुओं के उत्पादन में लगाई गई प्रति इकाई साधन की मात्रा के लिए अधिक मात्रा में आयात किया जा सकता है।

(iv) द्विघटकीय व्यापार की शर्तें (Double Factorial Terms of Trade)

किसी भी देश के आयात और निर्यात को उत्पादकता का तकनीकी गुणांक समानरूप से प्रभावित करता है। यदि व्यापार की शर्तों के निर्धारण के लिए आयात को भी ध्यान में रखा जाये तो हमें द्विघटकीय व्यापार की शर्तें प्राप्त होती हैं। सूत्र में -

$$D = \frac{NZx}{Zm}$$

यहां D = द्विघटकीय व्यापार की शर्तें

Zm = आयात उत्पादकता निर्देशांक

N = शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें

Zx = निर्यात उत्पादकता निर्देशांक

यदि D में वृद्धि होती है तो इसका तात्पर्य यह है कि उत्पादन में लगे हुए एक स्वदेशी घटक के बदले आयातों में लगे हुए विदेशी घटकों की अधिक इकाईयां प्राप्त हो सकती है।

15.4.3. व्यापार से होने वाले लाभों से सम्बन्धित शर्तें

(i) वास्तविक लागत व्यापार की शर्तें (Real Cost Terms of Trade)

वाईनर ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त वास्तविक लाभों को ज्ञात करने के लिए वास्तविक लागत व्यापार शर्तों का भी प्रतिपादन किया है उनके अनुसार व्यापार से कुल लाभों की गणना निर्यातों में त्याग की गई उपयोगिता के बदले आयातों से प्राप्त अतिरिक्त उपयोगिता से की जाती है। यदि निर्यातों के उत्पादन से त्याग की गई उपयोगिता पर विचार करना हो तो एक घटकीय व्यापार की शर्तों के निर्देशांक में उन उत्पादन साधनों की प्रति इकाई त्याग की गई उपयोगिता के निर्देशांक के व्युत्क्रम का गुणा करते हैं जो निर्यातों के उत्पादन में लगाये जाते हैं। इस तरह से जो निर्देशांक आता है, उसे वास्तविक लागत व्यापार की शर्तें कहते हैं। सूत्र में-

$$R=NZxRx$$

यहां R=वास्तविक लागत व्यापार की शर्तें

N=शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तें

Zx=निर्यात की उत्पादकता का निर्देशांक

Rx=निर्यातों के उत्पादन में प्रति इकाई साधन के उपयोगिता त्याग का निर्देशांक

R में वृद्धि यह बताती है कि प्रति इकाई वास्तविक लागत से प्राप्त आयातों की मात्रा अधिक है।

(ii) उपयोगिता व्यापार की शर्तें (Utility of Market Terms of Trade)

वास्तविक लागत व्यापार की शर्तों में आयात की सापेक्षिक उपयोगिता और त्याग की गई वस्तुओं के निर्देशांक (U) से गुणा करने पर उपयोगिता व्यापार की शर्तें ज्ञात हो जाती है। सूत्र में -

U=NZx Rxu

बोध प्रश्न- 2

1. शुद्ध और सकल वस्तु विनिमय व्यापार शर्तों में अंतर बताइये।
2. वस्तु और आय से सम्बन्धित व्यापार शर्तों में क्या भेद है।

15.5 व्यापार की शर्तों को मापने में कठिनाइयाँ

अब हम व्यापार की शर्तों को मापने में जो कठिनाइयाँ आती हैं उन पर विचार करेंगे। शर्तों को मापने में आने वाली कठिनाइयाँ इस तरह हैं -

1. **निर्देशांकों की कठिनाई** - व्यापार की शर्तों को मापने के लिए निर्देशांकों का प्रयोग किया जाता है। यदि दो देशों द्वारा एक वस्तु का निर्यात और एक ही वस्तु का आयात किया जाता है तब तो व्यापार शर्तों के निर्देशांक बनाना सरल होता है। पर ये देश अनेक वस्तुओं का आयात और निर्यात करते हैं जिससे निर्देशांकों का बनाना एक कठिन काम हो जाता है।

2. **भारांकन की समस्या** - आयात और निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के निर्देशांक बनाते समय वस्तुओं को भार देने की समस्या उत्पन्न होती है। भार वस्तुओं के महत्व के अनुसार देना होता है। पर विभिन्न वस्तुओं का महत्व विभिन्न देशों के लिए अलग अलग होता है और इसके साथ जुड़ी हुई समस्या यह भी है कि एक ही देश में विभिन्न वस्तुओं का महत्व भी बदलता रहता है। इन परिस्थितियों में निर्देशांक वास्तविकता से दूर रह जाते हैं।

3. **निर्यात और आयात में समय अन्तराल** - व्यापार शर्तों का मापन किसी वर्ष में आयातों और निर्यातों की तुलनात्मक कीमतों से किया जाता है। पर कीमतें जो हैं वे पूरे वर्ष एक सी नहीं रहती और कोई भी देश कीमतों में परिवर्तन का लाभ उठाकर व्यापार शर्तों को अपने अनुकूल बना सकता है। यह संभव है कि कोई देश आयात तब करे जब कीमतें सबसे कम हो और निर्यात तब करे जब कि कीमतें अधिक हो और इस तरह से व्यापार शर्तों को अनुकूल बनाले। पर वास्तव में व्यापार शर्तें अनुकूल नहीं बनती है वे तो अपरिवर्तित ही रहती हैं। इस तरह हम यह देखते हैं कि व्यापार शर्तों का सही मापन तभी हो सकता है जब आयात और निर्यात एक साथ ही किये जायें।

4. **वस्तुओं मे गुणात्मक परिवर्तन** - व्यापार की शर्तों का मापन यदि केवल कीमतों में होने वाले परिवर्तन के आधार पर किया जाता है, तो मापन सही नहीं होगा क्योंकि वस्तुओं के गुणों में भी तो परिवर्तन होता है। आज बनी हुई फियेट कार और तीस वर्ष पहले बनी हुई फियेट कार एक ही नाम होते हुए भी एक ही वस्तु तो नहीं कही जा सकती है। इस स्थिति में कीमतों में परिवर्तन व्यापार शर्तों का सही मापन नही है।

5. **परिवहन और बीमा आदि का व्यय** - व्यापार की शर्तों के मापन में केवल आयातों और निर्यातों की कीमतों को शामिल किया जाता है। पर जो विकसित देश है वे तो अपने निर्यातों में परिवहन और बीमा का व्यय भी जोड़ लेते हैं। फिर ये विकसित देश अर्द्ध-विकसित देशों से किये गये आयातों में परिवहन और बीमा व्यय भी जोड़ लेते हैं जबकि ये इन

व्ययों का भुगतान अर्द्ध-विकसित देशों को करते ही नहीं हैं। क्योंकि परिवहन और बीमा की सेवाएं तो विकसित देशों द्वारा ही उपलब्ध कराई जाती है। इस तरह से विकसित देशों के लिए जो व्यापार शर्तें हैं वे सही नहीं है क्योंकि आयातों की कीमतों में परिवहन, बीमा आदि का व्यय भी शामिल है।

15.6 व्यापार की शर्तों के निर्धारक तत्व -

अब हम व्यापार की शर्तों के प्रमुख घटकों की चर्चा करेंगे यद्यपि निर्धारक घटक अनेक है।

1. **मांग की लोच** - व्यापार की शर्तें विभिन्न देशों की पारस्परिक मांग की तीव्रता पर निर्भर करती हैं। भारत के लिए व्यापार की शर्तें भारत द्वारा दूसरे देशों की वस्तुओं की मांग और दूसरे देशों द्वारा भारत की वस्तुओं की मांग पर निर्भर करेगी। यदि भारत की मांग विदेशी वस्तुओं की विदेशों द्वारा भारतीय वस्तुओं की मांग की अपेक्षा अधिक है तो फिर व्यापार शर्तें भारत के प्रतिकूल होंगी। इसके विपरीत, यदि भारत द्वारा विदेशी वस्तुओं की मांग, विदेशों द्वारा भारतीय वस्तुओं की मांग से कम है तो व्यापार की शर्तें भारत के अनुकूल होंगी।

2. **स्थानापन्न वस्तुएं** - यदि किसी देश की निर्यात वस्तुओं के लिए विदेशों में स्थानापन्न वस्तुएं हैं तो इस स्थिति में निर्यात करने वाले देश के लिए व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती है। निर्यात की वस्तु में जरा भी मूल्य वृद्धि होने से, विदेशों में उसकी मांग कम हो जाती है।

3. **प्रशुल्क नीति** - सीमाशुल्क लगाकर कोई भी देश अपनी व्यापार शर्तों में सुधार कर सकता है। सीमा शुल्क लगाने से आयात कम हो जाते हैं पर विदेशी अपने निर्यात बढ़ाने के लिए वस्तुओं की कीमतें कम कर देते हैं। इससे सीमा शुल्क लगाने वाले देश को आयातों की कम कीमत देना पड़ती है। इस तरह से निर्यातों की कीमतों की अपेक्षा उसके लिए आयातों की कीमतें कम हो जाती हैं। और उसकी व्यापार शर्तों में

सुधार हो जाता है। सीमा शुल्क का व्यापार शर्तों पर जो प्रभाव पड़ता है उसे मार्शल-एजवर्थ प्रस्ताव वक्र Offer Curve विश्लेषण से स्पष्ट किया जा सकता है।

4. **अवमूल्यन का प्रभाव** - अवमूल्यन से देश की मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा में कम हो जाता है। इससे देश की वस्तुओं की मांग विदेशों में बढ़ जाती है क्योंकि ये वस्तुएं विदेशों में सस्ती हो जाती हैं। इसके विपरीत देश में विदेशी वस्तुओं की मांग कम हो जाती है क्योंकि इन वस्तुओं के लिए अधिक मूल्य देना पड़ता है। इस प्रकार अवमूल्यन से देश की व्यापार शर्तें अनुकूल हो जाती हैं क्योंकि उसके निर्यात तो बढ़ते हैं पर आयात कम हो जाते हैं।

5. **पूंजी की गतिशीलता** - देश को पूंजी के प्राप्त होने से भुगतान संतुलन पर अनुकूल तथा पूंजी के बाहर जाने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पूंजी प्राप्त होने के अर्थ हैं कि विदेशी भुगतान कर रहे हैं और पूंजी के भुगतान का तात्पर्य है कि विदेशियों को भुगतान किया जा रहा है। इस प्रकार पूंजी की पर्याप्त पूर्ति देश की व्यापार शर्तों को अनुकूल बनाती है और पूंजी के भुगतान से व्यापार शर्तें देश के लिये प्रतिकूल हो जाती है।

6. **आर्थिक विकास और भुगतान संतुलन की स्थिति** - विकसित देश कम लागत पर वस्तुओं का निर्माण करते हैं और अधिक निर्यात करते हैं। इनके आयात कम होते हैं। इसलिए विकसित देशों का भुगतान संतुलन पक्ष में होता है। पर विकासशील देश आयात अधिक करते हैं। फिर ये औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए होते हैं और निर्यात कम करते हैं। फलस्वरूप इन देशों का भुगतान संतुलन विपक्ष में होता है और इनके लिये व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होती हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि देश का आर्थिक विकास भुगतान संतुलन को प्रभावित करता है। और यह व्यापार शर्तों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

15.7 व्यापार की शर्तों का महत्व -

व्यापार की शर्तें देश की आय और उसके वितरण को प्रभावित करती है। व्यापार की शर्तों पर ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाला लाभ भी निर्भर करता है। हम यहां व्यापार शर्तों के महत्व की विवेचना करेंगे।

1. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभ** - किसी भी देश को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ की गणना व्यापार शर्तों से ही हो सकती है। यदि ये शर्तें किसी देश के अनुकूल हो जाती हैं तो उसे अधिक लाभ मिलने लगता है और उसकी आय में वृद्धि होने लगती है। इसके विपरीत, यदि शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं तो उसका लाभ कम होने लगता है और आय भी घटने लगती है। यदि हम यह मान लें भारत जूट का निर्यात करता है और जिन देशों को वह निर्यात करता है वहां जूट के स्थान पर किसी और वस्तु का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया गया है तो ऐसी स्थिति में जूट की मांग कम जो जायेगी और व्यापार की शर्तें पहले की अपेक्षा प्रतिकूल बन जावेगी और जो व्यक्ति जूट के उत्पादन और निर्यात में लगे थे उनकी आय कम हो जायेगी।

2. **साधनों का पुरुस्कार तथा रोजगार** - व्यापार की शर्तों का प्रभाव साधनों और उनके पुरुस्कार पर पड़ता है। व्यापार शर्तों के सुधार से निर्यातों में वृद्धि होती है जिससे निर्यात उद्योग विकसित होते हैं और इन उद्योगों में लगे हुए साधनों की मांग बढ़ती है जिससे रोजगार बढ़ता है और साधनों को मिलने वाला पुरुस्कार भी बढ़ता है। जब निर्यात उद्योग में लगे हुये साधनों की आय बढ़ती है तो उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में भी वृद्धि होती है जिससे ये उद्योग भी विकसित होते हैं और इनमें भी साधनों को अधिक रोजगार मिलता है और उनकी आय भी बढ़ती है। व्यापार शर्तों के प्रतिकूल हो जाने से परिणाम विपरीत हो जाते हैं - रोजगार कम होता है और आय भी कम होती है।

3. **जीवन स्तर का अनुमान** - व्यापार की शर्तों का देशवासियों के जीवन स्तर पर प्रभाव पड़ता है। यदि किसी देश के लिए व्यापार शर्तें अनुकूल हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह निश्चित निर्यात वस्तुओं के बदले में अधिक वस्तुओं का आयात कर सकता है। अधिक वस्तुओं के प्राप्त होने से वहां के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठता है। प्रतिकूल व्यापार शर्तों से आयात कम हो जाते हैं और वस्तुएं भी कम उपलब्ध होनी हैं जिससे जीवन स्तर नीचे गिरता है। जिस देश का विदेशी व्यापार का कुल उत्पादन में प्रतिशत अधिक होता है वहां व्यापार शर्तें लोगों का जीवन स्तर निर्धारित करने में महत्वपूर्ण होती है। पर यदि अर्थ-व्यवस्था आत्म निर्भर है तो व्यापार की शर्तों का महत्व नहीं होता है।

4. **विदेशी विनिमय का अनुमान** - विदेशी विनिमय की कितनी आवश्यकता है इसका पता भी व्यापार की शर्तों से लगाया जाता है। इन शर्तों से यह ज्ञात हो जाता है कि आयात मूल्य और निर्यात मूल्य क्या है। यदि आयात मूल्य निर्यात मूल्य से अधिक है तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कितनी विदेशी मुद्रा की अतिरिक्त आवश्यकता भुगतान के लिए होगी।

5. **आर्थिक विकास में सहायक** - आर्थिक विकास पर भी व्यापार शर्तों का प्रभाव पड़ता है। व्यापार शर्तें अनुकूल होने पर विकासशील देश तेजी से विकास कर सकते हैं। वे कच्चे माल का निर्यात करके अधिक मात्रा में पूंजीगत वस्तुएं और मशीनों का आयात कर सकते हैं जिससे देश का तीव्र गति से विकास होता है।

बोध प्रश्न- 3

1. परिवहन और बीमा व्यय व्यापार शर्तों को किस तरह प्रभावित करते हैं?
2. किसी देश की मुद्रा के अवमूल्यन का उस देश के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ता है?
3. प्रशुल्क का व्यापार शर्तों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

4. व्यापार शर्तों का व्यवहारिक महत्व क्या है?

15.8 सारांश

व्यापार शर्तों से हमारा तात्पर्य उस अनुपात से है जिस पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तुएं एक दूसरे के बदले बेची जाती हैं।

आयात मूल्य और निर्यात मूल्य के अनुपात के रूप में व्यापार शर्तें सूत्र में Px / Pm लिखी जायेंगी। सूत्र में Px आयात मूल्य तथा Pm निर्यात मूल्य है। आयात और निर्यात मूल्यों का अनुपात (Px / Pm) में जब वृद्धि होती रहती है। तो अनुकूल व्यापार शर्तें और जब यह अनुपात कम होता जाता है तो प्रतिकूल व्यापार शर्तें होती हैं।

व्यापार शर्तें तीन वर्गों में सात प्रकार की होती है –

(अ) वस्तु विनिमय के आधार पर -

(i) शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार शर्तें

(ii) सकल विनिमय व्यापार शर्तें

(iii) आयगत व्यापार शर्तें

(ब) उत्पादक साधनों की उत्पादकता के आधार पर -

(i) एक घटकीय व्यापार शर्तें

(ii) द्विघटकीय व्यापार शर्तें

(स) आयात और निर्यात को उपयोगिता के आधार पर -

(i) वास्तविक लागत व्यापार शर्तें

(ii) उपयोगिता व्यापार शर्तें

व्यापार शर्तों के मापने में अनेक कठिनाइयां हैं जैसे निर्देशांकों का निर्माण और वस्तुओं को भार देने की कठिनाई, निर्यात और आयात का एक साथ न होना, वस्तुओं के गुणों में परिवर्तन, विकसित देशों द्वारा परिवहन और बीमा व्यय का जोड़ दिया जाना।

व्यापार शर्तों का निर्धारण देशों में पारस्परिक मांग की तीव्रता, स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि, सीमा शुल्क, अवमूल्यन आदि घटकों पर निर्भर करता है।

व्यापार शर्तों का व्यवहारिक महत्व है। इन शर्तों से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभ की गणना की जा सकती है। इनके अनुकूल होने से निर्यात उद्योगों का ही विकास नहीं होता अपितु उपभोक्ता उद्योगों का भी विकास होता है, साथ ही देश के निवासियों का जीवन स्तर भी ऊंचा रहता है और देश तीव्र गति से विकास कर सकता है। इन शर्तों से ही पता लगता है कि भुगतान के लिए अतिरिक्त विदेशी विनिमय को जरूरत पड़ेगी या नहीं।

15.9 शब्दावली

अवमूल्यन का आशय किसी देश की मुद्रा के बाह्य मूल्य को कम करने से होता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उसके फलस्वरूप मुद्रा का आन्तरिक मूल्य भी आवश्यक रूप से कम है।

प्रशुल्क (तटकर) एक कर है जो निर्यातों और आयातों दोनों पर लगाया जाता है। पर सामान्यत : इसे आयातों पर ही लगाया जाता है। यही कारण है की तटकर तथा आयात कर को एक समान माना जाता है।

आयात प्रतिस्थापन - वह नीति जिसके अर्न्तगत देश में ऐसा वस्तु का उत्पादन किया जाता है जो या तो आयतित वस्तु के समान होती है अथवा उसका निकट स्थानापन्न होती है।

भुगतान संतुलन - किसी देश के निवासियों और शेष विश्व के निवासियों के मध्य एक दी हुई अवधि में साधारणत: एक वर्ष में किये जाने वाले समस्त आर्थिक लेन-देनों का एक व्यवस्थित विवरण है।

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. जे.सी. वाष्णय तथा आर. सी. : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, रतन

अग्रवाल		प्रकाशन मंदिर आगरा
2. एच.एस. अग्रवाल तथा सी. एस. बरला	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
3. वी.सी. सिन्हा	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
4. जी.सी. सिंघई	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा
5. डॉ. विष्णु दत्त नागर तथा डॉ. घनश्याम सिंह शर्मा,	:	अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, गोयल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ
6. M.C. Vaish and Sudama Singh	:	International Economics, Oxford and IBH Publishing Co., New Delhi
7. M.C.Jhingan	:	International Economics, Konark Publications, New Delhi
8.Mehta, David and Mithani	:	International Economics, Himalaya, Publishing House, Bombay.

15.11 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न- 1

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जिस मूल्य पर वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है उसे व्यापार की शर्तों के नाम से जाना जाता है।
2. व्यापार की शर्तें अनुकूल तब कही जाती हैं जब कि एक देश एक निश्चित निर्यात मात्रा के बदले पहले से अधिक आयात करने की स्थिति में होती है और प्रतिकूल तब कही जाती है जब कम आयात कर पाता है।

बोध प्रश्न-2

1. शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार शर्तें एक देश के आयात और निर्यात कीमतों का अनुपात हैं। पर, सफल वस्तु विनिमय व्यापार शर्तें आयात और निर्यात की कुल मात्राओं का अनुपात है।
2. वस्तु व्यापार शर्तें जिन्हें शुद्ध वस्तु विनिमय व्यापार शर्तें भी कहा जाता है एक देश के आयात और निर्यात मूल्यों का अनुपात है। आयगत व्यापार शर्तें निर्यात वस्तुओं के मूल्य का वह सूचकांक है जिसमें आयतित वस्तुओं के मूल्य सूचकांक का भाग दिया जाता है।

बोध प्रश्न-3

1. विकसित देश परिवहन और बीमा व्यय को अपने आयातों और निर्यातों में जोड़ देते हैं। आयातों में ये व्यय जोड़ लेने से इन देशों की शर्तें सही नहीं रहती क्योंकि इन व्ययों का भुगतान अर्द्धविकसित देशों को नहीं किया जाता है।
2. किसी देश द्वारा अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करने से एक ओर उसके निर्यात बढ़ जाते हैं तथा दूसरी ओर आयात कम हो जाते हैं।
3. प्रशुल्क लगाकर एक देश अपनी व्यापार शर्तों में सुधार कर सकता है। वह आयात कर लगाकर पहले से कम कीमत पर वस्तुओं का आयात कर सकता है क्योंकि निर्यातकर्ता देश निर्यात करने के उद्देश्य से अपनी वस्तुओं की कीमत कम कर देता है।
4. अनुकूल व्यापार शर्तें होने पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से देश को लाभ होता है, निर्यात उद्योगों के साथ ही उपभोक्ता उद्योगों का विस्तार होता है, देशवासियों का जीवन स्तर ऊंचा हो जाता है, भुगतान के लिए अतिरिक्त विदेशी विनिमय की आवश्यकता नहीं रहती और देश तीव्र गति से विकास करता है। शर्तों के प्रतिकूल हो जाने से परिणाम भी ठीक विपरीत हो जाते हैं।

इकाई – 16

प्राथमिक उत्पादों का निर्यात तथा व्यापार शर्तें

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 व्यापार शर्तें और आर्थिक विकास

16.2.1 व्यापार शर्तें और आर्थिक विकास पर जेवन्स का मत

16.3 प्राथमिक उत्पादों की व्यापार शर्तें : अर्थशास्त्रियों के विचार

16.3.1 प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री

16.3.2 राल प्रेबिश

16.3.3 सिंगर

16.3.4 जगदीश भगवती

16.3.5 लिंडर

16.4 प्रतिकूल व्यापार शर्तों के कारण

16.5 व्यापार शर्तों को सुधारने के सुझाव

16.6 सारांश

16.7 शब्दावली

16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.9 अभ्यासों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने व्यापार शर्तों का अर्थ, प्रकार और महत्व का अध्ययन किया है। इस इकाई में आपको बताया जायेगा कि प्राथमिक उत्पादों को निर्यात करने वाले अर्द्ध-विकसित देशों के लिए व्यापार शर्तें किस प्रकार की रहती हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- व्यापार शर्तों और आर्थिक विकास में सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।
- प्राथमिक उत्पादों का निर्यात और व्यापार शर्तों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के विचार जान सकेंगे।
- प्राथमिक उत्पादों के लिये प्रतिकूल व्यापार शर्तों के कारण बता सकेंगे।
- व्यापार शर्तों को सुधारने के लिए सुझाव रख सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

आप यह जानते ही हैं कि अनुकूल तथा प्रतिकूल व्यापार शर्तों का एक देश पर क्या प्रभाव पड़ता है? अब आपको यह बताया जायेगा कि अर्द्ध विकसित देश जो कि मुख्य रूप से प्राथमिक वस्तुओं का ही निर्यात करते हैं, उनकी व्यापार शर्तें उनके आर्थिक विकास को किस प्रकार प्रभावित करती हैं और व्यापार शर्तों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री क्या कहते हैं। इस बात का परीक्षण भी किया जायेगा कि इन देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल क्यों होती है? और फिर इन शर्तों में सुधार करने के उपाय क्या हैं?

16.2 व्यापार शर्तों का आर्थिक विकास

व्यापार शर्तों का आर्थिक विकास से गहरा सम्बन्ध है। इन शर्तों से आर्थिक विकास प्रभावित होता है। व्यापार शर्तें सुधरती हैं तो देश की क्रय क्षमता बढ़ती है, निर्यात बढ़ते हैं, विदेशी पूंजी आती है और देश का आर्थिक विकास गतिशील होता है। इसके विपरीत व्यापार शर्तों के ह्रास से क्रय शक्ति कम होती है और आयात की मात्रा पूर्ववत बनाये रखने के

लिए अधिक निर्यात करना पड़ता है। इससे विकास की क्षमता कम होती है। इस बात को एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये कि एक देश कच्चे माल का निर्यात करता है। वह निर्यात से जो कुछ भी आयात करता है। उसका पूरी तरह भुगतान भी ही जाता है। अब यदि विदेशी बाजार में कच्चे माल का मूल्य बढ़ जाता है, जो कुछ भी यह देश आयात करता है उसका मूल्य अपरिवर्तित ही रहता है अथवा थोड़ा बहुत बढ़ जाता है, तो ऐसी परिस्थिति में व्यापार शर्तें अर्द्ध-विकसित देश के अनुकूल हो जाती हैं। निर्यातों से यह देश, निर्यातों की मात्रा पूर्ववत रखने पर भी अधिक विदेशी विनिमय प्राप्त कर लेता है। आयातों का मूल्य अथवा निर्मित वस्तुओं का मूल्य क्योंकि स्थिर है अथवा उसमें कुछ वृद्धि हुई है तब भी इन वस्तुओं की पूर्ववत मात्राओं को खरीदने पर इस अर्द्धविकसित देश के पास कुछ विदेशी विनिमय शेष रह जाता है जिसका कि प्रयोग आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में कर सकता है।

व्यापार शर्तों के सुधार से अर्द्ध-विकसित देशों को जो भी अतिरिक्त विदेशी विनिमय मिल जाता है, वह एक तरह से अनुदान सदृश्य है। इस अतिरिक्त विदेशी विनिमय पर, विदेशी ऋण के समान न तो ब्याज देने की समस्या है और न ही मूलधन लौटाने की एक तरह से यह प्राप्ति विदेशों से प्राप्त अनुदान से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि अनुदान देने वाले देश से यदाकदा विरोध भी हो सकता है, पर इस तरह कि प्राप्ति से किसी से भी विरोध होने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता है। रेगनर नर्क्से ने ठीक ही कहा है कि अनुकूल व्यापार शर्तें किसी देश के लिये पूंजी निर्माण का संभावित स्रोत हैं। इनका लाभ भी अत्याधिक है। इनसे न तो विदेशी ऋण के भार में वृद्धि होती है और न ही विभिन्न देशों के द्वारा ऋणों के लेन-देन को लेकर किसी प्रकार का विरोध होता है।

व्यापार शर्तों के प्रतिकूल होने से आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। विदेशी बाजार में निर्यात वस्तुओं की क़ीमतें कम होने से, एक देश की क्रय शक्ति कम हो जाती है। निर्यातों से प्राप्त आय का स्तर

पूर्ववत बनाये रखने के लिये उसे और अधिक मात्रा में निर्यात करने पड़ते हैं, जिसके लिये निर्यात उद्योगों में अतिरिक्त साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि देश की विकास क्षमता कम हो जाती है।

अब यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास में व्यापार शर्तें सहायक अथवा बाधक हो सकती हैं। मेयर और बाल्डविन कहते हैं कि व्यापार शर्तों में सुधार से विदेशी बाजारों में देश की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है और देश का आर्थिक विकास होता है। अत: प्रत्येक देश व्यापार शर्तों में सुधार का प्रयत्न करता है। वे फिर आगे कहते हैं कि व्यापार शर्तों में गिरावट से इन देशों की क्रय शक्ति गिर जाती है और विकास की क्षमता भी कम हो जाती है।

16.2.1 व्यापार शर्तें और आर्थिक विकास पर जेवेन्स का मत

जेवेन्स व्यापार शर्तों को विदेशी व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभ का प्रतीक नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि व्यापार शर्तों से आयात की सीमान्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता और निर्यात की सीमान्त इकाई से प्राप्त अनुपयोगिता का सम्बन्ध बताया जाता है। परन्तु व्यापार से लाभों की गणना के लिये आयात से प्राप्त कुल उपयोगिता और निर्यात की कुल अनुपयोगिता का अंतर लिया जाता है। वे कहते हैं कि यह भी संभव है कि व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होने पर भी विदेशी व्यापार से प्राप्त लाभ में वृद्धि हो। व्यापार से प्राप्त लाभ उस समय अधिकतम होंगे जब आयातों की सीमान्त उपयोगिता और निर्यातों की सीमान्त अनुपयोगिता बराबर हो (MUm=MUx)। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यापार की अंतिम इकाई कोई लाभ नहीं देती है।

इस तरह से जेवेन्स के अनुसार व्यापार शर्तों और आर्थिक विकास में कोई सम्बन्ध नहीं है। व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होने पर भी देश को मिलने वाला लाभ क्रमश: बढ़ सकता है। अल्पकाल में व्यापार शर्तें

प्रतिकूल होने पर भी, यदि कच्चा माल और आवश्यक मशीनें भी उपलब्ध हो सकती हैं तो देश का आर्थिक विकास किया जा सकता है।

यदि हम व्यापार शर्तों का जो तुरन्त ही प्रभाव पड़ता है, उस पर ध्यान दें तो जेवेन्स का विचार उचित प्रतीत नहीं होता है। फिर दीर्घकाल तक प्रतिकूल रहने वाली व्यापार शर्तें किसी भी प्रकार आर्थिक विकास में सहायक नही हो सकती हैं।

बोध प्रश्न-1

: - इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. अर्द्ध विकसित देशों के लिये अनुकूल व्यापार शर्तों का क्या महत्व है?
2. अनुकूल व्यापार शर्तों से प्राप्त राशि अर्द्ध-विकसित देश के लिये अनुदान से भी श्रेष्ठ क्यों है?
3. जेवेन्स, व्यापार शर्तों को विदेशी व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभ का प्रतीक क्यों नहीं मानते?

16.3 प्राथमिक उत्पादों की व्यापार शर्तें: अर्थशास्त्रियों के विचार

अर्द्ध-विकसित देश प्राथमिक उत्पादों का निर्यात करते हैं। इन उत्पादों की कीमतों में निर्मित वस्तुओं की तुलना में लगातार घटने की प्रवृत्ति रही है। अत: इन देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल रहती है। विपिन अर्थशास्त्रियों ने इन देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल होने के कारणों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

16.3.1 प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री

मार्शल जैसे प्रतिष्ठित अर्थ- अर्थशास्त्रियों का मत था कि कतिपय मौलिक नियमों के कारण व्यापार शर्तें औद्योगिक देशों के प्रतिकूल रहेगी। वे यह मानते थे कि कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम और उद्योगों में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है। वास्तव में उत्पादन की तकनीकों में निरन्तर

सुधार से निर्मित वस्तुओं के उत्पादन में श्रम की मात्रा कम होती गई है पर कृषि उत्पादों के साथ ऐसा नहीं हुआ है। इस तरह से निर्मित वस्तु के उत्पाद की एक इकाई में कृषि उत्पाद की एक इकाई की अपेक्षा कम श्रम लगता है। अब यदि वस्तुओं का विनिमय उनके उत्पादन में व्यय श्रम के आधार पर होता है तो यह कहा जा सकता है कि व्यापार शर्तें औद्योगिक देशों के प्रतिकूल रहेंगी। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि कृषि उत्पादों की एक निश्चित मात्रा के लिये पहले से अधिक निर्मित वस्तुएं देना पड़ेगी।

इन अर्थशास्त्रियों के मत का जब समंकों के आधार पर परीक्षण किया गया तो बात कुछ और ही सामने आयी। 19वीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध से ही ब्रिटेन निर्यात तो विशेषकर निर्मित वस्तुओं का करता था और आयात खाद्यान और कच्चे माल का। देखा यह गया कि 19वीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध से लेकर द्वितीय महायुद्ध तक निर्मित वस्तुओं की अपेक्षा प्राथमिक वस्तुओं की कीमतों में हमेशा ही घटने की प्रवृत्ति रही है। फलस्वरूप प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातों की एक निश्चित मात्रा इस अवधि के अन्त में निर्मित वस्तु की उस कुल मात्रा की केवल 60 प्रतिशत का ही भुगतान कर सकी है जितनी की इसके द्वारा प्रारम्भ में खरीदी जा सकती थी। संक्षेप में निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि व्यापार शर्तें अर्द्ध-विकसित देशों के प्रतिकूल और विकसित देशों के अनुकूल होती हैं।

16.3.2 राल प्रेबिश

इनका कहना है कि अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तें निरन्तर ही प्रतिकूल होती जा रही हैं। वे लिखते हैं कि दीर्घकाल में निर्मित वस्तु की कीमतों की तुलना में प्राथमिक उत्पादन के मूल्यों में गिरावट की प्रवृत्ति रही है। वे अपनी बात को स्पष्ट करते हुये बताते हैं कि अल्पविकसित देश चाय, जूट, चीनी, काफी, तांबा, टिन इत्यादि वस्तुओं का अधिकतर उत्पादन करते हैं। वे इन वस्तुओं में कोई गुणात्मक सुधार नहीं करते हैं।

दूसरी ओर विकसित देश निर्मित वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और इनमें गुणात्मक सुधार भी करते हैं। परिणामस्वरूप निर्मित वस्तुओं की कीमतों में प्राथमिक उत्पादनों की तुलना में अधिक वृद्धि होती है। कुल मिलाकर स्थिति यह बनती है कि विकसित देशों की व्यापार शर्तें तो अनुकूल होती जाती है और अर्द्ध-विकसित देशों की प्रतिकूल बनती जाती हैं।

16.3.3 सिंगर

सिंगर ने अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तों के प्रतिकूल होने की व्याख्या प्रेबिश से कुछ हटकर की है। उसने कहा है कि तकनीकी प्रगति का प्रतिफल उत्पादकों को अधिक लाभ के रूप में अथवा उपभोक्ताओं को कम कीमतों के रूप में प्राप्त हो सकता है विकसित देशों में तो यह प्रतिफल उत्पादकों को बढ़ी हुई आय के रूप में प्राप्त होता है) इस सबका परिणाम यह होता है कि विकसित देशों में जो कि निर्मित वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, कीमतों का स्तर पूर्ववत ही बना रहता है किन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में गिर जाता है और व्यापार शर्तें अर्द्ध-विकसित देशों के प्रतिकूल हो जाती है।

16.3.4 जगदीश भगवती

भगवती का विचार है कि अर्द्ध-विकसित देशों का विकास दरिद्रता को विकसित करने वाला विकास है। इस दरिद्रता में वृद्धि के कारण ही इन देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती है। वे आगे कहते हैं कि इन देशों में केवल निर्यात उद्योगों का ही विकास होता है, जिस कारण से ये देश केवल उन्ही वस्तुओं के उत्पादन से परिचित है जिनका कि वे निर्यात करते हैं।

16.3.5 लिंडर

अर्थशास्त्री लिंडर का मत है कि अर्द्ध-विकसित देशों में मध्य वस्तुओं (Intermediate goods) की कमी होती है। इन वस्तुओं की कमी के कारण ये देश ठीक से अपनी अर्थ-व्यवस्था का न तो विविधीकरण कर पाते हैं और न ही रूपान्तरण। ये देश मध्य वस्तुओं की कमी के कारण अपने साधनों

का भी पूरी तरह प्रयोग नहीं कर पाते हैं। घरेलू साधन सीमित होने के कारण से ये देश अपने आयातों का प्रतिस्थापन भी एक सीमा तक ही कर पाते हैं। इन देशों की जनसंख्या भी तेजी से बढ़ती है और इस कारण से आयातों में वृद्धि करना, इनकी एक विवशता बन जाती है। इन सब कारणों से अर्द्धविकसित देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती है।

16.4 प्रतिकूल व्यापार शर्तों के कारण

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल किन कारणों से हैं-

1. **अधिक जनसंख्या और जनसंख्या वृद्धि दर** - अल्पविकसित देशों में, विकसित देशों की तुलना में, एक ओर तो आकार बड़ा होता है तथा दूसरी ओर जनसंख्या में वृद्धि की दर भी तेज होती है । इस कारण से इन देशों में उपभोक्ता वस्तुओं की मांग निरन्तर बढ़ती रहती है। उपभोक्ता वस्तुओं की मांग वृद्धि का परिणाम दो रूपों में सामने आता है। निर्यात वस्तुओं का अतिरेक कम हो जाता है और पूंजीगत वस्तुओं का आयात बढ़ जाता है। कुल मिलाकर व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं।
2. **निम्न उत्पादकता** - अर्द्ध-विकसित देशों में पुरानी तकनीकों से उत्पादन किया जाता है जिससे उत्पादन कम होता है और उत्पादन लागतें ऊँची होती हैं। इससे इन देशों के निर्यात कम होते हैं। विकसित देश नई और उन्नत तकनीकों से उत्पादन करते हैं जिससे उत्पादन लागतें कम होती हैं । परिणामस्वरूप विदेशी बाजार में अर्द्ध-विकसित देशों के उत्पाद प्रतियोगिता में ठहर नहीं पाते हैं और उनकी व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं। इसके विपरीत, उन्नत तकनीकों के कारण विकसित देशों की व्यापार शर्तें अनुकूल रहती हैं।
3. **प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन** - अर्द्ध-विकसित देश प्रमुख रूप से प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। जैसे श्रीलंका में चाय,

नारियल, इन्डोनेशिया में टिन, रबर, तेल मलाया में रबर, टिन, जाम्बिया में तांबा आदि। इन वस्तुओं का उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम के अंतर्गत होता है। इसके विपरीत विकसित देश निर्मित वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जो कि उत्पादन वृद्धि नियम के अन्तर्गत होता है। अत: अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल और विकसित देशों की अनुकूल हो जाती हैं।

4. **स्थानापन्न वस्तुएं** - विकसित देशों ने अर्द्धविकसित देशों की वस्तुओं के लिए अनेक स्थानापन्न वस्तुएं बना ली हैं जिससे इन देशों की आयात मांग लोचदार हो गई। पर अर्द्धविकसित देशों के पास विकसित देशों की वस्तुओं के लिये कोई स्थानापन्न वस्तुएं नहीं होती जिससे कि इनके आयातों की मांग बेलोचदार रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती है।

5. **उत्पादन साधनों की गतिशीलता** - विकसित देशों में उत्पादन के साधन अर्थात श्रम व पूंजी अत्याधिक गतिशील होते हैं। ये साधन इन वस्तुओं के उत्पादन से हट जाते हैं जिनका अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मूल्य गिर जाता है। और इन वस्तुओं के उत्पादन में लग जाते हैं जिनका मूल्य बढ़ जाता है। पर अर्द्धविकसित देशों में ऐसा नहीं होता है। इन देशों के साधनों में गतिशीलता नही होती है अत: उन वस्तुओं का उत्पादन होता रहता है। जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कीमतें गिर गई है और ये देश कम मूल्य पर भी वस्तुएं बेचने के लिये तैयार रहते हैं। साधनों की गतिशीलता के अभाव में इन देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं।

6. **सौदा करने की शक्ति** - अर्द्ध-विकसित देशों की मोलभाव करने की शक्ति कम होती है। इन देशों के पास एक तो निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की संख्या ही कम होती है और दूसरे इन वस्तुओं में से अनेक ऐसी होती हैं जो अधिक समय तक टिक नही सकती हैं। इन सबका परिणाम यह होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इन देशों की मोलभाव

करने की शक्ति विकसित देशों की अपेक्षाकृत कम हो जाती है। और व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं।

7. **संगठन का अभाव** - अर्द्ध-विकसित देशों द्वारा कुछ ऐसी वस्तुओं जैसे चाय, काफी, शक्कर, कोको, चीड़ का तेल आदि और खनिज पदार्थों का उत्पादन किया जाता है जिनका की उत्पादन विकसित देश बहुत कम करते हैं। अथवा नहीं करते है। यदि ये देश आपस में मिलकर यूरोपियन साझा बाजार के समान संगठन बना लें और फिर इन वस्तुओं को बेचें तो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इन्हें अच्छी कीमतें प्राप्त हो सकती है और व्यापार शर्तें भी अनुकूल हो सकती है। पर ये देश ए. एस. मक्लेड के अनुसार, आवश्यक संगठन के अभाव के कारण अपनी वस्तुओं के बाजारों की प्राप्ति हेतु आपस में प्रतियोगिता करते रहते हैं। परिणामस्वरूप इनके लाभा का अंश कम होता चला जाता है। विकसित देश इस प्रतियोगिता का लाभ उठा लेते हैं।

8. **आयात नियन्त्रण** - विकसित देशों द्वारा कृषि पर आधारित उद्योगों की रक्षा के लिये कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के आयात प्रतिबंध कर दिये जाते हैं जिससे अर्द्ध विकसित देशों के निर्यात कम हो जाते हैं और व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं।

16.5 व्यापार शर्तों में सुधारने के उपाय

हम यहां देखेंगे कि अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तों में सुधार किस तरह किया जा सकता है जिससे कि वे विदेशी व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। व्यापार शर्तों में सुधार के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:

1. **निर्यातों में वृद्धि और विविधता** - अर्द्ध-विकसित देशों के सामने समस्या केवल निर्यातों को बढ़ाने की ही नहीं है। इनके सामने एक और समस्या है और वह है निर्यातों में विविधता उत्पन्न करना। अभी तो ये केवल प्राथमिक वस्तुओं का ही निर्यात करते हैं। पर आवश्यकता इस

बात की है कि ये प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन के साथ-साथ अपने उत्पादनों में विविधता लायें और निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की संख्या में वृद्धि करें। भारत ने इस दिशा में प्रयास किया है। वह इंजीनियरिंग का सामान, तैयार कपड़े, तैयार चमड़े की वस्तुएं आदि का निर्यात करने लगा है। फिर इन देशों को उन वस्तुओं का उत्पादन करने में भी जुट जाना चाहिये जिनका कि वे आयात करते हैं। ठीक उसी तरह से जैसे कि विकसित देशों ने प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करना प्रारम्भ कर दिया है। यह सब करने से इन देशों की व्यापार शर्तों में सुधार हो सकता है।

2. **आपसी समझौते** - अर्द्ध-विकसित देशों को आपस में मिल बैठकर समझौते कर लेना चाहिये जिससे कि उनमें आपसी प्रतिस्पर्धा तो समाप्त हो ही और वे अपनी निर्यात वस्तुओं के लिये अच्छी कीमतें विदेशी बाजारों में प्राप्त कर सकेंगे।

3. **पारस्परिक व्यापार** - अर्द्ध-विकसित देशों द्वारा पारस्परिक व्यापार को प्रोत्साहित करना चाहिये। उन्हें विकसित देशों को तो निर्यात बढ़ाना ही चाहिये पर साथ ही दूसरे अर्द्ध-विकसित देशों को भी निर्यात करना चाहिये। इससे वे अपने आप को उस शोषण से मुक्त कर सकेंगे जो कि विकसित देशों द्वारा किया जाता है। देखने में यह आया है कि विदेशी व्यापार का 80% व्यापार ये देश विकसित देशों के साथ करते हैं। यह प्रतिशत प्रत्येक दशा में गिरना चाहिये। आपस में व्यापार करने के लिये इन्हें व्यापारिक प्रतिबंधों को हटा देना चाहिये।

4. **वस्तुओं का भंडारण** - अर्द्ध-विकसित देशों को मूल्यों में उतार-चढ़ाव की रोकथाम के लिये वस्तुओं का भंडारण करना चाहिये। कभी-कभी प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले अर्द्ध-विकसित देशों के पास निर्यात के लिये पर्याप्त वस्तुएं नहीं रहती हैं। इस तरह की स्थिति से निपटने के लिये वस्तुओं के भंडार स्थापित करना चाहिये। जिससे कि

वे निर्यात जारी रख सकें और व्यापार शर्तों को प्रतिकूल होने से रोक सकें।

बोध प्रश्न- 2

: - इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान करें।

1. दीर्घकाल में अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तों की प्रवृत्ति प्रतिकूल होने की रहती है। कारण बताइये।
2. अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल होने के क्या कारण हैं?
3. अर्द्ध-विकसित देशों की व्यापार शर्तों में सुधार के लिए आप क्या सुझाव देंगे।

16.6 सारांश

प्राथमिक उत्पादों का निर्यात करने वाले अर्द्ध-विकसित देशों के लिये व्यापार शर्तों का अत्याधिक महत्व है । शर्तों के अनुकूल होने पर आयातों का भुगतान करने पर भी विदेशी मुद्रा इनके पास बची रहती है । जिसको वे आर्थिक विकास के लिये प्रयुक्त करे सकते है । इस प्रकार से प्राप्त पूंजी से इनका विदेशी ऋण का भार नहीं बढ़ता है ।

जेवेन्स का विचार है कि प्रतिकूल व्यापार शर्तों से देश का आर्थिक विकास प्रभावित नहीं होता है । उनका विचार उचित नहीं है । प्रतिकूल व्यापार शर्तों का प्रतिकूल प्रभाव ही आर्थिक विकास पर पड़ता है । प्राथमिक वस्तुओं का' निर्यात अर्द्ध-विकसित देशों के द्वारा किया जाता है । इन देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल है । मार्शल जैसे अर्थशास्त्रियों का विचार था कि कुछ मूलभूत नियमों के कारण इनकी व्यापार शर्तें, समय बीतने के साथ, अनुकूल होती जायेगी । पर हुआ उनके विचार के विपरीत ही, व्यापार शर्तें उनके प्रतिकूल होती चली गई । राल प्रेबिश, सिंगर, भगवती, लिडर आदि अर्थशास्त्रियों ने अपने तर्क देकर यह स्पष्ट बताया कि दीर्घकाल में इन देशों की व्यापार शर्तों में प्रतिकूल' होने की प्रवृत्ति है ।

इन देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल होने के भी अनेक कारण है - जनसंख्या का वृहत आकार तथा जनसंख्या वृद्धि की तीव्र गति, निम्न उत्पादकता, आयातों की बेलोचदार मांग, अर्थ-व्यवस्था में लोच का अभाव, मोलभाव की कम शक्ति, संगठन का अभाव, निर्यातोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था आदि।

इनकी व्यापार शर्तों में सुधार निर्यातों में वृद्धि, वस्तुओं के भण्डारन, सामूहिक समझौते और पारस्परिक व्यापार को प्रोत्साहन देकर किया जा सकता है।

16.7 शब्दावली

यूरोपियन साझा बाजार एक सीमा संघ (custom union) है। 1958 में इसके छः सदस्य थे - फ्रांस, जर्मनी, इटली, बेल्जियम, नीदरलैण्डस और लक्जेमबर्ग। इन देशों में वस्तुओं और सेवाओं के आवागमन में पूर्ण स्वतंत्रता है। इन देशों के बीच कोई प्रशुल्क नहीं है।

सीमा संघ - (Custom Union)

एक समूह के सदस्यों के बीच ऐसा समझौता है जिसमें सदस्य देशों के बीच आयात प्रशुल्क समाप्त कर दिये जाते हैं। संघ के बाहर के देशों के लिये सभी सदस्य देश समान प्रशुल्क (आयात कर) लगाते हैं।

16.8 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

1. जी.सी. सिंघई : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा

2. वी.सी. सिन्हा : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

3. डॉ. विष्णु दत्त नागर तथा : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, गोयल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ

डॉ. घनश्याम सिंह शर्मा,

4. एच.एस. अग्रवाल तथा सी.एस. बरला : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

5. डॉ शिवध्यान सिंह चौहान और द्वारका प्रसाद गौतम : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा

6. M.L.Jhingan : International Economics, Konark Publications, New Delhi.

7. O.S. Srivastava : International Economics, Kalyani Publishers, Ludhiana

16.9 अभ्यास के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. **व्यापार शर्तों की दीर्घकाल मे प्रवृत्ति प्रतिकूल होने के कारण -**
   (i) प्राथमिक वस्तुओं का प्रमुख रूप से उत्पादन तथा इनमें गुणात्मक सुधार का न होना है।
   (ii) तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि का लाभ उपभोक्ताओं को कम कीमतों के रूप में मिलना,
   (iii) विकास का निर्यातोन्मुखी प्रकार,
   (iv) मध्य वस्तुओं की कमी के कारण अर्थव्यवस्था का विविधीकरण न होना, आयात प्रतिस्थापन की संभावनाओं का अभाव तथा अत्याधिक जनसंख्या वृद्धि के कारण आयात की विवशता।
2. **व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होने के कारण -**

जनसंख्या में वृद्धि, प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन, मोलभाव की शक्ति का अभाव, संगठन का अभाव, निम्न उत्पादकता, उत्पादन साधनों में गतिशीलता का अभाव आदि हैं।

3. निर्यातों में वृद्धि, वस्तुओं के भंडारण, सामूहिक समझौते और पारस्परिक व्यापार को प्रोत्साहन से व्यापार शर्तों में सुधार किया जा सकता है।

बोध प्रश्न- 2

1. अर्द्ध-विकसित देश व्यापार शर्तें के अनुकूल होने पर अपने निर्यातों से अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त करते हैं और आयातों का भुगतान करने के बाद भी इनके पास विदेशी मुद्रा बच जाती है जिसका प्रयोग वे आर्थिक विकास में करते हैं।
2. नर्क्से ने कहा है कि अनुकूल व्यापार के कारण मिलने वाली प्राप्ति अनुदान से भी श्रेष्ठ है क्योंकि इससे न तो ऋण भार बढ़ता है और न ही इस पर ब्याज देना पड़ता है।
3. जेवेन्स का मत था कि व्यापार शर्तों से आयात की सीमान्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता तथा निर्यात की सीमान्त इकाई से प्राप्त अनुपयोगिता को व्यक्त किया जाता है। जबकि व्यापार शेष की गणना के लिये आयात से प्राप्त कुल उपयोगिता और निर्यात की कुल उपयोगिता का अंतर लिया जाता है।

इकाई - 17

व्यापार से प्राप्त लाभ का सिद्धान्त
(The theory of Gains from Trade)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 व्यापार से प्राप्त लाभों की प्रकृति

17.3 व्यापार से प्राप्त लाभों का वितरण

17.4 व्यापार से प्राप्त लाभों के परिमाण (Size) के निर्धारक तत्व

17.4.1 तुलनात्मक लागतों के अन्तर

17.4.2 व्यापार की शर्तें

17.4.3 अर्पण वक्र की लोच

17.4.4 उत्पादक कुशलता में वृद्धि

17.5 छोटे व बड़े राष्ट्र के लिए लाभ अधिकतम की भिन्न शर्तें

17.6 व्यापार से प्राप्त लाभों का माप

17.7 व्यापार से प्राप्त गत्यात्मक लाभ

17.7.1 तीव्र आर्थिक विकास

17.7.2 तकनीकी अन्तराल में कमी

17.7.3 निर्यात अगुवाई वाला विकास

17.7.4 घरेलू बाजार के आकार में वृद्धि

17.7.5 समय औद्योगिक विकास के लाभ

17.8 सारांश

17.9 शब्दावली

17.10 बोध प्रश्न

17.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.0 उद्देश्य

रिकार्डो व हैक्शचर - ओहलिन (Heckscher-Ohlin) के सिद्धान्तों में यह दर्शाया गया था कि व्यापाररत राष्ट्र व्यापार से लाभान्वित होते हैं। रिकार्डो ने अपने 'तुलनात्मक लागत' सिद्धान्त की सहायता से साबित किया कि उनके इंग्लैण्ड व पुर्तगाल वाले उदाहरण में व्यापार से दोनों ही राष्ट्र लाभान्वित होंगे।

प्रस्तुत अध्याय में हम व्यापार से प्राप्त लाभों (gains) की प्रकृति, इनके परिमाण के निर्धारक-तत्व (Determinants), लाभों के माप (measurement) तथा छोटे राष्ट्र के लिए व्यापार से प्राप्त सर्वाधिक लाभ की स्थिति का अध्ययन करेंगे।

17.1 प्रस्तावना

व्यापार से प्राप्त 'लाभों का सिद्धान्त' लगभग उतना ही पुराना है जितना अर्थशास्त्र स्वयं। व्यापार सिद्धान्त में प्रारम्भिक योगदानों को प्रमुख उद्देश्य वणिकवादियों द्वारा समर्थित संरक्षणवाद की नीति को निरर्थक साबित करना था।

एडम स्मिथ (Adam Smith) ऐसे प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने यह दर्शाया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से 'श्रम-विभाजन' (Division of Labour) अथवा 'विशिष्टीकरण' (Specialisation) के अवसरों में वृद्धि के परिणामस्वरूप व्यापाररत राष्ट्र लाभान्वित होंगे। तत्पश्चात् रिकार्डो,

माल्थस व अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) ने व्यापार से प्राप्त लाभों का विस्तृत विवेचन किया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों में प्रो. पाल सैम्युअलसन (Paul Samuelson) ने व्यापार से प्राप्त लाभों पर गहन विचार किया है। प्रो. सैम्युअलसन ने अपने विचार 'Canadian Journal of Economics and Political Science' में 'The Gains from International Trade' शीर्षक के लेख में तथा पुन: सन् 1962 में लन्दन से छपने वाली पत्रिका 'Economic Journal' में 'The gains from International Trade once Again' शीर्षक के लेख में प्रस्तुत किये हैं।

17.2 व्यापार से प्राप्त लाभों की प्रकृति

यह तो हमें ज्ञात ही है कि प्रत्येक राष्ट्र स्वेच्छा से व्यापार करता है अतः कोई भी राष्ट्र व्यापार तभी करेगा जब उसे व्यापार से लाभ प्राप्त हो। व्यापाररत राष्ट्र को व्यापार से विशिष्टीकरण व विनिमय के लाभ प्राप्त होते हैं जिसके परिणामस्वरूप इन राष्ट्रों के कल्याण के स्तर में वृद्धि होती है।

प्रो. हेबरलर (Haberler) ने ठीक ही लिखा है कि अधिकतम विश्व उत्पादन के आधार पर एक स्वतंत्र व्यापार का सर्वोत्तम नीति के रूप में औचित्य ठहराया जा सकता है, उन्हीं के शब्दों में "केवल इस आधार पर एवं निश्चय ही इसी मान्यता पर कि वांछनीय उद्देश्य सामाजिक उत्पत्ति अधिकतम होते हैं, स्वतंत्र व्यापार का विज्ञान सम्मत औचित्य ठहराया जा सकता है। यद्यपि राजनैतिक प्रचार के उद्देश्य से अन्य तर्कों को अग्रिम पंक्ति में प्रस्तुत किया जा सकता है।" अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्य लाभों को संक्षेप में अग्रलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है :-

1. व्यापार में आयातकर्ता राष्ट्र को आयात वस्तु नीची लागत पर प्राप्त होती है, साथ ही व्यापाररत राष्ट्रों को उपयोग हेतु अनेक ऐसी वस्तुएँ उपलब्ध होती है जिनका विश्व के कुछ ही भागों में उत्पादन सम्भव है।

2. व्यापार के परिणाम स्वरूप हानिकारक घरेलू एकाधिकारों पर रोक लगती है अथवा इनका स्थापित होना अधिक दुष्कर हो जाता है।
3. व्यापार से व्यापाररत राष्ट्रों को विक्रय हेतु विस्तृत बाजार उपलब्ध होते हैं।
4. स्वतंत्र व्यापार से प्रत्येक राष्ट्र को विश्व के आधुनिकतम उत्पादन तकनीक अपनाने की प्रेरणा मिलती है।
5. व्यापार में प्रत्येक राष्ट्र को उसकी निर्यात-वस्तु की ऊंची कीमत प्राप्त होती है एवं साथ ही विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।
6. अत: व्यापार से एक ओर तो राष्ट्र विशिष्टीकरण से लाभान्वित होता है तथा दूसरी ओर उसे विनिमय के लाभ प्राप्त होते हैं।

व्यापार चाहे स्वतंत्र हो अथवा प्रतिबन्धित वह व्यापार विहीन स्थिति से सदैव ही श्रेष्ठ होता है। व्यापार की स्थिति को व्यापार-विहीन स्थिति से उत्तम साबित करने हेतु उत्पादन सम्भावना वक्र (Production Possibility Curve) का ज्यामितीय उपकरण बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

चित्र 17.1 में यह दर्शाया गया है कि व्यापार विहिन स्थिति की तुलना में व्यापार की स्थिति उत्तम है।

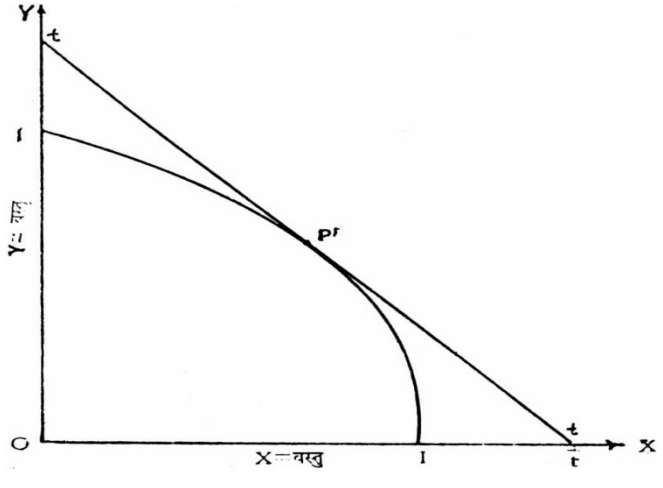

रेखाचित्र 17.1: व्यापार विहीन स्थिति की तुलना में व्यापार की स्थिति उत्तम

चित्र 17.1 में I-I प्रथम राष्ट्र का उत्पादन-सम्भावना है तथा t-t रेखा व्यापार की स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात दर्शाती है। व्यापार-विहीन स्थिति में इसका उपभोग बिन्दु I-I उत्पादन सम्भावना वक्र पर कहीं स्थित हो सकता है जबकि व्यापार की स्थिति राष्ट्र का 'उपभोग-सम्भावना वक्र' (Consumption Possibility Frontier) tP't रेखा वाला होगा अत: व्यापाररत राष्ट्र का उपयोग बिन्दु t-t रेखा पर भी स्थित हो सकता है। स्पष्ट ही है कि सिवाय उपयोग बिन्दु P' के tt रेखा I-I उत्पादन सम्भावना वक्र से, दायीं ओर बाहर की तरफ अर्थात् व्यापार की अनुपस्थिति वाले 'उपभोग सम्भावना वक्र' IP'I से tP't 'उपभोग सम्भावना वक्र' सिवाय बिन्दु P' के प्रत्येक स्थान उत्तर-पूर्व (North-East) में विद्यमान है । इसका अभिप्राय यह है कि व्यापार रत राष्ट्र को उपभोग हेतु अधिक मात्रा में वस्तुएं उपलब्ध है। इसी आशय में व्यापार की स्थिति व्यापार विहिन स्थिति से उत्तम होती है। जहां तक उभयनिष्ठ (Common) बिन्दु P' का प्रश्न है इसकी स्थिति को निम्नांकित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. यदि व्यापार-विहीन स्थिति में P' साम्य बिन्दु है तो व्यापार की स्थिति में इस सीमान्त स्थिति (Limiting Case) पर शून्य व्यापार होगा अथवा हम यह कह सकते हैं कि इस बिन्दु पर व्यापार से न तो लाभ होगा और न ही हानि।
2. लेकिन यदि P' बिन्दु के सिवाय I-I उत्पादन सम्भावना वक्र पर किसी भी दूसरे बिन्दु पर व्यापार-विहीन अवस्था का साम्य बिन्दु है तो उन सभी बिन्दुओं की तुलना में व्यापाररत राष्ट्र के tt 'उपभोग सम्भावना वक्र' के समस्त बिन्दु कल्याण के उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व करेंगे क्योंकि tt 'उपभोग सम्भावना वक्र' I-I 'उपभोग

सम्भावना वक्र' से सभी बिन्दुओं पर (सिवाय बिन्दु P' के) बाहर की ओर (उत्तर-पूर्व) में विद्यमान है।

यहां ध्यान देने योग्य बिन्दु यह है कि उपर्युक्त विश्लेषण में व्यापार की स्थिति को व्यापार-विहीन स्थिति से उत्कृष्ट साबित करने हेतु हमने न तो 'छोटे राष्ट्र' की मान्यता मानी है और न ही इस सम्बन्ध में कोई मान्यता मानी है कि अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात रेखा t-t किस प्रकार निर्धारित होती है।

अत: हम कह सकते हैं कि व्यापार-विहीन स्थिति की तुलना में व्यापार की स्थिति प्रत्येक राष्ट्र के लिए उत्कृष्ट होती है चाहे वह राष्ट्र छोटा हो अथवा बड़ा।

17.3 व्यापार से प्राप्त लाभों का वितरण (The Division of gains from Trade)

डेविड रिकार्डों को एक ओर तो उनके इस दावे के लिये दोषी ठहराया गया है कि व्यापार के समस्त लाभ एक ही राष्ट्र को प्राप्त होंगे तथा दूसरी ओर इस बात के लिए कि प्रत्येक राष्ट्र को व्यापार के समस्त लाभ प्राप्त होंगे।

लेकिन पी. सराफा (P. Sraffa) व प्रो. विनर (Viner) ने दर्शाया है कि रिकाडों इस गलती के दोषी नहीं थे।

जे.एस. मिल (J.S. Mill) के एक अन्य सहकर्मी (Co-worker) विलियम एलिस (William Ellis) उसी वर्ष (सन् 1825) में मिल जैसे गणितीय उदाहरण की सहायता से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि व्यापार से प्राप्त लाभ व्यापार रत राष्ट्रों में समान रूप से विभाजित होंगे।

यद्यपि रिकार्डों ने अपने पुर्तगाल-इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध उदाहरण में ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात माना जो कि दोनों राष्ट्रों के व्यापार पूर्व घरेलू कीमत अनुपात के लगभग मध्य वाला कीमत अनुपात था। लेकिन उन्होंने यह नहीं इंगित किया कि व्यापार में वास्तविक कीमत अनुपात

व्यवहार में किस प्रकार निर्धारित होगा तथा न ही यह इंगित किया कि उन का मध्य कीमत अनुपात उनके द्वारा मानी गई स्थिति का परिणाम है।

लोंगफील्ड (Longfield) तथा टॉरेन्स (Torrens) के निबन्धों से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि साम्य 'व्यापार की शर्तें' (अथवा अन्तर्राष्ट्रीय कीमत-अनुपात) परिवर्तनशील होती है। तथा ये दोनों व्यापाररत राष्ट्रों में एक दूसरे की वस्तुओं के लिए मांग की शक्ति पर निर्भर करती है। पेनिंगटन (Pennigton) ने सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से प्रकाशित रूप में इंगित किया कि दोनों व्यापार राष्ट्रों की तुलनात्मक लागतें ही 'व्यापार की शर्तों' की न्यूनतम एवं अधिकतम सीमाएं है तथा इन सीमाओं के मध्य वास्तविक व्यापार शर्तें प्रतिपूरक मांग (Reciprocal Demand) के प्रचालन द्वारा तय होगी। टॉरेन्स भी लम्बे समय तक इस बात पर जोर देते रहे कि व्यापार की शर्तें प्रतिपूरक मांग द्वारा निर्धारित होती है। लेकिन जे.एस. मिल (J.S. Mill) ने सन् 1829 व 1830 के मध्य छपे अपने लेखों में इसी प्रश्न का विवेचन किया। तत्पश्चात् सन् 1848 में छपी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Principles of Political Economy' में मिल ने व्यापार की शर्तों के निर्धारण के प्रश्न को दोहराया एवं इसके उत्तर को विकसित किया। बाद के अर्थशास्त्रियों ने 'प्रतिपूरक माँग' के सिद्धान्त का मिल से ही अधीनीकरण (takeover) किया न कि लोंगफील्ड, टॉरेन्स अथवा पेनिंगटन से।

मिल ने अपने 'प्रतिपूरक माँग' के सिद्धान्त में स्पष्ट किया कि दोनों राष्ट्रों के व्यापार पूर्व वस्तु कीमत अनुपात ही ऐसी दो सीमाएँ होती है जिनके मध्य अन्तर्राष्ट्रीय कीमत-अनुपात निर्धारित होगा। इन सीमाओं के मध्य वास्तविक कीमत अनुपात 'प्रतिपूरक माँग' (Reciprocal Demand) द्वारा निर्धारित होगा । जिस किसी भी राष्ट्र की अपनी निर्यात वस्तु के रूप में आयात-वस्तु की माँग अपेक्षाकृत अधिक होगी उसी राष्ट्र के व्यापार पूर्व वस्तु-कीमत अनुपात के अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात अधिक करीब निर्धारित होगा। फलत: ऐसा राष्ट्र व्यापार से कम लाभान्वित होगा।

साम्यावस्था में राष्ट्र के निर्यातों का मूल्य उसके आयातों के कुल मूल्य के समान होना चाहिए। सम्भावित वस्तु कीमत अनुपातों में से वास्तविक वस्तु कीमत अनुपात वह होगा जिस पर प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अर्पण की गई निर्यात वस्तु की मात्रा निकोलसन (Nicholson) ने इंगित किया कि यदि व्यापाररत दोनों राष्ट्रों का आकार असमान है तो व्यापार की शर्तें बड़े राष्ट्र के व्यापार पूर्व कीमत अनुपात वाली अथवा इसके करीब निर्धारित होंगी अर्थात् व्यापार से समस्त लाभ छोटे राष्ट्र को प्राप्त होंगे।

फ्रेंक डी. ग्राह्म (Frank D. Graham) ने सार में यह स्पष्ट रूप से इंगित किया कि प्रत्येक व्यापारत राष्ट्र को व्यापार से प्राप्त लाभों का पर्याप्त अंश प्राप्त होने हेतु व्यापार में शामिल वस्तुओं का सापेक्ष महत्व तथा साथ ही व्यापार रत राष्ट्रों के सापेक्ष महत्व का समान होना आवश्यक है। अपने इस तर्क के आधार पर ग्राह्म इस बात पर जोर देते है कि स्थिर लागत की स्थिति में, दो राष्ट्र व दो वस्तुओं की मान्यता के अन्तर्गत व्यापार से प्राप्त समस्त लाभ एक ही राष्ट्र को प्राप्त होने की जिस स्थिति को मिल ने 'चरम व मात्र कल्पनीय स्थिति' (extreme and barely Conceivable case) माना वह सामान्य स्थिति होती है। लेकिन ग्राह्म इस बात पर मिल से सहमत हैं व्यापार से प्राप्त लाभों का व्यापार रत राष्ट्रों के मध्य विभाजन सामान्यतया पाई जाने वाली स्थिति (Normal Case) है क्योंकि सामान्यतया दो से अधिक वस्तुओं का व्यापार होता है अत: जब कभी भी वस्तु विशेष के अधिक निर्यातों के परिणामस्वरूप व्यापार की शर्तें राष्ट्र के प्रतिकूल चलन करने लगती है तो वह ऐसी अन्य वस्तुओं का निर्यात करने लगता है जिनमें इसका तुलनात्मक लाभ कम है और इस प्रकार वह व्यापार की शर्तों के प्रतिकूल चलन को नियंत्रित (Checks) करता है। ग्राह्म यह भी स्वीकार करते हैं कि बेस्टेबिल (Bastable) ने छोटे व बड़े राष्ट्र के मध्य व्यापार में इन सम्भावनाओं को पहचाना था लेकिन वे समस्या पर विचार करने की बेस्टेबिल की विधि (Manner) की आलोचना करते हैं।

ग्राह्ला का तर्क तो युक्तियुक्त (Sound) है लेकिन उनके द्वारा की गई मिल की आलोचना का औचित्य आंशिक ही है क्योंकि मिल ने सन् 1852 में अपनी पुस्तक 'Principles' के तृतीय संस्करण में दिये गये एक भाग (Section) में प्रथम बार स्पष्ट रूप से यही समस्या उठाई जो ग्राह्ला ने उठाई है तथा इसका ठीक वही समाधान प्रदान किया जो ग्राह्ला ने किया था।

17.4 व्यापार से प्राप्त लाभों के परिमाण के निर्धारक तत्व (Determinants of the Size of gains from Trade)

व्यापाररत राष्ट्रों को प्राप्त लाभों के परिमाण (Size) के प्रमुख निर्धारक घटक निम्नांकित हैं

17.4.1 तुलनात्मक लागतों के अन्तर:

व्यापार रत राष्ट्रों में व्यापार पूर्व लागत अनुपातों के अन्तर जितने अधिक होंगे उतने ही व्यापार से राष्ट्र अधिक लाभान्वित होंगे।

व्यापार के परिणामस्वरूप प्रत्येक राष्ट्र अपनी निर्यात वस्तु का उत्पादन अधिक तथा आयात वस्तु का उत्पादन कम अथवा शून्य करेगा। उत्पादन में इस परिवर्तन के फलस्वरूप राष्ट्र की निर्यात व आयात वस्तु की उत्पादन लागत परिवर्तित होगी जिससे लागतों के नये अनुपात विस्थापित होंगे । यदि लागतों के ये नये अनुपात भी दोनों व्यापाररत राष्ट्रों में भिन्न है तो और अधिक व्यापार से व्यापाररत राष्ट्र लाभान्वित होंगे। अत: राष्ट्र उस समय तक व्यापार बढ़ायेंगे जब तक दोनों राष्ट्रों में वस्तु लागत अनुपात ठीक बराबर नहीं हो जाते हैं।

17.4.2 व्यापार की शर्तें (Terms of Trade):

राष्ट्र विशेष को व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों का परिमाण (Size) व्यापार की शर्तों पर भी निर्भर करता है।

व्यापार की शर्तें (अथवा अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात) राष्ट्र विशेष के व्यापार पूर्व वस्तु-कीमत अनुपात के जितनी अधिक करीब (Near) होंगी

राष्ट्र को व्यापार में उतना ही कम लाभ प्राप्त होगा। इसी तरह राष्ट्र के व्यापार पूर्व वस्तु-कीमत अनुपात से व्यापार की शर्तें जितनी अधिक भिन्न होंगी उतना ही राष्ट्र व्यापार से अधिक लाभान्वित होगा। यदि व्यापार की शर्तें राष्ट्र विशेष के व्यापार पूर्व वाले वस्तु-कीमत अनुपात के बराबर ही हैं तो राष्ट्र को व्यापार से लाभ प्राप्त नहीं होगा।

व्यापार की शर्तें मिल के 'प्रतिपूरक माँग' (Reciprocal demand) सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होंगी।

17.4.3 अर्पण वक्र की लोच:

व्यापार की शर्तों का परिवर्तन अर्पण वक्र की लोच पर निर्भर करता है। यदि विदेशी राष्ट्र की अर्पण वक्र की लोच अनन्त है तो स्वदेशी राष्ट्र प्रशुल्क जैसे प्रतिबन्ध लगाकर व्यापार की शर्तों को अपने पक्ष में परिवर्तित नहीं कर पायेगा। इसके विपरीत यदि विदेशी राष्ट्र का अर्पण वक्र बेलोचदार है तो स्वदेशी राष्ट्र प्रतिशोधात्मक प्रशुल्क (retaliatory tariff) में प्रशुल्क की अनुपस्थिति में प्रशुल्क द्वारा व्यापार की शर्तें अपने पक्ष में परिवर्तित कर सकता है। ऐसी स्थिति में सामने वाले राष्ट्र के अर्पण वक्र की लोच अनन्त से कम होने पर स्वदेशी राष्ट्र अनुकूलतम प्रशुल्क लगाकर व्यापार से अधिकतम लाभ अर्जित कर सकता है।

17.4.4 उत्पादक कुशलता मे वृद्धि:

यदि स्वदेशी राष्ट्र में उत्पादक कुशलता बढ़ती है तो विदेशी राष्ट्र को वस्तुएँ सस्ती उपलब्ध हो पायेंगी अत: व्यापार की शर्तों में सुधार के परिणामस्वरूप व्यापार की मात्रा में वृद्धि होगी। अत: विदेशी राष्ट्र को व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों में भी वृद्धि होगी।

17.5 छोटे व बड़े राष्ट्र के लिए लाभ अधिकतम की भिन्न शर्तें (Different Conditions for maximization of gains for a small and a large country)

एक छोटा राष्ट्र (अर्थात् ऐसा राष्ट्र जो विश्व बाजार में प्रचलित कीमत को प्रभावित करने में असमर्थ है) पूर्णतया स्वतंत्र व्यापार की नीति अपनाकर व्यापार से प्राप्त लाभ अधिकतम कर सकता है। यहां स्वतंत्र व्यापार से हमारा अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें परिवहन लागतों की अनुपस्थिति में व्यापार में शामिल वस्तुओं की घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय कीमतें समान हो जाती है। अत: छोटे राष्ट्र के लिए 'स्वतंत्र व्यापार' ही 'इष्टतम' (Optimum) नीति है।

जहां बड़े राष्ट्र का प्रश्न है उसके लिये स्वतंत्र व्यापार की तुलना में प्रतिबन्धित व्यापार उत्कृष्ट नीति साबित हो सकती है, लेकिन इतना तो सत्य ही है कि बड़े राष्ट्र के लिए भी स्वतंत्र व्यापार अथवा किसी भी तरह का व्यापार, व्यापार-विहीन स्थिति की तुलना में श्रेष्ठ है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एकाधिकार शक्ति वाले बड़े राष्ट्र के लिए बिना व्यापार की स्थिति की तुलना में स्वतंत्र व्यापार की उत्कृष्टता (Superiority) दर्शाने हेतु प्रो. केम्प (Kemp) ने निम्न स्पष्टीकरण किया है :-

चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एकाधिकारी शक्ति वाला राष्ट्र व्यापार प्रतिबन्ध लगाकर व्यापार की शर्तें अपने पक्ष में परिवर्तित करने में सक्षम होता है अत: ऐसा राष्ट्र व्यापार प्रतिबन्ध द्वारा कल्याण के उच्च स्तर पर पहुंचने में सफल हो सकता है। लेकिन जब व्यापार प्रतिबन्ध द्वारा व्यापार-विहीन अवस्था प्राप्त करली जाती है तो व्यापार की शर्तों में सुधार से प्राप्त लाभ भी शून्य हो जाता है क्योंकि जब व्यापार ही नहीं होगा तो विदेशी व्यापार की शर्तों अथवा उनसे प्राप्त लाभ विद्यमान होने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

अत: प्रत्येक राष्ट्र (चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा के लिए व्यापार विहीन स्थिति की तुलना में स्वतंत्र व्यापार अथवा व्यापार की स्थिति उत्कृष्ट होती है) अत: स्पष्ट है कि राष्ट्र व्यापार से लाभान्वित होते हैं।

17.6 व्यापार से प्राप्त लाभों का माप

समय विशेष पर व्यापार से प्राप्त लाभों को ज्ञात करने हेतु यह जानना आवश्यक है कि राष्ट्र सस्ते विदेशी स्रोत से आयात करने की बजाय यदि स्वयं इन्हें उत्पादित करता तो आयात उसे कितनी लागत पर प्राप्त होते हैं लेकिन इस तरह लाभों की सही-सही गणना करने हेतु आवश्यक सूचना पूर्णतया अपर्याप्त है। उतना ही नहीं यदि ऐसी सूचना उपलब्ध हो तो भी व्यापार से प्राप्त लाभों की गणना हेतु अत्यधिक परिश्रम आवश्यक है। अत: अर्थशास्त्री समय विशेष पर व्यापार से प्राप्त निरपेक्ष लाभ मापने का प्रयत्न करने की बजाय इस लाभ के चलन की दिशा (direction of movement) का ही आकलन करते हैं। इस आकलन हेतु अर्थशास्त्री व्यापार की शर्तों के परिवर्तनों को मापने हेतु भिन्न रीतियां प्रयुक्त करते हैं।

व्यापार से प्राप्त लाभों की प्रवृत्ति को मापने का सर्वाधिक प्रचलित मापदण्ड 'वस्तु व्यापार की शर्तें' अथवा 'वस्तु विनियम व्यापार की शर्तें' हैं। वस्तु व्यापार की शर्तें राष्ट्र के निर्यातों व आयातों की कीमतों का सम्बन्ध दर्शाती हैं। इन्हें निम्नांकित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :-

$$Tc = \frac{Px_1}{Px_0} / \frac{Pm_1}{Pm_0}$$

$$\frac{Pm_1}{Pm_0} \frac{140}{100} \frac{Px}{Pm}$$

यहां x व m क्रमश: निर्यात व आयात है तथा 1 व 0 क्रमश: चालू वर्ष व आधार वर्ष हैं। उदाहरणार्थ, माना कि राष्ट्र विशेष की व्यापार की शर्तों के लिए हम सन् 1965 को आधार वर्ष लेते हैं अत: उस वर्ष के आयात व निर्यात कीमतों के निर्देशांक 100 हैं। यदि सन् 1975 में निर्यात वस्तुओं की

कीमतों का निर्देशांक 120 व आयात वस्तुओं की कीमतों का निर्देशांक 140 हो जाता है तो व्यापार की शर्तों का परिवर्तन निम्नांकित होगा :-

$$Tc = \frac{120}{100} / \frac{140}{100} = 0.86$$

0.86 (लगभग) अर्थात 0.86 x 100 = 86

इसका अभिप्राय यह है कि इस राष्ट्र की व्यापार की शर्तें सन् 1965 की तुलना में 1975 में 14 प्रतिशत प्रतिकूल हो गई है। इस परिवर्तन को दो प्रकार से निर्वाचित किया जा सकता है। या तो हम कह सकते हैं कि राष्ट्र को दी हुई निर्यातों की मात्रा के विनिमय में अब 14 प्रतिशत कम आयात प्राप्त हो रहे हैं अथवा दी हुई आयातों की मात्रा प्राप्त करने हेतु इस राष्ट्र को 16 प्रतिशत अधिक निर्यात देने होंगे। अर्थात् राष्ट्र को व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों में कमी हुई है। इसी प्रकार व्यापार की शर्तों के सुधार को राष्ट्र को व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों में वृद्धि का सूचक माना जाता है।

लेकिन व्यापार की शर्तों में परिवर्तन के साथ अन्य परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप व्यापार से प्राप्त लाभों में वृद्धि अथवा कमी से सम्बद्ध निष्कर्ष भी प्रभावित होंगे । उदाहरणार्थ, सूचकांकों के परिवर्तनों में आयात-निर्यात वस्तुओं की गुणवत्ता (quality) के परिवर्तनों का समावेश नहीं होता है। इसके अतिरिक्त सूचकांकों में आधार वर्ष के बाद के वर्षो में आयातों व निर्यातों में शामिल नई वस्तुओं को शामिल नहीं किया जा सकता है। अत: समयावधि जितनी कम होगी उतना ही व्यापार की शर्तों का परिवर्तन व्यापार से प्राप्त लाभों की दिशा में चलन का अधिक उत्तम मापदण्ड होगा।

इसी प्रकार यदि व्यापार की शर्तें प्रतिकूल हो जाने के साथ-साथ राष्ट्र के निर्यातों में वृद्धि हो जाती है तो राष्ट्र की 'आयात क्षमता' में सुधार होना सम्भव है। यद्यपि 'आयात क्षमता' व्यापार से प्राप्त लाभों में परिवर्तन का माप नहीं है लेकिन यह राष्ट्र की भुगतान क्षमता को अवश्य इंगित करती है।

इसी प्रकार व्यापार की शर्तों का परिवर्तन पूर्ण अथवा आंशिक रूप से निर्यात क्षेत्र की उत्पादन दक्षता (Productive efficiency) के परिवर्तनों द्वारा दुरुस्त हो सकता है। अत: 'एकल कारक व्यापार की शर्तों' (Single Factorial Terms of Trade) का समावेश वांछनीय होगा।

अत: स्पष्ट है कि व्यापार से प्राप्त लाभों की दिशा इंगित करने हेतु 'व्यापार की शर्तों' के चलानों के निर्देशांक का उपयोग अत्यधिक सावधानी पूर्वक ही किया जाना चाहिए।

17.7 व्यापार से प्राप्त गत्यात्मक लाभ (Dynamic gains from Trade)

हमारे अब तक के विश्लेषण में हमने व्यापार से प्राप्त स्थैनिक (Static) लाभों पर ही ध्यान केन्द्रित किया था तथा कारक पूर्ति व तकनीकी को अपरिवर्तित मान लिया था। उपभोक्ताओं पर व्यापार के माध्यम से नई वस्तुओं से अवगत होने का प्रभाव एवं उत्पादकों द्वारा उत्पादन की नई विधियों को अपनाने हेतु उत्प्रेरित होने के प्रभाव को नजरअन्दाज किया गया था।

लेकिन व्यापार के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था होने वाले अनेक अन्य परिवर्तनों से भी राष्ट्र लाभान्वित होता है। व्यापार के इन गत्यात्मक लाभों को हम निम्न शीर्षकों में विभाजित करके स्पष्ट कर सकते हैं -

17.7.1 तीव्र आर्थिक विकास

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा पूर्ण रोजगार वाली अर्थव्यवस्था में उत्पादन कारकों के अधिक कुशल उपयोग के परिणामस्वरूप आय में वृद्धि होती है। आय की इस वृद्धि के साथ बचत में वृद्धि होगी तथा विनियोग हेतु अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध होंगे। इसके अतिरिक्त विदेशी व्यापार से सापेक्ष कीमतें परिवर्तित होती हैं। जिससे विनियोग की प्रवृति और अधिक प्रबल होती है। उदाहरणार्थ, यदि राष्ट्र विनियोग वस्तुओं का आयात कर रहा है अथवा ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में आयातित माल

प्रयुक्त होता है तो व्यापार के परिणामस्वरूप आयातों की कीमत निर्यात वस्तुओं व अन्य वस्तुओं के सापेक्ष के रूप में घटने से विनियोग की प्रवृत्ति और प्रबल होगा।

17.7.2 तकनीकी अन्तराल (gap) में कमी

व्यापार में तैयार माल के साथ-साथ संयंत्र (Plant), उप-निर्मित व अर्द्ध-निर्मित माल व कच्ची सामग्री भी शामिल होती है। चूँकि अधिकांश विकासशील राष्ट्र तर्क ज्ञान के अभाव में स्वयं इस तरह के संयंत्र व उपकरण तैयार करने में असमर्थ होते हैं अत: ऐसे उपकरणों व्यापार से सदियों से चला आ रहा तकनीकी अन्तराल एक पीढ़ी की अवधि में ही समाप्त हो जाता है।

17.7.3 निर्यात अगुवाई वाला विकास (Export-led growth)

निर्यातों से अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र भी प्रभावित होता है जब निर्यात उद्योगों का विस्तार होता है तो इन्हें अन्य क्षेत्रों से उपादानों (inputs) की आवश्यकता होती है जिसे उपादान उत्पादित करने वाले उद्योगों को विनियोग तकनीकी विकास हेतु प्रेरणा, मिलती है। इसी प्रकार निम्न उद्योगों में कार्यरत लोगों की आय व जीवन स्तर में वृद्धि के साथ इन लोगों द्वारा उपयोग में ली जाने वाली वस्तुओं की मात्रा व गुणवत्ता में वृद्धि होती है। उत्पादन की इस वृद्धि के साथ इन उद्योगों को उपादान की पूर्ति करने वाले उद्योगों में विकास की प्रेरणायें बढ़ती है। इस प्रकार के निर्यात अगुवाई' वाले विकास ने अनेक राष्ट्रों के आर्थिक विकास में भूमिका निभाई है।

17.7.4 घरेलू बाजार के आकार में वृद्धि

विदेशी व्यापार के विकास के परिणामस्वरूप बाजार के आकार में होने वाली वृद्धि से विकसित व विकासशील दोनों ही प्रकार के राष्ट्र लाभान्वित होते हैं। निर्यातों के फलस्वरूप छोटे व मध्यम दोनों ही प्रकार के राष्ट्र ऐसे अनेक कुशल आकार के संयंत्र चालू करने में सक्षम हो जाते हैं

जो व्यापार विहीन अवस्था में चालू रखने असम्भव थे। अत: फर्में न केवल 'आन्तरिक मितव्ययताओं ' से ही लाभान्वित होती है अपितु अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धी कीमतें विद्यमान रहने से फर्मों पर उत्पाद सुधार, तकनीकी प्रगति एवं नव प्रवर्तनों (innovations) को लागू करने का सुप्रभाव भी पड़ता है।

17.7.5 समग्र औद्योगिक विकास के लाभ

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट ही है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में समग्र (overall) औद्योगिक विकास सम्भव होता है जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक आधारिक संरचना (infra-structure) जैसे परिवहन, शक्ति के स्त्रोत आदि-का विकास होता है। इन सुविधाओं से समस्त उद्योग लाभान्वित होते हैं अर्थात् 'बाह्य मितव्ययताएँ' विकसित होती है।

इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणाम स्वरूप घरेलू एकाधिकारी स्थिति के बावजूद आयात-प्रतिस्पर्धी उद्योगों पर आयातों की प्रतिस्पर्धा में टिके रहने हेतु प्रतियोगी-कीमत वसूल करने का प्रभाव भी उत्पन्न होता है।

अन्त में हम कह सकते हैं व्यापार से प्राप्त गत्यात्मक लाभों का सही-सही मापना तो सम्भव नहीं है लेकिन ये लाभ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं तथा व्यापाररत राष्ट्र द्वारा इनमें लाभान्वित होने की भारी सम्भावना बनी रहती है।

17.8 सारांश

एडम स्मिथ, रिकार्डो व अन्य प्रतिदिन अर्थशास्त्रियों ने व्यापाररत राष्ट्रों को व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों की स्पष्ट व प्रभावी व्याख्या की है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों में प्रो. सैम्युअलसन ने अपने लेखों में इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

व्यापाररत राष्ट्र व्यापार तभी करते हैं जब उन्हें व्यापार से लाभ प्राप्त हो। व्यापाररत राष्ट्रों को व्यापार से विनिमय व विशिष्टीकरण से लाभ प्राप्त होते हैं। पूर्णतया स्वतंत्र व्यापार से विश्व उत्पादन अधिकतम हो जाता है। व्यापार से घरेलू एकाधिकारों पर अंकुश लगता है, घरेलू बाजार का विस्तार होता है, प्रत्येक निर्यातकर्ता राष्ट्र निर्यात वस्तु को विश्व के आधुनिकतम उत्पादन तकनीक से उत्पादित करता है, प्रत्येक राष्ट्र को निर्यात वस्तु की ऊंची कीमत प्राप्त होती है तथा आयात वस्तु सस्ती उपलब्ध होती है।

व्यापार चाहे स्वतंत्र हो अथवा प्रतिबन्धित वह व्यापार विहीन स्थिति से उत्तम होता है। इस बिन्दु को उत्पादन सम्भावना वक्र द्वारा भलि-भाँति दर्शाया जा सकता है।

व्यापार से प्राप्त लाभों का वितरण प्रतिपूरक माँग (Reciprocal Demand) द्वारा निर्धारित व्यापार की शर्तों पर निर्भर करता है। व्यापार से प्राप्त लाभों का परिमाण (Size) तुलनात्मक लागतों के अन्तर, व्यापार की शर्तों, अर्पण वक्र की लोच, उत्पादक कुशलता में वृद्धि आदि पर निर्भर करता है।

छोटे राष्ट्र के लिए स्वतंत्र व्यापार एक 'इष्टतम' नीति है। जबकि व्यापार से एकाधिकारी शक्ति वाले बड़े राष्ट्र के संदर्भ में ऐसा निष्कर्ष संभव नहीं है लेकिन व्यापार विहीन स्थिति की तुलना में व्यापार की स्थिति प्रत्येक राष्ट्र के लिए उत्कृष्ट है।

व्यापार से प्राप्त लाभों के चलन की दिशा ज्ञात करने हेतु 'व्यापार की शर्तों' के परिवर्तनों के साथ होने वाले अन्य प्रकार के परिवर्तनों का समावेश आवश्यक है।

व्यापार से प्राप्त गत्यात्मक लाभ भी काफी महत्वपूर्ण होते हैं। इन लाभों में तीव्र आर्थिक विकास, तकनीकी अन्तराल में कमी, नियति

अगुवाई वाला विकास, घरेलू बाजार के आकार में वृद्धि, समग्र औद्योगिक विकास के लाभ आदि प्रमुख हैं।

17.9 शब्दावली

प्रतिपूरक मांग (Reciprocal demand): मांग की वह मात्रा जो एक राष्ट्र भिन्न वस्तु कीमत अनुपातों पर आयातों की भिन्न मात्राओं के बदले निर्यातों की प्रस्तुति के रूप में करता है।

व्यापार की शर्तें (Terms of trade): आयातों व निर्यातों की कीमतों का आपसी अनुपात ही व्यापार की शर्तें कहलाता है, उदाहरणार्थ, वस्तु अथवा शुद्ध (net) व्यापार की शर्तों (TC) को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है :-

$$TC = \frac{Px}{Pm}$$

यहाँ Px क्रमश: आयात व निर्यात कीमतों के निर्देशांक हैं।

छोटा राष्ट्र (Small Country): छोटा राष्ट्र वह राष्ट्र है जो विश्व बाजार में प्रचलित वस्तु-कीमत अनुपात को प्रभावित नहीं कर पाता है अर्थात् उसकी आयात अथवा निर्यात के सन्दर्भ में एकाधिकारी स्थिति नहीं है।

व्यापार से प्राप्त स्थैतिक लाभ (Static gains from Trade) स्थिर साधन पूर्ति की स्थिति में व्यापार के माध्यम से विशिष्टीकरण व विनिमय से प्राप्त होने वाला लाभ।

व्यापार से प्राप्त गत्यात्मक लाभ (Dynamic gains from trade):व्यापार का राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि (growth) पर पड़ने वाला प्रभाव तथा इस प्रकार व्यापार रत राष्ट्र द्वारा प्रयुक्त अथवा उपलब्ध कराये जाने वाले अतिरिक्त साधनों पर पड़ने वाले व्यापार के प्रभाव को गत्यात्मक लाभों में सम्मिलित किया जाता है।

निर्यात अगुवाई वाला विकास (Export Led growth): निर्यात उद्योगों के विस्तार का अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में विनियोग व तकनीकी विकास के रूप में प्रभाव व अन्य क्षेत्रों से नई-नई वस्तुओं की मांग उत्पन्न करने का प्रभाव जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास को गति प्रदान हो।

17.10 बोध प्रश्न

1. व्यापार से प्राप्त लाभों का उदय कैसे होता है?
2. व्यापार से प्राप्त लाभों की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
3. चित्र द्वारा दर्शाइये कि व्यापार विहीन स्थिति की तुलना में व्यापार की स्थिति उत्तम होती है।
4. व्यापार से प्राप्त लाभों का व्यापाररत राष्ट्रों वितरण किस आधार पर होता है? (17.3)
5. व्यापार से प्राप्त लाभों के परिमाण के कोई दो निर्धारक तत्व बतलाइये। (17.4)
6. व्यापार की शर्तों को व्यापार से प्राप्त लाभों के सूचक के रूप में प्रयुक्त करते समय किन घटकों का समावेश अपेक्षित है। (17.6)
7. व्यापार से प्राप्त किन्हीं दो गत्यात्मक लाभों की प्रकृति स्पष्ट कीजिए। (17.7)

17.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. स्वामी, के.डी. : अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साइंटिफिक पब्लिशर्स, मान भवन, रातानाडा, जोधपुर (1989) 342001-
2. बरला व अग्रवाल : अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा
3. Viner, Jacob : Studies in the Theory of International Trade, George Allen and Unwin.
4. Haberler, G. : The Theory of International Trade – William Hodge & Co. Ltd.
5. Kreinin, M.E. : International Economics 2 / e – Harcourt Brace.
6. Batra, R.N. : Studies in the Pure Theory of International Trade &

Macmillan
7. Chacholidas, M. : Principles of International Economics, MC Graw Hill

इकाई 18

तटकर: तटकर के प्रभाव, तटकर की लागतें, लाभ एवं प्रभावी संरक्षण दर

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 तटकर के प्रभाव

18.2.1 राजस्व प्रभाव

18.2.2 संरक्षणात्मक प्रभाव

18.2.3 पुनर्वितरण प्रभाव

18.2.4 उपभोग प्रभाव

18.2.5 कीमत प्रभाव

18.2.6 तटकर एवं आय का वितरण: स्टोलपर सेमुअलसन प्रमेय।

18.2.7 तटकर; व्यापार की शर्तें एवं कीमतें।

18.2.8 तटकर एवं राष्ट्रीय आय

18.2.9 तटकर एवं बेरोजगारी

18.2.10 तटकर एवं भुगतान संतुलन

18.3 तटकर की लागतें एवं लाभ:

18.3.1 तटकर की आर्थिक लागतें

18.3.2 तटकर के लाभ

18.4 प्रभावी संरक्षण दर एवं अनुकूलतमतटकर

18.4.1 प्रभावी संरक्षण दर

18.4.2 अनुकूलतम तटकर

18.4.3 प्रतिशोधात्मक तटकर

18.5 बोध प्रश्न

18.6 सारांश

18.7 शब्दावली

18.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित है-

- तटकर तथा तटकर के मुख्य प्रभावों का अध्ययन करना।
- तटकर की लागतों एवं लाभों का विश्लेषण करना, तथा
- प्रभावी संरक्षण दर की जानकारी एवं अनुकूलतम तटकर के विचार की व्याख्या करना।

18.1 प्रस्तावना

क्लासिकल अर्थशास्त्री मुक्त व्यापार के समर्थक थे उनके अनुसार: उत्पादन के साधनों के समुचित उपयोग, भौगोलिक श्रम-विभाजन, उपभोक्ताओं को लाभ, एकाधिकारी संघों पर प्रतिबंध, उत्पादन विधियों एवं तकनीक में सुधार, एवं बाजारों के विस्तार की दृष्टि से मुक्त व्यापार

लाभदायक होता है। आधुनिक वर्षो में मुक्त व्यापार की नीति का महत्व दिनों दिन कम होता जा रहा है तथा संरक्षण की नीति का अनुसरण बढ़ता जा रहा है। सर्वप्रथम 1791 में अमरीकी अर्थशास्त्री है मिल्टन ने देश के आर्थिक विकास हेतु संरक्षण के सिद्धान्त का सुझाव दिया था। जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट भी संरक्षण नीति के प्रबल समर्थक थे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद लगभग विश्व के सभी देशों ने संरक्षण नीति का अनुसरण प्रारम्भ कर दिया हैं।

संरक्षण के पक्ष में मुख्य रूप से: उद्योगों स्वदेशी बाजार, आधार उद्योगों एवं रोजगार में वृद्धि का तर्क दिया गया तथा राष्ट्र के प्राकृतिक साधनों के उचित उपयोग, द्रव्य को घर में रखने, लागतों को समान रखने संरक्षित उद्योगों में उत्पादन वृद्धि व्यापार संतुलन राशिपातन से सुरक्षा, राष्ट्रीय स्वावलम्बता एवं राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी तर्क भी संरक्षण के पक्ष में दिये गये। संरक्षण नीति में आयात-व्यापार पर प्रतिबंध लगाये जाते है। ये प्रतिबंध मुख्य रूप से व्यापारिक प्रतिबंधों, करों एवं कोटा निर्धारण द्वारा लगाये जाते है। आयात-निर्यात पर लगाये जाने वाले करों को तटकर कहा जाता है। तटकर द्वारा ही संरक्षण नीति को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया जाता है।

18.2 तटकर के प्रभाव

आयात पर कर तटकर मुख्य रूप से घरेलू बाजार को संरक्षण प्रदान करने एवं राजस्व प्राप्त करने की दृष्टि से लगाये जाते है। इस भाग में हम तटकर के प्रभावों का अध्ययन करेंगे। तटकर के मुख्य प्रभाव निम्नांकित है :-

आंशिक विश्लेषण

चित्र 18.1 में आंशिक विश्लेषण द्वारा तटकर के प्रभावों को दिखाया गया है तटकर से पूर्व कीमतें OP है, OQ_5 मात्रा का उपभोग हो रहा है उत्पादन OQ_1 है तथा Q_1Q_5 मात्रा का

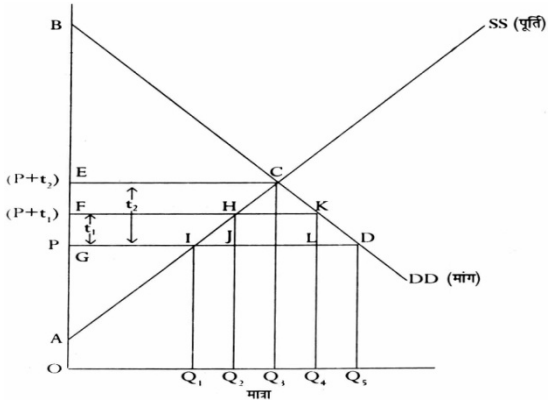

आयात हो रहा है। तटकर के राजस्व, संरक्षणात्मक, पुनर्वितरण उपभोग एवं कीमत प्रभावों की व्याख्या इस चित्र के द्वारा निम्न प्रकार से की जा सकती है।

18.2.1 राजस्व प्रभाव

तटकर एक विशेष प्रकार के कर है जो सरकार के राजस्व में वृद्धि करते है। चित्र 18.1 कीमत OP पर यदि t_2 के बराबर तटकर लगा दिये जायें तो आयात शून्य हो जाएंगे और सरकार की आय में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होगी। इस तटकर को निषेधात्मक तटकर कहा जाता है। यदि तटकर की मात्रा t_1 के बराबर है तो नई कीमत P+t_1 पर आयात Q_2Q_4 के बराबर होगा तथा सरकार की आय में होने वाली कुल वृद्धि JHKL के बराबर होगी। आय में होने वाली यह वृद्धि तटकर के राजस्व प्रभाव को प्रकट करती है।

18.2.2 संरक्षणात्मक प्रभाव

तटकर के परिणामस्वरूप घरेलु कीमतें OP से बढ़कर OP_1 हो जाती है। बढ़ी हुई कीमतों पर घरेलु उत्पादन OQ_1 से बढ़कर OQ_2 हो जाता है। उत्पादन में होने वाली यह वृद्धि तटकर का संरक्षणात्मक प्रभाव है। तटकर का संरक्षणात्मक प्रभाव पूर्ति वक्र की लोच पर निर्भर करता है। यदि पूर्ति वक्र अधिक लोचदार है तो उत्पादन में होने वाली वृद्धि अधिक होगी और बेलोचदार होने पर उत्पादन में वृद्धि कम होगी।

18.2.3 पुनर्वितरण प्रभाव

तटकर के परिणाम स्वरूप उत्पादकों की आय में वृद्धि GFHJ क्षेत्र के बराबर होती है। इस क्षेत्र में से GIHF क्षेत्र उत्पादक की बचत को प्रकट करता है। यह वह मात्रा है जो उपभोक्ताओं से उत्पादकों की ओर जाती है आय के इस स्थानान्तरण को तटकर पुनर्वितरण प्रभाव कहा जाता है। यह प्रभाव उपभोक्ताओं के प्रतिकूल एवं उत्पादकों के पक्ष में होता है।

18.2.4 उपभोग प्रभाव

तटकर का उपभोग प्रभाव कुल उपभोग में कमी करता है। तटकर से पूर्व कुल उपभोग OQ_5 के बराबर था जब कि t_1 तटकर के बाद कुल उपभोग कम होकर OQ_4 हो जाता है। इस प्रकार उपभोग में होने वाली कमी Q_4Q_5 तटकर के उपभोग प्रभाव को दिखाती है। तटकर के परिणाम स्वरूप उपभोक्ता की बचत में भी शुद्ध कमी होती है। तटकर के पूर्व उपभोक्ता की बचत GBD के बराबर थी जो घटकर तटकर के बाद FBK के बराबर रह जाती है। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत में शुद्ध कमी GFKD क्षेत्र के बराबर होती है।

18.2.5 कीमत प्रभाव

तटकर विश्लेषण की यह व्याख्या इस मान्यता पर आधारित है कि तटकर के परिणामस्वरूप विदेशी कीमतें (आयात कीमतें) अपरिवर्तित रहती है घरेलु कीमतें तटकर के बराबर बढ़ जाती है। तटकर का कीमत प्रभाव कीमतों में वृद्धि के रूप में होता है। t_1 तटकर लगाने पर OP कीमतें बढ़कर OP_1 हो जाती है। वास्तव में आयातक देश में वस्तुओं की कीमतें कितनी बढ़ेगी और निर्यातक देश में कीमतें किस प्रकार से परिवर्तित होगी यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उत्पादन में लागत वृद्धि समता या हासमान कौन सा नियम लागू हो रहा है।

18.2.6 तटकर एवं आय का वितरण: स्टोलपर-सेमुअलसन प्रमेय: -

स्टोलपर-सेमुअलसन ने तटकर के आय-वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या सामान्य साम्य विश्लेषण के द्वारा निम्न प्रकार से की है।

चित्र 18.2

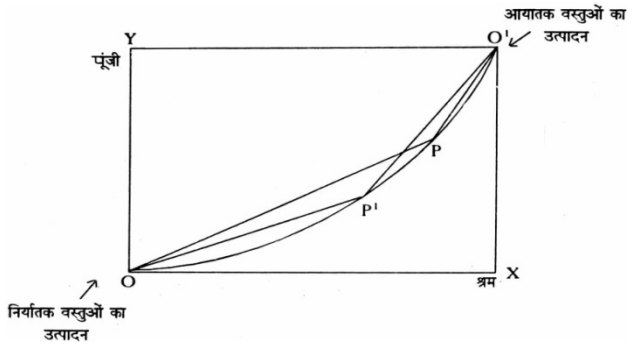

चित्र 18.2 के द्वारा स्टोलपर-सेमुअलसन प्रमेय की व्याख्या की गई है। चित्र में OQ' एक प्रसंविदा वक्र है, OX पर श्रम तथा OY पर पूंजी को दिखाया गया है, निर्यातक वस्तुओं के उत्पादन को O से तथा आयातक वस्तुओं के उत्पादन को O' से मापा गया है। स्वतंत्र व्यापार के समय साम्यावस्था P बिन्दु पर है। तटकर के परिणामस्वरूप आयात वस्तुओं की घरेलु कीमतों में वृद्धि हो जाती है। घरेलु उत्पादक अपनी उत्पादन संरचना में परिवर्तन करते है, आयातक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाते है एवं निर्यातक वस्तुओं का उत्पादन कम करते है। नया उत्पादन साम्यावस्था बिन्दु P' पर आ जाता है।

इस परिवर्तन का साधन कीमतों पर पड़ने वाले प्रभाव को भी चित्र 18.2 द्वारा दिखा सकते हैं। निर्यात क्षेत्र में उत्पादन विधियां अधिक श्रम गहन हो जाती है तथा अयात-प्रतिस्थापन उद्योगों में भी श्रम गहनता बढ़ जाती है ऐसा इस वजह से होता है क्योंकि उत्पादक महंगी पूंजी के स्थान पर सस्ते श्रम का प्रतिस्थापित करने लगते है। आयातक वस्तु उद्योगों में प्रमुख साधन पूंजी की कीमतें बढ़ती है तथा श्रम की मजदूरी घटती है। आय वितरण पूंजी के पक्ष में तथा श्रम के प्रतिकूल हो जाता है।

स्टोलपर-सेमुअलसन प्रमेय के अनुसार तटकर आय वितरण को उस साधन के पक्ष में परिवर्तित करेगा जिसका प्रयोग आयात-प्रतिस्थापन उद्योगों में अधिक हो रहा है। तटकर से आयातक वस्तुओं की कीमतें बढ़ती है, इस वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त साधन की मांग बढ़ती है और उसकी कीमतें बढ़ने लगती है।

उत्पादन बिन्दु P से P^1 हो जाने पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता (MPP_1) में कमी हो जाती है क्योंकि श्रम की अतिरिक्त इकाइयों को काम पर लगाया जाता है और चुंकि पूर्ण रोजगार की स्थिति में प्रतिफल का निर्धारण सीमान्त उत्पादकता से होता है अंत: राष्ट्रीय आय में श्रम का अंश कम हो पाता है

मान्यताएँ : उपर्युक्त विश्लेषण निम्नांकित मान्यताओं पर आधारित है-

(1) उत्पादन फलन समरूप है।

(2) आय का वितरण पूर्ण रूप से श्रम एवं पूंजी के मध्य हो जाता है अत : लाभ शून्य है।

(3) वस्तु एवं साधन बाजार में प्रतियोगिता।

(4) पूर्ण रोजगार की स्थिति विद्धान है।

(5) दो वस्तु एवं दो साधन।

(6) व्यापार शर्तें पूर्ववत रहती है।

स्टोलपर-सेमुअलसन प्रमेय को गणितीय रूप में निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है- स्वतंत्र व्यापार की स्थिति में P बिन्दु पर:

$$Y = L.w + C.r$$

यहाँ $Y =$ राष्ट्रीय आय, $L =$ श्रम की मात्रा $w =$ मजदूरी $C. =$ पूंजी की मात्रा तथा $r =$ पूंजी के प्रतिफल को व्यक्त करते है।

तटकर के परिणामस्वरूप उत्पादन P^1 पर आ जाता है जहाँ,

$$y_1 = L.w_1 + C.r_1$$

चुँकी साधनों का प्रतिफल साधन गहनता का फलन है अत:

$$L.w_1 < L.w \text{ तथा}$$

$$C.r_1 > C.r$$

क्योंकि $w_1 < w$ तथा $r_1 < r$ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तटकर के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आय में श्रम का अंश कम हो जाता है और पूंजी का अंश बढ़ जाता है। यह तटकर का आय-वितरण प्रभाव है।

18.2.7 तटकर, व्यापार की शर्तें एवं घरेलू कीमतें:

तटकर के परिणामस्वरूप व्यापार की शर्तों एवं घरेलू कीमतों पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या सामान्य साम्य की दशाओं में निम्न प्रकार से की जा सकती है:

चित्र 18.3

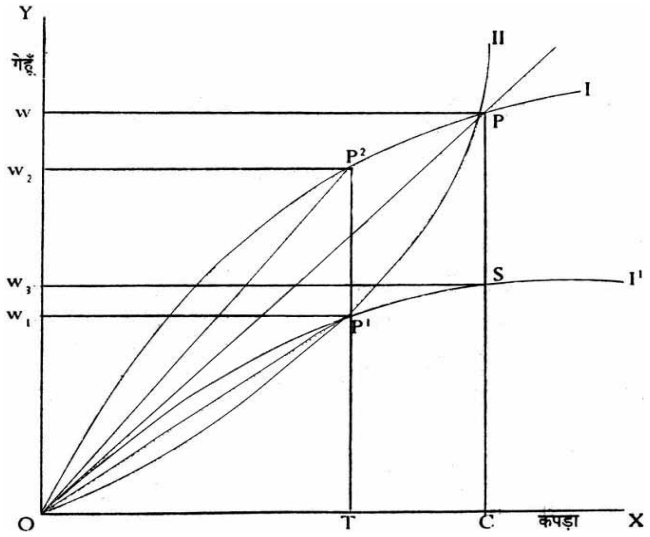

प्रथम देश को गेहूँ के उत्पादन में तथा द्वितीय देश के कपड़े के उत्पादन में 'तुलनात्मक लाभ है। चित्र 18.3 में OI प्रथम देश का तथा OII द्वितीय देश का प्रस्ताव वक्र है। साम्यावस्था P बिन्दु पर है जहाँ OC कपड़े OW गेहूँ के बदले विनिमय किया जा रहा है। साम्यावस्था व्यापार की शर्तें OP है।

प्रथम देश तटकर लगाता है, उस देश का नया प्रस्ताव वक्र OP' हो जाता है। नई स्थिति में OC कपड़े के बदले प्रथम देश के आयातक केवल OW_3 गेहूँ देना चाहेंगे क्योंकि उन्हें तटकर का भी भुगतान करना पड़ रहा है। अतिरिक्त मात्रा $WW^3 = PS$ तटकर के बराबर होगी। नया साम्यावस्था बिन्दु P' होगा। इस बिन्दु पर व्यापार की मात्रा पहले से कम हो गई है तथा व्यापार की शर्तें प्रथम देश के अनुकूल हो गई है। अनुकूल व्यापार शर्तों के परिणाम स्वरूप प्रथम देश को पहले की तुलना में प्रति इकाई निर्यात पर अधिक आयात प्राप्त हो रहे हैं। चित्र 18.3 के अनुसार $TP'/W'W' < CP/WP$ है यह अनुपात व्यापार की शर्तों में अनुकूल परिवर्तन को दिखाता है। व्यापार शर्तों की नई रेखा OP' हो जाती है।

यदि द्वितीय देश का प्रस्ताव वक्र पूर्ण तथा लोचदार है तो तटकर से व्यापार शर्तें अप्रभावित रहेगी केवल व्यापार की मात्रा कम हो जाएगी।

तटकर के परिणामस्वरूप घरेलू कीमतें बढ़ती है। चित्र 18.3 के अनुसार अन्तराष्ट्रीय बाजार में प्रथम देश P^1 बिन्दु पर OW_1 गेहूँ का OT कपड़े से विनिमय कर रहा है किन्तु घरेलू बाजार में OT कपड़े के लिए OW_2 गेहूँ देना पड़ेगा अर्थात आयातक वस्तु की कीमतें घरेलु बाजार में बढ़ जाती है। (OP^2 रेखा OP रेखा से बांयी तरफ है)। इस प्रकार तटकर के परिणामस्वरूप व्यापार शर्तों में सामान्यतया अनुकूल परिवर्तन होते हैं, घरेलु कीमतें बढ़ती है और आय वितरण पर प्रभाव स्टोलपर-सेमुअलसन प्रमेय के अनुसार होते हैं। अर्थात तटकर उस साधन को लाभान्वित करेंगे जिसका प्रयोग आयात प्रतियोगी वस्तु उद्योगों में अधिक गहनता से हो रहा है।

18.2.8 तटकर एवं राष्ट्रीय आय

तटकर के राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रभाव को चित्र 18.4 में दिखाया गया है।

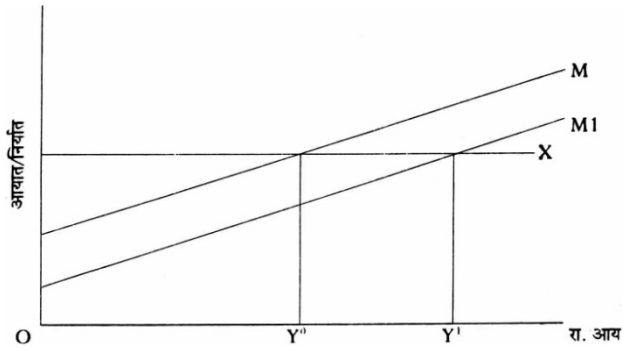

रेखा चित्र 18.4

तटकर से पूर्व आयात M रेखा एवं निर्यात X रेखा द्वारा दिखाये गये हैं। संतुलन स्तर पर राष्ट्रीय आय y0 है। तटकर के प्रभावों से आयात कम हो जाते है। नई आयात रेखा M_1 हो जाती है। नये संतुलन स्तर पर राष्ट्रीय आय बढकर y^1 हो जाती है। इस प्रकार तटकर के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

18.2.9 तटकर एवं बेरोजगारी

तटकर का प्रयोग कई बार बेरोजगारी को समाप्त करने या कम करने के लिए भी किया जाता है। इस प्रकार की नीति को 'Beggar-my-neighbour' की नीति कहा जाता है। यदि व्यापार कर्ता दोनों राष्ट्रों में बेरोजगारी है तो तटकर लगाने वाला राष्ट्र कुछ सीमा तक बेरोजगारी को निर्यात करने में सफल हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्रतिशोधात्मक तटकर प्रारम्भ हो जाते है और वास्तव में तटकर के लाभ प्राप्त नहीं हो पाते। यदि बेरोजगारी एक ही देश में है और वह देश तटकर का प्रयोग करता है तो उस देश में निश्चित रूप से बेरोजगारी में कमी होगी और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।

18.2.10 तटकर एवं भुगतान संतुलन

तटकर भुगतान संतुलन पर अनुकूल प्रभाव डालता है। जब एक देश तटकर लगाता है तो इसका आरंभिक प्रभाव आयातों में कभी के रूप में दिखाई देता है, निर्यात अप्रभावित रहते है फलस्वरूप भुगतान संतुलन पर अनुकूलन प्रभाव होता है। अन्तिम प्रभाव किस प्रकार के होंगे यह इस

बात पर निर्भर करेगा कि व्यापारकर्ता दूसरा देश किस प्रकार का व्यवहार करता है यदि प्रतिशोध कम है तो अनुकूल प्रभाव जारी रहेंगे। यदि व्यापारकर्ता देश प्रतिशोधात्मक तटकर लगाना प्रारंभ कर देता है तो अनुकूल प्रभाव प्रतिबंधित हो जाएगें। तटकर के परिणामस्वरूप बढ़ी हुई आय का प्रयोग आयात बढ़ाने में किये जाने पर भी भुगतान संतुलन के अनुकूल प्रभाव सीमित हो जाएंगे।

इस प्रकार तटकर से सरकार की आय में वृद्धि होती है, घरेलु कीमतों में वृद्धि होती है, उत्पादन बढ़ता है, उपभोग में कर्मी होती है, आयात में कमी होती है, राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है, बेरोजगारी कम होती है तथा भुगतान संतुलन पर अनुकूल प्रभाव होते है। इस नीति के अनुकूल प्रभाव मुख्य रूप से इसके क्रियान्वयन तथा व्यापारकर्ता देश के व्यवहार पर निर्भर करेंगे। अंत: इस नीति का प्रयोग राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों के पूर्ण विश्लेषण के बाद ही किया जाना चाहिये।

18.3 तटकर की लागतों एवं लाभ

तटकर की लागतों एवं लाभ की व्याख्या चित्र 18.1 की सहायता से की जा सकती है।

18.3.1 तटकर की आर्थिक लागतें:

यदि t_1 के बराबर तटकर लगाया जाता है तो कीमतें OP से बढ़कर OP_1 हो जाती है। उसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता की बचत में कमी हो जाती है।

तटकर से पूर्व उपभोक्ता की बचत $= GBD$

तटकर के बाद उपभोक्ता की बचत $= FBK$

उपभोक्ता की बचत में कमी $= GFKD$

उपभोक्ता की बचत में होने वाली कमी का एक भाग सरकार को तटकर राजस्व के रूप में प्राप्त होता है चित्र 18.1 के अनुसार सरकार की आय में होने वाली वृद्धि $JHKL$ है।

उपभोक्ता की बचत का कुछ भाग उत्पादकों को प्राप्त होना है उत्पादकों की बचत में होने वाली वृद्धि $GIFH$ के बराबर है।

उपभोक्ता की बचत में होने वाली कमी एवं सरकारी आय तथा उत्पादकों की बचत में होने वाली वृद्धि की तुलना करने पर IJH तथा KLD क्षेत्र बच जाता है। ये दोनों क्षेत्र संरक्षण या तटकर की लागत को प्रकट करते है। इन्हें दो भागों में विभाजित कर सकते है-

(1) **तटकर की उत्पादन लागत:** चित्र 18.1 में IJH क्षेत्र तटकर की उत्पादन लागत को प्रकट करता है । तटकर के परिणाम स्वरूप उत्पादन Q_1Q_2 के बराबर बढ़ता है इसकी लागत Q_1Q_2HI के बराबर है जबकि तटकर के पूर्व इस मात्रा का आयात Q_1Q_2JI राशि से किया जा रहा था इन दोनों का अन्तर IJH तटकर की उत्पादन लागत है।

तटकर की उत्पादन लागत (IJH) उत्पादन लागत ($Q_1Q_2H_1I$) आयात ($Q_1Q_2J_1I$)

(2) **तटकर की उपभोग लागत:** चित्र 18.1 मैं KLD क्षेत्र तटकर की उपभोग लागत को व्यक्त करता है। तटकर परिणामस्वरूप उपभोग में Q_4Q_5 के बराबर कभी होती है। अत: उपभोक्ता की बचत में उपभोग में कमी के कारण KLD के बराबर कमी हो जाती है। जिस वस्तु पर तटकर लगाया जाता है उसकी कीमत अन्य वस्तु की तुलना में बढ़ जाती है और उपभोग का ढांचा बिगड़ जाता है परिणाम स्वरूप उपभोक्ता की बचत में कमी हो जाती है।

इस प्रकार तटकर की आर्थिक लागतें उत्पाद लागत में वृद्धि एवं उपभोक्ता की बचत में कमी के रूप में होती है

18.3.2 तटकर के लाभ**:** खण्ड 18.2 में तटकर के प्रभावों की व्याख्या के अन्तर्गत तटकर के अनुकूल प्रभावों (लाभों) की व्याख्या भी की गई है। तब के लाभ मुख्य रूप से आयातों में कमी, सरकारी आय में वृद्धि घरेलु उत्पादन में वृद्धि, व्यापार शर्तों में अनुकूल परिवर्तन, भुगतान संतुलन में सुधार, बेरोजगारी में कमी तथा राष्ट्र में वृद्धि के रूप में होते है।

चित्र 18.1 के अनुसार तटकर के लाभों निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते है।

(1) आयातों में कमी : Q_1Q_5 से घटकर Q_2Q_4

(2) सरकारी आय में वृद्धि : $JHKL$

(3) घरेलू उत्पादन में वृद्धि : Q_1Q_2

(4) उत्पादकों की बचत में वृद्धि : $GIHF$

तटकर के अन्य लाभों की विस्तृत व्याख्या खण्ड 18.2 में की गई है।

18.4 प्रभावी संरक्षण दर एवं अनुकूलतम तटकर

18.4.1 प्रभावी संरक्षण दर

तटकर के संरक्षणात्मक एवं उपभोग प्रभावों के अध्ययन में तटकर की सामान्य दर के स्थान पर प्रभावी दर का प्रयोग अधिक उपयुक्त है। मानाकि x वस्तु पर 10% तटकर लगाया जाता है और इससे सम्बन्धित कच्चा माल कर मुक्त है। कच्चे माल का अनुपात निर्मित वस्तु में 50 प्रतिशत है। x वस्तु के उत्पादन में जोड़े गये मूल्य का प्रतिशत 50 होगा। अत: 10% तटकर वास्तव में इसके 50 प्रतिशत मूल्य पर है अत: प्रभावी संरक्षण दर 20% हो जाती है। प्रभावी संरक्षण दर निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है -

प्रभावी संरक्षण दर $= \frac{t - qr}{1 - r}$

यहाँ $t =$ तटकर की सामान्य दर

$q =$ कच्चे माल पर कर की दर

$r =$ आयातित कच्चे माल का निर्मित वस्तु में अनुपात यदि कच्चा माल कर मुक्त है तो सूत्र निम्न प्रकार होगा-

प्रभावी संरक्षण दर $= \frac{t}{1-r}$

उपर्युक्त उदाहरण में $t = 10\% r = 50\% = 1/2$

प्रभावी दर $= \frac{10}{1-.5} = \frac{10}{.5} = 20\%$

यदि निर्मित वस्तु और कच्चे माल पर तटकर की दर समान हो तो तटकर की सामान्य दर और प्रभावी दर समान होगी।

यद्यपि तटकर की प्रभावी दर की गणना कठिन है क्योंकि वस्तु के मूल्य में कच्चे माल का अनुपात कीमतों में परिवर्तन के साथ-साथ बदलता रहता है। फिर भी तटकर के संरक्षणात्मक एवं उपभोग प्रभावी संरक्षण की प्रभावी दर पर निर्भर करते है। अत: इसका अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

18.4.2 अनुकूलतम तटकर अनुकूलतम तटकर, तटकर की वह मात्रा है जिसके द्वारा देश- उच्चतम उदासीनता वक्र पर पहुँच जाता है और उसके वास्तविक कल्याण में वृद्धि होती है। अनुकूलतम तटकर की मात्रा ही संरक्षण की अनुकूलतम दर कहलाती है।

अनुकूलतम तटकर की व्याख्या चित्र 18.5 क द्वारा की जा सकती है। चित्र 18.5 में स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति में प्रथम देश का प्रस्ताव वक्र OI तथा द्वितीय देश का प्रस्ताव वक्र OII है। साम्यावस्था बिन्दु P तथा व्यापार शर्तें OP है। उदासीनता वक्र V_1V_2 प्रथम देश की तथा $U_1U_2U_3$ द्वितीय देश की पसन्दगी को व्यक्त करते है।

प्रथम देश संरक्षण के लिए तटकर का प्रयोग करते तटकर का प्रयोग करने पर प्रस्ताव वक्र OI से OI' हो जाता है, नया साम्यावस्था बिन्दु P' हो जाता है तथा व्यापार शर्तें OP^1 हो जाती है। तटकर की यह मात्रा

अनुकूलतम क्योंकि इसके परिणामस्वरूप प्रथम देश उच्चतम उदासीनता V_2V_2 पर पहुंच जाता है। इस बिन्दु पर प्रथम देश का वास्तविक कल्याण अधिकतम हो जाता है। अनुकूलतम तटकर यद्यपि प्रथम देश के वास्तविक कल्याण में वृद्धि करता है, किन्तु दूसरे देश पर इसके प्रभाव प्रतिकूल होते हैं। चित्र 18.5 के अनुसार दूसरे देश की व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाती है तथा वह एक निम्न उदासीनता वक्र पर आ पाता है। तथा विदेशी व्यापार की मात्रा भी कम हो जाती है। यदि द्वितीय देश का प्रस्ताव वक्र सीधी रेखा के रूप-मे है तो प्रथम देश तटकर द्वारा लाभान्वित नहीं होगा।

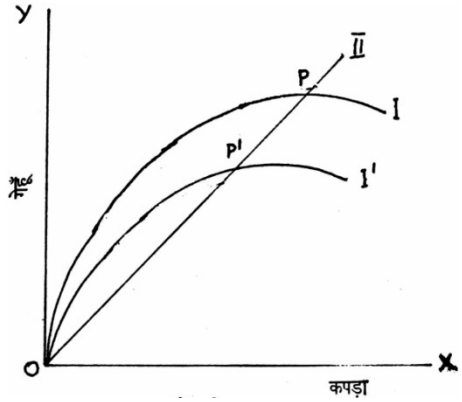

रेखा चित्र 18.6

चित्र 18.6 में दिखाया गया है कि यदि द्वितीय देश का प्रस्ताव वक्र OII है तो प्रथम देश तटकर द्वारा लाभ प्राप्त नही कर पाएगा। तटकर के बाद प्रथम देश का प्रस्ताव वक्र OI' हो जाता है साम्यवस्था P' पर होती है। व्यापार शर्तें पूर्ववत ही है व्यापार की मात्रा कम हो जाती है। इस स्थिति में अनुकूलतम तटकर शून्य होगा। इस विशेष स्थिति में स्वतन्त्र व्यापार द्वारा ही प्रथम देश अपने कल्याण को अधिकतम कर सकेगा।

18.4.3 प्रतिशोधात्मक तटकर एक देश तटकर द्वारा तब तक ही लाभान्वित हो सकता है जब तक दूसरा देश प्रतिशोधात्मक तटकर का प्रयोग नहीं करता है। प्रथम देश द्वारा जब तटकर लगाया जाता है तो वह प्रथम देश की व्यापार अनुकूलतम तटकर, तटकर शर्तों को अनुकूल रूप से प्रभावित करता है एवं उसके वास्तविक में कल्याण वृद्धि होती है (P^1

बिन्दु)। यदि दूसरा देश भी प्रतिक्रिया स्वरूप तटकर नीति का प्रयोग करे तो दूसरे देश का प्रस्ताव वक्र चित्र 18.5 के अनुसार OII' हो जाएगा जो प्रथम देश के प्रस्ताव वक्र के P^2 बिन्दु पर काटेगा। दूसरे देश की स्थिति P^1 की तुलना में अच्छी होगी क्योंकि यह U_2U_2 उदासीनता वक्र पर पहुंच जाता है। किन्तु P^2 बिन्दु P की तुलना में घटिया है प्रतिशोधात्मक तटकर (तटकर खेल) के समय P^2 साम्यावस्था बिन्दु स्थिर नही होगा प्रथम एवं द्वितीय दोनों देश व्यापार शर्तों को अनुकूल करने के लिए तटकर का प्रयोग करेंगे और अन्तत: व्यापार शून्य हो जाएगा। इस प्रकार की स्थिति का समाधान स्वतंत्र व्यापार से ही हो सकेगा। दोनों को स्वतन्त्र व्यापार के लिए समझौता करना होगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अनुकूलतम तटकर, तटकर की वह मात्रा है जो देश के वास्तविक कल्याण को अधिकतम करती है। तटकर नीति उस समय तक ही लाभान्वित होगी जब तक दूसरा देश इसका प्रयोग नहीं कर रहा है यदि प्रतिशोधात्मक तटकर प्रारंभ हो जाता है तो यह दोनों देशों के लिए हानिकारक होगा, व्यापार की मात्रा कम होती जाएगी और अन्तत: व्यापार शून्य हो जाएगा। इस स्थिति का समाधान स्वतंत्र व्यापार नीति के अनुसरण द्वारा सम्भव होगा।

18.5 बोध प्रश्न

1. तटकर का प्रयोग क्यों किया जाता हें? तटकर के मुख्य प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
2. तटकर आय वितरण को किस प्रकार प्रभावित करता है? स्टोलपर-सेमुअलसन प्रमेय की व्याख्या कीजिए
3. तटकर की आर्थिक लागतों एवं लाभों की व्याख्या कीजिए।
4. प्रभावी संरक्षण दर क्या हैं? अनुकूलतम तटकर की विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।

18.6 सारांश

तटकर का प्रयोग मुख्यतया शिशु उद्योगों को संरक्षण देने, स्वदेशी बाजार, आधारभूत उद्योगों एवं रोजगार को बढ़ावा देने, राष्ट्र के प्राकृतिक साधनों के उचित प्रयोग, सरकारी आय में वृद्धि करने, व्यापार शर्तों को अनुकूल करने, भुगतान संतुलन में सुधार करने तथा राष्ट्रीय स्वावलम्बता के लिए किया जाता है। तटकर के कुछ प्रभाव अनुकूल एवं कुछ प्रतिकूल होते है किन्तु कुल मिलाकर तटकर से देश के वास्तविक कल्याण में वृद्धि होती हैं तटकर की आर्थिक लागतें उपभोक्ता की बचत में कमी एवं उत्पादन की बड़ी हुई लागतों के रूप में होती है जबकि लाभ घरेलु उत्पादन में वृद्धि, आयात में कमी, रोजगार में वृद्धि, बेरोजगारी में कमी एवं राष्ट्रीय आय मैं वृद्धि के रूप में होते हैं। तटकर यद्यपि घरेलु कीमतों को बढ़ाते है किन्तु इनसे व्यापार की शर्तें अनुकूल हो जाती है और देश के वास्तविक कल्याण में वृद्धि होती है। अनुकूलतम तटकर, तटकर की वह मात्रा है जो देश के वास्तविक कल्याण को अधिकतम करती हैं। तटकर एक देश के लिए तब तक ही लाभदायक हो सकता है जब तक दूसरा देश तटकर नहीं लगाता है यदि 'तटकर खेल' प्रारम्भ हो जाता है तो इसका अन्त स्वतंत्र व्यापार के लिए समझोते द्वारा ही संभव हैं

18.7 शब्दावली

तटकर, व्यापार शर्तें प्रस्ताव वक्र अनुकूलतम तटकर खेल, प्रतिशोधात्मक तटकर, प्रभावी संरक्षण दर।

18.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. बी.सी. डर्स्टन :इन्टरनेशनल इकोनोमिक्स
2. रे एण्ड कुन्डू :इन्टरनेशनल

इकोनोमिक्स

3. ओ. पी. किंडलबर्जर :इन्टरनेशनल इकोनोमिक्स

4. एच. जी. पी. श्रीवास्तव :इन्टरनेशनल इकोनोमिक्स

5. वी. सी. सिन्हा :अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

6. बरला अग्रवाल :अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

18.9 बोध-प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. तटकर या संरक्षण के पक्ष में तर्क दीजिये तथा तटकर के प्रभावों की व्याख्या करिये। (18.1 तथा 18.2)

प्रश्न 2. तटकर के प्रभावों की संक्षिप्त व्याख्या करिये तथा 18.2.6 को विस्तार से लिखिये तथा 18.2.7 द्वारा भी स्टोलपर सेमुअलसन विचारधारा की वैधता को समझाइये।

प्रश्न 3. तटकर की आर्थिक लागतों के लिए 18.4.1 की व्याख्या करिये तथा लाभों की व्याख्या के लिए मुख्य अनुकूल प्रभावों की व्याख्या 18.2 के आधार पर कीजिये।

प्रश्न 4. प्रभावी संरक्षण दर का अर्थ 18.4.1 के द्वारा समझाइये। 18.4.2 तथा 18.4.3 को विस्तार से लिखिये।

इकाई 19

अनुकूलतम प्रशुल्क
(Optimum Tariff)

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 अनुकूलतम प्रशुल्क से अभिप्राय

19.3 अनुकूलतम प्रशुल्क का चित्र द्वारा निरूपण

19.4 अनुकूलतम प्रशुल्क व अर्पण वक्र की लोच

19.5 इकाई लोच व अनन्त लोच का महत्व

19.6 अनुकूलतम प्रशुल्क की अवधारणा का मूल्यांकन

19.7 सारांश

19.8 शब्दावली

19.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.10 अभ्यास व उनके हल हेतु संकेत

19.0 उद्देश्य

विश्व व्यापार में बड़ा राष्ट्र प्रशुल्क द्वारा व्यापार की शर्तें अपने पक्ष में परिवर्तन करने में सक्षम हो सकता है लेकिन इसके लिए आवश्यक शर्त यह है कि विदेशी राष्ट्र का अर्पण वक्र अनन्त लोच वाला नहीं हो तथा वह राष्ट्र प्रतिशोध के रूप में प्रशुल्क न लगाये। अत: महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त शर्तों के पूरा होने पर अधिकतम लाभ करने हेतु राष्ट्र को

कितनी प्रशुल्क लगानी चाहिये? इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करने हेतु हम अनुकूलन प्रशुल्क की अवधारणा का अध्ययन करते है।

19.1 **प्रस्तावना**:

अनुकूलतम प्रशुल्क के अस्तित्व का कारण प्रशुल्क में वृद्धि के परिणामस्वरूप दो विरोधी शक्तियों का कार्यरत होना है।

यदि सामने वाले राष्ट्र का अर्पण वक्र अनन्त से कम लोच वाला है तथा यह राष्ट्र प्रतिशोधात्मक प्रशुल्क नहीं लगाता है तो प्रशुल्क लगाने से (1) व्यापार की शर्तें प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र के अधिकाधिक अनुकूल होती जाती है, लेकिन साथ ही (2) अधिकाधिक प्रशुल्क से आयातों की मात्रा में उत्तरोत्तर कटौती होती है। अनुकूलतम स्थिति उस प्राप्त होती है जब प्रशुल्क के कारण कुल लाभ आयातों में कटौती से होने वाली हानि से सर्वाधिक हो।

19.2 **अनुकूलतम प्रशुल्क से अभिप्राय**:

अनुकूलतम प्रशुल्क वह प्रशुल्क की दर है जो प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र उच्चतम व्यापार उदासीन वक्र (Trade Indifference Curve) पर पहुंचा दे और इस प्रकार उसे उच्चतम समुदाय उदासीनता वक्र व अधिकतम सम्भावित कल्याण के स्तर पर पहुंचा दे।

19.3 **अनुकूलतम प्रशुल्क का चित्र द्वारा निरूपण**:

अर्पण वक्र चित्र के रूप में अनुकूलतम प्रशुल्क वह प्रशुल्क है जो प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र को उस उच्चतम व्यापार उदासीन वक्र पर पहुंचा दे तथा वह व्यापार उदासीन वक्र सामने वाले राष्ट्र के अर्पण वक्र के स्पर्श होना चाहिये।

चित्र 19.1 में प्रशुल्क लगाने के परिणामस्वरूप B राष्ट्र का अर्पण वक्र OB से OB_1 हो जाता है। यह प्रशुल्क वास्तव में अनुकूलतम प्रशुल्क है क्योंकि प्रशुल्क लगाने से B राष्ट्र अपने उच्चतम उदासीनता वक्र संख्या 7

पर पहुंचा जाता है। वास्तव में ऐसा कोई भी प्रशुल्क जिससे B राष्ट्र का अर्पण वक्र A राष्ट्र के अर्पण वक्र को PO हिस्से में काटे, B राष्ट्र का स्वतंत्र व्यापार वाले व्यापार उदासीनता वक्र 4 से ऊँचे उदासीनता वक्र पर पहुंचा देता है लेकिन अनुकूलतम प्रशुल्क लगाकर राष्ट्र अपने उच्चतम व्यापार उदासीनता वक्र पर पहुंच जाता है। B राष्ट्र का उच्चतम उदासीनता वक्र A राष्ट्र के अर्पण वक्र से स्पर्श होना भी आवश्यक है क्योंकि B राष्ट्र का साम्य A राष्ट्र के अपर्ण वक्र पर ही सम्भव है। व्यापार में दोनों व्यापाररत राष्ट्रों की तत्परता आवश्यक है।

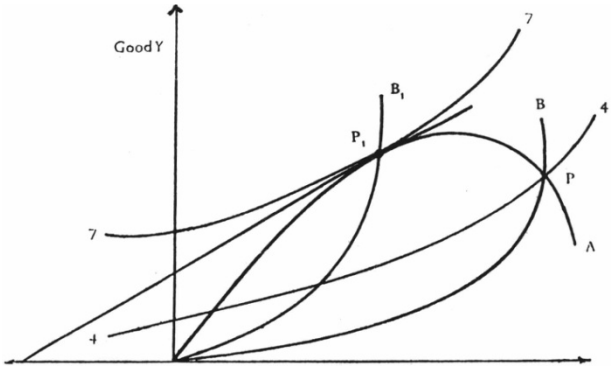

रेखाचित्र 19.1 अनुकूलतम प्रशुल्क

चित्र 19.1 में व्यापार की शर्तें दर्शाने वाली रेखा RP_1 को B राष्ट्र के व्यापार उदासीन वक्र के स्पर्श खींचा गया है क्योंकि हमने प्रशुल्क के माप की प्रो. मीड (Meade) द्वारा प्रयुक्त विधि का अनुसरण किया है। प्रो. मीड की विधि में सरकार प्रशुल्क द्वारा एकत्र आगम को पुन: उपदान (Subsidy) के रूप में वितरित कर देती है अत: उपभोक्ता इस मात्रा को दोनों वस्तुओं पर सामान्य ढंग से व्यय कर देते है।

चित्र 19.1 में RP_1 रेखा जहां पर क्षैतिज अक्ष को काटती है वही प्रशुल्क का माप है। चित्र में Ro प्रशुल्क है।

19.4 अनुकूलतम प्रशुल्क व अर्पण वक्र की लोच

अनुकूलतम प्रशुल्क की गणना A राष्ट्र का अपर्णवक्र की लोच के रूप में की जा सकती है। चित्र 19.2 में P_1 ऐसा बिन्दु है जहां B राष्ट्र का प्रशुल्क सहित वाला अर्पण वक्र A राष्ट्र के अर्पण वक्र को काटता है। P_1 बिन्दु पर A राष्ट्र Y वस्तु की ob मात्रा के विनिमय में X वस्तु की bP_1 मात्रा लेने को तत्पर है। लेकिन OP_1 कीमत रेखा (जिसे चित्र में नहीं खींचा गया है) B के व्यापार उदासीन वक्र के स्पर्श नहीं है अत: X वस्तु की bP_1 मात्रा का व्यापार करते हुए साम्यावस्था नहीं है। B राष्ट्र P_1 बिन्दु पर केवल उसी कीमत पर व्यापार करेगा जो P_1 बिन्दु पर उसके व्यापार उदासीन वक्र के स्पर्श हो (यह कीमत रेखा A राष्ट्र के अर्पण वक्र के भी स्पर्श होगी)। अत: हम चित्र 19.2 इस तरह की स्पर्श रेखा खींचते है तथा इसे लम्बवत अक्ष पर a बिन्दु से होते हुए क्षैतिज अक्ष पर R बिन्दु ले जाते है। यह रेखा B राष्ट्र में साम्य कीमत दर्शाएगी। अत: B राष्ट्र RP_1 खा के ढाल वाली कीमत पर व्यापार करेगा जबकि A राष्ट्र OP_1 रेखा वाली कीमत पर व्यापार करेगा।

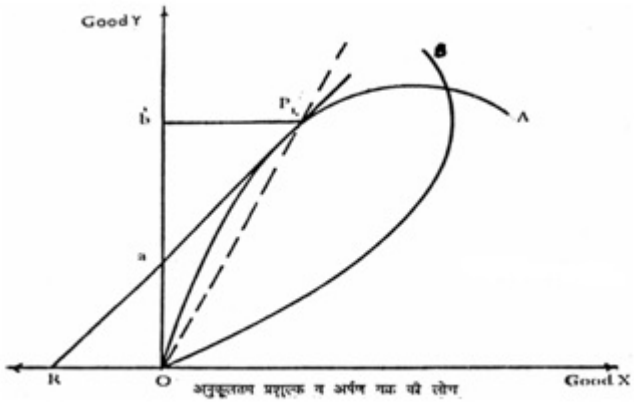

चित्र 19.2: अनुकूलतम प्रशुल्क व अर्पण वक्र का लोच चित्र में यदि X वस्तु पर निर्यात कर दर्शाते है तो B राष्ट्र में $\frac{Ro}{bP_1}$ निर्यात प्रशुल्क होगी अथवा Y वस्तु की ba मात्रा के आयातों पर $\frac{ao}{ab}$ प्रशुल्क की दर है।

चित्र 19.2 में यदि हम Y की X के रूप में चित्र घरेलू कीमत ($\frac{bP_1}{ba}$) को P_1 द्वारा इंगित करे तथा Y की S के रूप में विदेशी कीमत (व्यापार की शर्तें) ($\frac{Pb_1}{ob}$) को π द्वारा दर्शाऐं तो Y वस्तु की विदेशी कीमत पर लगी अनुकूलतम प्रशुल्क को अग्रलखित समीकरण के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

$$P_1 = (1+t)\pi \qquad (1)$$

उदाहरणार्थ, यदि वस्तु की विदेशी कीमत 10 रु है तथा प्रशुल्क 20 प्रतिशत, तो घरेलू कीमत 12 रु. (अर्थात् (1+.2)10=10+2=12) होगी।

समीकरण (1) को अनुकूलतम प्रशुल्क t के लिए हल करने पर

$$P_1 = \pi + \pi t$$

अथवा $\pi t = P_1 - \pi$

अथवा $t = \frac{P_1}{\pi} - 1$

अब चित्र 19.2 से P_1 तथा π का मान इस अन्तिम समीकरण में रखने पर

$$t = \frac{(bP_1/ba)}{(bP_1/ob)} - 1 = \frac{bP_1}{ba} \times \frac{ob}{bP_1} - 1 = \frac{ob}{ba} - 1$$

लेकिन $\frac{ob}{ba}$ विदेशी राष्ट्र A के अर्पण तक की कुल लोच (efrd) है, अत:

$$t = efrd - 1$$

अर्थात् अनुकूलतम प्रशुल्क विदेशी राष्ट्र के अर्पण वक्र की लोच से इकाई कम के बराबर होती है। इस प्रकार प्रकार हम A राष्ट्र के अर्पण वक्र की मांग लोच में भी अनुकूलतम प्रशुल्क का सम्बन्ध स्थापित कर सकते है।

अनुकूल प्रशुल्क $\frac{Ro}{bP_1}$ है अत: एक समान त्रिभुजों से

$$t = \frac{Ro}{bP_1} = \frac{ao}{ba} = \frac{1}{ba/ao}$$

लेकिन चित्र 19.2 में ba = ob - ao

$$\text{अत:}\ \frac{\frac{1}{ba}}{ao} = \frac{1}{\frac{ob-ao}{ao}} = \frac{1}{\frac{ob}{ao}-1}$$

लेकिन $\frac{ob}{ao}$ विदेशी राष्ट्र A के अर्पण वक्र की P_1 बिन्दु पर आयात लोच है अत: अनुकूलतम प्रशुल्क $\frac{Ro}{bP_1}$ को निम्न रूप में लिखा जा सकता है

$$\frac{Ro}{bP_1} = \frac{1}{\frac{ob}{ao}-1} = \frac{1}{efd-1}$$

अर्थात् अनुकूलतम प्रशुल्क विदेशी अर्पण वक्र की मांग लोच से इकाई कम के व्युत्क्रम reciprocal) के बराबर होती है।

उदाहरणार्थ, यदि विदेशी अर्पण वक्र की मांग लोच 5 है तो अनुकूलतम प्रशुल्क

$$t = \frac{1}{5-1} = \frac{1}{4} = 0.25$$

अर्थात 25 प्रतिशत प्रशुल्क राष्ट्र को कल्याण उच्चतम स्तर पर पहुंचा देगा। इसी प्रकार यदि किसी राष्ट्र के अर्पण वक्र की लोच अनन्त ($\propto$) है तो अनुकूलतम प्रशुल्क $t = \frac{1}{\propto -1} = 1$

अर्थात कल्याण के उच्चतम स्तर पर बने रहने हेतु राष्ट्र को प्रशुल्क नही लगानी चाहिये।

19.5 ईकाई व अनन्त लोच का महत्व

अनुकूलतम प्रशुल्क विदेशी अर्पण वक्र उस हिस्से में निर्धारित होती है विदेशी अर्पण वक्र की लोच इकाई से अधिक लेकिन अनन्त से कम हो।

यदि विदेशी राष्ट्र के अर्पण वक्र की लोच अनन्त है तो अनुकूलतम प्रशुल्क शून्य होगी। इस बिन्दु को चित्र 19.3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

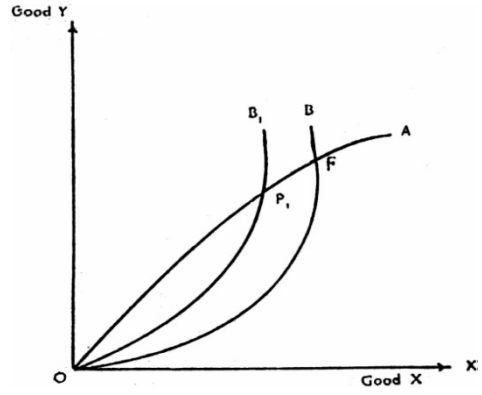

रेखाचित्र 19.3 विदेशी अर्पण वक्र की लोच अनन्त

चित्र 19.3 में A राष्ट्र के अर्पण वक्र की लोच अनन्त है अत: B राष्ट्र द्वारा प्रशुल्क लगाने से व्यापार की शर्तें तो अपरिवर्तित रहती है ($OP = OP_1$) लेकिन व्यापार घटकर P से P_1 हो जाता है। वास्तव में ऐसी स्थिति में व्यापार घटने के परिणाम स्वरूप राष्ट्र का कल्याण का स्तर गिर जाता है। अत: ऐसी स्थिति में B राष्ट्र के लिए अनुकूलतम प्रशुल्क शून्य होगी अर्थात् इस राष्ट्र के प्रशुल्क नहीं लगानी चाहिये। इसी प्रकार यदि विदेशी अर्पणवक्र की लोच इकाई हो तो अनुकूलतम प्रशुल्क $t = \frac{1}{1-1} = \propto$ (अनन्त) होगी-

अर्थात कल्याण का स्तर अधिकतम करने हेतु इस राष्ट्र को ऊंची से ऊंची प्रशुल्क लगानी चाहिये। इस बिन्दु को चित्र 19.4 में स्पष्ट किया गया है।

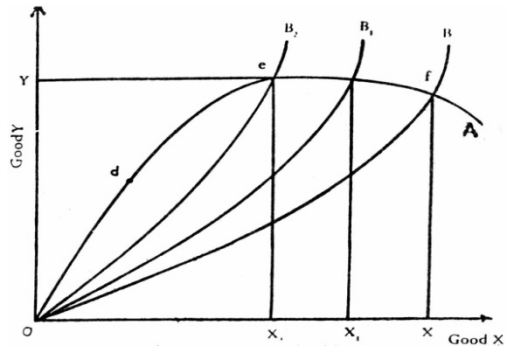

चित्र 19.4 विदेशी अपणवक्र को इकाई सोच

चित्र 19.4 में OA विदेशी राष्ट्र का अर्पण वक्र है। OA अर्पण वक्र के Od हिस्से की लोच अनन्त है जबकि ef हिस्सा इकाई लोच वाला है। यदि स्वतंत्र व्यापार वाला साम्य बिन्दु f है तो B राष्ट्र को तब तक प्रशुल्क बढ़ाते जाना चाहिए जब तक कि बिन्दु e व d के मध्य के हिस्से पर कहीं साम्य स्थापित न हो जाये। d बिन्दु के पीछे A अर्पण वक्र का Od हिस्सा पूर्णतया लोचदार है इसलिए और अधिक प्रशुल्क लगाना लाभप्रद नहीं होगा।

अत: स्पष्ट है कि अनुकूलतम प्रशुल्क अर्पण वक्र के d-e जैसे हिस्से में (जहां इस वक्र की लोच इकाई सें अधिक तथा अनन्त से कम है) निर्धारित होती है।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह हें कि अर्पण चक्र के ef हिस्से में विदेशी अर्पण वक्र OA की इकाई लोच की स्थिति में अधिकतम लाभ अर्जित करने हेतु B राष्ट्र को प्रशुल्क बढ़ाते ही जाना चाहिये इस बिन्दु को स्पष्ट करने हेतु हमें इस और ध्यान देना होगा कि अर्पण वक्र के इकाई लोन वाले हिस्से में व्यापार की मात्रा में परिवर्तन के बावजूद A राष्ट्र का कुल व्यय OY निर्यात के बराबर स्थिर बना रहता है अत: ऐसी स्थिति से अधिकतम लाभान्वित होने हेतु B राष्ट्र के अपने X वस्तु के निर्यात X_1 से घटाकर X_2 तक ले जाने पर भी पूर्ववत् आयात की मात्रा प्राप्त होती रहेगी अत: B राष्ट्र को अपने निर्यात न्यूनतम कर देने चाहिए।

अत: स्पष्ट है कि अनुकूलतम प्रशुल्क विदेशी राष्ट्र के अर्पण वक्र के उस हिस्से में निर्धारित होगी जहां इसकी लोच इकाई से अधिक लेकिन अनन्त से कम हो।

19.6 अनुकूलतम प्रशुल्क की अवधारणा का मूल्यांकन

प्रश्न यह उठता है कि अनुकूलतम प्रशुल्क की ऊँचाई व्यवहार में कैसे निर्धारित हो? ग्रो. हेबरलर (Haberler) के अनुसार "लेकिन प्रशुल्क की सापेक्ष ऊँचाई के सन्दर्भ में इस तरह का निर्णय साबित करने का प्रयास

तथा इसे ठीक संख्यात्मक रूप में व्यक्त करने में बहुत भारी कठिनाइयां सामने आती हैं। ये कठिनाइयां मात्र तकनीकी व सांख्यिकी की प्रकृति की ही नहीं है अपितु इनका इस तथ्य से भी उदय होता है कि जांचोंपरान्त तटकर की उंचाई की अवधारणा किसी भी दृष्टि कोण से स्पष्ट व असंदिग्ध साबित नहीं होती है।"

डा. हेबरलर आगे लिखते है कि "वस्तु विशेष पर प्रशुल्क के भार की गणना करने हेतु उस वस्तु की आयातकर्ता अथवा निर्यातकर्ता राष्ट्र में कीमत को आधार मानना पड़ता है लेकिन प्रशुल्क द्वारा कीमत प्रभावित होने की कठिनाई सदैव ही बनी रहती है। इस प्रकार दी हुई प्रशुल्क का महत्व आयातकर्ता व निर्यातक दोनों राष्ट्रों में मांग व पूर्ति की लोच के साथ परिवर्तित होगा।"

इसी प्रकार इ.जे. मिशान (E.J. Mishan) अपने विचार अग्रलिखित शब्दों में व्यक्त किये "अनुकूलतम प्रशुल्क का यह सुझाव कि प्रतिशोध के अभाव में प्रशुल्क का एक ऐसा गणनायोग्य कुलक (Set) होता है जो कि उस राष्ट्र के लिए सर्वोत्तम हो, अत्यधिक सरल व लापरवाही युक्त है।"

अत: स्पष्ट है कि व्यवहार में अनुकूलतम प्रशुल्क की गणना अत्यधिक दुष्कर कार्य है।

19.7 सारांश

विश्व बाजार में बड़े राष्ट्र को प्रशुल्क द्वारा अधिकतम लाभ अर्जित करने हेतु अनुकूलतम (optimum) प्रशुल्क लगानी चाहिए।

प्रशुल्क के परिणामस्वरूप दो विरोधी शक्तियां कार्यरत रहती है। सामने वाले राष्ट्र के अर्पण वक्र की अनन्त से कम लोच होने पर तथा प्रतिशोधात्मक प्रशुल्क के अभाव में प्रशुल्क लगाने से (1) व्यापार की शर्तें प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र के पक्ष में परिवर्तित हो जाती है लेकिन साथ ही (2) अधिकाधिक प्रशुल्क के साथ आयातों की मात्रा में कटौती होती है।

अनुकूलतम स्थिति उस समय प्राप्त होती है जब (1) से कुल लाभ (2) से होने वाली हानि से सर्वाधिक हो।

अनुकूलतम प्रशुल्क प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र को कल्याण के उच्चतम स्तर पर पहुंचा देती है। चित्र के रूप में अनुकूलतम प्रशुल्क वह प्रशुल्क है जो प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र को उसके उच्चतम व्यापार उदासीन वक्र पर पहुंचा दे तथा वह व्यापार उदासीन वक्र सामने वाले राष्ट्र के अर्पण वक्र के स्पर्श हो।

अनुकूलतम प्रशुल्क व अर्पण वक्र की लोच के आपसी सम्बन्ध को निम्न सूत्र के रूप में व्यक्त किया जा सकता है $t = \frac{1}{efd - 1}$ यहां efd सामने वाले राष्ट्र की अर्पण वक्र की लोच है। यदि विदेशी अर्पण वक्र की लोच इकाई है तो अनुकूलतम प्रशुल्क अनन्तक होगी।

इसका अभिप्राय यह है कि अधिकतम कल्याण हेतु राष्ट्र को उस समय तक प्रशुल्क लगाते जाना चाहिए जब कि कि विदेशी अर्पण वक्र के लोचदार हिस्से में प्रवेश न हो जाए।

इसी प्रकार यदि विदेश अर्पण वक्र की लोच अनन्त है (अर्थात् अर्पण वक्र मूल बिन्दु से सरल रेखा है) तो अनुकूल प्रशुल्क शून्य होगी अर्थात् प्रशुल्क लगाने का राष्ट्र के कल्याण का स्तर घट जायेगा अत: राष्ट्र को प्रशुल्क नहीं लगानी चाहिए।

लेकिन व्यवहार में अनुकूलतम प्रशुल्क के गणना अति दुष्कर कार्य है क्योंकि इसे ठीक संख्यात्मक रूप में व्यक्त करने में सांख्यिकीय अवधारणा की स्पष्टता से सम्बन्ध कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

19.8 शब्दावली

अनुकूलतम प्रशुल्क (Optimum Tariff): वह प्रशुल्क की दर जिसे लगाने से प्रशुल्क की स्थिति में प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र का कल्याण का स्तर अधिकतम हो जाता है।

बड़ा राष्ट्र (Large Country):अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में ऐसा महत्वपूर्ण राष्ट्र जो अपनी क्रियाओं द्वारा विश्व बाजार कीमत को प्रभावित करने में सक्षम हो।

व्यापार उदासीनता वक्र (Trade Indifference Coures): व्यापार उदासीनता वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर राष्ट्र व्यापार व बिना व्यापार की स्थिति के बीच उदासीन रहता है। व्यापार उदासीनता वक्र समुदाय उदासीनता वक्र की भांति मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) तथा ऋणात्मक ढाल वाले होते है। प्रत्येक समुदाय उदासीनता वक्र के तदरूप (Corresponding) एक व्यापार उदासीनता वक्र होता है। चूकि ऊँचा समुदाय उदासीनता वक्र कल्याण के उच्चस्तर का प्रतिनिधित्व करता है अत: ऊँचा व्यापार उदासीनता वक्र भी कल्याण के उच्च स्तर का घोतक होता है।

अर्पण वक्र की लोच (elasticity of offer Curve): अर्पण वक्र की लोच को तीन प्रकार से निर्वाचित किया जा सकता है। कुल लोच, आयातों की मांग की लोच तथा निर्यातों की पूर्ति लोच। इसमें से हमने मांग लोच का सर्वाधिक उपयोग किया है। अपर्ण वक्र की मांग लोच की गणना का सूत्र अग्रलिखित है।

$$efd = \frac{\text{आयातों की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{आयतों की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

अर्पण वक्र चित्र के रूप में अर्पण वक्र की मांग लोच को लम्बवत रेखा द्वारा क्षैतिज अक्ष को काटने वाले बिन्दु की मूल (origin) से दूरी को वक्र के बिन्दु पर स्पर्श रेखा द्वारा क्षैतिज अंश को काटने वाले बिन्दु की मूल बिन्दु से दूरी द्वारा विभाजित करके प्राप्त किया जा सकता है।

अनुकूलतम प्रशुल्क (t) व विदेशी अर्पणवक्र की मांग लोच का आपसी सम्बन्ध निम्न सूत्र के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

$$t = \frac{1}{efd - 1}$$

19.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें : -

1. Lindert, P.H.–International Economics (Richard D. Irwin, Inc.)

2. Salvatore, D.-International Economics (Schaum's outline series) MC Graw-Hill Co.

3. Swami, K.D.-अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र 1989. (Hindi) Scientific Publishers, 5/A New Pali Road,

19.10 अभ्यास व उनके हल हेतु संकेत

1. अनुकूलतम प्रशुल्क की अवधारणा को चित्र द्वारा प्रस्तुत कीजिये।

   संकेत : देखिए अध्याय का भाग 19.3 व चित्र 19.1

2. यदि सामने वाले राष्ट्र के अर्पण वक्र की लोच अनन्त ($\propto$) हो तो प्रशुल्क लगाने से प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र कल्याण का स्तर कैसे प्रभावित होगा? चित्र द्वारा दर्शाइये।

   संकेत : प्रशुल्क लगाने वाले राष्ट्र का कल्याण का स्तर गिर जायेगा। अध्याय का 19.5 भाग 1 चित्र 19.3

"यदि विदेशी राष्ट्र के अर्पण की लोच इकाई है तो अनुकूलतम प्रशुल्क ($\propto$) होगी" इस कथन में निहित आर्थिक तर्क को स्पष्ट कीजिये।

संकेत - अध्याय के भाग 19.5 को ध्यान से पढें व चित्र 19.4 का अध्ययन करें।

इकाई 20

आयात अभ्यंश
(Import Quota)

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 प्रमुख बिन्दु

20.2.1 आयात अभ्यशों का अर्थ

20.2.2 उदाहरण

20.3 आयात अभ्यंशों के प्रकार

20.3.1 प्रशुल्क अभ्यंश

20.3.2 एक पक्षीय अभ्यंश

20.3.3 द्विपक्षीय अभ्यंश

20.3.4 मिश्रित अभ्यंश

20.3.5 आयात लाइसेन्स प्रणाली

20.4 आयात अभ्यंश और प्रशुल्क में अन्तर

20.5 अभ्यंश के प्रभाव

20.6 सारांश

20.7 शब्दावली

20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.9 अभ्यासों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य व्यापार-नियन्त्रण के अस्त्र के रूप में आयात अभ्यंश से आपका परिचय कराना है। प्रशुल्क के साथ इसका भेद बतलाते हुए दोनों के आर्थिक प्रभावो का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाएगा।

20.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप आयात अभ्यंश का अर्थ और इसके उद्देश्यों को जान पायेंगे। प्रशुल्क के साथ इसका विभेद समझ सकेंगें तथा इस बात से अवगत हो पायेंगे कि किन परिस्थितियों में सरकार प्रशुल्क की अपेक्षा आयात अभ्यंशों का ही चुनाव श्रेयकर समझती है। आयात अभ्यंशों के विभिन्न प्रकारों की जानकारी भी आपको दी जायेगी। आयात अभ्यंश का वस्तु की मांग, पूर्ति, कीमत, सरकारी आय, बाजार के स्वरूप आर्थिक कल्याण पर पड़ने वाले प्रभावों को भी आप समझ सकेगें; और इनमें तथा प्रशुल्क के प्रभावों के बीच विभेद भी कर सकेगें।

20.2 प्रमुख बिन्दु

20.2.1 आयात अभ्यंश का अर्थ: आयात अभ्यंश व्यापार नियन्त्रण का एक अस्त्र है इसमें आयात की भौतिक मात्रा निर्धारित कर दी जाती है।

20.2.2 उदाहरण: यदि सरकर आयात किये गए रंगीन टी. वी. की संख्या में एक वर्ष में दस हजार पर निर्धारित करती है तब इसे आयात-अभ्यंश की संख्या दी जा सकती है। इसका प्रयोग प्रशुल्क के विकल्प के रूप में किया जाता है। प्रशुल्क में विदेशों से आयात की गयी वस्तुओं की कीमतों पर सरकार कर लगा देती है जिससे कीमत बढ़ जाती है और आयात की मात्रा घट जाती है।

बोध प्रश्न 1

प्रश्न 1. आयात अभ्यंश से आप क्या समझते हैं प्रशुल्क से यह किस प्रकार भिन्न है।

20.3 आयात अभ्यंश के प्रकार

आयात अभ्यंश कई रूपों में लगाया जा सकता है :

203.1 प्रशुल्क अभ्यंश Tariff Quota))

इसके अन्तर्गत किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा का आयात करो की रियायती दरों पर किया जाता है। इससे अधिक मात्रा का आयात करों की ऊंची दरों पर ही किया जा सकता है। इसकी खूबी यह है कि यह स्थिर अभ्यंश तथा सामान्य प्रशुल्क की विशेषताओं का समिश्रण करता है। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक यूरोप के कई देशों ने इसे अपनाया था।

20.3.2 एक पक्षीय अभ्यंश (Unilateral Quota)

इसमें कोई देश किसी अवधि में किसी वस्तु के आयात की निरपेक्ष मात्रा निश्चित कर देता है जिसका निर्धारण विदेशी सरकारों के साथ बिना किसी पूर्व समझौता के आधार पर किया जाता है। ऐसा स्थिर अभ्यंश भी दो प्रकार से निश्चित किया जाता है।

(क) विश्वस्तरीय अभ्यंश (Universal Quota): इसमें अभ्यंश की मात्रा विश्व स्तर पर निश्चिंत की जाती है और कोई भी बाहरी देश अभ्यंश के तहत निश्चित मात्रा की पूर्ति न्यूनतम मूल्य पर कर सकता है। अभ्यंश निश्चित करने वाले देश को न्यूनतम कीमत का लाभ मिलता तथा विश्व-स्तरीय अभ्यंश गैर-विभेदात्मक होते है।

(ख) आवंटित अभ्यंश: इसमें निर्धारित कुल अभ्यंश का आवंटन और वितरण विभिन्न बाहरी देशों के बीच किसी पूर्व निश्चित कसौटी के आधार पर तय किया जाता है। आवंटित अभ्यंश विभेदात्मक प्रकृति के होते है और अभ्यंश लागू करने वाला देश विश्व-स्तरीय अभ्यंश का मूल्य लाभ प्राप्त नहीं कर पाता। विश्वस्तरीय अभ्यंश के दोषों के कारण ही आवांटित अभ्यंश को विभिन्न देशों के द्वारा अपनाया गया। ये दोष निम्नलिखित है:

(i) ऐसे अभ्यंश की सूचना मिलते ही बड़े आयातक फर्म अपने व्यापार सम्बंधों एवं अच्छी साख के कारण बड़ी मात्रा में आयातों का आर्डर देते है और छोटे आयात कर्ता पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लेते है।

(ii) आयात सम्बंधी सरकारी निर्णाय की घोषणा होते ही इसकी पूर्ति की होड़ मच जाती है जिसका लाभ निकट-स्थित देश ही उठा लेते है और सुंदूर स्थित देश इस प्रतियोगिता में पीछे रह जाते है।

(iii) अभ्यंश की अनुमति की घोषणा किये जाने वाले देश में वस्तुओं की प्राप्ति की होड़ के परिणामस्वरूप कई बार अभ्यंश से अधिक आयात की भी सम्भावना बनी रहती है जिसमें कीमतों में उतार-चढ़ाव बढ़ जाता है। नाशवान वस्तुओं में ऐसी आंशका अधिक रहती है।

विश्वस्तरीय अभ्यंश के इन दोषों के अलावा एक-पक्षीय अभ्यंश लागू करने के पीछे एक कारण यह भी रहा है, कि कुछ देश किसी विशेष निर्यातक देश के पक्ष में भेद पूर्ण नीति अपनाना चाहते है। एक अन्य कारण अभ्यंश वाले देश के हितों के विरूद्ध व्यापार नीति अपनाने वाले देशों से बदला लेने की भावना भी रही है।

प्राय: एक-पक्षीय अभ्यंश निर्यातक देश के द्वारा पूर्व के किसी आधार वर्ष में की गई पूर्ति के प्रतिशत योगदान पर आधारित होता है। इस नीति की सफलता के लिए आधार वर्ष का सामान्य एवं सही प्रतिनिधित्व करने वाला होना आवश्यक है।

यह भी पाया गया है कि जो देश अभ्यंश वाले देश में अपने निर्यात के प्रति आश्वस्त रहते है वे एकाधिकारी की तरह आचरण करने लगते है।

20.3.3 द्विपक्षीय अभ्यंश (Bilateral Quota): इसमें अभ्यंश की मात्रा का निर्धारण आयातक और निर्यातक देशों के बीच मोल-भाव के पश्चात परस्पर सहमति से होता।

1. इसका प्रमुख लाभ यह है कि इसमें बदले की कारवाई की सम्भावना नहीं रहती है।

2. इसमें विदेशी सरकारों की रूचि इस बात में रहती है कि अभ्यंश देश में आयात की मात्रा विश्वस्तरीय अभ्यंश से अधिक न हो।
3. इस बात की भी व्यवस्था इसमें की जा सकती है कि निर्यात अवधि अभ्यंश की अवधि में इस प्रकार समान ढ़ग से वितरित किए जाए कि आयात की गयी पूर्ति में अत्यधिक उतार-चढ़ाव के दोष से बचा जा सके।
4. सहमति के आधार पर निर्यातक देश को एकाधिकार जैसी स्थिति प्राप्त न हो - इसकी व्यवस्था की जा सकती है।
5. विदेशों में विभिन्न फर्मों के बीच निर्यात की मात्रा को लाइसेंस प्रणाली के द्वारा निर्धारित किये जाने के कारण उत्पादक इसका विरोध नहीं करते।
6. इस व्यवस्था में लाइसेंस का प्रबंध निर्यातक देश के द्वारा किया जाता है अत: आयात अभ्यंश निर्धारित करने वाले देश में आयातों की होड़ समाप्त हो जाती है। किन्तु इस व्यवस्था का प्रमुख दोष यह है कि अभ्यंश ऐसे संघों को सौंप दिया जाता है जो शक्तिशाली रहते है। इससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। एक अन्य दोष यह है कि इससे निर्यातक देश में भी कीमतों में वृद्धि होती है जो अभ्यंश वाले देश के हितों के भी विरूद्ध है।

20.3.4 मिश्रित अभ्यंश (Mixed Quota)

कई देशों में यह व्यवस्था की जाती है कि निर्मित वस्तुओं के उत्पादन में प्रयोग किये गए कच्चे मालों या अर्द्ध-निर्मित वस्तुओं का एक निश्चित प्रतिशत भाग घरेलु साधनों का होना चाहिए। उदाहरण के लिए रोटी के उत्पादन में प्रयुक्त आटे का एक निश्चित प्रतिशत भाग घरेलू आटे का होना चाहिए। ऐसा प्रावधान ब्राजील तथा ग्रेट-ब्रिटेन जैसे देशों में किया गया। यह व्यवस्था प्राय: प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन के सिलसिले में की जाती है। वस्त्र के धागों (कच्चा ऊन या मिश्रित धागे), तम्बाकू (घरेलू या विदेशी पत्तियां) और रबर (प्राकृतिक या कृत्रिम) ऐसे उदाहरण हैं।

इसका लाभ यह है कि यह विदेशी एकाधिकार पर पूर्ण निर्भरता से स्वदेश को बचाता है लेकिन इसके साथ वह भी सच है कि यह तुलनात्मक लाभ के आधार पर साधनों के आवंटन के सिद्धांत का हनन करता है। फलत: कीमतें ऊंची होती है और वस्तु की किस्म का स्तर भी गिर जाता है।

20.3.5 आयात लाइसेंस प्रणाली

विश्वस्तरीय अभ्यंश के प्रशासन की कठिनाईयों को दूर करने के लिए यह व्यवस्था अपनाई गई। यह आयात करने की होड़ को रोकने में सहायक है। इस व्यवस्था में आयात के इच्छुक लोगों को लाइसेंस के लिए आवेदन देना पड़ता है। सरकार जिन्हें प्रदान लाइसेंस करती है वे ही आयात के अधिकारी होते है। इसके आधार पर उन्हें विदेशी मुद्रा के प्रयोग की अनुमति मिलती है। यह प्रत्यक्ष रूप से आयात को नियंत्रित करने के बदले परोक्ष रूप में ही साफ़ करता है।

इसके गुण इस प्रकार है:

(i) यह विश्वस्तरीय अभ्यंशों में पाये जाने वाले आयात की होड़ को सीमित करता है;

(ii) इसमें लोच का गुण है क्योंकि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार लाइसेंस आधार पर आयात की भार घटायी या बढ़ायी जा सकती है।

(iii) इसके द्वारा दुर्लभ विदेशी मुद्रा की मांग को सीमित कर पूर्ति के बराबर किया जा सकता है।

इस व्यवस्था के दोष निम्नलिखित है :-

(i) अन्य नियन्त्रणों की तरह आयात लाइसेंस प्रणाली भी भ्रष्टाचार और काले धन को जन्म देती है। लाइसेंस प्राप्त करने की होड़ में रिश्वत देने वाले इसे प्राप्त करने में सफल होते है;

(ii) प्राय: बड़े उद्योगपति इसे प्राप्त कर एकाधिकारी लाभ प्राप्त करते है;

(iii) नये कुशल लेकिन कम साधन वाले उद्योगपति लाइसेंस प्राप्त करने की होड़ में पीछे छूट जाते है और अपनी योग्यता का उपयोग नहीं कर पाते।

बोध प्रश्न 2

प्रश्न 1. आयात अभ्यंश के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त परिचय दें। इनके सापेक्षिक गुण दोषों को बताएं।

प्रश्न 2. आयात लाइसेंस प्रणाली से आप क्या समझते है? क्या आप इसके प्रयोग के पक्ष में है?

20.4 आयात अभ्यंश और प्रशुल्क में अंतर

20.4.1 उद्देश्य

आयात अभ्यंश और प्रशुल्क दोनों के उद्देश्य लगभग समान है दोनों उद्देश्य आयात को घटाकर घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना, व्यापार संतुलन के घाटे को दूर करना और देश में रोजी एवं आर्थिक क्रियाओं के स्तर को ऊपर उठाना है।

20.4.2 कार्य प्रणाली

यद्यपि दोनों के उद्देश्य लगभग समान है, फिर भी दोनों की कार्य-प्रणाली अलग अलग है। प्रशुल्क प्रत्यक्ष रूप से आयात की कीमत को प्रभावित करता है और इसकी मात्रा को परोक्ष रूप से आयात अभ्यंश आयात की मात्रा को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है और इसकी कीमत को परोक्ष रूप से। चूंकि अभ्यंश और प्रशुल्क दोनों आयात की कीमत को बढ़ाते और इसकी मात्रा को घटाते है। अत: दोनों का उपभोग, उत्पादन, व्यापार सन्तुलन, व्यापार की शर्तों राष्ट्रीय आय, वितरण, आर्थिक विकास और आर्थिक कल्याण पर प्रभाव पड़ता है।

20.4.3 दोनों मे अन्तर

इन दोनों में कुछ अन्तर भी है जो निम्नलिखित है -

1. प्रशुल्क से सरकार को आय की प्राप्ति होती है लेकिन आयात अभ्यंश से नहीं इसके साथ पुनर्वितरण तथा कल्याण संबंधी कुछ प्रश्न भी जुड़े हुए है। प्रशुल्क में उपभोक्ता को होने वाली क्षति का एक भाग सरकार को प्रशुल्क आय के रूप में उपलब्ध होता है अभ्यंश प्रणाली के अन्तर्गत उपभोक्ता को होने वाले घाटे की मात्रा लगभग उतनी ही रहती है लेकिन यह अतिरेक किसे प्राप्त होता है - यह स्पष्ट नहीं है। यह सरकार को प्राप्त हो सकता है। यदि वह आयात लाइसेंस के बदलें कीमत लें। ऐसी स्थिति में आयात लाइसेंस शुल्क आयात प्रशुल्क से प्राप्त आय सरकारी आय के समकक्ष ही होगा। लेकिन यदि आयात अभ्यंश का वितरण आयात को के बीच नि:शुल्क किया जाता है तब आयातको को प्राप्त अतिरेक में वृद्धि होगी जबकि सरकारी आय या उपभोक्ता की बचत में कमी होगी। पुन: प्रशुल्क आय का प्रयोग सामाजिक व्यय के रूप में किया जा सकता है। लेकिन अभ्यंशों के लाभ आयातकों को उपलब्ध होते है। जिनके द्वारा सामाजिक कल्याण में वृद्धि की जाने की सम्भावना नहीं है।
2. आयात लाइसेंस का वितरण प्राय: भ्रष्टाचार तथा घूसखोरी को जन्म देता है जबकि आयात प्रशुल्क ऐसी समस्या को जन्म नहीं देता।
3. आयात की वस्तुओं की घरेलू मांग तथा पूर्ति की रेखाओं के बेलोचदार होने की स्थिति में अभ्यंश आयात नियंत्रण में प्रशुल्क की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होते है। क्योंकि मांग तथा पूर्ति की लोच कम होने पर कीमत में वृद्धि की तुलना में मांग में सापेक्षिक कमी तथा पूर्ति में सापेक्षिक वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है।

बोध प्रश्न 3

प्रश्न 1. आयात अभ्यंश और प्रशुल्क की कार्य-प्रणाली में प्रमुख अन्तर कौन-कौन है?

प्रश्न 2. किन परिस्थितियों में अभ्यंश प्रशुल्क की अपेक्षा आयात को घटाने में अधिक प्रभावपूर्ण होता है?

प्रश्न 3. आयात अभ्यंश का सरकारी आय पर क्या प्रभाव पड़ता है? क्या यह प्रशुल्क के प्रभाव से भिन्न होता है?

20.5 अभ्यांश के प्रभाव

20.5.1 कीमत, मांग, पूर्ति और आयात पर प्रभाव

अभ्यंश और प्रशुल्क के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी है। रेखाचित्र 20.1 व रेखाचित्र 20.2 में प्रशुल्क तथा आयात अभ्यंशों के प्रभावों को दिखाया गया है। रेखा चित्र 20.1 में प्रशुल्क लगाये जाने के पहले PO वस्तु की कीमत, OQ_3 मांग, OQ_1 घरेलू पूर्ति तथा Q_1Q_5 आयात है। t_1 के बराबर प्रशुल्क लगाने पर वस्तु की कीमत बढ़कर $p+t_1$ रेखाचित्र 20.2 जाती है। उपभोग घटकर OQ_4 हो जाता है। घरेलू पूर्ति बढ़कर OQ_2 हो जाती हैं और

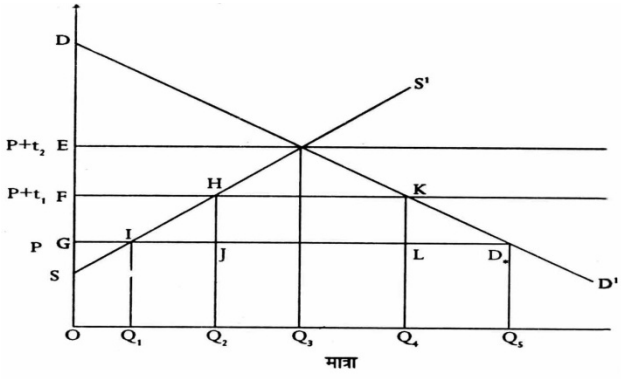

रेखाचित्र 1○.1

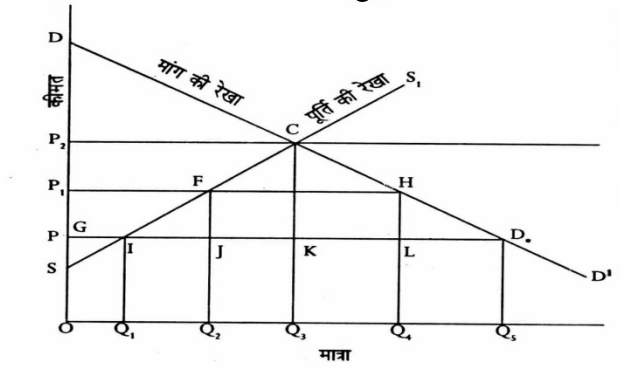

आयात घटकर Q_2Q_4 हो जाता है। इसी प्रकार ऊंची दर t_2 पर यदि प्रशुल्क लगाया जाय तब कीमत बढ़कर $p+t_2$ हो जायेगी। घरेलू पूर्ति और बढकर OQ_3 हो जायेगी तथा उपभोग घटकर OQ_3 हो जायेगा और आयात शून्य हो जायेगा। प्रशुल्क t_2 निषेघात्मक प्रशुल्क का उदाहरण है जो इतना ऊंचा है तो कि हर प्रकार के आयात को पूर्णत: समाप्त कर देता है।

रेखाचित्र 20.2 में आयात अभ्यंश का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रारम्भ में मूल्य PO है। इस मूल्य पर देश OQ_5 मात्रा की मांग करता है और पूर्ति OQ_1 मात्रा की। Q_1Q_5 आयात की मात्रा है। अब आयात अभ्यंश की मात्रा Q_2Q_4 पर निर्धारित कर दी जाती। आयात को घटा कर Q_2Q_4 करने वाला अभ्यंश कई मामलों में रेखाचित्र 20.1 में दिखलाये गये। प्रशुल्क t_1 के समान है जो वस्तु की घरेलु कीमत को बढ़कर $p+t_1$ कर देता है। 20.2 में कीमत p_1 रेखाचित्र 20.1 में कीमत p_1+t_1 के बराबर है। घरेलू उत्पादन, उपभोग घरेलू कीमत, तथा आयात पर प्रभाव एक समान है। लेकिन एक प्रमुख अन्तर यह है कि प्रशुल्क में सरकार को HJLK के बराबर

प्रशुल्क आय की प्राप्ति होगी। जबकि अभ्यंश में यह रकम इसके धारक को प्राप्त होगी। लेकिन यदि सरकार अभ्यंश के अधिकार का निलाम कर इतने के बराबर कीमत ले तब यह अन्तर नहीं होगा। यदि आयात उद्योग में पहले से प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान हो तब अभ्यंश के धारक को एकाधिकारी लाभ की प्राप्ति होगी। एक दूसरा अन्तर यह है कि प्रशुल्क का व्यापार की शर्तों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है जबकि अभ्यंश का प्रभाव अनिश्चित हैं।

20.5.2 उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव

प्रशुल्क में (रेखाचित्र 20.1) घरेलू कीमत में वृद्धि उपभोक्ता की बचत में FKDG की कमी लाती है। इसका JLKH भाग सरकार को आय के रूप में मिलता है। उपभोक्ता की बचत की कमी का एक दूसरा भाग उत्पादकों को उत्पादक बचत के रूप में प्राप्त होता है। यह GIHF है। शेष बचने वाले दो त्रिभुज IJH तथा LDK समाज के लिए संरक्षण का व्यय बतलाते है। IJH इसका उत्पादन व्यय है क्योंकि पूर्व के आयात का q_1, q_2 भाग अब देश में ही उत्पादित होता है। जिसका व्यय अधिक है। दूसरा त्रिभुज LD_*K संरक्षण का उपभोग देय व्यय है।

आयात अभ्यंश (रेखाचित्र 20.2) में भी ये प्रभाव इसी प्रकार होगें। उपभोक्ता की बचत में कमी P_1HD_*P के बराबर होगी जो रेखाचित्र 20.1 के FKD_*G के बराबर है। लेकिन यहां JLHF आयात जो रेखाचित्र 20.1 के JLKH के बराबर है सरकार को प्रशुल्क आय के रूप में उपलब्ध होने के बदले अभ्यंश के धारक को एकाधिकारी लाभ के रूप में प्राप्त होगा। हां, यदि सरकार अभ्यंश को इसी कीमत पर निलाम कर दें तभी प्रशुल्क की तरह इतने के बराबर आय की प्राप्ति हो सकती है। अभ्यंश में भी त्रिभुज IJK तथा LD_*H संरक्षण के क्रमश: उत्पादन तथा उपभोग व्यय है।

20.5.3 अभ्यंश का व्यापार की शर्तों पर प्रभाव

व्यापार की शर्तों पर प्रभाव के मामले में आयात अभ्यंश और प्रशुल्क में अन्तर है। प्रशुल्क का इस पर प्रभाव निश्चित होता है। जिसका पूर्वानुमान सम्भव है लेकिन अभ्यंश का प्रभाव अनिश्चित होता है। इसे रेखाचित्र 20.3 तथा 20.4 में दिखलाया गया है। रेखाचित्र 20.3

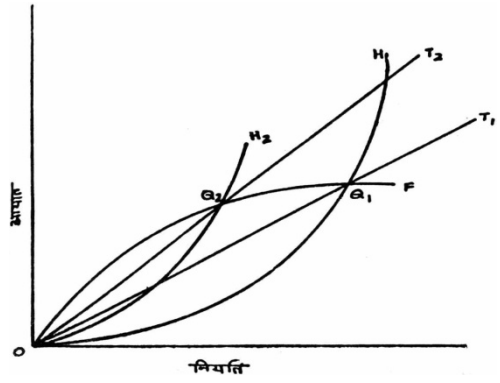

रेखा चित्र 20.3

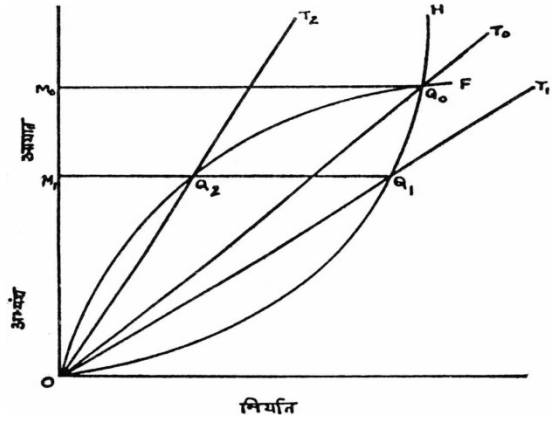

रेखा चित्र 20.4

में प्रशुल्क लगाने वाले देश का प्रस्ताव-वक्र (Offer Curve) OH_1 से OH_2 हो जाता है। जिसके फलस्वरूप व्यापार की शर्तें में सुधार होता है और यह OT_1 से OT_2 हो जाता है। रेखाचित्र 20.4 में अभ्यंश लगाने वाले देश का प्रस्ताव वक्र OH तथा विदेश का प्रस्ताव वक्र OF है। स्वतंत्र व्यापार की स्थिति में संतुलन बिन्दु QO है जहां व्यापार की शर्तें OT_o है। M_oO देश का आयात व M_oQ_o निर्यात है अब देश-आयात अभ्यंश अपनाता है और

आयात की मात्रा OM_1 पर तय करता है प्रश्न है M_1o पर आयात अभ्यंश निर्धारित करने के पश्चात देश की व्यापार की शर्तें क्या होगी? M1 से सीधी क्षितिज मान रेखा खीचने पर यह विदेश के प्रस्ताव वक्र को Q_2 पर तथा स्वदेश के प्रस्ताव वक्र को Q_1, पर काटती है। यदि अभ्यंश लागू करने पर व्यापार संतुलन Q_2 पर होता है स्वदेश के व्यापार की शर्तें में अभ्यंश के फलस्वरूप सुधार होगा। लेकिन यदि ऐसा संतुलन Q_1 बिन्दु पर होता है। तब व्यापार की शर्तें QT_1 होगी अर्थात यह स्वदेश के विपक्ष में हो जायेगी। क्योंकि OT_1 ढ़ाल OT_2 की ढ़ाल से कम है। इस आधार पर अभ्यंश का व्यापार की शर्त पर प्रभाव अनिश्चित होता है।

20.5.4 दोनों के प्रभावों में भिन्नता लानेवाली परिस्थितियां

अभ्यंश और प्रशुल्क के प्रभावों की समानता बाजार की स्थिति पर निर्भर करती है विदेशों में बाजार में प्रतियोगिता या घरेलू आयात - प्रतिस्थापन उद्योगों में स्वतंत्र प्रतियोगिता की स्थिति रहने पर और इसके साथ ही अभ्यंशों के धारकों में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति रहने पर ही अभ्यंश का आर्थिक प्रभाव प्रशुल्क की तरह होगा।

लेकिन सभी बाजारों में प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान नहीं रहती। अभ्यंश का प्रयोग कृषिगत वस्तुओं के आयात को नियंत्रित करने के लिए किया जाता रहा है। 1930 के दशक में इसका प्रयोग काफी प्रचलित था क्योंकि कई वस्तुओं पूर्ति बेलोचदार थी। ऐसी दशा में प्रशुल्क इसका प्रयोग करने वाले देश के प्रक्ष में व्यापार की शर्तें को बदल सकता है। लेकिन यह आयात को सीमित कर घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने में असफल रहता है।

20.5.5 अभ्यंशों के प्रयोग की उपयुक्तता

कृषिगत वस्तुओं की पूर्ति प्राय: अल्पकाल में बेलोच रहती है। यही नहीं इनकी मांग भी बेलोचदार होती है। ऐसी परिस्थिति में अभ्यंश के द्वारा आयात को सीमित किया जा सकता है तथा वस्तु की घरेलू कीमत

से स्थिरिता कायम की जा सकती है। कई देशों में घरेलू कृषिगत नीति की एक विशेषता मूल्यों को समर्थन प्रदान करने की है ताकि किसानों को एक न्यूनतम आय की गारंटी मिल सके। इस उद्देश्य से कृषि वस्तुओं के संबंध में आयात-अभ्यंश की नीति अल्पकाल में प्रशुल्क की अपेक्षा अधिक उपयुक्त हो सकती है।

बोध प्रश्न 4

प्रश्न 1. रेखाचित्र सहायता से मांग, पूर्ति, आयात तथा उपभोक्ता की बचत पर आयात अभ्यंश का प्रभाव बतलाये। यह प्रशुल्क के प्रभाव सें किस मामले में भिन्न होगा?

प्रश्न 2. किन परिस्थितियों में आयात-अभ्यंश का आर्थिक प्रभाव प्रशुल्क के प्रभाव से भिन्न होगा?

प्रश्न 3. किन क्षेत्रों में आयात- अभ्यंशों का प्रयोग अधिक प्रचलित रहा है और क्यों?

20.6 सारांश

इस इकाई में आयात-अभ्यंश से आपका परिचय कराते हुए प्रशुल्क और आयात अभ्यांश में अन्तर बतलाया गया है। इन दोनों के आर्थिक प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। आयात अभ्यंश में सरकार आयात की भौतिक मात्रा निर्धारित करती है। प्रशुल्क में आयात की गयी वस्तु की कीमत पर कर लगाया जाता है। अभ्यंश आयात की मात्रा को पत्यक्ष रूप से नियंत्रित करता है जबकि प्रशुल्क आयातित वस्तु की कीमत को बढ़ाकर इसकी मांग को परोक्ष रूप से नियंत्रित करता है। अभ्यंश के प्रकार है: 1. प्रशुल्क अभ्यंश, 2. एकपक्षीय अभ्यंश, 3. द्विपक्षीय अभ्यंश, 4. मिश्रित अभ्यंश, 5. आयात-लाइसेंस प्रणाली। आयात अभ्यंश तथा प्रशुल्क दोनों का उद्देश्य आयात को नियंत्रित करना, व्यापार संतुलन के घाटे में कमी लाना तथा रोजी और आर्थिक क्रियाओं के स्तर को ऊपर उठाना है। प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान रहने पर दोनों का आर्थिक

प्रभाव लगभग समान होता है। दोनों कीमत को बढ़ाते है; आयातित वस्तु की मांग को घटाकर और इसकी घरेलू पूर्ति को बढ़ाकर आयात की मात्रा को घटाते है। दोनों उपभोक्ता की बचत में भी कमी लाते है लेकिन प्रशुल्क में सरकार को आय की प्राप्ति होती है जबकि अभ्यंश में ऐसा नहीं होता है। सरकार प्रशुल्क आय के बराबर कीमत अभ्यंश के अधिकार को बेचकर प्राप्त करें तब यह अन्तर नहीं होगा। आमतौर पर अभ्यंश में यह में यह रकम आयात-कर्ता को प्राप्त होती है। इन दोनों का एक अन्तर व्यापार की शर्तों को लेकर है। प्रशुल्क व्यापार की शर्तें को अपने पक्ष में करता है जबकि अभ्यंश का प्रभाव इस पर अनिश्चत रहता है। आयात की मांग तथा आयात प्रतिस्थापना वस्तु की घरेलू पूर्ति वे लोचदार रहने पर अभ्यंश की नीति आयात नियन्त्रण में प्रशुल्क की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होती है।

प्रतियोगिता की अनुपस्थिति में अभ्यंश का आर्थिक प्रभाव प्रशुल्क भिन्न होता है।

व्यवहार में कृषिगत वस्तुओं के संबंध में अभ्यंश की नीति अपनायी जाती रही है क्योंकि ऐसी वस्तुओं की पूर्ति अल्पकाल में बेलोचदार रहती है।

20.7 शब्दावली

विभेदात्मक अभ्यंश : अभ्यंश जिसमें विभिन्न देशों के साथ भेद-भाव किया है।

तुलनात्मक लाभ : किसी देश को दूसरे देश की तुलना में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में जो सापेक्षिक लाभ होता है उसे तुलनात्मक लाभ कहते है।

काला धन : गैर कानूनी ढंग से अर्जित आय या संपति

एकाधिकार : किसी वस्तु की पूर्ति पर सिर्फ एक व्यक्ति का नियंत्रण

निषेधात्मक प्रशुल्क : वह प्रशुल्क जिस पर आयात शून्य हो जाए।

उपभोक्ता की बचत : उपभोक्ता जो कीमत देने को तैयार रहता है और वास्तव में कीमत चुकाता है - इन दोनों का अन्तर

मांग और पूर्ति की लोच :

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$\text{पूर्ति की लोच} = \frac{\text{पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

यहां भागफल एक होने पर लोच ईकाई, एक से अधिक होने पर मांग और पूर्ति लोचदार तथा एक से कम होने पर बेलोचदार कहे जाते है।

पूर्ण प्रतियोगिता - इसमे किसी एक वस्तु का मूल्य किसी एक समय सभी के लिये एक ही है। कोई भी क्रेता या विक्रेता अपनी निजी क्रियाओं से कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता।

अल्पकाल- वह अवधि जिसमें सिर्फ परिर्वतनशील साधनों में परिवर्तन कर उत्पादन को घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. International Economics ,Bo Sodersten, Macmillan 1970
2. International Economics, Theory and Policy Issues ;H.G. Mannur, Vikas Publishing House, 1983
3. अन्तराष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,डा. जी. सी. सिंघई, साहित्य भवन, आगरा, 1987.

20.9 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

प्रश्न 1. आयात अभ्यंश में आयात की भौतिक मात्रा निर्धारित कर दी जाती। प्रशुल्क में आयात की जाने वाली वस्तु की कीमत

पर कर लगाया जाता है। यह आयात की कीमत को बढ़ाकर परोक्ष रूप से इसकी मात्रा को घटाता है जबकि अभ्यंश आयात की मात्रा को प्रत्यक्ष रूप से घटाकर परोक्ष रूप से इसकी कीमत को बढ़ाता है।

बोध प्रश्न 2

प्रश्न 1. इस प्रश्न के उत्तर के लिये 20.3.1 से 20.3.5 देखें।

प्रश्न 2. इसमें आयातकर्ताओं को आयात की अनुमति के लिये लाइसेंस प्राप्त करना पड़ता है सरकार अपनी नीति के आधार पर किसी प्राथमिकता के क्रम के अनुसार विशिष्ट वस्तु की विशिष्ट मात्रा के आयात की अनुमति विशिष्ट आवेदकों को देती है।

आयात की होड़ को घटाता है। इसमें लोच का गुण भी है क्योंकि आयात की मात्रा आवश्यकतानुसार घटायी-बढ़ायी जा सकती है। लेकिन इसका लाभ बड़े उद्योगपति ही उठा लेते है। साथ ही यह भ्रष्टाचार मे बढ़ावा देता है।

बोध प्रश्न 3

प्रश्न 1. प्रशुल्क में सरकार को आय की प्राप्ति होती है जबकि अभ्यंश में सरकर से वंचित रहती है और यह आयात कर्त्ता को प्राप्ति होता है। लेकिन यदि सरकार अंश का अधिकार कीमत लेकर बेच दे तब इसमें भी प्रशुल्क की तरह सरकर को आय होगी।

प्रश्न 2. आयात की वस्तु की मांग तथा इसकी प्रतिस्थापन वस्तुओं की घरेलु पूर्ति बेलोचदार न पर अभ्यंश की नीति प्रशुल्क की अपेक्षा आयात-नियंत्रण में अधिक प्रभाव पूर्ण होती है।

प्रश्न 3. आमतौर पर अभ्यंश में सरकार उस आय से वंचित रहती है जो प्रशुल्क की नीति अपनाने पर इसे प्राप्त होती है। यह आप अभ्यंश के धारक को प्राप्त होती है। लेकिन अभ्यंश के अधिकार की नीलामी-कर सरकार इसकी क्षतिपूर्ति कर सकती है।

बोध प्रश्न 4

प्रश्न 1. इस प्रश्न के उत्तर के लिये 20.5.1 और 20.5.2 देखें।

प्रश्न 2. देखें 20.5.3।

प्रश्न 3. कृषिगत वस्तुओं में आयात-अभ्यंशों का प्रयोग अधिक प्रचलित रहा है क्योंकि इनकी मांग तथा अल्पकाल में इनकी पूर्ति बेलोचदार रहती है। ऐसी स्थिति में प्रशुल्क की नीति आयात की मात्रा घटाने में असफल रहती है।

इकाई 21

व्यापार में हस्तक्षेप की आवश्यकता - शिशु उद्योग, बाजार विकृतियां और बाह्राय मितव्ययिताएँ

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 तटकर (प्रशुल्क) के लिये शिशु उद्योग तर्क

21.2.1 आधारभूत तर्क

21.2.2 तर्क की प्रावैगिक प्रकृति

21.2.3 पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताएँ (किफायतें)

21.2.4 बाह्म मितव्ययिताएँ तर्क

21.2.5 तर्क का चित्र द्वारा निरूपण

21.2.6 मिल - बेस्टेबल परीक्षण

21.2.7 कठिनाइयाँ और सीमाएँ

21.3 बाह्य मितव्ययिताएँ

21.4 बाजार अपूर्णताएँ / घरेलू विकृतियाँ

21.4.1 बाजार विकृतियों की प्रकृति

21.4.2 बाजार विकृतियों के उदाहरण

21.4.3 घरेलू विकृतियों की परिभाषाएँ

21.4.4 परेटो उत्तमावस्था (अनुकूलता) का वर्णन

21.4.5 विकृतियों के प्रकार

21.4.6 चित्र द्वारा स्पष्टीकरण (निरूपण)

21.5 सारांश

21.6 शब्दावली

21.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम एक देश के विदेशी व्यापार में सरकार के हस्तक्षेपों के पक्ष के कुछ महत्वपूर्ण तर्को की समीक्षा करेंगे। इकाई 20 में, आपको बताया गया था कि स्वतंत्र व्यापार में ऐसे लाभ है जिन्हें एक देश प्राप्त कर सकता है। स्वतंत्र व्यापार एक सर्वश्रेष्ठ व्यापार नीति मानी जाती है क्योंकि इसमे एक देश का सामाजिक तटस्थता वक्र, जिसमें व्यापार सम्भव नहीं होता है या व्यापार प्रतिबंधित होता है, की तुलना में अधिक उँचे स्तर पर पहुंचता है। परन्तु इसके उपरान्त भी कुछ निर्विवाद स्थितियाँ है जो व्यापार में सरकारी हस्तक्षेप को न्याय सगंत मानती है। अन्तराष्ट्रीय अर्थशास्त्र में अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा इन हस्तक्षेपों की

विस्तृत रूप से समीक्षा की गई है। वे इनका समर्थन करने के लिए विभिन्न तर्क प्रस्तुत करते है। ये तर्क दो प्रकार के हैं जो प्रकृति से गैर आर्थिक हैं जैसे सुरक्षा की आवश्यकताएँ, देश की प्रतिष्ठा और प्रतियोगियों की प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित है।

हम यहाँ पर सिर्फ हस्तक्षेप के आर्थिक तर्को पर ही विचार कर रहे है। हम यह देखेंगे कि इनका देश के कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ता है और यह भी देखेंगे कि उपभोग, उत्पादन और साधन आबंटन पर भी उसका क्या प्रभाव पड़ता है?

21.1 प्रस्तावना

यहाँ हस्तक्षेप के तीन आधारभूत आर्थिक तत्वों की समीक्षा की जायेगी, अर्थात्

शिशु उद्योग तर्क, बाह्य मितव्ययिताएँ/अमितव्ययिताएँ तर्क और बाजार विकृतियों के तर्क। कभी-कभी इन में से प्रथम दो तर्को की, उनकी पारस्परिक अन्तर निर्भरता के तर्क कारण, साथ-साथ समीक्षा की जाती हैं। इसलिये कुछ पुस्तकों में उनका वर्णन संयुक्त रूप से दिया गया है। जैसे-जैसे आप इस इकाई का अध्ययन करेंगे वैसे-वैसे आप भी देखेंगे की उनकी समीक्षा साथ-साथ की जा सकती है।

ये तर्क विकासशील देशों की स्थिति में सही रूप से प्रबल हैं। ये देश स्वंय अपने आप ही तीव्रता से विकास के लिये प्रयत्नशील है। किन्तु वे पाते है कि उनकी घरेलू बाजार संरचना अपूर्ण है और वह उनके स्वतंत्र विदेशी व्यापार में रूकावटें उत्पन्न करती हैं। ठीक उसी प्रकार से वे पाते हैं कि उनके नये उद्योग विदेशों में कड़ी (कठोर) प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने की स्थिति में भी नहीं हैं। परिणामस्वरूप उनके घरेलू उद्योगों की स्थापना नहीं की जा सकती हैं। ये प्रतिकूल प्रवृत्तियाँ सरकार को हस्तक्षेप करने के लिये प्रेरित करती हैं।

हस्तक्षेप कई रूपों में आरम्भ किया जा सकता है, किन्तु इनमें से सबसे अधिक लोकप्रिय तटकर/आर्थिक सहायता है। आयातों पर तटकर या निर्यातों को आर्थिक सहायता सरकारी हस्तक्षेप का महत्वपूर्ण साधन है। इस इकाई में, हम नियंत्रण की इन दोनों विधियों और उनके प्रभावों पर विचार करेंगें।

21.2 शिशु उद्योग तर्क

सर्व प्रथम हम शिशु उद्योग तर्क पर विचार करते है। संरक्षण के लिये सभी आर्थिक और गैर-आर्थिक तत्वों में, इसकी एक सबसे अधिक मान्य विचारा जाता है। इसके पीछे तर्क प्रबल है। यह तर्क सर्व प्रथम 1791 में अमेरिकन अर्थशास्त्री एलेक्जेण्डर हेमिल्टन के द्वारा प्रतिपादित किया गया तथा बाद में अर्थशास्त्री जे. एस. मिल और फेंड्रिक लिस्ट द्वारा आगे विस्तार किया गया।

21.2.1 आधारभूत तर्क

हेक्शचर ओहलिन तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त व्यक्त करता है कि एक देश को उसमें विशिष्टीकरण अपनाना चाहिये और उस वस्तु का निर्यात करना चाहिये जो देश के उत्पादन के प्रचुर साधन का गहनता से उपयोग करता है (देखिये इकाई 5) उत्पादन का सापेक्षिक प्रचुर साधन किसी अन्य दुर्लभ (स्वरूप) साधन की तुलना में अधिक सस्ता होगा। इसलिये अधिक गहनता से इसका उपयोग करके देश सस्ता उत्पादन करेगा और उसे निर्यातों में अधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त होगा। प्रत्येक देश को उत्पादन के प्रचुर साधन के उपयोग के आधार पर अपने निर्यात स्वरूप निश्चित करना चाहिये। यदि सभी देश इसके अनुसार कार्य करें, तो वे सस्ती वस्तुओं का उत्पादन और व्यापार करेंगें। इस प्रकार सभी देश लाभान्वित होंगे।

हालांकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि एक विकासशील देश में, प्रर्याप्त मात्रा में साधनों की सुलभता सम्भव होने के कारण एक विशिष्ट

उद्योग की स्थापना को उचित ठहराया जाता है, परन्तु ठीक उसी प्रकार के उद्योग के विदेशी सस्ते आयातों की प्रतियोगिता के कारण उसको विकसित नहीं किया गया है। कुछ एतिहासिक कारणों से, अन्य देशों में पहल की और विशिष्ट उद्योग को सबसे पहले स्थापित किया। वे पहले से ही इस वस्तु का उत्पादन कर रहें है। इसलिये उनसे सस्ते आयात, यहाँ घरेलू उद्योग के विकास की अनुमति नहीं दे रहे है। ऐसी परिस्थिति में यह तर्क दिया जाता है कि घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण दिया जाना चाहिये।

तर्क यह है कि शिशु अवस्था में जब विकासशील उद्योग कोमल होता है, और विदेशी प्रतियोगिता का सामना करने के लिए सक्षम नहीं होता है, तब आर्थिक सहायता देकर उसकी मदद करनी चाहिये या वैकल्पिक रूप से आयातों पर तटकर लगाते हुये उन्हें मंहगा किया जाना चाहिये। इस प्रकार स्थानीय उद्योगों को कीमत लाभ दिया जायेगा और उन्हें पर्याप्त मांग का आत्मविश्वास दिलाया जायेगा। ये उसके आगे बढ़ने में मदद करेंगे और उसके आधार को दृढ़ता से विकसित करेंगे। 'सीखने की प्रक्रिया' से गुजरने और 'परिपक्व' होने के बाद, वह स्वतंत्र रूप से अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे (आत्मनिर्भर होंगे)। जब शैशवावस्था समाप्त होती है और उद्योग शक्तिशाली हो जाता है, तब आयात कर/आर्थिक सहायता के रूप में दिया गया संरक्षण वापस लिया जा सकता है। तब उद्योग को स्वतंत्र व्यापार की स्थिति में काम करने के योग्य और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कीमतों पर आयातों से प्रतियोगिता करने की स्थिति में माना जा सकता है।

21.2.2 तर्क की प्रावैगिक प्रकृति

संरक्षण के लिये शिशु उद्योग तर्क प्रकृति से आवश्यकरूप से प्रावैगिक होता है। यह सिर्फ सीखने की अवधि में अस्थायी और अल्पकालीन संरक्षण का समर्थन करता है। दीर्घकाल में उद्योग से अपेक्षा की जाती है कि वह संरक्षण के बिना उत्पादन करने की स्थिति में हो। इस

प्रकार यह तर्क घरेलू उद्योगों के स्थायी संरक्षण का समर्थन नहीं करता है। मुख्य विशेषता यह है कि साधनों की प्रचुरता पर यह आधारित तुलनात्मक लाभ का वास्तविक स्वरूप, जो व्यापार की स्वतंत्र शक्तियों के क्रियाशील होने के कारण पहले स्थापित नहीं किया जा सका, अब इस अल्पकालीन संरक्षण की सहायता से उभर सकेगा। संरक्षण की यह अस्थाई प्रकृति है जो तर्क को प्रावैगिक बनाती है।

यहां यह भी स्पष्टरूप से दर्शाया जाना चाहिये कि यह तर्क स्वतंत्र व्यापार नीति के विरूद्ध नहीं है। दीर्घकालीन विश्लेषण में, इस प्रकार का संरक्षण व्यापार के पक्ष में होता है न कि व्यापार के प्रतिकूल।

21.2.3 पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताएँ (किफायतें)

शिशु उद्योगों के संरक्षण के पक्ष में प्रमुख तर्क उसके पैमाने की मितव्ययिताएँ हैं। यदि आयात प्रशुल्क/आर्थिक अनुदान उपायों से हतोत्साहित किये जाते हैं, तो घरेलू उद्योग स्थानीय बाजार को उसके लिये सुरक्षित पाता है। वह स्थानीय मांग को पूरा करने के लिये उत्पादन का विस्तार करने में समर्थ होता है। उत्पादन के विस्तार के साथ-साथ, उद्योग पैमाने के किफायतों (पैमानें के वर्द्धमान प्रतिफल) के लाभ प्राप्त करने की स्थिति में होगा। वह बड़े पैमाने के उत्पत्ति के लिये आधुनिक प्रोद्यौगिकी (तकनीकी मितव्ययिताएँ) को आरम्भ करेगा। वह बड़ी मात्रा में कच्चा माल खरीदेगा और इसलिये वह उसे अधिक सस्ता पा सकता है। ठीक उसी प्रकार बड़ी मात्रा में विक्रय द्वारा, वह उसकी वस्तु कीमत को उसके पक्ष में प्रभावित कर सकता है। (बाजार मितव्ययिताएँ)। बड़ा उत्पादक होने के कारण, वह बड़ी मात्रा में वित्त का प्रबंध कर सकेगा और वह भी सुविधाजनक शर्तों पर (वित्तीय मितव्ययिताएँ)। वह उत्पादन के अलग-अलग क्षेत्रों के संचालन के लिये प्रशिक्षित व अनुभवी अधिकारियों को नियुक्त करेगा जैसे प्रबन्ध, निरीक्षण, बिक्री, श्रम नियंत्रण, वित्त इत्यादि। इससे अधिक कार्यकुशल उत्पादन होने लगेगा और इससे लागतों

में कमी होगी (प्रबन्धकीय मितव्ययिताएँ)। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि बढ़े हुये पैमाने के उत्पादन के साथ-साथ संयंत्र श्रम विभाजन/विशिष्टीकरण लागू करेगा और इसके परिणाम से लागत और समय में बचत होगी।

21.2.4 बाह्य मितव्ययिताएं

कभी-कभी यह दर्शाया जाता है कि यदि संरक्षण केवल उद्योग को ही नहीं दिया जाता, किन्तु कई उद्योगों को एक साथ दिया जाता है, तब यह उनके विकास में अधिक मदद करेगा। उद्योगों के पारस्परिक अनुभव व उत्पादन से बास मितव्ययिताओं का लाभ उठाने की सम्भावना होगी। उनमें से कुछ अपने उत्पादन से 'दूसरों को पूर्ति करेंगे, जिसका उनके उत्पादन में इन्पुट (कच्चे माल) के रूप में उपयोग किया जा सकता है। उनके पारस्परिक मांग बढ़ाने में मदद करेगा। यह सरकार की मदद करेगा यदि इन उद्योगों का स्थानीकरण किया जाय, और सामान्य संरचनात्मक सुविधाएँ (Infrastructure) जैसे सड़कें, रेलवे, डाक व तारघर, बैंक इत्यादि की स्थापना की जायें। ये बाह्रा मितव्ययिताएँ अधिक कार्यकुशल उत्पादन को आगे बढ़ायेगी और उत्पादन लागत में कमी करेगी शिशु उद्योग तर्क का कभी-कभी शिशु अर्थ व्यवस्था तर्क में विस्तार किया जाता है तो इससे न केवल एक किन्तु आवश्यक आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं के साथ-साथ कई उद्योगों का विकास होने लगता है। ये सब बाह्रा मितव्ययिताओं के लाभों में वृद्धि करते हैं।

21.2.5 तर्क का रेखा-चित्र द्वारा निरूपण

संलग्न चित्र (21.1) में, एक शिशु उद्योग से संरक्षण के लाभ को प्रदर्शित किया गया है। देश के उत्पादन सीमा (उत्पादन सम्भावना वक्र) को SS वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तें (कीमत रेखा) PP दी गई है।

चित्र 21.1

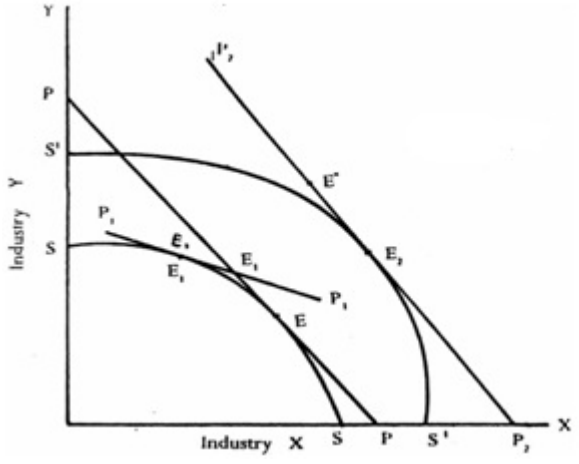

जब कोई व्यापार नहीं होता है, तब PP रेखा SS वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श से है। PP रेखा E बिन्दु पर तटस्थता वक्र (यहां नहीं दर्शाया गया है) की भी स्पर्श रेखा है। इस प्रकार, बिन्दु E घरेलु साम्य को दर्शाता है, अर्थात् देश E बिन्दु पर उत्पादन व उपभोग कर रहा है। व्यापार आरम्भ होने के साथ, नया साम्य E' हो जाता है, जो यह दर्शाता है कि देश पहले के भांति E बिन्दु पर उत्पादन कर रहा है किन्तु E' पर उपभोग कर रहा है। बिन्दु E^1 देश के कल्याण (प्रगति) के लाभ को दर्शाता है। क्योंकि यह ऊँचे तटस्थता वक्र IC पर पहुंचता है। (अगर आप इसे चित्र पर खींचते है तो आप उसे व्यापार न होने की स्थिति की तुलना में वक्र से ऊँचा पायेंगें।

अब देश Y उद्योगों को संरक्षण देने का निश्चय करता है। उन्हें महँगा करने के लिये आयातों पर निषेधात्मक प्रशुल्क (तटकर) लगाया जाता है। इसे नयी कीमत रेखा P_1P_1 द्वारा दिखाया गया है, जो उत्पादन सम्भावना वक्र SS के E_1 बिन्दु पर एक स्पर्श रेखा है। E_1 पर स्पष्ट है कि इससे देश के कल्याण में गिरावट होती है क्योंकि E_1 पर नया तटस्थता वक्र Ic_1 तटस्थता वक्र IC से नीचे है। इससे स्पष्ट होता है कि आरम्भ में व्यापार प्रतिबन्ध देश के कल्याण में कमी लाता है हालांकि संरक्षण शिशु उद्योग के तीव्र विकास में सहायता करता है। यह संरक्षित बाजार में इसके उत्पादन का विस्तार करता है। उससे पैमाने की मितव्ययिताएँ और उत्पादन की कुशलता प्राप्त की जाती हैं। परिणामस्वरूप, उत्पादन लागत और कीमतों

में कमी होती है। उत्पादन सम्भावना वक्र ऊपर की ओर खिचकता है। अब नया उत्पादन सम्भावना वक्र $S'S'$ होता है। मान लीजिये देश पहले की अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपातों (व्यापार शर्तों) पर पुन: स्वतंत्र व्यापार आरम्भ करने का निश्चय करता है। नयी कीमत रेखा P_2P_2 प्रारम्भिक कीमत रेखा PP के ठीक समानान्तर खींची जाती है। P_2P_2 उत्पादन सम्भावना वक्र $S'S'$ के बिन्दु E_2 पर एक स्पर्श रेखा है। व्यापार के माध्यम से देश E'' की ओर बढ़ सकता है। क्योंकि स्पष्ट है कि बिन्दु E'' उच्चतर तटस्थता वक्र पर है और जो देश के कल्याण में वृद्धि को दर्शाता है।

इस प्रकार, तटकर (प्रशुल्क) लगाने के कारण, प्रारम्भिक अवस्था में उपभोक्ता के कल्याण में कमी होती है। किन्तु दीर्घकाल में, कल्याण में वृद्धि होती है क्योंकि देश के उत्पादन सम्भावना सीमा में ऊपर की ओर उछलाव (छलांग) होता है जिससे उच्च सम्भावना वक्र पर पहुंचना सम्भव होता है।

21.2.6 मिल-बेस्टेबल परीक्षण

उपर्युक्त चित्र के अध्ययन से आपने ध्यान से देख लिया हैं कि शिशु उद्योगों के संरक्षण से अल्पकाल में देश के कल्याण में क्षति होती है। यह सिर्फ दीर्घकाल में ही देश के कल्याण को बढ़ाता है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि संरक्षण सिर्फ उन उद्योगों को दिया जाये जो अन्त में प्रारम्भिक अवस्था में हुये अर्थव्यवस्था की हानियों की पुन: क्षतिपूर्ति के योग्य हो। अर्थात् दीर्घकालीन लाभ अल्पकालीन हानियों की क्षतिपूर्ति के लिये अधिक हो। सिर्फ वे ही उद्योग जो उसकी जिम्मेदारी लेवें, संरक्षण के पात्र होते हैं। उसके प्रतिपादक सी.एफ. बेस्टेबल के अनुसार, यह सिद्धांत बेस्टेबल परीक्षण के नाम से विख्यात है।

बेस्टेबल सीखने की अवधि में लगने वाली लागतों को एक प्रकार का विनियोग मानता है जिसके प्रतिफल अर्थव्यवस्था को भावी लागतों में कमियों के रूप में प्राप्त होते हैं। अन्य शब्दों में, 'बेस्टेबल परीक्षण' के लिये यह आवश्यक है कि भावी लागतों का वर्तमान बट्टा मूल्य कम से कम

उतना अधिक हो जितना कि शिशु (उद्योगों) के विकास के सहायता के लिये लगी प्रारम्भिक लागतों के। किन्तु इस परीक्षण के पहले दूसरा सिद्धान्त 'मिल परीक्षण' जो एस. मिल के नाम से विख्यात है इस परीक्षण के अनुसार संरक्षण केवल उन उद्योगों को दिया जाना चाहिए जो अन्तराष्ट्रीय-कीमतों पर उत्पादन करेंगे तथा सरकार द्वारा उनसे संरक्षण वापस लिये जाने के बाद आयातों से प्रतियोगिता करेंगे।

21.2.7 कठिनाइयां और सीमाएं

किन्तु इन दोनों सिद्धान्तों का अनुसरण करना कठिन होता है। सर्वप्रथम यह भय रहता है कि 'शिशु' कभी न सीखें और न कभी परिपक्व हो सकें। उद्योग उस स्तर तक विकास नहीं कर सकें जिस स्तर तक यह अपने पैरों पर खड़ा हो सकें। यह सामान्य अनुभव है कि जब संरक्षण वापस लिया जाता है तब उद्योग अपने आपको असुरक्षित और घायल अवस्था में पाता है। यह विश्व प्रतियोगिता का सामना नहीं कर सकता है क्योंकि यह प्रतियोगी कीमतों पर उत्पादन करने की स्थिति में नहीं होता है। उस स्थिति में उद्योग मिल परीक्षण को पूरा नहीं करता है। तब उसके लिये बेस्टेबल परीक्षण भी पूरा करना सम्भव नहीं होता है। उपभोग पक्ष और स्थगित किये गये वैकल्पिक उत्पादन के रूप में दोनों पर सहन की गई हॉनियों की क्षतिपूर्ति पूर्णतया नहीं की जा सकती।

तथ्य यह है कि शिशु उद्योग प्रशुल्क, जो एक बार लगाया जाता है, को वापस हटाना अत्यन्त कठिन होता है। यद्यपि संरक्षित उद्योगों ने कुशलता और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिये आवश्यक आकार को प्राप्त कर लिया है, फिर भी वे उस प्रशुल्क द्वारा दिये गये अतिरिक्त सुरक्षित लाभ के हटाने का स्वागत नही करते है। उस स्थिति में जहां संरक्षित उद्योगों ने आवश्यक कार्यकुशलता को प्राप्त नहीं किया है, उसका आशय सरकारी प्रयासों की असफलता से है। यद्यपि उस स्थिति में भी, संरक्षण को वापस लिया जाता है, तो यह नये स्थापित किये गये उद्योग के जीवन

रक्षक रस्सी को काटता है और देश को स्थाई कल्याण की क्षति की और ले जाता है।

शिशु उद्योग तर्क का उपयोग बहुत ही चयनित रूप से और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिये। कभी-कभी पहले से तत्काल यह निर्धारित करना बड़ा कठिन होता है कि कौन-कौन से उद्योगों में सम्भावित तुलनात्मक लाभ पाया जा सकता है। यदि एक गलत उद्योग को संरक्षण दिया जाये तो समाज के लिये उसकी लागते अधिक होगी। फर्में अपनी उत्पादन क्षमता का विस्तार करेगी।, किन्तु उनकी प्रति इकाई लागतें ऊंची रहेगी। उस स्थिति में अनवरत रूप से संरक्षण देना होगा।

शिशु उद्योग तर्क के लिये एक महत्वपूर्ण सीमा भी है। यह दर्शाया जा चुका है कि एक उद्योग विकसित नहीं हो सकता यद्यपि उसे तटकर संरक्षण का आश्वासन दिया जाता है। यह स्थिति एक विकासशील अर्थव्यवस्था में हो सकती है जहां वित्त और कौशल के अभाव की विशेष रूकावटें होती है। ये अभाव सभी प्रकार के साधनों के अभाव के कारण हो सकते है; किन्तु उसकी पिछड़ी प्रकृति और पूंजी बाजार/साधन बाजार में अपूर्णताओं के कारण भी हो सकते है। इसके अतिरिक्त उद्यमियों को उपलब्ध अवसरों के विषय में सही सूचनाएं प्राप्त नहीं हो सकती है। द्वितीय उत्पादन की उन परिस्थितियों में जहां बाह्य मितव्ययिताएं/अमितव्ययिताए/ का अस्तित्व होता है वहां उनमें विनियोग प्रवाहित न हो सके। और दृष्टान्त के रूप में, विनियोग की कुछ दिशाएँ हो सकती है, जहां निजी प्रतिफल सामाजिक प्रतिफलों (अर्थात् शिक्षा) से कम होती है। उन परिस्थितियों में विनियोग आरम्भ नहीं हो सकता है जब तक कि उनमें पर्याप्त क्षतिपूर्ति नहीं हो। ये दोनों विशेषताएँ बाह्य मितव्ययिताएँ और बाजार विकृतियों के संदर्भ की समीक्षा को जन्म देती हैं।

बोध प्रश्न-1

प्रश्न 1. शिशु उद्योग तर्क की प्रावैगिक प्रकृति की विवेचना कीजिये।

प्रश्न 2. मिल - बेस्टेबल परीक्षण क्या है?

प्रश्न 3. शिशु उद्योग तर्क लागू करने में होने वाली कठिनाइयों की विवेचना कीजिये।

प्रश्न 4. पैमाने की किफायत (मितव्ययिताएँ) शिशु उद्योग से किस प्रकार संबंद्ध है?

21.3 बाह्य मितव्ययिताएँ एक बार पुन:

कभी सरकारी हस्तक्षेप उन आर्थिक क्रियाओं के संबंध में सुझाया जाता है जहां मितव्ययिताएं मुख्य विशेषता होती है। इन परिस्थितियों में, जहां विनियोग पर प्रतिफल की निजी दर प्रतिफल की सामाजिक दर से नीची होती है। इसलिये निजी उद्यमियों को विनियोग के लिये आकर्षित करने के लिये सरकार को उन्हें पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता देनी चाहिये अन्यथा विनियोग करने से बच जायेंगे।

उदाहरण के लिये एक विकासशील अर्थ व्यवस्था में, आवश्यक श्रम कौशल का सामान्य अभाव होता है। अपने उद्योग को सुचारू रूप से चलाने के लिये उद्यमी को श्रमशक्ति को प्रशिक्षित करना चाहिये। हांलाकि, प्रशिक्षण व कौशल सुधार में उसके विनियोग के प्रतिफल का पूर्णरूपेण उपयोग उसके द्वारा नहीं किया जा सकता, यदि प्रशिक्षण के बाद श्रमिक दूसरे उद्यमियों के पास चले जाते है, जो उन्हें अधिक मजदूरी देने के लिये तत्पर है। इस प्रकार पथप्रदर्शक उद्यमियों के लिये प्रतिफल की निजी दर प्रतिफल की सामाजिक दर से नीची है। इस स्थिति में पथप्रदर्शक उद्यमियों को आर्थिक सहायता उचित होती है।

ठीक उसी प्रकार उद्यमियों को प्रारम्भ में उत्पादन की नई तकनीकों का ज्ञान प्राप्त करने में व्यय करना होता है। परन्तु एक बार ऐसे ज्ञान का सृजन होने पर उसे दूसरे से गुप्त नही रखा जा सकता है, जो उसके बाद में क्षेत्र में प्रवेश करते है। वे उसको प्राप्त करने में किसी प्रकार की राशि को व्यय किये बिना उसका उपयोग कर सकते है। इस कारण फिर से निजी उद्यमकर्त्ता अपने प्रयासों के फल का पूरा लाभ प्राप्त करने की स्थिति में

नहीं होते है। अत: प्रतिफल की निजी दर प्रतिफल की सामाजिक दर से नीची होती है। इस कारण से ऐसी स्थिति में उत्पादक को आर्थिक सहायता देने का अधिकार दिया जाता है। जैसा कि पहले दर्शाया (15.2.7) गया है कि इन बाह्य मितव्ययिताओं में घरेलू अर्थव्यवस्था में भी कुछ विकृतियों उत्पन्न होने की प्रवृत्ति होती है। इसलिये सरकार के लिये आवश्यक हो जाता है कि वह हस्तक्षेप करें।

इन सब की 21.4 में विस्तृत विवेचना की जायेगी।

21.4 बाजार अपूर्णताएँ / घरेलू विकृतियाँ

बाजार अपूर्णता/घरेलू विकृतियाँ के अध्ययन में मुख्य योगदान हेबरलर कॉरडेन, फिशलो और डेविड, हेगन, मीड़, जोहन्सन तथा भगवती और रामास्वामी से मिला हैं।

21.4.1 बाजार विकृतियों की प्रकृति

व्यापार सिद्धान्त में यह सिद्ध किया जा चुका है कि उस स्थिति में जहां बाजार विकृतियाँ पायी जाती है, वहां स्वतंत्र व्यापार की नीति एक 'अनुकुल नीति' नहीं होती है। यह विशेषकर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में सत्य है। ऐसी स्थिति में घरेलू को प्रतियोगी स्वतंत्र व्यापार में होने वाले लाभ को प्राप्त करने से वंचित किया जाता है। इसलिये, घरेलू अर्थव्यवस्था में विद्यमान विकृतियों को सुधारने के लिये सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिये और तटकर लगाना चाहिये या व्यापार पर आर्थिक अनुदान देना चाहिये। जबकि शिशु उद्योग तर्क, संरक्षण अस्थाई प्रकृति का होता है, वहां इस अवस्था में घरेलू विकृतियों जैसे कि बाह्य मितव्ययिताएँ, एकाधिकारात्मक कीमतें या साधन बाजार में असाम्य को नियंत्रित करने के लिये जो संरक्षण प्रस्तावित किया जाता है वह स्थाई प्रकृति का होता है। तटकर घरेलू विकृति को हटाने की एक विधि है।

21.4.2 बाजार विकृतियों के उदाहरण

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार विकृति का एक प्रमुख उदाहरण है। आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययिताओं की समान पहुंच न होने के रूप में, पूर्ण प्रतियोगिता की अपूर्णता, प्रतियोगी परिस्थितियों को समान करने के लिये संरक्षण को आवश्यक ठहराती है। ठीक उसी प्रकार से, बाजार कीमतों की भिन्नता के अनुसार साधनों को अपने आप में आवंटित करने की असफलता हो सकती है। इसका परिणाम साधनों का कुआंवटन होता है। उदाहरण के लिये विकासशील देशों में अर्थव्यवस्था के विभिन्न खण्डों के बीच कभी-कभी श्रम की गतिशीलता बहुत ही कम पायी जाती है। श्रम की कृषि के साथ परम्परागत घनिष्ठता (लगाव) होती है और वह उद्योग और आधुनिक सेवा क्षेत्रों की ओर गतिशील नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में ऐसी हलचल को प्रोत्साहित करने के लिये औद्योगिक मजदूरियों में प्रर्याप्त मात्रा में वृद्धि करना आवश्यक होता है। यह निर्मित वस्तुओं के आयातों पर वह तटकर लगाकर किया जा सकता है। यह घरेलू उद्योगपतियों को उनकी वस्तुओं की ऊंची मजदूरी चुका सकेंगे। यह श्रम को उद्योगों की ओर गतिशील होने में प्रोत्साहित करेगा। इससे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में साधनों का उचित आवंटन होने लगेगा।

कुछ तर्क तटकर के विरूद्ध है जो इसका उपयोग श्रम की गतिशीलता में अनम्यता को हटाने के लिये किया जाता है। यह

यह सुझाया जाता है कि अंतिम परिणाम तो श्रम को प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता देकर उसे गतिशील होने के लिये प्रोत्सहित कर या उद्योगों स्वंय को ऊंची मजदूरियों की लागत के भुगतान में सहायता देते हुये प्राप्त किया जा सकता है। कभी-कभी घरेलू अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य नीति का उपयोग प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता है।

बाजार विकृति का एक रूप वह है जब घरेलू विनियोग का स्वरूप सुदृढ़ नहीं होता है। सरकार कुछ उद्योगों का तेजी से विकास को

प्रोत्साहित करना चाहती है। तब पुन: एक विशेष दिशा में विनियोग बढ़ाने के लिये संरक्षण का तर्क दिया जाता है।

पूंजी बाजार अपूर्ण हो सकता है और इसलिये नये उद्योगों में विनियोग के वित्तीय प्रबन्ध की लागत बहुत ऊंची हो सकती है। सामाजिक और निजी समय अधिमानों, खतरें के निर्धारण और सूचनाओं की उपलब्धि के बीच भिन्नताएँ हो सकती है।

21.4.3 घरेलू विकृतियों की परिभाषा

अर्थव्यवस्था में अनेक विकृतियों या अपूर्णताएँ जो बाजार तंत्र को परेटो उत्तमावस्था (अनुकूलता) प्राप्त करने से रोकती है, को घरेलू विकृतियाँ कहा जाता है। ये विकृतियाँ उत्पन्न हो सकती है।

(अ) विशिष्ट बाजार लक्षणों के कारण, या

(ब) उत्पन्न हो सकती है - प्रोत्साहित की गई नीति अर्थात् अपूर्णताएँ जो गलत आर्थिक नीतियों के परिणाम के कारण है।

इस प्रकार घरेलू विकृतियों के सिद्धांतों का लक्ष्य उन अपूर्णताओं या सरकार की नीतिगत चरों के प्रभावों को निरर्थक करना और अन्त में परेटों अनुकूलता की पूर्वावस्था प्राप्त करना होता है।

विकृतियों के अर्थ और जटिलताओं को सही ढ़ग से समझने के लिये, सर्वप्रथम 'आदर्श' या 'अनुकूल' स्थिति को जानना आवश्यक है। यह अनुकूल स्थिति से विचलन है जो विकृति के अर्थ को प्रकट करता है।

21.4.4 परेटों उत्तमावस्था (अनुकूलता) का वर्णन

इसकी व्याख्या करने के लिये, हम कल्पना करते है कि एक देश जिसके श्रम (L) और पूंजी (K) दो उत्पादन के साधन है जिनका उपयोग X व Y दो वस्तुओं उत्पादन में किया जाता है। यह भी कल्पना की जाती है कि उत्पादन बढ़ती हुई अवसर लागतों की स्थिति के अन्तर्गत होता है। यह भी परेटो उत्तमावस्था (अनुकूलता) शर्तों का वर्णन निम्न प्रकार है:

(i) Y के लिये X की प्रतिस्थापन की सामाजिक सीमान्त दर (MRSxy) रूपान्तरण की घरेलू सामाजिक सीमान्त दर (MRT $_{xy^d}$) और रूपान्तरण के विदेशी सीमान्त दर (MRT $_{xy^f}$), सभी एक दूसरे के समान होनी चाहिये अन्य शब्दों में

$$MRSxy = MRT_{xy^d} = MRT_{xy^f}$$

(ii) पूंजी के लिये श्रम की प्रतिस्थापन की सामाजिक सीमान्त दर (MRS $_{Lk^*}$) य (MRSLK^x) x और y दोनों वस्तुओं के उत्पादन में वही रहती ई अन्य शब्दों में,

$$MRS_{Lk^y} = MRS_{Lk^y}$$

ये दोनों शर्तें एक साथ स्पष्ट करती है कि उत्पादन देश के उत्पादन सम्भावना वक्र के स्वंय की सीमा पर (न तो इसके ऊपर व न इसके नीचे) हो रहा है और यह भी सीमा के उस बिन्दु पर जहां यह सर्वोच्च सम्भाव्य सामाजिक तटस्थता वक्र की स्पर्श रेखा है।

(iii) एक पूर्ण रूपेण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में, घरेलू वस्तु कीमत अनुपात (Pd), सीमान्त लागत अनुपात कीमत अनुपात (Pf), के बराबर होता है।

$$Pd = \frac{Mcx}{Mcy} = Pf$$

(iv)साधन कीमत भिन्नता की अनुपस्थिति में, X उद्योग में साधन कीमत अनुपात ($\frac{w}{L}$) Y उद्योग में साधन कीमत अनुपात ($\frac{w}{L}$)Y के बराबर (एक कीमत का नियम) होता है अर्थात् ($\frac{w}{L}$)x= $\frac{w}{L}$y= $\frac{w}{L}$

इस प्रकार घरेलू विकृतियों की अनुपस्थिति में, घरेलू कीमत अनुपात Pd की समानता MRSxy से की जाती है। $\frac{Mcx}{Mcy}$ की

समानता MRT$_{xy^f}$ से की जाती है। $\frac{w}{L}$ की समानता MRS$_{Lk^*}$ = MRS$_{Lk^y}$ से की जाती है किसी भी प्रकार की घरेलू अपूर्णताओं की अनुपस्थिति में, एक पूर्णतया प्रतियोगी अर्थव्यवस्था परेटों अनुकूल अर्थव्यवस्था होती है।

21.4.5 अपूर्णता के प्रकार

परेटो द्वारा दी गई अनुकूल स्थितियों को समझने के बाद, हम उससे प्रस्थानों (deviations) पर विचार करते है। ये प्रस्थान अपूर्णताओं के प्रकार और प्रकृति की दर्शाते है।

(1) MRSxy = MRT$_{xy^f}$ = MRT$_{xy^d}$

यह उस समय घटित होता है जब या तो

a) X या Y या दोनों एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता या अल्पाधिकारात्मक प्रतियोगिता की परिस्थितियों के अन्तर्गत कीमतों को उत्पादन की सीमान्त लागत से अधिक करते हुए उत्पादित किये जाये।

b) X या Y दोनों के उत्पादन में बाह्य मितव्ययिताएं/अमितव्ययिता जिससे निजी सीमान्त लागतों का अनुपात ($\frac{Mcx}{Mcy}$) MRT$_{xy^9}$ के बराबर नहीं होता है।

(2) MRSxy $\neq$ MRT$_{xy^f}$ यह साधारणतया उस समय घटित होता है। जब उपभोग के क्षेत्र में बाह्य मितव्ययिता/अमितव्ययिता हो यदि MRSxy $>$ MRS$_{xy^d}$ = MRT$_{xy^f}$ तो इसका आशय है कि x वस्तु के उपभोग में बाहय अमितव्ययिताएं विद्यमान है या y वस्तु के उपभोग में बाह्य अमितव्ययिताएं विद्यमान है या इन दोनों का कोई संयोग है। उत्तमावस्था (अनुकूलता) को पुन: प्राप्त करने के लिए MRSxy को MRS$_{xy^d}$ और MRT$_{xy^f}$ के समान होने के लिए पर्याप्त मात्रा में कम किया जाना चाहिए। यह X के सापेक्षिक कीमत में कमी (Y के सापेक्षिक कीमत में वृद्धि करके) करते हुए भी किया जा सकता है। किन्तु तटकर (प्रशुल्क) लगाते हुये

Y वस्तु की सापेक्ष कीमत में वृद्धि के किसी भी प्रयास से उसके घरेलू उत्पादन में वृद्धि होगी। किन्तु X वस्तु के उत्पादन में कमी होगी। इस कारण उत्पादन में हानि होती है (क्योंकि तटकर के परिणामस्वरूप MRS $_{xy^d} \neq$ MRT $_{xy^f}$ यद्यपि इससे उपभोक्ता को लाभ होता है जो MRSxy व MRTxy की समानता के परिणाम स्वरूप तटकर द्वारा प्राप्त होता है। यदि उपभोक्ता लाभ उत्पादन हानि की अपेक्षा अधिक है, तो इससे सामाजिक कल्याण में कमी होगी। ऐसी स्थिति में अनुकूलतम नीति वह है जिसमें या तो उस वस्तु को आर्थिक अनुदान (उस पर कर लगाना) देना जिसका उपभोग बाह्य मितव्ययिता (अमितव्ययिता) के अधीन है या दूसरी वस्तु पर उपभोग कर (आर्थिक अनुदान देना) लगाने की। इससे एक ही समय उत्पादन में हानि हुये बिना उपभोक्ता लाभ उत्पन्न हो सकता है।

(3) $MRS_{lk}^{x} = MRS_{lk}^{y}$

इसका आशय साधन बाजार में विकृति से है जो साधन कीमत भिन्नताओं, साधन गतिहीनता या साधन कीमत अनम्यता के कारण उत्पन्न हुई है।

साधन कीमत भिन्नता विभिन्न उद्योगों/व्यवसायों में एक साधन को पुरस्कार के रूप में हो सकती है उदाहरण के लिये (संगठित क्षेत्र में) औद्योगिक मजदूरियों साधारणतया (असंगठित क्षेत्र) कृषि क्षेत्र की तुलना में अधिक होती है और कौशल, कार्य की प्रकृति इत्यादि में भिन्नता के कारण इन अन्तरों की समानता नही होती है। एक दूसरी स्थिति भी हो सकती है जहां सभी उद्योगों में साधन कीमतें समान होती है। किन्तु वहां साधन प्रतिफल (कीमत) सीमान्त उत्पादनता से कम हो सकता है।

विकृत साधन कीमत भिन्नताओं के पाये जाने के कारण में कुछ कारण जो प्रो. भगवती द्वारा सूची बद्ध किये गये है; वे निम्न है :-

(i) सूचनाओं का अभाव

(ii) आयु, जाति या लिंग पर आधारित भेद

(iii) सामूहिक सौदेबाजी के रूप में श्रमिक संघों का हस्तक्षेप

(iv)साधन करारोपण या अनुदान देने में भिन्नता

(v) साधन अधिनियम जैसे न्यूनतम मजदूरी कानून इत्यादि

(vi)अपूर्ण (दोषयुक्त) पूंजी बाजार

साधन कीमत भिन्नता दो प्रमुख त्रुटियों को जन्म देती है। प्रथम, वे X और Y उद्योगों के बीच पूंजी के लिये श्रम की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की समानता को रोकते है। अर्थात् ($MRS^x_{lk} \neq MRS^y_{lky}$) परिणामस्वरूप साधनों का कुआवंटन होता है। द्वितीय साधन कीमत भिन्नता वस्तु बाजार कीमत अनुपात और प्रतिस्थापन की घरेलू रूपान्तरण दर (अर्थात् MRSxy $=$ MRT $xy^f \neq$ MRT xy^d के मध्य भिन्नता को जन्म देती है।

यद्यपि संरक्षण दिया भी जाता है, तो अब भी MRS^x_{lk} MRS^y_{lk} के आसान होगी। यह इसलिये है क्योंकि अर्थव्यवस्था कुल घरेलू उत्पादन के निम्न स्तर पर संचालन करना जारी रखती है। संरक्षण अर्थव्यवस्था को इसके इष्टतम उत्पादन सम्भावना वक्र पर उत्पादन करने में मदद नहीं करता है। इन राष्ट्रीय कल्याण का स्तर नीचे रहता है। इसके अतिरिक्त, संरक्षण से भी निष्कर्ष निकलेगा कि MRSxy $\neq$ MRT $xy^d =$ MRT xy^f के है।

पूर्णरूप से परेटो अनुकूलता पुन: प्राप्त करने के लिये और राष्ट्रीय कल्याण को अधिकतम करने के लिये, यह अधिक अच्छा होगा कि संबंधित में साधनों के प्रयोग पर उत्पादन कर लगाया जाय (या आर्थिक अनुदान दिया जाय यही सिर्फ MRSxy= MRTxyd =MRTxyf में समानता ला सकता है। नीची कीमत वस्तु पर कर लगाना चाहिये (या ऊंची कीमत वस्तु को आर्थिक अनुदान स्वीकृत किया जाना चाहिये)। इस प्रकार प्रारम्भ में समस्या पर आक्रमण किया जायेगा - जो उत्पादन साधनों का अकार्यकुशल उपयोग है। कर/अनुदान का उपयोग कर, दो साधनों के साधन कीमत अनुपातों को समान जा सकता है, अर्थात्

Wage x= Wage y और Interest$_x$ = Interest$_y$ को लागू करते हुये

$$\frac{\text{Wage x}}{\text{Interest x}} = \frac{\text{Wage y}}{\text{Interest y}}$$

इससे $MRS_{LK}X = MRS_{LK}Y$ होने लगेगा और अर्थव्यवस्था को उत्पादन सम्भावना सीमा पर कार्य करने में सहायता करेगा।

21.4.6 चित्र द्वारा स्पष्टीकरण (निरूपण)

घरेलू विकृति की स्थिति में एक तटकर/अनुदान के प्रभाव को संलग्न चित्र (21. 2) में प्रस्तुत किया) जा सकता है।

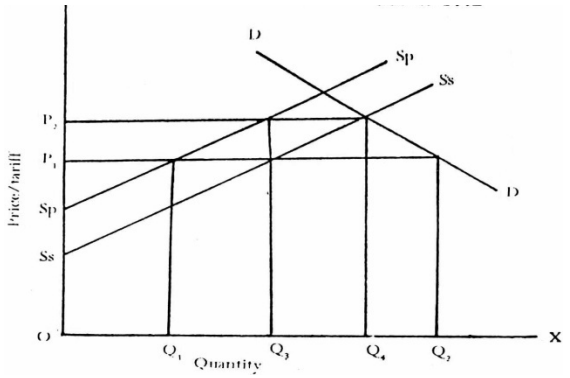

कल्पना कीजिए कि उत्पादन में बाह्य किफायतों के कारण, एक विशेष वस्तु के उत्पादन की निजी लागतों (जो Sp Sp द्वारा दर्शायी गई है) और उत्पादन को सामाजिक (जो Ss Ss के द्वारा दर्शायी गई) लागत के बीच में अन्तर होता है। स्वतंत्र व्यापार कीमत OP_1 पर घरेलू उत्पादन OQ_1 है। अब भी घरेलू उत्पादन वास्तविक (सामाजिक) लागत को प्रतिबंधित करती, तो उत्पत्ति की मात्रा OQ_3 होगी। विकृति को निष्फल करने (हटाने के लिये) के लिये, उसके समान तटकर (प्रशुल्क) (P_1P_2) आरम्भ किया जा सकता है। निजी उत्पादक उत्पत्ति को OQ_3 मात्रा तक बढ़ायेंगे और सामाजिक लागत और निजी लागतों के अन्तर बीच के अन्तर के प्रभाव को निरर्थक किया जा सकेगा।

उसी प्रभाव को विकृति के समान उत्पादन पर आर्थिक अनुदान देकर भी प्राप्त किया जा सकता है। यह श्रेष्ठ होगा क्योंकि इस स्थिति में

तटकर के उपभोग प्रभाव से बचा जा सकता है। यदि तटकर का उपयोग किया जाता है। तो इससे उपभोग (कल्याण) में कभी होगी।

बोध प्रश्न 2

प्रश्न 1. घरेलू बाजार में 'उत्तमावस्था' (अनुकूलता) के लिये परेटो की शर्तों की परिभाषा दीजिये।

प्रश्न 2. विकासशील अर्थव्यवस्था में बाजार विकृतियों की प्रकृति की व्याख्या कीजिये। उपर्युक्त उदाहरण दीजिये।

प्रश्न 3. चित्र की सहायता से बाजार अपूर्णताओं के अन्तर्गत उत्पादन पर तटकर/आर्थिक अनुदान के प्रभावों को प्रदर्शित कीजिये।

21.5 सारांश

इस इकाई में सरकारी हस्तक्षेप के लिये तीन प्रमुख तर्कों की समीक्षा की गई है। प्रथम शिशु उद्योग तर्क जो इन उद्योगों को संरक्षण देने की आवश्यकता पर आधारित है, जो एक देश में उसके विकास की सम्भावनाओं के कारण स्थापित किया जा सकता है। वर्तमान में ये उद्योग विकसित नहीं किये जा सके है क्योंकि वे सस्ते विदेशी आयातों की प्रतियोगिता में टिक नहीं सकते है। जब तक वे परिपक्व नहीं हो जाये तब तक के लिये यदि उन्हें संरक्षण दिया जाये, तो वे विकसित हो सकते है और प्रतियोगी कीमतों पर वस्तुओं का उत्पादन कर सकते है। यद्यपि इन उद्योगों की पहचान करने में और उन्हें एक बार संरक्षण स्वीकृत करने के बाद उसे वापस लेने में कठिनाइयां है, फिर भी व्यापार में सरकारी हस्तक्षेप के पक्ष में यह आर्थिक दृष्टि से प्रबल तर्कों में से एक है।

इस हस्तक्षेप के लिये दूसरा तर्क बाह्य किफायतों पर आधारित है। विनियोग और उत्पादन की उन दशाओं में जहां व्यक्तिगत लाभ सामाजिक, लाभ की अपेक्षा कम है, वहाँ निजी उधम कर्ता प्रवेश नहीं करते है। इसलिए सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ेगा और उत्पादन बढ़ाने

के लिए तटकर/आर्थिक अनुदान का उपयोग करना होगा। तीसरी स्थिति विभिन्न प्रकार की बाजार विकृतियों से निरूपित है, जहां सरकार के लिये हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है। विकृतियां साधनों के कुआवंटन, अकार्यकुशलता और कल्याण में कमी को जन्म देती परेटो अनुकूलता की शर्तों के लिये एक स्वतंत्र प्रतियोगी बाजार स्थिति की आवश्यक होती है। किन्तु कभी - कभी विशेषकर विकासशील देशों में यह स्थिति विद्यमान नहीं होती है। सरकार तटकर/आर्थिक अनुदान के द्वारा बाजार अपूर्णताओं को दूर करने का प्रयास करती है।

21.7 शब्दावली

1. **तुलनात्मक लाभ** - अन्य देशों की तुलना में एक देश की वस्तु या सेवा को अधिक सस्ता उत्पादित करने की क्षमता को तुलनात्मक लाभ कहते है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में, यह व्यक्त करता है कि एक देश को जिसे एक वस्तु या सेवा के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त है वह उसमें विशिष्टीकरण क्यों अपनाता है और उसे अन्य देशों को क्यों निर्यात करता है?
2. **बाह्य मितव्ययिताएँ** - उत्पादन में लागतों वे कमियों जो अन्य फर्मों उद्योगों के विस्तार के फलस्वरूप एक फर्म / उद्योग को प्राप्त होती है।
3. **साधन बाजार** - एक बाजार जिसमें एक साधन के लिये मांग और उसकी पूर्ति उसकी कीमत निर्धारित करने में क्रियाशील होती है। उदाहरण के लिये साधन बाजार, पूंजी बाजार इत्यादि।
4. **शिशु उद्योग** - एक अविकसित उद्योग जो वर्तमान प्रतियोगी कीमत पर वस्तु के उत्पादन करने की स्थिति में नहीं है और वास्तव में वह सस्ती विदेशी वस्तु की चुनौती का सामना करने में अयोग्य है। तथापि उसे शैशवास्था में संरक्षण प्रदान किया जायें तो उसमें उसके विकास सम्भावनाओं के होने से वह

अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों पर उत्पादित कर सकता है और स्वतं त्ररूप से अपने पैरों पर खड़ा (आत्मनिर्भर) हो सकता है।

5. **आंतरिक मितव्ययिताएँ पैमाने की मितव्ययिताएँ -** लागत में वे कमियाँ जो, एक सयंत्र में उत्पादन के पैमाने का विस्तार करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। ये कुछ साधनों की अविभाज्यता या विशिष्टीकरण के लाभों का परिणाम होती है। बढ़ा हुआ श्रमविभाजन, साधनों का श्रेष्ठ उपयोग, व्यर्थ पदार्थो का इक्कठा उपयोग, श्रेष्ठ प्रबन्ध, बाजार लाभों और वित्तीय संस्थाओं की सुगम पहुंच इत्यादि उत्पादन लागतों कमी लाने के कुछ प्रमुख कारण है।

6. **उद्योगों का स्थानीयकरण-** एक उद्योग के कई संयत्रों का भौगोलिक स्थानीयकरण या विभित्र उद्योगों में का एक दूसरे के पास-पास पाया जाना उद्योगों का स्थानीयकरण कहलाता है। यह सब उन सबको साधनों की सुगम प्राप्तियों और उत्पादन की उपस्थित मांग के रूप में बाह्य मितव्ययिताएं प्रदान करता है।

7. **प्रतिस्थापन की सीमान्त दर -** परिवर्तन की वह दर जिस पर उपयोग का समान स्तर प्रदान करते दो वस्तुएँ X व Y एक दूसरे से प्रतिस्थापित की जाती है, Y के लिये X की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRSxy) कहलाती है। (यह उपभोक्ता के तटस्थता वक्र के किसी बिन्दु के ढाल द्वारा मापी जाती है) इसी प्रकार परिवर्तन की वह दर जिस पर उत्पत्ति का समान स्तर प्रदान करते हुये दो साधन श्रम व पूंजी एक दूसरे से प्रतिस्थापित किये जाते है, पूंजी के लिये श्रम की प्रावधिक प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) कहलाती है। (यह समोपत्ति वक्र के किसी ढाल द्वारा मापी जाती है)।

8. **रूपान्तरण की सीमान्त दर** - परिवर्तन की वह दर जिस पर उत्पत्ति का अधिकतम स्तर प्रदान करते हुये (उदाहरण के लिये) दो वस्तुओं की उत्पति को उनमें परस्पर परिवर्तित किया जा सकता है। (यह उत्पादन सम्भावना वक्र द्वारा मापी जाती है)।

9. **परेटो 'उत्तमावस्था' (अनुकूलता) -** वस्तुओं के बीच सामाजिक प्रतिस्थापन की सीमान्त दर और वस्तुओं के बीच सीमान्त रूपान्तरण दर की समानता के द्वारा घरेलू उत्पादन और विदेशी व्यापार दोनों में कल्याण का अधिकतमीकरण परेटो 'उत्तमावस्था' कहलाती है, जहां पूर्ण प्रतियोगिता, निजी और सामाजिक प्रतिस्थापन की सीमान्त दर और सीमान्त रूपान्तरण दर में भिन्नता के कारण इन शर्तों के पूरा होने की सुरक्षा प्रदान नहीं करती है, वहां सरकारी हस्तक्षेप की मांग की जाती है।

10. **सामाजिक तटस्थता वक्र -** सामाज का एक तटस्थता वक्र जो संतुष्टि का स्थिर स्तर दर्शाते हुये वस्तुओं के विभिन्न संयोग परिवर्तित करते हुए प्राप्त कर सकता है और जिसे X अक्ष व Y अक्ष पर दर्शाया जाता है।

21.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

चाकोलियाडस् मिल्टियाडस् : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत और नीति मक्ग्रो हिल बुक कंपनी, न्यूयार्क, 1978

किन्डल बर्गर चार्ल्स पी : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र रिचार्ड डी इरविन, इल्लिनोइस, 1969

बो सोडरस्टेन : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र हारपर और रॉ, न्यूयार्क, 1970

21.8 बोध प्रश्नों की उत्तर

बोध प्रश्न 1

प्रश्न 1. शिशु उद्योग में तटकर की अल्पकालीन प्रकृति तर्क की प्रावैगिक प्रकृति दर्शाती है।

प्रश्न 2. ये दोनो परीक्षण जांच करने की आधारभूत शर्तें है कि तटकर लगाया जाय या नहीं। लागतों में कमी और कीमतों में कमी की भावीसम्भावनाएं मुख्य विचारणीय बिन्दु है।

प्रश्न 3. समय से पूर्व ठीक प्रकार से यह निर्णय करना कठिन होता है कि कौन-कौन से उद्योग 'मिल-बेस्टेबल-परीक्षण' पूरा कर सकते है। एक बार प्रदान किया गया संरक्षण भी हटाना कठिन होता है।

प्रश्न 4. पैमाने की आंतरिक बचतें (बढ़ते हुये प्रतिफल) शिशु उद्योगों की प्रमुख शक्ति होती है। (जिस पर विश्वास किया जा सकता है।) वे ही सिर्फ अकेली लागतों और कीमतों में कमी लाने का विश्वास दिला सकती है।

बोध प्रश्न 2

प्रश्न 1. परेटो अनुकूलता का संबंध साधन व वस्तु बाजारों से है और यह पूर्ण प्रतियोगी बाजार स्थिति के अन्तर्गत स्वतंत्र रूप से क्रियाशील होती है।

प्रश्न 2. जब वस्तुओं की कीमतें सीमान्त लागत को प्रतिबिम्बित करने में असफल होती है, तब बाजार में विकृतियों का उत्पन्न होना कहा जाता है।

प्रश्न 3. विकृतियाँ/अपूर्णताएँ तटकर/आर्थिक अनुदान विधियों के द्वारा परिवर्तित की जा सकती है विशेषरूप से जब बाह्य मितव्ययिताएँ प्रमुख कारण होती है। चित्र 21.2 का अवलोकन करें।

इकाई 22

विकासशील देशों की व्यापारिक नीति

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 व्यापारिक नीति

22.2.1 अर्थ

22.2.2 उद्देश्य और उपाय

22.3 विदेशी सहायता

22.4 आयात नीति: आयात प्रतिबन्ध और प्रतिस्थापन

22.5 आयात प्रतिस्थापन

22.5.1 लाभ

22.5.2 हानियां

22.6 निर्यात नीति

22.6.1 निर्यात सम्बर्द्धन की आवश्यकता

22.6.2 निर्यात सम्बर्द्धन की सफलता की विधियां

22.7 आयात प्रतिस्थापन अथवा निर्यात सम्बर्द्धन

22.8 सारांश

22.9 शब्दावली

22.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

22.11 अभ्यासों के उत्तर

22.12 कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न

22.0 उद्देश्य

इस इकाई में विकाशील देशों की व्यापारिक नीति के सम्बन्ध में चर्चा की जायेगी और चर्चा के पश्चात् आप:

- व्यापारिक नीति की परिभाषा कर सकेंगे;
- व्यापारिक नीति का उद्देश्य और उसे प्राप्त करने के उपाय बता सकेंगे;
- स्पष्ट कर सकेगें कि विदेशी सहायता क्यों हानिप्रद होती है;
- आयात नीति के घटकों की व्याख्या कर सकेंगे;
- आयात प्रतिस्थापन के लाभों और हानियों का वर्णन कर सकेंगे;
- निर्यात सम्बर्द्धन की आवश्यकता प्रतिपादित कर सकेंगे;
- आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात सम्बर्द्धन नीतियों पर अपना निर्णय दे सकेंगे;

22.1 प्रस्तावना

विकासशील देशों की समस्यायें विकसित देशों से भिन्न है। विकासशील देशों में विकसित देशों की व्यापारिक नीति प्रत्यारोपित नहीं की जा सकती है। यहाँ यह अध्ययन करेंगे कि विकासशील देशों की व्यापारिक नीति क्या होनी चाहिए जिससे कि वे अपनी व्यापारिक समस्याओं का समाधान कर सकें और आर्थिक विकास के लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकें।

विकासशील देशों के समक्ष भुगतान शेष के घाटे की समस्या प्रमुख है। इस घाटे की पूर्ति के लिए तीन विकल्प है-

विदेशी सहायता, आयात प्रतिस्थापन और निर्यात सम्बर्द्धन।

आप इन तीनों विकल्पों के लाभों और हानियों का अध्ययन करेंगे। आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात सम्बर्द्धन की तुलना करने के उपरान्त आप बता सकेंगे कि कौन सा उपाय श्रेष्ठ है।

22.2 व्यापारिक नीति

विकासशील देशों के समक्ष अनेक व्यापारिक समस्याएं है। प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन, निर्यात व्यापार में उच्चावचन, प्राथमिक वस्तुओं के मूल्यों में उच्चावचन और दीर्घकाल में हासमान प्रवृत्ति, प्रतिकूल व्यापार शर्तें, विदेशी विनिमय की समस्या आदि से वे ग्रसित रहते है। अत: इन देशों को व्यापारिक नीति की संरचना इस प्रकार से करना होती है जिससे कि इन सभी महत्वपूर्ण समस्याओं का हल निकल सके और आर्थिक विकास की गति को भी तीव्र किया जा सके।

22.2.1 व्यापारिक नीति की परिभाषा: अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित नीति को व्यापारिक नीति कहा जाता है। इस प्रकार आयात-निर्यात की मात्रा, दिशा और स्वभाव, घरेलू उद्योगों का संरक्षण और उनका स्वभाव, विदेशी मुद्रा और सहायता, व्यापारिक समझौते व भुगतान संतुलन आदि समस्यायें इसके अन्तर्गत आती है। हैबरलर के अनुसार व्यापारिक नीति से अर्थ उन सभी उपायों से है जो किसी देश की वाह्य आर्थिक सम्बन्धों का नियमन करते है। ये उपाय ऐसे राज्य के द्वारा किये जाते है जिसमें वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात और आयात में सहायता करने अथवा बाधा डालने की शक्ति होती है।

व्यापारिक नीति में आयात और निर्यात के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित समस्याओं को भी शामिल किया जाता है।

इस प्रकार व्यापारिक नीति किसी देश की सामान्य आर्थिक नीति का ही अंग होती है और इस अर्थ में इसमें न केवल आयात व निर्यात नीति शामिल है बल्कि कर और सहायता, विनियोग, औद्योगिक और ऋण नीति भी शामिल है। यह नीति आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

विकसित और विकासशील देशों की समस्याओं में भिन्नता है। इस कारण से दोनों ही प्रकार के देशों की व्यापारिक नीति में भी भिन्नता है। विकसित देशों की व्यापारिक नीति विकासशील देशों में प्रत्यारोपित नहीं की जा सकती है। विकासशील देशों की प्रमुख समस्या भुगतान शेष में संतुलन उत्तपन करने के साथ-साथ आर्थिक विकास को गति देना है। इन समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए हम विकासशील देशों की व्यापारिक नीति की परिभाषा इस प्रकार कर सकते है। व्यापार नीति आर्थिक नीति का वह अंग है जिसका सम्बन्ध आर्थिक सम्बन्धों के इस प्रकार नियमन से है जिसमें कि अन्तर्राष्ट्रीय ही व्यापार से अधिक से अधिक लाभ मिल सके, देश का औद्योगिकरण हो सके, पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि हो सके और भुगतान शेष में साम्य की स्थिति प्राप्त की जा सके। संक्षेप में, हम कह सकते है कि व्यापारिक नीति निर्यात और आयात नीति तथा शिशु उद्योगों के संरक्षण से सम्बन्धित है और ये ही इसके प्रमुख विषय है।

22.2.2 व्यापारिक नीति: **उद्देश्य और उपाय**: परिभाषा से स्पष्ट है कि इस नीति का उद्देश्य भुगतान सन्तुलन की स्थिति में साम्य उत्पन्न करना और आर्थिक विकास की गति को तीव्र करना ही है। उद्देश्य को प्राप्त करने के सामान्यतया तीन उपाय है, विदेशी सहायता, आयातों पर नियन्त्रण के द्वारा आयात व्यय में कमी और निर्यातों को प्रोत्साहन देकर निर्यात आय में वृद्धि। विकासशील देश के पास यदि विदेशी मुद्रा का विपुल भण्डार है तो भुगतान शेष के घाटे की पूर्ति और आर्थिक विकास को गति विदेशी मुद्रा व्यय करके कर सकता है और उसे किसी अन्य उपाय का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है। यह उपाय तभी सफल सिद्ध होता है जबकि व्यापार संतुलन का घाटा कभी-कमी ही उत्पन्न होता है और घाटे की मात्रा भी कम ही होती है। अधिकांश विकासशील देशों में यह घाटा प्रति वर्ष उत्पन्न होता है और एक प्रकार से उनकी एक विशेषता ही बन गया है। प्रति वर्ष उत्पन्न होने वाले इस घाटे की पूर्ति विदेशी मुद्रा कोष से करना संभव नहीं है।

बोध प्रश्न 1

1. व्यापारिक नीति का क्या अर्थ है?
2. विकास शील देशों की व्यापारिक नीति का क्या उद्देश्य है? इस उद्देश्य को प्राप्त करने के उपाय है?

22.3 विदेशी सहायता

विकासशील देश विदेशी सहायता का प्रयोग भुगतान शेष के घाटे की पूर्ति तथा आर्थिक विकास के लिए करते है। निरन्तर उत्पन्न होने वाले घाटे को दूर करने के लिए विदेशी सहायता पर निर्भरता देश के आर्थिक विकास के कार्यक्रम को ही केवल अनिश्चित नहीं बना देती अपितु उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता को भी संकट में डाल देती है। विदेशी सहायता के मुख्य दुष्परिणाम इस प्रकार है-

(1) **शर्तयुक्त सहायता** - विकसित देशों द्वारा जो विदेशी सहायता दी जाती है, वह शर्तयुक्त होती है। यह सहायता विशेष प्रकार की परियोजनाओं के लिए दी जाती है। इन परियोजनाओं के लिए सहायता देने वाले देश से ही आवश्यक यंत्र, प्रसाधन और सामग्री लेने की शर्त होती है। विकास की प्रक्रिया में जिन परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जाती है, उनके अतिरिक्त जब दूसरी परियोजनाओं के लिए सहायता मिलती है तो वह अधिक उपयोगी सिद्ध नही होती। अधिकतर सहायता मिलने पर गैर प्राथमिक परियोजनाओं को स्वीकार कर लिया जाता है जिससे अर्थ-व्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न होता है और विकास की प्रक्रिया जिन अवस्थाओं से होकर गुजरना चाहिए नहीं गुजरती। फिर परियोजना सहायता के अन्तर्गत यन्त्र, प्रसाधन, सामग्री और तकनीक भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा मूल्यों से कहीं ऊँचे दिये जाते है जिससे परियोजनाओं की लागत बढ़ जाती है। सहायता प्राप्त करने वाले देश को यह स्वतन्त्रता नहीं रहती कि वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से प्रतिस्पर्धा मूल्य पर आवश्यक प्रसाधन खरीद सकें। इसके साथ सहायता से स्थापित उद्योग के उत्पादन पर निर्यात का प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। यह शर्त भी लगा दी जाती है कि परियोजना के लिए पुर्जे, औजार और अन्य सामग्री तथा तकनीक

सहायता लेने वाले देश से ही लेने पड़ेगें। इस तरह से हम देखते है कि देश में उपलब्ध साधनों और तकनीक का उपयोग सहायता से स्थापित उद्योग में करना कठिन है। इसके साथ ही निर्वाह-सम्बन्धी आयात भी हमेशा करने पड़ते है।

(2) **नवीन तकनीकी ज्ञान और प्रसाधन नही उपलब्ध कराना-** विकसित देश विदेशी सहायता से उस तकनीकी का निर्यात करते है जो विकसित देशों में अनुपयोगी और अप्रचलित हो गयी है। इस तरह से विकसित और विकासशील देश में हमेशा ही तकनीकी स्तर में अन्तर बना रहता है।

(3) **आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता को खतरा-** विकासशील देश को विदेशी सहायता विकसित देशों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न करती है। इस तरह की निर्भरता विकासशील देशों की आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए बहुत खतरनाक है। विदेशी सहायता के साथ प्राय: राजनीतिक बन्धन लगे होते है जो कि विकासशील देश को किसी न किसी गुट के साथ सम्बन्धित होने के लिए विवश करते है।

(4) **विदेशी सहायता और उससे सम्बन्धित सेवा-शुल्कों का भार-** विकासशील देशों के पास विदेशी विनिमय साधन बहुत सीमित होते है। वे विदेशी सहायता और उससे सम्बन्धित सेवा-शुल्कों के भुगतान का भार सहन नहीं कर सकते है। विदेशी सहायता का बढ़ता हुआ भार इन देशों को और अधिक सहायता के लिए विवश करता है। इस तरह बहुत अधिक विदेशी सहायता लेने वाले विकासशील देश विदेशी सहायता के दुष्चक्र में फंस जाते है।

(5) **आन्तरिक साधनों का अपर्याप्त विकास-** विदेशी सहायता प्राप्त होने से देश में ही उपलब्ध वित्तीय साधनों का पूरा विकास नहीं हो पाता है। भारत में नियोजन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में आन्तरिक बचतों की गति बहुत कम रही है जिसका कारण विदेशी सहायता का उपलब्ध होना रहा है।

(6) **अनिश्चितता**- विदेशी सहायता के सम्बन्ध में डर बना रहता है कि किसी भी समय बन्द की जा सकती है। विदेशी सहायता किसी भी देश के आर्थिक जीवन का एक स्थायी अंग नहीं बन सकती है। यह योजना प्रक्रिया में अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न करती है क्योंकि इसकी उपलब्धि अन्य देशों की इच्छा पर निर्भर करती है। संकट काल में इस पर निर्भरता बड़ी खतरनाक होती है।

(7) **अप्रत्यक्ष सम्राज्यवाद**- विदेशी सहायता अधिकतर ऐसी परियोजनाओं के रूप में प्राप्त होती है जिसके अन्तर्गत विदेशी तकनीक, विदेशी प्रसाधन और विदेशी विशेषज्ञों की सहायता से विकासशील देश में उद्योग आदि स्थापित किया जाता है। इससे स्थानीय श्रम, भूमि और कच्चे माल का उपयोग और नियन्त्रण विदेशियों के हाथ में चला जाता है जिसका सहायता देने वाले देश के हित में अधिक और सहायता पाने वाले देश के हित में कम उपयोग किया जाता है। सहायता देने वाले देश के दो मुख्य उद्देश्य होते है-एकाधिकार प्राप्त करना और बाजार पर नियन्त्रण करना।

(8) **मुद्रा का अवमूल्यन**- विदेशी सहायता पर हमेशा निर्भर रहने से मुद्रा प्रसार का दबाव बढ़ता जाता है जिससे आन्तरिक मूल्य स्तर अन्तराष्ट्रीय मूल्य स्तर से अधिक ऊँचा रहता है। इस दशा में सहायता देने वाले देश लेने वाले देश को मुद्रा अवमूल्यन के लिए दबाव डालते है। विकास के इस संक्रान्तिकाल में विकासशील देश को अपनी परियोजनाओं को पूरा करने के लिए विदेशी सहायता लेने की मजबूरी होती है और उन्हें अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करना पड़ता है। मुद्रा के अवमूल्यन से पुराने ऋणों और ब्याज का स्थानीय मुद्रा में भार बढ़ जाता है।

(9) **आन्तरिक विनियोगियों के लिए सीमित क्षेत्र**- विदेशी पूँजी प्राप्त करने वाले देश में विदेशी पूँजी सर्वाधिक लाभ प्रदान करने वाले क्षेत्रों में विनियोजित होने से घरेलू विनियोगकर्ताओं को आगे आने में बाधा पड़ती है। अल्पकाल में विदेशी पूँजी के विनियोग से इन देशों को इतना लाभ

नहीं हो सकता जितना कि दीर्घकाल में इन्ही क्षेत्रों में देशी पूँजी विनियोजन से होता है।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि भुगतान शेष में साम्य के लिए विदेशी सहायता एक उपयुक्त उपाय नहीं है। अत: हमें शेष दो उपाय (i) आयात व्यय में कमी और (ii) निर्यात आय में वृद्धि की ओर अपना ध्यान देना चाहिए। आयात व्यय में कमी आयात नीति और निर्यात आय में वृद्धि नियात नीति के अंग है। आयात और निर्यात नीति दोनों ही किसी देश की व्यापारिक नीति के अंग है।

बोध प्रश्न 2

1. शर्त युक्त विदेशी सहायता से क्या हानि है?
2. विदेशी सहायता अप्रत्यक्ष सम्राज्यवाद को किस प्रकार स्थापित करती है?

22.4 आयात नीति

आयात नीति के दो घटक है: आयात प्रतिबन्ध और आयात प्रतिस्थापन। आयात प्रतिबन्ध का उद्देश्य आयात व्यय को कम करना है। इन प्रतिबन्धों के माध्यम से अनावश्यक आयात विशेषकर विलासिता वस्तुओं के आयात अत्यधिक कम हो जाते है, विदेशी विनिमय कोष पर दबाव कम हो जाता है और औद्योगीकरण पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। आयात प्रतिस्थापन का उद्देश्य यथा सम्भव विदेशों से आयातित वस्तुओं की प्रतिस्थापक वस्तुओं का स्वदेश में उत्पादन करना है और देश को आत्म-निर्भरता की ओर ले जाना है। आयात प्रतिबन्ध आर्थिक विकास का एक मुख्य साधन है। इससे बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत होती है और प्रर्दशन प्रभाव को भी ये कम करते है- प्रदर्शन प्रभाव बचतों को प्रभावित करते है। आयात प्रतिस्थापन नीति का आधार चिर-परिचित शिशु उद्योग तर्क है। विकासशील देश प्रशुल्क दीवार की आड़ में अपना औद्योगिक विकास करता है और उसके उद्योगों को विदेशी उद्योगों से प्रतियोगिता

का भय नहीं रहता है। एक बार औद्योगीकरण की प्रक्रिया के प्रारम्भ हो जाने से औद्योगीकरण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, औद्योगीकरण स्वयंमेव होता है। अनेक विकासशील देशों के अध्ययन ये यह निष्कर्ष निकला है कि आयात प्रतिस्थापन प्रक्रिया पूर्व में आयात की जाने वाली उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण से प्रारम्भ होती है तथा सफलता पूर्वक माध्यमिक वस्तुओं ओर मशीनों के निर्माण की ओर अग्रसर होती है।

22.5.1 **आयात प्रतिस्थापन से लाभ**: एक विकासशील अर्थव्यवस्था में आयात प्रतिस्थापन निम्न आधारों पर महत्वपूर्ण है-

(1) ऐतिहासिक दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विकासशील देशों के अहित में रहा है। दीर्घकाल में आत्मनिर्भरता के लिए आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण के लिए उचित है।

(2) विकसित देशों के ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर एच.बी.चेनरी ने कहा है कि विकास के साथ केवल औद्योगिक उत्पादन में ही वृद्धि नहीं होती अपितु औद्योगिक उत्पादन की समग्र वृद्धि का एक विशाल भाग आयात प्रतिस्थापन पर आधारित उद्योगों में वृद्धि का परिणाम है।

(3) आयात प्रतिस्थापन उद्योगों के लिए बाजार तलाश करने की आवश्यकता नहीं है और न ही कोई जोखिम है क्योंकि आयात प्रतिबन्धित हो जाते हैं और नवीन उद्योगों के लिए पूर्व से ही स्थापित बाजार उपलब्ध हो जाता है।

(4) विकासशील देशों में औद्योगिक आयातों की माँग उनके निर्यातों की तुलना में तीव्रता से बढ़ती है, इसलिए वे निर्यातों के बदले में पर्याप्त औद्योगिक वस्तुएं आयात नहीं कर पाते है। आयात प्रतिस्थापित औद्योगिक उत्पादन उन्हें बढ़ती हुई औद्योगिक वस्तुओं की आतंरिक मांग को पूरा करने में सहायक है।

(5) आयात प्रतिस्थापन औद्योगिकरण आन्तरिक बचत और विनियोग की दर में वृद्धि करता है। विदेशी प्रतियोगिता से आयात प्रतिस्थापित उद्योगों की रक्षा करने के लिए आयातों पर प्रतिबन्ध लगा

दिये जाते है। जिससे उत्पादक अपने उत्पादनों की कीमतों में वृद्धि कर देते है और उनके लाभों में वृद्धि होती है। वे अपने लाभों का पुनर्विनियोजन करते है जिससे विकास की दर में वृद्धि होती है।

(6) आयात प्रतिस्थापन से रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि होती है। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को रोजगार प्रदान करने के लिए, अतिरेक श्रम-शक्ति को रोजगार में लगाने के लिए तथा अर्द्ध-बेरोजगार व्यक्तियों को लाभदायक रोजगार देने के लिए आयात प्रतिस्थापन द्वारा औद्योगीकरण अनिवार्य है।

(7) हेरी जी. जॉन्सन के अनुसार विकासशील देशों के आर्थिक कल्याण की वृद्धि से भी आयात प्रतिस्थापन द्वारा औद्योगीकरण उचित है। इस प्रकार का औद्योगीकरण जब प्रत्यक्ष विदेशी विनियोगों द्वारा किया जाता है तो विकासशील देश आधुनिक तकनीकों का लाभ उठाते है जिस कारण से उनकी पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि होती है।

(8) विकासशील देशों को आयात प्रतिस्थापन द्वारा औद्योगीकरण करने के लिए प्रेरणा इस कारण से मिलती है कि इससे उन्हें भुगतान सन्तुलन की समस्या का समाधान प्राप्त हो जाता है। वे इस कूटनीति से विदेशी औद्योगिक वस्तुओं का प्रतिस्थापन देश में ही उत्पादित वस्तुओं से करते है और विदेशी विनिमय की बचत कर लेते है। आयातों पर वे उच्च प्रशुल्क लगा देते है जिससे राज्य की आय में भी वृद्धि होती है और राज्य इस बढ़ी हुई आय का प्रयोग आर्थिक विकास के लिए करता है।

(9) आयात प्रतिस्थापन द्वारा औद्योगीकरण से विकासशील देशों की औद्योगिक संरचना का निर्माण होता है जो कि अधिक विकास की प्रथम आवश्यकता है। जलील अहमद का कथन है कि आयात प्रतिस्थापन से केवल मूल्यवान विदेशी मुद्रा की ही बचत नहीं होती अपितु आर्थिक व औद्योगिक विकास के कार्यक्रमों को प्रत्यक्ष योगदान भी प्राप्त होता है।

(10) प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन के कारण विकासशील देशों को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व अन्य देशों से सहायता लेने के लिए विवश होना पड़ता है। और विदेशी सहायता पर उनकी निर्भरता बढ़ती जाती है उनकी विदेशी सहायता पर अत्यधिक निर्भरता उनके विकास को

अवरूद्ध करती है और उनकी सुरक्षा के लिए घातक होती है। आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण से उनकी विदेशी सहायता पर निर्भरता कम होती है।

संक्षेप में, आयात प्रतिस्थापन की कूटनीति अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं में आत्म-निर्भरता और आयातित वस्तुओं के उत्पादन द्वारा बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत के लिए वांछनीय और उचित है।

22.5.2 आयात प्रतिस्थापन से हानियाँ: अनेक विकासशील देशों में जैसे कि भारत, पाकिस्तान और अनेक लतानवी देशों में आयात प्रतिस्थापन की नीति सफल नहीं है। इस नीति के कारण इन देशों की अर्थ-व्यवस्था में कतिपय दोष उत्पन्न हुए है जिससे इनके औद्योगीकरण के प्रक्रिया महंगी हो गयी है। लतानवी अर्थशास्त्री सैरियागो मर्करियों का कहना है कि अनेक लतानवी देशों ने विदेशी विनिमय संकट से मुक्ति पाने के लिए आयात प्रतिस्थापन की कूटनीति को अनिवार्य रूप से अपनाया है, पर विकास की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए विकसित नहीं किया है। उन्होंने इसे आपात स्थिति से निपटने के लिए, घरेलू उद्योगों को अत्यधिक संरक्षण देकर, काम चलाऊ ढंग से क्रियान्वित किया है। नीति का उचित क्रियान्वयन न होने से इन देशों की आर्थिक संरचना विकृत हुई है और साथ ही इन देशों को निर्यात अवसरों की हानि भी हुई है। भारत के साथ भी यही बात सत्य है। आयात प्रतिस्थापन के विपक्ष में मुख्य तर्क इस प्रकार है।

1. विकासशील देशों में कच्चेमाल, मध्यवर्ती वस्तुओं और पूँजी उपकरणों का अभाव होता है, आयात प्रतिस्थापित उद्योगों के लिए इनका आयात करना पड़ता है जिससे विदेशी मुद्रा का अप्रत्यक्ष व्यय प्रत्यक्ष बचतों की अपेक्षा अधिक हो जाता है। प्रतिस्थापित वस्तुओं का मूल्य भी आयातित वस्तुओं से अधिक रहता है जिससे देश के आर्थिक कल्याण में कमी होती है।

2. यह कहना सही नहीं है कि आयात प्रतिस्थापित औद्योगीकरण से बेकार श्रमिकों को रोजगार मिलता है। ग्रिफिन और एरोज का कहना है कि निर्माणकारी उद्योगों में रोजगार वृद्धि की तुलना उनके उत्पादन से करना व्यर्थ है। वास्तविकता तो यह है कि रोजगार में वृद्धि तब तक नहीं होती जब तक कि निर्माणकारी उद्योगों का उत्पादन 4% प्रति वर्ष की दर से नहीं बढ़ता है। और फिर औद्योगिक रोजगार जनसंख्या की तुलना में कम तेजी से बढ़ता है। चिली में रोजगार दर में वृद्धि की दर 1.1% थी जबकि उत्पादन वृद्धि की दर 5.6 प्रतिशत थी, इससे यह सिद्ध होता है कि आयात प्रतिस्थापन द्वारा औद्योगीकरण से बेकार श्रम के लिए रोजगार उत्पन्न नहीं किया जा सकता है।

3. उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन आयात प्रतिस्थापित उद्योगों द्वारा करने से आन्तरिक बचतों और विनियोग में वृद्धि के स्थान पर कमी होती है। आन्तरिक उपभोग के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को महत्व दिया जाता है जिससे उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ती है और इन वस्तुओं के निर्यात के लिए आधिक्य का निर्माण नहीं होता है। यह नीति आर्थिक और तकनीकी कुशलता पर कुप्रभाव डालती है जिसमें आय, लाभ और बचत कम होती है। जॉन पावर ने इसलिए कहा है कि आर्थिक विकास के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के स्थान पर पूँजीगत वस्तुओं और निर्यात की वस्तुओं में विनियोग करना चाहिए।

इस नीति का प्रयोग आत्म-निर्भरता के लिए करने से विकासशील देश में साधनों का आवंटन सही ढंग से नहीं होता है और औद्योगिक उत्पादकता भी प्रभावित होती है। आत्म-निर्भरता के लिए ये देश अकुशल और निम्न प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों को अत्यधिक संरक्षण प्रदान कर देते है जिससे ऊँची कीमत पर आयातित कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुओं और पूँजी उपकरणों का अपव्यय होता है। इस नीति से ऊँची उत्पादन लागतों के साथ अकुशल उद्योगों की स्थापना होती है। भारत में भी यही स्थिति

है। बी. बी. देसाई ने कहा भी है कि आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत में यह समझा जाता है कि जो भी उद्योग आयातों का प्रतिस्थापन करता है वह अर्थ-व्यवस्था के लिए उत्तम है, फलस्वरूप भारी मात्रा में बहुमूल्य साधनों को निम्न प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों में निवेशित कर दिया गया है। इस सन्दर्भ में जलील अहमद के मतानुसार यदि आयात प्रतिस्थापन कुछ महत्वपूर्ण उद्योगों तक ही सीमित रखा जाता है तो मूल्यवान साधनों की बचत की जा सकती है क्योंकि ऐसा करने पर पूरे प्रयासों और दुलर्भ साधनों का अधिक कुशलता पूर्ण तरीकों से उपयोग संभव है। आयात प्रतिस्थापन की नीति के अन्तर्गत भारत में विलास की उपभोग वस्तुओं के आयात पर भारी शुल्क लगाकर रोक लगाई गई है जिससे भारतीय बाजार में इन वस्तुओं की लाभदायकता अपने आप ही बढ़ गई है और इसके आन्तरिक उत्पादन को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। भारी शुल्क और शक्तिशाली वर्ग के राजनैतिक प्रभाव के कारण भारत में अनेक ऐसे उपभोक्ता प्रतिस्थापित उद्योग स्थापित हुए है जिनकी अवसर लागत अत्यधिक है। इनमें से अधिकतर उद्योग एक छोटे से धनी वर्ग की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं। इन उद्योगों से निर्मित वस्तुओं की मांग सीमित है इस लिए कुछ समय के उपरान्त इन उद्यागों में क्षमता के अल्प-उपयोग की समस्या उत्पन्न होती है और औसत उत्पादन लागत में वृद्धि होती हैं।

राल प्रेबिश ने आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण के निम्न दोष बताये हैं-

1. विकासशील देशों को अति-संरक्षण के लिए विवश किया है जिससे विदेशी प्रतियोगिता समाप्त हुई है।
2. वस्तुओं की गुणवत्ता सुधारने और उत्पादन लागतों को कम करने की प्रेरणा को शिथिल किया है।
3. संरक्षण को स्थायी बनाये रखने की प्रवृत्ति उत्पादन की हैं।

4. अनार्थिक इकाईयों की स्थापना को प्रोत्साहित किया है, आधुनिक तकनीक को अंगीकार करने की वृत्ति को कमजोर किया है और उत्पादकता वृद्धि को मन्द किया है जिससे औद्योगिक संरचना प्रभावित हुई है।
5. ऊँची उत्पादन लागतों के कारण निर्यात प्रात्साहित करने में असफलता मिली है।
6. सामाजिक और आर्थिक असमानताओं में वृद्धि की है क्योंकि संरक्षण के कारण पूँजी प्रधान उद्योगों को प्रोत्साहन मिला है, जिनकी स्थापना बड़े व्यापारिक घरानों द्वारा ही अधिकतर की गई है।

संक्षेप में, आयात प्रतिस्थापन की नीति विकासशील देशों के आर्थिक विकास और भुगतान शेष की समस्या का हल नहीं है। यह विदेशी विनियम के संकट से मुक्त नहीं करती, इससे आत्म-निर्भरता का लक्ष्य प्राप्त नहीं होता, बढ़ती हुई जनसंख्या को रोजगार नहीं मिलता और निर्यातों में वृद्धि नहीं होती है।

बोध प्रश्न 3

1. आयात प्रतिस्थापन से मुख्य लाभ क्या है?
2. आयात प्रतिस्थापन के मुख्य दोष क्या है?

22.6 निर्यात नीति

विकासशील देश एक उचित निर्यात नीति के माध्यम से अपनी आर्थिक विकास और भुगतान शेष की समस्या का समाधान कर सकते हैं।

22.6.1 निर्यात सम्वर्द्धन**:** विकासशील देशों द्वारा किसी भी सीमा तक आयात नियन्त्रण अथवा आयात प्रतिस्थापन के लिए प्रयास किया जाये पर आर्थिक विकास और भुगतान शेष की समस्या का समाधान एक प्रभाव पूर्ण निर्यात सम्बर्द्धन की नीति से ही प्राप्त हो सकता हैं। भारत जैसे

अनेक विकासशील देशों ने, नियोजन के प्रारम्भिक वर्षो में आयात प्रतिस्थापन की नीति को ही विशेष महत्व दिया था। उन्होंने यह देखा कि इस नीति से आयात व्यय में कमी की अपेक्षा वृद्धि होती है क्योंकि उन्हें उपभोग वस्तुओं के स्थान पर अधिक मंहगी पूँजीगत वस्तुएं आयात करनी पड़ती है और उपभोक्ता उद्योगों को चलाने के लिए निरन्तर आयात करने पड़ते है जो कि बढ़ने की प्रवृत्ति दर्शाते हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष निजी विदेशी विनियोग औद्योगिक व विकास को गति प्रदान करते है परन्तु इनसे प्राप्त होने वाले लाभों का प्रत्यावसन पूँजी प्राप्त करने वाले देशों को सामान्यता विदेशी मुद्रा में ही करना पड़ता हैं। जो कुछ विदेशी सहायता भी प्राप्त होती है उसे विदेशी मुद्रा में ब्याज सहित लौटाना पड़ता है। ये सभी परिस्थितियों यह इंगित करती है कि निर्यातों के द्वारा आय में वृद्धि करना आवश्यक है। जब तक निर्यात आय में निरन्तर वृद्धि नहीं होगी, विदेशी विनिमय के व्यय और आय के मध्य अन्तर में वृद्धि होती रहेगी और विदेशी विनिमय की समस्या और अधिक कठिन होती जायेगी। विकासशील देशों में इसी कारण अब यह नारा सुनाई देता है "निर्यात करो या मरो"।

निर्यात उद्योगों में कुछ इस प्रकार के घरेलू उत्पादन भी प्रयुक्त हो जाते है जो कि अन्यथा व्यर्थ ही पड़े रहते हैं। निर्यात उद्योगों में प्रयुक्त आयातित तकनीक और प्रशिक्षण का अर्थ-व्यवस्था पर एक अच्छा प्रभाव भी पड़ता है। निर्यातों से बढ़ी आय से कुछ समय के उपरान्त गुणक और त्वरक प्रभाव से घरेलू वस्तुओं के लिए पहले से विस्तृत बाजार भी प्राप्त होता है। तकनीक और गुणवत्ता में सुधार तथा उत्पादन लागत में कमी से आर्थिक विकास की दर में भी वृद्धि होती हैं निर्यातों से आय में वृद्धि करना सरल नहीं है। अधिकांश विकासशील देश आयों के लिए प्राथमिक वस्तुओं पर निर्भर करते हैं। जिनके निर्यातों में वृद्धि करना कठिन है क्योंकि इनकी विदेशी माँग बेलोचदार होती है और विकसित देशों ने इनके स्थान पर कृत्रिम वस्तुओं का विकास कर लिया है। विकसित देशों ने आयातों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये हैं।

इन सब परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए विकासशील देशों को निर्मित वस्तुओं का निर्यात करना चाहिए। इन वस्तुओं का बाजार निरन्तर विस्तृत हो रहा है और कुल निर्यातों में विकासशील देशों की भागीदारी का प्रतिशत बहुत कम है। एक उचित और प्रभावपूर्ण निर्यात नीति से इन्हें अपने निर्यातों में वृद्धि करनी चाहिए। मिर्डल ने इसे सम्बंध में कहा है कि विकासशील देशों को परम्परागत निर्यातों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए और न ही इस प्रकार के निर्यात उनके हित में है। उनका सुझाव है कि वे निर्यातों की संरचना और विश्व बाजार में संभावनाओं की ओर दृष्टि दौड़ाए और फिर इस बात का निश्चय करें किन निर्यातों को बढ़ाने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए और किन निर्यातों को उन्हें कम करना अथवा त्याग देना चाहिए। उन्हें उच्च आय और कीमत सोच तथा बढ़ती हुई माँग वाली वस्तुएं स्वयं अपने लिए खोज लेना चाहिए और उन वस्तुओं से दूर रहना चाहिए जिनका कि भविष्य संदिग्ध हो।

22.6.2. निर्यात सम्बर्द्धन के उपाय: निर्यात सम्बर्द्धन के लिए उपाय इस प्रकार करना चाहिए-

1. कृषि, खनिज और औद्योगिक क्षेत्रों में एक निश्चित उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करना चाहिए।
2. निर्यात अतिरेक उत्पादन करने के लिए आन्तरिक उपभोग को राजकोषीय अथवा अन्य उपायों से सीमित करना चाहिए।
3. आन्तरिक कीमत स्तर मे स्थिरता रत्न चाहिए।
4. निर्यातोन्मुख उद्योगों का आधुनिकीकरण करना चाहिए।
5. निर्यात उद्योगों के लिए कच्चे माल और मशीनों की पूर्ति सस्ती पर करनी चाहिए।
6. निर्यातकों को ऋण, बीमा और परिवहन सुविधायें देनी चाहिए।
7. निर्यात वस्तुओं की गुणवत्ता की जाँच की जानी चाहिए।

8. निर्यातकों और विदेशों में आयात करने वाली इकाइयों की सूचना एकत्रित करनी चाहिए।
9. निर्यातकों के व्यापारिक हित का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक ऐसी संख्या जिसकी विश्व में शाखाएं हो स्थापित करनी चाहिए।
10. व्यापारिक और औद्योगिक मेलों का विदेशों में आयोजन करना चाहिए।
11. प्रमुख निर्यात वस्तुओं के लिए निर्यात प्रोत्साहन परिषदें स्थापित करनी चाहिए।
12. विकसित देशों के साथ द्विपक्षीय व्यापार समझौते करना चाहिए।
13. विकासशील देशों को विदेशी व्यापार के क्षेत्र में सहयोग करना चाहिए। अधिकांश विकासशील देश लगभग एक जैसी वस्तुओं का निर्यात करते हैं जिससे उनकी आपसी प्रतियोगिता उनके लिए हानिकारक सिद्ध होती है। आपसी सहयोग होना चाहिए। इन देशों के पास व्यापार वृद्धि का एक ही रास्ता है कि विश्व बाजार में इन्हें अपनी सौदेबाजी की शक्ति को बढ़ावा देना चाहिए।
14. निर्यातकों को निर्यात वृद्धि के लिए विशेष प्रेरणाएं देनी चाहिए।

बोध प्रश्न 4

1. निर्यात सम्वर्द्धन की नीति क्यों आवश्यक है?
2. परम्परागत वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि क्यों नहीं की जा सकती है?

22.7 आयात प्रतिस्थापन अथवा निर्यात प्रोत्साहन

प्रश्न हमारे समक्ष यह है कि विकासशील देश को कौन सी नीति का अनुसरण करना चाहिए आयात प्रतिस्थापन अथवा निर्यात सम्वर्द्धन दोनों ही नीतियों का उद्देश्य एक ही है विदेशी मुद्रा के संकट को दूर करना। आयात प्रतिस्थापन के दोष हम देख चुके हैं। यह नीति विदेशी मुद्रा की बचत नहीं करती अपितु उसके व्यय में और वृद्धि कर देती है। अकुशल इकाईयों की स्थापना करती है जिससे उत्पादन लागतें बढ़ती है और वस्तुएं भी घटिया किस्म की निर्मित होती है। यह नीति निर्यातों की वृद्धि में भी बाधाएं डालती हैं। इस प्रकार आयात प्रतिस्थापन द्वारा औद्योगीकरण के लिए विकासशील देश को अधिक कीमत चुकाना पड़ती हैं। अत: निर्यात सम्बर्द्धन की नीति ही उचित और आवश्यक है। पीताम्बर पन्त का मत है कि आयात प्रतिस्थापन एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली अस्त्र है, यदि यह अति संरक्षित, अकुशल और उच्च लागत उद्योगों की स्थापना के बिना किया जा सके। दूसरी ओर, एक अर्थ व्यवस्था जो कि निर्यात को महत्व देती है, वह कुशल उत्पादन के लिए अनुकूल स्थितियों का निर्माण करती है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता मे शामिल निर्यातों के निरन्तर सुधार और कीमत में कमी की अपेक्षा रहती है।

विकासशील देशों को हम मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित कर सकते है वे जो अधिक जनसंख्या की समस्या से पीडत नहीं है और जो अति जनसंख्या से पीड़ित है। पहले प्रकार के देशों को तो अपने परम्परागत निर्यातों को बनाये रखने के साथ-साथ उनमें वृद्धि करनी चाहिए। उन्हें अपने प्राथमिक उत्पादनों की गुणवत्ता में सुधार करना चाहिए और सुधार के लिए अधिक पूंजी तथा बेहतर तकनीक का उपयोग करना चाहिए। उन्हें केवल ऐसे आयातों को प्रतिस्थापित करना चाहिए जिनमें की पूँजी की तुलना में श्रम अधिक प्रयुक्त होता हैं। उन्हें आयात प्रतिस्थापन की गति धीमी रखनी चाहिए और विदेशी सहयोग से आयात प्रतिस्थापन करना चाहिए।

भारत जैसे अति जनसंख्या से ग्रस्त देशों को आन्तरिक बाजार और निर्यात के लिए निर्मित वस्तुओं के उत्पादन को महत्व देना चाहिए। यह इस लिए आवश्यक है क्योंकि इन देशों के परम्परागत निर्यात जैसे कि चाय, पटसन, सूती वस्त्र आदि में स्थिरता आ गयी हें या बहुत ही मन्द गति से बढ़ रहे हैं। चाय जैसी वस्तुओं की विदेशी माँग बेलोच है, इस कारण से इनका निर्यात बढ़ाना संभव नहीं हैं। पटसन जैसी वस्तुओं का विदेशी बाजार कृत्रिम उत्पादनों के कारण सिमट गया हैं। सूती वस्त्र का विदेशी बाजार कृत्रिम उत्पादनों के कारण सिमट गया हैं। सूती वस्त्र का विदेशी बाजार भी मानव निर्मित वस्त्रों के कारण सीमित हो गया हैं और इस बाजार में विकासशील देशों की भी आपस में कड़ी प्रतिस्पर्धा हैं। ऐसी स्थिति में इन देशों को टिकाऊ उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाना चाहिए जिनकी कि विदेशों में माँग हैं। कार, स्कूटर, टी०वी०, ऐयर कन्डीशनर, टेपरिकार्डर, वीडियों कैसेट रिकार्डर, साफ्टवेयर और हार्डवेयर आदि ऐसी? वस्तुएं हैं। जापान इसका अति उत्तम उदाहरण हैं। जापान ने अमेरिका, जर्मनी, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों के उत्पादकों से कठोर प्रतियोगिता करते हुए उनके बाजारों में अपना अधिपत्य कर लिया हैं। यही स्थिति लगभग कोरिया और सिंगापुर की भी हैं। भारत सदृश्य विकासशील देशों के समक्ष सबसे बड़ी बाधा घटिया किस्म और ऊँची कीमतों की हैं। इस प्रकार अपरम्परागत वस्तुओं के बाजार विस्तृत करने के लिए इन देशों को निर्यात प्रोत्साहन की ही नीति को अपनाना चाहिए।

विकसित देशों ने इन अपरम्परागत वस्तुओं के आयात पर संरक्षणात्मक प्रतिबन्ध लगा रखे हैं, विकासशील देशों को इन प्रतिबन्धों को पार करने का प्रयत्न करना चाहिए। आर. हैरड के अनुसार विकसित देशों की कोई भी नीतियाँ हो विकासशील देशों की इतनी प्रतियोगी कीमतों पर निर्मित निर्यात योग्य वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने का लक्ष्य रखना चाहिए कि इन देशों के संरक्षात्मक प्रतिबन्धों को भेद सके। उनका यह मत पैमाने की बचतों, मध्यवर्ती वस्तुओं और मशीन उद्योगों की एक

साथ स्थापना की अपेक्षा करता है और आयात प्रतिस्थापित औद्योगीकरण को गम्भीरतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए निर्देश देता हैं। भारत जैसे विकासशील देशों को भुगतान शेष की समस्या के हल और आर्थिक विकास के लिए निर्यात प्रोत्साहन और आयात प्रतिस्थान, दोनों ही नीतियों को एक दूसरे के साथ गंभीरता से समन्वय कर देना चाहिए क्योंकि दोनों ही नीतियां परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे की पूरक हैं।

22.8 सारांश

विकासशील देशों की व्यापारिक नीति विकसित देशों से भिन्न है और इसका उद्देश्य भुगतान शेष के घाटे को पूरा करने के साथ-साथ आर्थिक विकास भी हैं। इन उद्देश्यों को प्राप्त एक करने के तीन उपाय है- विदेशी सहायता, आयात व्यय में कमी और निर्यात आय में वृद्धि। विदेशी सहायता पर सदैव की निर्भरता हानिकारक हैं। इस पर निर्भरता से आर्थिक विकास का कार्यक्रम ही केवल अनिश्चित नहीं बन जाता अपितु - देश की आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता भी संकट में पड़ जाती हैं।

भुगतान सन्तुलन के साम्य और आर्थिक विकास के लिए आप व्यय में कमी के उद्देश्य से आयात प्रतिबन्धित किये जाते है तथा आयात प्रतिस्थापन द्वारा औद्योगीकरण की नीति अपनाई जाती हैं। आयातित वस्तुओं का उत्पादन देश में ही करने से देश आत्म-निर्भर बनता है, आन्तरिक माँग को पूरा करने में सफलता मिलती है, विनियोगों में वृद्धि होती है, रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, पूँजी निर्माण की दर को गति मिलती है और औद्योगिक संरचना का निर्माण भी होता है। आयात प्रतिस्थापन पूर्णतया निरापद भी नहीं हैं। इसके कतिपय दोष भी हैं। इससे स्थापित उद्योगों में अप्रत्यक्ष व्यय प्रत्यक्ष बचतों की तुलना में अधिक होते है क्योंकि इन उद्योगों के लिए पूँजी उपकरण, कच्चा माल, मध्यवर्गी वस्तुओं आदि का आयात करना पड़ता हैं। रोजगार के अवसरों में भी कोई विशेष वृद्धि नहीं होती है, बढ़ती हुई जनसंख्या को रोजगार में लगाना कठिन बना रहता हैं। अकुशल इकाईयों की संरक्षण के कारण स्थापना होती हैं।

जिनमें कि उत्पादन लागत कम करने, किस्म सुधारने, और नई तकनीक का प्रयोग करने की प्रेरणा का अभाव रहता हैं। इन इकाईयों में निरन्तर संरक्षण में रहने की ही प्रवृत्ति रहती हैं। निर्यात वृद्धि में यह नीति सहायक नहीं है और न ही यह नीति विदेशी विनियम की समस्या का हल प्रस्तुत करती हैं।

निर्यात संवर्द्धन की नीति आयात प्रतिस्थापन की नीति से श्रेष्ठ हैं। इस नीति के अर्न्तगत स्थापित इकाईयां कुशल होती हैं। विदेशी प्रतियोगिता के कारण ये निरंतर उत्पादन लागत कम करने, किस्म सुधारने और नई तकनीक का उपयोग करने के लिए तत्पर रहती हैं।

आयात प्रतिस्थान एक प्रभावशाली अस्त्र अवश्य हैं। विकासशील देशों को उसका प्रयोग गंभीरता से करना चाहिए। प्रारम्भ में उद्योगों को संरक्षण तो देना चाहिए पर अति संरक्षण नही देना चाहिए जिससे कि वे कुशल उद्योगों के रूप मैं स्थापित हो सके और निर्यातों में वृद्धि करने में सहायक सिद्ध हो सकें। वास्तविकता तो यह है कि आयात प्रतिस्थापन और निर्यात सम्बर्द्धन दोनों ही एक दूसरे की प्रतियोगी नीतियाँ नहीं है, एक नीति दूसरी नीति की पूरक हैं।

22.9 शब्दावली

राजकोषीय नीति: जिसमें सरकार अपने व्यय तथा आगम के कार्यक्रम को राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर वांछित प्रभाव डालने और आवांछित प्रभावों को रोकने के लिए प्रयुक्त करती हैं।

अर्द्ध-बेरोजगारी आंशिक बेरोजगारी की अवस्था जिसमें रोजगार से लगी श्रम-शक्ति का उपज में योगदान नहीं के बराबर होता हैं।

शिशु उद्योग तर्क देश में स्थापित नये उद्योगों को प्रोत्साहन देने का संरक्षण के पक्ष में सबसे सशक्त तर्क।

प्रदर्शनकारी प्रभाव उपभोग क्षेत्र में अपने से आर्थिक सम्पन्न व्यक्तियों को श्रेष्ठ मानकर उनकी उपभोग सम्बन्धी आदतों को अपना लेना।

बंधी सहायता जिसका प्रयोग या तो किसी विशिष्ट परियोजना में किया जा सकता है या फिर विशिष्ट देश से खरीददारी पर ही किया जा सकता हैं। अबद्ध सहायता वह सहायता जिसका वितरण किसी विशेष परियोजना की अपेक्षा विभिन्न मदों पर प्राप्त कर्त्ता के व्ययों के साथ बद्ध रहता हैं।

परियोजना सहायता जिसका वितरण पृथक योग्य किया में निवेश से बद्ध रहता हैं।

22.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

A.N. Agarwal & Kundan Lal, Economics and & Development and Planning, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi

M.C. Vaish & Sudama Singh, International Economics, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi

M.L. Jhingan , International Economics, Konark Publishers Pvt. Ltd., New Delhi

S.S.M. Desai , International Economics, Himalaya Publishing House Pvt. Ltd. Bombay

एच. एस. अग्रवाल तथा सी. एस. बरला ;अर्न्तराष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

एस. पी. सिंहविकास एवं नियोजन, एस. चन्द्र एन्ड कम्पनी, नई दिल्ली

जी. सी. सिंघई ,अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा

नागर और शर्मा अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, गोयल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ

मिश्र और पुरी ,भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई

वी. सी. सिन्हा ,अर्न्तराष्ट्रीय अर्थशास्त्र, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली

22.11 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

1. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्रियाओं से संबन्धित नीति को व्यापारिक नीति कहा जाता हैं।

2. विकासशील देशों की व्यापारिक नीति का उद्देश्य भुगतान शेष की स्थिति में साम्य उत्पन्न करना तथा आर्थिक विकास हैं। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के तीन उपाय हैं-विदेशी सहायता, आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात सम्बर्द्धन।

बोध प्रश्न 2.

1. शर्तयुक्त विदेशी सहायता किसी विशिष्ट परियोजना के लिए दी जाती है, जो कि प्राथमिकता के अनुसार न होने के कारण अर्थ-व्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न करती हैं।

2. विदेशी सहायता से स्थानीय श्रम, भूमि और कच्चे माल का उपयोग और नियन्त्रण विदेशियों के हाथ में चला जाता हैं। ये विदेशी बाजार पर एकाधिकार कर लेते हैं। जिससे प्रत्यक्ष समाजवाद का उदय होता हैं।

बोध प्रश्न 3.

1. आयात प्रतिस्थापन से अनेक लाभ हैं-दीर्घकाल में देश आत्म-निर्भर बनता है, उत्पादित वस्तुओं के लिए बाजार तलाश नहीं करना पड़ता, आन्तरिक माँग को पूरा करने का सस्ता माध्यम है, रोजगार के अवसर बढ़ाता है, आर्थिक कल्याण में वृद्धि करता है, बचत और निनियोग को बढ़ाता हैं।

2. आयात प्रतिस्थान के अनेक दोष है-विदेशी प्रतियोगिता को समाप्त करता हैं। जिससे उत्पादन लागत कम करने, नई तकनीक का उपयोग करने और वस्तुओं की किस्म सुधारने की प्रेरणा का अभाव हो जाता हैं। संरक्षण को स्थायी रखने की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है, निर्यातों को प्रोत्साहित नहीं करता है तथा आर्थिक और सामाजिक समानता के उद्देश्य को प्राप्त करने में बाधक हैं।

बोध प्रश्न 4

1. निर्यात सम्बर्द्धन कुशल इकाईयों की स्थापना करता है जिसमें उत्पादन लागत घटाने, नई तकनीक का प्रयोग करने, वस्तु की किस्म सुधारने की प्रेरणा पायी जाती है और ये ईकाईयाँ प्रतियोगिता में टिके रहने का प्रयत्न करती हैं। निर्यात सम्बर्द्धन इन्हीं सब कारणों से आवश्यक हैं।
2. परम्परागत वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि नहीं की जा सकती क्योंकि इनकी माँग बेलोचदार है और विकसित देशों में इनका स्थान कृत्रिम वस्तुएं लेती जा रही हैं।

22.12 कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न

1. विकासशील देशों की व्यापारिक नीति का परीक्षण कीजिए। आयात प्रतिस्थापन की सीमाओं की विवेचना भी कीजिए।
2. विकासशील देशों की व्यापारिक नीति के क्या उद्देश्य है? इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के क्या उपाय है? उनकी व्याख्या कीजिए।
3. निर्यात सम्बर्द्धन और आयात प्रतिस्थान में से आप किस नीति का समर्थन करते है? आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

इकाई 23

चुंगीसंघ का सिद्धान्त एवं आर्थिक एकीकरण
(The Theory of Customs Unions and Economics Integration)

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र, चुंगी संघ, साझा बाजार, आर्थिक समुदाय व आर्थिक एकीकरण 23.2.1 चुंगी संघ के स्थैतिक प्रभाव

23.2.2 चुंगी संघ के निर्माण से विशुद्ध हानि

23.3 प्रतियोगी व पूरक अर्थव्यवस्थाएं

23.4 सामान्य साम्य विश्लेषण

23.5 चुंगी संघ के गत्यात्मक प्रभाव

23.6 सारांश

23.7 शब्दावली

23.8 निबन्धात्मक प्रश्न

23.9 उपयोगी पुस्तकें

23.0 उद्देश्य:

इस अध्याय का उद्देश्य विद्यार्थियों को आर्थिक एकीकरण की अवधारणा से अवगत करवाना तथा चुंगी संघ का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना है।

चुंगी संघ के व्यापार सृजन तथा व्यापार दिशा परिवर्तन प्रभावों वे स्पष्ट करते हुए हम चुंगी संघ के सामान्य-साम्य विश्लेषण की चर्चा करेंगे। साथ ही चुंगी संघ के निर्माण के सम्पूर्ण लाभों से अवगत करवाने हेतु हम चुंगी संघ के गत्यात्मक (dynamic) प्रभावों का भी विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

23.1 प्रस्तावना: (Introduction)

चुंगी संघ के सिद्धान्त का जन्म सन् 1950 में हुआ था। लेकिन इस सिद्धान्त में प्रो० वाइनर (Viner) ने अपनी पुस्तक 'The customs unions issue' में जान डाली थी। तत्पश्चात् प्रो० मीड (Meade), लिप्सी (Lipsey), तथा वानेक (Vanek) ने चुंगीसंघ सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया।

23.2 स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र, चुंगी संघ, साझा बाजार, आर्थिक समुदाय व आर्थिक एकीकरण (Free Trade Area, Customs Union Common Market, Economic Union and Economic Integration)

चुंगी संघ के सिद्धान्त का अध्ययन करते समय पांच प्रकार के आर्थिक संगठनों के मध्य अन्तर स्पष्ट करना उचित होगा। ये संगठन है: स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र, चुंगी संघ, साझा बाजार, आर्थिक संघ एवं आर्थिक एकीकरण।

स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र व चुंगी संघ दोनों ही संगठनों में सदस्य राष्ट्रों के मध्य आपसी व्यापार पर समस्त प्रतिबंध समाप्त कर दिये जाते है एवं

आपस में स्वतंत्र व्यापार की नीति अपनाई जाती है, जबकि शेष विश्व के साथ व्यापार पर संघ के सदस्य राष्ट्र प्रतिबन्ध लागू रखते हैं।

चुंगी संघ व स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र में प्रमुख अन्तर यह है कि चुंगी संघ के सदस्यों को गैर-सदस्य राष्ट्रों से व्यापार में समान वस्तुओं पर समान प्रशुल्क दर लगाने पर सहमत होना आवश्यक होता है, जबकि स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र के सदस्य राष्ट्रों को गैर सदस्य राष्ट्रों से व्यापार में स्वयं की निजी प्रशुल्क दर लगाने की स्वतंत्रता होती है लेकिन स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र के सदस्य राष्ट्रों के मध्य भी चुंगी संघ की भांति आपसी व्यापार पर प्रतिबन्ध पूर्णतया समाप्त कर दिये जाते हैं। सन् 1960 में बना यूरोपीय स्वतंत्र व्यापार संघ (European Free Trade Associations or EFTA) स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र का श्रेष्ठतम उदाहरण है। इफ्टा के सदस्य यू.के., आस्ट्रिया, डेनमार्क, नॉर्वे, पुर्तगाल, स्वीडन एवं स्वीट्जरलेंड है, जबकि फिनलेन्ड इसका सहायक सदस्य (Associate Member) हैं।

चुंगी संघ का सुप्रसिद्ध उदाहरण यूरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Community or EEC) अथवा यूरोपीय साझा बाजार (European Common market or ECM) हैं जिसका निर्माण सन् 1985 में हुआ था। ई.ई.सी. के सदस्य राष्ट्र जर्मनी, फ्रांस, इटली बे़ल्जियम, नीदरलेंन्डस एवं लक्समबर्ग हैं। चुंगी संघ का एक अन्य उदाहरण सन् 1834 में स्थापित बहुत से सार्वभौम जर्मन राज्यों का संगठन जाल्वराईन (Zollverein) था जिसका अर्थ चुंगी संघ ही होता हैं।

साझा बाजार में चुंगी संघ को एक कदम और आगे बढ़ा दिया जाता है तथा इसके अन्तर्गत सदस्य राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं के साथ-साथ उत्पादन के कारको जैसे श्रम, पूंजी आदि की भी स्वतंत्र गतिशीलता बनाये रखी जाती हैं। अत: स्पष्ट है कि साझा बाजार के सदस्य राष्ट्रों का भौगोलिक दृष्टिकोण से भी एकीकृत क्षेत्रीय समूह होना आवश्यक हैं। सन् 1970 में ई.ई.सी. लगभग साझा बाजार बन चुका था।

चौथे प्रकार के समूह 'आर्थिक संघ' के (Economic Union) सदस्य राष्ट्रों का आर्थिक दृष्टिकोण से एक इकाई हो जाना अन्तिम उद्देश्य होता है अर्थात् आर्थिक संघ के सदस्यों में समान बाह्य प्रशुल्क के अलावा औद्योगिक व अन्य राष्ट्रीय नीतियों के तालमेल (harmonization) का भी प्रावधान होता हैं। सन् 1960 में बेल्जियम, नीदरलेण्डस व लक्समवर्ग ने मिलकर 'बेनेलक्स' (Benelux) का निर्माण किया था वह आर्थिक संघ का ही उदाहरण हैं।

आर्थिक सहयोग की उत्कृष्टतम अवस्था को 'आर्थिक एकीकरण' के नाम से जाना जाता हैं। आर्थिक एकीकरण में एक कदम और आगे बढ़कर सदस्य राष्ट्रों द्वारा एक जैसी मौद्रिक व राजकोषीय नीतियां अपनाई जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका आर्थिक एकीकरण का उदाहरण हैं।

ध्यान रहे कि उपर्युक्त सभी प्रकार के समूह आर्थिक एकीकरण की ही विभिन्न श्रेणियां हैं।

प्रा० लिप्सी (Lepsey) ने चुंगी संघ को प्रभावित करते हुए लिखा है कि चुंगी संघ सिद्धान्त "प्रशुल्क सिद्धान्त की वह शाखा है जिसमें भौगोलिक आधार पर विभेदात्मक व्यापार प्रतिबन्धों के प्रभावों का अध्ययन किया जाता हैं।"

जबकि मौद्रिक संघ (Monetary Union) की उत्कृष्टतम् अवस्था में 'एक' मुद्रा अपनाने के साथ-साथ सदस्य राष्ट्रों के मध्य उत्पादक कारको (जैसे श्रम व पूँजी) की पूर्ण गतिशीलता भी पाई जाती हैं। हाल ही में 1 जनवरी, 1999 यूरोपीय आर्थिक व मौद्रिक संघ (EMU) के सदस्य राष्ट्रों ने 'यूरो' नामक 'एक' मुद्रा अपनाकर मौद्रिक संघ की उत्कृष्टतम् अवस्था में पहुंचने का गौरव प्राप्त कर लिया हैं।

23.2.1 चुंगी संघ के स्थैतिक प्रभाव: (Static effects of a customs unions)

चुंगी संघ के स्थैतिक प्रभावों का आंशिक व सामान्य साम्य विश्लेषण के द्वारा दर्शाया जा सकता हैं।

चित्र 23.1 में आंशिक साम्य विश्लेषण की सहायता से चुंगी संघ के प्रभावों को स्पष्ट किया गया हैं। माना कि A स्वदेशी राष्ट्र, B संघ सहयोगी राष्ट्र तथा C शेष विश्व हैं। चित्र 23.1 में तथा SS क्रमश: A राष्ट्र के माँग व पूर्ति वक्र हैं। विदेशी राष्ट्र C की पूर्ति कीमत Pf हैं। Pf वक्र क्षैतिज (horizontal) खींचने का आशय यह है कि चुंगी संघ के निर्माण के उपरांत भी विदेशी कीमत यथास्थिर रहोगी। चुंगी संघ के निर्माण से पूर्व प्रति इकाई आयात प्रशुल्क Pf - Pt कीमत पर A राष्ट्र में वस्तु की मांग O - X_1 है, जिसमें से O-X घरेलू पूर्ति तथा शेष X- X_1 मात्रा आयातित मात्रा है।

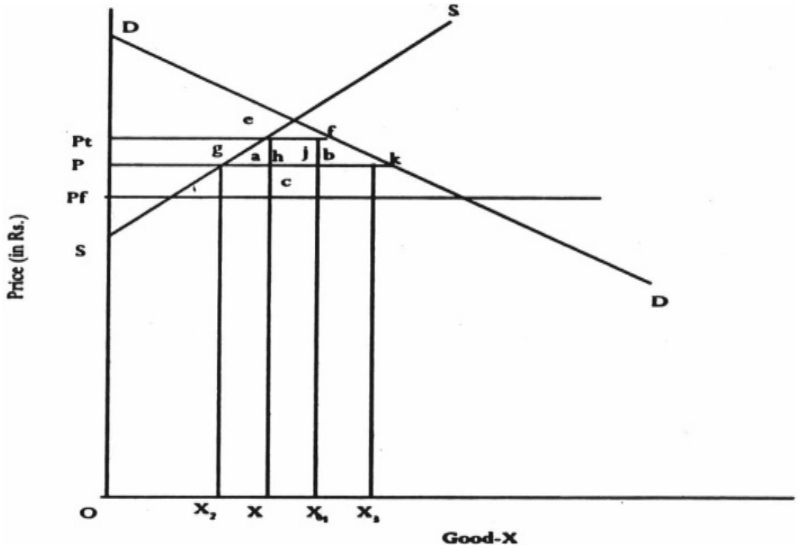

चित्र 23.1: चुंगी संघ के निर्माण के व्यापार सृजन व व्यापार दिशा-परिवर्तन प्रभाव

चित्र में O-P चुंगी संघ के सम्भावित सदस्य B राष्ट्र की पूर्ति कीमत हैं। अत: स्पष्ट है कि चुंगी संघ के निर्माण से पूर्व B राष्ट्र के आयातों पर भी C राष्ट्र से आयातों के समान Pf-Pt प्रशुल्क लगा हुआ था अत: चुंगी संघ के निर्माण से पूर्व B राष्ट्र से A राष्ट्र के आयात शून्य हैं।

अब मान लीजिए की A व B राष्ट्र मिलकर चुंगी संघ का निर्माण कर लेते है तथा आपसी व्यापार पर प्रशुल्क पूर्णतया समाप्त कर देते है एवं गैर-सदस्य राष्ट्र C के आयातों पर प्रशुल्क पूर्ववत् ही लगा रहता है तो इस चुंगी

संघ के निर्माण के व्यापार व कल्याण के स्तर पर दो विपरीत प्रभाव पड़ेंगे।

प्रथम, यह कि चुंगी संघ के निर्माण से संघ सदस्य B राष्ट्र के आयातों पर प्रशुल्क समाप्त हो जाने से अब A राष्ट्र को X वस्तु O-P कीमत पर प्राप्त होगी जो कि चुंगी संघ के निर्माण से पूर्व की O - Pt कीमत से कम है। अत: A राष्ट्र के आयात X-X_1 से बढ़कर $X_2 - X_3$ हो जाते हैं तथा घरेलू पूर्ति O-X से घटकर O - X_2 हो जाती है। कीमत की इस कमी से A राष्ट्र का उपभोग का स्तर O-X_1 से बढ़कर O-X_3 हो जाता है। अत: चुंगी संघ के 'व्यापार सृजन प्रभाव' (Trade creation effect) को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: प्रथम, घरेलू उत्पादन में कमी का प्रभाव तथा द्वितीय, घरेलू उपभोग में वृद्धि का प्रभाव।

व्यापार सृजन से A राष्ट्र लाभान्वित होगा क्योंकि यदि A राष्ट्र X_2-X मात्रा का उत्पादन स्वयं करता तो इस राष्ट्र की X_2-X मात्रा की लागत ex x_2g क्षेत्र के बराबर होती जबकि चुंगी संघ के सदस्य B राष्ट्र से X_2-X मात्रा के आयातों की लागत ghxx_2 है। A राष्ट्र में X_2-X की लागत तथा इस राष्ट्र की चुंगी संघ के सदस्य राष्ट्र B से X_2-X के आयात की लागत का अन्तर A राष्ट्र की विशुद्ध बचत है। यह बचत त्रिभुजाकार क्षेत्र egh द्वारा दर्शायी गयी है। इस बचत को चुंगी संघ के निर्माण के व्यापार सृजन प्रभाव की उपलब्धि कहा जा सकता हैं।

चित्र 23.1 में यह भी स्पष्ट है कि चुंगी संघ के निर्माण से A राष्ट्र के उपभोग में प्र X_1-X_3 की वृद्धि से भी राष्ट्र के कल्याण का स्तर बढ़ा है। उपभोग में X_1-X_3 की अतिरिक्त वृद्धि से A राष्ट्र के उपभोक्ताओं को प्राप्त अतिरिक्त उपयोगिता fX_1X_3K क्षेत्र के बराबर है जबकि X_1-X_3 आयातों की लागत केवल KjX_1X_3 क्षेत्र के बराबर ही है, अत: jkf त्रिभुज के क्षेत्र के बराबर A राष्ट्र के कल्याण के स्तर में वृद्धि हुई है।

A राष्ट्र को चुंगी संघ निर्माण से व्यापार सृजन से प्राप्त लाभ निम्न बातें पर निर्भर करते है:-

1. चुंगी संघ के निर्माण से पूर्व A राष्ट्र के आयातों पर लगी प्रशुल्क Pf-Pt जितनी अधिक होगी उतना ही प्रशुल्क समाप्ति से A राष्ट्र अधिक लाभान्वित होगा।
2. A राष्ट्र के पूर्तिवक्र SS तथा मांग वक्र DD का ढाल जितना कम होगा अर्थात् ये वक्र जितने अधिक लोचदार होंगे उतनी ही चुंगी संघ के निर्माण से A राष्ट्र के कल्याण में अधिक वृद्धि होगी।
3. A राष्ट्र व संघ भागीदार B राष्ट्र की लागत में जितना अधिक अन्तर होगा उतना ही चुंगी संघ निर्माण से A राष्ट्र अधिक लाभान्वित होगा, तथा
4. B राष्ट्र व शेष विश्व अर्थात C राष्ट्र की कीमतों में जितना कम अन्तर होगा उतना ही A राष्ट्र चुंगी संघ के निर्माण से अधिक लाभान्वित होगा।

लेकिन चित्र 23.1 में चुंगी संघ के निर्माण के पश्चात् X- X_1 आयातों की मात्रा न्यूनतम लागत वाले विदेशी राष्ट्र C से आयात करने की बजाय ऊँची लागत वाले चुंगी संघ के सदस्य राष्ट्र B से आयात की जायेगी। इस व्यापार-दिशा-परिवर्तन (Trade diversion) से A राष्ट्र को C आयत के क्षेत्र के बराबर हानि होगी। (क्षेत्र X- X_1 आयातों की लागत में चुंगी संघ के निर्माण से होने वाली वृद्धि है। अत: स्पष्ट है कि चुंगी संघ के निर्माण से विश्व के सर्वाधिक कुशल सदस्य राष्ट्र से आयात करने की बजाय संघ के सर्वाधिक कुशल राष्ट्र से आयात किये जाते है तथा अधिक कुशल से कम कुशल राष्ट्र की ओर व्यापार-दिशा परिवर्तन होता है।

23.2.2 चुंगी संघ के निर्माण से विशुद्ध हानि (Net Welfare Loss)

व्यापार सृजन से प्राप्त लाभ व व्यापार-दिशा परिवर्तन से होने वाली हानि के अन्तर के बराबर होती है। चित्र 23.1 में चुंगी संघ के निर्माण का विशुद्ध स्थैतिक कल्याण प्रभाव a तथा b क्षेत्रों के योग में से c क्षेत्र घटाकर (अर्थात् a+b-c) प्राप्त किये गये क्षेत्र के बराबर है।

यदि उपर्युक्त विश्लेषण में अनन्त लोच वाले पूर्ति वक्रों की मान्यता त्याग दी जाये तो चुंगी संघ के कल्याण के स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव ज्ञात करना काफी जटिल कार्य होगा, लेकिन यह मूलभूत नियम, कि चुंगी संघ से विश्व को प्राप्त लाभों को तो व्यापार सृजन से तथा हानि को व्यापार-दिशा परिवर्तन से जोड़ा जाना चाहिए, यथावत् बना रहेगा।

23.3 प्रतियोगी व पूरक अर्थव्यवस्थाएं: (Competitive and Complementary Economics)

प्रो० वाइनर (Viner) ने अपने विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि यदि संघ सदस्य राष्ट्र पूरक वस्तुएँ उत्पादित करते है तो चुंगी संघ के निर्माण से कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव तथा यदि वे प्रतिस्थापन वस्तुएँ उत्पादित करते है तो अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि प्रो० वाइनर के अनुसार यदि संघ के सदस्य राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाएँ प्रतियोगी (Competitive) है तो व्यापार सृजन की सम्भावना तथा आपसी प्रतिस्पर्द्धा बनी रहती हैं। इसके विपरीत यदि सदस्य राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाएं पूरक (Complementary) है तो व्यापार-दिशा परिवर्तन की अधिक संभावनाएँ होती हैं।

सामान्यतया ऐसा प्रतीत होता है कि एक कृषि प्रधान राष्ट्र को उद्योग प्रधान राष्ट्र के साथ चुंगी संघ बनाना चाहिए लेकिन ऐसा सही नहीं हैं। वास्तव में कृषि प्रधान राष्ट्र को कृषि प्रधान राष्ट्रों के साथ तथा उद्योग प्रधान राष्ट्र को उद्योग प्रधान राष्ट्रों के साथ चुंगी संघ का निर्माण

करना चाहिए। ऐसा करने से व्यापार सृजन भी अधिक होगा तथा साधनों का आवंटन भी अधिक कुशल सम्भव हो सकेगा।

23.4 सामान्य साम्य विश्लेषण: (The General Equilibrium Analysis)

चुंगी संघ के सामान्य साम्य विश्लेषण में प्रभावों को स्पष्ट करने हेतु हम प्रो. लिप्सी (Lipsey) द्वारा प्रदत्त चित्र 23.2 की सहायता लेंगे। प्रो. लिप्सी ने अपना विश्लेषण वाइनर के विश्लेषण के आधार पर यह दर्शाने हेतु प्रदान किया कि व्यापार-दिशा परिवर्तन से कल्याण के स्तर में निश्चय ही कमी होगी। वाइनर की भांति प्रो. लिप्सी ने भी स्थिर उपभोग के ढाँचे की मान्यता मानी तथा अनन्त पूर्ति लोच की मान्यता द्वारा पैमाने के स्थिर प्रतिफल क्रियान्वित होते हुए माने।

यदि हम मान लें कि प्रत्येक वस्तु-कीमत अनुपात पर वस्तुओं का उपभोग दिये हुए स्थिर अनुपात में ही किया जाता है तथा उत्पादन लागतें स्थिर है तो व्यापार-दिशा परिवर्तन से कल्याण के स्तर में निश्चय की कमी होगी।

चित्र 23.2 में A राष्ट्र y वस्तु के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करता हैं। अत: इस राष्ट्र का साम्य उत्पादन बिन्दु A तथा व्यापाररत A राष्ट्र का साम्य उपभोग बिन्दु e है अत: A-C रेखा वाली व्यापार की शर्तों पर A राष्ट्र y वस्तु के Ag निर्यातों के विनिमय में X वस्तु की ge मात्रा का विदेशी राष्ट्र C से आयात कर रहा हैं। मूल बिन्दु से खींची गई सरल रेखा OZ दोनों वस्तुओं का स्थिर अनुपात में उपभोग दर्शाती हैं।

अब यदि A व B राष्ट्र चुंगी संघ का निर्माण कर लेते है तो A राष्ट्र को ऊँची लागत वाले संघ के सदस्य B राष्ट्र से X वस्तु का आयात करना पड़ेगा। अत: चुँगी संघ के निर्माण के बाद आयात वस्तु X के सापेक्ष मूल्य में

वृद्धि हो जाती है तथा नई व्यापार की शर्तों की रेखा A-B हो जाती हैं। नया साम्य उपभोग बिन्दु e से परिवर्तित होकर f हो जाता हैं।

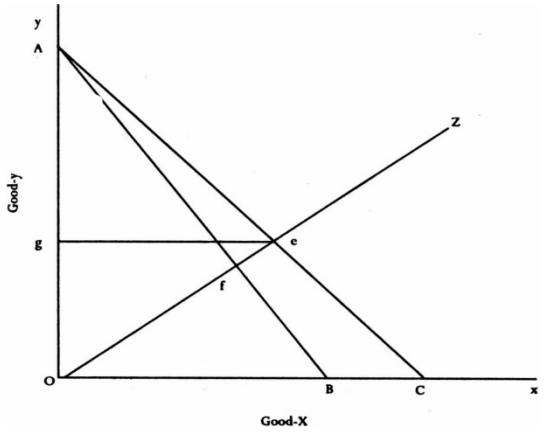

चित्र : 23.2: व्यापार-दिशा परिवर्तन का कल्याण के स्तर पर प्रभाव (उपयोग का ढ़ाचा अपरिवर्तित)

चित्र 23.2 में e की तुलना में f बिन्दु पर x तथा y दोनों ही वस्तुओं का उपभोग कम है अर्थात् चुंगी संघ के निर्माण से A राष्ट्र का कल्याण का स्तर गिर जाता हैं अत: स्पष्ट है कि स्थिर अनुपातों में उपभोग की मान्यता के अन्तर्गत व्यापार-दिशा परिवर्तन से राष्ट्र का कल्याण का स्तर गिर जाता हैं। लेकिन प्रो. लिप्सी का दावा है कि प्रो. वाइनर की स्थिर अनुपात में उपभोग की मान्यता बहुत ही विशिष्ट प्रकार की मान्यता हैं। चुंगी संघ के निर्माण से सापेक्ष मूल्य निश्चय ही परिवर्तित होगा, अत: सामान्यतया यह आशा की जानी चाहिए कि इसके परिणामस्वरूप वस्तु-प्रतिस्थापन होगा और इस प्रकार पूर्व विद्यमान व्यापार में परिवर्तन से सस्ती वस्तु के क्रय में वृद्धि तथा मंहगी वस्तु के क्रय में कमी होगी। परिणामस्वरूप सदस्य राष्ट्र B से A राष्ट्र के आयातों में वृद्धि होगी तथा राष्ट्र में उत्पादित वस्तुओं के उपभोग व गैर-सदस्य राष्ट्र C से आयातों में कमी होगी।

23.5 चुँगी संघ के गत्यात्मक प्रभाव (Dynamic effects of Customs union)

चुंगी संघ के गत्यात्मक (dynamic) प्रभावों में पैमाने की मितव्ययताएं (Economies of Scale), प्रतिस्पर्द्धा का उद्दीपन (Stimulus of competition), विनियोग का उद्दीपन (stimulus of investment), तथा तकनीकी परिवर्तनों का सम्भावित त्वरण (Acceleration) प्रमुख है।

चुंगी संघ के निर्माण-से संघ सदस्यों के मध्य व्यापार में वृद्धि से औद्योगिक विशिष्टीकरण के माध्यम से पैमाने की मितव्यताएँ प्राप्त होगी जिससे प्रति इकाई लागत घटेगी।

विकासशील एवं छोटे राष्ट्रों के मध्य चुंगी संघ के निर्माण से पैमाने की मितव्ययताओं का प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि बड़े राष्ट्रों को तो ये मितव्ययताएँ एकीकरण से पूर्व ही प्राप्त हो रही होती हैं। इस अनुकूल व प्रतिकूल प्रभावों की तुलना करनी होगी। लेकिन इस तरह से तुलना द्वारा राष्ट्रों के आर्थिक विकास पर विशुद्ध प्रभाव ज्ञात करना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य हैं।

गत्यात्मक प्रभावों में दूसरा प्रभाव बाजारों के विस्तार से प्रतिस्पर्द्धा में होने वाली वृद्धि का हैं। चुंगी संघ के निर्माण से व्यापार सृजन तथा व्यापार-दिशा परिवर्तन दोनों ही प्रभावों के कारण बाजार का आकार विस्तृत हो जाता हैं। चुंगी संघ के सदस्यों के मध्य व्यापार पर प्रशुल्क समाप्त कर देने से सदस्य राष्ट्रों में एकाधिकार व कार्टेलस् पर अन्य सदस्य राष्ट्रों की फर्मस् की प्रतिस्पर्द्धा का दबाव बना रहता हैं। इस प्रकार अकुशल फर्मस् पर भी दबाव बढ़ जाता हैं। सदस्य राष्ट्रों के उद्योगों के लिए विस्तृत बाजार के परिप्रेक्ष में जीवित रहने हेतु पुनर्गठित होना आवश्यक हो जाता हैं। अत: स्पष्ट है कि चुंगी संघ का प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाने का प्रभाव वास्तविक तो है लेकिन इस प्रभाव के लाभों की गणना करना सम्भव नहीं हैं।

चुंगी संघ का एक अन्य गत्यात्मक प्रभाव संघ के अन्तर्गत विनियोग में होने वाली वृद्धि हैं। संघ के अन्तर्गत विस्तृत बाजार अवसरों के सृजन से कीमतों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि से घरेलू तथा विदेशी विनियोग को बढ़ावा मिलेगा जिससे आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होगी। यह विनियोग की अभिवृद्धि कुछ अंश तक विनियोग-दिशा परिवर्तन से दुरुस्त हो सकती है क्योंकि प्रशुल्क विभेद के कारण विनियोग दिशा विश्व की सर्वाधिक उपयुक्त अवस्थिति से एकीकृत क्षेत्र की ओर विवर्त हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त संघ सदस्य राष्ट्रों से व्यापार पर प्रशुल्क समाप्त होने से आयात-प्रतिस्थापन उद्योगों में भी विनियोग घटना सम्भव हैं। चुंगी संघ का एक और गत्यात्मक प्रभाव नव-प्रवर्तन (innovation) व तकनीकी परिवर्तन को प्रोत्साहित करने का भी हैं। चुंगी संघ के निर्माण से बाजार के आकार में वृद्धि के साथ-साथ फर्म के अनुकूलतम आकार में भी वृद्धि होगी तथा अनुसन्धान व विकास में अतिरिक्त संसाधन प्रयुक्त किये जाने लगेंगे। लेकिन इस प्रभाव के बारे में भी निश्चित निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसे आनुभविक प्रमाणों का अभाव है जिनसे यह दर्शाया जा सके कि छोटी फर्मस् की तुलना में बड़ी फर्मस् में तकनीकी नव-प्रवर्तन की दर अधिक होती हैं। अत: अधिकाधिक यह कहा जा सकता है कि नव-प्रवर्तन की सम्भावनाएँ बनी रहती है तथा विस्तृत बाजार व कड़ी प्रतिस्पर्द्धा के कारण नव प्रवर्तन के लिए अनुकूल वातावरण बना रहता हैं।

अन्त में इस ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि चुंगी संघ के निर्माण से प्राप्त गत्यात्मक लाभ स्थैतिक लाभों को तुलना में काफी अधिक व महत्वपूर्ण होते हैं।

23.6 सारांश

विभिन्न राष्ट्रों द्वारा स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र, चुंगी संघ, साझा बाजार अथवा समुदाय के निर्माण को ही आर्थिक एकीकरण की विभिन्न श्रेणियों के रूप में जाना है।

यूरोपीय आर्थिक व मौद्रिक संघ (EMU) ने 'यूरो' मुद्रा अपनाकर मौद्रिक संघ की उत्कृष्टतम अवस्था प्राप्त कर ली है।

चुंगी संघ के स्थैतिक प्रभावों में व्यापार सृजन प्रभाव को लाभ तथा व्यापार-दिशा परिवर्तन प्रभाव को हानि से जोड़ा जाता है। लेकिन चुंगी संघ के गत्यात्मक लाभ स्थैतिक लाभ से अधिक महत्वपूर्ण होते है। इन लाभों में पैमाने की मितव्ययताओं, प्रतिस्पर्द्धा उद्दीपन, विनियोग उद्दीपन व तकनीकी परिवर्तनों के लाभ सम्मिलित किये जाते हैं।

23.7 शब्दावली

आर्थिक एकीकरण, चुंगीसंघ, आंशिक साम्य, सामान्य साम्य, पूरक व प्रतिस्पर्द्धा अर्थव्यवस्थाएँ।

23.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यदि आर्थिक एकीकरण के सदस्य राष्ट्र आपसी प्रशुल्क समाप्त कर दें तथा गैर-सदस्य राष्ट्रों पर समान प्रशुल्क-दर लगा दें तो आप ऐसे एकीकरण को क्या नाम देंगे?
2. अधिकतम् लाभ अर्जित करने हेतु चुंगीसंघ के सदस्य राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाएँ प्रतिस्पर्द्धी होनी चाहिए अथवा पूरक?
3. व्यापार-दिशा परिवर्तन तथा व्यापार सृजन से क्या अभिप्राय है?
4. किन्हीं दो सफल चुंगी संघों के नाम बतलाइये?
5. चुंगी संघ के व्यापार सृजनात्मक होने हेतु किन शर्तों का पूरा होना आवश्यक है?
6. चुंगी संघ की गत्यात्मक लब्धियों (Gains) का वर्णन कीजिए।
7. विकासशील राष्ट्रों के आपसी आर्थिक एकीकरण की सफलता में सम्भावित बाधक घटकों का उल्लेख कीजिए।

23.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Sodersten, BO: International Economics – (Mac millan Press Ltd.)
2. Kindleberger C.P. and Lindert, P.H. - International Economics– (Richard D. Irwin Inc.)
3. Chacholiades, M. - International Economics – (MC Graw – Hill International Editions)
4. Swami, K.D. - International Economics – (Hindi edition) - Scientific Publishers, New Pali Road, Jodhpur)

इकाई 24

भुगतान सन्तुलन, व्यापार संतुलन व भुगतान संतुलन खाता

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 भुगतान संतुलन की "अवधारणा"

24.3 भुगतान संतुलन खाता

24.3.1 चालू खाता

24.3.2 पूँजीगत खाता

24.3.3 अधिकारिक समायोजन खाता

24.4 भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन

24.5 क्या भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है?

24.6 भुगतान असंतुलन के कारण व प्रकार

24.7 समायोजन प्रक्रिया

24.7.1 मौद्रिक उपाय

24.7.2 गैर मौद्रिक उपाय

24.8 सारांश

24.9 शब्दावली

24.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

24.11 निबन्धात्मक प्रश्न

24.0 उद्देश्य

भुगतान संतुलन की अवधारणा का अध्ययन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है।

(1) परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली की स्थिरता की जांच विभिन्न देशों के बीच किये गये लेन-देनों के क्रमबद्ध अभिलेखों द्वारा आसानी से की जा सकती है।

(2) स्थिर विनिमय दर प्रणाली की स्थिरता एवं आवश्यकता की जांच भी भुगतान संतुलन खातों की सहायता से आसानी से की जा सकती है। इन खातों से हमें यह पता चलता है कि एक देश की मुद्रा किस सीमा तक विदेशियों के हाथों में संचित हो गई है?

(3) भुगतान संतुलन खातों के अध्ययन से हम आसानी से यह पता लगा सकते है कि कहीं ऋणी राष्ट्रों द्वारा ऋणों का पुनर्भुगतान और कठिन तो नहीं बनता जा रहा है? इन खातों के अध्ययन से हमें किसी राष्ट्र की ऋणग्रस्तता की स्थिति ब्याज व मूलधन का पुनर्भुगतान, भविष्य में उसकी विदेशी मुद्रा अर्जित करने की क्षमता की विस्तृत जानकारी मिलती है।

(4) विकासशील अर्थ व्यवस्था के संदर्भ में भुगतान संतुलन यह भी स्पष्ट करता है कि वह आर्थिक विकास के लिये विदेशों से प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता पर किस सीमा तक निर्भर है।

(5) विकसित देशों के संदर्भ में, जो वित्तीय दृष्टि से सुदृढ़ है, तथा जो विदेशों में विनियोजित पूंजी से भारी मात्रा में लाभांश व ब्याज आय प्राप्त करते है, भुगतान संतुलन यह बतला सकता है कि वहां के निवासी किस सीमा तक पूर्व निर्यात पर निर्भर है।

जेवन्स ने भुगतान संतुलन के महत्व की चर्चा करते समय लिखा है कि "एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्री के लिये भुगतान संतुलन का वही महत्व

है जो कि एक रसायन शास्त्री के लिये तत्वों की 'आवधीक तालिका' (Periodic Table) का है।"

24.1 प्रस्तावना

विभिन्न आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सही एवं प्रभावी मौद्रिक, राजकोषीय तथा विनिमय दर नीति तय करने के लिये सम्बन्धित अधिकारियों को इस बात की गहरी समझ होना जरूरी है कि अन्तर्राष्ट्रीय समष्टि अर्थव्यवस्था किस प्रकार संचालित होती एवं कार्य करती है। यह जानकारी होना अति आवश्यक है कि विदेशी विनिमय बाजारों की कार्य-प्रणाली क्या है? तथा तत्कालीन आर्थिक समस्याओं के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध किस प्रकार परिवर्तित होते है।

किसी भी अर्थव्यवस्था का भुगतान संतुलन खाता हमें इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराता है। भुगतान संतुलन की अवधारणा हमारे समक्ष किसी अर्थ-व्यवस्था की आन्तरिक स्थिति की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करती है जो हमें नीति निर्धारण में मदद करती है। भुगतान संतुलन किसी देश के, शेष विश्व के साथ सभी प्रकार के वास्तविक एवं वित्तीय हस्तांतरण की जानकारी प्रस्तुत करता है। अनेक महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णयों में इस प्रकार के सांख्यिकीय अभिलेखों की आवश्यकता होती है।

24.2 भुगतान संतुलन की अवधारणा

किसी देश का भुगतान संतुलन उसके द्वारा किसी अन्य देश के साथ एक वर्ष की समयावधि में किये गये समस्त लेन-देन का "स्थिति विवरण" (Balance Sheet) के रूप में एक सांख्यिकीय अभिलेख है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार "भुगतान संतुलन दी गई समयावधि में सम्बन्धित देशों के निवासियों के बीच समस्त आर्थिक लेन-देनों का क्रमबद्ध विवरण है।"

बो. सोडर्सटन के अनुसार "भुगतान संतुलन एक देश के अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन में लेनदारियों व देनदारियों को सूचीबद्ध करने का तरीका है।"

किंडलबर्गर के अनुसार "किसी देश का भुगतान संतुलन एक वर्ष की अवधि में एक देश के शेष विश्व के साथ किये गये समस्त आर्थिक लेन-देन का क्रमबद्ध विवरण है।"

सांख्यिकीय अर्थ में यह एक ओर विदेशियों से प्राप्तियों और दूसरी ओर विदेशियों को भुगतानों का मदों के अनुसार हिसाब किताब है। यह किसी भी देश के विदेशी व्यापार की स्थिति, ऋणी व ऋणदाता राष्ट्र के रूप में उनकी स्थिति में होने वाला परिवर्तन तथा देशों के अधिकारिक सुरक्षा कोषों की स्थिति को दर्शाता है।

24.3 भुगतान संतुलन खाता

किसी भी देश का भुगतान संतुलन खाता बुक कीपिंग की "दोहरी प्रविष्टि" (Double entry) पद्धति के आधार पर निर्मित किया जाता है। इसमें प्रत्येक प्रविष्ठि खाते में दोनों ओर अर्थात् प्राप्तियों व भुगतानों में दोनों तरफ दर्शाई जाती है। इसमें लेनदारियां अर्थात प्राप्तियां खाते के बांयी ओर दर्शाई जाती है जबकि देनदारियां अथवा भुगतान खाते के दाईं ओर दर्शाए जाते हैं।

जब किसी देश द्वारा, अन्य देश से कोई भी भुगतान किसी भी रूप में प्राप्त किया जाता है तो इसे प्राप्तियों (Credit) की ओर दर्शाया जाता है। जबकि उस देश द्वारा अन्य देशों को किया गया भुगतान देनदारियों की तरफ दर्शाया जाता है। किसी देश के भुगतान संतुलन खाते में प्राप्तियों एवं भुगतानों का अन्तर अतिरेक या घाटे की स्थिति को स्पष्ट करता है।

किसी देश के भुगतान संतुलन खाते में प्राप्तियों की ओर दर्शायी जाने वाली प्रमुख मदें हैं - वस्तुओं व सेवाओं का निर्यात, विदेशियों से उपहार आदि के रूप में प्राप्त एक तरफा प्राप्तियां (Unilateral receipts) विदेशी ऋण, विदेशियों द्वारा उस देश में किए गए विनियोग, स्वर्ण व

अन्य आरक्षित कोषों की बिक्री से प्राप्त प्राप्तियां आदि। भुगतानों की ओर दर्शायी जाने वाली प्रमुख मदें हैं- वस्तुओं व सेवाओं का आयात, विदेशों को भेजे जाने वाले उपहार अथवा एक तरफा भुगतान, विदेशों को दिए गए ऋण, अन्य देशों में किए गए विनियोग व विदेशी सरकारों या संस्थाओं से स्वर्ण एवं अन्य सम्पत्तियों की खरीद।

यह प्राप्तियां व भुगतान एक देश के भुगतान संतुलन खाते में लम्बवत (Vertically) रूप में दर्शाये जाते हैं। जबकि क्षैतिज रूप (Horizontally) में भुगतान संतुलन खाता तीन श्रेणियों में विभक्त होता है। चालू खाता, पूंजीगत खाता तथा अधिकाधिक समायोजन खाता।

24.3.1 चालू खाता

चालू खाते में वस्तुओं व सेवाओं के आयात व निर्यात तथा एक तरफा लेन-देन शामिल होते हैं। सेवाओं के आयात-निर्यात में यात्रा, परिवहन, पर्यटन, जहाजरानी, बीमा, वायु-यातायात, बैंकिग, विदेशी विनियोगों से प्राप्त होने वाली आय व भुगतान आदि शामिल होते हैं।

एक तरफा भुगतान व प्राप्तियों में विदेशी सरकारों व व्यक्तियों से प्राप्त होने वाले उपहार, विदेशी सहायता, पेंशन, दान, निजी व्यक्तियों द्वारा भेजी गई राशि (remittances) आदि शामिल होते हैं।

24.3.2 पूंजीगत खाता

एक देश के पूंजीगत खाते में उसके सभी प्रकार के वित्तीय लेन-देन शामिल होते है जिसमें उस देश के सभी अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋण, निजी व सरकारी विनियोग शामिल होते हैं। दूसरे शब्दों में पूंजीगत खाता ऋणों व विनियोग के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह दर्शाता हैं। इससे किसी देश की अन्य देश के साथ लेनदारियों व देनदारियों में परिवर्तन का पता चलता है।

दीर्घकालीन लेन-दान में एक वर्ष से अधिक की अवधि के पूंजीगत लेन-देन शामिल है। इसमें विनिर्माण आदि में प्रत्यक्ष विनियोग, पत्राधान

विनियोग जैसे - विदेशी शेयर, ऋण पत्रों की खरीद व अन्तर्राष्ट्रीय ऋण शामिल होते हैं।

इसके विपरीत अल्पकालीन पूंजीगत प्रवाहों में एक वर्ष से कम अवधि के वित्तीय व पूंजीगत लेन-देन शामिल होते हैं।

24.3.3 अधिकारिक समायोजन खाता

अधिकारिक समायोजन खाता अथवा अधिकारिक सुरक्षित कोष वास्तव में पूंजीगत खाते का ही एक भाग है। परन्तु कुछ देशों जैसे USA, UK आदि में इसे अलग खाते के रूप में दर्शाया जाता हैं। इसमें सुरक्षित कोषों के परिवर्तन दर्शाए जाते है।

चालू एवं पूंजीगत खाते का योग आधारभूत संतुलन (Basic Balance) कहलाता है।

तालिका 24.1 में किसी देश 'A' का एक वर्ष विशेष के लिये काल्पनिक भुगतान संतुलन खाता दर्शाया गया है।

तालिका 24.1

'A' देश का वर्ष 2000 के लिये "भुगतान संतुलन खाता"

(करोड़ रु. में)

प्राप्तियां (लेनदारियां)		भुगतान (देनदारियां)	
चालू खाता			
1. वस्तुओं का निर्यात	100	1. वस्तुओं का आयात	150
2. सेवाओं का निर्यात	90	2. सेवाओं का आयात	120

3. एकतरफा प्राप्तियां	60	3. एकतरफा भुगतान	90
(अ) विदेशी सरकारी अनुदान	25	(अ) विदेशों का अनुदान	40
(ब) विदेशों से हस्तांतरण भुगतान	20	(ब)विदेशियों को हस्तांतरण भुगतान	20
(स) उपहार व निजी व्यक्तियों द्वारा भेजी गयी प्राप्तियां	15	(स) उपहार व निजी व्यक्तियों द्वारा भेजे जाने वाले भुगतान	40
पूंजीगत खाता			
विदेशों से ऋण	140	विदेशों को दिया गया ऋण	100
विदेशियों द्वारा प्रत्यक्ष विनियोग	60	विदेशों में किया गया प्रत्यक्ष विनियोग	50
विदेशों में प्रतिभूतियों की बिक्री	40	विदेशी प्रतिभूतियों की खरीद	50
अधिकारिक समायोजन खाता			
स्वर्ण की बिक्री IMF में SDR खाते में कमी व अन्य	70	स्वर्ण की खरीद SDR में वृद्धि व अन्य	
योग	560 करोड़		560 करोड़

	रु.		रु.

तालिका 24.1 में किसी वर्ष विशेष के लिये 'A' देश का काल्पनिक भुगतान संतुलन, खाता, उदाहरणस्वरूप दर्शाया गया है। इस खाते में बांयी ओर 'A' देश की प्राप्तियों व दाहिनी ओर 'A' देश के भुगतान दर्शाए गए हैं।

चालू खाते में एक सबसे महत्वपूर्ण मद वस्तुओं का आयात-निर्यात है। जिसमें केवल दृश्य मदों को ही शामिल किया जाता है। किसी देश में वस्तुओं के आयात-निर्यात का अन्तर ही व्यापार संतुलन (Balance of Trade) कहलाता है। यदि किसी देश में वस्तुओं के निर्यात का मूल्य आयातों के मूल्य से अधिक है तो व्यापार संतुलन अनुकूल होगा व इसके विपरीत स्थिति होने पर प्रतिकूल होगा।

तालिका 24.1 में 'A' देश के निर्यातों का मूल्य 100 करोड़ रु. व आयातों का मूल्य 150 करोड़ रु. दर्शाया गया है। अत: देश 'A' का व्यापार संतुलन प्रतिकूल है।

चालू खाते में मद (2) के अन्तर्गत 'A' देश के द्वारा की जाने वाली अदृश्य मदों अर्थात सेवाओं के आयात-निर्यात को दर्शाया गया है। सेवाओं के लेन-देन में पर्यटन, परिवहन, बैकिंग, बीमा आदि के आयात-निर्यात दर्शाए जाते हैं। 'A' देश के भुगतान संतुलन खाते में सेवाओं के निर्यात का मूल्य 90 करोड़ रु. व सेवाओं के आयात का मूल्य 120 करोड़ रु. दर्शाया गया है। चूंकि सेवाओं का निर्यात मूल्य सेवाओं के आयात मूल्य से कम है अत: 'A' देश का सेवा संतुलन (Service balance) भी प्रतिकूल है। चालू खाते की मद (3) एक तरफा प्राप्तियों व भुगतानों को दर्शाती है। जिसमें उपहार, अनुदान, सरकारी सहायता, निजी व्यक्तियों द्वारा किये गये लेन-देन आदि शामिल होते है। उपर्युक्त उदाहरण में 'A' देश को प्राप्त एकतरफा प्राप्तियों को मूल्य 60 करोड़ रु. है। जिसमें 25 करोड़ रु. 'A' देश को सरकारी अनुदान

से प्राप्त हुए। 20 करोड़ रु. हस्तांतरण भुगतान व 15 करोड़ रु. उपहार व निजी व्यक्तियों द्वारा भेजी गई राशि (Remittances) के रूप में प्राप्त हुए।

एक तरफा भुगतानों का मूल्य 90 करोड़ रु. है जिसमें अनुदान 40 करोड़ रु. हस्तांतरण भुगतान 20 करोड़ रु. व निजी व्यक्तियों द्वारा विदेशों को भेजे गए उपहार, अनुदान का मूल्य 30 करोड़ रु. है।

चालू खाते की सभी मदों का योग करने पर 'A' देश की कुल प्राप्तियां 250 करोड़ रु व भुगतान 360 करोड़ रु. है। अत: उदाहरण में दर्शाए गए खाते में 'A' देश के चालू खाते का संतुलन प्रतिकूल है।

चालू खाते के संतुलन को आधारभूत संतुलन (Basic balance) भी कहा जाता है। पूंजीगत खाते में किसी देश के सभी प्रकार के अल्प व दीर्घकालीन वित्तीय लेन-देन शामिल होते हैं। यह लेन-देन दो प्रकार के होते है - निजी व सरकारी।

निजी लेन-देन में प्रत्यक्ष विनियोग, पत्राधान (Portfolio) विनियोग व अल्पकालीन वित्तीय लेन-देन शामिल होते हैं। सरकारी लेन-देन में सरकार व सरकारी एजेन्सियों द्वारा लिये व दिये जाने वाले ऋण शामिल हैं।

'A' देश में पूंजीगत खाते में मद (1) विदेशों से लिये व दिये जाने वाले ऋणों को दर्शाती है। इस उदाहरण में 'A' देश द्वारा विदेशों से 140 करोड़ रु. के ऋण लिये गये व 100 करोड़ के ऋण बाहरी देशों को दिये गये।

मद (2) प्रत्यक्ष विनियोग को दर्शाती है जिसके अन्तर्गत 'A' देश की लेनदारियों का मूल्य 60 करोड़ व देनदारियों का 50 करोड़ रु. है।

उपर्युक्त तालिका 24.1 में पूंजीगत खाते की मद (3) में प्रतिभूतियों की बिक्री व खरीद दर्शाए गए है जिनका मूल्य क्रमश: 40 व 50 करोड़ रु. है।

चालू खाते व पूंजीगत खाते में शामिल मदें स्वायत्त मदें कहलाती हैं। इन दोनों खातों की मदों का कुल योग स्वायत्त प्राप्तियां व स्वायत्त

भुगतान कहलाता है। यदि किसी देश की स्वायत्त प्राप्तियों का मूल्य स्वायत्त भुगतानों की अपेक्षा अधिक है तो उस देश का भुगतान संतुलन अनुकूल होगा तथा स्वायत्त प्राप्तियों का योग स्वायत्त भुगतानों के योग की अपेक्षा कम है तो भुगतान संतुलन प्रतिकूल होगा। तालिका 24.1 में देश 'A' के खाते में स्वायप्त प्राप्तियों का मूल्य 490 करोड़ रु. है तथा स्वायत्त भुगतानों का मूल्य 60 करोड़ रु. है। चूंकि स्वायत्त प्राप्तियों का मूल्य स्वायत्त भुगतानों की अपेक्षा कम है अत: 'A' देश का भुगतान संतुलन प्रतिकूल है। 'A' देश का 70 करोड़ रु. मूल्य का घाटा है।

इस स्थिति में खाते के दोनों ओर का मूल्य बराबर करने के लिये 'A' देश को अधिकारिक समायोजन करने पड़ेंगे जो अधिकारिक समायोजन खाते में दर्शाए गए हैं। विपरीत भुगतान संतुलन की स्थिति में एक देश अपने सुरक्षित कोषों से मुद्रा निकालकर, अपने स्वर्ण कोषों की बिक्री की अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) में अपने खातों में SDR के समायोजन द्वारा अपने घाटे की पूर्ति कर सकता है।

तालिका 24.1 में 'A' देश की प्राप्तियों का मूल्य भुगतानों की तुलना में 70 करोड़ रु. कम हैं। अत: 'A' देश को 70 करोड़ रु. मूल्य के भुगतानों की व्यवस्था SDR समायोजन, स्वर्ण की बिक्री व अन्य तरीकों से करनी होगी।

इसके विपरीत यदि किसी देश का भुगतान संतुलन अनुकूल हो तो उस देश में अन्य देश से मुद्रा का अन्तर्प्रवाह होता है। स्वर्ण की मात्रा व सुरक्षित कोषा में वृद्धि होती है तथा IMF में उसके खाते में SDR (विशेष आहरण अधिकार) में वृद्धि होती है।

24.4 भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन

एक देश के व्यापार संतुलन का संबंध केवल दृश्य मदों के आयात मूल्य व निर्यात मूल्य से होता है किन्तु भुगतान संतुलन इससे विस्तृत होता है क्योंकि इसके अन्तर्गत लेनदारियों एवं देनदारियों की समस्त मदें सम्मिलित होती है जिसके कारण एक देश को भुगतान प्राप्त होते है या

शेष विश्व को भुगतान करने पड़ते हैं। संक्षेप में व्यापार संतुलन भुगतान सुंतुलन का एक हिस्सा मात्र है। परन्तु यह भुगतान संतुलन का सबसे बड़ा व महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। प्रतिकूल भुगतान संतुलन होने पर भी व्यापार संतुलन अनुकूल हो सकता है। इसके विपरीत अनुकूल भुगतान संतुलन होने पर व्यापार संतुलन प्रतिकूल भी हो सकता है। तालिका 24.1 में चालू खाते की प्रथम मद वस्तुओं का आयात व निर्यात का अन्तर ही व्यापार संतुलन को दर्शाता है। उपरोक्त, उदाहरण में 'A' देश के आयातों का मूल्य 150 करोड़ रु. व निर्यातों का मूल्य 100 करोड़ रु.है। अत: इस देश का व्यापार संतुलन प्रतिकूल है।

भुगतान संतुलन व व्यापार संतुलन में तीन प्रमुख अन्तर है :-

(1) व्यापार संतुलन के अन्तर्गत केवल आयातों व निर्यातों का अन्तर दर्शाया जाता है। जबकि भुगतान संतुलन में केवल आयात-निर्यात ही नहीं वरन् सेवाओं, पूंजी, स्वर्ण आदि का भी समावेश किया जाता है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि आयात-निर्यात दो प्रकार के होते है- दृश्य एवं अदृश्य। जहां व्यापार संतुलन में केवल दृश्य मदों का समावेश होता है। भुगतान संतुलन में दोनों ही मदों का समावेश होता है।

(2) दुहरे इन्द्राज खातों की प्रणाली से निर्मित किये जाने के कारण भुगतान संतुलन खाते के दोनों पक्षों को संतुलित रखा जाता है। यदि कभी लेनदारियों व देनदारियों में अन्तर होता है तो समायोजक लेनदेन के द्वारा खाते के दोनों पक्षों को समान किया जाता है परन्तु व्यापार संतुलन अनुकूल या प्रतिकूल हो सकता है। तालिका 24.1 में भुगतान संतुलन खाते की प्राप्तियां व भुगतान संतुलन पक्ष में है परन्तु व्यापार संतुलन में प्राप्तियां 100 करोड़ रु. व भुगतानों का मूल्य 150 करोड़ रु. है, जो असंतुलन में है।

(3) यदि किसी देश का व्यापार संतुलन प्रतिकूल हो तो उस देश के लिये चिन्ता का विषय नहीं है परन्तु भुगतान संतुलन किसी देश की आर्थिक

स्थिति का द्योतक है जिसके लम्बे समय तक विपक्ष में बने रहना देश के लिये चिन्तनीय है।

24.5 क्या भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है

भुगतान संतुलन खातों का निर्माण दुहरे इन्द्राज (double entry) प्रणाली से किये जाने के कारण खातों में भुगतान संतुलन सदैव संतुलन में दर्शाया जाता है। यदि चालू व पूंजीगत खाते की मदों में भुगतान व प्राप्तियों का योग बराबर नहीं होता तो इन दोनों में समायोजन के लिये जानबूझकर प्रयास किये जाते है। ऋण लेकर अथवा अपने सुरक्षित कोषों से धन निकालकर इस अन्तर को दूर किया जाता है।

भुगतान संतुलन खाते में चालू खाते व पूंजीगत खाते के मदों का योग स्वायत्त प्रवाह कहलाता हैं। लेनदारियों की तरफ यह स्वायत्त प्राप्तियों व देनदारियों की तरफ स्वायत्त भुगतान कहलाता है यदि किसी देश की स्वायत्त लेनदारियों, स्वायत्त देनदारियों की अपेक्षा कम होती है तो उसका भुगतान संतुलन प्रतिकूल या घाटे मे माना जाता है। यदि इसके विपरीत किसी देश की स्वायत्त लेनदारियों उसकी स्वायत्त देनदारियों से अधिक होती है तो उस देश का भुगतान संतुलन उसके अनुकूल अथवा पक्ष में माना जाता है।

स्थिर अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों व संतुलित आर्थिक विकास की दृष्टि से भुगतान संतुलन में असंतुलन चिंताजनक माना जाता है परन्तु अतिरेक की अपेक्षा भुगतान संतुलन में घाटा किसी भी देश के लिये अधिक चिन्ता का विषय है क्योंकि समायोजन का भार घाटे वाले देश पर अधिक पड़ता है। परन्तु जैसा कि हम जानते है एक देश की प्राप्तियां ही दूसरे देश का भुगतान होती हैं दोनों ही प्रकार के असंतुलनों को लम्बे समय तक बनाये रखना संभव नहीं है।

24.6 भुगतान असंतुलन के प्रकार व कारण

भुगतान संतुलन में असंतुलन अर्थशास्त्रियों के लिये हमेशा से चिन्ता का विषय रहा है। भुगतान असंतुलन अनेक प्रकार का होता है :-

(1) **अस्थायी :-** यदि किसी देश के भुगतान संतुलन में अकाल, बाढ़, युद्ध आदि जैसे अस्थायी परिस्थितियों के कारण असंतुलन उत्पन्न होता है तो उसे अस्थायी असंतुलन कहा जाता है। अनेक बार मौसम खराब हो जाने के कारण फसल खराब हो जाती है और खाद्य पदार्थों व कृषिगत पदार्थों के आयात बढ़ जाते है एवं निर्यात घट जाते हैं। सामान्यतया कृषि आधारित अर्थव्यवस्थाओं को ऐसे असंतुलनों का सामना करना पड़ता हैं। कई बार युद्ध के कारण भी किसी देश के निर्यात अचानक बन्द हो जाते है तथा सुरक्षा सामग्री का आयात बढ़ जाने से भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाता है।

(2) **व्यापार चक्रीय असंतुलन :-** पूंजीगत अर्थ व्यवस्थाओं में व्यापार चक्रों के कारण राष्ट्रीय आय में उतार चढ़ाव होते रहते हैं। मंदी के समय आय व कीमतें घटने से सामान्यतया: आयात घटते है जबकि तेजी के समय बढ़ जाते हैं। चक्रीय असंतुलन दोनों देशों की मांग की लोचों में भिन्नता के कारण भी उत्पन्न होते हैं। यदि दो देशों की राष्ट्रीय आय में समान रूप से परिवर्तन होता है परन्तु एक देश विलासिता की वस्तुओं का आयातक है तथा दूसरा आवश्यकता की वस्तुओं जैसे नमक, गेहूं, दाल आदि का आयात करता हें तो मंदी की परिस्थितियों में पहले देश का आयात दूसरे की तुलना में कम होगा। परन्तु तेजी की स्थिति में पहले देश का आयात दूसरे से अधिक होगा।

(3) **संरचनात्मक असंतुलन :-** आयातों व निर्यातों की मांग व पूर्ति में संरचना संबंधी परिवर्तन हो जाने से भी कई बार विभिन्न देशों को भुगतान असंतुलन का सामना करना पड़ता है।

यदि भारत की चाय के प्रति आयातक राष्ट्रों में अरुचि हो जाए तो भारत के निर्यात घट जाएंगे। विश्व के अनेक प्राकृतिक रेशम

निर्यातक देशों को कृत्रिम रेशम के प्रचलन के कारण इस प्रकार के असंतुलनों का सामना करना पड़ा।

संरचनात्मक असंतुलन अनेक बार साधन स्तर पर भी होता है। यदि श्रम गहन वस्तु का निर्यात करने वाले देश में श्रम संघों के दबाव के कारण मजदूरी बढ़ जाए तो इसका भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव होगा।

(4) **दीर्घकालीन असंतुलन :-** जब अर्थव्यवस्था विकास के एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करती है। उस समय इस प्रकार के असंतुलनों का सामना करना पड़ता है। पूंजी निर्माण, औद्योगिक परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि, बाजारों का विस्तार, तकनीकी परिवर्तन, मुद्रा प्रसार आदि कारणों से दीर्घ कालीन असंतुलन उत्पन्न होते हैं।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया के दौरान एक देश को अधिक मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है। प्रारंभिक अवस्थाओं में आन्तरिक बचतें कम होती हैं। अत: विदेशों से ऋण लेना पड़ता है। अधिक मात्रा में वस्तुएं, सेवाएं व मशीनों का आयात करना पड़ता हैं। विकास हेतु प्रौद्योगिकी व तकनीकी जानकारी हासिल करनी पड़ती हैं। इसलिये उस देश के आयातों में वृद्धि हो जाती है व निर्यात उतने नहीं बढ़ पाते अत: भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाता है।

दीर्घकालीन असंतुलन जनसंख्या वृद्धि के कारण भी हो सकता है। अन्य बातों के यथावत रहते हुए जनसंख्या वृद्धि हो जाने से उपभोग मांग में वृद्धि हो जाती है। फलस्वरूप देश के आयात-निर्यातों की तुलना में बढ़ जाते हैं।

कई बार दूसरे राष्ट्रों द्वारा नई या सस्ती तकनीक की खोज कर लिये जाने पर एक देश के निर्यात कम हो जाते है जब तक कि वह भी दूसरे राष्ट्र के समकक्ष या उससे बेहतर व सस्ती तकनीकी की खोज नहीं कर लेता।

(5) **पूंजी के आवागमन के कारण :-** कराधान, युद्ध या राजनीतिक अस्थिरता के कारण एक देश की पूंजी दूसरे देश में प्रवाहित होती रहती है जब किसी देश में पूंजी का अन्तर्गमन होता है तो उस देश का भुगतान संतुलन अनुकूल हो जाता हैं। इसके विपरीत जब देश से बाहर पूंजी जाने लगती है तो उस देश का भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाता हैं।

24.7 समायोजन प्रक्रिया

जब किसी देश का भुगतान संतुलन असंतुलन में होता है। तो उसे संतुलित करना आवश्यक है। असंतुलन में समायोजन का तात्पर्य भुगतान संतुलन खाते के दोनों पक्षों को समान करना है। असंतुलन को ठीक करने के उपायों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जाता है (1) मौद्रिक उपाय एवं (2) गैर मौद्रिक उपाय।

24.7.1 मौद्रिक उपाय

भुगतान शेष के प्रतिकूल असंतुलन को निर्यातों में वृद्धि व आयातों में कमी करके ठीक किया जा सकता है। इसके लिये निम्न मौद्रिक उपायों का सहारा लिया जाता है।

1. **विदेशी विनिमय दरों में परिवर्तन** - विनिमय दर में वृद्धि स्वायत्त भुगतानों में कमी व प्राप्तियों में वृद्धि करके भुगतान के घाटे को दूर करती है। विनिमय दर में कमी का प्रभाव ठीक इसके विपरीत होता है। विनिमय दर में कमी से संबंधित विनिमय ह्रास के नाम से जाना जाता है। विनिमय दरों में लचीलापन रखकर भुगतान असंतुलन को ठीक किया जा सकता है। इसके लिये विदेशी विनिमय बाजार पर किसी भी प्रकार के प्रतिबंध नही होने चाहिये। इससे विदेशी विनिमय की दरों में विदेशी विनिमय की मांग व पूर्ति के अनुरूप परिवर्तन होंगे। इससे देश के आयात व निर्यात भी उसी के अनुसार परिवर्तित होंगे व असंतुलन दूर होगा।

यदि किसी देश के आयातों में उसके निर्यातों की तुलना में अधिक वृद्धि हो जाती है तो उस देश में विदेशी विनिमय की मांग उसकी पूर्ति से अधिक हो जाएगी। ऐसे में परिवर्तनशील दरों की व्यवस्था होने पर विदेशी मुद्रा उस देश में मंहगी हो जाएगी तथा उस देश की मुद्रा का मूल्य (Value) कम हो जाएगा। ऐसा होने पर उस देश की निर्यातित वस्तुओं के मूल्य घट जाएंगे व आयातित वस्तुएं मंहगी हो जाएंगी। इसका परिणाम यह होगा कि उस देश के आयात घटेंगे, व निर्यातों में वृद्धि होगी। यह प्रक्रिया भुगतान संतुलन के संतुलित होने तक चलती रहेगी।

इसके विपरीत यदि पूंजी अथवा स्वर्ण के स्वायत्त आगमन के कारण विदेशी विनिमय की पूर्ति मांग से अधिक हो जाए तो देश की मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा की तुलना में अधिक हो जाएगा। विदेशी विनिमय बाजार पूर्णत: स्वतंत्र होने की स्थिति में भी स्वर्ण या विदेशी विनिमय की पूर्ति में वृद्धि होने पर यह मुद्रा बाजार में आएंगी। इससे आयात बढ़ने लगेंगे व असंतुलन दूर होने तक यह प्रक्रिया चलती रहेगी।

2. **मुद्रा संकुचन :-** भुगतान शेष के असंतुलन को ठीक करने के लिये देश में मुद्रा संकुचन का सुझाव दिया जाता है अर्थात् विभिन्न मुद्रा व साख नियंत्रण के उपायों द्वारा देश में मुद्रा की मात्रा को सीमित कर दिया जाय। मुद्रा की मात्रा में कमी होने का परिणाम यह होगा कि साधनों एवं अन्य कीमतों में कमी हो जाएगी तथा वस्तु की लागत घटने से बाजार में उसकी कीमतें गिर जाएंगी। ऐसा करने से उस देश की वस्तुएं विदेशों में सापेक्षिक रूप से सस्ती हो जाएंगी। मुद्रा संकुचन का यह प्रभाव भी होता है कि लोगों की आय कम हो जाती है। अत: उनके द्वारा की गई मांग भी कम हो जाती है। जिससे निर्यात के लिये अधिक अतिरेक की मात्रा बच जाती है। साथ ही आयात कम होने से उनकी सीमान्त आयात प्रवृत्ति भी सीमित हो जाती है जिससे आयात

हतोत्साहित होते हैं। इस प्रकार निर्यातों में वृद्धि व आयातों में कमी से प्रतिकूल भुगतान शेष को ठीक किया जा सकता है।

3. **अवमूल्यन :-** प्रतिकूल भुगतान शेष को ठीक करने के लिये अनेक देशों द्वारा अंतिम अस्त्र के रूप में अवमूल्यन का प्रयोग किया जाता है। अवमूल्यन की विधि में जानबूझकर सरकारी घोषणा द्वारा देश की मुद्रा के बाह्य मूल्य को कम कर दिया जाता है। अवमूल्यन के फलस्वरूप विदेशी मुद्रा की एक इकाई के बदले पहले से अधिक स्वदेशी मुद्रा की इकाईयां प्राप्त होने लगती है। अवमूल्यन के परिणामस्वरूप विदेशी वस्तुएं अवमूल्यन करने वाले देश में और मंहगी हो जाती है तथा उस देश की वस्तुएं अन्य देशों में सस्ती हो जाती है। परिणामस्वरूप आयातों में कमी व निर्यातों में वृद्धि की आशा की जाती है परन्तु अवमूल्यन के बाद भुगतान शेष अनुकूल होगा अथवा नहीं यह आयातक व निर्यातक देशों में आयातों व निर्यातों की मांग व पूर्ति की लोचों पर निर्भर करता है।

मार्शल व लर्नर के अनुसार, विदेशी विनिमय दर का अवमूल्यन देश के भुगतान संतुलन पर अनुकूल प्रभाव डालता है, जबकि विनिमय दर के अधिमूल्यन का भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव होगा यदि देश के निर्यातों व आयातों की मांग-लोच का योग इकाई से अधिक हो।

गणितीय रूप में इस शर्त को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

यदि $[n_x + n_m] > 1$

तो अवमूल्यन का भुगतान संतुलन पर अनुकूल व अधिमूल्यन का प्रतिकूल प्रभाव होगा। उपरोक्त सूत्र में n_x निर्यातों की n_m आयातों की मांग लोचों का प्रतीक है।

एक देश के भुगतान शेष पर अवमूल्यन के प्रभाव को रेखाचित्रों की सहायता से भी दर्शाया जा सकता है परन्तु इसके लिये हमें यह निश्चित करना होगा कि हम अवमूल्यन के प्रभाव का अध्ययन

स्थानीय मुद्रा के संदर्भ में कर रहे हैं अथवा विदेशी मुद्रा के संदर्भ में। अवमूल्यन का प्रभाव स्थानीय व विदेशी मुद्रा, दोनों पर ही होता हैं।

अवमूल्यन के कारण निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के मूल्य में स्थानीय मुद्रा के रूप में वृद्धि हो जाती है, जबकि विदेशी मुद्रा के रूप में इनमें कमी हो जाती है।

रेखाचित्र 24.1 एवं 24.2 में स्थानीय मुद्रा के रूप में अवमूल्यन के प्रभाव को दर्शाया गया है।

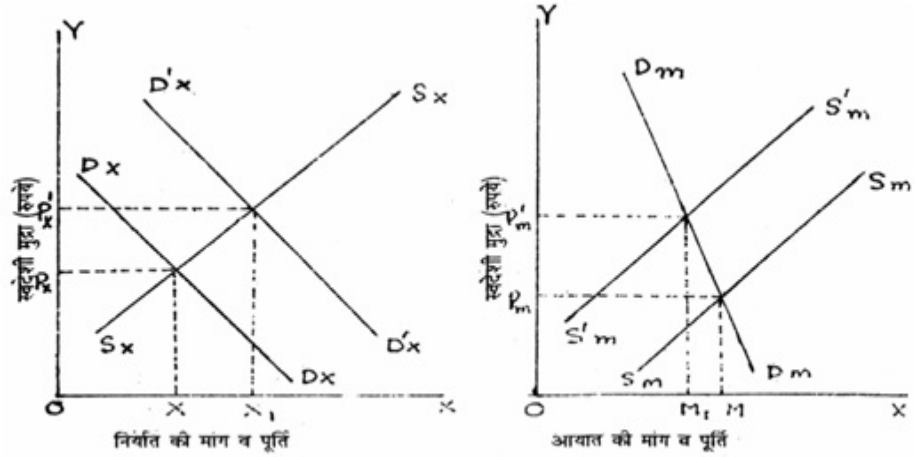

स्थानीय मुद्रा के सन्दर्भ मे अवमूल्यन का निर्यात पर प्रभाव

स्थानीय मुद्रा के सन्दर्भ मे अवमूल्यन का आयात पर प्रभाव

सभी चित्रों में D_x व S_x निर्यात की मांग व पूर्ति के वक्र हैं। तथा D_m व S_m आयातों की मांग व पूर्ति के वक्र हैं।

रेखाचित्र 24.1 में दर्शाया गया है कि अवमूल्यन के कारण निर्यातकर्ताओं को स्थानीय मुद्रा (रुपया) के रूप में निर्यातित वस्तुओं का अधिक मूल्य प्राप्त होगा। हमारे निर्यातों की मांग बढ़ेगी अत: निर्यात योग्य वस्तुओं का मांग वक्र दांयी ओर विवर्तित होकर D_x से D_x^1 हो जाएगा। इसके परिणामस्वरूप निर्यात OX से बढ़कर OX_1 हो जायेंगे। इस चित्र मे निर्यात की मांग लोच इकाई से अधिक मानी गई है। $(n_{dn} > 1)$ इसके परिणामस्वरूप निर्यातकर्ताओं को पहले की अपेक्षा

अधिक आय प्राप्त होगी अर्थात $OP_x \cdot OX_1 > OP_x \cdot OX$ इससे भुगतान संतुलन पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

रेखाचित्र 24.2 में स्थानीय मुद्रा के सन्दर्भ में अवमूल्यन का आयातों पर प्रभाव दर्शाया गया है। अवमूल्यन के कारण स्थानीय व्यापारियों के लिये आयात का पूर्ति वक्र S_m से परिवर्तित होकर S_m^1 हो जाएगा और आयात की मात्रा OM से घटकर OM_1 जाएगी। अवमूल्यन का आयातों की मांग वक्र पर प्रभाव नहीं होगा परन्तु पूर्ति वक्र के S_m से घटकर S_m^1 हो जाने के कारण कीमतें P_m से बढ़कर P_m^1 हो जाएगी। आयातों की मांग लोच इस वक्र में इकाई से कम $(n_{dm} < 1)$ होने के कारण कीमत वृद्धि से आयातों में अधिक कटौती होगी और रुपयों के रूप में किया जाने वाला भुगतान कम हो जाएगा। गणितीय दृष्टि से $OP_m^1 OM_1 < OP_m OM$ अत: अवमूल्यन से भुगतान शेष अनुकूल होगा।

विदेशी मुद्रा के सन्दर्भ में अवमूल्यन के प्रभाव को रेखाचित्र 24.3 व 24.4 में दर्शाया गया है।

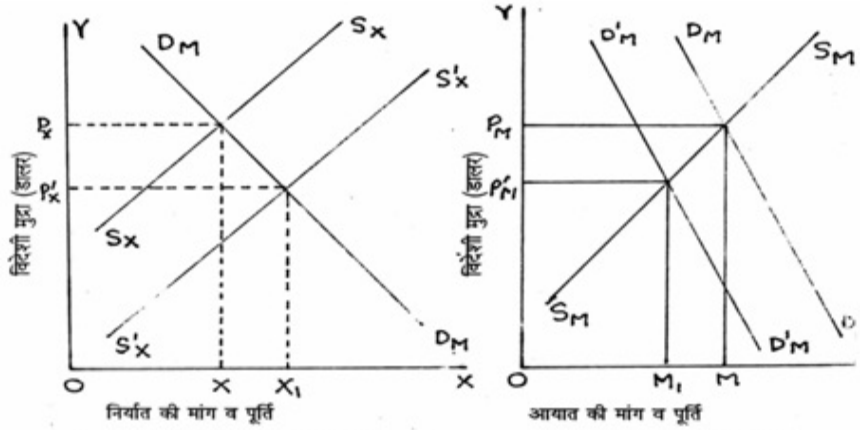

विदेशी मुद्रा के सन्दर्भ में अवमूल्यन का निर्यात पर प्रभाव

आयात की मांग व पूर्ति

विदेशी मुद्रा के सन्दर्भ में अवमूल्यन का आयात पर प्रभाव

रेखाचित्र 24.3 में अवमूल्यन के कारण निर्यात का पूर्ति वक्र दांयी ओर विवर्तित हो जाता है। इससे निर्यातों की मात्रा में वृद्धि होगी।

यदि $OP_x^1 \cdot OX_1 > OP_x OX$ है तो अवमूल्यन का अनुकूल प्रभाव होगा।

रेखाचित्र 24.4 में विदेशी मुद्रा के सन्दर्भ में आयात पर अवमूल्यन का प्रभाव दर्शाया गया है। अवमूल्यन के पश्चात् आयात का मांग वक्र बांयी ओर विवर्तित हो जाता है अर्थात आयातों में कमी होती है।

यदि $OP_m^1 \cdot OM_1 < OP_m \cdot OX$ हो तो अवमूल्यन से भुगतान शेष पर अनुकूल प्रभाव होगा।

4. **विनिमय नियंत्रण -** विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी मुद्रा के समस्त लेन-देन पर सरकार का नियंत्रण रहता है। प्रो. हैबरलर के अनुसार, "विनिमय नियंत्रण वह सरकारी नियमन है जो विदेशी विनिमय बाजार में आर्थिक शक्तियों को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य नहीं करने देता।" जब किसी देश का भुगतान शेष लम्बे समय तक प्रतिकूल हो तो सरकार विदेशी विनिमय का समस्त लेन देन अपने हाथ में ले लेती है। केवल अधिकृत व्यापारियों का ही सीमित मात्रा में विदेशी मुद्रा के लेन-देन की अनुमति देती है। आयात की जाने वाली वस्तुओं पर भी नियंत्रण रखा जाता है। यह भुगतान शेष को ठीक करने की कठोर व प्रभावशाली विधि है। इसमें आयात को देश में उपलब्ध विदेशी विनिमय के अनुसार समायोजित कर लिया जाता है। इस विधि से भुगतान शेष तो अनुकूल होने लगता है पर इसके मूलभूत कारणों को दूर करने की दिशा में यह विधि ध्यान नहीं देती अत: जैसे ही सरकार नियंत्रण में ढील देती है फिर से भुगतान शेष प्रतिकूल होने लगता है।

24.7.2 गैर मौद्रिक उपाय

1. **प्रशुल्क -** इस विधि के अन्तर्गत आयातों को नियंत्रित करने के लिये आयात की जाने वाली वस्तुओं पर ऊंची मात्रा में प्रशुल्क लगा दिया जाता है। इससे उनकी कीमतों में वृद्धि हो जाती है। इससे कीमत वृद्धि के कारण एक ओर आयातों की मांग की कमी होतीं है व घरेलू उद्योगों

को संरक्षण मिलने से कई बार वे निर्यात बढ़ाने में सक्षम भी हो जाते हैं। इससे प्रतिकूल भुगतान संतुलन ठीक होता है।

2. **अभ्यंश (Import quota) :-** इस विधि के अन्तर्गत सरकार आयात की जाने वाली वस्तु की आयात की अधिकतम मात्रा निर्धारित कर देती है। अथवा इससे अधिक आयात करने पर आयातों पर बहुत ऊंची दर से प्रशुल्क लगाए जा सकते है। इससे आयातों में कमी होती है और भुगतान शेष ठीक होता है।
3. प्रतिकूल भुगतान शेष में सुधार के लिये विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा निर्यातों को प्रोत्साहन देने के लिये कई कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इन उपायों में निर्यात करों को हटाना, निर्यातक उद्योगों को लाइसेन्स से छूट। विशेष रियायतें, उत्पादन करों में छूट। आर्थिक सहायता, कच्चे माल के आयात पर करों की छूट आदि शामिल है। सरकार मेले, प्रदर्शनी आदि द्वारा भी विदेशी बाजारों में अपने माल को विदेशों में लोकप्रिय बनाने का प्रयास करती है।

24.8 सारांश

एक देश का भुगतान संतुलन उसके द्वारा किसी अन्य देश के साथ एक वर्ष की अवधि में किये गये समस्त लेन-देन का क्रमबद्ध सांख्यिकीय अभिलेख है।

भुगतान संतुलन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान एक देश की अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति व लेन-देनों की जानकारी देना है जिससे हमें सुचारू मौद्रिक राजकोषीय व अन्य समष्टिगत आर्थिक नीतियां निर्धारित करने में मदद मिल सके।

भुगतान संतुलन की जानकारी हमें भुगतान संतुलन खाते से मिलती है जिसमें दांयी ओर भुगतान व बांयी ओर प्राप्तियां दर्शाई जाती हैं। दोहरी प्रविष्टि प्रणाली से निर्मित होने के कारण भुगतान संतुलन के दोनों पक्ष हमेशा संतुलन में दर्शाए जाते हैं। भुगतान संतुलन खाते को तीन

भागों, चालू खाता, पूंजीगत खाता व अधिकारिक समायोजक खाता में बांटा जाता है।

चालू खाते में वस्तुओं का आयात-निर्यात, सेवाओं का आयात-निर्यात व एक तरफा प्राप्तियां व भुगतान दर्शाए जाते हैं। पूंजीगत खाते में विदेशियों द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष, अल्पकालीन व दीर्घकालीन विनियोग व अन्य पूंजीगत लेन-देन दर्शाए जाते हैं। इन दोनों खातों की मदों को स्वायत्त प्राप्तियां व भुगतान कहा जाता है। इनमें असंतुलन होने पर इन्हें अधिकारिक समायोजन खाते के लेन देनों द्वारा ठीक किया जाता है।

भुगतान संतुलन में हम एक देश के समस्त लेन देनों को शामिल करते हैं परन्तु व्यापार संतुलन का सम्बन्ध केवल दृश्य मदों के आयात-निर्यात से होता है।

खातों की दृष्टि से भुगतान संतुलन सदैव संतुलन में रहता है परन्तु स्वायत्त प्राप्तियों व भुगतान में अन्तर होने पर वास्तव में भुगतान संतुलन असंतुलित हो सकता है। इसके अनेक कारण हैं। यह असंतुलन कई प्रकार का होता है जिसे विभिन्न मौद्रिक व गैर मौद्रिक उपायों द्वारा ठीक किया जा सकतीं है।

24.9 शब्दावली

(1) भुगतान संतुलन :- एक देश का दूसरे देश के साथ एक वर्ष की अवधि में किये गये सभी आर्थिक लेन-देनों का क्रमबद्ध विवरण।

(2) प्राप्तियां (Credit) :- विदेशियों से विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओं के बदले में प्राप्त किया जाने वाला भुगतान।

(3) भुगतान (Debit) :- विदेशियों को विभिन्न कार्यों के दौरान दिया जाने वाला भुगतान।

(4) चालू खाता :- भुगतान संतुलन खाते का वह भाग जिसमें वस्तुओं व सेवाओं का व्यापार व एक तरफा लेन-देन शामिल होते हैं।

(5) सेवा खाता :- चालू खाते की वह मद जिसमें, यात्रा, परिवहन, पर्यटन, विदेशों में विनियोग से प्राप्त आय शामिल है।

(6) एकतरफा लेन-देन :- विदेशी नागरिकों व सरकारों से लेन-देन वाले उपहार आदि।

(7) पूंजीगत खाता :- एक देश की अन्य देश में परिसम्पत्तियों में परिवर्तन दर्शाने वाली मदें दर्शाने वाला खाता।

(8) अधिकारिक समायोजक खाता :- एक देश के अधिकारिक सुरक्षित कोषों में वर्ष के दौरान परिवर्तन दर्शाने वाला खाता।

(9) दोहरी प्रविष्टि :- खातों को तैयार करने की वह विधि जिसमें प्रत्येक प्रविष्टि खातों में दो बार की जाती है। एक बार भुगतानों की तरफ। दूसरी बार प्राप्तियों की तरफ।

(10) भुगतान संतुलन में घाटा :- स्वायत्त प्राप्तियों का मूल्य यदि स्वायत्त भुगतानों से कम हो तो भुगतान संतुलन में घाटा होता है।

(11) भुगतान संतुलन में अतिरेक :- यदि स्वायत्त प्राप्तियों का मूल्य स्वायत्त भुगतानों से अधिक हो तो भुगतान संतुलन में अतिरेक होगा।

24.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Dominick Salvatore – International Economics

Charles P. Kindleberger – International Economics

BO. Sodersten – International Economics

एम.सी. वैश्य – अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र।

अग्रवाल व बरला – अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र।

एम.एल. झिंगन – अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र।

24.11 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) भुगतान संतुलन का क्या अर्थ है? "'भुगतान शेष सदैव संतुलन में रहता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए (संकेत)

संकेत - अपने उत्तर के प्रथम भाग में भुगतान संतुलन का अर्थ व परिभाषा बताऐं। संक्षेप में व्यापार सन्तुलन व भुगतान संतुलन का अर्थ भी बताइये।

उत्तर के द्वितीय भाग में भुगतान संतुलन खाते की जानकारी देते हुए लेनदारी व देनदारी पक्ष की मदों को समझाइये व बताइये कि दोहरी प्रविष्ठि विधि के कारण इसके दोनों पक्षों को समान दर्शाया जाता है परन्तु चालू खाते व पूंजीगत खाते की प्राप्तियां यदि भुगतानों से कम हैं तो भुगतान संतुलन प्रतिकूल होगा व समायोजक खाते की मदों द्वारा समायोजन करके इसके दोनों पक्षों को बराबर किया जाता है।

(2) भुगतान शेष में असंतुलन के क्या कारण है? प्रतिकूल भुगतान संतुलन को किस प्रकार ठीक किया जा सकता है?

उत्तर संकेत - पहले भुगतान शेष में असंतुलन को स्पष्ट कीजिये। फिर इसके कारणों को स्पष्ट कीजिये फिर विस्तार से इसको ठीक करने के मौद्रिक व अमौद्रिक उपाय बताइये।

(3) अवमूल्यन द्वारा प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करना कहां तक संभव है? इस सन्दर्भ में मार्शल-लर्नर शर्त की व्याख्या कीजिये।

उत्तर संकेत - अवमूल्यन का अर्थ बताते हुए समझाए की स्वदेशी व विदेशी मुद्रा के सन्दर्भ में इसका आयातों व निर्यातों पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसमें रेखाचित्रों का समुचित प्रयोग करें। साथ ही बताइए कि मार्शल व लर्नर ने बताया कि आयातों व निर्यातों की मांग व पूर्ति की लोचों का अवमूल्यन के प्रभावों से क्या सम्बन्ध है।

(4) विकासशील देशों का भुगतान संतुलन विपक्ष में क्यों रहता है। उसमें सुधार के लिये आप क्या सुझाव देंगे?

उत्तर संकेत - विकासशील देशों की स्थिति की बहुत संक्षेप में जानकारी दीजिए। फिर इन देशों में भुगतान शेष विपक्ष में रहने के विभिन्न कारण जैसे -

(1) इसके उत्पादन में प्राथमिक वस्तुओं की अधिकता है जो मौसमी उतार-चढ़ाव से प्रभावित रहती है तथा इनकी कीमतें तैयार माल की अपेक्षा कम बढ़ती हैं।

(2) विकास की प्रक्रिया में पूंजीगत साज-सामान मशीन आदि का अधिक आयात।

(3) विदेशी ऋणों व व्याज का भार।

(4) इनके उद्योग विश्व बाजार में प्रतिस्पर्द्धा में टिक नहीं पाते, इसके निर्यातों की मांग की नीची आय व कीमत लोच का होना आदि स्पष्ट कीजिए।

इसके सुधार के लिये

(1) अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में सुधार।
(2) स्थिर विनिमय दरें।
(3) पूंजी के पलायन पर रोक।
(4) इन देशों में विदेशी विनियोग में वृद्धि।
(5) जनसंख्या नियंत्रण।
(6) सुरक्षित भंडारों का निर्माण।
(7) बचत व विनियोग को प्रोत्साहन।
(8) निर्यातों में विविधता।
(9) नये बाजारों की खोज आदि सुझाव विस्तार से दीजिए।

(5) भुगतान संतुलन से आप क्या समझते है? व्यापार संतुलन व भुगतान संतुलन में अन्तर स्पष्ट करें।

(6) किसी देश के प्रतिकूल भुगतान संतुलन से आप क्या समझते है? इसे किस प्रकार ठीक किया जा सकता है?

(7) "भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है", यदि ऐसा है तो फिर हम किसी देश के भुगतान संतुलन में अतिरेक या घाटे की चर्चा क्यों करते है?

(8) निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए -

(1) भुगतान संतुलन खाता।

(2) व्यापार संतुलन व भुगतान संतुलन।

(3) मार्शल-लर्नर शर्त।

इकाई 25

भुगतान सन्तुलन में असाम्यता
Balance of Payments Disequilibrium

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के प्रकार

25.2.1 चक्रीय असाम्यता

25.2.2 संरचनात्मक असाम्यता

25.2.3 दीर्घकालीन असाम्यता

21.2.4 अस्थायी असाम्यता

21.2.5 स्थायी (आधार भूत) असाम्यता

21.3 भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के कारण

21.3.1 व्यापार चक्रों का अन्तर्राष्ट्रीय प्रकार

21.3.2 मौद्रिक असन्तुलन

21.3.3 तकनीकी परिवर्तन

21.3.4 पूंजीगत हानियां

25.3.5 दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह में परिवर्तन

25.3.6 संस्थागत परिवर्तन

25.3.7 घटकस्तर पर संरचना सम्बन्धी विकृतियां

25.3.8 विभेदात्मक सरकारी नीति

25.3.9 व्यापार शर्तें

25.3.10 मुद्राप्रसार

25.3.11 देश का आर्थिक विकास

25.4 भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने के उपाय

25.4.1 मौद्रिक उपाय

25.4.2 गैर मौद्रिक उपाय

25.4.3 अन्य उपाय

25.5 भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने का मौद्रिक उपाय

25.5.1 अवमूल्यन नीति

25.5.2 प्रशुल्क नीति

25.5.3 पूंजी की गतिशीलता

25.5.4 विनिमय मूल्य ह्रास

25.5.5 विनिमय अवमूल्यन

25.5.6 मुद्रा संकुचन

25.5.7 ब्याज दर में परिवर्तन

25.6 भुगतान सन्तुलन की असाम्यता का दूर करने का गैर मौद्रिक उपाय

25.6.1 आयात प्रतिबंध

25.6.2 निर्यात संवर्द्धन

25.6.3 संरक्षण

25.6.4 विनिमय नियंत्रण

25.6.5 विदेशी पूंजी का विनियोग

25.6.6 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

25.7 भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने के अन्य उपाय

25.7.1 द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समझौता

25.7.2 हस्तान्तरित समझौता

25.7.3 प्राथमिकता समझौता

25.7.4 राज्य व्यापार

25.8 शब्दावली

25.9 कुछ उपयोगी पुस्तके

25.10 निबन्धात्मक प्रश्न

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप -

- भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को समझ सकेगें।
- भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के प्रकारों को समझ सकेगें।
- भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के कारणों को समझ सकेगें।
- भुगतान सन्तुलन में उत्पन्न असाम्यता को दूर करने के उपायों को समझ सकेगें।

25.1 प्रस्तावना

भुगतान सन्तुलन किसी दिए हुए समय में सम्पूर्ण विश्व के साथ उसके लेन देन का लेखा जोखा है । पी. टी. एल्सवर्थ (P-T-Ellsworth) के अनुसार – "भुगतान सन्तुलन एक देश के निवासियों और बाकि विश्व के मध्य किए गए समस्त लेन देनों का लिखित विविरण है। यह किसी दिए हुए समय साधारणतया एक वर्ष के लिए होता है।"

आपने इकाई 24 में अध्ययन किया होगा कि भुगतान सन्तुलन सदैव सन्तुलित होता है। किसी देश के भुगतान सन्तुलन में भुगतान (Payments)एवं प्रातियां (Receipts) सदैव बराबर होते है। इस प्रकार भुगतान सन्तुलन की साम्यावस्था को स्पष्ट करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों को निम्न दो वर्गों में विभाजित किया जाता है:-

(i) स्वायत भुगतान (Autonomous payments) और

(ii) अनुग्राही भुगतान (Accommodating payments)

'स्वायत भुगतान' से अभिप्राय चालू लेन देन के कारण भुगतान स्वत: होने से है। अनुग्राही भुगतान से अभिप्राय: जब स्वायत भुगतानों द्वारा भुगतान सन्तुलन के दोनों पक्षों (भुगतान एवं प्राप्तियों) का अन्तर पूरा नहीं होता है तो उसको पूरा करने के लिए किया जाने वाला भुगतान से है। स्वर्ण अथवा विदेशी विनिमय कोष का उपयोग अनुग्राही - भुगतानों के लिए किया जा सकता है। परन्तु यदि यह कोष अपर्याप्त हो तो विदेशी ऋणों का सहारा लिया जाता है। यदि ऋण लेना भी संभव नही हो तो ऐसे द्विपक्षीय व्यापार समझौता किए जा सकते है, जिनके द्वारा लेनदार देश से आवश्यक मूल्य के बराबर माल खरीद सकता है। इस प्रकार भुगतान सन्तुलन की साम्यावस्था वह स्थिति है जिसमें किसी देश के स्वायत भुगतानों द्वारा उसकी अन्तर्राष्ट्रीय प्राप्तियां एवं देनदारियां सन्तुलित हो जाती है और अनुग्राही भुगतानों का सहारा नहीं लेना पड़ता है। व्यावहारिक दृष्टि से यह अवगत होता है कि भुगतान सन्तुलन की निम्न स्थितियां, होती है :-

(i) $B = R = P$ (प्रथम स्थिति)

(ii) $B = R > P$ (द्वितीय स्थिति)

(iii) $B = R < P$ (तृतीय स्थिति)

यहां B का अर्थ भुगतान सन्तुलन से है, R का अर्थ विदेशों से प्राप्त आय से है, P का अर्थ विदेशों को किया जाने वाला भुगतान से हैं।

यदि भुगतान सन्तुलन साम्यावस्था में है तो भुगतान सन्तुलन "शून्य" (अर्थात $B < 0$) होगा। यदि भुगतान सन्तुलन धनात्मक अथवा अनुकूल (Positive) है तो भुगतान सन्तुलन 'शून्य से अधिक' (अर्थात $B > 0$) होगा। इसके विपरीत यदि भुगतान सन्तुलन ऋणात्मक अथवा प्रतिकूल (negative) है तो भुगतान सन्तुलन 'शून्य से कम' (अर्थात $B < 0$) होगा। अंतिम प्रकार की स्थिति को 'भुगतान सन्तुलन में असाम्यता' अथवा 'असन्तुलन' की संज्ञा दी जाती है।

25.2 भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के प्रकार (Kinds of disequilibruim in balance of payment)

भुगतान संतुलन में असाम्यता अनेक कारणों से उत्पन्न होता है। यह असाम्यता अनेक परस्पर सम्बधित तत्वों का परिणाम होती है जिन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। अर्थव्यवस्था में भुगतान सन्तुलन में 'असाम्यता' निम्न प्रकार की पायी जाती है:-

(1) चक्रीय असाम्यता

(2) संरचनात्मक असाम्यता

(3) दीर्घकालीन असाम्यता

(4) अस्थायी असाम्यता

(5) स्थायी अथवा आधार भूत असाम्यता

उपर्युक्त भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के प्रकारों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :-

25.2.1 चक्रीय असाम्यता (cyclical disequilibrium)

व्यापार चक्रों के कारण भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जाती है इसको "चक्रीय असाम्यता" कहा जाता है। यह ज्ञातव्य है कि किसी भी देश मैं आय एवं उत्पादन की वृद्धि एक सी नहीं रहती है। आय में उच्चावचन दिखायी पड़ते है। तेजीकाल में आय में वृद्धि तथा मंदीकाल में

आय में कमी होती है जिससे आयात प्रभावित होते हैं। आयात पर होने वाले प्रभाव प्रवृति पर निर्भर करते हैं। निर्यात पर चक्रीय परिवर्तन का प्रभाव अधिक नहीं पड़ता क्योंकि निर्यात मुख्यतया विदेशी मांग पर निर्भर करते है। X देश में होने वाले व्यापार चक्र Y देश की व्यापारिक स्थिति को प्रभावित करते है। यह प्रभाव 'निर्यात' पर होता है। यदि X देश में तेजीकाल की स्थिति है तो X देश के आयात अर्थात Y देश के निर्यातों में वृद्धि होती है। इसके विपरीत यदि Y देश में मंदीकाल की स्थिति है तो Y देश के आयात अर्थात X देश के निर्यातों में कमी होती है। X देश के निर्यात में वृद्धि और कमी दूसरे देशों की – 'आयात प्रवृति' पर निर्भर करती है। चक्रीय असाम्यता अथवा असन्तुलन को रेखाचित्र 25.1 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

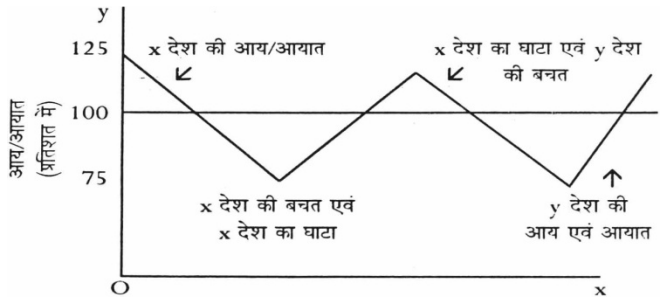

रेखा चित्र 25.1 में X देश की आय में होने वाले चक्रीय परिवर्तन प्रदर्शित किए है। यहाँ Y देश की आय को स्थिर माना है। तथा आय की स्थिरता के लिए Y देश में आयातित मांग की आय लोच भी स्थिर मान ली गयी है। चक्रीय असाम्यता को स्पष्ट करने के लिए यहां दो ही देश के लिए है। अत: X देश का आयात Y देश के निर्यात के बराबर होगा और Y देश का आयात X देश के निर्यात के बराबर होगें। मानलिजिए X देश के तेजीकाल की स्थिति पैदा हो जाती है तो X देश के आयातों में वृद्धि हो जायेगी अर्थात Y देश में निर्यात में वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि X देश में मंदीकाल की स्थिति पैदा हो जाती है तो Y देश में आयात भी कम होगें। दूसरी ओर Y देश में आय का स्तर स्थिर होने के कारण Y देश में आयात

(अथवा X देश के निर्यात) भी स्थिर बने रहेगें। इसका परिणाम यह होगा कि मंदीकाल में X देश में निर्यात आयात से अधिक होगें, जबकि तेजीकाल में आयात का अधिक्य (Excess) होगा। अत: X देश में मंदीकाल में अनुकूल भुगतान सन्तुलन और तेजीकाल में प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन होगा। उसके विपरीत Y देश में X देश की मंदीकाल के समय प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन और X देश में तेजीकाल के समय अनुकूल भुगतान सन्तुलन होगा। इस वर्णन को निम्न प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है :-

(i) X देश में मंदीकाल अर्थात्

$$Xa > Ma = Mb > Xb$$

(ii) X देश में तेजीकाल अर्थात

$$Xa < Ma = Xb > Mb$$

यहां Xa से अभिप्राय: X देश के निर्यात से है,

Ma से अभिप्राय: X देश के आयात से है,

Xb से अभिप्राय: Y देश के निर्यात से है,

Mb से अभिप्राय: Y देश के आयात से है।

दोनों देशों के आयातों की आयलोच को देखकर भुगतानों की 'चक्रीय असाम्यता' मालूम की जा सकती है। यदि अन्य बातें यथा स्थिर रहे तो भुगतान संतुलन पर निम्न प्रभाव होगें :-

(अ) आयातों की मांग की आय लोच X देश में Y देश की तुलना में अधिक है तेजी काल में X देश में भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जावेगा।

(ब) यदि आयातों की आय लोच Y देश में प्र देश की तुलना में अधिक है तो X देश के तेजीकाल में Y देश में भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल होने की संभवना होगी।

इसी प्रकार विभिन्न देशों में मांग की कीमत लोच में अन्तर होने से भी 'चक्रीय असाम्यता' जन्म लेती हे। सामान्यतया तेजीकाल में कीमतें बढ़ती है और मंदीकाल में ये घटती हैं। यदि अन्य बातें यथा स्थिर रहे तो भुगतान सन्तुलन पर निम्न प्रभाव होगें :-

(अ) X देश में आयातों के लिए मांग की कीमत लोच Y देश की तुलना में अधिक है तो X देश में तेजीकाल होने पर X देश का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जावेगा।

(ब) X देश में आयातों के लिए मांग की कीमत लोच Y देश की तुलना में अधिक है तो X देश में मंदीकाल होने पर X देश का भुगतान सन्तुलन अनुकूल हो जायेगा।

व्यवहार में यह संभव है कि X देश और Y देश में आय की प्रवृतियां समान रहे परन्तु इनमें आयातों की आयलोच में भिन्नता होने के कारण भुगतान सन्तुलन में 'असाम्यता की स्थिति' उत्पन्न हो सकती है। तुलनात्मक दृष्टि से आयातों की आयलोच जितनी अधिक होगी देश के आयातों में उतनी ही तीव्रता से परिवर्तन होगे ओर मंदीकाल में निर्यातों का अधिक्य अथवा तेजीकाल में आयातों का अधिक्य उतना ही अधिक होने की संभावना होगी।

25.2.2 संरचनात्मक असाम्यता (Structural disequilibrium)

किसी अर्थव्यवस्था में भुगतान सन्तुलन में असाम्यता निर्यात अथवा आयात की मांग अथवा पूर्ति में मूलभूत परिवर्तन अथवा साधनों की कीमतों के कारण उत्पन्न होती है तो इस प्रकार की असाम्यता को "संरचनात्मक असाम्यता" कहते है। यह निम्न दो प्रकार की होती है :-

(i) अल्पकालीन संरचनात्मक असाम्यता

(ii) दीर्घकालीन संरचनात्मक असाम्यता

अल्पकालीन संरचनात्क असाम्यता की स्थिति निर्यात अथवा आयात की मांग अथवा पूर्ति में मूलभूत परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होती

है। उदाहरण के तौर पर मान लिजिए X देश सूती वस्त्र का निर्यात करता है और विदेशों में उसकी मांग कम हो जाती है जिसके कारण X देश से सूती वस्त्र का निर्यात कम हो जावेगा। फलस्वरूप X देश में सूती वस्त्र उद्योग में कार्यरत साधनों का एक भाग उन वस्तुओं उत्पादन के लिए हस्तांतरित कर दिया जावेगा जिनकी विदेशों में मांग स्थिर है। ऐसा करने पर भी उन वस्तुओं का निर्यात नहीं बढ़े (जब सूती वस्त्र उद्योग का निर्यात कम हो गया हो और आयातों में भी कोई कमी नहीं हो पावे) तो X देश का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जावेगा। इस प्रकार की स्थिति के कारण उत्पन्न असाम्यता के अल्पकालीन संरचनात्मक असाम्यता की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार की असाम्यता निम्नलिखित कारणों से भी उत्पन्न हो सकती है :-

(अ) वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन (जैसे - कपास की फसल खराब हो जाना) अथवा;

(ब) औद्योगिक संघर्ष (जैसे - हड़ताल, तालाबंदी हो जाना) अथवा;

(स) देश में राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण अथवा

(द) राष्ट्रीय आय में परिवर्तन अथवा;

(य) उपभोग प्रवृति में परिवर्तन।

दीर्घकालीन संरचनात्मक असाम्यता साधनों की कीमतों के कारण उत्पन्न होती है। यदि किसी देश में उत्पति के विभिन्न साधनों की कीमत उनकी उपलब्ध के अनुसार निर्धारित नहीं होती है जिससे अर्थव्यवस्था तथा भुगतान की स्थिति में संरचनात्मक असाम्यता उत्पन्न हो जावेगी। इस प्रकार की उत्पन्न असाम्यता को 'दीर्घकालीन संरचनात्मक असाम्यता' की संज्ञा दी जाती है। सी. पी. किंडलवर्गर (C.P. Kindleberger) ने इसको निम्न दो अर्थो में स्पष्ट किया है :-

(अ) विस्तृत अर्थ में यह वह स्थिति है जिसमें उत्पादन की संरचना और स्तर उससे भिन्न है जो साधनों की कीमत उनकी उपलब्धता के आधार पर निर्धारित होते है।

(ब) संकुचित अर्थ में यह वह स्थिति है जिसमें सरकार द्वारा किए गए उपायों (जैसे - बेकारी, गरीबी समस्या का निदान) के कारण तेजीकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को जन्म मिलता है।

25.2.3 दीर्घकालीन असाम्यता (Secular Disequilibrium)

जब किसी देश का आर्थिक विकास एक अवस्था (stage) से दूसरी अवस्था की ओर अग्रसर होता है तो इससे अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार की स्थिति के कारण उत्पन्न असाम्यता को 'दीर्घकाल्नीन असाम्यता' की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार की असाम्यता निम्नलिखित घटकों के कारण उत्पन्न होती है :-

(अ) पूंजी निर्माण,

(ब) जनसंख्या में वृद्धि,

(स) उत्पादन प्रणाली में सुधार,

(द) बाजार का विस्तार,

(य) व्यावसायिक संगठन में सुधार,

(र) संसाधनों में परिवर्तन; और

(ल) औद्योगिक परिवर्तन

25.2.4 अस्थायी असाम्यता (Temporary disequilibrium)

किसी अर्थव्यवस्था में अल्पकालीन कारणों जैसे - अकाल, बाढ़ अथवा युद्ध से असाम्यता की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसी असाम्यता को 'अस्थायी असाम्यता' कहा जात है। अर्थव्यवस्था में अल्पकालिक

स्थितियां सदैव विद्यमान नहीं रहती है। अत: ऐसी असाम्यता को 'अल्पकालीन असाम्यता' भी कहते है। इस प्रकार की स्थिति को निम्न लिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया हैं।

मान लिजिए X देश के किसी भाग में अकाल के कारण फसल नष्ट हो जाती है। वहां खाद्यान्न की कमी को करने के लिए बहुत अधिक आयात करना पडेगा परन्तु यदि X देश के निर्यात यथा स्थिर रहें तो X देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जावेगी। इसके विपरीत यदि X देश सूती वस्त्र को बहुत अधिक मात्रा में निर्यात करता है। वहां Y देश में अल्पकालीक स्थिति उत्पन्न हो जाने से (जैसे- युद्ध आरंभ होगा) X देश का निर्यात रूक जाता है तो सूती वस्त्र मिलों में बिना बिका हुआ स्टॉक जमा हो जावेगा। युद्ध के उपरान्त यदि X देश सूती वस्त्र की निर्यात कीमतों में थोड़ी सी कमी कर दे तो निर्यात बहुत मात्रा में बढ़ जावेगा। यदि X देश में अन्य बातें समान रहे तो इसका भुगतान सन्तुलन अनुकूल हो जावेगा।

25.2.5 स्थायी (आधार भूत) असाम्यता (Fundamental disequilibrium)

जब किसी देश को भुगतान सन्तुलन में असाम्यता दीर्घकाल तक चलती रहती है और इस बात की भी कोई आशा नहीं हो कि असाम्यता के लिए उत्तरदायी घटकों में कोई मूलभूत परिवर्तन भविष्य में हो जावेगा तो ऐसी अवस्था को "'स्थायी असाम्यता" कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर लागतों में वृद्धि के फलस्वरूप देश में वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाने के बाद उनमें कमी होने की साधारणतया कोई संभावना नहीं होती और उनके कारण देश के निर्यात व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव होता रहता है। इस प्रकार की स्थिति को सुधारने के लिए मुद्रा का अवमूल्यन अथवा अधिमूल्यन का सुझाव दिया जाता है। यदि वस्तुओं की मांग अत्यधिक लोचदार है तो अवमूल्यन नीति लाभप्रद होगी। इसके विपरीत यदि वस्तुओं की मांग बेलोचदार है तो अधिमूल्यन नीति लाभप्रद होगी।

25.3 भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के कारण (Causes of disequilibrium in balance of payment)

हमने इस इकाई के खण्ड 25.2 में भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के प्रकारों के बारे में अध्ययन किया। वैसे तो असाम्यता के प्रकारों से भी भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के कारणों का आभास होता है, फिर भी इसके प्रमुख कारणों का वर्णन यहाँ विस्तार से किया गया हैं।

25.**3.1 व्यापार चक्रों का अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार**

भुगतान सन्तुलन में असाम्यता व्यापार चक्रों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार के कारण उत्पन्न होती हैं। किसी देश के आयातों अथवा निर्यातों में परिवर्तन उस देश की राष्ट्रीय आय को प्रभावित करते हैं। विश्व के समस्त देश विदेशी व्यापार (Foreign trade) के द्वारा परस्पर जुड़े हुए है। अत: किसी देश की राष्ट्रीय आय में परिवर्तन होते है तो इस से दूसरे देश की राष्ट्रीय आय मे भी परिवर्तन होंगे। इसके फलस्वरूप स्वत: ही भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के तौर पर मान लीजिए A देश की राष्ट्रीय आय में कमी होगी जिससे इसके आयातों में भी कमी हो जावेगी। इस प्रकार A देश के साथ व्यापार करने वाले देशों के निर्यातों में कमी हो जावेगी। विदेशी व्यापार गुणक के प्रभावों से इन दोनों देशों की राष्ट्रीय आयों पर मंदीकारी प्रभाव होंगे। इसके फलस्वरूप इन देशों के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जावेगी। दूसरे शब्दों में किसी देश की सीमांत आयात प्रवृति जितनी ही अधिक होगी अर्थात् जो देश विदेशी व्यापार जितना अधिक निर्भर होगा। उस देश में उतना ही अधिक विदेशी प्रतिक्रियाएं होगी। विदेशी प्रतिक्रियाओं का चित्रण रेखाचित्र 25.2 में प्रदर्शित है जो यह बताता है कि विभिन्न देशों की राष्ट्रीय आय किस प्रकार विदेशी व्यापार द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

रेखा चित्र 25.2 में OX अक्ष पर राष्ट्रीय आय तथा OY अक्ष पर बचत, विनियोग, आयात और निर्यात मापा गया हैं। Id वक्र देश के विनियोग

तथा Id' वक्र देश के विनियोग में परिवर्तन को बताता है। विनियोग और निर्यात के संयुक्त प्रभाव को $Id + X$ वक्र द्वारा तथा विनियोग निर्यात के संयुक्त प्रभाव में परिवर्तन को Id'+X वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। देश में विनियोग में वृद्धि होने से Id वक्र बढकर Id' हो जाता है। इसके फलस्वरूप $Id + X$ वक्र भी बढ़कर Id'+X हो जाता है जिससे राष्ट्रीय आय 0Y0 से बढ़कर 0Y1 हो जाती है। इस

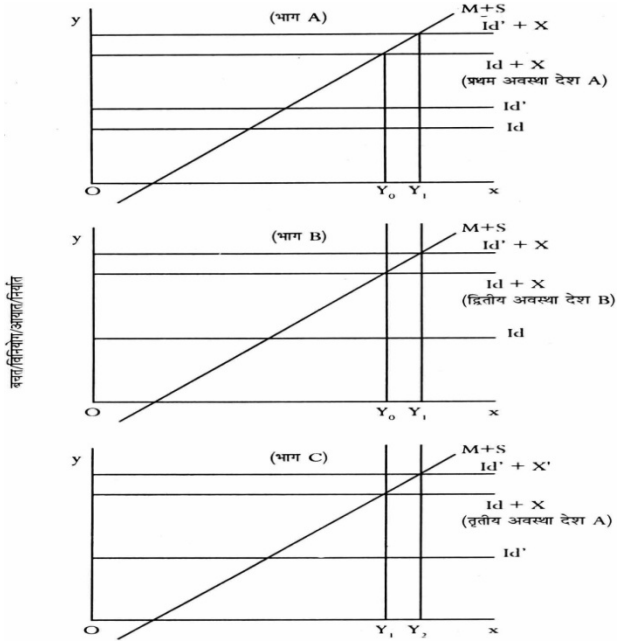

प्रकार A देश की राष्ट्रीय आय में जैसे-जैसे वृद्धि होती है वैसे-वैसे आयातों के लिए मांग भी बढ़ जाती है। A देश के साथ व्यापार करने वाले B देश के लिए इसका अर्थ उनके निर्यातों में वृद्धि होना है। रेखाचित्र 25.2 में B देश के निर्यात वक्र Id से बढकर Id'+X हो जाता है जिसके फलस्वरूप B देश की राष्ट्रीय आय OY से बढ़कर OY1 हो जाती है।

B देश की राष्ट्रीय आय में जैसे-जैसे वृद्धि होती है वैसे-वैसे B देश की आयात मांग भी बढ़ जाती है। इसके परिणाम स्वरूप A देश में भी प्रतिक्रिया होती है तथा A देश के निर्यातों के लिए मांग में वृद्धि हो जाती है। इस स्थिति का चित्रण रेखाचित्र 25.2 में A देश की तृतीय अवस्था में

द्वारा किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि A देश को विनियोग निर्यात वक्र Id'+X से बढ़कर Id'+X' हो जाता है तथा राष्ट्रीय आय OY1 से और बढ़कर OY2 हो जाती है। रेखाचित्र 25.2 से यह स्पष्ट होता है कि कैसे विभिन्न व्यापारी देशों की राष्ट्रीय आय में परिवर्तन दूसरे देशों की राष्ट्र आय में परिवर्तन लाते है और भुगतान में असाम्यता उत्पन्न करते है।

25.3.2 मौद्रिक असन्तुलन,

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता का प्रमुख कारण मौद्रिक असन्तुलन है। इस प्रकार के असन्तुलन की स्थिति मौद्रिक कारणों से उत्पन्न होती है। मौद्रिक असन्तुलन की स्थिति स्थिति (Inflation) के कारण उत्पन्न होती है। स्फीति काल में अर्थव्यवस्था पर निम्न प्रभाव दिखायी देते है :-

(अ) कीमत वृद्धि होने से आयातों की मांग बढ़ जाती है। उपभोक्ता वस्तुओं के स्थान पर आयातित वस्तुओं का उपभोग करने लग जाते हैं।

(ब) कीमत वृद्धि होने से निर्यातों में भी कमी होना शुरू हो जाता है जिसके फलस्वरूप निर्यात वस्तुओं का स्टाक बढ़ने लगता है तथा इसका निर्यात करना भी कठिन जाता है। इस प्रकार स्फीति काल में मौद्रिक असन्तुलन उत्पन्न हो जाने से देश के भुगतान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि विश्व के अन्य देशों में भी स्फीति काल है तो X देश के सन्तुलन पर निम्न प्रभाव हो सकते है:-

(अ) यदि X देश में स्फीतिकाल विद्यमान है और अन्य देशों में भी स्थिति है तो X देश का भुगतान सन्तुलन 'अनुकूल' हो सकता है परन्तु X देश में अन्य देशों की स्फीति की तुलना में अधिक है तो X देश का भुगतान संतुलन 'प्रतिकूल' होगा।

(ब) यदि विश्व के अन्य देशों में अथवा शेष विश्व (rest of the world) में स्फीति X देश की तुलना में अधिक है तो X देश का भुगतान सन्तुलन 'अनुकूल' होगा।

किसी देश में मौद्रिक असन्तुलन की स्थिति विनिमय दर में असन्तुलन के कारण भी होती है। ऐसी स्थिति विशेष परिस्थिति में ही उत्पन्न होती है। मुद्रा का पुनर्मूल्यन आयतों कों प्रोत्साहित तथा निर्यातों को हतोत्साहित करने के लिए किया जाता है। तो ऐसी स्थिति में X देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जाती है।

25.3.3 तकनीकी परिवर्तन

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता तकनीकी परिवर्तनों से होती है। यदि किसी देश में तकनीकी परिवर्तन होता है तो वहां के भुगतान सन्तुलन पर निम्न प्रभाव हो सकते:-

(अ) जिन वस्तुओं के उत्पादन तकनीकी में परिवर्तन होता है उन्हें तुलनात्मक लाभ अधिक अथवा तुलनात्मक हानि कम अथवा समाप्त हो जाती है। पहली अवस्था में देश निर्यात बढ़ते है तो दूसरी अवस्था में आयात कम होते है। इस प्रकार तकनीकी परिवर्तन से देश के भुगतान सन्तुलन पर अनुकूल प्रभाव पड़ते हैं।

(ब) देश में तकनीकी परिवर्तन होने के साथ साथ यदि अन्य देशों में भी इस प्रकार के परिवर्तन होते है तो देश के भुगतान सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि ऐसी स्थिति में देश का तुलनात्मक लाभ कम अथवा सामाप्त हो जाता है। इस प्रकार भुगतान सन्तुलन में असाम्यता तकनीकी परिवर्तनों के कारण होती है।

25.3.4 पुंजीगत हानियां

युद्ध अथवा प्राकृतिक विपदाओं अथवा अन्य कारणों से भारी पूंजीगत हानियां होती है जिसके कारण देश के भुगतान सन्तुलन में संरचनात्मक असाम्यता उत्पन्न हो जाती है। पूंजीगत हानियों के कारण अर्थव्यवस्था में निम्न परिणाम दिखाई देगें :-

(अ) देश में आकस्मिक कारणों से उपभोग वस्तुएं तथा कच्चा माल में कमी हो जाती है और बिगड़ी हुई अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के लिए

पूंजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है। अत: आयात की मांग विशेषकर बढ़ जाती है।

(ब) ऐसी स्थिति में देश के निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव होते हैं जिसके परिणाम स्वरूप आयातों की मात्रा निर्यातों की मात्रा की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जाती हैं।

इस प्रकार पूंजीगत हानियां देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न करती है।

25.3.5 दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह में परिवर्तन

देश की दीर्घकालीन पूंजी की पूर्ति अथवा दिशा में परिवर्तन होने से भुगतान सन्तुलन में संरचनात्मक असाम्यता उत्पन्न हो जाती है। पूंजीगत प्रवाह की गति अचानक रुकने के कारण देश की संरचना में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप भुगतान सन्तुलन पर गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव होते है।

25.3.6 संस्थागत परिवर्तन

भुगतान सन्तुलन में संरचनात्मक असाम्यता के कुछ और भी कारण है जो आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रूप एवं संरचना के उन संस्थागत परिवर्तनों में निहित रहते है जिनमें कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों का संचालन किया जाता है। इस प्रकार की असाम्यता के अनेक उदाहरण मिल सकते है जैसे - व्यापार करने वाले देश कृत्रिम व्यापार अथवा भुगतानों के अवरोध लागू कर देते है तो संस्थागत असाम्यता जन्म लेती है। जब एक देश अपने प्रशुल्क (Tariff) को बढ़ा देता है अथवा अम्यंश (Quota) प्रणाली लागू कर देता है अथवा आयात सम्बन्धी नियंत्रणों (Import restrictions) को कठोर कर देता है तो इसके फलस्वरूप दूसरे देशों के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जाती है।

25.3.7 घटकस्तर पर संरचना सम्बन्धी विकृतियां

किसी देश में घटक स्तर पर संरचना सम्बन्धी विकृतियां हो जाने से भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जाती है। उत्पति के X साधन की कीमत में वृद्धि हो जाने से Y साधन का प्रयोग बढ़ जाता है। इसके परिणाम स्वरूप भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के तौर पर - द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इटली में श्रम साधन की कीमत बढ़ गयी थी परन्तु पूंजी दर स्थिर रहने के कारण पूंजी प्रधान तकनीकी का प्रयोग बढ़ गया। इसके परिणाम स्वरूप एक ओर देश में पूंजी की कमी आ गयी तो दूसरी ओर श्रम साधन में बेकारी बढ़ गयी। इस प्रकार इटली के भुगतान सन्तुलन में गम्भीर असंतुलन उत्पन्न हो गया।

25.3.8 विभेदात्मक सरकारी नीति

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता सरकार द्वारा विभेदात्मक नीति का प्रयोग करने से उत्पन्न होती है। उदाहरण के तौर पर X देश में आयातों की मांग बेलोचदार है और निर्यातित वस्तुओं की विदेशी मांग लोचदार है तो ऐसी स्थिति में X देश आयात कर अथवा निर्यात कर लगा देता है तो इसका X देश के भुगतान सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

25.3.9 व्यापार शर्तें

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जिस मूल्य पर वस्तुओं का आदान प्रदान होता है उसे 'व्यापार शर्तें' के नाम से जाना जाता है। व्यापार शर्तें देश के भुगतान सन्तुलन में असन्तुलन पैदा कर देती हैं। ये निम्नलिखित अवस्था में भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न करती है:-

(अ) प्रथम अवस्था यह है कि आयातित वस्तुओं की कीमत में गिरावट हो परन्तु निर्यातित वस्तुओं की कीमतों में गिरावट इससे अधिक हो,

(ब) द्वितीय अवस्था यह हैं कि आयातित वस्तुओं की कीमत स्थिर रहे परन्तु निर्यातित वस्तुओं की कीमत घटने लगें,

(स) तृतीय अवस्था यह है कि आयातित वस्तुओं की कीमत बढ़े परन्तु निर्यातित वस्तुओं की कीमत घटने लगे,

(द) अन्तिम अवस्था यह है कि आयातित वस्तुओं की कीमत बढ़ जावे परन्तु निर्यातित वस्तुओं की कीमत स्थिर रहे।

इस प्रकार किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता का कारण 'व्यापार शर्तें' हैं।

25.3.10 मुद्राप्रसार (Inflation)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता स्फीति अथवा मुद्रा प्रसार के कारण उत्पन्न होती है। स्फीति काल में निर्यातित वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो जाती है फलस्वरूप पहले की अपेक्षा निर्यात कम हो जाते है। दूसरी ओर आयातित वस्तुओं की मांग में भी वृद्धि हों जाती है। ये सब बातें देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न करती है। दूसरे शब्दों में इन सब बातों का देश के भुगतान सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

25.3.11 देश का आर्थिक विकास (Economic Development)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता का प्रमुख कारण आर्थिक विकास की प्रक्रिया है। मान लीजिए X देश आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरण में है। ऐसी अवस्था में वह देश कच्चे माल, नये नये यंत्र, पूंजी उपकरण, मशीनें और विकास से सम्बन्धित सेवाओं का आयात करता है और प्राथमिक उत्पादन का निर्यात करता है जिससे आयातित वस्तुओं की कीमत में वृद्धि और निर्यातित वस्तुओं की कीमत में गिरावट आ जाती है। ये सब बातें X देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न कर देती है।

25.4 भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने के उपाय (Measures to correct disequilibrium in Balance of payment)

इस इकाई के खण्ड 25.3 में भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न, होने के कारणों का अध्ययन किया। प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था के लिए भुगतान सन्तुलन में साम्यता का होना आवश्यक है। भुगतान सन्तुलन मे 'असाम्यता' देश की अर्थ व्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न कर देती है। अत: इस असन्तुलन अथवा असाम्यता को दूर करना बहुत ही आवश्यक है। भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को निम्न प्रमुख उपायों द्वारा दूर किया जा सकता है :-

(i) मौद्रिक उपाय

(ii) गैर मौद्रिक उपाय

(iii) अन्य उपाय।

उपर्युक्त उपायों की सविस्तार व्याख्या इस इकाई के खण्ड 25.5, 25.6, 25.7 में की गयी है।

25.5 मौद्रिक उपाय (Monetary measures)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता मौद्रिक कारणों से उत्पन्न होतीं है। भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को निम्न मौद्रिक उपायों द्वारा दूर किया जा सकता है:-

(अ) अवमूल्यन

(ब) प्रशुल्क

(स) पूंजी की गतिशीलता

(द) विनिमय मूल्य ह्रास

(व) विनिमय अवमूल्यन

(र) मुद्रा संकुचन

(ल) ब्याज दर में परिवर्तन

उपर्युक्त मौद्रिक उपयों की विस्तृत व्याख्या इस इकाई के खण्ड 25.5.1 से 25.5.7 तक में की गयी है।

25.5.1 अवमूल्यन नीति (Devaluation)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने का महत्वपूर्ण मौद्रिक उपाय 'अवमूल्यन' है। अवमूल्यन के कारण विदेशी बाजार में देशी वस्तुएं सस्ती हो जाती है। ऐसी दशा में क्रेता कम मुद्रा देकर अधिक वस्तुएं खरीदते है और निर्यातित वस्तुओं की मांग पहले की अपेक्षा बढ़ जाती है जिससे एक और निर्यात प्रोत्साहित होते है तो दूसरी ओर आयातित वस्तुओं की कीमत में वृद्धि हो जाने से इनकी मांग कम हो जाती है और आयात हतोत्साहित होते है। दूसरे शब्दों में अवमूल्यन के कारण देशी मुद्रा का मूल्य पहले की अपेक्षा कम हो जाता है जिससे निर्यात वस्तुएं सस्ती और आयात वस्तुएं महंगी हो जाती है। इसके फलस्वरूप निर्यातों मैं वृद्धि और आयातों में कमी हो जाती है। इस प्रकार भुगतान सन्तुलन में असाम्यता दूर हो जाती है। इसको रेखाचित्र 25.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

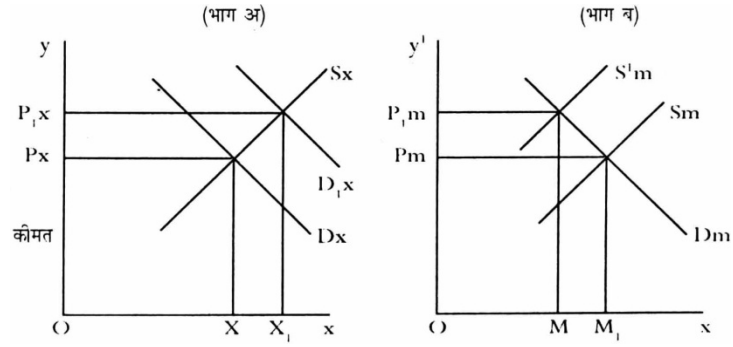

रेखा चित्र 25.3 भाग अ में निर्यात तथा इसके भाग ब में आयात मापी गयी है। यहां निर्यात पूर्ति वक्र Sx हैं जो कि स्थिर मान लिया है।

रेखाचित्र 25.3 भाग अ में Dx वक्र निर्यात वस्तुओं का मांग वक्र है। तथा D_1x वक्र अवमूल्यन के कारण निर्यात वस्तुओं की मांग मे हुई वृद्धि को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार अवमूल्यन के कारण निर्यात वस्तुएं सस्ती हो जाती है जिसके फलस्वरूप मांग वक्र Dx दायीं ओर खिसक कर D^1x हो जाता है। अवमूल्यन नीति अपनाने से निर्यात पर होने वाले प्रभाव तालिका 25.3 द्वारा दर्शाये गए हैं।

तालिका 25.1 निर्यात स्थिति

अवस्था	कीमत	निर्यात वस्तुओं की मात्रा
अवमूल्यन से पूर्व	OPx	OX
अवमूल्यन से बाद	OP_1x	OX_1

अवमूल्यन नीति अपनाने से पूर्व कीमत OPx है तथा अवमूल्यन के बाद यह कीमत OPx से बढ़कर OP_1x हो जाती है। रेखाचित्र 25.3 भाग ब में Dm वक्र आयात वस्तुओं का मांग वक्र है यहां Dm वक्र को स्थिर मान लिया है। रेखाचित्र 25.3 भाग ब में Sm वक्र आयात वस्तुओं का मांग वक्र है तथा अवमूल्यन के बाद Sm वक्र बांयी ओर खिसक कर S^1m हो जाता है। इस प्रकार अवमूल्यन के कारण आयात वस्तुएं मंहगी हो जाती है जिसके फलस्वरूप पूर्ति वक्र Sm बांयी ओर खिसक कर S^1m हो जाता है। अवमूल्यन नीति अपनाने से आयात होने वाले प्रभाव तालिका 25.3 द्वारा दर्शाये गए है।

तालिका 25.2 आयात स्थिति

अवस्था	कीमत	आयात वस्तुओं की मात्रा
अवमूल्यन से पूर्व	OPm	OM

अवमूल्यन से बाद	OP^1m	OM_1

इस प्रकार भुगतान संतुलन में उत्पन्न असाम्यता को अवमूल्यन नीति का प्रयोग करके दूर किया जाता है। अवमूल्यन नीति की सफलता के लिए किसी देश के आयात एवं निर्यात वस्तुओं की मांग लोचदार होना एक आवश्यक शर्त है। दूसरे शब्दों में इन वस्तुओं की मांग बेलोचदार नहीं हो अथवा मांग की लोच इकाई सें कम हें वो ऐसी अवस्था में अवमूल्यन विधि असफल होगी।

25.5.2 प्रशुल्क नीति (Tariff)

किसी देश के भुगतान-सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने का प्रशुल्क नीति एक महत्वपूर्ण उपाय है। यह विधि आयातित वस्तुओं की मात्रा को कम करती है तथा घरेलु उद्योगों को प्रोत्साहित करती हैं। इसके परिणामस्वरूप भुगतान सन्तुलन की असाम्यता दूर हो जाती है। इस विधि के प्रभाव को रेखाचित्र 25.4 द्वारा स्पष्ट किया गया हैं।

रेखाचित्र 25.4 में DD वक्र मांग वक्र तथा Sm वक्र पूर्ति वक्र है। प्रशुल्क विधि के प्रयोग से पूर्व कीमत OP है तथा OP कीमत पर वस्तु की मात्रा की मांग OM है। प्रशुल्क विधि के अपनानो के बाद अर्थात प्रशुल्क PR के बराबर लगाने के पश्चात् वस्तुओं की मांग मात्रा OM से घटकर OH रह जा है तथा Sm पूर्ति वक्र खिसक कर Sm_+T हो जाता है। ऐसी स्थिति मैं घरेलू पूर्ति कीमत OP से बढ़कर OR हो जावेगी परन्तु निर्यातित देश में पूर्ति कीमत OP से घटकर OL हो जावेगी तथा सरकार को LR क्षेत्र के बराबर राजस्व (Revenue) मिलेगा।

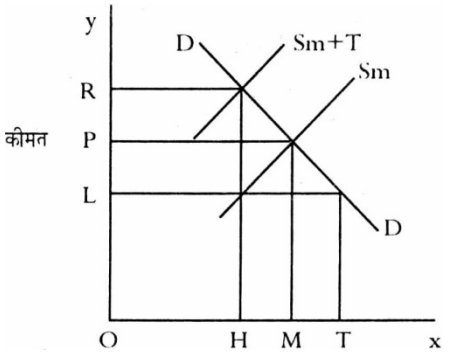

रेखा चित्र 25.4 आयात

यदि विदेशी विनिमय कीमत OL (घरेलू मुद्रा का अधिमूल्यन के कारण) रखते है तो आयात की मात्रा OM से बढ़कर OT हो जावेगी तथा अयातों की अधिक मांग के कारण घाटा MT के बराबर होगा। यदि सरकार इस पूर्ति की नीलामी करे तो आयातित देश OR की कीमत देने को तैयार हो जावेगा। ऐसी स्थिति में भुगतान सन्तुलन में सुधार होगा क्योंकि अयातित वस्तुओं की मात्रा OM से घटकर OH ही रह जावेगी।

इस प्रकार देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने में प्रशुल्क विधि बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है।

25.5.3 पूंजी की गतिशीलता (capital movements)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन मैं असाम्यता को दूर करने को महत्वपूर्ण उपाय 'पूंजी की गतिशीलता' है। लोचदार ब्याज दरों और पूर्ण पूंजी गतिशीलता की समायोजन प्रक्रिया का विश्लेषण इस प्रकार है :-

(अ) यदि पूंजी पूर्ण गतिशील हें तो घरेलु ब्याज दर में थोड़ा सा परिवर्तन से पूंजी में बड़े प्रवाह होते है। जब घरेलू ब्याज दर और विश्व दर बराबर होती है तो इसे भुगतान सन्तुलन की साम्यावस्था कहा जाता है।

(ब) यदि घरेलू ब्याज दर विश्व दर से कम है तो पूंजी बहिर्प्रवाह अधिक होता हैं जिससे मुद्रा का मूल्य घट जाता है।

(स) यदि घरेलू ब्याज दर विश्व दर से अधिक है तो पूंजी का अन्तर्प्रवाह अधिक होता है जिससे मुद्रा का मूल्य बहुत अधिक बढ़ जाता

है। किसी देश के भुगतान सन्तुलन मे असाम्यता उत्पन्न होने यह पूंजी की गतियों के माध्यम से दूर की जाती हैं। इस विधि के निम्न दो प्रमुख उपकरण है:-

(अ) राजकोषीय नीति (Fiscal policy)

(ब) मौद्रिक नीति (Monetary policy)

राजकोषीय नीति पूंजी के प्रवाहों को सीधा प्रभावित करती हैं। अत: इस उपकरण को भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने क लिए प्रयोग किया जाता है। राजकोषीय नीति के कार्यकरण को रेखाचित्र 25.5 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखा चित्र 25.5 में IS वक्र राजकोषीय नीति तथा LM वक्र मौद्रिक नीति के कार्यकरण को व्यक्त करते हैं। BOP वक्र ब्याज दर और राष्ट्रीय आय स्तर के विभिन्न संयोगों को बताना है जहां भुगतान शेष में सन्तुलन स्थापित होता है। क्षैतिज अथवा समानान्तर OBP वक्र

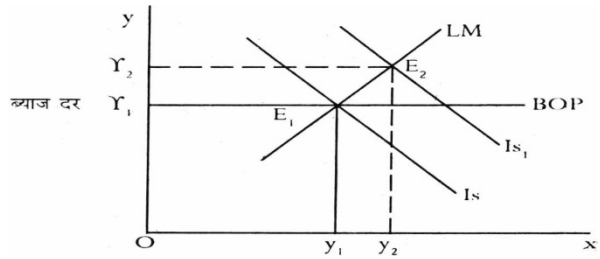

रेखा चित्र 25.5 आय स्तर

पूंजी की पूर्ण गतिशीलता को बताता है। यहां OY_1 ब्याज दर पर भुगतान सन्तुलन की साम्यावस्था है। ब्याज दर में परिवर्तन से पूंजी के प्रवाहों में परिवर्तन होता है। राजकोषीय नीति की प्रक्रिया से Is वक्र खिसक कर Is_1 वक्र हो जाता है। इस प्रकार सन्तुलन बिन्दु E_2 स्थापित हो जाता है। अब व्याज दर OY_1 से बढ़कर OY_2 हो जाती है। यहां E_2 बिन्दु BOP वक्र से ऊपर है जो भुगतान सन्तुलन में अतिरेक को बताता है। इस अतिरेक से

विनिमय दर के मूल्य में वृद्धि हो जाती है जो घरेलू उत्पादन की मांग को घटा देती है। मूल्य वृद्धि की यह प्रकिया घरेलू ब्याज दर विश्व दर से अधिक होने पर होती रहती है तथा पूंजी के अन्तर्प्रवाह जारी रहते है। इस प्रकार मूल्य वृद्धि से वस्तुओं की मांग कम हो जाती है और राजकोषीय नीति का विस्तारकारी प्रभाव समाप्त होने लगता है। यह क्रम जब तक चलता रहता है जब तक कि Is_1 वक्र खिसक कर Is नहीं हो जाता है और पुन: संतुलन बिन्दु E_2 से E_1 स्थापित नहीं हो जाता। यही सन्तुलन बिन्दु E_1 पर मूल ब्याज दर OY_1 तथा मूल आयस्तर OY_1 है। यहां सन्तुलन बिन्दु E_1, पर भुगतान सन्तुलन 'साम्यावस्था' में है। अर्थव्यवस्था में मुल्य वृद्धि के कारण व्यापार सन्तुलन में घाटा होने से विदेशों में घरेलू वस्तुओं की कीमत बढ़ जाती है और आयातित वस्तुओं की कीमत कम हो जाती है और जो निर्यातों में कमी और आयातों मैं वृद्धि करती है। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में असाम्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसको राजकोषीय नीति के पूंजी प्रवाह के माध्यम से ठीक किया जाता है। यदि अर्थव्यवस्था में पूंजी की गतिशीलता है तो राजकोषीय नीति का आय स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पडता है।

देश की अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति पूंजी के प्रवाहों को सीधा प्रभावित करती है। अत: इस उपकरण का प्रयोग भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने के लिए किया जाता है। मौद्रिक नीति के कार्य करण को रेखा चित्र 25.6 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

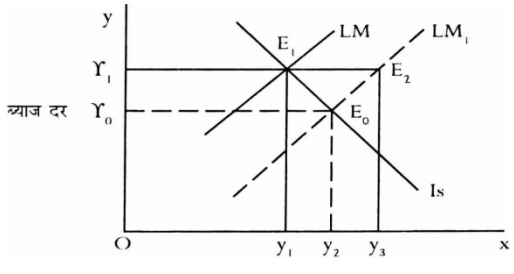

रेखा चित्र 25.6 आय स्तर

रेखा चित्र 25.6 में सन्तुलन बिन्दु E_1 हैं जहां LM वक्र और Is वक्र बराबर है। यहां ब्याज दर OY_1 है। विस्तार कारी मौद्रिक नीति के

कार्यकरण के कारण LM वक्र दायी ओर खिसक कर LM_1 हो जाता है जहां ब्याज दर OY_0 है क्योंकि LM_1 वक्र और Is वक्र E_0 बिन्दु पर सन्तुलन स्थिति में है। ब्याज दर OY_1 से गिरकर OY_0 हो जाने से आयस्तर भी Oy_1 से बढ़कर Oy_2 हो जाता है जिससे पूंजी का बहिर्प्रवाह होने लगता है। इसके परिणामस्वरूप एक और भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जाता है दूसरी ओर विनिमय दर का मूल्य ह्रास हो जाता है। मूल्य ह्रास विदेशों में घरेलू वस्तुओं की मांग बढ़ा देता है जिससे उत्पादन और आय दोनों बढ़ जाते है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था LM_1 वक्र के बराबर ऊपर की ओर बढ़ती जाती है जब तक कि वह संतुलन बिन्दु E_2 पर नहीं पहुंच जात है जहां आयस्तर बढ़कर Oy_3 हो जाता है और ब्याज दर OY_1 हो जाती है। इस प्रकार भुगतान सन्तुलन में उत्पन्न असाम्यता E_2 बिन्दु सन्तुलन पुन: स्थापित होने से दूर हो जाती है। जहां आय में वृद्धि के माध्यम से आयातों में हुई वृद्धि को मूल्य ह्रास के कारण व्यापार सन्तुलन का अतिरेक क्षतिपूर्ति कर देता है।

इस प्रकार देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने मैं पूंजी की गतिशीलता विधि बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है।

25.5.4 विनिमय मूल्य ह्रास (Exchange depreciation)

विनिमय मूल्य ह्रास देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता कों दूर करने की एक सरल एवं उत्तम विधि है। मुद्रा का मूल्य ह्रास का अर्थ इसका सापेक्ष मूल्य घट जाने से है तथा मुद्रा की मुल्य वृद्धि ह्रास से निर्यात प्रोत्साहित तथा आयात हतोत्साहित होते है। किसी देश के भुगतान सन्तुलन प्रतिकूकल है तो देश की मुद्रा का मूल्य ह्रास करने पर अपने आप सन्तुलन स्थापित हो जाता है तथा यदि भुगतान सन्तुलन अनुकूल है तो देश की मुद्रा का मूल्य वृद्धि करने पर अपने आप संतुलन स्थापित हो जाता है। इसको रेखा चित्र 25.7 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

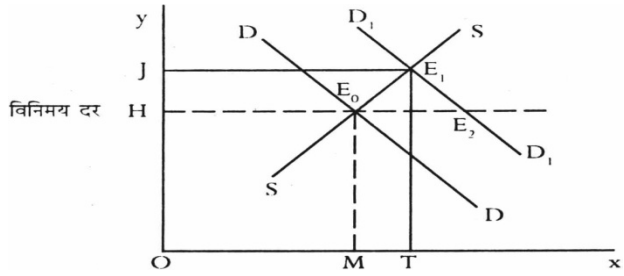

रेखा चित्र 25.7 विनियम मात्रा

रेखा चित्र 25.7 में x देश का विदेशी विनिमय मांग वक्र DD है जो कि y देश के आयात मांग को भी व्यक्त करता है तथा x देश का विदेशी विनिमय पूर्ति वक्र SS है जो कि y देश के निर्यात मांग को भी व्यक्त करता है। यहां x देश का सन्तुलन बिन्दु E_0 है जहां x देश के विदेशी विनिमय मांग और पूर्ति के बराबर है। यहां x देश और y देश के बीच विनिमय दर OH है तथा विनिमय मात्रा OM है।

मान लिजिए x देश में भुगतान सन्तुलन में असाम्यता की स्थिति है। x देश में y देश के आयातों की मांग बढ़ जाने से x देश का माँग वक्र DD खिसक कर D_1D_1 हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप y देश की मुद्रा की मांग बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति x देश में मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है तथा y देश मे मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है अर्थात x देश में मुद्रा का मूल्य ह्रास तथा y देश में मुद्रा का मूल्य वृद्धि की स्थिति है। अत: x देश में आयात कीमतों में वृद्धि तथा निर्यात कीमतों में कमी हो जाती है। ऐसी स्थिति में नयी सन्तुलन दर E_1 तथा नयी विनिमय दर OJ स्थापित हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप भुगतान सन्तुलन में उत्पन्न असाम्यता दूर हो जाती है। यह विश्लेषण विनिमय दर की मांग और पूर्ति की सापेक्ष लोच की मान्यता पर आधारित है। अब मान लीजिए x देश में मांग और पूर्ति कम लोचदार है और ऐसी स्थिति में x देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता। इस को ठीक करने के लिए मूल्य ह्रास विधि क प्रयोग करते है। इसको रेखाचित्र 25.8 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

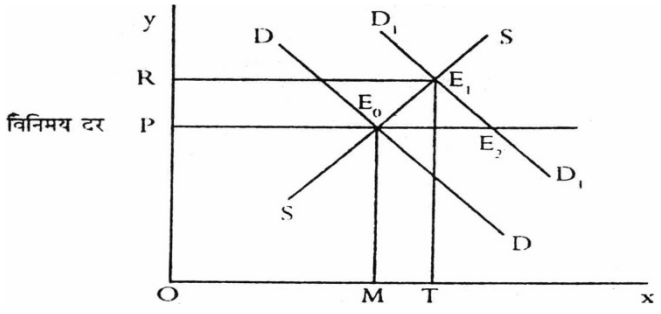

रेखा चित्र 25.8 विनियम मात्रा

यहां रेखाचित्र 25.8 में मांग और पूर्ति कम लोचदार है। रेखाचित्र 21 8 में सन्तुलन बिन्दु E_0 है तथा विनिमय दर OP है। अब मान लीजिए भुगतान सन्तुलन में E_0E_1 के बराबर घाटा उत्पन्न हों जाता है क्योंकि मांग और पूर्ति की लोच बहुत कम हैं अर्थात् ये दोनों बेलोचदार है। ऐसी स्थिति में x देश की मुद्रा का विनिमय मूल्य ह्रास तथा y देश की मुद्रा का विनिमय मूल्य वृद्धि की जरूरत होती है। इस विधि का प्रयोग करने से विनिमय दर OP से बढ़कर OR हो जाती है जहां सन्तुलन बिन्दु E_1 तथा विनिमय दर OP से बढ़कर OR है। परन्तु इतने अधिक मूल्य ह्रास का परिणाम यह होता है कि दोनों देशों की कीमतों में बहुत अधिक परिवर्तन होने हैं और दोनों देशों की अर्थव्यवस्था छिन्न भिन्न हो जानी हैं।

लचीली ब्याज दरों का व्यावहारिक उपयोग बहुत ही कम है। मूल्य ह्रास विधि को अपनाने से देश में कीमतें गिर जाती है जिसके परिणामस्वरूप अपनाने से देश में कीमतें गिर जाती है जिसके परिणामस्वरूप गम्भीर मंदी आ जाती है। इसके विपरीत मूल्य वृद्धि विधि को अपनाने से देश में कीमतें बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप अतिस्फीति (Hyper inflation) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार लचीली विनिमय दरें अर्थव्यवस्था मे 'अस्थिरता' उत्पन्न करती हैं तो दूसरी ओर स्थिर विनिमय दर भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करती है।

25.5.5 विनिमय अवमूल्यन

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में उत्पन्न असाम्यता को ठीक करने के लिए 'विनिमय अवमूल्यन एक महत्वपूर्ण उपाय है। देश की मुद्रा के मूल्य में बाजार शक्तियों की क्रियाशीलता द्वारा स्वत: कमी होने को 'विनिमय अवमूल्यन' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में स्वदेशी मुद्रा के बाह्य मूल्य (विनिमय दर) को हासित करना है। यह बात तब ही संभव होती है जबकि विनिमय दर को स्वतंत्र छोड़ दिया जावे। यदि भुगतान सन्तुलन में प्रतिकूलता है तब स्वदेशी मुद्रा के लिए मांग इसकी पूर्ति की तुलना में कम होती है। दूसरे शब्दों में बैंकों में विदेशी मुद्रा खरीदने वाले लोग बेचने वालों की अपेक्षा अधिक आते है। जिसके फलस्वरूप बैंक विदेशी मुद्रा का मूल्य ऊंचा बता देते है, इससे विदेशी मुद्रा के रूप में स्वदेशी मुद्रा का मूल्य गिर जाता है। यही स्थिति स्वदेशी मुद्रा के बाह्य मूल्य का ह्रास कहलाती है। इसके कारण स्वदेशी मुद्रा विदेशियों के लिए सस्ती हो जाती है और स्वदेशी वस्तुएं विदेशियों को सस्ती मिलने लगती है। इससे निर्यात प्रोत्साहित होते है। दूसरी ओर आयात हतोत्साहित होते हैं। निर्यात प्रोत्साहन और आयात हतोत्साहित के संयुक्त प्रभाव के परिणाम स्वरूप भुगतान सन्तुलन की असाम्यता ठीक हो जाती है। डस उपाय की सफलता विदेशी सरकार द्वारा स्वीकार करने पर ही है। यदि विदेशी सरकार भी अपनी मुद्राओं का मूल्य हासित कर देती है तो इस प्रतियोगितात्मक ह्रास के कारण भुगतान सन्तुलन में प्रतिकूलता वाले देश प्राप्त होने वाले लाभ से वंचित रह जाते हैं। यह स्थिति सन् 1930 में 'महान मंदी काल' में हुई थी।

विनिमय अवमूल्यन विधि का प्रयोग निम्न दशाओं में असफल हो जाता है :-

(अ) यदि देश की विनिमय दर स्थिर अथवा स्थित हैं;

(व) यदि व्यापार शर्तें विपक्ष में है तो विनिमय मूल्य कम होगा। ऐसी अवस्था में विदेशी वस्तुओं की कीमत ऊंची और स्वदेशी वस्तुओं का विदेशी मूल्य कम हो जाता हैं।

इस-प्रकार यह विधि अति जोखिम पूर्ण होते हुए भी संयुक्त प्रभाव के रूप में प्रयोग करने पर ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

25.5.6 मुद्रा संकुचन (Deflation)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता (असाम्यता) को ठीक करने के लिए 'मुद्रा संकुचन' विधि को अपनाते हैं। मुद्रा संकुचन से अभिप्राय देश में मुद्रा की मात्रा कम होने से हैं। दूसरे शब्दों में जब देश में कीमतें घटती है तो ऐसी स्थिति को 'मुद्रा संकुचन' कहते है। मुद्रा संकुचन की स्थिति में मुद्रा की मात्रा कम तथा वस्तुओं की कीमत भी कम हो जाती हैं। विदेशों से प्राप्त वस्तुएं मंहगी (अथवा तेज) हो जाती है जिसके फलस्वरूप निर्यातों को प्रोत्साहन तथा आयातों में कमी हो जाती हें (अथवा आयात हतोत्साहित हो जाते है) इस प्रकार यह विधि भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को दूर करती है परन्तु इस विधि को बहुत ही सावधानी से प्रयोग किया जाता है। तनिक असावधानी से देश आर्थिक संकट (Economic crisis) उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति के परिणामस्वरूप उत्पादकों को हानि बेकारी में वृद्धि तथा मंदी की दशाएं फैल जाती है।

25.5.7 ब्याज दर में परिवर्तन (Change in interest rate)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने का एक असान तरीका ब्याज दर में परिवर्तन है। ब्याज दर में वृद्धि होने से विदेशी पूंजी आने लगती है जिससे भुगतान संतुलन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। यदि देश में भुगतान सन्तुलन में असाम्यता विकट रूप में है तो यह विधि बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं होती है। अत: ऐसी स्थिति में इस विधि का प्रयोग अन्य विधियों के साथ करने पर भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक किया जाता है।

25.6 गैर मौद्रिक उपाय (Non monetary measures)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता गैर मौद्रिक कारणों से उत्पन्न होनी है। भुगतान सन्तुलन में उत्पन्न असाम्यता निम्नलिखित गैर मौद्रिक उपायों द्वारा दूर की जा सकती है –

(अ) आयात प्रतिबंध

(ब) निर्यात संवर्द्धन;

(स) संरक्षण;

(द) विनिमय नियंत्रण;

(य) विदेशी पूंजी का विनियोग;

(र) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा दिए गए सुझाव;

उपर्युक्त गैर मौद्रिक उपायों की विस्तृत व्याख्या इस इकाई के खण्ड 25.6.1 से 25.6.6 तक में की गयी है।

25.6.1 आयात प्रतिबंध (Import restrictions)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने की गैर मौद्रिक विधि 'आयात प्रतिबंध' है। किसी देश में आयातों में वृद्धि हो जाने से विदेशी पूंजी बाहर जाने लगती है और स्वदेशी उद्योगों पर भी बुरा प्रभाव पड़ने लगता है। इसके परिणामस्वरूप भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जाती है। अत: इस असाम्यता को दूर करने के लिए 'आयात प्रतिबंध' एक आसान एवं महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि के अन्तर्गत आयातों को कम करने के लिए निम्नलिखित उपकरणों (instruments) का प्रयोग किया जाता है :-

(अ) भारी आयात कर (Heavy import duty)

(ब) आयात अभ्यंश (Import quota)

(स) आयात प्रतिस्थापन (Import substitution)

(द) आयात निषेध (Prohibition of imports)

जैसे अनावश्यक अथवा विलासिता वस्तुओं के आयातों का निषेध किया जाना।

(य) आयातित कच्चे माल पर कम आयात कर लगाना, आदि।

ये उपर्युक्त समस्त उपकरण विदेशी पूंजी की बचत करने में सहयोग देते है जिसके फलस्वरूप देश का आर्थिक विकास तेजी से बढ़ता है तथा देश आत्मनिभर भी होता है। इस प्रकार देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने के लिए 'आयात प्रतिबंध' बहुत ही उपयोगी विधि सिद्ध हुई है।

25.6.2 निर्यात संवर्द्धन (Export promotions)

देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने के लिए 'निर्यात संवर्द्धन' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधि है। देश में निर्यातों की मात्रा कम होने से विदेशी पूंजी का आयात कम हो जाता हैं। इसका देश के निर्यात उद्योगों पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप भुगतान सन्तुलन में असाम्यता उत्पन्न हो जाती है। अत: इस स्थिति को सुधारने के लिए निर्यात संवर्द्धन' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपाय है। इस विधि के अन्तर्गत निर्यातों में वृद्धि करने लिए निम्नलिखित उपकरणों (instruments) का प्रयोग किया जाता है :-

(अ) कम निर्यात कर (Less export duty);

(ब) निर्यात संवर्द्धन उद्योगों को विशेष सुविधा;

(स) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेला में प्रदर्शनी;

(द) निर्यातित वस्तुओं का प्रचार;

(य) कुशल निर्यात उद्योगों को पुरस्कार;

(र) निर्यात संवर्द्धन समितियों का गठन।

इस प्रकार उपर्युक्त समस्त उपकरण निर्यात संवर्द्धन में बहुत ही सहयोगी सिद्ध हुए है। **25.6.3 संरक्षण (Protections)**

स्वतंत्र व्यापार (Free trade) से देश का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जाता है। इस स्थिति को ठीक करने के लिए 'संरक्षण' एक आसान विधि है। इस विधि के अन्तर्गत विदेशी प्रतियोगिता से गृह उद्योगों की रक्षा के लिए आयात व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिए जाने है। इस प्रकार इस विधि के अपनाने से एक ओर शिशु उद्योगों को प्रोत्साहन, व्यापार शर्तें अनुकूलन तथा पूंजी निर्माण में वृद्धि होती है; दूसरी ओर इससे देशी बाजार में एकाधिकार की संभावना, स्फीतिकारी प्रवृतियों की संभावना तथा रोजगार स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अत: संरक्षण विधि का प्रयोग सतर्कता से करने पर ही देश के आर्थिक विकास में वृद्धि होती है और देश भी आत्मनिर्भर हो जाता है।

25.6.4 विनिमय नियंत्रण (Exchange control)

देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने के लिए 'विनिमय नियंत्रण' एक आसान विधि है। विनिमय नियंत्रण से अभिप्राय: विदेशी बाजार में आर्थिक क्रियाओं के स्वतंत्र रूप से कार्य करने पर प्रतिबंध होने से है। यह एक कठोर विधि है जिसके अन्तर्गत विनिमय दर स्थिर रहती है। इस विधि का प्रयोग करने पर मुद्रा का बाहय मूल्य कम हो जाता है जिसके फलस्वरूप निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे हो जाते हैं। डस प्रकार निर्यातों में वृद्धि और आयातों में कमी हो जाती है जो भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करती है। विनिमय नियंत्रण की विभिन्न विधियों का प्रयोग बहुत ही सतर्कता से किया जाता है ताकि इनका देश के भुगतान सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव न हो कर अच्छे प्रभाव पड़े। इस प्रकार यह एक अल्पकालीन उपाय है परन्तु भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने की यक बहुत ही सफल विधि सिद्ध हुई है।

25.6.5 विदेशी पूंजी का विनियोग

देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने के लिए 'विदेशी पूंजी का विनियोग' एक सरल उपाय है। इस विधि के अन्तर्गत विदेशों से ऋण लेकर तथा विदेशी पूंजी के विनियोग को प्रात्साहित करके भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर किया जाता है। चालू खाते में व्याप्त असाम्यता को दूर करने में विदेशी ऋण बहुत ही उपयोगी होते हैं क्योंकि ऐसे ऋणों का भुगतान दीर्घकाल में किया जाता है। यद्यपि विदेशी पूंजी का विनियोग करने से औद्योगिक विकास तथा आर्थिक विकास में सहायता मिलती है परन्तु पर अत्यधिक निर्भर होना घातक सिद्ध हो सकता है। अत: इस विधि के प्रयोग में बहुत सावधानी एवं सतर्कता की आवश्यकता होती है।

25.6.5 विदेशी पूंजी का विनियोग

देश के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को ठीक करने के लिए 'विदेशी पूंजी का विनियोग' एक सरल उपाय है। इस विधि के अन्तर्गत विदेशों से ऋण लेकर तथा विदेशी पूंजी के विनियोग को प्रात्साहित करने के भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को दूर किया जाता है। चालू खाने में व्याप्त असाम्यता को दूर करने में विदेशी ऋण बहुत ही उपयोगी होने हैं क्योंकि ऐसे ऋणों का भुगतान दीर्घकाल में किया जाता है। यद्यपि विदेशी पूंजी का विनियोग करने से औद्यौगिक विकास तथा आर्थिक विकास में सहायता मिलती है परन्तु इस पर अत्यधिक निर्भर होना घातक सिद्ध हो सकता है। अत: इस विधि के प्रयोग में बहुत सावधानी एवं सतर्कता की आवश्यकता होती है।

25.6.6 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को दूर करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष बहुत ही उपयोग है। इसका उद्देश्य जिन देशों के पास अपर्याप्त विदेशी मुद्रा कोष है उनको अल्पकालीन वित्त उपलब्ध कराना है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक प्रकार का कोष बनाकर सदस्य देशों

को विभिन्न रूपों में आर्थिक सहायता प्रदान करता है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को देश के भुगतान में सुधार की आशा होती है तो यह उस देश को अल्पकालीन आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष असाम्यता वाले देश की आर्थिक सहायता के अतिरिक्त महत्पूर्ण सुझाव भी देता है।

25.7 अन्य उपाय (Other measures)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता मौद्रिक अथवा गैर मौद्रिक कारणों से उत्पन्न होती है परन्तु कई अन्य कारण भी इस असाम्यता के जन्म के कारण हैं। अत: कारणों के द्वारा भुगतान सन्तुलन में उत्पन्न असाम्यता को निम्नलिखित अन्य महत्वपूर्ण उपायों द्वारा ठीक किया जाता है :-

(अ) द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समझौते;

(ब) हस्तान्तरित समझौता;

(स) प्राथमिकताओं के समझौते;

(द) राज्य व्यापार।

इन उपर्युक्त अन्य महत्वपूर्ण उपायों की विस्तृत व्याख्या इस इकाई के खण्ड 25.7.1 से 25.7.4 तक में की गयी है।

25.7.1 द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समझौता

किसी देश के भुगातान सन्तुलन की असाम्यता को दूर करने के लिए 'द्विपक्षीय' बहुपक्षीय समझौते बहुत ही प्रभावशाली उपाय है। द्विपक्षीय समझौता के अन्तर्गत एक देश दूसरे देश से पूर्व निर्धारित - परिमाणात्मक अनुपात में निर्यात सम्बन्ध बनाए रखता है। इसी बहुपक्षीय समझौते दो से अधिक देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर किए जाते है। इस प्रकार के समझौतों में दुर्लभ मुद्रा (Hand money)

सम्बन्धी समस्या का उपचार तथा आयातों का भुगतान परिवर्तनशील मुद्रा में न होकर निर्यातों से किया जाता है।।

25.7.2 हस्तान्तरित समझौता

देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को ठीक करने के लिए हस्तान्तरित समझौता एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली विधि है। इसमें वस्तुओं को सीधा विनिमय होता है। इस विधि में आयातों के मूल्य निर्यात मूल्यों के बराबर होते है तथा वस्तु का मूल्य, किस्म तथा मात्रा सम्बन्ध में समझौता दोनों देशों की सहमति से होता है। इस प्रकार के समझौता से प्रमुख लाभ यह है कि यह समझौता स्वभाव से ही सन्तुलित होता है।

हस्तान्तरित समझौता विधि में निम्नलिखित दोष है :-

(अ) इस प्रकार के समझौतो में विदेशी मुद्रा प्राप्त नहीं होता है। केवल आयात एवं निर्यात ही होते है।

(ब) इस प्रकार के समझौता में कमजोर देश को वस्तु की कीमत कम मिलती है सशक्त देश अधिक कीमत प्राप्त करके अधिक लाभ कमाता है।

परन्तु यह विधि बहुत ही प्राचीन है। आदिकाल से ही यह विधि एक सफल व्यापारिक विधि के रूप में सिद्ध हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण विधि सिद्ध होने के कारण वर्तमान में इसका प्रयोग बहुत ही हो रहा है।

25.7.3 प्राथमिकता समझौता

देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को ठीक करने के लिए 'प्राथमिकताओं के समझौते' एक आसान विधि है। इस विधि के अन्तर्गत समझौता करने वाले देश यह निश्चित कर लेते है कि माल की खरीद तथा बिक्री में सम्मिलित होने वाले देशों को प्राथमिकता दी जाती है। यूरोपीय साझा व्यापार (European common market) अथवा राष्ट्रमंडल के देशों

(Common weather countries) में 'प्राथमिकता के आधार' पर ही व्यापार होने हैं।

25.7.4 राज्य व्यापार (State Trading)

किसी देश के भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को ठीक करने के लिए 'राज्य व्यापार' अत्यन्त प्रभावशाली उपाय है। अर्द्धविकसित देशों में व्यापारिक सौदा करने की शक्ति कमजोर एवं दबाव पूर्ण होती है जबकि विकसित देश इस प्रकार के सौदा करने में निपुण होते हैं। अत: विकासित देश विभेदात्मक नीति का सहारा लेकर अर्द्धविकसित देशों को अधिकतम शोषण करते हैं। ऐसी स्थिति में अर्द्धविकसित देश राष्ट्रीयकरण नीति को अपना करके निर्यातों को प्रोत्साहित तथा आयातों को हतोत्साहित करते हैं। इस प्रकार इन देशों की व्यापार शर्तें अनुकूल हो जाती है तथा विदेशी मुद्रा पर नियंत्रण हो जाता है। अत: राज्य व्यापार नीति भुगतान सन्तुलन की असाम्यता अथवा प्रतिकूलता अथवा असन्तुलन को ठीक करने का आसान एवं सर्वोतम उपाय है।

25.8 शब्दावली

मुद्रा प्रसार अथवा स्फीति (Inflation): किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा के मूल्य (Value) में कमी होने अथवा कीमत स्तर में वृद्धि होने की प्रवृति को 'मुद्रा प्रसार' अथवा 'स्फीति' कहा जाना है।

मुद्रा संकुचन अथवा अपस्फीति (Deflation): किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होने अथवा कीमत स्तर में कमी होने की प्रवृति को 'मुद्रा संकुचन' अथवा 'अपस्फीति' कहा जाता है।

व्यापार शर्तें (Terms of trade): यह वह शर्त है जिस पर किसी देश के निर्यात और आयात में विनियोग होता है। दूसरे शब्दों में व्यापार शर्तें से अभिप्राय: उस शर्त से है जिस पर किसी देश के निर्यात आयात का विनिमय होता है।

अवमूल्यन (Devaluation) :किसी देश की मुद्रा का मूल्य विदेशी बाजार में कम हो जाना ही 'अवमूल्यन' है।

प्रशुल्क (Tariff): प्रशुल्क वह कर की मात्रा है जो एक राष्ट्र द्वारा विदेशी आयातों पर लगाया जाता है।

निर्यात संवर्द्धन (Export promotion): जब सरकार निर्यात वृद्धि के लिए उद्योगों को विभिन्न प्रकार का संरक्षण एवं सुविधा प्रदान करती है तो इसे 'निर्यात संवर्द्धन' अथवा 'निर्यात प्रोत्साहन' कहा जाता है।

आयात प्रतिस्थापन (Import substitution): आयात की जाने वाली वस्तुओं को देशी उत्पादन द्वारा प्रतिस्थापन करना ही 'आयात प्रतिस्थापन' है। दूसरे शब्दों में जो वस्तुएं हम विदेशों से मंगवाते है उन्हें देश में उत्पादित करना ही 'आयात प्रतिस्थापन' है।

आयात अभ्यंश (import Quota): किसी दी हुई अवधि में एक वस्तु की निश्चित मात्रा अथवा निश्चित मूल्य तक एक वस्तु की मात्रा लाइसेंस शुदा व्यापारियों के द्वारा ही किसी भी देश से अथवा सीमा तक चुने हुए देशों से आयात करने की आज्ञा देना ही 'आयात अभ्यंश' है।

25.9 कुछ उपयोगी पुस्तके

Gray H peter: International trade, Investment and payment.

Meier Gelald M :International Economics, A Theory of policy

Kindleberger C.P:International Economics

Ellsworth P.T:International Economy

Mithani D.M:International Economics

सुदामा सिंह:अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

एम एल. झिंगन:अनर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

25.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भुगतान सन्तुलन की असाम्यता के कारण एवं इसको दूर करने के उपायों का सविस्तार वर्णन करो।

2. भुगतान सन्तुलन में असाम्यता क्यों उत्पन्न होती है? इसको किस प्रकार संतुलित किया जा सकता है? रेखाचित्रों की सहायता से स्पष्ट किजिए।

3. भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के आशय को स्पष्ट करो तथा निम्न शीर्षकों के माध्यम से वर्णन करो -

(अ) इसकी असाम्यता के कारण;

(ब) इसका उपचार।

4. भुगतान सन्तुलन में 'मौलिक असन्तुलन' से आप क्या समझते है? भुगतान शेष के असन्तुलन को ठीक करने के लिए उपर्युक्त सुझाव दीजिए।

5. भुगतान सन्तुलन में प्रतिकूलता का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताइये कि यह स्थिति कब उत्पन्न होती है? इस प्रतिकूलता को ठीक करने के लिए कौन से उपाय अपनाने चाहिए?

6. भुगतान सन्तुलन में असाम्यता के कारण तथा इसको दूर करने के उपायों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 26

विदेशी विनियम दर निर्धारण के सिद्धान्त

Determination of Foreign Exchange Rates Theories

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 विभिन्न मौद्रिक व्यवस्थाओं में विदेशी विनिमय दर का निर्धारण

26.2.1 स्वर्णमान एवं विनिमय दर

26.2.2 रजतमान एवं विनिमय दर

26.2.3 जब एक देश में स्वर्णमान व दूसरे देश में रजतमान हो

26.2.4 जब एक देश में स्वर्णमान अथवा धातु मुद्रा का चलन हो परन्तु दूसरे देश में पत्र मुद्रामान हो

26.3 पत्र मुद्रमान एवं विनिमय दर निर्धारण

26.3.1 क्रयशक्ति समता सिद्धान्त

26.4 विनिमय दर निर्धारण का भुगतान सन्तुलन सिद्धान्त

26.4.1 विदेशी मुद्रा की मांगें

26.4.2 विदेशी मुद्रा की पूर्ति

26.4.3 मांग एवं पूर्ति के साम्य से विनिमय दर का निर्धारण

26.5 विदेशी विनिमय दर में कमी की स्थिति

26.6 विदेशी विनिमय दर में वृद्धि की स्थिति

26.7 सारांश

26.8 शब्दावली

26.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

26.0 उद्देश्य

प्रत्येक देश में अपनी अलग-अलग मुद्राएँ प्रचलित होती हैं और एक देश की मुद्रा दूसरे देश में विधि ग्राह्य न होने से विदेशी भुगतानों के लिए एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में प्रत्यक्ष बदलने की समस्या सामने आती हैं। अत: जिस दर पर एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तन की जाती हैं उस दर को विदेशी विनिमय दर कहा जाता हैं। चूँकि भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न मुद्राएँ प्रचलित हैं इसलिए स्पष्टत: एक देश की मुद्रा की विनिमय दर अलग-अलग मुद्राओं के संदर्भ में भिन्न-भिन्न होगी। इस इकाई का उद्देश्य एक देश की मुद्रा एवं अन्य देशों की मुद्राओं के मध्य विनिमय दर की निर्धारण के सिद्धान्तो का अध्ययन करना हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि :

- विभिन्न मौद्रिक व्यवस्थाओं में विनिमय दर कैसे निर्धारित होती हैं?
- विदेशी विनिमय दर में वृद्धि एवं कमी का क्या प्रभाव पड़ता है?

26.1 प्रस्तावना

जिस प्रकार एक वस्तु की कीमत बाजार में उसकी मांग व पूर्ति की शक्तियों के संतुलन से तय होती है, उसी प्रकार विदेशी विनिमय बाजार में एक देश की मुद्रा की विनिमय दर उसकी मांग व पूर्ति की शक्तियों के संघर्ष से निर्धारित होती हैं। संतुलन की स्थिति में मुद्रा की वह विनिमय दर तय होती हैं। जिस पर विदेशी विनिमय बाजार में उस मुद्रा की कुल पूर्ति उसकी कुल मांग के बराबर होती हैं।

26.2 विभिन्न मौद्रिक व्यवस्थाओं में विदेशी विनिमय दर का निर्धारण

विदेशी विनिमय दर का निर्धारण मांग व पूर्ति की शक्तियों के अनुसार होता हैं और यह सिद्धांत सभी प्रकार की मौद्रिक व्यवस्थाओं में लागू होता हैं किन्तु विदेशी विनिमय की मांग व पूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्व मौद्रिक व्यवस्था के अनुसार बदलते रहते हैं अत: विभिन्न मौद्रिक व्यवस्थाओं में विनिमय दर का निर्धारण का अलग-अलग विशलेषण आवश्यक हैं।

26.2.1 **स्वर्णमान एवं विनिमय दर**

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न जब दोनों देशों में स्वर्णमान हो तो उस व्यवस्था में या तो चलन में स्वर्ण मुद्राएँ होती हैं या प्रचलित मुद्रा निश्चित दर पर स्वर्ण में परिवर्तनीय होती हैं। जिस दर पर देश की मुद्रा स्वर्ण में बदली जाती हैं उसे स्वर्ण का टकसाली मूल्य कहा जाता हैं।

टकसाली विनिमय दर

जब दोनों में स्वर्णमान होता हैं तो दोनों देशों की मुद्राओं की विनिमय दर उनके प्रामाणिक सिक्कों में पाये जाने वाले विशुद्ध स्वर्ण के अनुपात या दोनों मुद्राओं की स्वर्ण खरीदने की शक्ति की समता के अनुसार निर्धारित होती हैं। इन दोनों प्रकार के आधारों में से जब किसी भी आधार दर विनिमय दर निर्धारित होती हैं तो इस दर को टंक समता दर या टकसाली समता दर कहते हैं। उदाहरणार्थ अगर इंग्लैण्ड के पौण्ड में 113.0016 ग्रेन विशुद्ध सोना हो जबकि अमेरिकन सिक्का ईगल (जिसमें दस डालर हैं) में 232.3 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण मात्रा के अनुपात के आधार पर पौण्ड की विनिमय दर 113.0016/23.22 अर्थात 1 पौण्ड़ै = 4.8665 डालर। यह पौण्ड और डालर की टकसाली दर मानी जायेगी। इसका अर्थ हैं कि अगर इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच विनिमय दर टंक समता के बराबर हैं तो अमेरिका के आयातकर्ता के 4.8665 डालर से इंग्लैण्ड में एक पौण्ड प्राप्त हो

जायेगा तथा इसी प्रकार इंग्लैण्ड का एक व्यापारी लंदन में एक पौण्ड देकर अमेरिका में 4.8665 डालर का भुगतान कर सकेगा।

टंक समता से उतार-चढाव एवं स्वर्णांक

स्वर्णमान में विनिमय दर की दीर्घकालीन प्रवृति टंक समता दर के बराबर होने की रहती हैं किन्तु विनिमय दर में उतार-चढाव स्वर्णमान में उच्चतम बिन्दु अर्थात स्वर्ण निर्यात बिन्दु तथा निम्नतम स्वर्ण बिन्दु अर्थात स्वर्ण आयात बिन्दु तक ही सीमित रहता हैं। अगर टंक समता दर में स्वर्ण भेजने का व्यय को जोड़ दिया जाय तो यह विनिमय दर की उच्चतर सीमा बताती हैं और अगर घटा दिया जाय तो यह निम्नतम सीमा बताती हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका और इंग्लैण्ड के बीच समता दर। पौण्ड = 4.8665 डालर हो और अमेरिका से इंग्लैण्ड को स्वर्ण भेजने मंगाने का व्यय 30 सैन्ट हो तो विनिमय दर में चढाव की उच्चतम सीमा 1 पौण्ड = 4.8865 + 0.3 डालर अर्थात 1 पौण्ड = 5.1665 डालर होगी इसे उच्चतम स्वर्ण बिन्दु अथवा उच्चतम स्वर्णांक कहा जाता हैं। चूंकि अगर विनिमय दर में इससे चढाव आया तो स्वर्ण भेजना प्रारंभ कर देंगे इसी कारण इसे स्वर्ण निर्यात बिन्दु भी कहते हैं। इसके विपरीत दर समता दर से नीचे गिरेगी पर उतार की निम्नतम सीमा स्वर्ण आयात के व्यय को घटाने से मालूम कर ली जायेगी अर्थात 1 पौण्ड = 4.8665 – 0.3 डालर अर्थात 1 पौण्ड = 4.5665 डालर हो जायगी। इसे ही निम्नतम स्वर्ण बिन्दु कहा जाता हैं। चूँकि विनिमय दर इस बिन्दु से नीचे गिरने पर लोग स्वर्ण का आयात करना प्रारंभ कर देंगे, इस कारण इसे स्वर्ण आयात बिन्दु भी कहा जाता हैं। इसका निरूपण निम्न चित्र 26.1 द्वारा भी किया जा सकता हैं

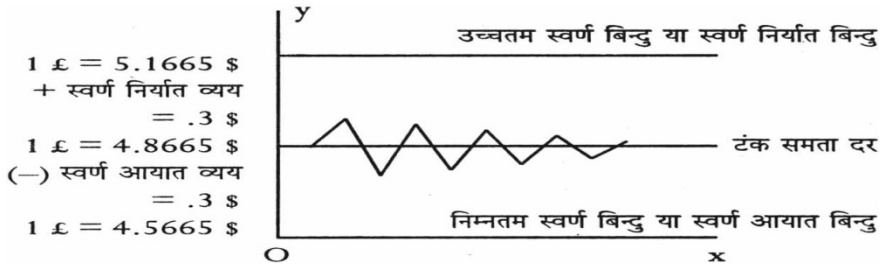

वास्तविक विनिमय दर विदेशी मुद्रा की मांग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होगी जो इस टंक समता दर के इर्द-गिर्द उच्चतम स्वर्ण बिन्दु का निम्नतम स्वर्ण बिन्दुओं द्वारा मर्यादित होती हैं।

26.2.2 रजतमान एवं विनिमय दर

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कर रहे दोनों देशों में रजतमान हो तो विनिमय दर बिल्कुल स्वर्णमान की भाँति ही निर्धारित होती हैं। अंतर केवल इतना हैं कि स्वर्णमान में दोनों देशों में स्वर्णमान होता हैं और दोनों की विनिमय दर स्वर्ण की टकसाली समता द्वारा निश्चित होती हैं जबकि रजतमान के अन्तर्गत दोनों देशें की मुद्रा चाँदी पर आधारित होती हैं और उनकी विनिमय दर चाँदी की टकसाली समता द्वारा निश्चित होती हैं। रजतमान के अन्तर्गत भी मुद्राओं की विनिमय दरों में उतार-चढाव होते हैं परन्तु उतार-चढाव की सीमा चाँदी निर्यात ओर आयात करने के व्यय पर आधारित रहती हैं जैसा कि स्वर्णमान व्यवस्था में होता हैं। व्यवहार में रजतमान कभी भी अन्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित नहीं रहा है।

26.2.3 जब एक देश में स्वर्णमान व दूसरे देश में रजतमान हो

अगर एक देश में स्वर्णमान हो तथा दूसरे देश में रजतमान हो तो ऐसे दो देशों में भी विनिमय दर का निर्धारण टकसाली समता दर के आधार पर होता हैं। सबसे पहले स्वर्णमान वाले देश की मुद्रा की इकाई में विशुद्ध स्वर्ण की मात्रा तथा रजतमान वाले देश की मुद्रा की इकाई में विशुद्ध रजत की मात्रा ज्ञात कर ली जाती हैं और फिर इस विशुद्ध रजत का मूल्य शुद्धस्वर्ण के रूप में मालूम कर लिया जाता है। तब दोनों देशों की मुद्राओं में शुद्धस्वर्ण मूल्य के अनुपात में टंक समता दर ज्ञात कर ली जाती हैं। व्यवहार में विनिमय दर टंक समता दर के इर्द-गिर्द घूमती हैं और स्वर्णमान के समान ही उच्चमत एवं निम्नतम स्वर्ण बिन्दुओं से मर्यादित होती हैं जिसे निर्यात व्यय जोड घटाकर ज्ञात किया जाता हैं।

भारत एवं इंग्लैण्ड के बीच 1898 तक रुपये का स्टर्लिग मूल्य इसी प्रकार निश्चित किया जाता था। इंग्लैण्ड के पौण्ड (स्टर्लिग) में उस समय

शुद्ध स्वर्ण की मात्रा 113.0016 ग्रेन थी जबकि भारत के रुपये में 165 ग्रेन विशुद्ध रजत होता था। जिसका स्वर्ण मूल्य 7.53344 ग्रेन विशुद्ध स्वर्ण आंका जाता था। अत: इस आधार पर एक पौण्ड स्टर्लिंग = $\frac{113.0016}{7.53344}$ अर्थात एक पौण्ड = 15 रुपये अथवा 1 रुपये = 1 शिलिंग 4 पेन्स था।

26.2.4 जब एक देश में स्वर्णमान अथवा धातु मुद्रा का चलन हो परशु दूसरे देश में पत्र मुद्रामान हो।

जब एक देश में स्वर्णमान व दूसरे देश में पत्रमुद्रामान प्रचलित हो तो हन देशों की बीच विनिमय दर का निर्धारण करने के लिए दो प्रकार की रीतियों का प्रयोग किया जाता हैं। प्रथम रीति के अनुसार पर मुद्रामान वाले देश में मुद्रा की एक इकाई जितना स्वर्ण खरीद सकती हैं और स्वर्णमान वाले देश में मुद्रा की एक इकाई जितने स्वर्ण के तुल्य घोषित हैं इन दोनों का अनुपात ही विनिमय दर कहलाती हैं। दूसरी रीति के अनुसार दोनों देशों की मुद्राओं की एक-एक इकाई की क्रय शक्ति उन देशों में अलग-अलग निकाल ली जाती हैं और इसका अनुपात ही विनिमय दर कहलाती हैं।

26.3 पत्र मुद्रामान एवं विनिमय दर निर्धारण

जब दोनों देशों में पत्र मुद्रामान प्रचलित हो उसकी विनिमय दर का निर्धारण टंक समता दर के अभाव में दोनों देशों की मुद्राओं की क्रय शक्ति समता के अनुपात से होता हैं। स्वीडन के अर्थशास्त्री प्रो. गस्टव कैंसल ने क्रय शक्ति समता सिद्धांत की प्रतिपादन किया हैं। विदेशी विनिमय निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त भुगतान संतुलन सिद्धान्त के नाम से माना जाता हैं। यह भी पत्र मुद्रा वाले देशों में दर निर्धारण की व्याख्या करता हैं।

26.3.1 क्रयशक्ति समता सिद्धान्त

जब दो देशों में अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा चलन में होती हैं तो उसकी विनिमय दर दोनों मुद्राओं की क्रय शक्ति के अनुपात द्वारा निश्चित

होती हैं। किसी देश की मुद्रा की एक इकाई के बदले जितनी वस्तु या सेवायें मिल सकती हैं वह उस देश की मुद्रा की क्रय शक्ति कहलाती हैं। उदाहरण के लिए यदि भारत में एक रुपये में दो डबल रोटियाँ आती हैं और अमेरिकन में उसी आकार प्रकार की दो डबल रोटियों का मूल्य 11 सैन्ट हैं तो इसका तात्पर्य यह हैं कि –

1 रुपये की क्रय शक्ति = 2 डबल
रोटी

11 सेंट की क्रय शक्ति = 2 डबल
रोटी

अर्थात भारत में एक रुपये की क्रय शक्ति और अमेरिका के 11 सेंटों की क्रय शक्तियाँ समान हुई। अत: दोनों देशों की मुद्राओं की विनिमय दर 1 रुपया = 11 सेंट हुई किन्तु रुपये से कई प्रकार की वस्तुएं व सेवायें खरीदी जा सकती हैं इसी प्रकार डालर से भी सैकडों प्रकार की वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त की जा सकती हैं अत: क्रय शक्ति में अधिकतम निकटता स्थापित करने के लिए वस्तुओं व सेवाओं के समूह में समानता की चेष्टा की जाती हैं। जैसे निश्चित मात्रा में वस्तुओं व सेवाओं के समूह के लिए भारत में 3000 रु. लगे और उन्हीं वस्तुओं व सेवाओं के लिए अमेरीका में 100 डालर लगे तो भारत के 3000 रुपये अमेरीका के 100 डालर के समान होगे। अत: विनिमय दर 3000 रु. = 100 डाला अथवा 1 डालर = 30 रु. होगी। इस प्रकार भारत व अमेरिकी मुद्राओं की क्रय शक्ति के अनुपात में विनिमय दर निर्धारित हुई। यही क्रय शक्ति समता कहलाती हैं। किन्तु समय-समय पर विभिन्न देशों की मुद्राओं की क्रय शक्ति में परिवर्तन होते रहते हैं और यह आवश्यक नहीं कि सभी देशों की मुद्राओं की क्रय शक्ति में समान अनुपात में परिवर्तन हो। अत: मुद्रा की क्रय शक्ति में परिवर्तन विनिमय दर में भी परिवर्तन को जन्म देता हैं और नया बिन्दु स्थापित होता हैं। जैसे विनिमय दर निर्धारण के समय दोनों देशों में कीमत सूचकांक 100 या और 1

विनिमय दर 1 डालर = 30 रु. थी, अब अगर भारत में मूल्य स्तर में तेजी से वृद्धि होने से सूचकांक 200 हो जाता हैं जबकि अमेरीका में सूचकांक 150 हो जाता हैं तो नई विनिमय दर पुरानी दर के सूचकांक से गुणा कर नया अनुपात मालूम किया जायेगा वही नई दर होगी।

जैसे :- 1 डालर		=30 रुपये
1 × 150		=30 × 200 रुपया
(अमेरिका सूचकांक)	का	(भारत का सूचकांक)
अर्थात 150 डालर		=6000 रुपये
अत: 1 डालर		$= \frac{6000}{150} = 40$ रुपये

इससे स्पष्ट हैं कि भारत में मंहगाई तेजी से बढने के कारण भारत की मुद्रा की क्रय शक्ति अमेरीका की मुद्रा की अपेक्षा तेजी से घटी हैं।

क्रय शक्ति समता सिद्धांत की आलोचनाएँ - अनेक अर्थशात्रियों ने इस सिद्धांत की आलोचना की हैं।

1. **मुद्राओं की क्रय शक्ति का ठीक-ठीक माप कठिन** - विनिमय दर निर्धारण के लिए दोनों देशों की मुद्राओं की क्रय शक्तियों को मूल्य सूचकांकों के माध्यम से नापते हैं जबकि क्रय शक्ति को सूचकांकों से सही-सही ज्ञात करना कठिन हैं।
2. **एक पक्षीय सिद्धांत -** यह सिद्धांत विनिमय दर निर्धारण में केवल पूर्तिपक्ष की और ध्यान देता हैं और मांग पक्ष को छोड़ देता हैं जबकि

मांग पक्ष व पूर्ति पक्ष दोनों की सापेक्षिक शक्तियों से विनिमय दर का निर्धारण होता हैं।

3. **विनिमय दर में होने वाले परिवर्तनों का भी मूल्य स्तर पर प्रभाव पड़ता है। -** दो देशों के आन्तरिक मूल्य स्तरों में होने वाले परिवर्तनों का विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता हैं, पर इस बात को भूला दिया गया हैं कि विनिमय दर में होने वाले परिवर्तन भी स्वयं मूल्य स्तर को प्रभावित करते हैं।
4. **मांग की लोच संबंधी गलत मान्यता -** यह सिद्धांत दोनों देशों में वस्तुओं की मांग की लोच इकाई के बराबर मानता हैं अर्थात जिस अनुपात में मूल्य स्तर में परिवर्तन होता हैं उसी अनुपात में वस्तुओं की मांग में परिवर्तन होता हैं जबकि मांग की लोच इकाई से कम या अधिक हो सकती हैं।
5. **विनिमय दर को पहले ही मानकर चलना गलत है -** यह सिद्धांत विनिमय दर निर्धारण की व्याख्या नहीं करता वरन् पहले से ही मानकर चलता हैं। इस प्रकार यह विनिमय दर निर्धारण की व्याख्या न कर केवल उसमें परिवर्तनों की व्याख्या करता हैं।
6. **दीर्घकालीन व्याख्या -** यह सिद्धांत में विनिमय दर दो देशों की मुद्राओं की क्रय शक्ति समता के बराबर होने की प्रवृति रखती हैं किन्तु यह अल्पकाल में विनिमय दर निर्धारण की और विल्कूल ध्यान नहीं देता।
7. **अव्यावहारिक एवं सामान्य अनुभव से दूर -** आजकल सभी देशों में नियमित विनिमय दरें हैं और इनका क्रय शक्ति समता के कोई विशेष संबंध नहीं हैं।

26.4 विनिमय दर निर्धारण का भुगतान सन्तुलन सिद्धान्त

दीर्घकाल में देश की विदेशी मुद्रा की प्राप्ति ओर विदेशी मुद्राओं के भुगतान में समानता की प्रवृति पाई जाती हैं। जैसा कि कहा जाना हैं कि

"निर्यात आयातों का करते हैं।" अर्थात प्रत्येक देश में दीर्घ काल में कुल आयातों का मूल्य उनके कुल निर्यातों के बराबर होने की प्रवृति रखता हैं।

26.4.1 विदेशी मुद्रा की मांगे

किसी भी देश को विदेशी मुद्रा की मांगे प्राय: आयातों के भुगतान की आवश्यकता विदेशी कम्पनियों की बीमा, जहाजी भाडा, बैकिंग सुविधाओं के भुगतान विशेषज्ञो की सेवाओं का आयात, विदेशों में देश के लिए भुगतान, विदेशों में पूंजी विनियोग विदेशी, पूंजी का बहिर्गमन, विदेशों में ब्याज लाभ तथा ऋणों का भुगतान, राजदूतों एवं प्रतिनिधि मण्डलों पर विदेशों में व्यय युद्ध की क्षतिपूर्ति का भुगतान जनसंख्या प्रवास पर विदेशी मुद्रा में भुगतान व विदेशों को चन्दा एवं सहायता आदि क लिए होती हैं।

26.4.2 विदेशी मुद्रा की पूर्ति

विदेशी मुद्रा की प्राप्ति प्राय: वस्तुओं के निर्यात देश की बीमा जहाजी एवं बैकिंग कम्पनियों को विदेशों से प्राप्त होने वाले भुगतान विदेशी पर्यटकों को देश में व्यय, विदेशी पूंजी का विनियोग आदि से होता हैं।

26.4.3 मांग एवं पूर्ति के साम्य से विनिमय दर का निर्धारण

इस सिद्धांत के अनुसार दो देशों में विनिमय दर का निर्धारण विदेशी की मांग उसकी पूर्ति के बराबर होगी वही विनिमय दर का निर्धारण होगा जैसा निम्न रेखा चित्र में स्पष्ट हैं।

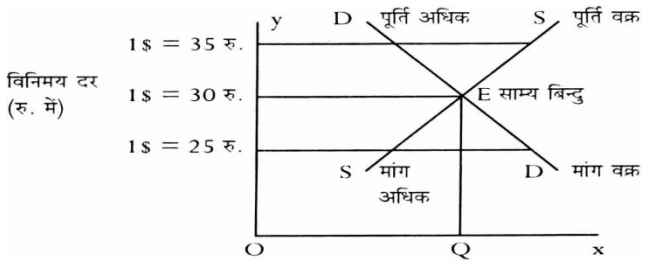

रेखाचित्र 26.2 विदेशी मुद्रा की मांग व पूर्ति

विदेशी मुद्रा की मांग व पूर्ति उपर्युक्त चित्र में विनिमय दर का निर्धारण E बिन्दु पर होता हैं जहाँ विनिमय दर एक डालर = 3 रु हैं या फिर विनिमय दर इससे अधिक अर्थात एक डालर = 35 रु. हो तो पूर्ति मांग की तुलना मैं अधिक रहती जबकि दर साम्य दर से कम होने पर अर्थात एक डालर = 25 रु. होने पर मांग पूर्ति की तुलना में अधिक रहती हैं।

बोध प्रश्न -1

1. विनिमय दर क्या हैं? यह स्वर्णमान के अन्तर्गत कैसे निर्धारित होती हैं?
2. विनिमय की टकसाली समता दर से आप क्या समझते हैं? यह कैसे निर्धारित होती हैं तथा इस दर में उच्चावचन की क्या सीमायें हैं?
3. विदेशी विनिमय के क्रय शक्ति समता सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. "निर्यात आयातों का भुगतान करते हैं।" विवेचना कीजिए।

26.5 विदेशी विनिमय दर में कमी की स्थिति:

माना विदेशी विनिमय बाजार में भुगतान सन्तुलन में अधिक्य के कारण डालर का मूल्य कम हो रहा है आर यह तेजी से गिर रहा है जैसे –

1$ =35 रुपये

1$ =30 रुपये

1$ =25 रुपये (एंव आगे इसी तरह)

तब सम्भव है कि सटोरिये अधिक डालर खरीदना आरम्भ कर दे कि डालर का मूल्य कम हो रहा है। इस प्रकार डालर की सटटा् मांग में वृद्धि होगी। सटोरियें डालर को इस उद्देश्य से खरीद रहे है कि बाद में इसे ऊँचे मूल्य पर विक्रय करेगें, जो भी हो इसे डालर के मांग वक्र में दायी ओर परिवर्तन होगा ओर डालर के मूल्य मे होने वाली कमी को स्थिर रखेगा जैसा कि निम्न चित्र में स्पष्ट है

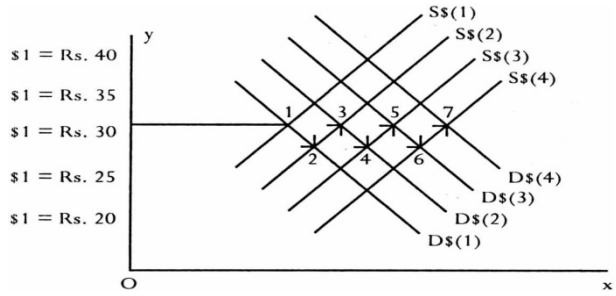

रेखा चित्र 26.2 स्थिरकारी सौदे बाजी

रेखा चित्र 26.2 में भुगतार सन्तुलन में अधिशेष होने के कारण डालर की पूर्ति वक्र दायी ओर नीचे की तरफ खिसक रहा है यदि डालर की मांग में कोई वृद्धि न हो तो पूर्ति वक्र उत्तरोतर नीचे की ओर खिसकेगी ओर डालर के मूल्य में निरन्तर कमी आयेगी किन्तु सटारियों की डालर की मांग मे वृद्धि के कारण मांग वक्र भी ऊपर दायी ओर खिसकने से डालर की मांग व डालर की पूर्ति एक दूसरे के प्रभाव को निरन्तर कर देगी और विनियम दर पूर्ववत बनी रहेगी जैसे कि 1 बिन्दु से 7 बिन्दु तक जाने पर विनिमय दर में उतार चढ़ाव अन्तत: पूर्ववत दर पर ही बना रहेगा। सटोरिया का दूसरा पहलू यह भी हो सकता है कि भुगतान सन्तुलन में अधिशेष होने के कारण डालर के मूल्य में कमी होने पर सटोरिये यह सोचने लगे कि भविष्य में डालर के मूल्य में अधिक कमी होगी अत: भारी नुकसान से बचने के लिए वे डालर को बेचने लगें फलस्वरूप डालर की पूर्ति में और अधिक वृद्धि होगी और विनिमय दर में और कमी होगी जिससे सट्टे बाजी अस्थिरता को जन्म देगी जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट है।

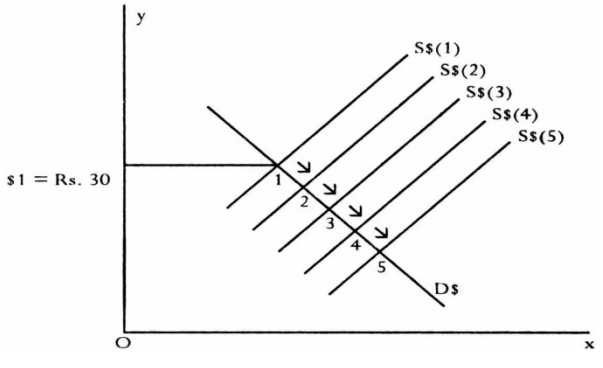

रेखा चित्र 26.3 अस्थिरकारी सौदेबाजी

डालर का पूर्ति वक्र निरन्तर नीचे दायी ओर खिसक रहा है क्योंकि सटोरिये डालर को बेच रहे है जिससे विनिमय दर में निरजर गिरावट हो रही है अत: सन्तुलन बिन्दु 1 से निरन्तर दूर जाने पर सौदेबाजी अस्थिरता को जन्म दे रही है।

26.6 विदेशी विनिमय दर में वृद्धि की स्थिति

जब भुगतान सन्तुलन में घाटा होने पर विदेशी विनिमय दर में वृद्धि होने पर यह सम्भव है कि सटोरियें डालर को बेचना आरम्भ कर दे क्योंकि उन्हे यह आंशका है कि अभी विनिमय दर अधिक है। और बाद में विनिमय दर में कमी आ सकती है। अत: इसका यह प्रभाव होगा कि डालर की पूर्ति में वृद्धि होगी जिससे विनिमय दर में कमी होगी और यह स्थिरकारी प्रवृतियों को जन्म देगी जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट है।

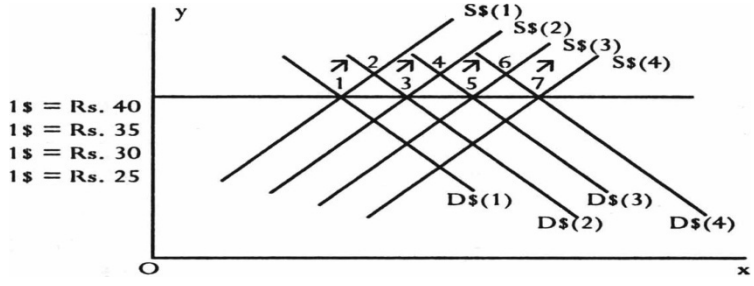

रेखा चित्र 26.4 डालर की मांग व पूर्ति स्थिरकारी सौदेबाजी

विदेशी विनियम दर बिन्दु एक पर 1$ =30/- रुपये स्थिर है अब भुगतान सन्तुलन में घाटा होने से विनिमय दर में वृद्धि होगी और मांग वक्र में दायी और विवर्तन होगा किन्तु सटोरियों को यह सम्भावना है कि भविष्य में डालर की कीमत में कमी होगी। जिससे वे वर्तमान में डालर को बेचना आरम्भ कर देगे। और डालर का पूर्ति वक्र भी दायीं और विवर्तित होगा। फलस्वरूप विनिमय दर में कमी हो जायेगी। इस प्रकार विनिमय दर में उतार चढाव बना रहेगा किन्तु यह पूर्ववत दर पर निर्धारित हो जायेगा।

यहां पर सटोरियों का दूसरा पहलू यह भी हो सकता है कि भविष्य में डालर की कीमत में और वृद्धि हो सकती है अत: वे डालर को खरीदना चाहेंगे जिससे डालर के मूल्य में और अधिक वृद्धि होगी। और सट्टेबाजी अस्थिरता को जन्म देगी। जैसा कि निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट है।

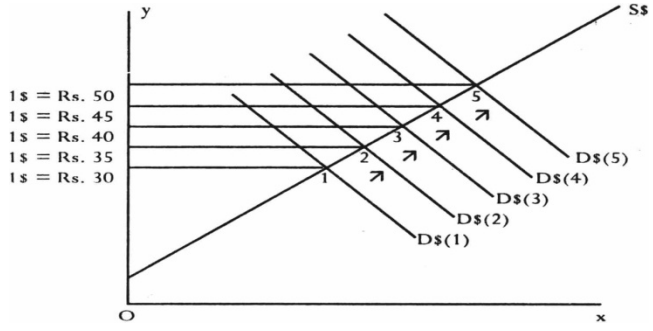

रेखा चित्र 26.5 अस्थिरकारी सौदेबाजी

विदेशी विनिमय दर बिन्दु 1 पर स्थिर है अब भुगतान सन्तुलन में घाटा होने पर मांग वक्र दायीं ओर खिसक कर ऊपर जाने से विनिमय दर में वृद्धि होगी, सटोरियों को आशंका है कि भविष्य में डालर के मूल्य में और अधिक वृद्धि होगी जिससे वे डालर खरीदना आरम्भ कर देते है फलस्वरूप विनिमय दर में और वृद्धि होती जाती है इस प्रकार सौदे बाजी अस्थिरता को जन्म देती है।

बोध प्रश्न 2

1. भुगतान संतुलन में अधिक्य का विनिमय दर पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. भुगतान संतुलन प्रतिकूल होने पर विनिमय दर पर क्या प्रभाव पड़ता है?
3. विदेशी विनिमय बाजार में सट्टेबाजी का विनिमय दर पर क्या प्रभाव पड़ता है?

26.7 सारांश

जिस दर पर एक देश की मुद्रा का दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तन किया जाता है उसे विनिमय दर कहा जाता है। विनिमय दर में विदेशी

मुद्रा की मांग व पूर्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मांग व पूर्ति के अन्तर को कम करने के लिए सरकारें विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय करती है। जब दोनों देशों में धातु मुद्रा का चलन था तो विनिमय दर का निर्धारण उनमें विद्यमान स्वर्ण अथवा रजत की मात्रा के अनुसार होता था। आज विश्व में कहीं भी धातु मुद्रा का चलन नहीं है। अब विनिमय दर का निर्धारण क्रयशक्ति समता अथवा भुगतान संतुलन की स्थिति के आधार पर होता है। यदि भुगतान संतुलन में सुधार के कारण डालर का मूल्य कम हो जाल है तो सट्टा मांग में वृद्धि होने से डालर का मूल्य स्थिर हो जाएगा। इसके विपरीत सट्टेबाजी से भविष्य में और मूल्य गिरने की आशंका पैदा होने पर विनिमय दर में अस्थिरता पैदा होगी। इसी प्रकार भुगतान संतुलन में घाटा होने पर विनिमय दर में वृद्धि होगी ओर सटोरिए डालर बेचना प्रारम्भ कर देगें। इससे पुन: स्थिरता आ जाएगी। यदि सटोरियों की धारणा भविष्य में मूल्य वृद्धि की हो तो वे ऊंचे मूल्यों पर भी डालर खदीदेगें इस से देश में अस्थिरता को जन्म मिलेगा।

26.8 शब्दावली,

1. स्वर्णमान Gold standard
2. रजतमान Silver standard
3. टकसाली समता दर Mintpar parity Rate
4. क्रयशक्ति समता Purchasing Power Parity
5. भुगतान संतुलन सिद्धान्त Balance of Payments Theory

26.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. P.T.Ellsworth International Economics
2. C.P.Kindleberger, International Economics

3. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, सिन्हा वी.सी.

इकाई 27

स्थिर एवं लचीली विनिमय दरें
Fixed and Floating Exchange Rate

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 विदेशी विनिमय दर प्रणालियाँ एवं नीतियाँ

27.2.1 सन् 1870 - 1914 तक

27.2.2 सन् 1914 - 1944 तक

27.2.3 सन् 1944 - 1971 तक

27.2.4 सन् 1971 से वर्तमान समय तक

27.3 लचीली विनिमय दरें

27.4 नियंत्रित विनिमय दरें

27.5 प्रबन्धकीय लचीली दरें

27.5.1 समायोज्य मात्रा प्रणाली

27.5.2 घिसटती हुई प्रणाली

27.5.3 ब्रिटेन वुड्स प्रणाली

27.6 सारांश

27.7 शब्दावली

27.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

27.9 निबन्धात्मक प्रश्न

27.0 उद्देश्य

आप जान चुके हैं कि विनिमय दर का निर्धारण विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति द्वारा होता हैं। परन्तु क्या एक बार निर्धारित होने के बाद यह स्थिर रहती है अथवा इसमें परिवर्तन होता रहता है? इन्हीं आधारों पर विनिमय दर को स्थिर अथवा लचीला कहा जाता है। आजकल विश्व के अधिकांश देश लचीली विनिमय दर अपनाते है जिनमें प्रतिदिन परिवर्तन होता रहता है। इस इकाई में आपका परिचय इन्ही दोनों प्रकार की विनिमय दरों से कराया जाएगा।

27.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक देश की मुद्रा का दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तन करने की दर स्थिर होने पर सरकार की जिम्मेदारी अत्यधिक बढ़ जाती है। इनमें उच्चावचन होने पर देश के केन्द्रीय बैंक को निर्धारित दरों पर मुद्रा बेचनी अथवा खरीदनी पड़ती है। आजकल स्वतंत्र व्यापार एवं उदारीकरण के पक्षधर अर्थशास्त्रियों का मानना है कि स्थिर विनिमय दर देश के विकास के दीर्घकालिक हित में नहीं है इसलिए विनिमयदर को मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के नियंत्रण में खुला छोड़ देना चाहिए। इससे देश के निवासियों की रूचि एवं मांग के अनुरूप वस्तुएं आयात होगी एवं देश की क्षमता के अनुरूप वस्तुएं निर्यात होगी। इस इकाई में विनिमय दरों के चलन का ऐतिहासिक विवेचन एवं लचीली दरों के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की गई है।

27.2 विदेशी विनिमयदर प्रणालियाँ एवं नीतियाँ

पिछले 125 वर्षो में विश्व में विभिन्न विनिमय दरों का चलन व अनुभव रहा है जिसे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

27.2.1 सन् 1870 **- 1914** तक

इस अवधि में स्वर्ण मान प्रचलन में रहा और प्रणाली में घाटे को ठीक करने को लिए आंतरिक अस्फीति (मंदी) का एवं अधि-शेष को ठीक

करने के लिए आंतरिक स्फीति (तेजी) को अपनाया गया इस प्रकार बाहय असुन्तलन को ठीक करने के लिए आंतरिक स्थिति व बेरोजगारी का सहारा लिया गया इस अवधि में प्राय: विनिमय दर स्थिर रही और उत्पादन व साधनो की गतिशीलता पर कोई प्रतिबंध नहीं रहा था। यह स्थिति प्रथम विश्व युद्ध तक रही।

27.2.2 सन् **1914 - 1944** तक

प्रथम विश्व युद्ध के बाद एवं द्वितीय विश्व युद्ध तक इस स्थिति से तेजी से परिवर्तन हुआ। स्वर्णमान को त्याग दिया गया, स्वर्णमान को पुन: स्थापित करने के प्रयासों में सफलता नही मिली इस अवधि में अधिकतर देशों में बाजार की स्थिति के अनुसार अपनी मुद्रा की विनिमय दरों मैं परिवर्तन जारी रखा पौण्ड स्टर्लिग ने अन्तर्राष्ट्रीय साख खो दी।

27.2.3 सन् 1944 **- 1971** तक

यह काल स्थिर विनिमय दर का रहा। 1944 में ब्रेटेन बुड्स सम्मेलन के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का गठन हुआ एवं स्थिर विनिमय दर प्रणाली का जन्म हुआ। एक विनिमय दर किसी देश की स्थिर होने के बाद वह देश बिना मुद्रा कोष की स्वीकृति के नहीं बदल सकता था। जब तक कि मुद्रा कोष यह आश्वस्त नहीं हो जायें कि यह परिवर्तन भुगतान संतुलन में मूलभूत असंतुलन को ठीक करने हेतु आवश्यक हैं। ब्रेटेन बुड्स प्रणाली 1971 में समाप्त हो गई।

27.2.4 सन् **1971** से वर्तमान समय तक

1971 में डालर संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। दिसम्बर 1971 में एक समझौता हुआ जिसके फलस्वरूप डालर का अवमूल्यन हुआ और यूरोपीय मुद्राओं व जापानी येन का अधिमूल्यन हुआ। इस समझौते को राष्ट्रपति निक्सन ने "विश्व के इतिहास में एक महत्वपूर्ण समझौते" की संज्ञा दी किन्तु यह 14 माह पश्चात ही समाप्त हो गया और डालर का पुन: अवमूल्यन हो गया और कई अन्य मुद्राओं का अधिमूल्यन हुआ। इस प्रकार

1971 से 1976 तक की अवधि में अनौचागरिक रूप से लचीली विनिमय दरें रहीं। 1971 से जमैका समझौता हुआ जिसके फलस्वरूप अब औपचारिक लचीली विनिमय दरें कार्यशील हैं।

विनिमय दरों को मुख्य रूप से तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं।

27.3 लचीली विनिमय दरें -

विदेशी विनिमय दर या रुपयें के रूप में डालर की कीमत डालर की मांग व पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती हैं डालर की अतिरिक्त मांग से विदेशी विनिमय दर में वृद्धि होगी अर्थात डालर का अधिमूल्यन व रुपये की अवमूल्यन होगा एवं डालर की अतिरिक्त पूर्ति से विदेशी विनिमय दर में कमी होगी अर्थात डालर का अवमूल्यन व रुपये का अधिमूल्यन होगा। जब डालर की मॉग इसकी पूर्ति के ठीक समान होगी तब हम कह सकते हैं। कि विदेशी विनिमय बजार में संतुलन हैं इसे निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा समझाया जा सकता हैं।

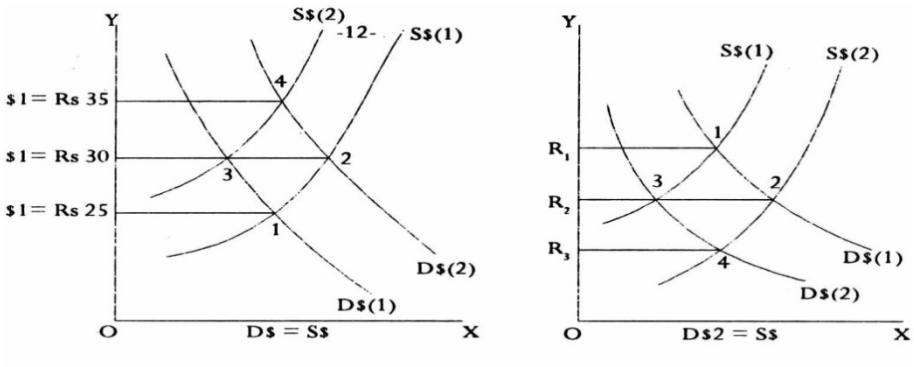

मानाकि किन्हीं कारणों से डालर की मांग में वृद्धि होती हैं। डालर की मांग में वृद्धि कई कारणों से हो सकती हैं: कोई नया विकास कार्यक्रम अपनाया जाये जिससे पूंजीगत या उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में वृद्धि हो, अनावृष्टि या अतिवृष्टि से फसल को नुकसान हो जिससे निर्यात न हों सकें बल्कि उस वर्ष में आयात करना पड़े, विदेशों में उस वस्तु की मांग मे कमी हो जाय जिससे डालर की मांग में वृद्धि हो सकती हैं या विदेशों से

प्राप्त होने वाली आय में कमी हों सकती हैं। भुगतानसंतुलन में घाटा डालर के मांग वक्र दायीं ओर खिसकने से आया पूर्ति वक्र बायीं ओर खिसकने से या दोनों के कारण हो सकता हैं उपर्युक्त रेखाचित्र 27.1 में संतुलन 1 बिन्दु पर हैं अब यदि डालर के मांग वक्र में दायीं ओर विवर्तन होता है तो संतुलन बिन्दु 2 होगा और डालर का अधिमूल्यन व रुपये का अवमूल्यन होगा या डालर के पूर्ति वक्र में बायीं ओर विवर्तन होता हैं तब भी बिन्दु 3 पर यही स्थिति रहेगी या दोनों में परिवर्तन होता हैं तो संतुलन बिन्दु 4 होगा और डालर का अधिमूल्यन व रुपये का अवमूल्यन अधिक होगा।

अब हम अधिशेष की स्थिति की चर्चा करेगे। रेखाचित्र 27.2 में मूल संतुलन 1 बिन्दु पर हैं अब डालर की मांग में कमी होने से मांग वक्र नीचे बायीं ओर विवर्तित होता हैं या पूर्ति वक्र दायीं ओर विवर्तित होता हैं या दोनों के संयुक्त रूप में अधिशेष की स्थिति उत्पन्न होती हैं तो डालर का अवमूल्यन होगा और रुपये का अधिमूल्यन होगा।

27.4 **नियंत्रित विनिमय दरें** -

इस प्रणाली के अन्तर्गत सरकार का नियंत्रण होता हैं और एक निश्चित विनिमय दर को बनाये रखने के लिए सरकार हस्तक्षेप करती हैं ताकि इस स्तर सें अधिक व कम दर निर्धारित न हो। यदि डालर की मॉग व पूर्ति में परिवर्तन के द्वारा या सटौरियों के कारण इस दर में परिवर्तन होता हैं तो सरकार इसमें हस्तक्षेप करके इस दर को नियंत्रित करने का प्रयास करती हैं। इसे निम्नलिखित रेखाचित्रों द्वारा दर्शाया जा सकता हैं।

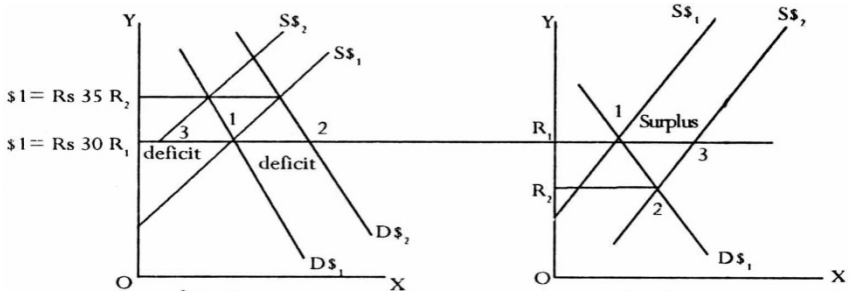

उपर्युक्त रेखाचित्र 27.3 में 1 संतुलन बिन्दु हैं अब यदि डालर की मांग में वृद्धि हो या डालर की पूर्ति में कमी हो जाय तो विनिमय दर R_1 से बढ़कर R_2 हो जायेगी अब यदि सरकार को विनिमय दर R_1 पर स्थिर रखना हैं तो सरकार के पास तीन विकला हैं (1) प्रथम जो पूर्व में उसने भुगतान संतुलन में अधिशेष के द्वारा विदेशी विनिमय प्राप्त किया हैं उसे कम करें (2) द्वितीय अल्पकालीन विदेशी विनिमय ऋण ले (3) तृतीय स्वर्ण का निर्यात करें।

अब यदि रेखाचित्र 27.4 के अनुसार पूर्ति वक्र में दायीं ओर विवर्तन होता हैं तो विनिमय दर में कमी होंगी अर्थात डालर का अवमूल्यन वह रूपये का अधिममूल्यन होगा अत: विनिमय दर को स्थिर बनाये रखने के लिए सरकार डालर की खरीद करेगी ताकि विनिमय दर पूर्ववत बनी रहें।

27.5 प्रबन्धकीय लचीली दरें

इसके अन्तर्गत तीन प्रकार की दरें आती हैं जो इस प्रकार हैं

27.5.1 समायोज्य मात्रा प्रणाली?

(एडजस्टेबल पेग सिस्टम) इस प्रणाली के अन्तर्गत विदेशी विनिमय की जहां तक संभव हो स्थिर दर बनाये प्रयास किया जाता हैं। जब तक विदेशी विनिमय कोष उपलब्ध हैं तब तक विनिमय दर स्थिर रखा जाता हैं एवं कोष समाप्त होने पर मुद्रा का अवमूल्यन कर दिया जाता हैं और नई विनिमय दर निर्धारित की जाती है एवं नई विनिमय दर भी यदि पुन: विचलित होने लगे तो विनिमय कोष द्वारा उसे स्थिर बनाये रखने का प्रयास किया जाता हैं। इसके उपरान्त भी कोष समाप्त होने की स्थिति आ जाय तो पुन: अवमूल्यन का दिया जाता हैं जैसा रेखाचित्र 27.5 से स्पष्ट हैं।

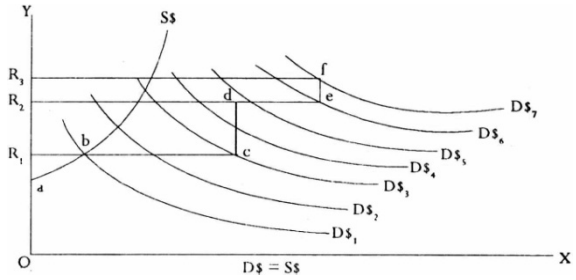

रेखाचित्र 27.5

डालर की विनिमय दर R_1 हैं एवं डालर की मांग में वृद्धि होने पर सरकार bc पूर्ति वक्र के रूप में विनिमय दर को स्थिर रखने का प्रयास करती हैं c बिन्दु विनिमय कोष समाप्त होने पर रुपये का अवमूल्यन कर दिया जाता हैं और नई दर R_1 निर्धारित कर दी जाती है इस दर पर de पूर्ति वक्र के साथ विनिमय दर स्थिर रखी जानी हैं और e बिन्दु पर कोष समाप्त होने पर पुन: रुपये का अवमूल्यन कर दिया जाता हैं इस प्रकार यह प्रक्रिया पूर्ति वक्र abcdef पूर्ति वक्र के रूप में चलती हैं।

27.5.2 घिसटती हुई प्रणाली (क्राउलिंग सिस्टम)

इस प्रणाली के अन्तर्गत तुरन्त अवमूल्यन नहीं किया जाना हैं और जहॉ तक हो सकें अवमूल्यन को टाला जाता हैं किन्तु इतना इंतजार नहीं किया जाता कि सम्पूर्ण विदेशी विनिमय कोष समाप्त हों जाये। इस प्रणाली में विनिमय दर में परिवर्तन कम से कम अवमूल्यन करके किया जाता हैं जैसे रेखाचित्र 27.6 में स्पष्ट हैं।

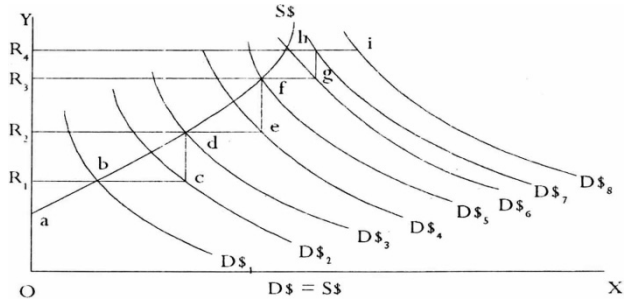

रेखाचित्र 27.6

उपर्युक्त रेखाचित्र 27.6 में मूल विनिमय दर R_1 हैं bc के मध्य सरकार डालर बेच कर विनिमय दर नियंत्रित दर नियंत्रित करती है cd के मध्य न्यूनतम अवमूल्यन करती हैं अब पुन: सरकार नई विनिमय दर R_2 पर स्थिर रखना चाहती हैं और नियंत्रण करने के लिए डालर का विक्रय करती हैं। ef के मध्य पुन: अवमूल्यन करना पडता हैं इस प्रकार abcdefghi के रूप में डालर का पूर्ति वक्र निर्धारित होता हैं।

27.5.3 ब्रिटेन वुड्स प्रणाली

1944 से 1971 तक ब्रेटन ब्रेटेन प्रणाली कार्यशील थी जिसके अन्तर्गत स्थिर विनिमय दर अपनाई गई थी किन्तु यह स्थिर पर सापेक्षिक रूप से थी न कि निरपेक्ष रूप से। 1870 से 1941 तक स्वर्णमान के अन्तर्गत भी निरपेक्ष रूप से स्थिर दरें नहीं रही थी। सापेक्ष रूप से विनिमय दर की ऊपरी व निचली सीमा निर्धारित कर दी जाती हैं जिसके मध्य ही विनिमय दर में परिवर्तन होता रहता हैं। यह रेखाचित्र 27.7 में स्पष्ट हैं।

रेखाचित्र 27.7

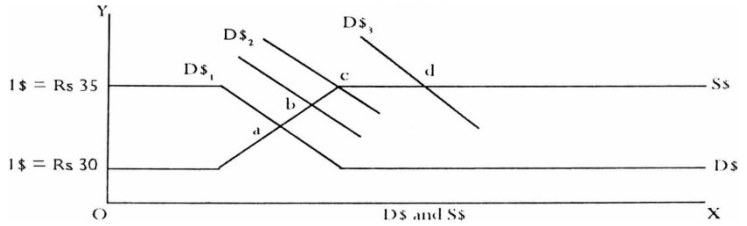

उपर्युक्त रेखाचित्र 27.7 में मूल विनिमय दर a बिन्दु पर हैं अब डालर की मांग में वृद्धि होने पर विनिमय दर b पर एवं c पर निर्धारित होनी हैं सरकार c तक विनिमय दर में वृद्धि को मान्य करती हैं किन्तु मांग वक्र $D\$_3$ होने पर c से d के मध्य सरकार डालर की बिक्री करके विनिमय दर को ऊपरी सीमा से अधिक नहीं बढ़ने देती हैं। इस प्रकार ऊँपरी सीमा व निचली सीमा के मध्य सरकार हस्तक्षेप नहीं करती और बाजार की मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा संतुलन बनाये रखने के लिए स्वतंत्र छोड़ देती हैं। इन सीमाओं से बाहर होने पर सरकार हस्तक्षेप करनी हैं।

27.6 सारांश

स्वर्णमान के युग में आन्तरिक अपस्फीति एवं स्फीति को अपनाकर विनिमय दरों को टकसाली समता पर स्थिर रखा जाता था। विश्व युद्धों के समय मजबूरन कई देशों को स्वर्णमान का त्याग करना पड़ा एवं विनिमय दरों मे बाजार की स्थिति के अनुरूप परिवर्तन आया। 1944 में ब्रिटेन बुडस व्यवस्था के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के गठन के साथ स्थिर विनिमय दरों का नया युग प्रारम्भ हुआ। 1971 के बाद डालर संकट के बाद लचीली विनिमय दरों का युग प्रारम्भ हुआ। लचीली विनिमय दरें मांग एवं पूर्ति के अनुसार तय होनी है। इसके अतिरिक्त प्रबन्धकीय लचीली दरें विभिन्न प्रकार की होती है जिनमें समायोज्य मात्रा प्रणाली घिसटती हुई प्रणाली एवं ब्रिटेन बुडस प्रणाली का यहां वर्णन किया गया है। यहां पर दी गई सामग्री पर्याप्त नहीं होगी विद्यार्थियों से अपेक्षा है कि वे विभिन्न सन्दर्भ ग्रथों का अध्ययन करे।

27.7 शब्दावली

1. स्थिर विनिमय दर Fixed Exchange Rate
2. लचीला विनिमय दर Flexible Exchange rate
3. घिसटती हुई प्रणाली Crowling system

27.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. एम. सी. वैश्य एवं सुदामा सिंह -अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र
2. एडवर्ड शापिरो -मेकोइकानोमिक्स

27.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विनिमय दर क्या हैं? यह स्वर्णमान के अन्तर्गत कैसे निर्धारित होती है?
2. विनिमय की टकसाली समता दर से आग क्या समझने हैं यह कैसे निर्धारित होती हैं तथा इस दर में उच्चावचन की क्या सीमायें हैं?
3. विदेशी विनिमय के क्रय शक्ति समता सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. "निर्यात आयातों का भुगतान करते हैं।" विवेचना कीजिए।
5. नियंत्रित व लचीली विनिमय दर प्रणाली में से आप किसे लागू करना पसन्द करेगें व क्यों? विवेचना कीजिए।

इकाई 28

अवमूल्यन लोचविधि, अवशोषण विधि एवं मौद्रिक नीतियों का समन्वय

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य

28.1 प्रस्तावना

28.2 अवमूल्यन के उद्देश्य

28.3 अवमूल्यन के सफलता की शर्तें

28.4 अवमूल्यन के प्रभाव का विश्लेषण

28.4.1 अवमूल्यन - लोच विधि

28.4.2 अवमूल्यन - अवशोषण विधि

28.5 आन्तरिक एवं बाह्य संतुलन मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों का समन्वय

28.6 सारांश

28.7 शब्दावली

28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

28.9 निबन्धात्मक प्रश्न

28.0 उद्देश्य

अवमूल्यन का अर्थ किसी देश की मुद्रा के बाह्य मूल्य को कम करने से होता हैं। इस इकाई के अन्तर्गत अवमूल्यन के प्रभाव का विशलेषण करने की लोच विधि एवं अवशोषण विधि का प्रयोग किया जायेगा एवं

मौद्रिक दृष्टिकोण तथा इसके द्वारा समन्वय स्थापित करने के प्रयासों की विवेचना की जायेगी। इस इकाई के अध्ययन बे बाद आप समझ सकेंगे कि:

- अवमूल्यन क्या है? व यह क्यों किया जाना है?
- मांग की लोच का निर्यात आयात पर क्या प्रभाव पड़ता है?

28.1 प्रस्तावना

जब कुछ कारणों के फलस्वरूप दूसरे देशों की मुद्रा की तुलना में एक देश की मुद्रा की विनिमय दर कम करके उसके विनिमय मूल्य को सस्ता कर दिया जाता हैं तो उस प्रक्रिया को ही अवमूल्यन कहते हैं। प्रतिकूल व्यापार संतुलन को ठीक करने हेतु एक उपाय अवमूल्यन भी हैं। अवमूल्यन का अर्थ हैं मुद्रा के बाह्य मूल्य में कमी करना। जैसे डालर का मूल्य रुपये के रूप में बढ़ा दिया जाये या रुपये का मूल्य डालर के रूप मैं कम कर दिया जाये तो इसे भारतीय रुपये का अवमूल्यन कहा जायेगा।

28.2 अवमूल्यन के उद्देश्य

1. **निर्यात को प्रोत्साहन देना -** अवमूल्यन के द्वारा देश की मुद्रा का बाहरी मुद्रा की तुलना में कम हो जाता हैं जिससे विदेशियों को हमारी वस्तुएं सस्ती प्राप्त से निर्यात बढ़ते हैं।

2. **आयातों को हतोत्साहन -** अवमूल्यन के फलस्वरूप विदेशी वस्तुएं महंगी हो जाती हैं जिससे उनकी कीमत देश में बढ़ने पर मांग में कमी हो जाती है। इससे आयात घटते हैं।

3. **अनुचित व्यापारिक तरीकों व विदेशी मुद्रा की काला बाजारी रोकना -** अवमूल्यन के द्वारा मुद्रा का मूल्य इसकी साम्य विनिमय दर के बराबर रखा हैं ताकि विदेशी मुद्रा की काला बाजारी कम हो।

4. **अन्य देशों द्वारा राशिपातन को रोकना -** यदि अन्य देश राशिपातन द्वारा हमारे देश में कम मूल्य पर वस्तुएं बेचने का प्रयास करता हैं तो उसे अवमूल्यन के हतोत्साहित किया जाता हैं।

5. **विदेशी निवेश कर्ताओं को पूंजी निवेश हेतु प्रोत्साहित करना -** अवमूल्यन के फलस्वरूप विदेशी निवेशकर्ता को यहां विनियोग करने थे प्रेरणा मिलती हैं।

28.3 अवमूल्यन के सफलता की शर्तें

1. **आयातित वस्तुओं की मांग अत्यधिक लोचदार होनी चाहिए -** यदि अवमूल्यन के फलस्वरूप आयातित वस्तुओं की मांग में अनुपातिक कमी नहीं होती तो कुल आयात बिल बढ जायेगा। अत: आयातित वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार (em>1) होनी चाहिय।

2. **अन्य देशों में निर्यातित वस्तुओं की मांग भी अत्यधिक लोचदार होनी -** यदि अवमूल्यन के फलस्वरूप हमारे द्वारा निर्यातित वस्तुओं की मांग में अनुपातिक रूप से वृद्धि नहीं हुई तो कुल विदेशी आय में कमी हो जायेगी। अत: निर्यातित वस्तुओं की अत्यधिक लोचदार (em>1) होनी चाहिए।

3. **अवमूल्यन के साथ-साथ देश मे आन्तरिक मूल्य अपरिवर्तित रहने चाहिए -** यदि निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का निर्माण आयातित कच्चे माल द्वारा होता हैं तो देश में अवमूल्यन के फलस्वरूप उत्पादन लागत में वृद्धि से मूल्य वृद्धि हो जायेगी और निर्यातों मे अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पायेगी।

4. **निर्यातित वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति होनी चाहिए -** अवमूल्यन के फलस्वरूप निर्यातों में वृद्धि होने पर देश में पर्याप्त उत्पादन होना चाहिए।

5. **अन्य देश अपनी मुद्राओं का अवमूल्यन न करें -** यदि अन्य दे कभी अवमूल्यन करते हैं तो इससे निर्यातों में अपेक्षित वृद्धि नहीं होगी।

6. **अयातित वस्तुओं का प्रतिस्थापन संभव होना चाहिए -** अवमूल्यन के फलस्वरूप विदेशी वस्तुओं मंहगी होने के कारण उनकी मांग में कमी होगी किन्तु साथ ही उन वस्तुओं की प्रतिस्थापना वस्तुएं आवश्यक हैं अन्यथा आयातों में कमी नहीं हो पायेगी।

7. **अवमूल्यन मुद्रास्फीति काल में न किया जाये -** यदि मुद्रास्फीति काल में अवमूल्यन किया जायेगा तो लोगों में यह आशंका रहेगी कि कीमतों में अभी और वृद्धि अत: संचय की प्रवृति बढ़ेगी।

8. **देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार तथा पूंजी का पर्याप्त महत्व होना चाहिए-** जिस देश मैं विदेशी व्यापार तथा पूंजी का महत्व होता हैं वहां अवमूल्यन का प्रभाव सकारात्मक होता है।

28.4 अवमूल्यन के प्रभाव का विश्लेषण

अवमूल्यन का आय कीमत व उत्पादन पढ़ने वाले प्रभावों की विश्लेषण करने के लिए दो प्रकार की रीतियों (विधियों) का प्रयोग प्रचलित हैं।

28.4.1 अवमूल्यन - लोच विधि (मार्शल-लर्नर शर्त)

अवमूल्यन के द्वारा देश की मुद्रा का बाह्य मूल्य घट जाता हैं जैसे एक डालर = 20 रुपये विनिमय दर होने पर रुपये का 25 प्रतिशत अवमूल्यन करने पर विनिमय दर 1 डालर = 25 रुपये हो जायेगी। जिससे प्रभाव यह होगा कि अमेरीकन यह सोचेंगे कि भारतीय वस्तुएं सस्ती हो गई हैं। क्योंकि पहले 20 रुपये मूल्य की वस्तुओं के उन्हें एक डालर देना पडता था जबकि अब 25 रुपये मूल्य तक की वस्तुओं के लिए उन्हें केवल एक डालर का ही भुगतान करना पड रहा हैं इसी प्रकार भारतीयों के लिए अमेरीकी वस्तुएं महंगी होगी, क्योंकि पहले एक डालर की कीमत वाली वस्तुओं के उन्हें 20 रुपये का भुगतान करना पडता था अब उन्हें 25 रुपये का भुगतान करना पडेगा। इसका परिणाम होगा कि अमेरीका का भारत से आयात सस्ता होगा और भारत का अमेरीका से आयात महंगा जिससे भारत के निर्यातों में वृद्धि होगी और भारत के आयातों में कमी होगी।

अब प्रश्न उत्पन्न होता हैं कि क्या अवमूल्यन से भारत का व्यापार संतुलन अनुकूल होगा? यह दो तत्वों पर निर्भर करता हैं। (1) भारतीय वस्तुओं की अमेरीका में मांग की कीमत लोच (2) अमेरीका से आयतित

वस्तुओं की भारत में मांग की कीमत लोच। सामान्य रूप में यदि भारतीय वस्तुओं की अमेरीका में कीमत लोच बेलोचदार हैं तो अवमूल्यन मे भारत के निर्यात मूल्यों में वृद्धि नहीं होगी। इसी प्रकार यदि भारत में आयातित वस्तुओं की कीमत लोच बेलोचदार हैं तब भी आयात मूल्यों में कमी नहीं होगी और भारत को आयातों का मूल्य अधिक चुकाना पडेगा जिससे भारत की स्थिति और अधिक प्रतिकूल हो सकती हैं।

अवमूल्यन की कार्यप्रणाली को इस प्रकार समझाया जा सकता हैं मानाकि एक डालर = 20 रुपये विदेशी विनिमय दर हैं अब रूपये के अवमूल्यन के फलस्वरूप विनिमय दर 1 डालर = 25 रुपये हो जाती है तो इससे (1) निर्यात बढ़ेगे और निर्यातों से प्राप्त होने वाली आय में वृद्धि होगी एवं (2) आयात घटेंगे एवं आयात व्यय में कमी होगी।

(1) अवमूल्यन से आयात महंगें होगे एक केलकुलेटर जिसकी कीमत 4 डालर हैं उसके भुगतान के लिए अब तक भारतीय को 80 रुपये देने पडने थे अब अवमूल्यन के पश्चात उसे उसी केलकुलेटर को 100 रूपये (एक डालर = 25) देने पड़ेगे। यद्यपि केलकुलेटर की कीमत डालर में अभी भी 4 डालर ही हैं। दूसरे शब्दों में अवमूल्यन के फलस्वरूप व पूर्व अमेरीका में मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। केवल अवमूल्यन से भारत में आयातित वस्तुएं मंहगी हो गई हैं। अत: यह विश्लेषण का प्रश्न हैं कि अवमूल्यन से भारतीय आयात एवं आयात व्यय पर क्या प्रभाव पड़ना हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस पर निर्भर करना हैं कि भारत में आयातित वस्तुओं की मांग की लोच क्या हैं? इस संबंध में तीन संभावनाएं हो सकती हैं। जिन्हें निम्नलिखित रेखाचित्रों द्वारा दर्शाया जा सकता हैं।

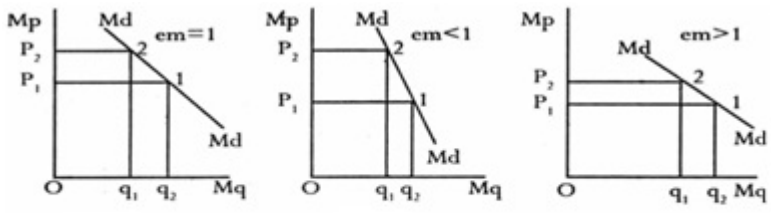

इकाई के बराबर आयात मांग की लोच | इकाई से कम आयात मांग की लोच | इकाई से अधिक आयात मांग की लोच

उपर्युक्त रेखाचित्रों मे OX अक्ष पर आयात मात्रा व OY अक्ष पर आयातित वस्तु की कीमत दर्शायी गयी हैं अब अवमूल्यन के फलस्वरूप रेखाचित्र 28.1 में आयात व्यय में कोई कमी नहीं हुई हैं वरन् आयात व्यय समान हैं क्योंकि जिस अनुपात में अवमूल्यन से कीमत में वृद्धि हुई हैं उसी अनुपात में आयात मात्रा में कमी आई हैं। रेखाचित्र 28.2 में आयात व्यय में वृद्धि हुई हैं क्योंकि जिस अनुपात में मूल्य में वृद्धि हुई उसी अनुपात की तुलना में आयातों में कम कमी हुई हैं अत: शुद्ध रूप में आयात व्यय में वृद्धि हुई हैं।

रेखाचित्र 28.3 में आयात व्यय में कमी हुई हैं क्योंकि जिस अनुपात में मूल्य वृद्धि हुई उस अनुपात की तुलना में आयातों में अधिक कमी हुई हैं अत: शुद्ध रूप में आयात व्यय में कमी हुई हैं।

(2) अवमूल्यन से निर्यात सस्ते होगें, जैसे एक शर्ट जिसकी कीमत 100 रुपये हैं उसके भुगतान के लिए अमेरीकी को अब तक 5 डालर देने पडते थे। (1 डालर = 25 रुपये) अब अवमूल्यन के पश्चात उसे उसी शर्ट के केवल 4 डालर ही देने पडेगें। दूसरे शब्दों में अवमूल्यन के फलस्वरूप भारत में कोई मूल्य वृद्धि नहीं हुई हैं। अमेरीकन के लिए भारतीय आयात अब सस्ते हो गये हैं। अत: अब प्रश्न उत्पन्न होता हैं कि अवमूल्यन से भारतीय निर्यातों एवं निर्यातों से प्राप्त आय पर क्या प्रभाव पडता हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस पर निर्भर करता हैं कि भारतीय निर्यातित वस्तुओं की अमेरीका में मांग की लोच क्या हैं? इस संबंध में तीन संभावनाएं हो सकती हैं जिन्हें निम्नलिखित रेखाचित्रों द्वारा दर्शाया जा सकता हैं।

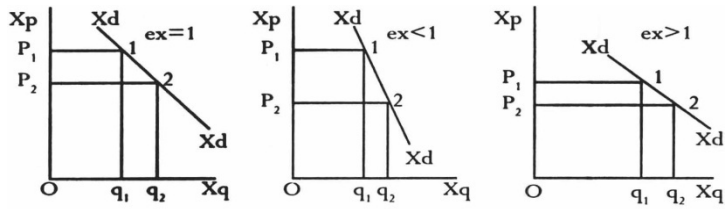

रेखाचित्र 24.4
इकाई के बराबर निर्यात मांग की लोच

रेखाचित्र 24.5
इकाई से कम निर्यात मांग की लोच

रेखाचित्र 24.6
इकाई से अधिक निर्यात मांग की लोच

उपर्युक्त रेखाचित्र 28.4 में OX अक्ष पर निर्यात मात्रा व OY अक्ष पर निर्यातित वस्तु की कीमत दर्शायी गई हैं अब अवमूल्यन के फलस्वरूप रेखाचित्र 28.4 में निर्यात आय में कमी की हैं उसी अनुपात में वस्तु की मात्रा में वृद्धि हुई हैं।

रेखाचित्र 28.5 में अवमूल्यन से निर्यात आय में कमी हुई हैं क्योंकि जिस अनुपात में कीमत में कमी आई हैं निर्यातों की मात्रा में उससे कम अनुपात में वृद्धि हुई हैं अत: शुद्ध रूप में निर्यात आय में कमी हुई है।

रेखाचित्र 28.6 में अवमूल्यन से निर्यात आय में वृद्धि हुई हैं क्योंकि जिस अनुपात में कीमत में कमी आई है निर्यातों की मात्रा उनसे अधिक अनुपात में वृद्धि हुई हैं अत: शुद्ध रूप में निर्यात आय में वृद्धि हुई हैं।

उपर्युक्त विवरण से निष्कर्ष निकलता हैं कि अवमूल्यन से निर्यात मूल्य में कमी होती हैं एवं आयात मूल्य में वृद्धि होती हैं। अत: अवमूल्यन का उपयोग व्यापार संतुलन को ठीक करने हेतु आयात लोच व निर्यात पर ध्यान देना आवश्यक हैं। इन्हें मार्शल लर्नर शर्त भी कहते हैं। इसके प्रयोग की शर्त इस प्रकार हैं।

1. यदि निर्यात लोच आयात लोच की योग इकाई से अधिक हैं। $[ex - em(>1)]$ तो अवमूल्यन से व्यापार संतुलन अनुकूल होगा।
2. यदि निर्यात लोच व आयात लोच का योग इकाई के बराबर हैं तो अवमूल्यन से व्यापार संतुलन अपरिवर्तित रहेगा।
3. यदि निर्यात लोच व आयात लोच का योग इकाई से कम है तो अवमूल्यन से व्यापार संतुलन प्रतिकूल हो जायेगा।

अवमूल्यन का मार्शल लर्नर की शर्तों के साथ आंकित मूल्य के रूप से इस प्रकार समझाया जा सकता हैं किन्तु अवमूल्यन का प्रभाव या तो रुपये के मूल्य में परिवर्तन में या डालर के मूल्य में परिवर्तन द्वारा समझाया जा सकता हैं। दोनों एक साथ नहीं समझाया जा सकता हैं।

तालिका 28.1 Ee = 1

	Xe = ½	Me = ½	Ee = 1

	10 प्रतिशत अवमूल्यन	लोच $= \frac{\text{मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$	$= \frac{5\%}{10\%} = \frac{1}{2}$
	मूल्य में (रु. में)	मात्रा में परिवर्तन	परिणाम
1	-	5% वृद्धि	निर्यात आय में 5% वृद्धि
2	10% वृद्धि	5% कमी	आयात कम 5% वृद्धि
	विदेशी आय में शुद्ध वृद्धि =0 (तटस्थ)		

उपर्युक्त तालिका 28.1 में आयात वस्तु की एवं निर्यात वस्तु की लोच प्रत्येक की ½ हैं जिससे दोनों की लोच का योग इकाई के बराबर हैं। मानाकि रुपये का 10 प्रतिशत अवमूल्यन किया जाता है। आयात लोच के लिए एम. ई. व निर्यात लोच के लिए एक्स ई एवं दोनों लोचो के योग के लिए Ee लिखा जाता हैं। प्रथम पंक्ति में रुपये का 10 प्रतिशत अवमूल्यन करने से निर्यात लोच ½ होने के फलस्वरूप निर्यात आय में 5 प्रतिशत की वृद्धि होती हैं। किन्तु निर्यात वस्तु की कीमत रुपये में कोई परिवर्तन नहीं हुआ हैं। द्वितीय पंक्ति में अवमूल्यन से आयात मूल्य में 10 प्रतिशत वृद्धि हुई हैं। किन्तु आयात लोच 1/2 होने के कारण आयात व्यय में 5% की वृद्धि हुई हैं। अत: अवमूल्यन से निर्यात आय में 5 प्रतिशत वृद्धि है एवं आयात व्यय में भी 5% प्रतिशत वृद्धि हुई हैं जिससे शुद्ध परिणाम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ हैं। इस प्रकार दोनों लोचो का योग इकाई के बराबर हो तो व्यापार संतुलन अपरिवर्तित रहता है एवं घाटे में कोई कमी नहीं आती हैं।

तालिका 28.2 Ee = ¾ (या इकाई से कम)

	Xe = ¼	Me = ½	Ee = ¾
	10 प्रतिशत अवमूल्यन	लोच $= \frac{\text{मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$	$= \frac{2.5\%}{10\%} = \frac{1}{4}$
	मूल्य में (रु. में) परिवर्तन	मात्रा में परिवर्तन	परिणाम

1.	-	2.5% वृद्धि	निर्यात आय में 2.5%वृद्धि
2.	10 प्रतिशत वृद्धि	5 प्रतिशत कमी	आयात व्यय में 5% वृद्धि
	विदेशी आय में शुद्ध वृद्धि = -2.5 (कमी)		

उपर्युक्त तालिका 28.2 में आयात वस्तु की लोच ½ तथा निर्यात वर्ष की लोच ½ है एवं दोनों का योग ¾ अर्थात इकाई से कम है। अब मोना कि 10 अवमूल्यन किया जाता है। प्रथम पंक्ति में निर्यात मात्रा में 2.5 वृद्धि होती है। (10 अवमूल्यन का ¼) अत: निर्यात आय में 2.5% वृद्धि होगी। द्वितीय पंक्ति में 10% अवमूल्यन से 5% आयात मात्रा में कमी आती हैं। जिससे आयात व्यय में 5% वृद्धि होती है। (10% मूल्यवृद्धि – 5% आयात में कमी) इस प्रकार शुद्ध विदेशी आय में 2.5% कमी आती है। निष्कर्ष रूप मे दोनों लोचो का योग इकाई से कम होने पर अवमूल्यन से व्यापार संतुलन अधिक प्रतिकूल हो जाएगा।

तालिका 28.3 Ee = 2 (या इकाई से अधिक)

	Xe = 1	Me = 1	Ee = 2
	10 प्रतिशत अवमूल्यन	लोच = $\frac{\text{मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$	= $\frac{10\%}{10\%}$ = 1
	मूल्य में (रु. में) परिवर्तन	मात्रा में परिवर्तन	परिणाम
1.	-	10% वृद्धि	निर्यात आय में 10%वृद्धि
2.	10 प्रतिशत वृद्धि	10% कमी	आयात कम में 0% वृद्धि

विदेशी आय में शुद्ध वृद्धि = 10 (वृद्धि)

निर्यात लोच व आयात लोच दोनों इकाई के बराबर होने पर दोनों की योग 2 होगा (अर्थात इकाई से अधिक) 10% अवमूल्यन होने पर निर्यात मात्रा में 10% वृद्धि होगी, जिससे निर्यात आय में 10% वृद्धि होगी एवं आयात मात्रा में 10% कमी होगी, अत: आयात व्यय अपरिवर्तित रहेगा। इस प्रकार दोनों लोचो का योग इकाई से अधिक होने पर शुद्ध विदेशी आय में वृद्धि होगी।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह सिद्ध होता है, कि आयात व निर्यात लोचो की योग इकाई से अधिक होता है तो शुद्ध विदेशी आय में वृद्धि होगी।

28.4.2 अवमूल्यन - अवशोषण विधि

अवमूल्यन प्रत्यक्ष रूप से निर्यात मूल्यों में कमी करता है एवं आयात मूल्य मे वृद्धि करता है एवं आयात व निर्यात लोचो का योग इकाई से अधिक होने पर व्यापार संतुलन अनुकूल होगा। परम्परागत व्यष्टि दृष्टिकोण कीमत प्रभाव के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$B = X - M$$

जहां B = व्यापार संतुलन

X = निर्यात मूल्य

M = राष्ट्रीय आय

A = अवशोषण या घरेलू व्यय

अवमूल्यन के द्वारा व्यापार संतुलन अनुकूल तब होगा जबकि आय मैं वृद्धि (Y) अवशोषण में वृद्धि (A) अधिक होगी।

राष्ट्रीय आय घरेलू व्यय एवं शुद्ध निर्यात के समान होगा।

$$Y = (C+I+G) + (X-M) \ldots\ldots\ldots\ldots (1)$$

$$200 = (120+ 80+20) + (60-80)$$

(C+I+G) घरेलू व्यय है एवं (X-M) शुद्ध विदशी व्यय है। (X-M) ऋणात्मक मूल्य है जिसका अभिप्राय व्यापार संतुलन में घाटा है, उपर्युक्त समीकरण (1) को इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$Y = A+B \qquad \text{..... (2)}$$

$$200 = 220+ (-20)$$

उपर्युक्त समीकरण (2) में A अवशोषण को जो (C+I+G) के बराबर है, दर्शाता है एवं B व्यापार संतुलन को दर्शाता है। राष्ट्रीय आय अवशोषण व व्यापार संतुलन के समान होती है। समीकरण (2) को पुन: इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$Y-A = B \qquad \text{..... (3)}$$

$$200-220 = -20$$

$$B = Y-A \qquad \text{..... (4)}$$

$$-20 = 200-220$$

समीकरण (4) दर्शाती है कि व्यापार संतुलन, राष्ट्रीय आय का अवशोषण से अधिक है। यदि व्यापार संतुलन ऋणात्मक है, जैसे कि उपर्युक्त है तो राष्ट्रीय आय अवशोषण से कम है एवं व्यापार संतुलन धनात्मक हैं तो राष्ट्रीय आय अवशोषण से अधिक है।

यहां पर व्यापार संतुलन की घाटा 20 है जब अवमूल्यन के द्वारा निर्यात में वृद्धि 20 के बराबर हो जाती है जिससे अवमूल्यन के पश्चात निर्यात भी 60 से बढ़कर 80 हो जाते है। और इस प्रकार अवमूल्यन से व्यापार संतुलन संतुलित हो जाता है।

अवमूल्यन के समष्टि दृष्टिकोण से परिणाम इस प्रकार है।

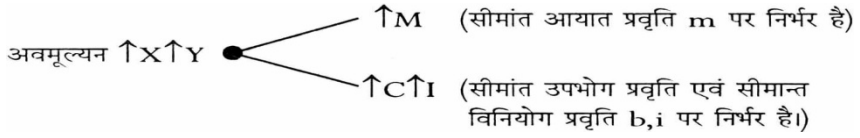

निर्यात में 20 की वृद्धि होने से आय में वृद्धि होगी किन्तु यह निर्भर करेगा की गुणक का (K) मूल्य कितना है। आय में वृद्धि के दो प्रभाव होंगे आयात में वृद्धि होगी जो सीमांत आयात प्रवृति पर निर्भर करेगी एवं उपभोग व विनियोग में भी वृद्धि होगी, जो सीमांत उपभोग प्रवृति व सीमान्त विनियोग प्रवृति पर निर्भर करेगी।

एलेक्जेण्डर सीमांत उपभोग प्रवृति व सीमांत विनियोग प्रवृति का योग को सीमांत अवशोषण प्रवृति (e = b+i) कहते है।

यदि सीमांत अवशोषण प्रवृति e अधिक होगी तो अवमूल्यन के द्वारा व्यापार संतुलन को अनुकूल करना कठिन होगा।

एक सामान्य रूप में दी हुई सीमांत आयात प्रवृति (m) पर कहा जा सकता है कि

1. व्यापार संतुलन अनुकूल होगा यदि e<1
2. व्यापार संतुलन प्रतिकूल होगा यदि e>1
3. व्यापार संतुलन अपरिवर्तित रहेगा यदि e=1,

उदाहरण ie = b+1 = 1 (व्यापार संतुलन में कोई परिवर्तन नहीं)

माना कि सीमांत आयात प्रवृति (m) = 20%

सीमांत उपभोग प्रवृति (b) = 80%

सीमांत विनियोग प्रवृति (i) = 20%

C = 120, I = 80, G = 20

X = 80, M = 80, Y = 200

B = Y-A

X-M = Y-(C+I+G)

60-80 =200-(120+80+20)

-20 = +200-(220)

-20 = -20

गुणक का मूल्य K $= \frac{1}{1-b-i+m} = \frac{1}{1.8+.2+.2} = \frac{1}{.2} = 5$

$\Delta Y = \Delta X.K$

माना कि अवमूल्यन से निर्यात में 40 की वृद्धि होती है तो आय में होगी।

$\Delta C = 40 \times 5 = 200$

तथा अन्य मूल्य होगें।

$\Delta C = \Delta Y.b = 200 \times .8 = 160$

$\Delta I = \Delta Y.i = 200 \times .2 = 40$

$\Delta M = \Delta Y.m = 200 \times .2 = 40$

आरंभिक मूल्यों में उपर्युक्त वृद्धि को सम्मिलित करने पर $-\Delta X = 40$

$X - M = Y - (C + I + G)$

$00 - 20 = 400 - (280 + 120 + 20) : -20 = -20$

इस प्रकार सीमांत अवशोषण प्रवृति इकाई के बराबर होने पर $(e = b + i = 1)$ व्यापार संतुलन अपरिवर्तित रहेगा।

उदाहरण - $IIe = b + i > 1$ (व्यापार संतुलन और प्रतिकूल हो जायेगा) माना कि अवमूल्यन से निर्यात की मात्रा में 40 के बराबर वृद्धि होती है और सीमांत आयात प्रवृति 20% सीमांत उपभोग प्रवृति 90% व सीमांत विनियोग प्रवृति 20% मानने पर सीमांत अवशोषण प्रवृति $e = b + i$ का मूल्य इकाई से अधिक होगा।

गुणक का मूल्य $K = \frac{1}{1-b-i+m} = \frac{1}{1-.9-.2+.2} = \frac{1}{.1} = 10$

निर्यात में 40 की वृद्धि होने पर आय 400 होगी $\Delta Y = \Delta X.K.(400 = 40 \times 10)$ अवशोषण में वृद्धि आय में वृद्धि से अधिक होगी क्योंकि

$\Delta C = \Delta Y \times b = 400 \times .9 = 360$

$\Delta I = \Delta Y \times e = 400 \times .2 = 80$

$\Delta A = \Delta C + \Delta I = 360 + 80 = 440$

अवमूल्यन के फलस्वरूप अवशोषण में वृद्धि आय में वृद्धि की अपेक्षा अधिक होगी।

$\Delta X = 40$

$\Delta M = \Delta Y.m = 400 \times .2 = 80$

$\Delta M - \Delta X = 80 - 40 = 40$

आयात निर्यातों की तुलना अधिक होने से व्यापार संतुलन अधिक प्रतिकूल होगा और व्यापार घाटा 20 से बढ़कर 60 हो जायेगा,

$(X + \Delta X) - (M + \Delta M) = (Y + \Delta Y) - [(C + \Delta C) + (I + \Delta I) + G)]$

$(60 + 40) - (80 + 80) = (200 + 400) - [(120 + 360 + (80 + 80) + 20]$

$(100 - 160) = 600 - 660$

$-60 = -60$

अत: सीमांत अवशोषण प्रवृति का मूल्य इकाई से अधिक होने पर व्यापार संतुलन अधिक प्रतिकूल हो जायेगा।

उदाहरण - $IIIe = b + i < 1$ (व्यापार संतुलन अनुकूल हो जायेगा) - मानाकि अवमूल्यन से निर्यात में वृद्धि 40 के बराबर होती हैं और सीमांत आयात प्रवृति 20% सीमांत उपभोग प्रवृति 50% व सीमांत विनियोग प्रवृति 20% मानने पर सीमांत अवशोषण प्रवृति इकाई से कम होगी।

$e = b + i = .5 + .2 = .7 < 1$

गुणक का मूल्य $K = \frac{1}{1 - b - i + m} = \frac{1}{21 - .5 - .2 + .2} = \frac{1}{.5} = 2$

निर्यात में वृद्धि 40 होने व गुणक 2 होने आय में वृद्धि 80 होगी जबकि अवशोषण में वृद्धि 56 होगी।

$\Delta C = Y.b = 80 \times .5 = 40$

$\Delta I = \Delta Y.i = 80 \times .2 = 16$

$\Delta A = \Delta C + \Delta I = 40 + 16 = 56$

आय में वृद्धि की तुलना में अवशोषण में वृद्धि कम होगी जिससे व्यापार घाटा (20) कम होकर अतिरेक 4 में बदल जायेगा।

$$(X+\Delta X)-(M+\Delta M)=(Y+\Delta Y)-[(C+\Delta C)+(I+\Delta I)+G)]$$
$$(60+40)-(80+16)=(200+80)-[(120+40)+(80+16)+20)]$$
$$100-96=280-(160+96+20)$$
$$4=280-276$$
$$4=4$$

इस प्रकार सीमांत अवशोषण प्रवृति का मूल्य इकाई से कम होने पर व्यापार संतुलन अनुकूल हो जायेगा।

28.5 आन्तरिक एवं बाह्य संतुलन मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों को समन्वय

किसी भी अर्थव्यवस्था की मुख्य समस्या आन्तरिक संतुलन व बाह्य संतुलन संयुक्त रूप से या अलग-अलग प्राप्त करना होता हैं। आन्तरिक संतुलन मुद्रास्फीति में कमी एवं बेरोजगारी समाप्त करना हैं एवं बाह्य संतुलन व्यापार संतुलन को संतुलित करना हैं। आंतरिक संतुलन को मौद्रिक एंव राजकोषीय नीतियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता हैं एवं बाह्य संतुलन को अवमूल्यन द्वारा प्राप्त किया जा सकता हैं।

निम्नलिखित रेखाचित्र 28.7 द्वारा एक देश के सन्दर्भ में नीतियों के चयन की समस्या का विवरण किया गया है।

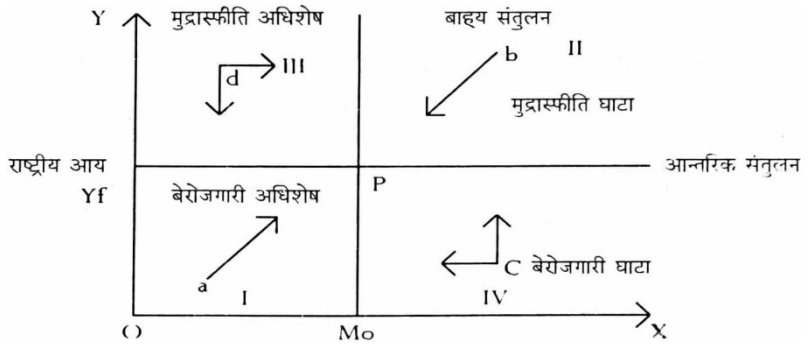

OX अक्ष पर आया मात्रा एंव OY अक्ष पर राष्ट्रीय आय को दर्शाया गया हैं Yf स्तर पर कीमतों में स्थिरता के साथ पूर्ण रोजगार हैं अर्थात

आंतरिक संतुलन हैं M0 स्तर पर आयात का वह स्तर है जहां आयात व निर्यात समान है अर्थात बाह्य संतुलन हैं।

यदि राष्ट्रीय आय की स्तर आन्तरिक संतुलन स्तर से ऊपर हैं तो उसका अर्थ हैं पूर्ण रोजगार से अधिक का स्तर अर्थात मुद्रा स्फीति हैं एवं इस स्तर से कम होने का अर्थ बेरोजगारी या मंदी की स्थिति हैं। इसी प्रकार यदि आयात मात्रा M0 स्तर से अधिक हैं तो व्यापार घाटा हैं और यदि M0 स्तर के कम हैं तो व्यापार अधि शेष हैं।

आन्तरिक व बाह्य साम्य का बिन्दु P हैं जहां दोनों स्तर की रेखाऐं एक दूसरे को काटती हैं जिससे चार खण्ड प्राप्त होते है खण्ड प्रथम में बेरोजगारी एवं अधि शेष हैं अत: मौद्रिक नीति व राजकोषीय नीति के विस्तार द्वारा बेरोजगारी व व्यापार अधिशेष का समाप्त किया जा सकता हैं। क्योंकि आय में वृद्धि एंव ब्याज दरें में कमी के द्वारा आन्तरिक व बाह्य साम्य प्राप्त किया जा सकता हैं एवं अवमूल्यन का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होगी। खण्ड द्वितीय मैं मुद्रास्फीति एवं व्यापार घाटा हैं जिसको मौद्रिक व राजकोषीय नीति के संकुचन द्वारा कम करके P संतुलन बिन्दु पर लाया जा सकता हैं। सरकारी व्यय में कमी एवं ऊंची ब्याज दर के द्वारा मुद्रास्फीति में कमी आयातों में कमी होगी। यहां पर भी अवमूल्यन का प्रयोग की आवश्यकता नहीं होगी।

खण्ड तृतीय में मुद्रास्फीति एवं व्यापार अधिशेष हैं यदि मौद्रिक व राजकोषीय नीति में संकुचन किया गया तो उससे मुद्रास्फीति मे कमी किन्तु ब्याज दर में वृद्धि से चालू खाते एवं पूंजी खाते दोनों में अधिशेष होगा जो पुन: व्यापार अधिशेष को जन्म देगा अत: यहां पर अधिमूल्यन का प्रयोग भी साथ-साथ किया जायेगा ताकि बाह्य संतुलन भी प्राप्त हो और P संतुलन बिन्दु पर पहुंच जाये। चतुर्थ खण्ड में बेरोजगारी एवं व्यापार घाटा हैं अत: मौद्रिक व राजकोषीय नीति में विस्तार किया जायेगा जिससे बेरोजगारी दूर होगी किन्तु कम ब्याज दर के कारण

व्यापार घाटा में और वृद्धि होगी अत: अवमूल्यन भी साथ-साथ करना होगा ताकि व्यापार घाटे में कमी होकर बाह्य संतुलन प्राप्त हो सके।

इस प्रकार खण्ड तृतीय एवं चतुर्थ में मौद्रिक नीति राजकोषीय नीति एवं अवमूल्यन या अधिमूल्यन का प्रयोग साथ-साथ किया जाता हैं। जिससे आन्तरिक व बाह्य साम्य एक साथ प्राप्त हो सके।

28.6 सारांश

भुगतान संतुलन को बनाए रखना विभिन्न देशों के लिए बड़ी समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए चार विकल्प हो सकते है - (i) भुगतान संतुलन के अधिक्य एवं घाटे की वितव्यवस्था करके अल्पकाल के लिए संतुलन की स्थापना (ii) विदेशी वस्तुओं के आयात एवं देश के निर्यातों में परिवर्तन द्वारा, (iii) विनिमय नियंत्रण द्वारा अथवा (iv) विनिमय दरों में परिवर्तन करके यदि संतुलन लगातार पक्ष में रहे तो मुद्रा का अधिमूल्यन करके एवं यदि संतुलन लगातार विपक्ष में रहता हैं तो मुद्रा का अवमूल्यन करके संतुलन स्थागित किया जा सकता हैं। अवमूल्यन दीर्घकाल तक भुगतान संतुलनों की प्रतिकूलता के परिणाम स्वरूप उठाया गया कदम होता है। इस इकाई में आपको अवमूल्यन के विभिन्न उद्देश्य बताए गए हैं। अवमूल्यन के अनुकूल प्रभाव तभी उपस्थित होते है जब कुछ शर्तें पूरी हो। जैसे निर्यातों एवं आयातों की मांग अत्यधिक लोचदार होनी चाहिए। अवमूल्यन की सफलता के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का वातावरण होना चाहिए। अवमूल्यन के कीमत पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन लोच के दृष्टिकोण अथवा मार्शल-लर्नर शर्त के द्वारा किया जाता है। अवमूल्यन के आय प्रभावों का अध्ययन हम विदेश व्यापार गुणक के द्वारा कीन्स के मॉडल के आधार पर करते है। कीन्स के मॉडल के आधार पर आय प्रभाव को प्रोफेसर एस.एस. एलेक्जेण्डर ने आय अवशोषण विधि से समझाया है। जब पूर्ण रोजगार की स्थिति होती है तो अवमूल्यन के अनुकूल प्रभाव तभी पड़ेंगे जब हमारे अवशोषण (कुल

आन्तरिक खर्च) कम होंगे। उस समय मांग की लोचो की विधि कारगर नहीं होगी।

लोच अवशोषण की समन्वय को प्रोफेसर एस.सी.सियांग (S.C.Tsiang) ने नया रूप दिया है। व ब्याज की दर को उचित स्थान प्रदान करते है। यहां मौद्रिक घटको को सम्मिलित किया गया है। पूर्ण रोजगार की स्थिति में ऊँची ब्याज की दरें क्रियाशील होगी। जब पूर्ण रोजगार हो एवं मूल्य स्तर में वृद्धि होती है तो ऊँची ब्याज की दरों वाली मौद्रिक नीति हो उपयुक्त होती है, स्थिर मुद्रा पूर्ति की नीति अधिक उपयोगी नहीं होती। इस प्रकार प्रतिबन्धात्मक मौद्रिक नीति के दो लाभकारी प्रभाव होंगे (i) भुगतान संतुलन शनै: शनै: समायोजित होगा, (ii) मुद्रा प्रसार कम होगा। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न नीतियां उपयोगी सिद्ध होती है।

28.7 शब्दावली

1. अधिमूल्यन Overvaluation
2. अवमूल्यन Devaluation
3. कीमत प्रभाव Price Effects
4. लोच दृष्टिकोण Elasticity Approach
5. आय प्रभाव Income Effects
6. आय अवशोषण Income Absorption

7. मौद्रिक नीति Monetary Policy

28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Kindleberger International Economics
2. Ellsworth Leith International Economics

28.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भुगतान संतुलन को ठीक करने के लिए अवशोषण विधि पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. अवमूल्यन का लोच विधि एवं अवशोषण विधि द्वारा प्रभाव स्पष्ट किजिए।
3. अवमूल्यन को भुगतान संतुलन ठीक करने के उपाय के रूप में लोच विधि व अवशोषण विधि का मूल्यांकन कीजिए तथा समझाइये कि क्या अल्पविकसित, देशों के लिए अवमूल्यन को भुगतान ठीक करने के लिए उपयोग किया जा सकता।
4. अवमूल्यन की सफलता की आवश्यक शर्तें क्या है?
5. मार्शल-लर्नर शर्त एवं आय अवशोषण विधि में क्या अन्तर है? इनमें कोन सी विधि कहां तक उपयुक्त है? समझाइए।

इकाई 29

विदेशी व्यापार गुणक व इसके प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य

29.1 प्रस्तावना

29.2 विदेशी व्यापार गुणक

29.3 विदेशी व्यापार गुणक की प्रक्रिया

29.4 मान्यताएं

29.5 विदेशी व्यापार गुणक का रेखाचित्रों द्वारा स्पष्टीकरण

29.6 विदेशी व्यापार गुणक : विदेशी प्रति प्रभावों (Repercussion effect)या अतिनिर्यात प्रभावों (Backwash effect)की अनुपस्थिति में

29.7 विदेशी व्यापार गुणक : विदेशी प्रतिप्रभाव (Foreign Repercussion) अथवा अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect)

29.8 विदेशी व्यापार गुणक की आलोचना

29.9 विदेशी व्यापार गुणक का अल्पविकसित देशों में महत्व तथा व्यवहार्यता

29.10 निष्कर्ष

29.11 शब्दावली

29.12 उपयोगी पुस्तकें

29.13 अभ्यासर्थ प्रश्न

29.0 उद्देश्य

इस अध्याय में विदेशी व्यपार गुणक , उसकी मान्यताएं व कार्यकारण पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। विदेशी व्यपार गुणक एक देश के विश्लेषण के संधर्भ में उसके सीमांत उपभोग व बचत प्रवृत्तियों के साथ साथ सीमांत आयात प्रवृत्तियों पर भी निर्भर करता है। इस संबंध को राष्ट्रीय आय समीकरणों व उदाहरणो से स्पष्ट किया गया है। विदेशी व्यापार गुणक विदेशी प्रति निर्यात से भी प्रभावित होता है यह विश्लेषण या स्पश करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार एक राष्ट्र के निर्यात दूसरे राष्ट्र कि मांगो मे प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं, जिसे आगे बीजगणितीय विधियो व व्युत्पत्तियों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है। साथ ही, यह विश्लेषण विदेशी व्यापार गुणक की अल्पविकसित राष्ट्रो के संदर्भ मे भी विवेचना करता है।

29.1प्रस्तावना

विदेशी व्यापार गुणक जो निर्यात गुणक भी कहलता है, कैन्स के निवेश गुणक की तरह कार्यकरण करता है। जब निर्यात बढ़ते हें तो निर्यात उदोगों के साथ संबन्धित सभी व्यक्तियों की आमदानियों में वृद्धि होती है। जो आगे , वस्तुओं के लिए मांग उत्पन्न करती है। परंतु उनकी सीमांत बचत प्रवर्ति और सीमांत आयात प्रवर्ति पर निर्भर करती है। जितनी कम ये दोनों सीमांत प्रवर्तियाँ होगी उतना ही अधिक गुणक का मूल्य होगा और विलोमश:। विदेशी व्यापार गुणक की प्रक्रिया को इस प्रकार समझा सकता है , मान लीजिये कि देश के निर्यातों में वृद्धि होती है । प्रारम्भ में, निर्यातक अपनी वस्तुएँ दूसरे देशों को बेचेंगे और अधिक आय प्राप्त करेंगे। विदेशी मांग को पूरा करने के लिए, वे अधिक उत्पादन के साधन लगाएंगे ताकि उत्पादन कर सकें। इससे साधनो के मालिकों कि आय बढ़ेगी। यह प्रक्रिया चालू रहेगी और राष्ट्रीय आय

गुणक के मूल्य के अनुसार बढ़ेगी। गुणक का मूल्य सीमांत बचत प्रवर्ति (MPS) और सीमांत आयात प्रवर्ति (MPM) के मूल्यों पर निर्भर करता है, जबकि इन दोनों प्रवृत्तियों और निर्यात गुणक में विपरीत संबंध होता है।

29.2 विदेशी व्यापार गुणक

विदेशी क्षेत्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से पृथक नहीं है तथा यह भी एक महत्वपूर्ण उपकरण है एक देश कि अर्थवयवस्था के विश्लेषण व विकास का जो आय व रोजगरा के स्तरों का निर्धारण करते हैं। एक बंद अर्थव्यवस्था का जिसमे विदेशी क्षेत्र शामिल नहीं होता, राष्ट्रीय आय के निम्न समीकरण कि व्याख्या करता है :

$Y=C+I+G$ .. (1)

जहां Y राष्ट्रीय आय ,C उपभोग तथा I निवेश व G सरकारी व्यय है। विदेशी क्षेत्र को शामिल करने पर, खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के इस समीकरण कि व्याख्या कि जा सकती है :

$Y+M= C+I+G+X$ .. (2)

जहां M आयात व X निर्यात को व्यक्त करते है। बायीं तरफ का समीकरण कुल पूर्ति कि व्याख्या करता है जो कि घरेलू पूर्ति आय व आयातों का योग है ; तथा दायाँ पक्ष इस कुल पूर्ति या उत्पादन के कुल अवशोषण के तीन प्रकारों उपभोग, निवेश, सरकार द्वारा वस्तुओं व सेवाओं कि खरीद तथा निर्यातों का योग है । ऊपर लिखे समीकरण (2) को पुनः निम्न प्रकार लिखा जा सकता है :

$Y = C+I+G+X-M$ .. (3)

(X-M) जो कि संतुलित व्यापार कि शर्त है जिसे शुद्ध निर्यात या शुद्ध विदेशी निवेश; और यह सकारात्मक, नकारात्मक या शून्य हो सकता है, जो आयात व निर्यात के सापेक्ष मूल्यों पर निर्भर करता है। शुद्ध

निर्यातों के योग का मूल्य विदेशी व्यापार की राष्ट्रीय आय मे भूमिका की व्याख्या करता है।

विदेशी क्षेत्र की एक अर्थव्यवस्था मे सापेक्ष महत्ता विदेशी व्यापार अनुपात पर निर्भर करता है जो विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय आय से संबंध दर्शाता है :

$$\frac{X_{f.o.b.} + M_{c.i.f.}}{Y = M_{c.i.f.}} \quad .. (4)$$

जितना विदेशी व्यापार अनुपात बड़ा होगा उतना ही विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय आय मे अंश अधिक होगा। विदेशी व्यापार ऐसे राष्ट्र जिनके यहाँ ये अनुपात बड़ा है राष्ट्रीय आय मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसी अर्थव्यवस्थाए बाह्य प्रभावों से अधिक प्रभावित होती है।

एक खुली अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं के व्यय, निवेश व सरकार, देश के निर्यातों पर विदेशियों का व्यय , एक देश के वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन का निर्धारण करते है। इसे समीकरण की सहायता से इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

C+I+G+X = आय का निर्धारण .. (5)

यह समीकरण यह व्यक्त करता है कि एक राष्ट्र कि कुल आय या सकल आय उत्पाद का निर्धारण इन तीन घटको उपभोग, निवेश, सरकारी व्यय तथा निर्यात से होता है। अब , ये सृजित आय पूर्णतह वस्तुओं व सेवाओं के क्रय, बचत, कारों के भुगतान व आयातित वस्तुओं व सेवाओं के क्रय पर व्यय होती है। घरेलू बचतों में फर्मो के अवितरित लाभों या व्यापार कि बचतों को भी जोड़ा गया है, इस संबंध को निम्न समीकरण की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है :

C+S+T+M = खर्च की गयी आय या खर्च योग्य आय .. (6)

तब इस समीकरण को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

C+I+G+X=C+S+T+M .. (7)

(आय सृजित) = (खर्च योग्य आय)

दोनों पक्षों से उपभोग (C) को घटाने से, हुमे प्राप्त होगा:

I+G+X = S+T+M.. (8)

सरलता के लिए,G = T, सरकारी व्यय, कारों के भुगतान के बराबर है या संतुलित बजेट की मान्यता लेने पर, हम समीकरण को इस प्रकार लिख सकते है :

I+X = S+M.. (9)

हम जानते हें कि I (निवेश) व X (निर्यात) आय के प्रवाह में अन्तः क्षेपण के प्रमुख कारक है वहीं बचत (S) व आयात (M) आय के प्रवाह मे रिसाव उत्पन्न करता है। समीकरण 9 इस परकर सुझाव देता है कि योजनाबद्ध या पूर्व नियोजित अन्तः क्षेपण योजनाबद्ध रिसाव के बराबर होना चाहिए। इस प्रकार के मॉडल मे साम्य कि स्थापना वहाँ होती है जहां निवेश, बचत के बराबर (I = S) होते है। यदि निवेश, बचत से अधिक हो जाते है तो निवेश गुणक द्वारा आय मे अभिवृद्धि तब तक होगी जब तक कि बचत बदकर बड़े हुए निवेश के बराबर नहीं हो जाता। यदि दूसरी तरफ, पूर्व नियोजित बचतें यदि निवेश से बाद जाती हें तो आय तब तक घटेंगी जब तक बचतें कम कर होकर निवेश के बराबर नहीं हो जाती। साम्य कि स्थिति में पूर्व नियोजित बचतें हमेशा पूर्व नियोजित निवेश के बराबर होती है।

अगर पूर्व नियोजित बचतें, पूर्व नियोजित निवेश के बराबर होनी चाहिए तो समीकरण 9 से, आयात भी निर्यात के बराबर होने चाहिए। यहा पुजीगत खाते को भुगतान संतुलन कि अवधारणा से पृथक कर भुगतान संतुलन को व्यापार संतुलन का पर्याय माना गया है। यदि घरेलू बचतें हमेशा निवेश के बराबर है तो एक घरेलू अर्थव्यवस्था में

साम्य कि स्थिति का निर्धारण होता है, और यह साम्य स्वतः आयतों व निर्यातों में साम्य कि स्थापना करता है, जो कि व्यापार संतुलन का साम्य देता है। ये एक सतत साम्य कि स्थापना करता है एक देश के आंतरक व बाह्य संतुलन में एक साथ

समीकरण 9 में , दोनों क्षेत्रों घरेलू तथा विदेशी, दोनों पक्षों से पृथक करते हुए, समीकरण को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

I-S = M-X.. (10)

बाईं तरफ का पक्ष निवेश अतिरेक व दायीं तरफ का पक्ष आयात अतिरेक को दर्शाता है। यदि घरेलू क्षेत्र में बचत व निवेश का अंतर शून्य है तो तब व्यापार संतुलन भी साम्य मे होगा; यदि बचत का निवेश से आधिक्य हो तो व्यापार संतुलन मे आधिक्य कि स्थिति होगी और यदि निवेश का बचत से आधिक्य तो यह व्यापार संतुलन मे घाटे की स्थिति को दर्शाता है। इस प्रकार घरेलू बचत-निवेश अंतर तथा विदेशी आयात – निर्यात के अंतर का निकट संबंध है। राष्ट्रीय आय की प्रारम्भिक साम्य की स्थिति I =S तथा X=M का अनुसरण करते हुए, स्वायत निवेश मे वृद्धि प्रारम्भिक बचत निवेश साम्य की स्थिति में असंतुलन उत्पन्न कर देता है व साथ ही आयात- निर्यात असंतुलन भी और परिणाम व्यापार संतुलन मे अतिरेक या घाटे की स्थिति उत्पन्न कर देता है जो कि किसी देश मे बचत की सीमांत, उपभोग व आयतों प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है। ठीक उसी प्रकार बाह्य या विदेशी क्षेत्र मे कोई भी असुंतलन जेसे स्वायत निर्यातों या आयातों मे अभिवृद्धि, आंतरिक असंतुलन का भी कारण बनता है। इस तरह से घरेलू व बाह्य क्षेत्र का साम्य किसी भी राष्ट्र के अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण विकास के लिए अपरिहार्य है।

29.3विदेशी व्यापार गुणक की प्रक्रिया

विदेशी व्यापार गुणक की प्रक्रिया को नीचे दी गयी तालिका मे दिखाया गया है जिसमें निवेश के स्तर को अर्थव्यवस्था में स्थिर माना गया है।

तालिका 29.1 : विदेशी व्यापार गुणक प्रक्रिया (रु. करोड़)

क्र	निर्यातमेंपरिवर्तन	उपभोगमेंपरिवर्तन	आयातमेंपरिवर्तन	बचतमेंपरिवर्तन	कुल आयमेंपरिवर्तन
	1000	500	200	300	1000
	----------	250	100	150	1500
	----------	125	50	75	1750
	----------	62.5	25	37.5	1875
	----------	31.25	12.5	18.5	1937.5
	.	.	.	.	.
	.	.	.	.	.
	.	.	.	.	.
तत	1000	1000	400	600	2000

:					

प्रथम चक्र में 1000 करोड़ रु के निर्यात किए जाते है जो कि राष्ट्रीय आय ही है। सीमांत उपभोग प्रवर्ति 0.5 दी हुई है । अत: उपभोग पर $\Delta C = 0.5$ X 1000 = 500 करोड़ रु खर्च किए जाते है। आयात उपभोग प्रवर्ति को 0.2 माना गया है जबकि बचत उपभोग प्रवर्ति को 0.3 लिया गया है। अब आयात पर $\Delta M = 0.2$ X 1000 =200 करोड़ रु व्यय किया जाता है। और बचत $\Delta S = 0.3$ X 1000 = 300 करोड़ रु कि जाती है। यह दोनों राष्ट्रीय आय में से रिसाव का करी करते है। प्रथम चक्र मे उपभोग में खर्च कर देने के बाद जितनी राशि रेह जाती है वह द्वितीय चक्र में राष्ट्रीय आय बन जाती है जो 500 करोड़ रु है। इसमे उपभोग प्रवर्ति 0.5 होने से घरेलू उपभोग के लिए 0.5 X 100 = 250 करोड़ रु व्यय किए जाते है । इसी प्रकार आयतों पर 0.2 X 500 = 100 करोड़ रु खर्च किए जाते है और 0.3 X 500 = 150 करोड़ रु कि बचतें होती है। अत: तृतीय चक्र में आय का स्तर 250 करोड़ रु हो जाता है। इस तरह प्रत्येक चक्र में आय उपभोग करने के बाद बाकि राशि के बराबर बढ़ती जाएगी जेसा कि अंतिम स्तम्भ से स्पष्ट होता है। अंतत: राष्ट्रीय आय विदेशी व्यापार गुणक के अनुसार 1000 करोड़ रु से बढ़कर 2000 करोड़ रु हो जाएगी। इस उदाहरण में K_f=1/0.3 +0.2 =2 है।

29.4 मान्यताएं

विदेशी व्यापार गुणक निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

i. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पाया जाता है
ii. यह विश्लेषण केवल दो देशों पर ही लागू होता है
iii. यह तात्कालिक प्रक्रिया पर आधारित है।
iv. दोनों देशों में प्रशुल्क या आयात नियंत्रण या सरंक्षण कि नीति एनएच अपनायी जाती है।

v. घरेलू निवेश स्थिर रहता है।
vi. सरकारी व्यय भी स्थिर रहता है।

29.5 विदेशी व्यापार गुणक का रेखाचित्रों द्वारा स्पष्टीकरण

अब हम विदेशी व्यापार गुणक का चित्रों द्वारा वर्णन करते हैं :

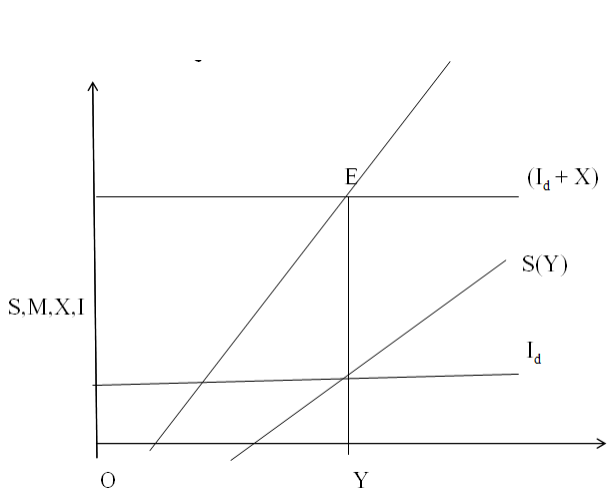

राष्ट्रीय आय

रेखाचित्र 29.2

अर्थव्यवस्था के संतुलन आय स्तर को चित्र में दिखाया गया है। जहा S(Y) बचत फलन है और (S+M)Y बचत जमा आयात फलन है। I_d, घरेलू निवेश को व्यक्त करता है और (I_d + X) घरेलू निवेश जमा निर्यात को। (S+M)Y और (I_d + X) फलन राष्ट्रीय आय का संतुलन स्तर OY निर्धारित करते हैं जहां बचतें और घरेलू निवेश बराबर होते हैं।

यदि (I_d + X) फलन निर्यातों में वृद्धि के कारण ऊपर कि और सरक जाता है, तो राष्ट्रीय आय OY से बढ़कर OY_1 हो जाएगी जैसा कि चित्र 2 में दिखाया गया है। आय में यह वृद्धि गुणक के प्रभाव के कारण होती है, अर्थात $\Delta Y = K_f \Delta X$.

आयातों से निर्यात sd मात्रा जितने अधिक होंगे, बचतें घरेलू निवेश से अधिक होंगी। आय का नया संतुलन स्तर OY_1 होगा । यह वह स्थिति है जिसमे धनात्मक विदेशी निवेश होता है।

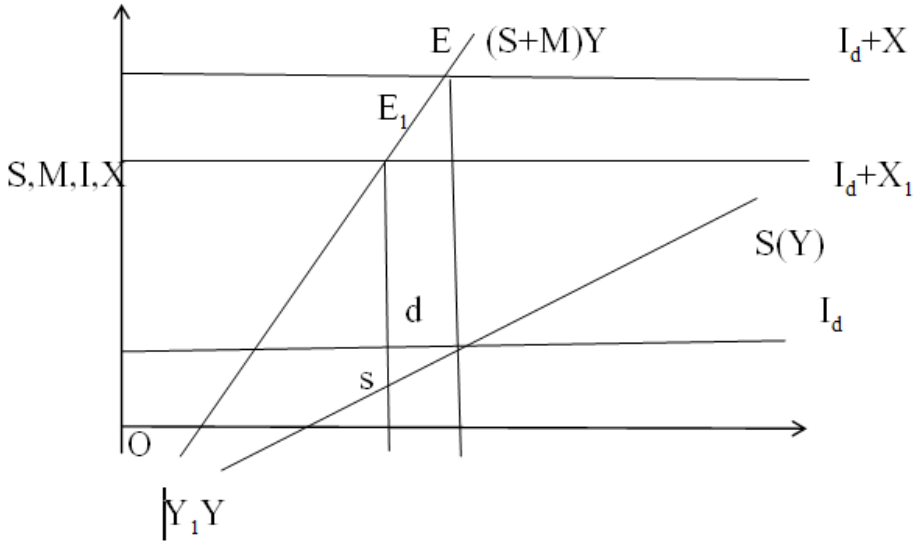

रेखाचित्र 29.3

यदि निर्यात में कमी हो जाती है तो निर्यात फलन नीचे सरक कर I_d+X_1 ह जाता है जैसा कि चित्र 3 मे दिखाया गया है। ऐसी स्थिति में निर्यात से आयात अधिक होंगे और बचतों से घरेलू निवेश ds मात्रा जितना अधिक होगा। राष्ट्रीय आय का स्तर OY से अधिक होकर OY_1 हो जाता है। यह विदेशी व्यापार गुणक का विपरीत कार्यकारण है।

29.6 विदेशी व्यापार गुणक : विदेशी प्रति प्रभावों (Repercussion effect) या अतिनिर्यात प्रभावों (Backwash effect) की अनुपस्थिति में

एक बंद अर्थव्यवस्था में, जहां कर तथा सरकारी व्यय नहीं है, हम एक सरल किनसियन निवेश (या आय) गुणक का अनुसरण करते है :

Y = C+I

$\therefore \Delta Y = \Delta C + \Delta I$ (Δ = वृद्धि)

$\therefore \Delta I = \Delta Y - \Delta C$

समीकरण के दोनों पक्षों को ΔY से भाग देने पर हम इसे इस प्रकार लिख सकते है :

$$\frac{\Delta I}{\Delta Y} = \frac{\Delta Y}{\Delta Y} - \frac{\Delta C}{\Delta Y}$$

या $\frac{\Delta I}{\Delta Y} = 1 - b$ ($\therefore$ b = $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ या सीमांत उपभोग प्रवर्ति)

या $\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1}{1-b} = k$ ($\therefore$ k = गुणक का मूल्य)

गुणक, 1-b या सीमांत बचत प्रवर्ति के प्रतिकूल होता है। यदि , निवेश के किसी भी प्रकार है, स्वायत व प्रेरित निवेश में अभिवृद्धि निवेश बदने से आय मे वृद्धि करता है , तब गुणक , निवेश की सीमांत दक्षता (g) के बराबर होना चाहिए। गुणक का मूल्य तब होगा :

$$k = \frac{1}{1-b-g} \quad .. (11)$$

ऊपर दिये गए समीकरण से ज्ञात होता है कि गुणक, बचत कि सीमांत प्रवर्ति के साथ प्रतिकूल एवं निवेश कि सीमांत दक्षता के साथ अनुकूल क्रिया करता है। स्वायत निवेश मे वृद्धि से किसी भी राष्ट्र मे आय का उच्च-स्तरीय निर्धारण होगा यदि वह गुणक का मूल्य अधिक हो तो।

यह सब एक बंद अर्थव्यवस्था मे संभव है परंतु विदेशी व्यापार को हमारे सिद्धान्त मे शामिल करने से दो और निर्धारक आयात व निर्यात भी हमारे विश्लेषण मे जुड़ जाते है। निर्यातों सामान्यतया मान लिया जाता है कि बाह्य जगत से निर्धारित होते है , क्योंकि एक देश के निर्यातों मे बदलाव बाह्य घटको से प्रभावित होता है । आयात , वही

दूसरी तरफ एक आंतरिक उपकरण है और एक प्रेरित उपकरण है। प्रेरित आयात, घरेलू देश के आय परिवर्तन का फलन है। इसलिए आयात एक आंतरिक तत्व अधिक है।

आयात फलन को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$M = M_0 + mY$ जहां M आयतों कि सीमांत प्रवर्ति $(\frac{\Delta M}{\Delta Y})$ है।

विदेशी व्यापार गुणक को फिर ऐसे व्यक्त किया जा सकता है :

$k_f = \frac{1}{1-b-g+m}$ .. (12)

जहा k_f = विदेशी व्यापार गुणक हैं।

विदेशी व्यापार गुणक का मूल्य, कीनेसियन निवेश गुणक के मूल्य से इसलिए कम होता है क्योंकि आयातों की सीमांत प्रवर्ति को इसके विभाजक मे मे जोड़ा गया है, जेसा की समीकरण 12 मे दिखाया गया है। और ये कहा जा सकता है की विदेशी व्यापार गुणक व घरेलू निवेश गुणक के बीच अंतर की रेखा आयातों की सीमांत प्रवर्ति है।

सरलता के लिए चलिये मान लेते है कि कोई सरकारी व्यय, कर, बचत या निवेश की स्थिति नहीं है, यहाँ उपभोग के अतिरिक्त सिर्फ आयात व निर्यात है, तो सामी कि यह स्थिति हमें प्राप्त होगी :

Y+M = C+X

या Y= C+X-M

तो विदेशी व्यापार गुणक को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$k_f = \frac{1}{m}$ .. (13)

जहां m आयतों की सीमांत प्रवर्ति को व्यक्त करता है। विदेशी व्यापार गुणक, आयतों की सीमांत प्रवर्ति के प्रतिकूल व्यवहार करता है। यह शुद्ध विदेशी व्यापार गुणक है जहां केवल विदेशी क्षेत्र विध्यमान है। यहाँ घरेलू क्षेत्र की उपस्थिती नहीं है जिसमे कोई घरेलू बचत व निवेश

की गतिविधिया नहीं होती। यह ज्यादा वास्तविक होगा यदि हम समीकरण 12 का अनुसरण करे जिसमे एक सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था है जो घरेलू व विदेशी दोनों क्षेत्रो को विश्लेषण मे शामिल करता है जो गुणक के सही मूल्य की गरणा करता है।

विदेशी व्यापार गुणक की महता तथा क्रियाकलाप को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते है। स्वायत निर्यातों मे अभिवृद्धि से आयत व अर्थव्यवस्था पर होने वाले प्रभावों की विवेचना को संक्षिप्त रूप से समझाएँगे । हम वास्तविक मान्यताओं को लेते है कि समस्त निर्धारक जैसे उपभोग, निवेश, बचत, सरकारी व्यय, कर तथा निर्यात व आयात कि सीमांत प्रवर्तियाँ, सीमांत उपभोग व निवेश प्रवर्ति इत्यादि कि अर्थव्यवस्था मे उपस्थिती है । फिर हम इस विश्लेषण को इस प्रकार देख सकते है :

$Y = C+I+G+(X-M)$

$\therefore Y= (Co+bYd) + (Io+gY) +G+(x-(Mo+mY)$

$\therefore Y = Co+b(Y-T) + Io+gY+G+X-Mo- mY$

$\therefore Y = Co+bY-bT+Io+gY+G+X-Mo-mY$

Y से जुड़े सभी निर्धारको को बाईं तरफ स्थानांतरित करने पर समीकरण को पुनः लिखने पर:

$Y- bY- gY+ mY = Co-bT+Io+gY+G+X-Mo$

या $Y (1-b-g+m)= Co-bT+Io+gY+G+X-Mo$

या $Y = \frac{Co - bT + Io + gY + G + X - Mo}{1 - b - g + m}$ .. (14)

ऊपर का समीकरण राष्ट्रीय आय के GNP के स्तर को व्यक्त करता है। मान लो कुछ निरपेक्ष मूल्य इस प्रकार दिये हुए है जिससे GNP कि गरणा कि जा सकती है :

$$Y=\frac{145 + 70 + 50 + 40 - 30 - 7(50)}{1 - .7 - .1 - .2} = \frac{240}{.4} = 600$$

राष्ट्रीय आय यदि $600 मिलियन है तो विदेशी व्यापार गुणक 2.5 के बराबर होगा जो कि 1/.4 से प्राप्त होगा। बाकि सामी कि स्थितियाँ इस प्रकार होगी :

Yd = Y-T = 600 – 50 = 550 (खर्च योग्य आय)

C = Co+bYd= 145+.7(550) = 530 (उपभोग)

I=Io+gY = 70 +.1(600) = 130 (निवेश)

S=--Co+ (1-b) Yd = -145+.3(550) = 20 (बचतें)

M=Mo+mY=30+.2(600)=150 (आयात)

X= 40 (निर्यात)

G = 50 (सरकारी व्यय)

Y=C+I+G+(X-M)

Y= 530+130+50+ (40-150) (राष्ट्रीय आय)

Y= 600

यहाँ व्यापार संतुलन नकारात्मक है (X-M = -110), हम इस तरह आगे बढ़ सकते है :

C+I+G+ X-C+S+T+M

(530+130+50+40)-(530+20+50+150)

750 – 750

दोनों पक्षों से C=C,G=T, को हटाने पर, समीकरण निम्नानुसार होगा :

I+X = S+M

I-S = M-X

(130-20) = (150 -40)

(110) = (110)

हमने देखा कि व्यापार संतुलन मे घाटा $110 मिलियन हुआ तो साथ ही निवेश मे अतिरेक का मूल्य भी समान ही होगा ।

अब हम देखेंगे कि निर्यातों में स्वायत वृद्धि से जैसे कि $100 मिलियन वृद्धि से राष्ट्रीय आय, बचत, निवेश तथा व्यापार संतुलन पर क्या प्रभाव होंगे?

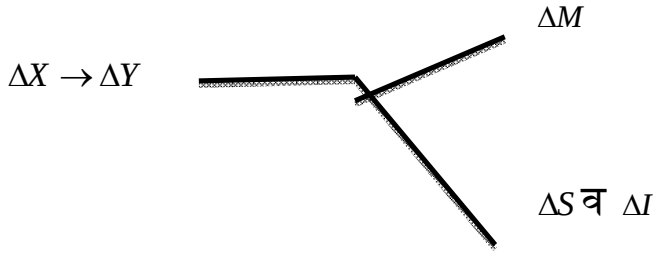

निर्यातों मे $100 मिलियन वृद्धि से हम निम्न घटकों मे परिवर्तन देख सकते हैं :

$\Delta Y = k, \Delta X = 2.5(100)$ मिलियन (राष्ट्रीय आय मे वृद्धि)

$\Delta S = s\Delta Y = .3(250) = \$75$ मिलियन (बचत मे वृद्धि)

$\Delta I = g\Delta Y = .1(250) = \$25$ मिलियन (निवेश मे वृद्धि)

$\Delta M = m\Delta Y = .2(250) = \$50$ मिलियन (आयतों मे वृद्धि)

यदि हम वृद्धि के सभी घटको को हमारे आधारभूत समीकरण मे डाले तो बचत, निवेश, निर्यात तथा आयातों के निम्न मूल्य प्राप्त होंगे :

I-S = M-X

(155-95) = (200-140)

(60) = (60)

स्वायत निर्यातों मे वृद्धि से व्यापार संतुलन का घाटा 110 से 60 हो गया, बचत व निवेश का अंतराल भी 100 से 60 तक हो गया। कोई भी घरेलू क्षेत्र मे परिवर्तन या विदेशी क्षेत्र मे परिवर्तन एक अर्थव्यवस्था के दोनों ही क्षेत्रों मे साथ परिवर्तन लता है जिससे राष्ट्रीय आय भी प्रभावित

होती है। इस प्रकार विदेशी व्यापार व राष्ट्रीय आय का संबंध बहुत ही निकट व महत्वपूर्ण है।

29.7 विदेशी व्यापार गुणक : विदेशी प्रतिप्रभाव(Foreign Repercussion) अथवा अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect)

विदेशी व्यापार गुणक जो सीमांत बचत व आयात प्रवृत्तियों के योग के प्रतिकूल व्यवहार करता है। विश्लेषण की सरलता हेतु हम यहा निवेश की सीमांत दक्षता को पृथक करते है। यह विश्लेषण प्रभावों को बंद अर्थव्यवस्था से खुली अर्थव्यवस्था में प्रदर्शित करता है जो की आयतों व निर्यातों से एक अर्थव्यवस्था व राष्ट्रीय आय के प्रभावों की विवेचना करता है। स्वायत निर्यातों मे वृद्धि या आयतों मे कमी से विदेशी व्यापार गुणक से राष्ट्रीय आय बढ़ती है , जो की शुद्ध निवेशों मे वृद्धि से आयतों को घटाता है।

अभी तक हमने ये माना था की निर्यात स्वायत रूप से निर्धारित होते हैं और आयात आय का सकारात्मक फलन है । अब इस मान्यता को कुछ अधिक वास्तविकता से जोड़ते हैं। हमारे निर्यात अब दूसरे राष्ट्र के आयात हैं पर तथा विदेशी राष्ट्रों के आयात उनके वास्तविक आय मे परिवर्तन पर निर्भर करते हैं। यह सिद्धान्त इस बात का अनुसरण करता है कि हमारे निर्यात विदेशी राष्ट्रो कि आय या आयातों कि सीमांत प्रवर्ति पर निर्भर करते हैं । इसी प्रकार हमारे आयात राष्ट्रीय आय मे परिवर्तन से निर्धारित होते है और ये अंतत विदेशी राष्ट्रो के निर्यातों का निर्धारण करता है। इसे “विदेशी प्रति प्रभाव” या “अतिनिर्यात प्रभाव” कहते है जो कि विदेशी व्यापार गुणक के क्रियाओं को इस विश्लेषण मे शामिल करता है।

सनक्षिप्त में, विदेशी व्यापार गुणक विदेशी प्रति प्रभावों की अनुपस्थिति मे केवल बचत व आयात की प्रवृत्तियों का ही आकलन करता है, जबकि

विदेशी व्यपार गुणक जिसमे विदेशी प्रति प्रभाव उपस्थित है, वहाँ न केवल घरेलू क्षेत्र के बचत व आयात प्रवृत्तियों की गरणा व प्रभाव की विवेचना होती है वरन विदेशी क्षेत्र की भी।

विदेशी व्यापार गुणक जो विदेशी प्रतिक्रिया प्रभावों को शामिल करते हैं हम उसे "प्रति प्रभाव विदेशी व्यापार गुणक" कह सकते हैं अथवा k_{ff} कह सकते हैं। विदेशी व्यापार गुणक जो बिना विदेशी प्रतिक्रिया प्रभावों की गरणा के विश्लेषण करता हे वह हमारा साधारण विदेशी व्यापार गुणक अथवा k_f कहलता हैं।

k_f की क्रियाओं में भी राष्ट्रीय आय मे वृद्धि निर्यातों व निवेश मे वृद्धि का ही परिणाम होता है। यही दूसरे राष्ट्र पर भी लागू होता है। उदाहरण के लिए, यदि k_f का मूल्य एक राष्ट्र में 3 है तो निर्यातों मे वृद्धि $ 50 मिलियन होगी जिसके परिणामस्वरूप आय मे वृद्धि $150 मिलियन होगी। लेकिन जब हम प्रतिक्रिया प्रभावों से विदेशी व्यापार गुणक की व्याख्या करते हैं तब निर्यातों मे वृद्धि से निवेश मे वृद्धि के प्रभावों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि का विश्लेषण करते हैं। इसलिए आवश्यक है कि k_{ff} की संबंधो की व्याख्या निर्यातों मे वृद्धि तथा निवेश मे वृद्धि के संधर्भ मे पृथकत: की जाए।

6.7.1 निर्यातों केप्रति प्रभावों का विदेशी व्यापार गुणक का सिद्धान्त

यह वह सिद्धान्त है जिसमे एक देश के स्वायत्त निर्यातों मे वृद्धि, दूसरे राष्ट्र के आय मे वृद्धि की वृद्धि के कारण होती है जो की विदेशी राष्ट्र की ऊंची सीमांत आयात प्रवृत्तियों या आर्थिक विस्तार का परिणाम है। यहाँ हम घरेलू राष्ट्र को देश 1 व विदेशी राष्ट्र को देश 2 की संज्ञा देते है । हम यहा बढ़े हुए निर्यातों की राष्ट्रीय आय पर होने वाले विदेशी प्रतिक्रिया प्रभावों के संधर्भ मे विवेचना करेंगे।

यह सिद्धान्त द्विमार्गीय प्रभावों की गरणा दो देशों 1 व 2 के मध्य करता है।

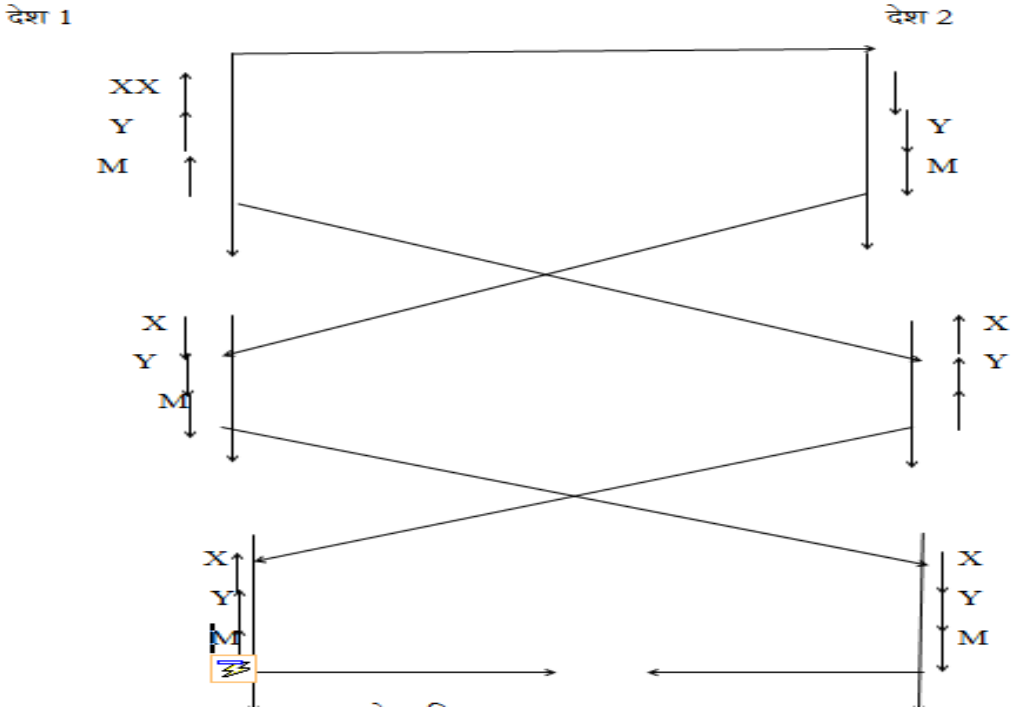

प्रतिक्रिया प्रभावो के चित्र में देश 1 में जेसे आय व व्यापार के विस्तारकारी प्रभाव से दूसरे देश के आयात व निर्यात प्रभावित होते हैं। देश 1 में प्रारम्भिक निर्यातों में वृद्धि से आय व दूसरे देश के आयतों मे वृद्धि होती है। जब देश 1 मे निर्यात बदते हैं तो दूसरे देश के आयात व आय मे वृद्धि होती हैं। देश 2 के आयतों में वृद्धि से देश 1 के निर्यातों के कारण आय में वृद्धि होती है। और आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप देश 1 में उपभोग की प्रवर्तियाँ बढ़ती हैं और अंतत: यह देश के भी आयात बढ़ने लगते हैं। यह प्रक्रिया दोनों देशों के मध्य बार बार दोहराई जाती है, व्यापार व आय के प्रभाव परस्पर दोनों देशों में एक अनवरत प्रक्रिया हैं, जो की चित्र 1 मे समझाया गया हैं। यह प्रारभिक प्रभाव दोनों देशों में विस्तरकारी नीतियों का परिणाम था।

प्रतिक्रिया प्रभाव द्वितीय संकुचित नीतियों का परिणाम है। प्रारम्भिक निर्यातों मे वृद्धि से देश 1 के निर्यात देश 2 के आयतों मे वृद्धि करते हैं; जो कि उस देश की आय में कमी का कारण बनता है, इससे उपभोग व मांग मे कमी आएगी; और परिणामस्वरूप देश 2 के आयात घटेंगे जो की देश 1 निर्यातों मे वृद्धि का प्रतिक्रिया प्रभाव है। देश 2 के अब निर्यातों मे वृद्धि होगी जो कि देश के आयतों मे वृद्धि करेगा और वहाँ भी आय मे कमी, उपभोग व मांग कि प्रवृत्तियों को घाटा देगी। जिससे देश 1 मे पुनः निर्यात बढ़ेंगे।

जब यह दोनों सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों कि क्रियाशीलता समाप्त हो जाएगी तब आखिरकार किस देश के आय मे वृद्धि होगी, देश 1 या 2 ? इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि प्रारभिक स्वायत्त निर्यातों मे वृद्धि देश 1 में कितनी थी तथा प्रतिक्रिया विदेशी व्यापार गुणक का मुल्य देश 1 में कितना था।

हम प्रारम्भिक निर्यातों मे वृद्धि $100 मिलियन मान लेते हैं। प्रतिक्रिया विदेशी व्यापार गुणक का मुल्य, देश 1 के सीमांत बचत व आयात कि प्रवृत्तियों से निर्धारित होती हैं, जिसको हम S_1 व M_1 की संज्ञा दे सकते हैं तथा राष्ट्र 2 की सीमांत व आयात प्रवृत्तियों को S_2 व M_2 से व्यक्त कर सकते हैं।

$$K_{ff} = \frac{1}{S_1 + M_1 + M_2\left[\frac{S_1}{S_2}\right]} \quad .. (15)$$

हम अनुमानित मूल्यों से इस गुणक की गरणा करके इस प्रकार देख सकते हैं:

$$K_{ff} = \frac{1}{.4 + .1 + .2\left[\frac{.4}{.4}\right]} = \frac{1}{.7} = 1.43 \text{(लगभग)}$$

गुणक का मूल्य 1.43 होगा तो प्रारम्भिक निर्यातों मे $100 मिलियन की वृद्धि से देश 1 की राष्ट्रीय आय मे वृद्धि $143 मिलियन प्राप्त होगी। यह वृद्धि निर्यातों मे वृद्धि गुना गुणक के मूल्य के अनुपात के बराबर होगी।

यह देखना बहुत रुचिकर होगा कि गुणक का मूल्य तब क्या होगा जब राष्ट्रीय आय में वृद्धि देश 1 में बिना किसी प्रतिक्रिया प्रभाव के हुई हो। साधारण गुणक का मूल्य ($k_f = \frac{1}{s_1 + m_1}$)= 2 होगा जबकि प्रतिक्रिया प्रभाव के गुणक का मूल्य 1.43 था। ऐसे मे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि भी $200 मिलियन होगी; निर्यातों मे $100 मिलियन वृद्धि से । प्रतिक्रिया प्रभावों के नकारात्मक प्रभावों के कारण K_{ff} का मूल्य k_f से कम होता है ।

29.7.2 निवेश के प्रति प्रभावों का विदेशी व्यापार गुणक का सिद्धान्त

यदि देश 1 मे प्रारम्भिक निवेश मे वृद्धि $100 मिलियन है तो आय में वृद्धि प्रारम्भिक निर्यातों की वृद्धि के परिणाम से अधिक होगी, क्योंकि ऐसे मे k_{ff} का मूल्य भी पूर्व की तुलना मे अधिक हो जाएगा।

k_{ff} का सिद्धान्त निवेश मे वृद्धि से संबन्धित है जो की चित्र 29.5 मे समझाया गया है:

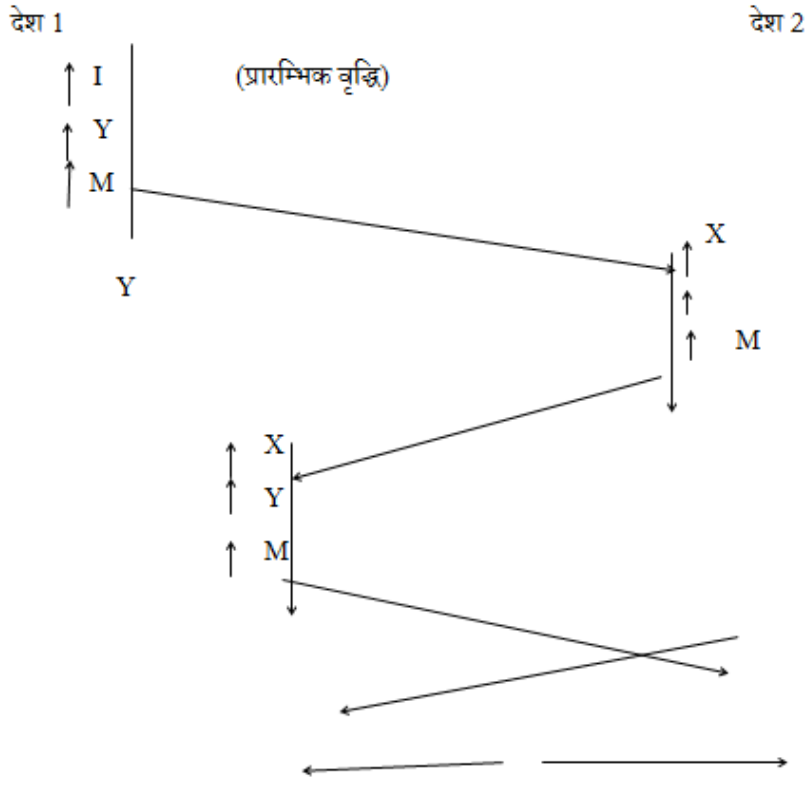

रेखाचित्र 29.5

इस चित्र में प्रतिक्रिया प्रभाव है और वह भी सकारात्मक व विस्तारकारी। प्रारम्भिक निवेश में वृद्धि से देश 1 में आय व आयात दोनों बदेंगे। आयतों मे वृद्धि से देश 2 के निर्यात बढ़ेंगे जिससे उस देश के आय व आयात दोनों बदेंगे। यह देश 1 का प्रतिक्रियाकारी प्रभाव है। देश 1 में निर्यात, आय व आयात एक साथ वृद्धि होगी जिसके कारण देश 2 ए निर्यात, आयात व आय मे भी वृद्धि होगी। यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहेगी जो दोनों देशों को परस्पर आय, आयात व निर्यातों के संचयी विस्तार का लाभ देती रहेगी।

प्रतिक्रियाकारी प्रभाव के गुणक का मूल्य निवेश के संधर्भ में इस प्रकार है :

$$k_{ff} = \frac{1+\left[\frac{M_2}{S_2}\right]}{S_1 + M_1 + M_2\left[S_1/S_2\right]} \quad ..(16)$$

29.7.2.1 निवेशों के प्रति प्रभावों के विदेशी व्यापार गुणक की बीज गणितीय व्युत्पत्ति

ऊपर दिये गए समीकरण की बीज गणितीय व्युत्पत्ति इस प्रकार है :

सरलता के लिए हम देश 1 व देश 2 मान लेते है जिनके सीमांत बचत व आयात प्रवर्तियाँ s व m के बराबर है। देश 1 को घरेलू देश व देश 2 को विदेशी राष्ट्र मान लेते है। सुविधा के लिए घरेलू व विदेशी राष्ट्र को चिन्ह * से पृथक कर लेते है जो इस प्रकार है:

देश 1 का I (निवेश),M(आयात),X(निर्यात), व S (बचत) होंगे वहीं देश 2 जो कि विदेशी राष्ट्र है के I^*(निवेश), M^*(आयात),X^*(निर्यात), व S^* (बचत) होंगे।

देश 1 व देश 2 के राष्ट्रीय आय के प्रारम्भिक समीकरण इस प्रकार है:

$$\begin{aligned} \Delta I + \Delta X &= \Delta S + \Delta M \\ \Delta I^* + \Delta X^* &= \Delta S^* + \Delta M^* \end{aligned} \quad ..(16.1)$$

हम जानते है कि $\Delta S = s\Delta Y$ तथा $\Delta M = m\Delta Y$ है उसी प्रकार देश 2 के लिए यह $\Delta S^* = s^*\Delta Y^*$ व $\Delta M^* = m^*\Delta Y^*$ होगा।

हम यह भी जानते है कि देश एक के निर्यात देश 2 के आयातों के समान है जो कि निम्न समीकरण से व्यक्त होता है :

$$(\Delta M^* = m^*\Delta Y^* = \Delta X) \quad ..(16.2)$$

उसी प्रकार देश 2 के निर्यात भी देश 1 के आयातों के बराबर होंगे :

$$\Delta M = m\Delta Y = \Delta X^* \quad ..(16.3)$$

उपरयुक्त समीकरण 16.2 व 16.3 को समीकरण 16.1 मे स्थानांतरित करने पर :

$$\Delta I + m^* \Delta Y^* = s\Delta Y + m\Delta Y$$

$$\Delta I^* + m\Delta Y = s^* \Delta Y^* + m^* \Delta Y^* \quad ..(16.4)$$

हम यहा मान लेते हैं कि देश 1 में स्वायत्त निवेश मे वृद्धि होती है जबकि देश 2 का स्वायत्त निवेश $\Delta I^* = 0$ शून्य है। समीकरण 16.4 से ΔY^* का मूल्य निकालने पर :

$$m\Delta Y = s^* \Delta Y^* + m^* \Delta Y^*$$

$$m\Delta Y = (s^* + m^*)\Delta Y^*$$

$$\Delta Y^* = \frac{m\Delta Y}{s^* + m^*}$$

ऊपर दिये गए मूल्य को समीकरण 16.4 के प्रथम भाग मे स्थानांतरित करने पर :

$$\Delta I + m^* \frac{m\Delta Y}{s^* + m^*} = s\Delta Y + m\Delta Y$$

$$\Delta I = (s+m)\Delta Y - \frac{(m^* m)}{s^* + m^*}\Delta Y$$

$$\Delta I = \left[(s+m) - \frac{(m^* m)}{s^* + m^*}\right]\Delta Y$$

$$\Delta I = \left[\frac{(s+m)\left(s^* + m^*\right) - m^* m}{s^* + m^*}\right]\Delta Y$$

$$\frac{\Delta I}{\Delta Y} = \frac{ss^* + ms^* + mm^* + sm^* - m^* m}{s^* + m^*}$$

$$\frac{\Delta I}{\Delta Y} = \frac{ss^* + ms^* + sm^*}{s^* + m^*}$$

$$\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{s^* + m^*}{ss^* + ms^* + sm^*}$$

अंश तथा हर के मूल्यों को s^* से विभाजित करने पर हमे निम्न समीकरण प्राप्त होगा :

$$k^* = \frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1 + (m^* / s^*)}{s + m + (m^* s / s^*)}$$

इस प्रकार निम्न समीकरण 16 की व्युत्पत्ति होती है :

$$k_{ff} = \frac{1+\left[\frac{M_2}{S_2}\right]}{S_1 + M_1 + M_2\left[S_1/S_2\right]}$$

समीकरण 16 समीकरण 15 की तुलना में अंश मे $\left[\frac{M_2}{S_2}\right]$ का मूल्य अतिरिक्त है। सभी घटको के सभी समान मूल्य लेते हुए, यहा भी पूर्व उदाहरण की भांति गुणक के मूल्य की गरणा की जा सकती है : इसी प्रकार दूसरे देश के लिए भी प्रतिक्रियाकारी प्रभाव के विदेशी व्यापार के गुणक का मूल्य ज्ञात किया जा सकता है :

अब देश 1 का स्वायत्त निवेश शून्य मान लेते हैं। अब समीकरण 16.4 के प्रथम भाग के समीकरण से ΔY^* का मूल्य प्राप्त करने पर :

$$\Delta Y^* = \frac{(s+m)}{m^*}\Delta Y$$

अब उपरयुक्त मूल्य को समीकरण 16.4 के द्वितीय भाग मे स्थानांतरित करने पर :

$$\Delta I^* + m\Delta Y = s^*\frac{(s+m)}{m^*}\Delta Y + m^*\frac{(s+m)}{m^*}\Delta Y$$

$$\Delta I^* = \left[s^*\frac{(s+m)}{m^*}\Delta Y + m^*\frac{(s+m)}{m^*}\Delta Y\right] - m\Delta Y$$

$$\Delta I^* = \left[s^*\frac{(s+m)}{m^*} + m^*\frac{(s+m)}{m^*} - m\right]\Delta Y$$

$$\Delta I^* = \frac{s^*s + s^*m + m^*s + m^*m - m^*m}{m^*}$$

$$\frac{\Delta I^*}{\Delta Y} = \frac{s^*s + s^*m + m^*s}{m^*}$$

$$\frac{\Delta Y}{\Delta I^*} = \frac{m^*}{s^*s + s^*m + m^*s}$$

ऊपर दिये गए समीकरण अंश तथा हर के मूल्य (दायें पक्ष) को s^* से विभाजित करने पर, निम्न समीकरण प्राप्त होगा :

$$k^{**} = \frac{\Delta Y}{\Delta I *} = \left(\frac{m^* / s^*}{s + m + (m^* s / s^*)} \right)$$

$$k_{ff} = \frac{1 + \left[\frac{.2}{.4} \right]}{.4 + .1 + .2 + \left[\frac{.4}{.4} \right]} = \frac{1.5}{.7} = 2.143 \text{ (लगभग)}$$

यहाँ अब k_{ff} का मूल्य 2.143 है। प्रारम्भिक निवेश में $100 मिलियन वृद्धि से आय में वृद्धि $214 मिलियन हुई। यह मूल्य, प्रारम्भिक निर्यातों मे वृद्धि के प्रतिक्रियाकारी प्रभाव से ज्ञात मूल्य $143 मिलियन से अधिक है। यहाँ तक की यह मूल्य साधारण गुणक के ज्ञात मूल्य की आय गरणा $200 मिलियन से भी अधिक है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि यहाँ निवेश के प्रतिक्रियाकारी प्रभावों में नकारात्मक प्रभावों की अनूपस्थिति पायी गयी है।

निर्यात व निवेश के प्रतिक्रियाकारी गुणक सिद्धान्त के क्या संभावित आर्थिक नीतियाँ लागू हो सकती हैं? निर्यात संवर्धन नीतियाँ यदि एक देश में अपनायी जाए या विश्व के सभी देशों में तो धीमी गति से राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होगी। एक निवेश विस्तारक कार्यक्रम में, एक देश या सभी देश तेज गति से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी इससे विश्व की वास्तविक आय भी बढ़ेगी। निवेश विस्तारक कार्यक्रम, निर्यात संवर्धन कार्यक्रमों के विपरीत विश्व व्यापार का आकार भी वृहत कर देते हैं साथ ही राष्ट्रो के जीवन स्तर मे भी सुधार होता है।

6.8 विदेशी व्यापार गुणक की आलोचना

विदेशी व्यापार गुणक का मॉडल तुलनात्मक स्तेथिकी विश्लेषण व कुछ अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जो इसे अवास्तविक बना देता है :

29.8.1 निर्यात और निवेश स्वतंत्र नहीं

यह विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि घरेलू और विदेशी निर्यात और निवेश राष्ट्रीय आय के स्तर मे परिवर्तनों से स्वतंत्र है । परंतु वास्तव में ,ऐसा नहीं है । निर्यातों मे वृद्धि सदैव राष्ट्रीय आय मे वृद्धि नहीं लाती है। इसके विपरीत, कुछ आयतों जैसे पूंजी पदार्थों का प्रभाव राष्ट्रीय आय को बढाने पर पड़ता है।

29.8.2 विश्लेषण पश्चतारहित

विदेशी व्यापार गुणक का विश्लेषण तात्कालिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा यह अंतिम परिणामो कि और ले जाता है । इस प्रकार यह पश्चतारहित विश्लेषण है जो अवास्तविक बन जाता है।

29.8.3 पूर्ण रोजगार कि अवास्तविक मान्यता

यह विश्लेषण पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है । परंतु वास्तव में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में अपूर्ण रोजगार की स्थिति पायी जाती है । इसलिए विदेशी व्यापार गुणक एक अपूर्ण रोजगार अर्थव्यवस्था में ठीक प्रकार से कार्यकरन नहीं कर सकता है।

29.8.4 दो से अधिक देशों पर लागू नहीं

यह सारा विश्लेषण दो देशों के मॉडल पर लागू होता है । यदि दो से अधिक देश हो तो इस सिद्धान्त के विदेश अप्रत्यक्ष प्रभावों की व्याख्या और विश्लेषण करना जटिल बन जाता है।

इन कमियों के बावजूद , विदेशी व्यापार गुणक आर्थिक विश्लेषण का एक शक्तिशाली औज़ार है जो नीति उपाय व्यवस्तिथ बनाने मे सहायक होता है।

29.9विदेशी व्यापार गुणक का अल्पविकसित देशों में महत्व तथा व्यवहार्यता

विदेशी व्यापार गुणक अल्पविकसित देशों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । गुणक गुणक का मूल्य विभिन्न प्रकार की नीतियो को कार्यरूप देने में

सहायक है। यह ऐसी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण है जहां विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय आय में अधिक योगदान है।

29.9.1निर्यात संबंधी नीतियों का आधार

विदेशी व्यापार गुणक अल्पविकसित देशों में निर्यात संबंधी नीतियों का समर्थन करता है। निर्यात को बढ़ावा देने के लिए आयात प्रशुल्क या आयात कोटा की विधियाँ व्यवहार मे लनी चाहिए । क्या इस प्रकार निर्यात क्षेत्र को विकसित करने के लिए आयात प्रवृत्तियों को घटाना आवश्यक है? इस संधर्भ में प्रो . लुईस इस संभावना से इनकार करते हुए कहते है कि निर्यात क्षेत्र को एक अग्रणी और विकसित क्षेत्र बनाने के लिए आयात स्थानापन्न कि नीति को अपनाना भी आवश्यक है। इस प्रकार दोनों क्षेत्र एक दूसरे के पूरक है।

29.9.2भुगतान शेष में सुधार

अल्पविकसित देशों में भुगतान शेष कि समस्या बनी रहती है । ऐसी स्थितियों में निर्यात को बढ़ाकर, अथवा आयातों को सीमित करके भुगतान शेष के चालू खातों में सुधार किया जाता है । विदेशी निवेश को बढ़ावा देकर भी भुगतान शेष में असंतुलन को कम किया जा सकता है।

लेकिन पिछले कुछ दशकों से विश्व बाज़ार में अल्पविकसित देशों के आ जाने से उनके निर्यातों में काफी वृद्धि हुई है। ऐसा अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्रों कि उपेक्षा करके निर्यात क्षेत्र का विकास हुआ है। दूसरा, निर्यातों पर अत्यधिक निर्भरता ने उन अर्थव्यवस्थाओं कि वस्तुओं कि मांग और कीमतों को अंतर्राष्ट्रीय उतार चढ़ावों के खतरों मे ढाल दिया है।

29.9.3 घरेलू उद्योगों को बढ़ावा

अल्पविकसित देशों में सरकारें आयातों को सीमित करने के लिए घरेलू उद्योगों को विकसित कर सकती है। ऐसी स्थिति में सरकारें विभिन्न प्रकार कि रियायतें भी देती है जैसे उत्पादन सहायिकी निर्यात प्रशुल्क

इत्यादि । लेकिन ऐसे देश में सिर्फ परंपरागत वस्तुएँ ही उत्पादित होती है जिनकी मांग भी कम होती जा रही है।

29.9.4विदेशी निवेश को प्रोत्साहन

अल्पविकसित देशों में अधिकतर वस्तुएँ विदेशों से आयात कि जाती है। वस्तुओं के आयतों को रोकने के लिए सरकारें विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करती है। आयात की जाने वाली वस्तुओं के कारखाने दूसरे देशों की सहायता से देश में ही स्थापित किए जाते है और उनका अर्थव्यवस्था मे ही उत्पादन शुरू हो जाता है। लेकिन विदेशी निवेश अर्थव्यवस्था में पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। विदेशी निवेश प्रमुख रूप से निर्यात वस्तुओं के व्यापार में वृद्धि करते हैं परंतु अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं । मायर के शब्दो में "लाभों का बाह्य प्रवाह, निर्यात के रूप में न होकर, सीधे निकास के रूप में निश्चय ही अर्थव्यवस्था की संभावी वास्तविक बचतों को भी सीमित कर देता है। "

संक्षेप में, जहां विदेशी व्यापार गुणक अल्पविकसित देशों में निर्यात को बढ़ावा, घरेलू उद्योगों के विकास और विदेशी निवेश को प्रोत्साहन की नीतियों को लागू करने का समर्थन करता है साथ साथ अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों के प्रतिप्रभावों की कार्यशीलता की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है।

29.10 निष्कर्ष

इस अध्याय मे हमने विदेशी व घरेलू क्षेत्र के परिवर्तनों का राष्ट्रीय आय व व्यापार संतुलन पर प्रभाव का अध्ययन किया। यह दो क्षेत्र परस्पर अंतरनिर्भर है जिसमे घरेलू बचत व निवेश का अंतराल, विदेशी आयात व निर्यात से घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है। हमने साथ ही विदेशी व्यापार गुणक का राष्ट्रिय आय पर प्रभावों की विवेचना की और इसके प्रतिक्रियाकारी प्रभावों को भी इसमे शामिल किया जिससे हम महत्वपूर्ण नीति विश्लेषण का अध्ययन कर पाये कि निवेश संवर्धन के

मार्ग निर्यात संवर्धन के मार्गों से अधिक प्रभावी हैं, किसी अंतरविकसित या विकासशील राष्ट्र को निवेश संवरधनकरी नीतियों का अनुसरण करना चाहिए ताकि विश्व व्यापार मे अभिवृद्धि तथा उच्च जीवन स्तर का निर्माण हो तथा सतत विकास के उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

29.11 शब्दावली

- सीमांत उपभोग प्रवर्ति (MPC) : सीमांत उपभोग प्रवर्ति अतिरिक्त आय का वो अनुपात है जिसे उपभोक्ता उपभोग करता है।
- सीमांत बचत प्रवर्ति (MPS) : सीमांत बचत प्रवर्ति आय का वो अतिरिक्त भाग है जिसे उपभोक्ता बचत करता है।
- सीमांत आयात प्रवर्ति (MPM) : सीमांत आयात प्रवर्ति ,आय मे परिवर्तन से आयतों मे परिवर्तन का अध्ययन है अर्थात आय मे अतिरिक्त वृद्धि से आयतों की अतिरिक्त वृद्धि की गरणा।
- विदेशी प्रति निर्यात प्रभाव (Foreign Repercussion Effect) : विदेशी प्रति निर्यात प्रभाव, एक देश में होने वाली आय में वृद्धि से दूसरे देश में होने वाले विदेशी व्यापार के प्रभावों का विश्लेषण है।
- विदेशी व्यापार गुणक (Foreign Multiplier) : विदेशी व्यापार गुणक निर्यात गुणक के नाम से भी जाना जाता है। किसी देश के आय मे होने वाली अतिरिक्त वृद्धि से निर्यातों में होने वाली अतिरिक्त वृद्धि का विश्लेषण ही विदेशी व्यापार गुणक है।

29.12 उपयोगी पुस्तकें

- H. Robbert Heller, International Monetary Economics (Englewood Cliffs; Prentice-Hall, 1974) PP. 127-137
- H.G. Mannure, International Economics, Vikas Publishing House, 2009-11
- Salvatore Dominick, International Economics (WileyPublications,2010)

- Sodersten, International Economics (New York: Harper & Row, 1970) pp.260-263
- Walter, Ingo, International Economics (New York: Ronald Press, 1968), chapter 13, pp.303-324

29.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विदेशी व्यापार गुणक की धारणा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

2. विदेशी व्यापार गुणक की प्रक्रिया को समझाइए । यह कहाँ तक अल्पविकसित देशों पर लागू होता है?

3. घरेलू देश के लिए विदेशी व्यापार गुणक का सूत्र क्या होगा यदि वहाँ के स्वायत्त निर्यातों में वृद्धि हो तथा ये निर्यात विदेशी राष्ट्र के उत्पादो से प्रतिस्थापित हो?

4.घरेलू व विदेशी देश के लिए विदेशी व्यापार गुणक का सूत्र क्या होगा यदि वहाँ के स्वायत्त निवेश में वृद्धि हो ?

5. विदेशी व्यापार गुणक किस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार चक्रो से संबन्धित है।

6 यदि C=100+0.8Y,M= 150+0.20Y,I= 100, और X= 350:

(अ)आय के मूल्य की गरना कीजिये

(आ) निर्यातों मे 200 की वृद्धि से आय में प्रभाव

(इ) निवेश में 200 की वृद्धि से आय में प्रभाव

(ई) निर्यातों व निवेश में 200 की वृद्धि से आय पर प्रभाव

7 विदेशी व्यापार पार्टी प्रभावों से से आप क्या समझते हैं? उनकी उपेक्षा करना कब सुरक्शित नहीं हैं?

8 सिद्ध कीजिये की किस प्रकार विदेशी आयात व निर्यात अंतराल, या संतुलित व्यापार, घरेलू बचत व निवेश अंतराल से संबन्धित

है। निवेश अतिरेक व बचत अतिरेक के एक देश के संतुलित व्यापार पर क्या प्रभाव होंगे?

9 एक राष्ट्र के स्वायत्त निवेश मे वृद्धि होने से दूसरे राष्ट्र के विदेशी व्यापार पर क्या प्रभाव होंगे ? बीजगणितीय समीकरणों की सहायता से स्पष्ट कीजिये।

इकाई 30

विदेशी सहायता एवं ऋण सेवा भार

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य

30.1 प्रस्तावना

30.2 विदेशी सहायता प्रदान करने के उद्देश्य

30.3 विदेशी सहायता की आवश्यकता की गणना

30.4 विदेशी सहायता से सम्बद्धित मुद्दे

30.5 विदेशी सहायता नीति में अकुशलताएं

30.6 विदेशी ऋण सेवा भार की समस्या

30.7 ऋण जाल मे फंसे राष्ट्र के समक्ष विकल्प

30.8 भारतवर्ष की विदेशी ऋण समस्या

30.9 सारांश

30.10 शब्दावली

30.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

30.12 निबन्धात्मक प्रश्न

30.0 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य विद्यार्थियों को विदेशी सहायता की अवधारणा, इसके उद्देश्यों व आवश्यकता की गणना की विधि से, अवगत करवाना है। साथ ही विदेशी सहायता से सम्बद्ध विचार वस्तु (Issues) की चर्चा करते हुए विदेशी सहायता नीति की अकुशलताओं पर प्रकाश डाला जायेगा तथा अन्त में विदेशी ऋण-सेवा भार की समस्या का विश्लेषण प्रस्तुत किया जायेगा।

30.1 प्रस्तावना

विदेशी सहायता में कौन से ऋण शामिल किये जाने चाहिए? अथवा विदेशी सहायता क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर से अवगत होना उचित प्रतीत होता है।

प्रो. जगदीश भगवती (J.Bhagwati) व आर.एस.इकॉस (R.S.Eckaus) के अनुसार "संक्षिप्त उत्तर यह है कि विदेशी सहायता के अन्तर्गत अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों को रिआयती शर्तों पर किये गये वास्तविक साधनों के स्पष्ट (explicit) हस्तांतरण सम्मिलित होते है। साधन हस्तांतरण में जबतक व्यापारिक रूप से (Commercially) उपलब्ध शर्तों से कुछ अंश तक अधिक अनुकूल शर्तें समावित (involved) नहीं हो तब तक इसमें उपहार तत्व सम्मिलित नहीं होता है।"

अत: स्पष्ट है कि विकासशील राष्ट्रों मे निजी पूंजी के अन्तर्वाह के अनेक होते हुए भी हम इन्हे विदेशी सहायता की श्रेणी में नहीं रख सकते हैं।

सर रॉय हरॉड (Sir Roy Harrod) ने इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "सहायता के अन्तर्गत हमें अनुदान व "नरम ऋण" (Soft loans) सम्मलित करने चाहिए। जिन्होंने विश्व बैंक बॉण्ड्स मैं निवेश कर रखा है उन्हें उतना ही प्रतिफल मिलता हें जितना उन्हें घरेलू सरकारी बॉण्ड्स में मिल रहा हैं। सहायता की धारणा (idea) यह है कि किसी न किसी ने त्याग किया है। लेकिन इस उदाहरण (विश्व बैंक के उदाहरण) में त्याग किया है?"

अत: स्पष्ट है कि बैंक के ऋणों को हम सहायता की श्रेणी में नही रख सकते क्योंकि इन ऋणों में किसी का त्याग अन्तरनिहित नही है। विश्व बैंक अपने बॉण्ड्स पर उतना ही ब्याज चुकाती है जितना उन बॉण्ड्स पर विनियोगकर्ताओं की घरेलू सरकारें देती है। सहायता तो ऐसा दीर्घकालीन विनियोग है जिसमें त्याग निहित हो। जैसा कि अन्तर्ज्ञान से स्पष्ट है, ब्याज दर जितना कम होगी तथा ऋण की अवधि जितनी अधिक होगी ऋणदाता के दृष्टिकोण से हस्तांतरण में उतना ही अधिक सहायता तत्व शामिल होगा। यदि घरेलू बाजार में प्रचालित शर्तों से कड़ी शर्तों पर ऋण प्रदान किया जाता है तो ऋणदाता की लागत के दृष्टिकोण से ऋण का सहायता मूल्य ऋणात्मक होता है।

30.2 विदेशी सहायता प्रदान करने के उद्देश्य (Objectives of Foreign Aid)

अमेरिका व रूस के मध्य विचार धाराओं के युद्ध में विदेशी सहायता प्रमुख हथियार रहा है। विश्व के सबसे बड़े सहायता प्रदान कर्ता राष्ट्र अमेरिका द्वारा बड़ी मात्रा में सहायता प्रदान करने के पीछे मात्र कल्याण की भावना ही नहीं अपितु अन्य उद्देश्य भी निहित रहे हैं। धनाड्य राष्ट्रों द्वारा प्रदत्त विदेशी सहायता के पीछे तीन प्रमुख उद्देश्य रहे हैं।

(1) व्यूह रचना से सम्बद्ध उद्देश्य (strategic objectives)

विकसित पूंजीवादी राष्ट्र अल्पविकसित राष्ट्रों को इसलिए ऋण एवं सहायता प्रदान करते हैं कि वे राष्ट्र समाजवादी गुट में न चले जायें। दूसरी ओर राष्ट्र यह अनुभव करते हैं कि उनकी विचारधारा के प्रचार हेतु अल्पविकसित राष्ट्र ही उचित हैं, अत: ये राष्ट्र भी विकासशील राष्ट्रों को सहायता प्रदान करते है।

अत. स्पष्ट है कि अन्य राष्ट्रों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने, वहां की सरकार को स्थायित्व प्रदान करने, किसी देश पर अप्रत्यक्ष प्रभाव बनाये रखने, वहां की सरकार को अपने प्रभाव में रखने आदि अनेक ऐसे उद्देश्य है जो विदेशी सहायता के पीछे निहित रहते हैं।

(2) आर्थिक उद्देश्य (Economic objectives)

विदेशी सहायता प्रदान करने से भले ही प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ न हो लेकिन इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि सहायता प्रदान करने का निर्णय अनेक आर्थिक उद्देश्य से प्रभावित होता है।

विकसित राष्ट्रों मे अति-उत्पादन का भय बना रहता है अत: आर्थिक मंदी की स्थिति को टालने हेतु यह आवश्यक होता है कि देश में उत्पादन की मांग बनी रहे। आर्थिक सहायता प्रदान कर ऋणदाता राष्ट्र अपने माल के लिए बाजार का विस्तार करते हैं। उदाहरणार्थ, पी.एल. 480 के अन्तर्गत भारी मात्रा में गेहूं खपाकर अमेरिका ने विभिन्न राष्ट्रों में स्वयं के गेहूं बाजार का विस्तार किया था।

इसी प्रकार मन्दी काल में सरकार ऋण प्रदान कर ऋणी राष्ट्रों में बाजार स्थापित करने का प्रयास करती है। इसलिए तो कहा जात है कि विकसित राष्ट्र अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों को सहायता प्रदान कर अपनी ही अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाते हैं।

विदेशी सहायता के पीछे यह भी उद्देश्य रहता है कि ऋणी राष्ट्र ऐसे निर्णय न ले जिनसे ऋणदाता राष्ट्र के आर्थिक हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो।

(3) मानव कल्याण का उद्देश्य : (Charitable objectives)

अमेरिका अर्द्धविकसित राष्ट्रों को इस उद्देश्य से भी विदेशी सहायता प्रदान करता है कि राष्ट्र अपनी गरीबी भुखमरी व दरिद्रता की समस्याओं से निपट सके। युद्ध, प्राकृतिक विपदाओं आदि से पीड़ित देशों की सहायताकर्ता सरकारों का उद्देश्य सहायता प्राप्तकर्ता राष्ट्रों की विनियम दर में स्थायित्व बनाये रखना भी हो सकता है।

कई विकसित राष्ट्र इस भावना से प्रेरित होकर भी आर्थिक सहायता प्रदान करते है। कि उनका यह दायित्व है कि अर्द्ध विकसित राष्ट्रों को विकास हेतु उपयुक्त उपकरण अथवा साधन प्रदान करे।

जहां तक अर्द्ध विकसित राष्ट्रों के लिए आर्थिक सहायता के महत्व का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि ये राष्ट्र निसंदेह ही आर्थिक सहायता से लाभान्वित होते हैं। लेकिन आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने हेतु विदेशी सहायता का सार्थक (effective) होना बहुत कुछ सहायता की प्रकृति व इससे जुड़ी शर्तों पर निर्भर करता है।

30.3 विदेशी सहायता की आवश्यकता की गणना (Computation of Aid Requirement)

विदेशी सहायता की आवश्यकता का अनुमान लगाने हेतु अर्द्ध विकसित राष्ट्रों की सकल राष्ट्रीय आय को किसी ऐतिहासिक वृद्धि की दर से प्रारम्भ करते है। तत्पश्चात् अग्रलिखित दो में से किसी एक विधि (अथवा दोनों के संयोग) को अपनाया जा सकता है।

प्रथम विधि के अनुसार विदेशी विनिमय की समस्या की ओर ध्यान न देकर लक्षित विकास की दर को प्राप्त करने हेतु वार्षिक विनियोग की आवश्यकता का अनुमान लगाकर विदेशी सहायता की आवश्यकता को आका जाता है। विनियोग की अनुमानित आवश्यकता की प्रक्षिप्त (projected) घरेलू बचत से तुलना की जाती है। यदि प्रक्षिप्त बचत आवश्यक विनियोग से कम है तो इन दोनों का अन्तर-जिसे बचत अन्तराल (saving -

gap) के नाम से जाना जाता है - को विदेशी सहायता का द्योतक मान लिया जाता है।

द्वितीय विधि विदेशी विनिमय की आवश्यकता का अनुमान लगाने पर आधारित है। यदि आयात प्रक्षेप (projection) निर्यात प्रक्षेपों से अधिक है तो इन दोनों का अन्तर विदेशी विनिमय का अन्तर होगा।

रॉजन्सटीन राडान (Rosenstein-Rodan) ने विदेशी सहायता की आवश्यकता की गणना हेतु निम्नांकित सूत्र प्रदान किया है :-

$$F = (Kr - b)\sum y + 5y_0[b - \frac{s_0}{y_0}]$$

उपर्युक्त सूत्र में आर्थिक विकास हेतु 5 वर्ष की अवधि के लिए आवश्यक विदेशी सहायता की गणना की गई है। यहां y_0 अर्द्धविकसित राष्ट्र की सकल राष्ट्रीय आय है तथा इसकी वृद्धि की दर r हैं (r को राष्ट्र की अनुमानित ऋण ग्राह्यता क्षमता के आधार पर चुना जाता है), (s_0 / y_0) प्रारम्भिक वर्ष में औसत बचत की दर तथा b बचत की सीमान्त दर एवं k पूंजी/उत्पादन अनुपात है।

उपर्युक्त सूत्र से स्पष्ट है कि विदेशी सहायता की आवश्यकता प्रारम्भिक सकल राष्ट्रीय आय बचत दर व पूंजी-उत्पादन अनुपात से सर्वाधिक प्रभावित होती है, बचत की सीमान्त दर से आवश्यक सहायता की मात्रा दीर्घकाल में अधिक प्रभावित होती है।

ध्यान रहे कि उपर्युक्त सूत्र द्वारा सहायता आवश्यकता की गणना करने का अभिप्राय पूर्व वर्णित विधियों में से प्रथम विधि को प्रयुक्त करना है।

30.4 विदेशी सहायता से सम्बद्ध विचार वस्तु (Issues in Aid Policy)

प्राय: यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या आर्थिक विकास हेतु विदेशी सहायता आवश्यक व उपयोगी है? लेकिन इसके अलावा भी सहायता नीति से सम्बद्ध कई अन्य प्रश्न भी है जिन पर नीति विशेषज्ञों तथा सहायता प्रदान कर्ता एजेन्सीज ने समय-समय पर विचार किया है। विदेशी सहायता से सम्बद्ध प्रमुख विचार वस्तु को हम निम्नांकित शीर्षकों में विभाजित करके स्पष्ट कर सकते है:-

(1) ऋण बनाम अनुदान (Loans versus grants)

विकास सहायता समिति (DAC) के अनुसार वित्तीय सहायता अग्रलिखित छ: रूपों में प्रदान की जा सकती है:-

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को विकास के उद्देश्य से दिये गये योगदान

(ब) द्वि-पक्षीय अनुदान (Bilateral grants)

(स) ऋणदाता राष्ट्र की मुद्रा में चुकाये जाने वाले द्वि-पक्षीय ऋण

(द) ऋणी राष्ट्र की मुद्रा में चुकाये जाने वाले द्वि-पक्षीय ऋण

(ध) दृढ़ीकरण साख (consolidation credits)

(न) ऋण प्राप्तकर्ता राष्ट्र की मुद्रा में विक्रय करके साधनों का हस्तांतरण (पी.एल.480 के कृषि पदार्थो के अधिशेष का योगदान)

यद्यपि उपर्युक्त वर्गीकरण कई उद्देश्यों के दृष्टिकोण से उपयोगी है परन्तु विदेशी सहायता के इन समस्त रूपों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, प्रथम अनुदान तथा द्वितीय ऋण। अनुदान व ऋण में से सहायता का कौन सा रूप उत्तम है यह सहायता के उद्देश्य पर निर्भर करता है। यदि निश्चित राशि के हस्तांतरण का उद्देश्य अधिकतम पूंजी का हस्तांतरण है तो ऐसा अनुदान अथवा ऋण दिया जाना चाहिए

जिसमें उच्च अनुदान तुल्य (High grant equivalent) राशि समाविष्ट हो। इसके विपरीत यदि सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्र का उद्देश्य वास्तविक हस्तांतरण को न्यूनतम करना है तो व्यावसायिक दरों पर व अल्प परिशोधन (short Amortisation) वाला ऋण प्रदान करना चाहिए।

विकासशील राष्ट्रों को अर्थिक सहायता अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए अथवा ऋण के रूप में, इस सन्दर्भ में प्रो. किन्डलबर्गर (Kindleberger) का विचार है कि ऋण प्रदान किया जाये अथवा अनुदान यह मात्र इस आधार पर तय नहीं किया जाना चाहिए कि सहायता को किस उपयोग में प्रयुक्त किया जाता है, उनके अनुसार "अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कल्याण फलन के लिए यह आवश्यक है कि एक निश्चित स्तर से कम प्रतिव्यक्ति आय वाले राष्ट्रों को अनुदान दिया जाना चाहिए चाहे वे राष्ट्र इस सहायता को उपभोग में काम लें अथवा पूंजी निर्माण में तथा आय के इससे ऊपर स्तर वाले राष्ट्रों को ऋण दिया जाना चाहिए।"

अत: स्पष्ट है कि विकासशील राष्ट्रों को अनुदान ही अधिक दिया जाना चाहिए।

(2) बहुपक्षीय बनाम द्विपक्षीय सहायता (Multilateral versus Bilateral Aid)

बहुपक्षीय सहायता से राष्ट्र को अनेक देशों से सहायता प्राप्त होती है जबकि द्विपक्षीय सहायता में दो देशों के मध्य ऋण समझौते होते है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से प्राप्त सहायता प्राय: बहुपक्षीय होती है क्योंकि इसमें कई देशों का योगदान रहता है तथा राष्ट्रविशेष ऐसी सहायता पर किसी भी प्रकार की शर्तें नहीं लगा पाता है। इसके विपरीत द्विपक्षीय सहायता में ऋणदाता राष्ट्र का सहायता के उपयोग पर नियंत्रण रहता है तथा सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्र को इस प्रलोभन का शिकार बना देती है कि वह सहायता को अत्यधिक अल्पकालीन राजनैतिक उद्देश्यों हेतु उपयोग करे तथा राजनैतिक दबाव डालने का प्रयास करे। प्रो. किन्डलबर्गर (Kindleberger) के अनुसार, "'समय के साथ ऐसी सहायता

सुस्थापित होती जाती है, इसे जारी रखने से राजनैतिक लाभ मिलने बन्द हो जाते है लेकिन इसे बन्द करना निश्चय ही शत्रुतापूर्ण (unfriendly) माना जाता है।" अत: बहुपक्षीय एजेन्सीज ऋणदाता को संरक्षण प्रदान करती है जिसके पीछे ऋणदाता अपने राजनैतिक उलझाव को कम कर सकता है तथा आवश्यक होने पर ऋण प्राप्तकर्ता राष्ट्रों से अपने दुःखद उलझाव को कम कर सकता है। लेकिन यदि ऋणदाता राष्ट्र ऋणी की 'कृतज्ञता' का भूखा है तो बहुपक्षीय सहायता से यह 'कृतज्ञता' तो कम ही अर्जित होगी।

टॉमस बलॉघ (Thomas Balogh) व रोजनस्टीन राडान (Rosenstein-Rodan) ने दर्शाया है कि प्रमुखतया द्विपक्षीय सहायता की अनिवार्यता व वांछनीयता की स्वीकृति अधिकाधिक हो रही है। अनुभव ने इस क्षेत्र में बहुपक्षीय संस्थाओं की अपर्याप्तता स्पष्ट कर दी है तथा यह अधिकाधिक महसूस किया जा रहा है कि बिना सहायता की मात्रा को दांव पर लगाये सहायता प्रवाहों को राष्ट्रीय नीति लाभों से पूर्णतया पृथक नहीं किया जा सकता। इस सन्दर्भ में रोडान (Rodan) ने 'कनसारटियम तकनीकी' (consortium technique) के माध्यम से द्विपक्षीय प्रवाहों के 'बहुपक्षीयकरण' करने की वकालत की है।

लेकिन बहुपक्षीय एजेन्सीज द्वारा प्रदत्त सहायता में दो स्पष्ट कमियों बनी रहती है: प्रथम, इन एजेन्सीज ने व्यावसायिक लकीरों पर अति-विशिष्टीकरण कर लिया है, तथा द्वितीय, ये एजेन्सीज सभी जरूरतमन्द राष्ट्रों के सहायता प्रदान करने के चक्कर में रहती है अत: इन पर दावेदारों का निरन्तर दबाव बना रहता है।

(3) पी.एल. 480 के तहत प्रदत खाद्यान सहायता की कार्यकुशलता : (The Economic efficiency of Food aid under P.L.480)

विदेशी सहायता के सन्दर्भ में मुख्य प्रश्न अति-उत्पादन को खपाने से सम्बद्ध रहा है। इस अति-उत्पादन को खपाने से प्राप्त कर्ता राष्ट्र के कृषि विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

प्रारम्भिक वर्षो में इस बात का पर्याप्त सबूत था कि पी.एल.480 के अन्तर्गत सहायता का कार्यक्रम अंशत: इस उद्देश्य से प्रेरित था कि फार्म-समर्थन कीमत द्वारा सृजित अति उत्पादन के भण्डारों को कैसे खपाया जाये। अत: यह चिन्ता तर्कसंगत ही थी कि ये कार्यक्रम निश्चय ही राशिपातन (dumping) की प्रकृति के थे जिनसे सहायता प्राप्तकर्ता राष्ट्रों के घरेलू विकास की दर घटती है। इसके अतिरिक्त यह भी चिन्ता का विषय था कि इस तरह के अति उत्पादन की उपलब्धि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में संगठनात्मक कार्य शक्ति (organisational energy) को क्षीण कर देगी। एक अन्य भय भी था कि खद्यान पूर्ति पर निर्भरता बढ़ने की स्थिति में यदि खाद्यान्न सहायता घट जाती है तो गम्भीर खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो सकता है जैसा कि सन् 1965-66 में लगातार दो सूखों के कारण भारत में हुआ था।

(4) बन्धनयुक्त एवं कार्यक्रम बनाम परियोजना सहायता (Tied aid and Programme versus Project Aid)

विदेशी सहायता प्रदान करते समय यदि कोई शर्त जुड़ी हुई है तो उसे बन्धन युक्त सहायता कहते है। स्रोत से बन्धित सहायता को प्रो. भगवती (Bhagwati) ने निम्न पांच प्रकारों में विभाजित किया है:-

(अ) औपचारिक प्रतिबन्ध: यदि औपचारिक व संविदात्मक रूप (contractually) में यह तय कर लिया जाता है कि सहायता प्राप्तकर्ता राष्ट्र सहायता राशि को नमोद्दिष्ट (designated) स्रोत से ही वस्तुओं व सेवाओं का आयात करने में उपयोग करेगा तो उसे औपरचारिक बन्धनयुक्त सहायता कहते है।

(ब) अनौपचारिक प्रतिबन्ध: इसके अन्तर्गत दोनों पक्षों के मध्य अनौपचारिक समझौता रहता है कि सहायता प्राप्तकर्ता राष्ट्र सहायता राशि को सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्र में ही व्यय करेगा, लेकिन कोई औपचारिक समझौता नहीं किया जाता है।

(स) परोक्ष प्रतिबन्ध: परोक्ष प्रतिबन्ध दो तरीकों से लगाये जाते है: प्रथम तरीके के अनुसार सहायता प्रवाह को समस्त व्यापार व्यवस्था का अंग मान लिया जाता है। ऐसा प्राय: समाजवादी राष्ट्र करते है। एक वैकल्पिक तरीका, जिसे फ्रांस के प्राधिकरण प्रयुक्त करते है, यह है कि सहायता प्रवाह को उन प्रावधानों से जोड़ दिया जाता है जिनके अन्तर्गत सहायता राशि को फ्रांस की वस्तुओं व सेवाओं पर व्यय किया जाता है, जबकि फ्रांस स्वयं 'पारस्परिक्ता' (reciprocity) के रूप में पुराने फ्रांस-अफ्रीका क्षेत्रों से अधिमानिक आधार पर क्रय करता है।

एक अन्य तरीके के अन्तर्गत केवल उन्हीं वस्तुओं व परियोजनाओं के लिए वित्त व्यवस्था की जाती है जिनके अन्तर्गत उल्लेखित मदों की पूर्ति में सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्र का स्पष्ट लाभ विद्यमान हो।

(द) निर्यात व आयात साख: इसके अन्तर्गत आयातकर्ताओं अथवा निर्यातकर्ताओं को साख प्रदान की जाती है जो कि ऋणदाता राष्ट्र के निर्यातों से स्वत: ही जुड़ी रहती हैं।

(ध) वस्तुओं व तकनीकी सेवाओं के रूप में प्रत्यक्ष निहित सहायता: इसके अंतर्गत सहायता प्राप्तकर्ता राष्ट्र को सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्र से वस्तुओं व सेवाओं के रूप में ही सहायता प्रदान की जाती है।

(5) एक प्रतिशत सहायता का लक्ष्य (The 1 Percent aid target)

विदेशी सहायता कितनी दी जानी चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर 'मांग पक्ष' व 'पूर्ति पक्ष' दोनों को ध्यान में रखकर प्रदान किया जा सकता है।

जहां तक पूर्ति पक्ष का प्रश्न है इसके अन्तर्गत हम सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्रों के मध्य सहायता वितरण पर विचार करते है। आकड़ों व गणना विधि की भिन्नताओं के बावजूद इस लक्ष्य पर आश्चर्यजनक सर्वसम्मति पायी गई है कि विकसित राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय आय का 1 प्रतिशत विकासशील राष्ट्रों को रिआयती ऋणें व अनुदान के रूप में प्रदान

करें। सन् 1960 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 60 के दशक को 'विकास दशक' घोषित करते हुए राष्ट्रीय आय का एक प्रतिशत सहायता को विकास सहायता का लक्ष्य स्वीकार किया था। सन् 1956 से 61 के वर्षों में यह लक्ष्य वास्तव में प्राप्त भी कर लिया गया था तथा इस अवधि में विदेशी सहायता विकसित राष्ट्रों की आय का 1.1 प्रतिशत थी।

सन् 1966 के बाद अमेरिका द्वारा प्रदत्त विदेशी सहायता में कमी के परिणाम स्वरूप इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पायी है।

30.5 विदेशी सहायता नीति में अकुशलताएं
(Inefficiencies in Aid Policy)

उपर्युक्त बन्धनों अथवा शर्तों से विदशी सहायता में विभिन्न प्रकार की अकुशलतायें आ जाती है, जिनसे सहायता प्राप्तकर्ता राष्ट्र के लिए सहायता राशि की सार्थकर्ता व उपायोगिता घट जाती है। बन्धनों के कारण सहायता के मूल्य व गुणवत्ता सम्बन्धी प्रतिस्पर्द्धा घट जाती है अर्थात सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्र को एक प्रकार की एकाधिकारी शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस एकाधिकारी शक्ति के माध्यम से सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्र, सहायता प्राप्तकर्ता राष्ट्र पर इच्छित वस्तुएं मनमाने मूल्य पर थोपता रहता है।

विकासशील राष्ट्रों को 'परियोजना' सहायता (Project aid) प्रदान करने के परिणाम स्वरूप उन्हें ऐसी परियोजनाओं के लिए ऋण दिया जा सकता है जो कि "प्रदर्शन" (display) अथवा 'स्मारक' (Monument) के नमूने के रूप में तो महत्वपूर्ण हो लेकिन इन राष्ट्रों के आर्थिक विकास में उनका महत्व नगण्य हो।

प्रो. हेरी जॉनसन् (Harry Johnson) के अनुसार सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्रों के मध्य प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने से अकुशलता के इस स्रोत में कमी हो सकती है।

विदेशी सहायता में एक अन्य, प्रमुख कमी यह आजाती है कि विकासशील राष्ट्रों को सहायता से वित्तव्यवस्था की गई परियोजनाओं में प्रयुक्त किये जाने वाले उपकरणों का प्रतिस्पर्धी बाजार मूल्य से काफी ऊंचा मूल्य चुकाना पड़ सकता है।

अकुशलता का यह स्रोत भी सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्रों के मध्य प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि अथवा कार्यक्रम सहायता (Program aid) में वृद्धि से कम हो सकता है।

बन्धनयुक्त सहायता में एक अन्य अकुशलता यह है कि विश्व के सबसे बड़े साहूकार देश अमेरिका ने यह प्रथा चला रखी है कि सहायता का 50 प्रतिशत माल अमेरिका के जहाजों में ही ढोया जायेगा तथा अमेरिका के जहाजों में माल ढोने की लागत विश्व लागतों से बहुत ऊंची है।

प्रो. जगदीश भगवती का आरोप है कि विश्व के सबसे बड़े साहूकार देश अमेरिका ने सर्वाधिक मात्रा में बन्धनयुक्त सहायता प्रदान की है।

सहायता में उपर्युक्त अकुशलताओं की गम्भीरता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि विकासशील राष्ट्र सहायता प्रदानकर्ता राष्ट्रों की आपसी 'सहायता प्रतिस्पर्द्धा' का कितना लाभ उठा सकते है तथा बन्धनयुक्त सहायता के अन्तर्गत विकास उपकरणों की ऊंची कीमत चुकाने से किस सीमा तक बच सकते है।

30.6 विदेशी ऋण सेवा भार की समस्या (Problem of debt service burden)

विकासशील राष्ट्रों की अनेक आर्थिक समस्याओं में से अन्तरराष्ट्रीय ऋण-ग्रस्तता की समस्या सर्वाधिक विकराल रूप धारण कर चूकि है तथा यह समस्या ऋणी राष्ट्रों के सामाजिक व आर्थिक विकास में गम्भीर बाधा बन चुकी है।

सन् 1973 तक विदेशी ऋण भार की समस्या इतनी गम्भीर नहीं थी तथा उस समय विकासशील राष्ट्रों पर कुल 100 अरब डालर का ऋण था। जबकि वर्तमान में स्थिति इतनी गम्भीर है कि अनेक विकासशील राष्ट्रों को ऋण पर ब्याज चुकाने के लिए भी और उधार पर निर्भर रहना पड़ रहा है। सन् 1982 में विश्व का कुल ऋण लगभग 850 अरब डालर था जो कि 1988 में बढ़कर 1223 अरब (1.2 ट्रिलियन) डालर तक पहुंच चुका था। वस्तुओं व सेवाओं के प्रतिशत के रूप में विश्व ऋण सन् 1979 में 90.8 प्रतिशत था जो कि सन् 1988 में बढ़कर 160.7 प्रतिशत हो चुका था।

ऋण की निरपेक्ष राशि पर दृष्टि डालें तो विश्व का अधिकांश ऋण एशिया तथा लेटिन अमेरिका (पश्चिम हेमीस्फेयर) में केंद्रित था। लेकिन निर्यातों के प्रतिशत के रूप में लेटिन अमेरिका का ऋण भार एशिया की तुलना में काफी अधिक था। अफ्रीका में भी विदेशी ऋण निर्यातों के प्रतिशत के रूप में काफी बढ़ चुका था। सन् 1979 में एशिया का ऋण निर्यातों का 75.2 प्रतिशत था जा कि सन् 1988 में बढ़कर 95.8 प्रतिशत हो गया था जबकि लेटिन अमेरिका में यह प्रतिशत इसी अवधि में क्रमश: 197.7 व 342.2 था।

विश्व के सर्वाधिक ऋणी 15 राष्ट्रों का ऋण सन् 1979 से 1988 की अवधि में कुल ऋण का 38 से 45 प्रतिशत के बीच था। लेकिन इन राष्ट्रों के निर्यात के प्रतिशत के रूप में यह ऋण इसी अवधि में लगभग दुगना हो चुका था। सन् 1979 में इन राष्ट्रों का ऋण उनके निर्यातों का 18.2.2 प्रतिशत था जो कि सन् 1987 में बढ़कर 349.6 प्रतिशत हो गया था।

ऋण समस्या की गम्भीरता का एक और सूचक कुल ऋण का सकल घरेलू उत्पाद से अनुपात है। इन पन्द्रह राष्ट्रों के सन्दर्भ में यह अनुपात सन् 1979 में 30.2 प्रतिशत था जो कि सन् 1987 में बदलकर 50.8 प्रतिशत हो चुका था अर्थात् इस अवधि में इस अनुपात में लगभग 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।

ऋण भार का एक अन्य सूचक ऋण सेवा (debt service) अर्थात ब्याज व परिशोधन (interest plus amortization) का वस्तुओं व सेवाओं के निर्यात से अनुपात है। सन् 1979 में विकाशील राष्ट्रों का ऋणसेवा भुगतान उनके निर्यातों का 14.1 प्रतिशत था जो कि सन् 1988 में बढ़कर 20.0 प्रतिशत हो चुका था। लेकिन लेटिन अमेरिका में यह प्रतिशत लगभग 40 था जो कि अन्य क्षेत्रों की तुलना में काफी ऊँचा था। अफ्रीका में यह प्रतिशत सन् 1979 के 15.3 से बढ़कर सन् 1988 में 29.2 तक पहुंच कर लगभग दुगना हो गया था। इसके विपरीत एशिया के ऋण भार (अर्थात ऋण सेवा भार निर्यातों का प्रतिशत) में विशेष वृद्धि नहीं हुई थी यह प्रतिशत 9 से 13 की विस्तार सीमा में ही था।

जहां तक ऋणदाताओं का प्रश्न है विकासशील राष्ट्रों के ऋण में व्यापारिक बैंकों के ऋण का अनुपात उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। सन् 1970 में इन राष्ट्रों के ऋण में बैंक ऋणों हिस्सा लगभग 25 प्रतिशत था जो कि 1982 में बढ़कर 40 प्रतिशत हो चुका था। सन् 1987 तक विकासशील राष्ट्रों के कुल ऋण में बैंक ऋणों का हिस्सा लगभग आधा हो चुका था। विशेषकर लेटिन अमेरिका के राष्ट्रों की बैंक ऋणों पर बढ़ती निर्भरता ही ऋण जाल (dept trap) समस्या का प्रमुख कारण है।

30.7 ऋण जाल में फंसे राष्ट्र के समक्ष विकल्प (The choices available to a country in the debt trap)

ऋण सेवा भार की समस्या के गम्भीर रूप धारण करने के पीछे तीन प्रमुख कारण रहे है:-

(1) सन् 1978 के बाद की अवधि में ब्याज दरों में भारी वृद्धि, (2) उन्नीस सौ अस्सी के दशक के प्रारम्भिक वर्षों की विश्वव्यापी मन्दी, तथा (3) डालर का भारी अधिमूल्यन। ऋण सेवा भार की समस्या का उदय इसलिए होता है कि ऋणी राष्ट्रों से ऋण चुकाने की आशा की जाती है तथा आर्थिक सहायता में वृद्धि के साथ-साथ विकासशील राष्ट्रों पर ऋण एवं ब्याज का

भार भी बढ़ता जाता है। ऋण सेवा भार की समस्या से ग्रसित राष्ट्र के सामने सामान्यतया तीन विकल्प रहते है:-

(2) वह राष्ट्र अपने ऋणों पर पुनर्भुगतान बन्द करदे और इस प्रकार ऋण सेवा बकाया का संचय करता रहे। लेकिन इस विकल्प की एक बड़ी कमी यह है कि ऐसा करने से ऋणी राष्ट्र का विश्वास उठ जाता है तथा ऐसे राष्ट्र को भविष्य मे नये ऋण प्राप्त कर्ताओं की सूची से भी निकाला जा सकता है, अत: राष्ट्र के लिए भविष्य में ऋण प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

(3) ऋणी राष्ट्र के समक्ष दूसरा विकल्प यह है कि वह हर हालत में अपने ऋण सेवा भार को चुकाता रहे। लेकिन ऐसा करने से राष्ट्र को अपने विदेशी विनिमय व्यय के अन्य मदों में कटौती करनी पड़ सकती हैं। सामान्यतया ऐसी कटौती राष्ट्र के आयातों को कम करके की जाती है। अत: यह विकल्प उन राष्ट्रों द्वारा अपनाया जाना कठिन है जिनके आयात अति आवश्यक वस्तुओं तक ही सीमित रह गये है। अत: यह विकल्प आर्थिक व सामाजिक दोनों ही आधारों पर व्यावहारिक नही है।

(4) तृतीय विकल्प के अनुसार ऋणी राष्ट्र अपने ऋण का पुन: सूचीकरण (debt rescheduling) करवाने का प्रयास कर सकता है अथवा पुन: वित्तव्यवस्था (refinancing) द्वारा बाकि ऋण में से नया मध्यावधि ऋण ले सकता है जिसका भुगतान ऋण के मुनाफे (proceeds) के भुगतान के साथ किया जा सकता है। ध्यान रहे कि ऋण पुन: सूचीकरण में मूलधन के भुगतान का स्थगन (postponement) किया जाता है न कि ब्याज की राशि का। ऐसा करने से नये ऋणों से ऋणी राष्ट्र अपने ब्याज का भुगतान करता रहता है तथा चालू खाते के घाटों की भी कुछ सीमा तक वित्तव्यवस्था होती रहती है। अन्त में हम कह सकते है कि ऋणग्रस्तता की समस्या के व्यवहार्य (viable) हल हेतु अग्रलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है:

(1) समस्त सम्बद्ध पक्षों द्वारा ऋणों के समायोजन की लागत वहन करने में भागीदारी निभाना, तथा

(2) ऐसा वातावरण तैयार करना जिससे धन्नाढ़य राष्ट्रों से विकासशील राष्ट्रों को पूंजी का निरन्तर प्रवाह चालू रहे।

यदि उपर्युक्त विकल्पों से ऋण ग्रस्तता की समस्या हल नहीं होती है तो फिर ऋणदाता राष्ट्र ही इस समस्या का समाधान कर सकते हैं। वास्तविकता तो यह है की ऋणसेवा भार की समस्या का सृजन ऋणदाता राष्ट्रों द्वारा ही किया गया है तथा वे इस समस्या हल भी सहज ही कर सकते हैं।

30.8 भारतवर्ष की विदेशी ऋण समस्या (India's External Debt Problem)

जहां तक भारतवर्ष की विदेशी ऋणग्रस्तता की समस्या का प्रश्न है स्थिति काफी गम्भीर कही जा सकती है। सन् 1998 के अन्त में भारत पर कुल 92.72 अरब डालर का विदेशी ऋण था। लेकिन भारत सरकार का दावा है कि राष्ट्र की विदेशी ऋणग्रस्तता की स्थिति सुधरी है। इस दावे का प्रमुख आधार हमारे कुल विदेशी ऋण में अल्पकालीन ऋण (जो प्रदान करने की तिथि से एक वर्ष की अवधि में चुकाना हो) का अनुपात घटा है। हमारे विदेशी ऋण में अल्पकालीन ऋण का प्रतिशत सन् 1997 में 7.2 था जा दिसम्बर 1998 में घटकर 3.8 रह गया था। इसी प्रकार चालू प्राप्तियों की प्रतिशत के रूप में ऋण सेवा भार सन् 1991-92 के 35.5 प्रतिशत के उच्चतम स्तर से घटकर सन 1998-99 के वित्तवर्ष के प्रथम नौ माह में 19.4 प्रतिशत रह गया था। ऋणभार के एक अन्य सूचक ऋण का सकल घरेलू उत्पादन (GDP) से अनुपात है। भारत का यह अनुपात सन् 1991-92 के उच्चतम 37.7 प्रतिशत से घटकर सन् 1997 - 98 में 23.8 प्रतिशत रह गया था। निम्न सारणी-30.1 में भारत की विदेशी ऋण ग्रस्तता के भार के प्रमुख सूचक दर्शाए गये हैं।

सारणी 30.1 भारत की विदेशी ऋण ग्रस्तता के प्रमुख सूचक

वर्ष	ऋण/जी.डी.पी.	ऋण/चालू	ऋण सेवा/	ब्याज

	अनुपात	खाते की प्राप्तियों का अनुपात	चालू खाते की प्राप्तियों का अनुपात	भुगतान चालू खाते की प्राप्तियों का अनुपात
1990-91	28.0	328.9	35.3	15.5
1991-92	37.7	312.3	30.2	13.0
1992-93	36.6	223.4	27.5	12.5
1993-94	33.1	275.6	25.4	11.1
1994-95	30.0	235.8	25.9	10.0
1995-96	26.3	188.8	26.2	8.6
1996-97	23.8	169.2	22.9	8.0
1997-98	23.8	163.2	19.8	7.8
1998-99	23.0	-	19.4	7.8

Source: Ministry of finance, India's External Debt – A Status Report, June 1999

लेकिन भारत के लिए प्रमुख चिन्ता का विषय कुल विदेशी ऋण में रिआयती ऋणों का घटता हुआ अनुपात है। यह प्रतिशत सन् 1994-95 में 45 था जो सन् 1998 के अन्त में घटकर 39.3 रह गया था। इसका अभिप्राय यह है कि मार्च 1994 के बाद भारत के विदेशी ऋण में गैर-रिआयती ऋण के अंश में वृद्धि हुई है। इस वृद्धि से भविष्य में ब्याज का भार बढ़ सकता है।

निम्न सारणी-25.2 में विश्व के 15 सर्वाधिक ऋण ग्रस्त राष्ट्रों की तुलनात्मक स्थिति दर्शाई गई है।

सारणी 25.2 सन् 1997 में 15 सर्वाधिक ऋणग्रस्त राष्ट्रों की तुलनात्मक स्थिति

क्रम सं.	कुल ऋणग्रस्तता के क्रम मे राष्ट्रों की सुची	कुल विदेशी ऋण (अरब डालर में)	ऋण/जी. एन.पी. (प्रतिशत)	अल्पकालीन ऋण/कुल ऋण (प्रतिशत)	ऋण्सेवा का वस्तुओं व सेवाओं के निर्यातों से प्रतिशत
1.	Brazil	193.7	24	19	57
2.	Maxico	149.7	38	19	32
3.	China	146.7	17	21	9
4.	Korea	143.4	33	38	9
5.	Indonesia	136.2	65	26	30
6.	Russian Federation	125.6	26	5	7
7.	Argentina	123.2	39	15	59
8.	India	94.4	25	5	20
9.	Thailand	93.4	63	37	15
10.	Turkey	91.2	47	25	18
11.	Malaysia	47.2	51	32	8
12.	Philippines	45.4	53	26	9
13.	Poland	39.9	30	10	6

14.	Venezuela	35.5	42	12	31
15.	Columbia	31.8	35	18	27

Source: Global Development Finance, 1999, Country Tables, The World Bank

सारणी-30.2 पर दृष्टिपात से ज्ञात होता है कि ऋण/जी.एन.पी. अनुपात व अल्पकालीन ऋण। कुल ऋण के अनुपात के दृष्टिकोण से भारतवर्ष की स्थिति अन्य ऋणी राष्ट्रों से बेहतर है।

लेकिन कुल ऋण ग्रस्तता के दृष्टिकोण से भारतवर्ष की स्थिति चिन्ताजनक नहीं तो खराब अवश्य है। ऋण सेवा के वस्तुओं व सेवाओं के निर्यात से अनुपात नजर डालने पर भी लगभग इसी तरह की स्थिति उभर कर सामने आती है।

30.9 सारांश

व्यापारिक शर्तों से अधिक अनुकूल शर्तों पर उपलब्ध ऋण को ही सहायता की श्रेणी में रखा जा सकता है। विदेशी सहायता व्यूहरचना, आर्थिक अथवा उपकार के उद्देश्य से प्रदान की जाती है। सहायता की आवश्यकता की गणना प्रेक्षित बचत व विनियोग के अन्तर के आधार पर की जा सकती है।

विदेशी सहायता ऋण व अनुदान, बहुपक्षीय अथवा द्विपक्षिय, बन्धनयुक्त कार्यक्रम अथवा परियोजना सहायता का रूप ले सकती है। बन्धनयुक्त व द्वि-पक्षीय सहायता से सहायता नीति में अनेक अकुशलतायें आ जाती है।

विदेशी ऋण ग्रस्तता की समस्या ने सन् 1980 के दशक में गम्भीर रूप शरण कर लिया था विश्व का अधिकांश ऋण एशिया व लेटिन अमेरिका में केंद्रित है। सन् 1987 तक विकासशील राष्ट्रों के कुल ऋण का लगभग आधा बैंको से ली गयी ऊधार थी जो कि ऋण-जाल की समस्या का प्रमुख कारण है।

ऋण सेवा भार से ग्रस्त राष्ट्र के समक्ष तीन विकल्प होते है : वह राष्ट्र ऋण चुकाने से मना करदे अथवा वह कठिनाइयों का सामना करते हुए भी ऋण चुकाता रहे अथवा वह ऋण का पुन: सूचीकरण करवाने का प्रयास करे। ऋणग्रस्तता की समस्या के व्यवहार्य हल हेतु समस्त सम्बन्धित पक्षों द्वारा ऋणों के समायोजना की लागत वहन करने में भागीदारी निभानी होगी। सर्वाधिक ऋणी राष्ट्रों के सन्दर्भ में भारत की स्थिति का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि भारत की स्थिति चिन्ता जनक नहीं तो खराब अवश्य है।

30.10 शब्दावली

(1) विदेशी सहायता, (2) ऋण बनाम अनुदान (3) बन्धनयुक्त सहायता (4) परियोजना सहायता (5) बहुपक्षीय बनाम द्वि-पक्षीय सहायता (6) विदेशी ऋण सेवा भार (7) ऋण पुन: सूचीकरण

30.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Bhagwati, J. and Eckaus, R.S. -Foreign Aid Penguin Modern Economics Readings(1970)
2. Kindleberger, C.P. -International Economics Richard D. Irwin (1973) Chapter -26
3. Chacholidas, M -International Economics. McGraw Hill International Editions (1990) Chapter, 16
4. स्वामी, के.डी. .-अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र - (1989) साईन्टिफिक पब्लिशर्स, जोधपुर, अध्याय -20

30.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बहुपक्षीय तथा द्वि-पक्षीय सहायता में अन्तर स्पष्ट करते हुए बतलाईये कि इनमें से विदेशी सहायता का कौन सा रूप ऋणी राष्ट्र के हित में है?
2. बन्धन युक्त सहायता का अर्थ कमियां बतलाइये।
3. एक प्रतिशत सहायता का लक्ष्य क्या है?
4. ऋणग्रस्तता की गम्भीरता के प्रमुख सूचक बतलाइये।
5. ऋणग्रस्तता की समस्या के हल के प्रमुख सुझाव दीजिए।
6. भारत की ऋणग्रस्तता की समस्या को किस आधार पर गम्भीर नहीं माना जा रहा है।
7. विकासशील राष्ट्रों को प्रदत्त विदेशी सहायता से सम्बद्ध समस्याओं तथा सहायता की अपर्याप्तता का उल्लेख कीजिए।
8. विकासशील राष्ट्रों की ऋणग्रस्तता की गम्भीरता का वर्णन करते हुए इस समस्या के कारणों व इसके हल के लिए सुझावों का वर्णन कीजिए।

इकाई 31

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF)

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य

31.1 प्रस्तावना

31.2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के लक्ष्य

31.3 कोष के अभ्यंश

31.4 कोष के कार्य

31.5 कोष और समता मूल्य

31.6 कोष एवं विनिमय प्रतिबन्ध

31.7 कोष के कुछ अन्य विशिष्ट प्रावधान

31.8 अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था में सुधार

31.9 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सीमाएं

31.10 सारांश

31.11 शब्दावली

31.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

31.13 निबन्धात्मक प्रश्न

31.0 उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्वबैंक की स्थापना युद्धोपरान्त देशों की विभिन्न आर्थिक एवं मौद्रिक समस्याओं के समाधान के लिए उठाए गए कदमों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम है। प्रस्तुत इकाई में आपका परिचय विश्व की सर्वाधिक चर्चित मौद्रिक संस्था अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से कराया जाएगा एवं इसके बाद अगली इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक अथवा विश्वबैंक के क्रियाकलापों की जानकारी दी जाएगी। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- जान सकेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की स्थापना के क्या उद्देश्य थे?
- जान सकेंगे कि कोष की पूँजी राशि अभ्यशों का क्या योगदान है? कोष अपने साधनों का उपयोग किस प्रकार करता है?
- समझ सकेंगे कि विश्व के देशों की मौद्रिक व्यवस्था में कोष ने क्या भूमिका निभाई हैं?

31.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जुलाई 1944 में ब्रिटेन बुड्स नामक स्थान पर विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था एवं सहयोग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) तथा विश्व बैंक की स्थापना का निर्णय लिया। तदनुसार दिसम्बर सन् 1945 में (IMF) की स्थापना हुई कोष ने अपना कार्य 1 मार्च 1947 से शुरू किया। मुद्रा कोष की सदस्यता कोई भी देश प्राप्त कर सकता है शर्त यह है कि वह देश मुद्रा कोष के चार्टर की सभी धाराओं का पालन करने का वचन दे। आज विश्व के लगभग सभी देश IMF के सदस्य है।

31.2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के लक्ष्य

IMF चार्टर की धारा नं. 1 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग में वृद्धि करना
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार एवं संतुलित विकास के लिए प्रयास करना
3. सदस्य देशों के मध्य विनिमय दरों को स्थायित्व देना
4. विश्व व्यापार में बाधक विदेशी विनिमय प्रतिबन्धों को दूर करना एवं बहुपक्षीय भुगतान प्रणाली विकसित करना
5. सदस्य देशों की अस्थायी भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के उपाय करना। कोष अपने साधनों से देशों को विदेशी मुद्रा उधार देता है।
6. सदस्य देशों की आर्थिक उन्नति के कार्यो में सहयोग देना।

31.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अभ्यंश

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का प्रबन्ध ढाँचा इस प्रकार है (1) प्रशासक मण्डल (Board of Governors), (2) प्रबन्ध मण्डल (Board of Executive Directors) (3) प्रबन्ध संचालक (Managing Directors), एवं (4) अन्य कर्मचारी (Staff).

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की पूँजी सदस्य देशों के अभ्यंशों के योग के बराबर होती है। प्रत्येक सदस्य देश के अभ्यंश का निर्धारण उसकी राष्ट्रीय आय, स्वर्ण, विदेशी विनिमय कोष तथा व्यापार शेष की स्थिति को ध्यान में रखकर किया जाता है। जिसमें बाद में सदस्य देश की मांग पर परिवर्तन भी किया जा सकता है इसके लिए कुल मतदान शक्ति का 85 प्रतिशत अभ्यंश वृद्धि के पक्ष में होना चाहिए।

तालिका 31.1 अभ्यंश निर्धारण का आधार

क्र.सं.	मद	प्रतिशत	देय अभ्यंश
1.	सदस्य राष्ट्र की राष्ट्रीय आय (1940 के आधार पर)	2	कुल राशि का 25% भाग स्वर्ण तथा
2.	सदस्य देश के कुल स्वर्ण व डालर कोष (1943 के आधार पर)	5	शेष 75%' भाग स्वदेशी मुद्रा में (अब 25% SDR में देय)
3.	वार्षिक निर्यात आयात का (1934-38 के आधार पर)	10	

वास्तव में निर्धारित अभ्यंश उस प्रकार से की गई गणना की 90% राशि के बराबर थे और शेष 10% वृद्धि करने का अधिकार सदस्य देश को दिया गया। अपनी स्थापना के बाद 10 वर्षों तक कोष की पूँजी में कोई वृद्धि नहीं की गई। इसके बाद कोष के अभ्यंशों में कई बार परिवर्तन किया जा चुका है। अभ्यंशों के आधार पर राष्ट्र की मतदान शक्ति होती है।

31.4 कोष के कार्य

कोष का प्रमुख कार्य सदस्य देशों को विदेशी विनिमय संकट से उबारने का है इसके लिए सभी देश इससे ऋण प्राप्त कर सकते है। मुद्राकोष के प्रमुख कार्यो की सूची नीचे दी गई है। परीक्षा में कार्यो के पूछे जाने पर विद्यार्थी इन्हें विस्तार से लिखे। इसके लिए सन्दर्भ ग्रन्थों का अध्ययन करें।

1. ऋण प्रदान करना - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य राष्ट्र भुगतान संतुलन में अल्पकालिक असाम्य को दूर करने के लिए अपने अभ्यंश के एक निश्चित अनुपात में ऋण ले सकता है। कोष स्वदेशी मुद्रा के

बदले में ऋण लेने वाले देश को विदेशी मुद्रा प्रदान करता है। कोई भी राष्ट्र अपने अभ्यंश के 125 प्रतिशत तक विदेशी मुद्राएं खरीद सकता है परन्तु एक वर्ष में यह राशि उसके अभ्यंश के 25 प्रतिशत से अधिक न हो। कोष न यह प्रतिबन्ध भी लगा रखा है कि किसी भी समय कोष के पास किसी देश की मुद्रा का संग्रह उस देश के अभ्यंश के दुगने से अधिक नहीं होना चाहिए। चूकि मुद्रा कोष के पास सदस्य देश के अभ्यंश का 75 प्रतिशत भाग तो पहले से ही होता है अत: सदस्य देश अधिक से अधिक अपने अभ्यंश का 125 प्रतिशत के बराबर ऋण ले सकता है। चूंकि यह व्यवस्था अल्पकाल के लिए है अत: ऋण की अधिकतम अवधि 5 वर्ष तय की गई है। पिछले कुछ वर्षो में IMF ने विकासशील देशों को कुछ अधिक सुविधाएं दी है।

इन राष्ट्रों के निर्यातों में ढाँचागत एवं बुनियादी बाधाएं है। ये राष्ट्र मुख्यत: प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात करते है एवं इन वस्तुओं की कीमतों में बहुत अधिक उतार चढ़ाव होते है और इस स्थिति का सामना करने के लिए उन्हें विशिष्ट सहायता की आवश्यकता होती है। कोष इनकी जरूरतों को समझकर समय समय पर विशेष ऋण सुविधाएं उपलब्ध कराता है। इसके अतिरिक्त कोष निम्नलिखित प्रकार से ऋण उपलब्ध कराता है।

(i) संकटकालीन ऋण - किसी सदस्य राष्ट्र पर यदि कोई आकस्मिक संकट आ जाए तो मुद्राकोष उस देश को विशेष संकटकालीन ऋण उपलब्ध करवाता हैं।

(ii) मौसमी या सामयिक ऋण - यह ऋण भुगतान संतुलन में मौसमी उतार-चढ़ावों को दूर करने के लिए दिए जाते हैं।

(iii) स्थिायित्व ऋण - ये ऋण सदस्य देशों की आर्थिक कठिनाइयों के समय विनिमय दरों में स्थायित्व के उद्देश्य से दिए जाते है।

(iv)सदस्य देश - कोष से स्वर्ण में प्रदत्त अपने अभ्यंश के बराबर कभी भी ऋण ले सकता है। ऋण की इस व्यवस्था को स्वर्ण ट्रांश (Gold Tranche) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त ऋण लेने की जो सुविधा रहती है वह साख ट्रांश (Credit Tranche) के नाम से जानी जाती है।

(v) दुर्लभ मुद्रा - अगर कोष यह अनुभव करता है कि किसी देश की मुद्रा की बहुत अधिक देश ऋण के लिए मांग कर रहे है तो कोष उस देश की मुद्रा को स्वर्ण द्वारा क्रय करके अथवा सम्बन्धित देश से उधार लेकर ऋण चाहने वाले देशों को उपलब्ध कराता है। इसके बाद भी यदि उस मुद्रा की मांग बढ़ती जा रही है तो IMF उसे दुर्लभ मुद्रा घोषित कर देता है। ऐसी स्थिति में कोष सदस्य राष्ट्रों को दुर्लभ मुद्रा वाले देश के साथ व्यापार पर अस्थाई प्रतिबन्ध लगाने की अनुमति प्रदान करता है। कोष को दुर्लभ मुद्रा की राशनिंग करने का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है।

(vi)मुद्राओं के पुन: क्रय की व्यवस्था - दुर्लभ मुद्रा के ठीक विपरीत यह भी सम्भव है कि मुद्रा की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो गए जिनकी मांग नहीं है। ऐसी स्थिति में सरलता बनाए रखने के उद्देश्य से मुद्रा कोष उन देशों को अपनी मुद्रा स्वर्ण अथवा SDR से पुन: खरीदने की सलाह दे सकता है।

(vii) विनिमय प्रतिबन्धों को समाप्त करना कोष का मुख्य कार्य है।

(2) तकनीकी सहायता देना - सदस्य देशों के भुगतान संतुलन सम्बन्धी संकट को हल करने प्रशुल्क नीति, मौद्रिक नीति एवं विनिमय नियंत्रणों सम्बन्धी मामलों पर सलाह देने के लिए विशेषज्ञों की सेवाएं उपलब्ध कराता है।

(3) प्रशिक्षण कार्यक्रम - कोष सदस्य देशों के अधिकारियों को विभिन्न क्रिया कलापों - मौद्रिक, राजकोषीय, सांख्यिकीय कार्यों वित्तीय प्रबन्ध, आर्थिक सुधार में प्रशिक्षण प्रदान करता है। इस कार्य के लिए कोष ने एक इन्स्टीस्यूट की स्थापना की है।

(4) प्रकाशन एवं प्रचार - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपनी नीतियों के क्रियान्वयन एवं जानकारी के लिए कई पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित करता है।

(5) अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से सम्पर्क कर विश्व अर्थव्यवस्था पर विभिन्न सम्मेलन व विचार विमर्श करता है।

(6) विशेष सहायता योजनाएं प्रारम्भ करना - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष समय-समय पर सदस्य देशों की आवश्यकता के अनुरूप विभिन्न सहायता योजनाएं प्रारंभ करता है। इनमें क्षतिपूरक वित्तीय सुविधा, विस्तारित क्षतिपूरक वित्त सुविधा, बफर स्टाक सुविधा, पूरक वित्त पोषण सुविधा आदि प्रमुख है। कोष अपनी विभिन्न सहायता योजनाओं में गरीब देशों का विशेष ध्यान रखता है। दिसम्बर 1981 को कोष ने एक विशेष आहरण अधिकार (SDR) योजना 1.25 बिलियन SDR से प्रारम्भ की जिसका उद्देश्य ऊँची तेल कीमतों से पीडित अल्प आय वाले देशों की सहायता करना था।

31.5 कोष एवं समता मूल्य:

कोष का प्रत्येक सदस्य अपने देश की मुद्रा का मूल्य या तो स्वर्ण या डालर में घोषित करता था। जुलाई 1971 से पूर्व तक अमेरिकन डालर की स्वर्ण में 35 डालर बराबर एक औन्स स्वर्ण की दर से परिवर्तनशीलता बनाए रखी गई। परन्तु कतिपय कारणों से डालर की स्वर्ण में परिवर्तनशीलता को समाप्त करना पड़ा। इसके बाद कोष ने सदस्य देशों को यह स्वतंत्रता प्रदान की कि वह प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करने के लिए अपनी मुद्रा का वर्तमान दर के ऊपर अथवा नीचे 10 प्रतिशत के बराबर परिवर्तन करने के लिए कोष को सूचना देना पर्याप्त होगा। विनिमय दर में इससे अधिक का परिवर्तन कोष की पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता। 20 प्रतिशत से अधिक परिवर्तन के लिए सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती थी। कोष भुगतान संतुलन में असाम्य को दूर करने के लिए विनिमय समता दर में परिवर्तन करने को

मना नहीं करता है। आजकल लचीली विनिमय दर (Flexible Exchange Rate) तय होती है जिसमें विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति के अनुसार विनिमय दरें तय होती है। परन्तु लोचदार विनिमय दरों का यह अर्थ नहीं है कि विनिमय दरों में भारी उच्चावचन हो क्योंकि ऐसी स्थिति देश के विदेशी व्यापार में बाधक सिद्ध होती है।

31.6 कोष एवं विनिमय प्रतिबन्ध

जैसा कि कोष के चार्टर की धारा एक में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कोष का प्रमुख लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोष व्यापार के मार्ग में आने वाले समस्त अवरोधों को दूर करने का प्रयास करता है। विनिमय प्रतिबन्धों को समाप्त करना कोष के प्रमुख कार्यो में से एक है। मुद्रा कोष विविध विनिमय दरों एवं विभेदात्मक नीतियों के विरूद्ध भी कार्य करता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक स्वतंत्र एवं बहुमुखी भुगतान प्रणाली की स्थापना हेतु कार्य करता है। सदस्य देश अपनी इच्छानुसार मनमाने प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। अब विशेष रूप से विश्व व्यापार संगठन के द्वारा निर्धारित नीतियों का पालन करने के लिए सभी देश विवश है।

31.7 कोष के कुछ अन्य विशिष्ट प्रावधान

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विशिष्ट प्रावधानों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेष आहरण अधिकार (SDR) है जिन्हें 28 जुलाई 1969 को प्रारम्भ किया गया। इन अधिकारों का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है।

(i) कोष द्वारा निर्देशित अन्य राष्ट्रों से मुद्रा प्राप्त करने के लिए

(ii) कोष के बाहर भी सदस्य आपसी विचार विमर्श द्वारा विशेष आहरण अधिकारों का उपयोग कर सकते है। इन्हें Transaction by Agreement कहते है।

(iii) स्वयं कोष भी अपने सामान्य खाते में लेन देन हेतु इनका उपयोग करता है। इस क्रय विक्रय को Transaction with Central Account कहते हैं। मुद्राकोष ने इनका व्यापक उपयोग किया है।

बोध प्रश्न 1

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना के लक्ष्य बताइए।
2. कोष का प्रमुख कार्य ऋण प्रदान करना है? क्या आप इसके कुछ अन्य कार्यो का उल्लेख कर सकते है?
3. कोष के विशिष्ट प्रावधानों का विवरण दीजिए।

31.8 अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था में सुधार

अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए सन् 1972 में एक समिति बनाई गई जिसे 20 सदस्यीय समिति (Committee of Twenty) के नाम से जाना जाता है। अप्रैल 1976 में कोष ने अपनी धाराओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन स्वीकार किए। इनमें प्रमुख निम्नलिखित है:-

(i) सदस्य राष्ट्र स्वेच्छा से किसी भी विनिमय दर व्यवस्था को अपना सकेंगे। कोष इन पर निगरानी रखेगा एवं व्यवहार के नए मापदण्ड स्थापित करेगा।

(ii) नयी व्यवस्था में स्वर्ण की भूमिका कम होगी। कोष स्वयं के स्वर्णकोषों का विक्रय करेगा।

(iii) विशेष आहरण अधिकारों की विशेषताओं में परिवर्तन कर उनकी भूमिका में वृद्धि होगी।

(iv)कोष के नए अंश के रूप में परिषद् की स्थापना

(v) कोष के संगठनात्मक पहलू में सुधार

उपर्युक्त सुधारों में मौद्रिक प्रणाली में स्वर्ण की भूमिका कम करने, विशेष आहरण अधिकारों की भूमिका बढ़ाने तथा लचीली विनिमय दर व्यवस्था को स्वीकार करने वाले सुधार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कोष ने

स्वर्ण की भूमिका कम करने के लिए स्वर्ण की अधिकृत कीमत समाप्त कर दी। स्वर्ण तथा SDR के आपसी सम्बन्ध को समाप्त कर दिया तथा राष्ट्रों की मुद्राओं का मूल्य स्वर्ण में घोषित करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। कोष न तो स्वयं स्वर्ण में भुगतान करेगा न ही सदस्यों को करना होगा। कोष के कार्यो में स्वर्ण का स्थान एस.डीआर. ने ले लिया है। कोष ने अपने स्वर्ण भण्डारों की बिक्री भी की है। जुलाई 1974 को परिवर्तनशील अथवा लचीली विनिमय दरों के प्रारम्भ को ध्यान में रखते हुए SDR का मूल्यांकन करने में डालर की केन्द्रीय भूमिका को समाप्त कर दिया गया और 16 राष्ट्रों की मुद्राओं के चलमाध्य को SDR के मूल्यांकन में काम में लिया जाने लगा। ये ऐसे राष्ट्रों की मुद्राएं है जिनका विश्व व्यापार में महत्वपूर्ण योगदान है। एक बार जब SDR तथा डालर की विनिमय दर तय हो जाती है तो बाद में अन्य देशों की मुद्रा व डालर में विनिमय दर के आधार पर विनिमय दरों का एवं SDR की गणना की जाती है। इस नयी व्यवस्था से डालर तथा SDR की दर में प्रतिदिन परिवर्तन होता है जबकि पुरानी व्यवस्था में यह दर स्थिर थी। इस प्रकार नयी एवं सुधरी हुई व्यवस्था में SDR प्रमुख रिजर्व परिसम्पति के रूप में स्थापित हो चुका है।

बोध प्रश्न 2

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की धाराओं में क्या मुख्य परिवर्तन किए गए है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने विनिमय प्रतिबन्धों को हटाने के लिए प्रयास किए है। क्या आप इस कथन से सहमत है?

31.9 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सफलताएं एवं सीमाएं

आज अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना को पचास से अधिक वर्ष हो चुके हैं। किसी भी संस्था की सफलता अथवा विफलता को आंकने के लिए यह अवधि पर्याप्त होनी चाहिए। इस अवधि में कोष की सफलताओं का अध्ययन निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

(i) सदस्य संख्या में वृद्धि - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना के समझौता पत्र पर 30 देशों के हस्ताक्षर थे जबकि आज इसकी सदस्य संख्या 183 है।

(ii) विनिमय दरों का निर्धारण - यद्यपि विनिमय समता दरों की व्यवस्था अब नहीं होती फिर भी कोष सदस्य देशों की विनिमय दरों पर निगरानी रखता है।

(iii) भुगतान संकट के समय सहायता - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष सदस्य देशों के अल्पकालिक व दीर्घकालिक भुगतान संकट को दूर करने के लिए विभिन्न सहायता योजनाओं के अन्तर्गत सहायता उपलब्ध कराता है।

(iv)अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि - कोष व्यापार के मार्ग में आने वाली समस्त बाधाओं को दूर कर व्यापार आने वाली समस्त बाधाओं को दूर कर व्यापार में वृद्धि के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है।

(v) गरीब देशों को सस्ती दरों पर विशेष सहायता उपलब्ध कराना कोष का प्रमुख लक्ष्य है। कोष अपने संसाधनों का बड़ा हिस्सा विकासशील देशों को सहायता उपलब्ध कराने में व्यय करता है।

(vi)भुगतानों की द्विपक्षीय प्रणाली के स्थान पर कोष ने बहुपक्षीय प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(vii) विदेशी पूँजी के स्वतंत्र आवागमन को प्रोत्साहन कोष ढांचागत आर्थिक सुधारों का महान पक्षधर रहा है। अपने आर्थिक सुधारों के कार्यक्रमों में कोष उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण की नीतियों को बढ़ावा देता है एवं पूँजी के आवागमन के मार्ग में लगी समस्त बाधाओं को दूर करता है।

(viii) विकासशील देशों को तकनीकी सहायता - कोष के पास अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ख्याति प्राप्त विशेषज्ञों का दल है जिसे वह विकासशील देशों के अधिकारियों के पास भेजता है उन्हें मौद्रिक व

प्रशुल्क नीतियों के बारे में राय देता है। कोष के केन्द्रीय बैंक सेवा विभाग व राजकोषीय विषय सम्बन्धी विभाग सम्बन्धित देशों को सलाह देते हैं।

(ix)प्रतिस्पर्द्धात्मक मुद्रा अवमूल्यन पर रोक - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सदस्य

(x) देशों मे अवमूल्यन करने की प्रतिस्पर्द्धा पर रोक लगाई है। कोष की अनुमति के बिना अवमूल्यन नहीं किया जा सकता।

यद्यपि कोष ने महत्वपूर्ण सफलताएं अर्जित की है परन्तु इसकी कुछ सीमाएं भी है इसकी प्रमुख आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

(i) कोष की रूढ़ीवादी भूमिका - प्रारम्भ से ही मुद्राकोष को यह भय था कि ऋण का योग पुनर्निर्माण में किया जाएगा। अत: इसने अपने ऋण प्रदान करने सम्बन्धी क्रियाओं में कड़ी शर्तें रखी। उसने यह नियम बनाया कि राष्ट्रों को ऋण का भुगतान अल्पावधि में ही करपा पड़ेगा इस वजह से मुद्राकोष के ऋण आकर्षक नहीं बन पाए। कोष केवल चालू भुगतानों के लिए ही विदेशी मुद्रा की व्यवस्था करता है। यह दीर्घकालिक आवश्यकताओं के लिए ऋण उपलब्ध नहीं करवाता।

(ii) कोष में भुगतान संतुलन में साम्य बनाए रखने के लिए अवमूल्यन आदि उपायों पर कम जोर दिया।

(iii) सदस्य देशों के कोटा अथवा अभ्यंश निर्धारण का आधार वैज्ञानिक नहीं रहा एवं इसमें परिवर्तन के प्रावधान जटिल है। अभ्यंश निर्धारण में स्वर्ण, डालर जमाएं एवं विदेशी व्यापार को महत्व दिया गया जो उचित नहीं है। इस प्रावधान के कारण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष धनी राष्ट्रों की संस्था बन गई व सहायता के नाम पर निर्धन राष्ट्रों के ऋणों पर राजनीतिक शर्तें लाद दी गई।

(iv)अमेरिकी प्रभाव - कोष में अमेरिका का अभ्यंश अधिक होने के कारण उसके वोट की कीमत बहुत अधिक है। अमेरिका अपनी नीति के अनुरूप विदेशी सहायता एवं ऋणों पर प्रतिबन्ध लगाता रहता है। जैसे भारत में वाजपेयी सरकार द्वारा किए गए परमाणु परीक्षणों के बाद

अमेरिका ने भारत को दी जाने वाली सहायता पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

(v) विनिमय दरों में सदस्य राष्ट्र अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करते रहे। उदाहरणार्थ जनवरी 1948 में मुद्रा कोष के विरोध के बावजूद हमने अपनी मुद्रा का 44% अवमूल्यन किया।

(vi)समस्त विश्व में डालर की कमी के बावजूद 1949 में डालर को दुर्लभ मुद्रा घोषित नहीं किया गया।

(vii)अन्तर्राष्ट्रीय तरलता पर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण का अभाव कोष की सबसे बड़ी कमी रही हैं।

(viii) विनिमय नियंत्रण को हटाने में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को अभी तक पूर्ण सफलता नहीं मिली है। इसके साथ ही विनिमय दरों में स्थिरता लाने के लक्ष्य में भी कोष को पूरी सफलता नहीं मिली।

31.10 सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना दिसम्बर 1945 में हुई। भारत कोष का संस्थापक सदस्य हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग में वृद्धि करना एवं विनिमय दरों में स्थायित्व लाना हैं। इसके अतिरिक्त भुगतान असंतुलन को दूर करने के लिए अल्पकालिक ऋण की व्यवस्था करना व गरीब देशों को विशेष आहरण अधिकारों के द्वारा विशेष मदद का प्रावधान हैं। इस इकाई में कोष की सफलताओं एवं असफलताओं का संक्षेप में वर्णन किया गया हैं।

31.11 शब्दावली

1. विशेष आहरण अधिकार	Special Drawings Rights
2. अभ्यंश	Quota
3. आर्थिक सुधार	Economic Reforms

4. स्थायित्वकरण कार्यक्रम — Stabilization Programme
5. लचीली विनिमय दर — Flexible Exchange Rates

31.12 शब्दावली

1. M.C. Vaish and Sudama Singh ,International Economics, 6th ed oxford and IBH Publishing Company Pvt. Ltd. New Delhi Ch.27.
2. वी. सी. सिन्हा ,अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

31.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य एवं संगठन की व्याख्या कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यो का विस्तार से वर्णन कीजिए। कोष गरीब देशों वे विशेष सहायता देने के उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ हैं?
3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में 1970 के बाद क्या विशेष परिवर्तन हुए हैं?

इकाई 32

विश्व बैंक तथा सम्बद्ध संस्थाएं

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य

32.1 प्रस्तावना

32.2 विश्व बैंक के उद्देश्य

32.3 विश्व बैंक की ऋण क्रियाएं

32.4 विश्व बैंक की सम्बद्ध संस्थाएं

32.5 विश्व बैंक द्वारा किए गए कार्यों की समीक्षा

32.6 सारांश

32.7 शब्दावली

32.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

32.9 निबन्धात्मक प्रश्न

32.0 उद्देश्य

इससे पूर्व इकाई संख्या 26 में आप अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विषय में पढ़ चुके है। विश्व बैंक एवं सम्बद्ध संस्थाओं पर इस इकाई में आप जान सकेंगे कि युद्धोत्तर विश्व में आर्थिक पुनर्निर्माण एवं विकास की जरूरतों को पूरा करने के लिए इसकी स्थापना हुई। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि :

- विश्व बैंक की स्थापना के क्या उद्देश्य है?
- विश्वबैंक की सम्बद्ध संस्थाएं कौन-कौन सी हैं एवं उनके क्या कार्य हैं?
- विश्व बैंक के कार्य कौन से हैं एवं उनमें बैंक को कहाँ तक सफलता मिली हैं?

32.1 प्रस्तावना

विश्व बैंक की सदस्यता उन सभी देशों के लिए खुली है जो बैंक के नियमों को पूरा करते है एवं IMF के सदस्य हैं। विश्व बैंक का प्रबन्ध एक बोर्ड आफ गवर्नर्स, एक कार्यकारिणी समिति, एक अध्यक्ष, एक सलाहकार परिषद् एवं अन्य अधिकारियों द्वारा किया जाता है। विश्व बैंक की सम्बद्ध संस्थाओं में अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ प्रमुख हैं। इसके अलावा आर्थिक विकास संस्था अधिकारियों को प्रशिक्षण देती है। इस इकाई में इन सम्बद्ध संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय देने के अलावा विश्व बैंक के उद्देश्य एवं क्रिया कलापों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

32.2 विश्व बैंक के उद्देश्य

विश्व बैंक की स्थापना सन् 1944 में ब्रिटेन वुड्स सम्मेलन में मुद्रा कोष के साथ-साथ की गई। विश्व बैंक के समझौते की धारा 1 के अनुसार इसके प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं।

(i) युद्ध से ध्वस्त राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण तथा विकास और अर्द्ध विकसित राष्ट्रों के विकास के लिए उत्पादन कार्यों हेतु ऋण व तकनीकी सहायता प्रदान करना।

(ii) पूँजी विनियोग को प्रोत्साहन - वैयक्तिक व संस्थागत निवेश को उनके ऋण के भुगतान की गारन्टी प्रदान कर तथा उनके साथ विनियोग या ऋण में सम्मिलित होकर उन्हें पिछड़े देशों में उत्पादक कार्यों में

विनियोग के लिए प्रोत्साहित करना एवं सदस्य राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी के प्रवाह को प्रोत्साहित करना।

(iii) विश्व में संतुलित व्यापार के विकास में सहायता प्रदान करना और इस हेतु बैंक राष्ट्रों के विकास में सहायता पहुंचाकर उनके उत्पादन रोजगार व आय के स्तर में वृद्धि करना। इस दृष्टि से कोष व बैंक के उद्देश्य परस्पर पूरक हैं। जहां कोष का उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों के अल्पकालिक असंतुलन को दूर करना है वही बैंक सदस्य देशों की अर्थव्यवस्था में स्थाई असन्तुलन को ठीक करने के लिए मदद देता हैं।

(iv)बैंक का उद्देश्य ऐसे कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना है जिनसे युद्ध ग्रस्त अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के स्थान पर शान्तिकालिक अर्थव्यवस्था की च स्थापना में मदद मिले।

32.3 विश्व बैंक की ऋण क्रियाएं

विश्व बैंक की स्थापना के समय इसकी अधिकृत पूँजी 10 अरब अमेरिकी डालर थी जो 1 लाख डालर के 1 लाख अंशों में विभाजित थी। बैंक की पूँजी सदस्य देशों के तीन चौथाई बहुमत से बढ़ाई जा सकती हैं। बैंक के कार्यों के विस्तार को देखते हुए बैंक के साधन अपर्याप्त होने लगे। अत: सन् 1958 में दिल्ली में हुई बैंक की वार्षिक बैठक में विचार विमर्श के पश्चात् 15 सितम्बर 1959 को बैंक की पूंजी में 8 अरब डालर की वृद्धि की गई। अधिकांश देशों ने अपने अंशदान में दुगनी वृद्धि कर दी। 30 जून 1985 को बैंक की अभिदत्त पूँजी 58.9 अरब डालर थी। प्रत्येक देश अपने अंशदान को दो भागों में बाँटता है- (1) सदस्य देशों को अपने अंशों का 20 प्रतिशत भाग बैंक द्वारा मांगने पर तुरन्त देना पड़ता है। इसमें 2 प्रतिशत स्वर्ण या अमेरिकन डालर में होता है एवं शेष 18 प्रतिशत सदस्य देश अपनी मुद्रा में दे सकता है। (ii) शेष 80% उस समय देना पड़ता है जब बैंक को उसकी जरूरत पड़े। सदस्य देश यह अंश स्वर्ण, डालर अथवा बैंक द्वारा आदेशित किसी अन्य मुद्रा में भुगतान कर सकता हैं।

बैंक अपने साधनों का उपयोग सदस्य देशों की सरकारों एवं निजी उद्योगों को ऋण प्रदान करने के लिए करता हैं। विश्व बैंक निजी संस्थाओं को ऋण उसी स्थिति में देता है जब उस देश की सरकार उसके लिए ऋण प्रदान करे। प्राय: ऋण की अवधि 5 से 20 वर्ष के लिए होती है। अधिकांशत: ऋण 15 वर्ष की अवधि के लिए दिए गए है। बैंक अन्तिम ऋण दाता के रूप में कार्य करता है बैंक 612 प्रतिशत ब्याज के अतिरिक्त ऋणों पर 1 प्रतिशत कमीशन भी लेता हैं। इस कमीशन से प्राप्त आय से एक कोष का निर्माण किया गया है जिससे ऋणों के वापस भुगतान न हो पाने के कारण होने वाली हानि पूरी की जाती हैं।

विश्व बैंक स्वयं के कोषों से ऋण देने के अलावा किसी देश के व्यक्तिगत विनियोग कर्ताओं को उनके ऋण की राशि की वापसी की गारन्टी देकर ऋण दिलवाने का कार्य भी करता है। ऐसी गारन्टी देने से पूर्व बैंक को सम्बन्धित देशों की सरकारों से अनुमति लेना आवश्यक है। विश्वबैंक द्वारा इस प्रकार गारन्टी देकर उपलब्ध कराए गए ऋणों पर कमीशन लेने का अधिकार है। विश्व बैंक सामान्यत: निम्नलिखित शर्तों पर ही निजी ऋणों की गारन्टी देता है-

(i) ऋण देने सम्बन्धी शर्तें उचित हो एवं जिन परियोजनाओं के लिए ऋण माँगा जा रहा है वे भी उचित हों

(ii) ऋणी देश के पास ऋण चुकाने की क्षमता हो

(iii) ऋण के अन्य स्रोत क्षीण हो चुके हों और ऋण चाहने वाले देश को अन्य स्रोतों से उचित शर्तों पर ऋण नहीं मिल रहा हो।

(iv)बैंक की ऋण समिति ऋण देने की अनुशंसा करे

(v) ऋण चाहने वाले देश की सरकार ऋण अदायगी के सम्बन्ध में गारन्टी देने को तैयार हो।

विश्व बैंक सामान्यत: किसी विशेष उद्देश्य या प्रोजेक्ट के लिए ही ऋण देता है अत: ऋण देने के पश्चात् वह इस बात की जाँच करता है कि

ऋण का उपयोग उन्हीं कार्यों के लिए किया जा रहा है अथवा नहीं जिनके लिए उसे ऋण स्वीकृत किया गया था। बैंक मूलत: उत्पादक परियोजनाओं के लिए ही ऋण देता हैं। ऋण के साथ उसके व्यय के सम्बन्ध में शर्तें नहीं जोड़ी जाती। सदस्य देश उसे स्वतंत्रतापूर्वक व्यय कर सकते हैं।

विश्व बैंक आधारभूत उद्योगों एवं औद्योगिक संरचना के विकास हेतु ऋण देता हैं। इनमें निजी उद्योग की रूचि कम होती है क्योंकि कार्य पूरा होने एवं उससे कमाई शुरू होने में बहुत देर हो जाती है अर्थात् सामान्यतया 10 से 15 वर्षो के बाद उस परियोजना से लाभ की उम्मीद की जा सकती है।

विश्व बैंक सामान्यत: सदस्य देश की सरकार या उसके केन्द्रीय बैंक से ही व्यवहार करता हैं। यह निजी संस्थाओं से सीधे व्यवहार नही रखता। विश्व बैंक द्वारा दी गई ऋण की राशि सीधे सम्बन्धित देश के केन्द्रीय बैंक में जमा करा दी जाती है जहाँ से ऋण प्राप्त करने वाली संस्था उस राशि को निकाल सकती है। जब बैंक किसी ऋण की गारंटी करता है तो अपनी जोखिम के लिए सम्बन्धित देश से उचित क्षतिपूर्ति प्राप्त करता है। विश्व बैंक का रवैया गरीब देशों के प्रति विशेष सहानुभूति का रहा है। गरीबी उन्मूलन का मूलमंत्र लेकर विश्व बैंक दुनिया के गरीबी राष्ट्रों को विभिन्न सामाजिक योजनाओं के लिए कम ब्याज दरों पर ऋण उपलब्ध कराता है।

बैंक सदस्य देशों को तकनीकी सहायता भी प्रदान करता है। विश्व बैंक के पास आयोजना एवं विकस के लिए विशेषज्ञों का दल होता है जिन्हें वह विभिन्न देशों में अध्ययनों के लिए नियुक्त करता है।

बैंक विभिन्न विषय विशेषज्ञों को उनकी शोध परियोजनाओं पर वित्तीय अनुदान स्वीकृत कर ज्ञान की वृद्धि में योगदान देता है। इन शोध परिणामों को विश्वबैंक के जर्नलस् में प्रकाशित किया जाता है। इसके अतिरिक्त विश्वबैंक स्टाफ पेपर्स के रूप में प्रकाशित किया जाता है।

32.4 विश्व बैंक की सम्बद्ध संस्थाएं -

सन् 1956 में बैंक ने गरीब देशों को अधिक आर्थिक सहायता दिलाने के उद्देश्य से वित्त निगम की स्थापना की। यह वित्त निगम निजी उद्योगों को ऋण देने के साथ-साथ उनकी अंश पूँजी खरीदकर सहायता पहुँचाता है। इसके अलावा 1960 में विश्व बैंक ने अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ की स्थापना की। ये दोनों संस्थाएं विश्व बैंक की सहयोगी संस्थाओं के रूप में कार्य करती हैं। इन संस्थाओं की आवश्यकता इसलिए अनुभव की जा रही थी कि विश्व बैंक अपनी धाराओं में काफी परिवर्तन किए बिना अपने ऋण की शर्तों को और अधिक उदार नहीं बना सकता था। विकासशील देश विद्यमान नियमों के अन्तर्गत अधिक ऋण प्राप्त नहीं कर सकते थे इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ की स्थापना आसान शर्तों पर विकासशील देशों को ऋण उपलब्ध करवाने के लिए की गई। इसकी ब्याज की दर अत्यन्त कम रखी गई एवं अवधि बहुत अधिक रखी गई। विकास संघ द्वारा प्रदत्त ऋणों की अवधि 50 वर्ष होती है और ऋण की पहली किश्त का भुगतान ऋण लेने के 10 वर्ष बाद होता है। वस्तुत: विकास संघ अपने ऋणों पर ब्याज न लेकर 3/4 प्रतिशत सेवा शुल्क लेता है। ऋणी देश ऋण का भुगतान अपनी मुद्रा में कर सकता हैं। इस प्रकार ऋणी देश को दुर्लभ विदेशी मुद्रा की व्यवस्था करने की चिन्ता नहीं रहती।

30 जून 1975 तक विकास संघ ने 64 राष्ट्रों को 526 ऋण स्वीकृत किए जिनके कुल राशि 8434 मिलियन अमेरिकन डालर थी। ऋणों में कृषि उद्योग व परिवहन क्षेत्र प्रमुख है। अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ से सहायता प्राप्त करने वालों में भारत का स्थान अग्रणी है। विश्व बैंक से जून 1986 तक भारत ने 84 ऋण लिए जिनकी राशि 7274 मिलियन डालर थी। भारतीय रेल को 500 मि. डालर प्राप्त हुए वो एक बहुत बड़ा ऋण है। भारत के सामने विदेशी विनिमय संकट के समय विश्व बैंक ने सहायता की। इसके अलावा भारत को समय समय पर तकनीकी सहायता भी उपलब्ध कराई

गई। विश्व बैंक की सम्बद्ध संस्था आर्थिक विकास संस्थान (The Economic Development Institute) में भारत के अधिकारी नियमित रूप से प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे हैं।

32.5 विश्व बैंक द्वारा किए गए कार्यो की समीक्षा

विश्व बैंक द्वारा विकासशील देशों में आधारभूत संरचना उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जून 1986 तक बैंक ने 2429 ऋण स्वीकृत किए जिनकी राशि 101 अरब डालर थी। इस ऋण का 22 प्रतिशत विद्युत शक्ति को 20 प्रतिशत यातायात व संचार को 36% उद्योगों के विकास विशेषकर इस्पात, कृषि व सिंचाई के लिए तथा 22 प्रतिशत कृषि विकास के लिए दिया गया है। परन्तु कुछ आलोचकों का कहना हैं कि बैंक के निर्णय पर कुछ देशों का प्रभाव अधिक रहता है। इसके अलावा विश्व बैंक की एक अन्य आलोचना ऊँची ब्याज की दर है।

बैंक के संसाधन विकासशील देशों की आवश्यकताओं की तुलना में बहुत कम है।

विश्व बैंक की ऋण नीतियाँ विकासशील देशों के पक्ष में नहीं हैं। ऋण लौटाने की क्षमता पर विश्व बैंक अत्यधिक बल देता है कुछ आलोचकों का मानना है कि ऋण का उत्पादक उपयोग देश की क्षमता में वृद्धि करता है जो ऋण के उपयोग के बाद बढ़ती है। ऋण देने से पूर्व क्षमता पर अधिक बल देने से कुछ देश ऋण का उपयोग नहीं कर पाते। विकाशील देशों की यह शिकायत अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (IDA) की स्थापना के बाद काफी हद तक कम हो गई है। इसके अतिरिक्त अर्द्ध-विकसित देशों के पास उचित संसाधन व ज्ञान की कमी होती है वे विश्व बैंक से सहायता प्राप्त करने योग्य परियोजनाएं तैयार नहीं कर सकते। यदि परियोजनाएं बन भी जाएं तो विश्व बैंक के ऋण देने के आधारों पर वह खरी नहीं उतरती। ऐसी परिस्थिति में ऋण प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

विश्व बैंक इस बात पर बल देता है कि ऋण जिस मुद्रा में लिया गया है उसी मुद्रा में चुकाया जाय। यह शर्त अव्यावहारिक है। इसके अतिरिक्त बैंक अंश पूँजी के लिए ऋण प्रदान नहीं करता। कभी कभी यह आरोप भी लगाया जाता है कि बैंक ऋण स्वीकृत करने में अत्यधिक विलम्ब कर देता है।

32.6 सारांश

विश्व बैंक की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना है। विश्व बैंक ने सच्चे सहायक के रूप में विकासशील देशों को आर्थिक व प्रावधिक सहायता देकर उनके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं। परन्तु विश्व के अधिकांश गरीब देश आज भी निर्धनता की बेड़ियों में जकड़े है उनके लिए बहुत कुछ किया जाना अभी शेष है। अन्त में यह कथन कि संसार के अल्प विकसित देशों के लिए बैंक एक अभूतपूर्व सहारा है। इसका मूल्यांकन कुछ पत्थर के मकानों व सीमेन्ट की इमारतों से नहीं करना चाहिए। इसका लक्ष्य गहन है। इसका कार्य संसार की धन राशि में वृद्धि करके मानवता को प्रकाश व उष्मा प्रदान करना है और उसे थकान व उदासी से मुक्त करना है। बैंक का उद्देश्य इस प्रकार की विचारधारा और व्यवस्था का निर्माण करना है, जिससे प्रचुरता केवल स्वप्न अथवा कल्पना न रहकर एक साकार सत्य बन जाए।

32.7 शब्दावली

1. विश्व बैंक	World Bank or International Bank for Reconstruction and Development.
2. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम	International Finance Corporation (IFC)
3. अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ	International Development Association (IDA)
4. प्रशासक मण्डल	Board of Governors

5. कार्यकारिणी समिति Executive Council

6. सलाहकार परिषद् Advisory Council

32.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वी. सी. सिन्हा , अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

32.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विश्व बैंक के संगठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. विश्व बैंक की उपलब्धियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
3. विश्व बैंक एवं भारत के सम्बन्धों पर विस्तृत निबन्ध लिखिए।
4. विश्व बैंक एवं इसकी सम्बद्ध संस्थाएं अपने उद्देश्यों की पूर्ति में कहीं तक सफल रही है? सविस्तार उत्तर दीजिए।

इकाई 33

विश्व व्यापार संगठन व इसका विकासशील देशों पर प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य

33.1 प्रस्तावना

33.2 विश्व व्यापार संगठन : एक परिचय

33.3 गैट बनाम विश्व व्यापार संगठन

33.4 विकासशील देशों पर प्रभाव

33.5 भारत और विश्व व्यापार संगठन

33.6 निष्कर्ष

33.7 संदर्भ पुस्तकें

33.8 शब्दावली

33.9 अभ्यासर्थ प्रश्न

33.0 उद्देश्य

विश्व व्यापार संगठन एक मात्र संस्था है जो विश्व के देशों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमो का निर्धारण करती है तथा व्यापार के लाभों को हर सदस्य राष्ट्र तक पहुचाती है। इसका उद्देश्य राष्ट्रो के उत्पादको को उनके वस्तुओं व सेवाओं के लिए बाज़ार उपलब्ध करना है। आयात व निर्यातों को सरल बनाकर विश्व के देशों को समीप लाना है। विकासशील व अंतरविकसित देशों को अंतरा व्यापार से जोड़ना है तथा सतत विकास की परिकल्पना को साकार करना है। विश्व व्यापार संगठन को देखने के बहुत नजरिए है, यह वो संस्था है जो व्यापार के नियमो को बनाती है साथ ही ये वो संस्था है जो व्यापार में समझौते करती है। यह वो संस्था है जो देशों के मध्य व्यापार से जुड़े विवादो का निपटारा करती है। यही वो संस्था है जो राष्ट्रों को मुख्यतया विकासशील व अविकसित, प्रभावी नीति निर्माण मे मदद करती है। यही वो सोपान है जो प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के मार्ग खोलकर राष्ट्रो की बौद्धिक सम्पदा मे वृद्धि करती है ।

विश्व व्यापार संगठन गैट का ही उत्तराधिकारी है। गैट एक मंच था जहां सदस्य देश समय समय पर एकत्रित होते थे और विश्व व्यापार की

समस्याओं पर वार्तालाप करते थे और उनको सुलझाते थे। परंतु विश्व व्यापार संगठन एक सुव्यवस्थित और स्थायी विश्व व्यापार की संस्था है। इसकी एक कानूनी स्थिति है और यह विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के समकक्ष ही स्थान रखता है। इसमे (1) उरुग्वे दौर द्वारा संशोधित गैट, (2) गैट के अंतर्गत स्वीकृत सब समझौते और व्यवस्थाएं, तथा (3) उरुग्वे दौर के सम्पूर्ण परिणाम सम्मिलित है।

33.1 प्रस्तावना

विश्व व्यापार संगठनविश्व की सबसे प्रमुख मौद्रिक संस्था है जो विश्व व्यापारके लिये दिशा निर्देशों को जारी करती है और सदस्य देशों को जरुरत केमुताबिक ॠण उपलब्ध कराती है। यह नए व्यापार समझौतों में बदलाव और उन्हेंलागू कराने के लिए उत्तरदायी है।भारतभी इसका एक सदस्य देश है।

विश्व व्यापार संगठन (**विश्व व्यापार संगठन**) एक बहुपक्षीय संगठन है जो विश्व के विभिन्न देशों के मध्य वस्तुओं एवं सेवाओं के मुक्त व्यापार की सुविधा एवं निष्पक्ष व्यापार को बढ़ावा प्रदानकरता है। यह 161सदस्य देशों का संगठन है, जो वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात-निर्यात को सरल बनाते हैं।विश्व व्यापार संगठन का प्रमुख उद्देश्य विश्व-आय को व्यापार के जरिए बढ़ावा एवं सदस्य देशों के समृद्धि के स्तर को ऊँचा उठाना हैं। विश्व व्यापार संगठन जनवरी 1995 को अस्तित्व में आया। विश्व व्यापार संगठन पूर्ववर्ती तटकर एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (GENERAL AGREEMENT ON TARIFF AND TRADE) का ही नया रूप है, जिसे GATT से अधिक शक्तियाँ एवं कार्यसौंपे गए, GATT की स्थापना सन 1948 में द्वितीय विश्व युद्ध के तुरन्त बाद 23 सदस्य देशों ने मिलकर की थी। GATT के अन्तर्गत सन 1994 तक आठ व्यापारवार्ताएँ हो चुकी हैं। अंतिम व्यापार वार्ता उरूग्वे दौर थी, जिससे विश्व व्यापार संगठन (WHO) की स्थापना हुई।डब्ल्यूटीओ गैट का वृहद स्वरूप है, जहां

गैट सिर्फ मर्केडाइज सामानोंको नियंत्रित करता था, वहीं डब्ल्यूटीओ के कार्य-क्षेत्र में सेवा व्यापारजैसे दूरसंचार और बैंकिंग और दूसरे मुद्दे जैसे इंटेलेक्चुअल संपत्तिअधिकार भी हैं।

उरुग्वे दौर के गेट विचार – विमर्श 15 अप्रैल, 1994 को माराकेश (मोरक्को) में समाप्त हो गए। EC देशों के अतिरिक्त भारत तथा 123 देशों के मंत्रियों ने अंतिम एक्ट पर हस्ताक्षर किए जिसमे बहुपक्षीय व्यापार विमर्शों का आठवां दौर शामिल था। अंतिम एक्ट में (1) विश्व व्यापार संगठन समझौता, जिसमे इस संस्था का जन्म और उसकी कार्य प्रणाली के नियम, और (2) मंत्रिस्तरीय निर्णय और घोषणाएँ जिसमे महत्वपूर्ण समझौते, वस्तुओं, सेवाओं, और बौद्धिक संपति में व्यापार तथा बहु-पार्श्विक व्यापार सम्मिलित हैं। उसमें झगड़ा निपटान संबंधी नियम और व्यापारिक नीति का पुनरावलोकन तंत्र भी शामिल है। वास्तव में विश्व व्यापार संगठन समझौता उरुग्वे समझौते ही हैं, जिनके द्वारा प्रारम्भिक गैट अब विश्व व्यापार संगठन समझौते का ही एक भाग बन गया है जो जनवरी 1, 1995 से लागू हुआ।

विश्व व्यापार संगठन अपनाने का मुख्य कारण विश्व व्यापार को लचीला बनाना था, मुक्त व्यापार की और अग्रसर होना था। बहुपार्शिक समझौतों को बढ़ावा देना था। प्रशुल्क व गैर प्रशुल्क की दरों को कम करना था। यह साथ ही समस्त राष्ट्रो को एक व्यवस्था से जोड़ता है, एक ही नियम व कानून से बांधता है। विकासशील राष्ट्रो के लिए विश्व व्यापार संगठन ने नए विकास के मार्ग खोल दिये क्योंकि विश्व व्यापार संगठन ने अपने सभी नियमो व समझोतों मे पूर्ण पारदर्शिता का अनुसरण किया है। यह संस्था का उद्देश्य सम्पूर्ण विश्व के उत्पादन व उपभोग की वृद्धि करना है जो समस्त राष्ट्रों के कल्याण का सूचक है।

33.2 विश्व व्यापार संगठन : एक परिचय

"....जीवन स्तर को उठाना, पूर्ण रोज़गार सुनिश्चित करना, और वास्तविक आय तथा प्रभावी मांग की बड़ी और अनवरतबढ़ती मात्रा, और वस्तुओं तथा सेवाओं में उत्पादन व व्यापारको बढ़ाना...."

"....यह सुनिश्चित करने के लिए कि सकारात्मक प्रयासों कीआवश्यकता है विकासशील देश और उनमें भी सर्वन्यूनविकसित देश अपने आर्थिक विकास की आनुपातिकआवश्यकताओं के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में एक हिस्सासुरक्षित करें।

15 दिसम्बर 1994 को भारत सरकार ने विश्व व्यापार संगठन समझौता स्वीकार कर, इस पर हस्ताक्षर किया। यह एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय समझौता है जिसे या तो पूरी तरह से स्वीकार करना है या पूरी तरह से छोडना है। अर्थात इस समझौते की कुछ शर्तों को मानना और कुछ शर्तों को छोड़ना सम्भव नहीं है। लेकिन इस समझौते की शर्तों परहस्ताक्षर करने वाले देशों के बीच में बहस हो सकती है। लगभग वर्ष में एकबार या कभी-कभी 2 बार इस समझौते में शामिल देशों के प्रतिनिधियों के बीच बहस होती रहती है। दो साल में एक बार विश्व व्यापार संगठन में शामिल देशों की सामान्य सभा होती है। विश्व व्यापार संगठन में इस समय लगभग 126 देश शामिल हैं। विश्व व्यापार संगठन का मुख्य कार्यालय जिनेवा (स्विटजरलैण्ड)में है। लेकिन महत्व की बात यह है कि स्विटजरलैण्ड ने अभी तक गैट करार याविश्व व्यापार संगठन समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं।

भारत सरकार ने विश्व व्यापार संगठन समझौते पर हस्ताक्षर तो 15 दिसम्बर 1994 को किये, लेकिन यह समझौता पूरी तरह से 1 जनवरी 2005 से लागू हुआ। जिस समय भारत सरकारने इस समझौते पर हस्ताक्षर किया था, उस समय इसका नाम बहुपक्षीय व्यापारसंगठन (M.T.O) था। लेकिन 1 जनवरी 1995 को यह नाम बदलकर विश्व व्यापार

संगठनहो गया। महत्व की बात समझने की यह है कि यह समझौता 1 जनवरी 2005 से लागूहुआ, लेकिन भारत सरकार ने गत 10 वर्षों में इस समझौते की कई शर्तों को उदारीकरण और वैश्वीकरण के नाम पर लागू कर दिया है। विश्व व्यापार संगठन समझौते में कुल 28 विषय हैं, जो अपने आप में एक-एक समझौते के जैसे ही हैं।

इस विश्व व्यापार संगठन समझौते का अपना एक इतिहास है। सन 1948 में दुनियाके देशों में व्यापार को व्यवस्थित और सरल बनाने के उद्देश्य से जनरल एग्रीमेन्ट आन ट्रेड एन्ड टैरिफ (GATT) किया गया। भारत उसी समय गैट का सदस्य बन गया था। शुरू में इसमें 23 देश शामिल हुये थे। सन् 1930 में दुनिया के देशों में भंयकर मंदी आ गयी थी। इस मंदी को दूर करने के लिये पश्चिमी देशों ने तरह-तरह के उपाय किये। इन्हीं में से एक उपाय था, दूसरा विश्व युद्ध। पश्चिमी देशों में एक मान्यता है, वह यह कि जब बहुत अधिक आर्थिक मंदी आयेतो युद्ध लड़ना चाहिए। इससे हथियारों की खपत बढ़ती है और फिर हथियारों काउत्पादन बढ़ता है। हथियारों का उत्पादन पश्चिमी देशों (अमरीका, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, आदि) का सबसे मुख्य उत्पादन है। पश्चिमी देशों में हथियार उद्योग के साथ 10 अन्य उद्योग जुड़े हुये हैं। इसलिये जब हथियार उद्योग में उत्पादन और खपत बढ़ती है तो बाकि अन्य 10 उद्योगों में भी खपत और उत्पादन बढ़ता जाता है। आर्थिक मंदी दूर करने के इसी उपाय के साथ 1939 से 1945 तकदूसरा विश्व युद्ध लड़ा गया। इस युद्ध में अरबों-खरबों डालर के हथियार बिके। इससे यूरोप-अमरीका के हथियार उद्योग में बहुत तेजी आयी। इस तेजी ने बाकि दूसरे उद्योगों में भी तेजी लाने का कार्य किया।

जब 1945 में दूसरा विश्व युद्ध समाप्त हुआ तो कई अन्तरराष्ट्रीय समझौते हुये। इन समझौतों केआधार पर कई अन्तरराष्ट्रीय संस्थायें बनीं। सभी देशों के बीच राजनैतिक प्रश्नों को सुलझाने के लिये एवं विश्व शांति की

स्थापना के लिये संयुक्त राष्ट्र महासंघ बना। लेकिन दुर्भाग्य से इस संयुक्त राष्ट्र महासंघ कीस्थापना के बाद भी दुनिया के देशों के राजनैतिक प्रश्नों का समाधान अभी तक नहीं हो सका। दूसरी इससे भी बड़ी असफलता संयुक्त राष्ट्र महासंघ की यह है कि विश्व शांति की स्थापना के लिये बने इस संगठन के बाद अभी तक दुनिया मे 325 छोटे-बड़े युद्ध हो चुके हैं, जिसमें लाखों लोग मारे गये, करोड़ों घरों से बेघर हुये हैं। अभी हाल में ही अमरीका और उसके सहयोगी देशों द्वारा ईराक परकिये गये हमले से यह सिद्ध हो गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ अब अमरीकी राष्ट्र संघ बन चुका है। 1945 के दूसरे विश्व युध्द की समाप्ति पर यह देखा गया कि यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था पूरी तरह से बिगड़ चुकी है, तो फिर इस बिगड़ी हुयी अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिये दो संस्थायें बनायी गयीं। एक थी विश्व बैंक या जागतिक बैंक (World Bank) दूसरी थी, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष। (International Monetary fund) विश्व बैंक का कार्य था, युद्ध में बरबाद हुये देशों के अधिसंरचनात्मक ढाँचे के विकास (Infrastructural Development) के लिये कर्जा देना तथा अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष का कार्य था, देशों को भुगतान असंतुलन की स्थिति में तात्कालिक कर्जा उपलब्ध कराना। ये दोनों संस्थायें बनी तो थीं सभी संयुक्त राष्ट्र में शामिल देशों के विकास के लिये लेकिन इन संस्थाओं द्वारा विकास यूरोपीय देशों का ही हुआ। या फिर अमरीका समर्थक देशों को ही इन संस्थाओं से लाभ मिला। क्योंकि इन दोनों संस्थाओं विश्व बैंक एवं मुद्राकोष की नीतियां हमेशा से ही अमरीकी और यूरोपीय देशों के समर्थन में रही हैं और दुनिया के गरीब देशों के हितों के विरोध में रही हैं। दूसरे विश्व युद्ध में सबसे अधिक तबाही यूरोपीय देशों की ही हुयी थी। सबसे अधिक इमारतें युद्ध के दौरान यूरोपीय देशों की नष्ट हुयीं। सबसे अधिक लोग भी यूरोप के ही मारे गये। विश्व बैंक द्वारा इन यूरोपीय देशों को बहुत ही कम ब्याज दर तथा आसान शर्तों पर कर्जे दिये गये। इन्हीं कर्जों का इस्तेमाल करके गत 50 वर्षों में यूरोपीय देश काफी ऊपर आये। विश्व बैंक और मुद्राकोष की

नीतियों से अमरीका को भी काफी फायदा हुआ। विश्व बैंक तथा मुद्राकोष में धनराशि तो उन सभी देशों की लगी हुयी है जो संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल हैं, लेकिन इस धनराशि का सबसे अधिक लाभ यूरोप एवं अमरीकी देशों को ही हुआ है।

इसी तरह दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति पर सभी देशों के बीच व्यापार को सुगम (आसान) बनाने के लिये एक अन्तरराष्ट्रीय संस्था बनायी गयी। उसी संस्था का नाम गैट (GATTS) जनरल एग्रीमेन्ट आन ट्रेड एन्ड टैरिफ, एक समझौते के आधार पर रखा गया। इस समझौते को हिन्दी में "तटकर एवं व्यापार पर सामान्य समझौता" कहा जाता है। 30 अक्टूबर 1947 को हस्ताक्षर किया गया यह समझौता जनवरी 1948 से लागू हुआ। समझौते की मूल भावना यह थी, कि देशों के बीच होने वाले आपसी व्यापार में वस्तुओं पर लगने वाले टैक्स, कस्टम ड्यूटी या आयात करों के विवादों को सुलझाना और व्यापार को बढ़ावा देना। समझौते के प्रारंभ में 23 देश इसमे शामिल हुये, जिनमें भारत भी था। समय-समय पर इसमें अन्य देश भी शामिल होते गये। दूसरे देश यूरोपीय थे, एवं अमरीका भी इसमें शामिल था। सन् 1948 सेलेकर सन् 1986 तक इस गैट द्वारा व्यापार को काफी बढ़ावा मिला। जो भी आपसी झगड़े सदस्य देशों के बीच तटकरों से सम्बन्धित हुये, उनका समाधान इस गैट में होता रहा। दुनिया के देशों में निर्यात-आयात का व्यापार दो तरीके से होता है। एक तो द्विपक्षीय पद्धति से दूसरा बहुपक्षीय तरीके से। द्विपक्षीय पद्धति में दो देश आपसी निर्यात व्यापार के लिये समझौते करते हैं। बहुपक्षीय पद्धति यें सभी देश सामूहिक व्यापारिक नियम तय करके व्यापार करतेहैं। गैट करार हमेशा से ही बहुपक्षीय व्यापार के लिये ही बना था। 1948 से 1986 तक इस गैट करार के माध्यम से बहुपक्षीय व्यापार काफी अच्छा चला। लेकिन इस बहुपक्षीय व्यापार में अमरीका एवं यूरोपीय देशों को जितना फायदा हुआ, उतना फायदा गरीब देशों (एशियाई, अफ्रीकी देश) को नहीं हो पाया। चीन एक

ऐसादेश रहा जिसने 53 सालों तक गैट करार को स्वीकार नहीं किया। बिना गैट की मददके चीन ने मात्र द्विपक्षीय व्यापार करके ही अपने को आर्थिक जगत की ऊचाईयों तक पहुँचाया।

सन् 1980 के आस-पास पश्चिमी देशों के बाजारों में फिर से मंदी का दौर शुरू हुआ। इस मंदी के दौर का सबसे बुरा असर अमरीका के ऊपर पड़ा। अमरीका की कई बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ दिवालिया हो गयी। कई अमरीकी कारखाने बन्द हो गये। अमरीका में हजारों लोग बेरोजगार होने लगे। इसी तरह यूरोप में भी आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी। इस 80 के दशक की आर्थिक मंदी को दूर करने के लिये अमरीका ने फिर युद्ध का सहारा लिया। ईरान और ईराक के बीच लगभग 8 वर्षों तक चलने वाले युद्ध में अमरीकी कम्पनियों ने अरबो-खरबों डालरके हथियार बेच कर अपने उद्योगों की मन्दी को कम करने का प्रयास किया। इसी तरह खाड़ी युद्ध को भी अमरीका ने अपने हित में ही इस्तेमाल करके अरबों-खरबों डालर के हथियारों का व्यापार किया। हाल ही में अमरीका द्वारा अफगानिस्तान एवं ईराक पर किया गया हमला भी इसी रणनीती का हिस्सा है। यूरोपीय-अमरीकी अर्थव्यवस्था की एक सबसे बड़ी परेशानी यह है कि हर 30-40 साल बाद इसमें मंदी आती है। उस मंदी को दूर किये बिना इन अमरीकी-यूरोपीय देशों का गुजारा नहीं चलता है। इसलिये अमरीकी-यूरोपीय अर्थशास्त्रियों ने इस आर्थिक मंदी का स्थायी इलाज करने की कोशिशों में गैट करार को आधार बना लिया है। उद्देश्य यह है कि मंदी को दूर करने के लिये अमरीकी-यूरोपीय सामान दुनिया के तमाम देशों के बाजारों में बिकते रहें। अमरीकी एवं यूरोपीय बाजारों में एक तरह की स्थिरता आ चुकी है। इसलिये अमरीकी-यूरोपीय अर्थव्यवस्था को जीवित रखने के लिये, दूसरे देशों के बाजारों का सहारा लेना बहुत जरूरी है। अतःअमरीकी-यूरोपीय देशों की सरकारों ने गैट करार का उपयोग करके दूसरे देशों के बाजारों को और अधिक खुलवाने का प्रयास शुरू किया है।

सन् 1986 में गैटके सदस्य देशों की एक सामान्य सभा लैटिन अमरीका के एक देश उरूग्वे मे शुरू हुयी। इस बैठक में अमरीका और यूरोपीय देशों की दादागिरी में गैट करार की सीमा को बढ़ाया गया। मूलतः 1948 से 1986 तक गैट एक बहुपक्षीय व्यापार का मंच था, तटकरों (सीमा शुल्क) का विवाद सुलझाने के लिये। लेकिन उरूग्वे दौर की वार्ताओं ने इसका स्वरूप पूरी तरह से बदल दिया। गैट करार में सीमा शुल्क के मुद्दों के अलावा 28 और विषय शामिल कर दिये गये। जिसमें कृषि व्यापार, कपड़ा व्यापार, बौद्धिक सम्पदा अधिकार जैसे अवांछित विषय शामिल कर लिये गये। हालांकि इन विषयों पर कोई और समझौता होने की जरूरत नहीं थी। क्योंकि ये सभी विषय सभी देशों के आन्तरिक विषय हैं। गैट करार का 1948 से 1986 तक यह नियम रहा कि देशों के आन्तरिक विषयों को गैट करार के तहत नहीं लाना चाहिए। क्योंकि ये सभी विषय आन्तरिक सम्प्रभुता से जुड़े हुये हैं। लेकिन अमेरीकी दबाव में आन्तरिक सम्प्रभुता से जुड़े हुये विषय भी शामिल कर लिये गये और एक नया समझौता तैयार हुआ। इस नये समझौते को तैयार करने के लिये जो टीम बनायी गयी, उस टीम के मुखिया आर्थर डंकल नाम के एक अमरीकी थे। इसलिये इस समझौतेका, शुरूआती नाम "डंकल ड्राफ्ट" भी पड़ गया। सन् 1986 से यह डंकल ड्राफ्ट बनना शुरू हुआ और 1991 में सभी सदस्य देशों के सामने विचार-विमर्श के लियेरखा गया। इस ड्राफ्ट को बनाने वाली समिति में पूरी तरह अमरीकी-यूरोपीय प्रतिनिधियों का दबदबा था, इसलिये इसमें अधिक से अधिक ऐसी शर्तें डाली गयी जिनसे अमरीकी एवं यूरोपीय देशों को अधिक लाभ हो। गरीब अफ्रीकी, ऐशियाई, लैटिन अमरकी देशों ने थोड़ी कोशिश की, कि गरीब देशों के हितों में भी लाभदेने वाली शर्तें ड्राफ्ट में शामिल हों, लेकिन इसमें कुछ खास सफलता नहीं मिल सकी। भारत की ओर से भी काफी कोशिश 1986 से 1991 के बीच गरीब देशों केहितों को साधने वाली शर्तें ड्राफ्ट में लाने की हुयीं, लेकिन भारत

सरकारको इसमें सफलता नहीं मिल सकी। इसलिये भारत सरकर ने 1986 से लगातार यह कहना शुरू किया, कि गैट करार की शर्तें भारतीय हितों के अनुकूल नहीं हैं। इस आधार पर भारत सरकार ने समझौते पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। लगातार भारत सरकार यह कहती रही कि जब तक गैट करार के वर्तमान स्वरूप को बदला नहींजायेगा, तब तक हस्ताक्षर नहीं किये जायेंगे। संसद के अंदर और संसद के बाहर भारत सरकार की ओर से गैट करार पर हस्ताक्षर नहीं करने का वायदा किया गया।लेकिन 15 दिसम्बर 1994 को भारत सरकर ने देश के लोगों को धोखा देते हुये और संसद के खिलाफ वायदा खिलाफी करते हुये गैट करार पर हस्ताक्षर कर दिये। देशके लिये यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण था। सन् 1991 से सन् 1994 के बीच संसदमें गैट करार के विषय पर मात्र 11 घंटे ही चर्चा हुयी। हमारी संसद में बहुत बार फालतू विषयों पर घंटों-घंटों चर्चा होती है और अनावश्यक हंगामें होतेरहते हैं। लेकिन गैट करार जैसे गंभीर एवं संवेदनशील मुद्दे पर 4 वर्षों में मात्र 11 घंटों की ही चर्चा हो सकी। भारत में 28 राज्य और 9 केन्द्र शासित प्रदेश हैं। लेकिन किसी भी राज्य की विधानसभा और केन्द्र शासित प्रदेशों की प्रतिनिधि सभा में गैट करार की शर्तों एवं प्रस्तावों पर कोई चर्चा नहीं हो सकी। थोड़ी बहुत चर्चा पं. बंगाल और पंजाब विधानसभा में हुयी लेकिन यहभी अधूरी रही। हालांकि गैट करार के कई ऐसे प्रावधान हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध राज्यों के विशेष अधिकारों के साथ है। गैट करार के बारे में जो भी थोड़ी-बहुत चर्चा हुयी है, तो वह समाचर-पत्रों एवं पत्रिकाओं में ही हो पायी है। भारत देश में प्रकाशित होने वाले कई महत्वपूर्ण दैनिक समाचार पत्रों, साप्ताहिक पत्रिकाओं और मासिक पत्रिकाओं में गैट करार पर लेख लिखे गये। इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भारत के नागरिकों को गैट-करार के बारेमें थोड़ी जानकारी हो पायी है, लेकिन वह पर्याप्त नहीं है। भारत सरकार की यह जिम्मेदारी थी कि, वह गैट-करार के बारे में अधिक से अधिक

जानकरी संसद मेंदे और देश के लोगों को भी बताये। लेकिन भारत सरकार ने अपनी जिम्मेदारी को ठीक से नहीं पूरा किया।

30 अक्टूबर 1947 को हस्ताक्षर किया गया गैट करार , जनवरी 1948 से लागू हुआ। समय-समय पर इसमें अन्य दूसरे देश भी शामिल होते गये। समय-समय पर गैट करार की वार्ताओं के दौर होते गये। वार्ता का पहला दौर क्योंबा देश के हवाना शहर में हुआ। वार्ता का दूसरा दौर 5 अगस्त 1949 फ्रांस के ऐन्सी शहर में हुआ। वार्ता का तीसरा दौर इंग्लैंड के टार्के शहर में हुआ। वार्ता के इस दौर में 4 और नये देश गैट करार में शामिल हुये।इसी तरह गैट वार्ता का चैथा दौर मई 1956 में जिनेवा में हुआ। गैट वार्ताका पांचवा दौर 1960 में, छठ़वां दौर 1964 में, सातवां दौर 1973 में टोक्यों में, आठवां दौर 1982 में जिनेवा में तथा नवां दौर 1986 में उरूग्वे देश में हुआ। 1986 के पहले और गैट करार शुरू होने तक कृषि विषय इसमें शामिल नहीं था। 1948 से 1986 तक गैट करार में सिर्फ वस्तुओं के व्यापार का ही मुद्दा शामिल था। यह वस्तुओं का व्यापार भी एक विशेष व्यापार ही होता था। देश की सीमाओं के बाहर का व्यापार अर्थात विदेश व्यापार से ही सम्बंधित मुद्दे गैट करार में शामिल रहे। गैट करार में सम्बन्धित सदस्य देशों के आयात-निर्यात से सम्बन्धित आपसी झगड़ों को सुलझाने की ही व्यवस्था बनायी गयी थी। प्रत्येक देश बाहर से आने वाली वस्तुओं पर आयात कर तथा अन्य कई तरह के करों को लगाता है। इन करों की ऊँची दरें अक्सर ही झगड़ों का कारण बनती रहींहैं। प्रत्येक देश अपने-अपने स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण देने के लिये बाहर से आने वाली विदेशी वस्तुओं पर अधिक से अधिक मात्रात्मक प्रतिबन्ध और ऊँचा आयात कर लगाता रहा है। इन्हीं अधिक आयात करों में तथा मात्रात्मक प्रतिबन्ध में छूट लेने-देने के लिये 1948 से 1986 तक गैट वार्तायें हुईं। इन वार्ताओं के माध्यम से देशों ने एक दूसरे को आयात करों तथा मात्रात्मक प्रतिबन्धों में अपने-अपने राष्ट्र हितों को ध्यान में रखते हुये कई तरह की छूटें दीं।

सन 1986 की उरूग्वे दौर की गैट वार्ता में पहली बार कृषि विषय, बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार विषय, सेवा क्षेत्र का विषय आदि शामिल कियेगये। इन नये विषयों को गैट करार में शामिल करने पर काफी विरोध हुआ। यह विरोध सबसे अधिक अफ्रीकी देश, एशियाई देश तथा लैटिन अमरीकी देशों की ओर सेहुआ। इस विरोध में भारत, नाईजीरिया, ब्राजील, मिस्त्र जैसे देश सबसे आगे थे। लेकिन अमरीकी-यूरोपीय देशों के सामने इन देशों का विरोध धीरे-धीरे कम होता गया। अन्त में इन सभी देशों ने अमरीका और यूरोपीय देशों के सामने घुटने टेक दिये। गैट करार में कृषि समझौता, बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार समझौता, सेवा क्षेत्र समझौता आदि अमरीकी और यूरोपीय देशों के दबाव में शामिल किया गया। कृषि समझौते को गैट करार में शामिल करने के पीछे मुख्य उद्देश्य यह है कि कृषि को उद्योग और व्यापार जैसा ही मानना और दुनिया के तमाम देशों का बाजार कृषि उत्पादों के लिये उपलब्ध कराना।

गैट करार में कुल 28 अध्याय हैं। जिनके कुछ नाम हैं। जैसे कृषि समझौता, पूँजीनिवेश समझौता, सेवा व्यापार का समझौता, बौद्धिक सम्पदा अधिकार का समझौता आदि-आदि। इन सभीअध्यायों के बारे में विस्तार से जानना जरूरी है। यह गैट करार हमारे देश केसंविधान के पूरी तरह विरूद्ध है, यह भी जानना जरूरी है। हमारे देश की संसद द्वारा बनाये गये कानूनों के विरूद्ध भी है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की मान्यताओं के पूरी तरह खिलाफ है यह गैट करार। यह गैट करार अफ्रीकी, ऐशियाई और लैटिन अमरीकी देशों की लूट का वही रास्ता खोल रहा है, जो 500 वर्षों पहले कोलम्बस एवं वास्को-डिगामा जैसे लुटेरों ने खोला था। कोलम्बस, वास्कोडिगामा तथा अन्य यूरोपीय देशों ने 500 वर्ष पूर्व जो लूट-मार पूरी दुनिया के लगभग 60-70 देशों में की थी, वही अब विश्व व्यापार संगठन करार के कानूनी स्वरूप से होने जा रही है।

33.2.1 सरंचना

विश्व व्यापार संगठन की सरंचना अथवा संगठन एक मंत्री सम्मेलन द्वारा संचालित होता है जिसमे सब सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं जो कम से कम दो वर्ष में एक बार मिलते हैं। यह विश्व व्यापार संगठन की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली को चलता है और तदनुरूप आवश्यक कदम उठता है। यह किसी भी बहुपक्षीय समझौते के अंतर्गत सभी मामलों पर निर्णय लेता है। मंत्री सम्मेलन विश्व व्यापार संगठन की शीर्षस्थ अधिकारिणी समिति है। सब सदस्यों के प्रतिनिधियों वाली सामान्य काउंसिल विश्व व्यापार संगठन की कार्यप्रणाली पर और मंत्रीय निर्णयों पर नियमित रूप से दृष्टि रखती है । यह झगड़ा निपटान संस्था और व्यापार नीति पुनरावलोकन संस्था के रूप में भी कारी करती है, जिनके अलग अलग अपने अध्यक्ष है। सामान्य काउंसिल जेनेवा मे औसतन प्रतिमास मिलती है। सामान्य काउंसिल के अधीन यह संस्थाएं भी हैं : वस्तुओं के व्यापार की काउंसिल, सेवाओं के व्यापार की काउंसिल, बौद्धिक संपत्ति अधिकारों के व्यापार संबंधी विषयों की काउंसिल। इन काउंसिलों की अपनी सहायक संस्थाएं है। यह काउंसिल और उनकी सहायक संस्थाएं अपने अपने कार्य के लिए आवश्यकता अनुसार अपनी बैठके करती है। फिर व्यापार और विकास समिति, भुगतान शेष रुकवातों की समिति, तथा बजट, वित्त और प्रशासन समिति भी है जो विश्व व्यापार संगठन समझौते द्वारा प्रदत्त कार्य, बहुपक्षीय व्यापार समझौता, तथा सामान्य काउंसिल के बताए हुए कार्य करती है।

विश्व व्यापार संगठन सचिवालय के शीर्ष पर डाइरेक्टर जनरल होता है। मंत्रीय सम्मेलन डाइरेक्टर जनरल का चयन करता है और उसके अधिकार, कर्तव्य, सेवा की शर्ते और पद की शर्ते निर्धारित करता है। डाइरेक्टर जनरल का कार्यकाल 4 वर्ष का होता है। उसके विभिन्न देशों से चुने हुए 4 सहायक होते है।

डाइरेक्टर जनरल, कार्यालय के कर्मियों की नियुक्ति करता है और उनके कार्यों तथा सेवा के नियमों का निर्धारण करता है जो मंत्रीय सम्मेलन द्वारा निश्चित नियमनों के अंतर्गत ही होते हैं।

डाइरेक्टर जनरल बजट, वित्त और प्रशासन समिति को वार्षिक बजट के अनुमान और वित्तीय विवरण देता है और सामान्य काउंसिल की अंतिम स्वीकृति के लिए सिफ़ारिश करता है। सामान्य काउंसिल दो तिहाई के बहुमत से , जिसमे विश्व व्यापार संगठन के आधे से अधिक सदस्य शामिल हों, वार्षिक बजट के अनुमान और वित्तीय विवरण को पारित करती है। अंशदान का अनुपात तथा बजट संबंधी वित्तीय नियमन गैट के नियमों व परिपाटियों पर आधारित है।

विश्व व्यापार संगठन एकमत द्वारा निर्णय की पद्धति का अनुसरण करता है, जिसे गैट 1947 द्वारा निर्धारित किया गया था। जब एकमत द्वारा निर्णय संभव नहीं होता , तब विचारधीन प्रश्न का "एक देश एक मत " के आधार पर 2/3 बहुमत द्वारा किया जाता है। परंतु समझौतों के प्रावधानों की व्याख्या मे मतभेद और किसी सदस्य के दायित्वों मे छूट की दशा मे सदस्यों का बहुमत ¾ का होता है। तथापि सामान्य नियमों में संशोधन जैसे MFN व्यवहार, केवल सदस्यों की सर्व-सम्मति से ही किया जा सकता है।

33.2.2 विश्व व्यपार संगठन के उद्देश्य

विश्व व्यापार संगठन का उद्देश्य विश्व व्यापार को मुक्त सरल एवं निष्पक्ष बनाना है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु संगठन के कुछ कार्य सुनिश्चित किए हैं जो इस प्रकार से हैं-

- विश्व व्यापार संगठन, विश्व व्यापार में से अवरोध को हटाने का एक प्रयास है। उसका उद्देश्य आयात प्रशुल्क इत्यादि गैर प्रशुल्क अवरोधों का समापन कर, समझौतो को लचीलापन देकर,

अनुदानों, उत्पादन के मानकों, पर विश्व व्यापार की रचना करना।

- नए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमों का प्रावधानो को वस्तु व सेवाओं के व्यापार में लागू करना तथा व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकारो का भी अवलोकन करना
- सदस्य देशों के व्यापार नीतियों का विश्लेषण कर क्षेत्रीय व द्विपक्षीय व्यापार समझौतों का अवलोकन करना और उसकी पारदर्शिता को बनाए रखना
- सदस्य देशों के मध्य व्यापार से जुड़े विवादों का निवारण करना साथ ही समझौतो के प्रारूप को समझाना
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मुद्दो पर,विकासशील देशों के लिए विकास की सरंचना का निर्माण करना।
- संस्था द्वारा लगभग 30 देशों की समझौतो की प्रक्रियाओं की सहायता करना जो अभी तक विश्व व्यापार संगठन के सदस्य नहीं है।
- आर्थिक शोध कार्य करना जिसमे सदस्य देशों तथा विश्व व्यापार के आंकड़ो का संकलन कर सदस्यो मे आवंटित करना
- विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों व गतिविधियों के बारे मे राष्ट्रों तथा जनता को शिक्षित करना
- विश्व व्यापार संगठन ने अपने आधारभूत सिद्धान्तों, खुली सीमाओं, राष्ट्रों के साथ अपेक्षपातपूर्ण व्यवहार व पारदर्शिता को अपनी सभी गतिविधियों मे शामिल किया है। राष्ट्रीय बाज़ारों को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए खोलना न्यायपूर्ण अपेक्षाओं तथा पर्याप्त लचीलेपन के साथ, सतत विकास मे भागीदारी, लोगो के आर्थिक कल्याण मे वृद्धि करना, गरीबी कम करना, व शांति और स्थिरता को बनाए रखना ही विश्व व्यापार संगठन का प्रयास व उद्देश्य है। ऐसे खुले बाज़ारों का क्रियान्वयन एक सशक्त घरेलू व अंतर्राष्ट्रीय नीतियों से हो जो आर्थिक वृद्धि व विकास में हर

सदस्य राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार अहम भागीदारी निभा सके।

- राष्ट्रीय व्यापारिक नीतियों में परिवर्तन एवं उन्हें सुचारू रूप से लागू करना। सदस्य देशों की व्यापारिक नीतियों को तकनीकी एवं ट्रेनिंग कार्यक्रमों की सहायता से सुचारू बनाना।
- विकासशील देशों को तकनीकी एवं कुशल सहायता मुहैया कराना
- अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के मध्य समन्वय स्थापित करना।

33.2.3 आधारभूत सिद्धांत

- देशों के मध्य भेदभाव नहीं: सर्वाधिक वरीयता प्राप्त राष्ट्र उपचार
- मुक्त व्यापार: बातचीत के माध्यम से धीरे-धीरे
- भविष्य कथनीयता: बाध्यकारिताओं के माध्यम से प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा
- क्योंआर और एनटीबी को समाप्त करना
- पारदर्शिता

विश्व व्यापार संगठन (विश्व व्यापार संगठन) के अन्तर्गत लगभग सभी तरह की वस्तुओं, सेवाओं एवं कृषि संबंधित वस्तुओं के व्यापारिक समझौतों को शामिल किया जाता है। ये सभी समझौते निम्नलिखित सिद्धांतो पर आधारित हैं-

(i) गैर विभेदात्मक (Non Discrimination) - इस सिद्धान्त की मूल धारणा Most favored Nation (MFN) की रही है जिसमें यह कहा गया है कि अगर कोई देश अन्य देश में उत्पादित किसी भी वस्तु परकोई लाभ, समर्थन या सुविधा प्रदान करता है तो यह लाभ, समर्थन या सुविधा स्वत: और तुरन्त इस वस्तु के उत्पादक अन्य सभी सदस्य देशों को बिना शर्त प्राप्त हो जाएंगी।

(ii) परस्परता (Reciprocity) -इस सिद्धान्त के अनुसार एक देश द्वारा दी गई छूट सुविधा दूसरे देश को समान रूप से मिलनी चाहिये ताकि उनके भुगतानों में ज्यादा अन्तर न हो सके। यह सुविधा उन विकासशील देशों को भी मिलनी चाहिए जो भुगतान संतुलन के संकट का सामना कर रहे हैं। यह सिद्धान्त पहले गैर विभेदात्मक के साथ लागू हो ताकि विश्व व्यापार ज्यादा से ज्यादा उदारीकरण को अपना सके तथा मुक्त व्यापार अन्य सदस्य देशों के बीच में भी परस्परता से लागू हो सके।

(iii) पारदर्शिता (Transparency) -इस सिद्धान्त के अनुसार सभी सदस्य देशों में लागू घरेलू व्यापार नीतियों में पारदर्शिता होनी चाहिए। सदस्य देशों को आपसी बातचीत से समय तरीके से टैरिफ तथा नान टैरिफ बाधाओं को दूर करना चाहिए।

इन सिद्धांतो का यह उद्देश्य है कि विश्व व्यापार मुक्त एवं सही तरीके से संचालित हो सके ताकि बाजार में प्रतियोगिता के वातावरण को बढ़ावा मिल सके।

33.2.4विश्व व्यापार संगठन में निर्णय लेना

- गैट में आम सहमति से निर्णय लेने की प्रक्रिया जारी
- जहां यह संभव न हो, वहां बातचीत की प्रक्रिया द्वारा आम सहमति
- बहुमत के वोट द्वारा - प्रत्येक देश का एक वोट है
- विशेष मामलों में विशेष वोटिंग की आवश्यकता
- एक सदस्य के प्रवेश, समझौतों में संशोधन के लिए दो-तिहाई बहुमत,समझौतों की व्याख्या तथा सर्वाधिक वरीयता प्राप्त राष्ट्र जैसे आधारभूत प्रावधानों में परिवर्तन के लिए आम सहमति हेतु तीन-चौथाई बहुमत।

33.2.5विश्व व्यापार संगठन के सदस्य

विश्व व्यापार संगठन के वर्तमान में 26 अप्रैल 2015 के प्रकाशित आंकड़ो के अनुसार 161 सदस्य राष्ट्र है।[9]विश्व व्यापार संगठन के 1 जनवरी, 1995 को 77 देश सदस्य थे, जिनकी संख्या अब बढ़कर 161 हो गयी है । भारत संस्थापक देशों में से एक है। नए राष्ट्रो में अल्बानिया, जेओर्जिया व जोरडन ने वर्ष 2000 मे सदस्यता प्राप्त की। चीन ने 2001 मे तथा आर्मेनिया ने वर्ष 2003 मे सदस्यता प्राप्त की। उसी प्रकार कंबोडिया व नेपाल ने 2004 मे तथा वियतनाम ने 2007 मे सदस्यता प्राप्त की। उकराइन, व वनुताऊ ने 2008 एवं 2012 मे क्रमश: सदस्यता प्राप्त की। इन 160 सदस्य देशों मे 117 विकासशील देश शामिल है। विश्व व्यापार संगठन की सभी गतिविधियां उसके सचिवालय के 700 सदस्यो द्वारा संचालित की जाती है, जो निदेशक द्वारा अनुदेशित होती है। इसका मुख्य कार्यालय यानि सचिवलाय जीनेवा, स्विट्ज़रलैंड मे स्थित है, जिसका सालाना बजट CHF 200 मिलियन या $180 मिलियन है । विश्व व्यापार संगठन की कार्यकारी भाषाएँ अङ्ग्रेज़ी, फ्रेंच, तथा स्पेनिश है। डब्ल्यूटीओ की सबसे बड़ी संस्था मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (*मिनिस्ट्रियल कॉन्फ्रेंस*) है। यह प्रत्येक दो वर्ष में अन्य कार्यों के साथ संस्था के महासचिव और मुख्य प्रबंधकर्ता का चुनाव करती है। साथ ही वह सामान्य परिषद (*जनरल काउंसिल*) का काम भी देखती है। सामान्य परिषद विभिन्न देशों के राजनयिकों से मिल करबनती है जो प्रतिदिन के कामों को देखता है। डब्लयूटीओ का मुख्यालय जेनेवा, स्विट्जरलैंड में है। इसके वर्तमान महानिदेशक रोबेरटो अजेवेदों (Roberto Azevêdo) हैं। अब तक इसके छह मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (मिनिस्ट्रियल कॉन्फ्रेंस) हो चुके हैं।

---

[9]http:/www.wto.org

- **विकसित देश:** संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपियन समुदाय, जापान, कोरिया, कनाडा
- **विकासशील देश:** भारत, मिस्र, संयुक्त अरब अमीरात, जॉर्डन
- **संक्रमण अर्थव्यवस्था:** बुल्गारिया, हंगरी, लाटविया
- **सर्वन्यून विकसित देश:** बंगलादेश, यूगांडा, गिनी, मालदीव, अंगोला
- **पर्यवेक्षक:** रूस, सऊदी अरब, नेपाल, वियतनाम, भूटान

33.2.6 विश्व व्यापार संगठन के मंत्रीगण सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन के अब तक 9 मंत्रीगण सम्मेलन हो चुके है। 10वां मंत्रीगण सम्मेलन 15 से 18 दिसम्बर 2015 को केन्या के नैरोबी शहर मे होना प्रस्तावित है। विश्व व्यापार संगठन का प्रथम सम्मेलन सिंगापुर में, द्वितीय जेनेवा, तृतीय सिएटल, चतुर्थ दोहा, पांचवा कंकुन, छठा हाँग काँग, सातवा जेनेवा और आठवा भी जेनेवा में ही आयोजित हुआ। तात्कालिक 9वां मंत्रीगण सम्मेलन इंडोनेशिया के बाली मे हुआ जिसका प्रमुख मुद्दा खाद्य सुरक्षा रहा।

33.2.7 विश्व व्यापार संगठन के कार्य

- विश्व व्यापार संगठन के निम्नलिखित कार्य है:
- यह समझोते और बहुपक्षीय व्यापार समझोतो के कार्यान्वियन, प्रबंधन, और संचालन को सरल बनाता है।
- यह नागरिक विमानन, सरकारी खरीदारी, दुगधोतपाद व्यापार और गौमांस संबंधी बहुपक्षीय व्यापार समझोतो के कार्यान्वियन, प्रशासन और परिचालन के लिए उचित ढांचे का प्रबंध करता है।
- यह सदस्यो के लिए मंत्रिस्तरीय कॉन्फ्रेंस द्वारा स्वीकृत समझौतो संबंधी, बहुपक्षीय व्यापार संबंधी विषयक वार्ताओ

और इनके द्वारा किए गए निर्णयो के कार्यान्वयन के लिए एकमंच प्रस्तुत करता है।

- यह समझौते के झगड़ा निपटान के नियमो तथा प्रक्रियाओ की व्याख्या का प्रबंध संचालन करता है।
- यह अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा इसकी सहयोगी शाखाओ के मध्य विश्व व्यापार के लिए नीति निर्धारण में अधिकतर संगति उत्पन्न करता है।

33.2.8 विश्व व्यापार समझौता

उरुग्वे दौर की बहुपक्षीय वार्ताओ के परिणामो पर आधारित विश्व व्यापार संगठन के मूलभूत समझौते में निम्न शामिल है :

वस्तुओ में व्यापार के बहुपक्षीय समझौते

वस्तुओ में व्यापार के सामान्य समझौता गैट 1994 को परिभाषित करता है और इसमे वस्तुओ में व्यापार संबंधी विभिन्न पहलुओ के बारे में सब समझौते शामिल है।

(i) गैट 1994

गैट 1994 में 1 जनवरी, 1995 तक संशोधित गैट 1947 शामिल है। इसमे उल्लिखित कानूनी प्रपत्रों के प्रावधान, गैट 1994 की मराकेश विज्ञप्ति और निम्न व्याख्याए भी शामिल है :

(अ) **अनुच्छेद II: गैट 1994 का 1 (b)** : कानूनी अधिकारो और अनुबन्धो में तथा किसी अन्य शुल्को और प्रभारों के प्रकार और स्तर, जो रियायतो की माड़ो में वर्णित बंधित टैरिफ वाली वस्तुओ पर 15 अप्रैल 1995 से लागू है, में पारदर्शिता लाना।

(आ) **गैट का अनुच्छेद XVII–** सरकारी व्यापारिक संस्थाओ की कार्य-प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए सदस्यो को यह आवश्यक है कि वे ऐसी संस्थाओ की सूचना वस्तुओ के व्यापार की

समिति को दें, जिसका कार्यकारी दल वर्ष में कम से कम एक बार उनके कार्यों का पुनरावलोकन करके काउंसिल को सूचित करे।

(इ) **गैट के भुगतान शेष के प्रावधानों पर समझौता** : जो सदस्य भुगतान शेष के लिए रुकवाते डालते है वे उन्हे न्यूनतम विघटनकारी ढंग से करे। वे कीमत आधारित उपायो को ही प्राथमिकता दें जैसे, आयात अधिभार, आयात जमा, या अन्य उपाय जो आयातित वस्तुओ की कीमतों को प्रभावित करते हो। वह नयी परिणात्मक रुकावटों को लागू करने से भी दूर रहे, और शीघ्रतिशीघ्र सार्वजनिक रूप से समय सारणियो की घोषनाए करें जिनके अनुसार वह भुगतान –शेष संबंधी आयात विरोधी रूकावटों को दूर करने में प्रयत्नशील होंगे। भुगतान शेष अवरोधो की समिति परामर्शों के द्वारा सभी आयात अवरोधी उपायो का भुगतान शेष के दृष्टिकोण से पुनरावलोकन करती है।

(ई) **गैट 1994 का अनुच्छेद XXIV**– कस्टम संघो और मुक्त व्यापार क्षेत्रों का समझौता मापदंडो और कारी विधियाँ निश्चित करता है जिसके द्वारा वह मुक्त व्यापार क्षेत्रों और नए अथवा वर्धित कस्टम संघो का पुनरावलोकन करता है। और उनका तीसरे सदस्यो पर पड़ने वाले प्रभावों का भी । यदि अनुबंधित सदस्य बंधित टैरिफ की वृद्धि के लिए कस्टम संघ बनाना चाहें तो ऐसा समझौता आवश्यक क्षतिपूरक समायोजन को भी स्पष्ट करता है।

(उ) **अनुच्छेद XXVIII की व्याख्या का समझौता** – अनुच्छेद XXVIII गैट की सारणियों के संशोधनों से संबन्धित है। जब टैरिफ के बंधनो में परिवर्तन हो या वे हटा दिये जाएँ तो क्षतिपूर्ति की वार्ताओ की प्रणाली इसके द्वारा निर्धारित की जाती है।

(ii) कृषि संबंधी समझौता

कृषि संबंधी समझौता घरेलू सब्सिडी से, निर्यात सब्सिडी न्यूनतम मार्केट प्रवेश की वचन बद्धता, घरेलू प्रोत्साहन, स्वास्थ्य, वनस्पति और खाद्य सहायक कार्यो से सम्बद्ध है। यह समझौता गैर टैरिफ

उपायो के स्थान पर साधारण कस्टम ड्यूटी लगाकर, जो धीरे धीरे कम की जाएगी, राष्ट्रीय मार्केट को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के लिए खोलता है। दूसरे, यह सरकारी सहायता को धीरे धीरे कम करके अति उत्पादन को नियंत्रित करने का प्रयास करता है और परिणामस्वरूप अतिरेको को भी , जो या तो निर्यात सब्सिडी के द्वारा समाप्त या नष्ट किए जाते है। तीसरे, ये निर्यात प्रतिस्पर्धा पर नयी नियमावलियों को लागू करने, और सब्सिडी तथा सब्सिडी प्राप्त निर्यात की मात्रा को कम करने के प्रयत्नो को भी प्रेरित करता है।

(अ)**घरेलू सब्सिडीया** – घरेलू सब्सिडी के दो अंग है : (क) गैर-वस्तु विशेष सब्सिडीया जो सभी फसलों को दी जाती है, जो उर्वरक, पानी, बिजली, बीज और रिन के लिए होती हैं, और (ख) विशेष उत्पाद संबंधी सब्सिडीया जो विशेष फसलों के लिए होती है, जैसे भारत में कुछ कृषि उत्पादो के लिए न्यूनतम सहायक मूल्य। किसानो को दिये जाने वाली सब्सिडी, जिसे कुल समग्र सहायता TOTALAMS भी कहते है, का पूर्ण मूल्यांकन करने के लिए उपरलिखित दोनों सब्सिडियों का योग करना चाहिए । किसी वर्ष में यह योग, अर्थात चालू कुल AMS विकासशील देशों में उस वर्ष में कुल कृषि उत्पादन मूल्य के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए , जिसे सब्सिडी को कम अकर्ने की अनिवार्यता से मुक्त किया जाए । इस सब्सिडी का आगणन उस वस्तु की अंतर्राष्ट्रीय कीमत पर किया जाएगा।

(आ) **निर्यात सब्सिडीया** – विश्व व्यापार संगठन के सदस्यों के लिए आवश्यक है कि वे 6 वर्ष के कार्यान्वयन काल में प्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडीयों के मूल्य को कम करके 1986-90 की आधार अवधि स्तर के नीचे 36% पर ले जाएँ और सब्सिडी प्राप्त निर्यात की मात्रा को उसी अवधि के 21% के। विकासशील देशों के लिए यह कटौतियाँ 10

वर्ष के काल में विकसित देशों की कटौतियाँ 2/3 होंगी। न्यूनतम विकसित देशों के लिए कोई कमी नहीं की जाएगी।

(इ) **न्यूनतम मार्केट प्रवेश वचनबद्धता** –न्यूनतम मार्केट प्रवेश वचनबद्धता उन्ही देशों पर लागू है जो कृषि संबंधी आयतों में भिन्न प्रकार की रूकावटों का प्रयोग करते है और तदनुसार ही इन रुकावटों को टैरिफ का रूप देने को , तथा इन टैरिफो को 6 वर्ष के काल में 36% कम करने को बाध्य हैं। इन देशों के लिए यह भी आवश्यक है कि वे 6 वर्ष के लिए विदेशी कृषि उत्पादो की खपत की न्यूनतम 3% मार्केट प्रवेश सुविधा विदेशी कृषि उत्पादो को दे जो 6 वर्ष के बाद बढ़कर 5% हो जाएगी। ये शर्ते उनही देशों पर लागू होंगी जो आयात को अनिवार्यत : टैरिफ के द्वारा ही नियंत्रित करते हैं। विकासशील देशों में कृषि उत्पादो का टैरिफ 10 वर्ष के काल में 24% कम किया जाएगा । न्यूनतम विकसित देशों में टैरिफ में कोई कमी नहीं की जाएगी।

(ई) **घरेलू सहायता** - उन घरेलू सहायता के उपायों में जिनके द्वारा व्यापार पर न्यूनतम प्रभाव पड़ता है , जिन्हें हरित विकास नीतीय कहते है, यह कटौती लागू नहीं होती। इन नीतियों में सामान्य सरकारी सेवाएँ सम्मिलित है, जैसे अनुसंधान, रोग-नियंत्रण, बुनियादी ढांचा, और खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र। इसमे उत्पादको को आय सहायता, संरचनात्मक समायोजन सहायता, पर्यावरणीय और क्षेत्रीय सहायता प्रोग्रामो के अंतर्गत सहायता के रूप में सीधे भुगतान भी शामिल है।

इसके अलावा कुछ दूसरी नीतियाँ भी है जो सहायता के कुल औसत मापक कटौती वचनबद्धता में सम्मिलित नहीं है । वे विकासशील देशों में उत्पादन सीमित प्रोग्रामो के अंतर्गत सीधे भुगतान, कृषि, और ग्रामीण विकास में प्रोत्साहन देने के लिए कुछ सरकारी सहायता उपाय तथा कुछ अन्य सहायता उपाय है। यह

किसी एक वस्तु के उत्पादन मूल्य या विकासशील देशों के कुल कृषि उत्पादन का 10% होगा और विकसित देशों का 5%।

(ङ) स्वास्थ्य और पशु स्वास्थ्य के उपाय

स्वास्थ्य और पशु-स्वास्थ्य के उपायों में खाद्य सुरक्षा तथा पशु और वनस्पति स्वास्थ्य के उपाय सम्मिलित है।समझौता स्वीकृत करता है कि विभिन्न देशों की सरकारो को पूर्णाधिकार है कि वे मनुष्य, पशु और वनस्पति के जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उचित उपाय करें। परंतु यह भी आवश्यक है कि वे मनमाने ढंग से अथवा अनुचित रूप से अन्य सदस्यो के बीच, जहा स्थिति समरूप अथवा एक जैसी हों, भेदभाव न करे। समझौता यह भी सुनिश्चित करने का प्रयत्न करता है कि पशु और वनस्पति स्वास्थ्य के उपाय व्यापार में अनुचित बढ़ा न डाले। समझौता मनुष्य और पशु स्वास्थ्य की सुरक्षा के उचित स्तरो के निर्धारण और जोखिमो के मूल्यांकन की प्रक्रियाओ और मापदंडो का वर्णन करता है।

(ऊ)**खाद्य भंडारण और खाद्य सहायता -** समझौते में मान्य है कि अन्तरिम काल में न्यूनतम विकसित और खाद्य आयाती विकासशील देश खाद्य आयात में ऋणात्मक प्रभावों का अनुभव कर सकते है। अतएव, इसने कृषि विकास के लिए खाद्य सहायता और मूल खध्यानों में पूर्ण अनुदान और सहायता के लक्ष्य रखे हैं। यह IMF और विश्व बैंक द्वारा वाणिज्यिक खाद्य आयात के लिए अल्पकालीन वित्तीय सहायता की संभावना को मानता है।

कृषि समझौते के प्रावधानों के कार्यान्वयन के पुनरावलोकन के लिए एक कृषि समिति भी बनाई गयी है।

(iii) कपड़ा और वस्त्रो का समझौता

इस समझौते का उद्देश्य कपड़ा और वस्त्र क्षेत्र का गैट 1994 में एकीकरण है। यह एकीकरण 4 चरणो में होगा –प्रथम, 1 जनवरी , 1995 को प्रत्येक सदस्य इस समझौते की विशेष सूची में सम्मिलित गैट उत्पादो में शामिल किया गया जो कि 1990 में उसके आयात

की कुल मात्रा का कम से कम 16% था। द्वितीय चरण में, 1 जनवरी 1998 से वह उत्पाद शामिल हुए जो 1990 के आयात से 17% से कम न थे। तृतीय चरण में, 1 जनवरी, 2005 को संक्रामणकाल की समाप्ती पर शेष सब उत्पाद इसमे शामिल होंगे। शामिल का अर्थ है कि अधोवस्त्र, सूत, कपड़ा, और सिले हुए वस्त्र गैट के साधारण नियमो द्वारा संचालित होंगे। सब बहुतांत्रिय समझौते की 31 दिसम्बर 1994 को स्वीकृत रुकावटे नए समझौते में शामिल कर ली गयी है और उस समय तक रहेंगी जब तक या तो रुकावटे हटा ली जाए अथवा गैट में शामिल कर ली जाए। कुछ सदस्यो द्वारा लगाई गयी गैर बहू तंत्रीय रुकावटे भी समझौते के लागू होने के एक वर्ष के भीतर गैट 1994 में शामिल कर ली गयी या 2005 तक धीरे धीरे समाप्त कर दी जाएंगी। जो उत्पाद गैट 1994 में किसी रूप में शामिल नहीं हुए है, उनके लिए एक विशेष संक्रमणिक सुरक्षा तंत्र का प्रावधान है। यदि आयातकर्ता देश को ज्ञात हो जाय कि देश में कोई उत्पाद इतनी अधिक मात्र में आयात हुआ है जिससे उसके घरेलू उद्योग को गंभीर क्षति पहुंची है , तो उस वस्तु के निर्यातकर्ताओ पर कार्यवाही की जा सकती है। सुरक्षातन्त्र के अंतर्गत या तो विचार विमर्श द्वारा या पारस्परिक समझौते द्वारा, कार्यवाही हो सकती है या एक पक्षीय ही, परंतु यह कपड़ा ,मॉनिटरिंग संस्था द्वारा पुनरावलोकित होगी। सुरक्षा बंधन तीन वर्ष तक बिना विस्तार के प्रभावी रहेंगे अथवा जब तक कि वस्तु गैट में शामिल नहीं की जाती है। एकीकरण प्रक्रिया के भाग के रूप में अंगस्वरूप, सब सदस्य कपड़ा और वस्त्र के क्षेत्र में गैट नियमो के अनुरूप कार्य करेंगे जिससे मार्केट प्रवेश में सुधार हो तथा न्यायोचित तथा उचित व्यापार नीतियो का पालन हो तथा आयात विरोधी विभेद उत्पन्न न हो।

(iv) व्यापार में तकनीकी बाधाओ समझौता

यह समझौता टोक्यो दौर में स्वीकृत व्यापार में तकनीकी बढ़ाओ के समझौते के विस्तारण और स्पष्टीकरण ही है। यह सुनिश्चित करने की चेष्टा करता है कि तकनीकी विमर्श और मानक परीक्षण और प्रमारन प्रणालियां व्यापार के मार्ग में आनावश्यक रुकवाते न डाले। तथापि यह स्वीकार करता है कि देशों को मानवीय, पशु या वनस्पतीय स्वास्थ्य तथा पर्यावरण की रक्षा का अधिकार है। समझौते में मानकीकारण संस्थाओ द्वारा मानको की सरचना, स्वीकृति और उपयोग की संहिता सम्मिलित है।

(v) **(V) व्यापार संबंधी निवेश उपायो के पहलुओ का समझौता (ट्रिम्स)**

ये 55 वर्ष में सभी व्यापार संबंधी निवेश उपायो को हटाने का निर्देश देता है। यह उपाय मात्रात्मक रुकावटों और राष्ट्रीय व्यवहार तक सीमित है। वस्तुत: यह जिन उपायो पर लागू होता है वे है, चुने हुए क्षेत्रो में निवेश, विदेशी कंपनियो को राष्ट्रीय कंपनियो के बराबर रखने के लिए विदेशी निवेश का स्तर, निर्यात दायित्व और घरेलू कच्चे माल का उपयोग। यह विदेशी विनिमय के अर्जनो, विदेशी इक्विटी हिस्सेदारी और तकनीकी स्थानांतरण से संबंध विदेशी निवेशको पर कोई पालन शर्त लगाने का निषेध करता है। यह आदेश देता है कि निवेश कंपनियो को घरेलू कंपनियो के बराबर ही रखा जाए। यह निवेश के क्षेत्र में रुकावटे लगाने को रोकता है। यह कच्चे माल, मध्यवर्ती के मुक्त आयात की अपेक्षा रखता है।

(VI) प्रतिराशिपातन पर समझौता

गैट के अनुच्छेद VI के अनुसार, यदि राशिपातन आयात, आयातकर्ता देश के घरेलू उद्योग को हानि पाहुचता है तो अनुबंधित सदस्यो को अधिकार है कि वे राशिपातन विरोधी नीतियो को अपनाए। संशोधित समझौता टोक्यो दौर के सामझौते का परिवर्धित रूप है। यह राशिपातन आयात से घरेलू उद्योग की क्षति का मूल्यांकन, राशिपातन विरोधी छानबीन प्रारम्भ करने

और उसे कार्यरूप देने, घरेलू अधिकारियों द्वारा की गयी राशिपातन के झगड़े निपटान की कार्यवाही करने की प्रक्रिया में अधिक स्पष्टता, अधिक विस्तृत नियम और मापदंड निर्धारित करता है। नए नियमो के अंतर्गत राशिपातन विरोधी छानबीन तुरंत बंद कर दी जाएगी यदि डम्पिंग की सीमा निर्यात की 2% से कम है, या किसी विशेष देश से डम्प किए गए आयात की मात्रा उस उत्पाद के कुल आयात से 3% से कम है बशर्ते कि यह ऐसे कुल डम्प किए आयात की 7% की सीमा के अंतर्गत हो।

5.2.8.1 सेवाओ में व्यापार का सामान्य समझौता

इस समझौते के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार योगी सेवाएँ आती है। विदेशी सेवाएँ, सेवा प्रदाता, घरेलू सेवाओ और सेवा प्रदाताओ के बराबर समझे जाएंगे तथापि सरकरे विशिष्ट परम मित्र की छुट की सूचना देंगे, जिसका वर्ष 5 के पश्चात पुनरावलोकन किया जाएगा। इसकी सीमा साधारणत: 10 वर्ष होगी। यह पारदर्शिता पर बल देता है जिसमे सेवाओ के व्यापार संबंधी कानून और नियमनों का प्रकाशन भी सम्मिलित है। वित्तीय सेवाओ के क्षेत्र में यह देश की सरकारो को अधिकार देता है कि निवेशको, जमकर्ताओ, और पॉलिसी धारको के लिए उचित उपाय करे और आर्थिक प्रणाली की अखंडता और स्थिरता को सुनिश्चित करे । दूरसंचार के क्षेत्र में यह निर्देश देता है कि वे दूर संचार वहन तंत्रो का स्थापन्न, निर्माण, अधिग्रहण, पत्ते पर देना, संचालन या पूर्ति, सुनिश्चित करे और जनता को उपलब्ध कराये। अंतर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ तथा अंतर्राष्ट्रीय मांकिकरण संगठन, के सहयोग से दूर संचार सेवाओ के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सहयोग की वृद्धि के उपाय करे। गेट्स विमानो की मरम्मत, रख रखाव, वायु यातायात सेवाओ का विपणन व कम्प्युटर आरक्षण सेवाओ पर भी लागू होता है। व्यावसायिक सेवाओ के क्षेत्र में

देशों की सरकारे संचालन डालो की नियुक्ति के लिए भी तत्पर हो गयी है जो सेवाओ में व्यापार और पर्यावरण संबंधो का परीक्षण, एयरपोर्ट, व संस्तृतिया जिनमे दीर्घकाल की विकास की समस्याओ का विश्लेषण भी शामिल है । वे व्यावसायिक सेवाओ पर आवश्यक शिक्षा की शाखाओ पर संस्तृतियों के साथ परिक्षण और रिपोर्ट भी करेंगे।

5.2.8.2 बौद्धिक संपत्ति अधिकारो के व्यापार संबंधी पक्ष का समझौता

ट्रिप्स समझौते के अंतर्गत 7 प्रकार की बौद्धिक संपत्ति आती है : कॉपी राइट तथा तटसंबंधी अधिकार, ट्रडेमार्क, बाहुगोलिक संकेत, औद्योगिक डिज़ाइन,पैटंट, सूक्ष्म जीवाणु और पौधो की विभिन्न जातिया, संघटित सर्किट, और व्यापारिक रहस्य ।

5.2.8.3 झगड़ा निपटान प्रणाली

विश्व व्यापार संगठन के स्थापन समझौते के प्रावधानों के अंतर्गत सदस्य देश के अधिकार और कर्तव्य संबन्धित अधिकारो के विचार विमर्श के लिए और झगड़ो के निपटान का प्रावधान इस समझौते में किया गया है। झगड़ा निपटान का पहला चरण सदस्यो के मध्य विचार विमर्श है। यदि यह वार्ता सफल न हो तो विश्व व्यापार संगठन के डाइरेक्टर जनरल मध्यस्थता तथा समाधान के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित अकर्ता है। शिकायती सदस्य 30 दिन के भीतर 3 विशेषज्ञो की नाम सूची के लिए प्रार्थना कर सकता है। DSB द्वारा मनोनीत 7 सदस्यो की समिति अपील का पुनरावलोकन करके 60 से 90 दिन के भीतर अपनी रिपोर्ट समर्पित करेगी।

5.2.8.4 बाहुपार्श्विक समझौते

बाहुपार्श्विक व्यापार समझौतो में शामिल है –नागरिक विमानन व्यापार समझौता, सरकारी खरीद, अंतर्राष्ट्रीय दुग्धौत्पादन, व अंतर्राष्ट्रीय गोमांस समझौता। इनमे पहला समझौता जेनेवा में

अप्रैल 1979 में हुआ जो बाद में संशोधित किया गया। अंतिम तीन समझौते, मराकेश (Marrakesh Agreement) में 1994 में हुए।

5.2.8.5 व्यापार नीति पुनरावलोकन तंत्र

बहुपक्षीय व्यापार को सुचारु रूप से चलाने के लिए बहुपक्षीय व अनेक पक्षीय व्यापार समझौतो के अंतर्गत व्यापार नीतियो और प्रक्रियाओ का पुनरावलोकन इस तंत्र द्वारा किया जाता है। यह सदस्य देशों के नीतियो व व्यापार पर अपनी रिपोर्ट देता है।

33.3 गैट बनाम विश्व व्यापार संगठन

विश्व व्यापार संगठन गैट का विस्तार नहीं है,परंतु उसका उत्तराधिकारी है। इन दोनों के बीच अंतर तदर्थ व अंतिम, स्थायी कानून, अनुबंधित पार्टियां, सदस्य, वस्तुओ व सेवाओं के व्यापार , तथा विवाद निवारण ढांचे गत आधाराओ पर अंतर किए जाते है। उसने गैट को पूर्णत: प्रतिस्थापित कर दिया है और इसका एक भिन्न स्वरूप है। दोनों मे निम्न अंतर है :

i. गैट की कोई कानूनी स्थिति नहीं थी। विश्व व्यापार संगठन की कानूनी स्थिति है । इसका जन्म अंतर्राष्ट्रीय संधि के अंतर्गत हुआ है, जिसकी पुष्टि सदस्य देशों की सरकारों और विधानमंडलो ने की है। विश्व व्यापार संगठन भी IMF व विश्व बैंक की भांति महत्वपूर्ण संस्था है परंतु यह UN की शाखा नहीं है,वरन इसका UN के साथ सहकारी संबंध है।

ii. गैट केवल कुछ चयनात्मक बहुपक्षीय समझौतों के बारे में नियमों और प्रणालियों का समूह था। अलग अलग विषयों पर अलग अलग समझौते थे जो सदस्यों पर बढ़ी नहीं थे। कोई भी सदस्य किसी भी समझौते में सम्मिलित होने से इनकार कर सकता था। केवल वे ही सदस्य जिन्होने किसी भी समझौते पर हस्ताक्षर किए हो, वे उसका पालन न करने पर दंडित हो सकते थे। परंतु

जो समझौते विश्व व्यापार संगठन का अंग बन चुके है, वह स्थायी है और सभी सदस्यो पर बाध्य है। किसी सदस्य के नियम पालन न करने पर अन्य सब सदस्य देश उस पर कार्यवाही कर सकते है।

iii. गैट झगड़ा निपटान प्रणाली विलंबकारी थी और झगड़े से संबधित सदस्यों पर बाध्य नहीं थी। विश्व व्यापार संगठन झगड़ा निपटान प्रणाली स्वचालित, शीघ्रगामी तथा सदस्यों पर पूर्णत: लागू है। विश्व व्यापार संगठन के विवाद निवारण समिति ने अपने पहले ही फेसले द्वारा शक्तिशाली अमेरिका को उसे स्वीकार करने पर बाध्य कर दिया। इस प्रकार विश्व वयापार संगठन शक्तिशाली है, जबकि गैट शक्तिहीन।

iv. गैट एक ऐसा मंच था जिस पर सदस्य देश विश्व व्यापार समस्याओं पर विचार करने और उन्हे सुलझाने के लिए दशक में केवल एक बार मिलते थे। लंबे और दीर्घकालिक विवादों के परिणाम कई दशको मे निकलते थे। दूसरी ओर, विश्व व्यापार संगठन सुस्थापित, नियमबद्ध विश्व व्यापार संगठन है जहां समझौतो पर निर्णय समयबद्ध होते है। दिनांक अवधि केवल सदस्यों के एकमत द्वारा ही बढ़ाई जा सकती है।

v. गैट का एक छोटा कार्यालय था जिसे एक डाइरेक्टर जेनेरल देखता था। विश्व व्यापार संगठन एक विशाल कार्यालय है तथा विरत कर्मचारी तंत्र है।

vi. गैट वस्तुओ के व्यापार से संबन्धित था जबकि विश्व व्यापार संगठन वस्तुओं व सेवाओं के व्यापार से संबन्धित था ।

33.4 विकासशील देशों पर प्रभाव

1. विश्व व्यापार संगठन का महत्वपूर्ण कार्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को निर्देशित व लचीला बनाना। ये व्यापार मे समझौतो का तथा नीतियों का एक ढांचा प्रदान करना हैं जिसमे राष्ट्र सतत विकास

की और अग्रसर हो सकते है। नीतियों का क्रियान्वयन तथा उसका विश्लेषण भी विश्व व्यापार संगठन का महत्वपूर्ण कार्य है। साथ ही विकासशील तथा अविकसित राष्ट्रो को विश्व व्यापार संगठन के नियमो से जोड़ना तथा उनके लिए विविध अवसरो को उपलब्ध करना,आर्थिक सहायता के साथ तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करना भी विश्व व्यापार संगठन का महत्वपूर्ण कार्य है।

2. विश्व व्यपरा संगठन, शोध का एक केंद्र है जहा पर सभी राष्ट्रो की नीतियो व व्यापार का अवलोकन किया जाता हैं और संस्था द्वारा जिनका प्रकाशन भी विश्व स्तर पर किया जाता है। यह प्रकाशन व शोध विकासशील देशों के भावी विकास की रूप रेखा तैयार करती है। यह समावेशी विकास का महत्वपूर्ण कदम था जो कि विश्व के वास्तविक गरीब तक पहुचने मे सदस्य राष्ट्रो की सहायता करता है। विश्व व्यापार संगठन के दो तिहाई सदस्य राष्ट्र विकासशील है। ये राष्ट्र बहुत बढ़ी संख्या मे विश्व व्यापार मे अहम व सक्रिय भूमिका निभाते है,इन राष्ट्रों के साथ विश्व व्यापार संगठन द्वारा विशेष व्यवहार किया जाता है जो दूसरे विकसित राष्ट्रो से पृथक है। विश्व व्यापार संगठन विकासशील राष्ट्रो के साथ लचीला व उदार दृष्टिकोण रखती है और उनके पक्ष की नीतियों का अनुसरण करती है। विकासशील व विकसित राष्ट्रों के लिए दोहा मिनिस्ट्राइल प्रपत्र में विश्व व्यापार संगठन द्वारा बहुत सारे मुद्दो पर प्रतिबद्धता दी गयी। इसमे बहुपक्षीय व्यापार समझौता अर्धविकसित राष्ट्रो की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इसमे विश्व व्यापार संगठन ने विकासशील राष्ट्रो के वस्तुओं व सेवाओं हेतु शुल्क व कोटा मुक्त व्यापार क्षेत्रों को उपलब्ध करवाया।

3. लगभग डबल्यूटीओ के दो तिहाई सदस्य विकासशील देश है। विश्व व्यापार संगठन विकासशील देशों के लिए विशेष प्रावधानों बनाये है।व्यापार और विकास की समिति एक मुख्य

इकाई है जो व्यापार, ऋण, तथा तकनीकी हस्तांतरण जैसे मुद्दो पर विशेष ध्यान देती है। विश्व व्यापार संगठन का सचिवालय विकासशील देशों को तकनीकी सहायता व प्रक्षिशण प्रदान करता है।

4. विश्व व्यापार संगठन के समझौते विकासशील देशों के लिए विशेष उदारता व व्यवहार का पालन करता है। इन सब व्यवहार के चलते विश्व व्यापार संगठन को विकासशील राष्ट्रो के प्रति अधिक वरीयता देने वाला संगठन बन जाता है। विश्व व्यापार संगठन के उपकरण जो उसे विकासशील देशों के प्रति अधिक विशेष व्यवहार का बनाते है, इस प्रकार है: विकासशील देशों को उनके लक्ष्यो तथा मुद्दो को पूरा करने के लिए अधिक समय दिया जाता है व्यापार के अवसर विकासशील देशों के लिए बढ़ाना जिससे वो बाज़ार जैसे कपड़ा, सेवाओ,की खोज कर सके। तथा तकनीकी बाध्यताओ को कम किया जा सके। विकासशील देशों के शिशु उद्योगों की रक्षा के लिए विश्व व्यापार संगठन ने सेफगार्ड यानि कि एंटी-डम्पिंग तकनीकी बाधाये इत्यादि को लागू करना, विकासशील देशों की मदद करना जैसे उनके लिए पशु और पादप के स्वास्थ्य से जुड़े मानक , तकनीकी मानक, तैयार करना और घरेलू संचार क्षेत्र को संगठित व सशक्त बनाने का कार्य भी विश्व व्यापार संगठन करता है।

33.4.1 कानूनी सहायता : सचिवालय सेवा

विश्व व्यापार संगठन की विकासशील देशों की मदद के लिए एक विशेष कानूनी सलाहकार नियुक्त करता है जो कि विकासशील देशों में विश्व व्यापार संगठन से जुड़े विवादो और कानूनी सलाह के लिए सुझाव देता है। यह सेवा विश्व व्यापार संगठन के विशेष प्रक्षिशण तथा तकनीकी सहायता केंद्र द्वारा दी जाती है। विकासशील देश उसका कभी भी प्रयोग कर सकते है।

सन 2001 में, 32 विश्व व्यापार संगठन से जुड़ी सरकारी व्यवस्था ने एक सलाह केंद्र की स्थापना की जो कि विश्व व्यापार संगठन नियमो पर आधारित था। समस्त अल्प विकसित देश स्वत: ही सलाह के योग्य है।अन्य विकासशील देशों को इसकी सदस्यता व कानूनी सलाह के लिए शुल्क देना होता है।

33.4.2 अल्प विकसित देश: विशेष केंद्र का बिन्दु

अल्प विकसित राष्ट्र विश्व व्यापार संगठन के मुखी ध्यान का विषय है। विश्व व्यापार संगठन के सभी समझौते लाभ प्रदान करने वाले होने चाहिए चाहे जितना संभव उसमे लचीलापन लाया जाए और ये अल्प विकसित देश पहले से बेहतर हो सके जब वे निर्यात करे तथा आयात के प्रशुल्क कम कर सके।जब से उरुग्वे दौर के समझौते पर हस्ताक्षर हुए है, कई निर्णय अल्प विकसित देशों के पक्ष में लिए गए है। सिंगापुर के सम्मेलन में 1996 में,विश्व व्यापार संगठन के मंत्री अल्प विकसित देशों की योजना के कार्य पर सहमत हुए थे। इसमे तकनीकी सहायता के माध्यम से उनको बहुपक्षीय व्यापार समझौते में भाग लेने के लिए उनको समर्थ बनाया जाता है और विकसित देशों के बाज़ारो में अल्प विकसित देशों के उत्पादो के लिए बाज़ार की खोज व निर्माण का कार्य किया जाता है। एक वर्ष पश्चात, 1997 में , 6 अंतर्राष्ट्रीय संस्थाए – IMF, इंटरनेशनल ट्रेड सेंन्टर, दी यूनाइटेड नेशन्स कॉन्फ्रेंस फॉर ट्रेड अँड डेव्लपमेंट, दी यूनाइटेड नेशन्स डेव्लपमेंट प्रोग्राम, वर्ल्ड बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन –ने मिलकर एक एकीकृत ढांचे का निर्माण किया जो कि एक संयुक्त तकनीकी सहायता कार्यक्रम को अल्प विकसित राष्ट्रो की सहायता के उद्देश्य से निर्मित किया गया। वर्ष 2002 में,विश्व व्यापार संगठन ने एक कार्यक्रम अल्प विकसित देशों के लिए तैयार किया। जिसमे कई व्यापक मुद्दे थे- बाज़ारो का विकास, ज्यादा तकनीकी सहायता, उन संस्थाओ की मदद करना जो अल्प-विकसित देशों के विविधिकरण पर कार्य कर रही है। इन अल्प विकसित देशों के लिए

विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता लेने की प्रक्रिया की गति को तेज व सरलीकृत करना। विश्व व्यापार संगठन के हैड्क्वार्टर जेनेवा में स्विस सरकार ने एक कार्यालय अल्प विकसित देशों के लिए भी सुरक्शित किया गया है ताकि इन देशों की सदस्यता को सुनिश्चित किया जा सके। इतना ही नहीं विश्व व्यापार संगठन अल्प विकसित देशों के अधिकारियों को वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है ताकि वे मंत्रीगण सम्मेलन मे भाग ले सके।

33.4.3 समितियाँ

विकासशील देशों के लिए काम करने के लिए विश्व व्यापार संगठन ने खुद को दो व्यापक भागो में बांटा है : (i)विश्व व्यापार संगठन की समितियों का कार्य (ii) सरकारी अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण विश्व व्यापार संगठन सचिवालय द्वारा

33.4.3.1 व्यापार एवं विकास समिति

विश्व व्यापार संगठन की समिति व्यापार और विकास पर बहुत व्यापक तौर पर काम कर रही है। व्यापक उद्देश्यों में इसने प्राथमिकताओ जैसे विकासशील देशों के पक्ष की नीतीयां कैसे लागू हो, तकनीकी सहायता का मार्गदर्शन, विकासशील देशों का व्यापार में हिस्सा बढ़ाना और अल्प विकसित देशों की स्थिति में सुधार लाना।

सदस्य देश को विश्व व्यापार संगठन द्वारा विशेष कार्यक्रमों के लिए सूचित किया जाता है कि ताकि विकासशील देशों के लिए व्यापार में छुट मिल सके । व्यापार और विकास समिति निम्न कार्य करती है:

1. वरीयता व्यापार कार्यक्रमों का सामान्यीकरण व्यवस्था जिसमे विकसित देश विकासशील देशों के लिए व्यापार की बाधाए व प्रशुल्क कम करते है।
2. विकासशील देशों के बीच वरीयता व्यापार व्यवस्था जैसे मेर्कोसुर, कोमेसा व आफ़टा इत्यादि।

33.4.3.2 अल्प विकसित देशो पर उप-समितिया

ये उप समितीया अपनी रिपोर्ट व्यापार व विकास समिति को देते है। लेकिन ये एक महत्वपूर्ण शाखा है , इसका भी अपना कार्य है जो निम्न प्रकार है:

- ये अल्प विकसित राष्ट्रो को एकीकृत कर बहुपक्षीय व्यापार से जोड़ने का प्रयास करता है।
- तकनीकी सहायता प्रदान करना

33.4.4 विश्व व्यापार संगठन तकनीकी सहायता

तकनीकी सहायता विश्व व्यापार संगठन की एक सबसे अधिक समर्पित व सहायक शाखा है विकासशील देशों के लिए जिससे की बहुपक्षीय व्यापार समझौता सफलतापूर्वक लागू किया जा सके। इसका उद्देश्य आवश्यक संस्थाओ का निर्माण करना है साथ ही अधिकारियों को प्रशिक्षित करना भी है। इसमे व्यापार नीतियो तथा प्रभावशाली वार्तायें की जाती है।

विश्व व्यापार संगठन कि एकाधिकारी व्यवस्था ने एक बहुत ही अधिक निकट विश्लेषण प्रस्तुत किया है कि विकासशील देशों को तकनीकी सहायता पहुचाने की योजना मूल्य मुक्त नहीं है। जबकि ये एक पूर्ण रूप से राजनीतिक मुद्दा है। जो औद्योगिक देश पूंजी प्रदान करते है और तकनीकी विशेषज्ञ इस प्रक्रिया को चलते है, वे बहुत ही चतुराई से तकनीकी सहायता के शब्द को सुरक्षित रख अपने राजनीतिक मुद्दो को पूरा करते है। विश्व व्यापार संगठन के संदर्भ में, यही औद्योगिक देश, तकनीकी सहायता के वादो को पूरा करने के नाम पर तथा यह कह कर कि विकासशील देशों के मुद्दे उनका प्राथमिक उद्देश्य है, उनको अपनी शर्तो पर व्यापार के लिए राजी कर लेते है।

दूसरा रुचिप्रद विश्लेषण, विश्व व्यापार संगठन के बारे मे निकाल के आया है कि उसने UNDP और अन्य द्विपक्षीय एवं बहू-पक्षीय तकनीकी सहायता देने वालों के पूर्व अनुभवो से कुछ नहीं सीखा।

33.4.5 दोहा मंत्रीगण प्रपत्र

विश्व व्यापार संगठन ने अपने चौथे मंत्रीगण सम्मेलन मे दोहा दौर का आरंभ वर्ष 2001 मे कतर, दोहा से किया। दोहा मंत्रीगण प्रपत्र, 14 नवंबर 2001 मे अपनाया गया जिसके अनुच्छेद 13 मे लिखा था कि सभी सदस्य राष्ट्र बाज़ारो की खोज मे सुधार करेंगे व नए बाज़ारो की पहुँच अन्य सदस्य राष्ट्रो को उपलब्ध करवाएँगे। साथ ही निर्यातों मे दिये जाने वाले अनुदानों तथा व्यापार विरूपण मे घरेलू सहायता को धीरे धीरे कम करना चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि विकासशील देशों को आंतरिक रूप से सभी समझौतो, सिद्धांतो व नियमो मे विशेष छुट दी जाएगी ताकि भारत व चीन जेसे देश अपने आधारभूत आवश्यकताओं जैसे खाद्य सुरक्षा तथा ग्रामीण विकास इत्यादि को पूर्ण कर सके।

33.4.6 प्रशिक्षण, सम्मेलन, प्रगोष्ठीया, तथा कार्यशालाए

विश्व व्यापार संगठन निरंतर व्यापार नीतियो पर प्रशिक्षण सत्रो का आयोजन जेनेवा में करती रहा है। इसके साथ वो 500 तकनीकी सहायक गतिविधियो को हर वर्ष विविध देशों तथा जेनेवा में आयोजित करते है जिसमे प्रगोष्ठी और कार्यशाला भी शामिल है। विकासशील देशों को उद्देश्य बनाकर ये बदलाव लाने का प्रयास करते है और विशेषकर अफ्रीकन देशों में। ऐसी प्रगोष्ठियाँ एशिया,लेटिन अमेरिका, करिब्बेयन, मिडिल ईस्ट और पैसिफिक में भी आयोजित की जाती है। इन संगोष्ठियों के लिए तकनीकी सहायता तथा प्रशिक्षण तीन स्त्रोतों से आती है : विश्व व्यापार संगठन के निरंतर बजट,विश्व व्यापार संगठन के सदस्यो द्वारा दिया गया कोष, और देशों द्वारा या अंतरराष्ट्रीय संगठनो द्वारा इवैंट का आयोजन करना। विश्व व्यापार संगठन का वर्तमान बजट तकनीकी सहायता और प्रशिक्षण के लिए 7 मिलियन स्विस फ़्रांक है। सदस्य देशों द्वारा भी कई बार इस कोष में अपना योगदान देते है। वर्ष 2004 में यह कोष 7 मिलियन स्विस फ़्रांक था। 1997

में विश्व व्यापार संगठन रिफ्रेन्स सेंटर प्रोग्राम की शुरुआत की गयी थी, इस उद्देश्य के साथ कि अल्प विकसित और विकासशील देशों के लिए एक कम्प्युटर सूचना केंद्र के नेटवर्क का निर्माण किया जाएगा। यह केंद्र विश्व व्यापार संगठन की सूचना और डॉकयुमेंट को एक पुस्तकालय, सीडी, डेटाबेस और इंटरनेट के माध्यम से उपलब्ध करवाएगा। यह सेंटर हैड्क्वार्टर में रहेगा और इनकी संख्या 140 है। उरुग्वे दौर में उत्तर दक्षिण की राजनीति का एक परिवर्तन गैट और डबल्यूटीओ की व्यवस्था में देखा। गया। पहले विकासशील और विकसित देश दो अलग और विरोधी समूह थे। जैसे ही उरुग्वे दौर आया दोनों समूह एक दूसरे के लिए कम विरोधी हुए और इस दौर के दोरान इन मुद्दो पर आधारित एक नए संघो का विकास हुआ। और तब से यह प्रवर्ति चलती आ रही है। कुछ मुद्दो में, ये दोनों समूह पूर्णत: अलग दिखते है जैसे कपड़ा व्यापार, और कुछ ऐसे संघ जिन्होंने आपस में अफ्रीकन समूह तथा अल्प विकसित देशों के समूह का निर्माण कर लिया है।कई ऐसे मुद्दे है जहा इन देशों के हित एक समान नहीं है और ऐसे में वो एक दूसरे के विरोधी रहते है। और इसी कारण विकासशील देशों ने आपस में एक अलग समूह बनाकर एक अलग ताकत के रूप में उभर कर आया है। और ये अंतर कृषि के मुद्दो पर विकासशील देशों में नज़र आता है।

33.4.7 कृषि

कृषि समझौता विकासशील देशों के किसानो के लिए हानिप्रद होगा । यह खाद्य सुरक्षा की उन्नति और आत्मनिर्भरता के लिए दी हुई सब्सिडियों तथा कृषि उत्पादो के निर्यातों में वृद्धि के लिए सब्सिडी में कोई भेद नहीं करता, क्योंकि यह विकासशील देशों के उत्पाद के मूल्य के 105 प्रतिशत तक की ही सब्सिडी को स्वीकृति देता है। अतएव उन देशों की सरकारो के लिए विशेष कृषि वस्तुओ में कीमत सहायता देना लगभग असंभव हो जाएगा। यही बात निवेश सब्सिडियों के लिए भी है जो केवल अल्प आय वाले किसानो तक ही सीमित है। इस प्रकार

किसानो के कुल आगतों जैसे इर्धन, बिजली, खाद, माल की ढुलाई, बीज आदि पर तथा उपभोक्ताओ के जन वितरण इत्यादि के रूप में सब्सिडिया समाप्त ही करनी पड़ेगी। सब्सिडियों में कटौती और बिलकुल हटाने के साथ साथ यदि विवेकी कीमत नीति नहीं अपनायी गयी तो विकासशील देशों के किसानो की अपार क्षति होगी। फिर, मुक्त मार्केट प्रवेश और आयात की समस्त रूकावटों को हटाने से भी कृषक वर्ग को हानि पहुचेगी। कृषि उत्पादो के सस्ते निर्यात से किसानो का उत्पादन ठप्प पद जाएगा। कृषि उत्पादो का अंतर्राष्ट्रीय मार्केट कीमत निर्धारण प्रतियोगिताओ द्वारा नहीं किया जाता, वरन उन्नत देशों के उन निगमो द्वारा किया जाता है जो उन वस्तुओ को खरीदते और बेचते है। इसके फलस्वरूप विदेशी ऋण में वृद्धि होगी और भुगतान शेष की स्थिति और भी बिगड़ जाएगी। इस समझौते में विकासशील देशों के कृषि उत्पादो पर स्वास्थ्य और वनस्पति स्वास्थ्य क्रियाओ के प्रयोग का भी प्रावधान है। यह अंतर्राष्ट्रीय संगठनो द्वारा स्थापित नियमो पर आधारित होंगे जो संगठन किसी प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के अधीन नहीं होते है। ऐसा संगठन विकसित देशों के उत्पादो को सुरक्षित और विकासशील देशों के उत्पादो को असुरक्षित घोषित कर सकती है। इनके बावजूद इस समझौते से विकासशील देशों में अपनी बढ़ती हुई घरेलू मांग की पूर्ति के पश्चात भी निर्यात अतिरेक की वृद्धि द्वारा अधिक लाभ होने की संभावना है। इनको अनाज, रुई आदि की ऊंची कीमतों के द्वारा तथा उद्यान-कृषि, पुष्प-कृषि, डेरी उत्पादन, और अन्य कार्यो के विविधिकरण द्वारा, जो कृषि उत्पादो की की टैरिफ सीमा वृद्धि 100% तक होने से संभव होगा, को भी लाभ होने की संभावना है। फिर, विकसित देशों में कृषि के ऊपर उन सब्सिडियों की कटौती के कारण विकासशील देशों का निर्यात अधिक लाभकारी हो सकता है।

33.4.8 कपड़ा और वस्त्र

संक्रमण काल में इस समझौते से अधिकतर विकासशील देशों को लाभ होगा। परंतु इन लाभों में विलंब होने की संभावना है क्योंकि MFA की विलिनीकरण प्रक्रिया में दो कारणो से देर हो सकती है। प्रथम, जब कोई विकसित देश कुछ प्रकार का कपड़ा, और वस्त्र MFA से अलग करता है, यह अभेदात्मक MFN के आधार पर सभी निर्यातक देशों पर लागू हो जाएगा। द्वितीय, 10 वर्ष में समाप्तिकाल के अंतिम दिन सब उत्पादो का केवल 40% ही गैट में सम्मिलित होगा। यह समाप्तिकाल बहुत लंबा है, और डबल्यूटीओ पर इस संक्रमण काल को बढ़ाने का दबाव डाला जा सकता है। फिर, उत्पाद-आवरण के लिए विलिनीकरण इतना विस्तृत है कि वह सब कपड़ा और वस्त्र के पदार्थ जो कोटा-प्रणाली के अंतर्गत नहीं है, इसमे आ जाते है। इस प्रकार कोटा पदार्थो का 10 वर्ष के विलिनीकरण के काल के अंत तक नाम मात्र का विलिनीकरण होगा । यह समझौता छोटे वितरको और रुई उत्पादक निर्यातकारी विकासशील देशों को लाभकारी होगा।

33.4.9 ट्रिम्स

TRIMs का समझौता शक्तिहीन है । समझौते के अनुच्छेद IV के अनुसार उन्नतिशील देश इन प्रावधानों से अस्थायी रूप से हट सकते हैं। इस विचलन की मात्रा और प्रणाली अनुबंधित देशों की इसकी व्याख्या पर निर्भर है, इस पलायन धारा के अंतर्गत विदेशी कंपनियो के नियंत्रण और उनके व्यापार संतुलन उपायो के नियमन के अधिकार किसी प्रकार से कम नहीं किए गए है, यदि प्रतिकूल भुगतान शेष जैसे ठोस कारण हो। इन सुरक्षाओ के अतिरिक्त TRIMs समझौता विदेशी निवेश का नियंत्रण भी हटाएगा। यद्यपि प्रत्यक्ष निवेश का नाम नहीं लिया गया है, तथापि आशंका है की MNCs विकासशील देशों में उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रो पर नियंत्रण करने की चेष्टा करेंगे। TRIMs वह है जो विदेशी स्वामित्व वाले उद्यमों पर पक्षपाती ढंग से लगाए जाते है, जबकि वही

शर्ते घरेलू उद्यमों पर लागू नहीं। समझौता पक्षपातपूर्ण आयात रुकावटों का भी वर्णन करता है। कुल मिलाकर TRIMs समझौते से राष्ट्रीय सरकारो की निर्णयात्मक शक्ति कम हो गयी है। उदाहरणस्वरूप, वे घरेलू विनिर्माण में देशी अंशो का विवरण नहीं बता सकती और न ही अपनी निर्यातित वस्तुओ में आगतों की प्रतिशतता सीमित कर सकती है, ये किसी विशेष वस्तु के निर्यात।

33.4.10 गैट नियमावली

मात्रात्मक रुकावटों के विलिनीकरण और अधिमान संबंधी गैट नियम 1994 अस्पष्ट है। अपनी भुगतान शेष संबंधी कठिनाइयों को दूर करने के लिए QRs का प्रयोग विकासशील देशों के लिए अ-प्रभावकारी बना दिया गया है क्योंकि इसे केवल न्यूनतम विकसित देशों के लिए सीमित कर दिया गया है। QRs को समाप्त कर कीमत आधारित उपाय लागू किए गए। केवल अविकसित देश ही QRs को लागू कर सकेंगे, परंतु यह रूप अस्थायी रहेगा। परंतु विकासशील देशों को भिन्न वस्तुओ पर भिन्न ड्यूटी दरे लगाने का अधिकार होगा जिससे वे अनावश्यक वस्तुओ के बहुत अधिक आयात को निरुत्साहित कर सके। इससे उन्नतिशील देशों को संभव होगा कि वे आवश्यक वस्तुओ और पूंजीगत माल के आयात को प्रोत्साहित और अनावश्यक वस्तुओ के आयात को निरुत्साहित कर सके। टैरिफ अधिमान विश्व प्रणाली के अंतर्गत एक विकसित देश दूसरे देशों को टैरिफ अधिमान दे सकता है। इसी प्रकार सामान्यीकृत अधिमान प्रणाली के अंतर्गत एक विकसित देश किसी विकासशील देश को टैरिफ अधिमान दे सकता है। यह टैरिफ कटौतियाँ उन टैरिफ अधिमानों के अतिरिक्त होंगी जो विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत MFN देशों को दी गयी है। फलस्वरूप, विकासशील देशों में साधारणत: कुछ क्षेत्रो में अधिमान सीमाएं पूर्णरूपेण समाप्त हो जाएगी। इससे अफ्रीका, करीबियन तथा प्रशांत महासागर के कटिबंधीय देशों में निर्यातों में 51% तक गिरावट आई। उरुग्वे दौर में विकासशील देशों ने स्वयं को

वचनबद्ध कर लिया था कि वे अपने औद्योगिक टैरिफ को 72% तथा कृषि उत्पादो को 100% तक बंधित कर लेंगे। सब्सिडी समझौते द्वारा विकासशील देश वचनबद्ध है कि वे उन सब्सिडियो को समाप्त कर देंगे जो निर्यात कीमतों पर प्रभावी है। प्रति-राशिपातन के गैट के नियम राष्ट्रीय सरकारो के विवेक को इतना स्वछंद बनाते है कि बहुत ही कम कार्य उनको वास्तव में इन नियमो के उल्लंघन का दोषी ठहरा सकेंगे।विकासशील देशों के लिए गैट तकनीकी रुकावटे, जैसे पर्यावरण, स्वास्थ्य, सफाई आदि गैट-टैरिफ रुकावटों के रूप में कार्य करते है।

33.4.11 गेट्स

गेट्स विकासशील देशों के हितो के विरुद्ध जाता है। यह उन ही सेवाओ के उदारीकरण पर ज़ोर देता है जिनमे विकसित देशों को निश्चित लाभ है, जैसे आर्थिक, जलपोत संबंधी, परिवहन और संचार सेवाएँ, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय, और मीडिया सेवाएँ। सेवाओं के व्यापार में उदारीकरण द्वारा विकसित देशों का मुख्य ध्येय विकासशील देशों के उत्पादन और सेवाओ के प्रयोग पर नियंत्रण की चेष्टा करना ही है। विकासशील देशों के सेवा क्षेत्र को विकसित देशों की फ़र्मों के विशाल संसाधनो की प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा। कुछ विकासशील देशों के पास कुशल और अकुशल कर्मियों का तुलनात्मक लाभ अधिक है, परंतु उनके स्वतंत्र आवागमन के विरुद्ध विकसित देशों ने कठोर अप्रवासिक कानून बना रखे है। सेवा क्षेत्र के इस पहलू पर कोई सुझाव नहीं दिया गया क्योंकि चयनात्मक बुद्धिजीवी पलायन से विकसित देशों को ही लाभ होता है।

33.4.12 ट्रिप्स

ट्रिप्स समझौता विशेषत: पक्षपातपूर्ण है। यह औषधियो, कृषि, पौधे, और पशु संबंधी पैटंट प्रणाली के अंतर्गत प्रभावी क्षेत्र का विस्तार करेगा। क्योंकि विकसित देशों और उनकी बहुद्देशीय कंपनियो के पास अनुसंधान और विकास के असीम साधन है, इसीलिए उन्हे निवेश करने

और प्रक्रियाओ तथा वस्तुओ के पैटंट करने की अधिक सुविधा होगी। ऐसी सब स्थितियो में विकासशील देशों को रॉयल्टी देनी पड़ेगी। ऐसे सब पदार्थ विशेषतया औषधियो तथा मशीनों की कीमते बढ़ जाएंगी। और उपभोक्ता पर अधिक भार पड़ेगा। विकासशील देशों में पैटंट किए हुए काच्चे माल और पदार्थो का अधिक आयात होगा, और निर्यात को आघात पहुचेगा। परिणामस्वरूप भुगतान शेष बिगड़ेगा।

भारत की भांति बहुत से विकासशील देश औषधि, कृषि उत्पाद रसायन आदि क्षेत्रो में अनुसंधान व विकास कार्यो में लगे हुए है। यह सब मृत प्राय हो जाएगा क्योंकि आगामी 10 वर्षो में समाप्ति काल के पश्चात पैटंट कानूनों में परिवर्तन होगा।

ट्रिप्स समझौते की स्वीकृति से विकासशील देशों के पैटंट कानूनों में परिवर्तन से बुद्दिजीवी पलायन में भारी वृद्धि होगी जो इन देशों के लिए बहुत हानिकारक होगा।

पैटंट अधिकारो की अवधि का 20 वर्ष के लिए बढ़ना विकासशील देशों के लिए और हानिकारक है। केवल विकसित देशों में ही पैटंट की अवधि 20 वर्ष है। बेशक, विकासशील देशों को अपने मौजूदा कानूनों को बदलने के लिए 10 वर्ष का समय दिया जाएगा, लेकिन ट्रिप्स समझौता इस रियायत को भी अपने क्लासिक पाइपलाइन सुरक्षा द्वारा चीन लेता है। इस धारा के अनुसार सम्बद्ध अधिकारी औषधियो और कृषि पदार्थो के पैटंट प्रार्थना पत्र 1 जनवरी 1995 के बाद से ही स्वीकार करेंगे चाहे राष्ट्रीय कानूनों में वस्तु पटेंटों की स्वीकृति का प्रावधान हो या नहीं। उदाहरणार्थ, औषधियो के संबंध में पैटंट प्रार्थना पत्र देने से उसके मार्केट प्रवेश तक 10 वर्ष तक का समय लगता है। अत: ऐसी वस्तु पर पैटंट सुरक्षा की आवश्यकता 2005 के आगे से ही मानी जाएगी। समझौते का यह भी प्रावधान है कि उस प्रार्थी को दूसरे देश में एक मात्र मार्केटिंग अधिकार अधिकाधिक 5 वर्ष के लिए होगा। पैटंट स्वीकृति के बिना भी ऐसे नवप्रवर्तन संबंधी सूचना गोपनीय राखी जाएगी। यह

प्रावधान विकासशील देशों के हितो के विरुद्ध है, क्योंकि यह एक पटेंटधारी को अधिकार देता है कि वह इस पैटंट वस्तु अथवा प्रक्रिया के निर्यात मार्केट में उपयोग पर रोक लगावे। इस प्रकार पैटंट की हुई प्रोद्योगिकी MNC द्वारा किसी विकासशील देश के घरेलू बाज़ार में प्रयुक्त की जा सकती है। जिससे उन देशों के बाज़ारो का शोषण होगा।

पैटंट के कार्यान्वयन के लिए पटेंटधारी को स्वतन्त्रता होगी किवह वस्तु को निर्यात करे, न की उसकी उत्पादन इकाई को दूसरे देशों में लगाए। विकसित देशों और उनकी MNC पर कोई बंधन नहीं होगा कि वह विकासशील देशों को अपनी प्रोधोगिकियोको उनकी कार्य संचालन की आवश्यकतापूर्ति के लिए स्थानांतरित करे। बल्कि उन देशों का उपयोग उनकी वस्तुओ के मार्केट के रूप में किया जाएगा।

"प्रमाण के दायित्व का व्युत्क्रम " वाली धारा तो न्याय के कानूनों के सर्वथा विरुद्ध है। इसके अनुसार नयी वस्तुओ और प्रक्रियाओ के उत्पादको का उतरदायित्व होगा कि वे अपने पैटंट अधिकारो के अनतिक्रमण को सिद्ध करे। अतएव ये पटेंट्धारी को अपनी प्रक्रिया और वस्तु पैटंट के अतिक्रमण को सिद्ध करने से मुक्ति देता है।

ट्रिप्स नियम स्वविरोधाभासी भी है। वे किसी विशिष्ट प्रणाली का प्रावधान नहीं देते जिससे सतत विकास और पर्यावरण के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। ट्रिप्स समझौता स्पष्ट नहीं करता कि सदस्य पैटंट सुरक्षा स्वीकृत करते समय पर्यावरणीय हानिकर तकनीकों के वाणिज्यिक प्रतिबंध लगा सकते है। डॉ दीपक नय्यर के अनुसार, यदि नव प्रवर्तन को छोड़ भी दे, तो भी विकासशील देशों के लिए ट्रिप्स समझौते के प्रोद्योगिकियों के समावेशन, प्रसारण, और अनुकूलन के आशय दूरगामी है। अतिआवश्यक तकनीके अब सुलभ लागतो पर उपलब्ध नहीं हो सकेगी।MNC द्वारा प्रतिबंधित व्यावसायिक प्रभावों में वृद्धि होगी। ट्रिप्स सामझौते के आशय से अनुमान लगता है कि बौद्धिक संपत्ति

अधिकारो के सरक्षण की उमड़ रही अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली विकासशील देशों के लिए अन्यायसंगत और प्रतिकूल होगी।

33.4.13 झगड़ा-निपटान

विश्व व्यापार संगठन की झगड़ा निपटान प्रणाली के द्वारा सदस्य देश की आंतरिक नीतियो से संबन्धित समस्याओ पर निर्णय लिया जाता है। परंतु इससे देशों की प्रभुसत्ता पर धमकी का भय उत्पन्न होता है। उदाहरणस्वरूप, झगड़े की दशा में यदि विश्व व्यापार संगठन मंत्रालय से एक नामावली मनोनीत करने की प्रार्थना की जाती है तो विश्व व्यापार संगठन मंत्रालय को नामावली मनोनीत करने का पूर्ण अधिकार है। संबंध सदस्य इस मनोनय को अस्वीकार नहीं कर सकते। अतएव इसके निर्णय से संबन्धित कोई भी सदस्य इस पर आपत्ति नहीं उठा सकते। इसका अर्थ है प्रभुत्वधिकारों में हस्तक्षेप। ऐसे में शक्तिशाली विकसित देश झगड़ा निपटान प्रक्रिया के ढोंग से उल्टा प्रतिशोधात्मक उपाय अपना सकते है जो विकासशील देशों के लिए अहितकर हो सकते है।

33.5 भारत और विश्व व्यापार संगठन

भारत विश्व व्यापार संगठन का संस्थापक सदस्य देश है तथा विकासशील देशों के समूह को प्रस्तुत करता है, इसलिए कुछ प्रमुख समझौते जो कि भारत द्वाराहस्ताक्षरित किए गए है उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से हैं-

33.5.1 टैरिफ एवं नान टैरिफ अवरोधों में कमी–

इस समझौते के अन्तर्गत विनिर्माण वस्तुओं के संदर्भ में ऊँची टैरिफ दरोंको समयबद्ध तरीके से कम किया जाए तथा परिणामात्मक प्रतिबंधों को हटा लिया जाए, जिससे दीर्घकाल में प्रतियोगी वातावरण विश्व व्यापार में स्थापित हो सके।

33.33.2 व्यापार संबंध निवेश उपाय -

इस समझौते के अनुसार मेजबान देश को विदेशी निवेश एवं घरेलू निवेश की विभेदात्मक नीतियों को दूर करना चाहिए। अर्थात सभी देशों के मध्य मुक्त विदेशी निवेश नीतियों का पालन होना चाहिए।

33.33.3 व्यापार संबध में बौद्दिक संपदा अधिकार (TRIPS)

उरूग्वे दौर में विकसित देशों ने इन अधिकारों के संरक्षण के लिए कई कड़ी शर्तों को विकासशील देशों पर थोपा है। इसका उद्देश्य विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लाभ पहुँचाना है। भारत के 1970 पेटेंट एक्ट के अधीन औषधियों पर केवल प्रक्रिया पेटेंट लेने की जरूरत होती थी, अर्थात किसी भी भारतीय कम्पनी के लिए केवल इतना काफी था कि वह कोई औषधि बनाने की अपनी प्रक्रिया या रीति विकसित करे और फिर उस पर पेंटट ले ले। औषधियों का उत्पादन वही कंपनियाँ कर पाएंगी जिन्हें उनका उत्पाद पेटेंट प्राप्त हो, क्योंकि उत्पाद पेटेंट अधिकार विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास हैं इसलिए इसका अर्थ यह है कि यही कम्पनियाँ उत्पाद पेटेंट वाली औषधियों का उत्पादन कर सकेगी फलस्वरूप इससे भारतीय औषधि उत्पादक इकाईयों को गहरा झटका लगेगा तथा बहुत सी महत्त्वपूर्ण दवाईयों की कीमते बढ़जाएगीं और गरीब व्यक्तियों की पहुँच से औषधियाँ बाहर हो जाएगी, जिससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। एक सर्वे के अनुसार औषधियों में उत्पाद पेटेंट के लागू होने से भारत को प्रतिवर्ष 14 मिलियन डालर से 42 मिलियन डालर के बीच कल्याण हो सकता है।

33.5.4 कृषि पर समझौता (Agreement on Agriculture)

इस समझौते के अन्तर्गत सभी सदस्य देशों को बाजार पहुँच, निर्यात सहायता, सरकारी सहायता को कृषि वस्तुओं के संदर्भ में कम करना होगा ताकि विश्व व्यापार मुक्त एवं प्रतियोगी वातावरण में आगे बढ़ सके, जिसके फलस्वरूप भारतीय कृषि वस्तुओं को विदेशी बाजार प्राप्त हो सके एवं वस्तुओं की गुणवत्ता बढ़ सके।

33.5.5 बहु फाईबर समझौता (Multi-Fiber Agreement) -विश्व व्यापार संगठन के विशेषज्ञों का मानना है कि जनवरी 1,2005 में बहु-फाईबर समझौते के समाप्त होने से विकासशील देशों को बहुत लाभ मिलेगा, क्योंकि भारत कपड़ों का काफी निर्यात करता हैं, इसलिए समझौते के समाप्त होने से उसे विकसित देशों का एक बड़ा बाजार मिल जायेगा, परन्तु भारत को विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धा का सामना करना होगा। इसलिए भारत को अन्य देशों जैसे चीन, वियतनाम, पाकिस्तान, बांग्लादेश, इंडोनेशिया, मलेशिया इत्यादि के वस्त्र उद्योगों की तुलना में उत्पाद की किस्म (गुणवत्ता) एवं लागत को प्रतियोगी बनाना होगा। संभवत: कोटा-मुक्त वातावरण में सबसे अधिक लाभ चीन को मिलेगा, क्योंकि वह अपेक्षाकृत अधिक प्रतियोगी (गुणवत्ता एवं कीमत से संदर्भ में)है।

33.5.6 विश्व व्यापार संगठन व भारतीय कृषि: विकासशील देशो के संदर्भ में एक आलोचनात्मक विश्लेषण

उरूग्वे के पुन्टा डेल स्टेट में 1986 में शुरू हुए व्यापार वार्ताओं के चक्र का अंतिम दौर मोरक्को के शहर माराकेश में 1994 तक चला। इन वार्ताओं के बाद 1994 से विश्व व्यापार समझौता कृषि क्षेत्र में लागू हुआ। यह समझौता कृषि क्षेत्र में निवेश और व्यापार के नियमों को वैश्विक स्तर पर संस्थाबद्ध किये जाने का प्रयास था। इसका मुख्य उद्देश्य कृषि क्षेत्र को सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर उत्पाद एवं व्यापार को निजी मालिकाने की ओर ले जाना था। यह सिर्फ व्यापार समझौता न होकर राष्ट्रों की सीमाओं से परे साम्राज्यवादी राजनीति और अर्थनीति के विस्तार का व्यावहारिक रूप भी था। बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से पिछड़े एवं विकासशील राष्ट्रों के बाजारों पर कब्जा करने और प्रभुत्व जमाने का यह कारगार हथियार था। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष जैसी संस्थाओं ने विकसित राष्ट्रों के एजेन्ट के रूप में उनके

छिपे हुए एजेन्डों को लागू करने के लिए राष्ट्रीय सरकारों पर दबाव बनाने का कार्य किया। इस समझौते ने राष्ट्रीय सरकारों की स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमताओं को कमजोर कर उसे नव साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथों की कठपुतली बना दिया।

कृषि क्षेत्र में विश्व व्यापार की शुरूआत इन तर्कों के साथ हुई कि अक्षम प्रतियोगियों की आर्थिक सहायता बंद कर दीजायेगी। सरकारों द्वारा नियंत्रित सुरक्षित अन्न भंडारों को समाप्त कर दिया जायेगा तथा सीमा शुल्क हटा लिया जायेगा। इससे विश्व व्यापार उस दिशा की ओर मुड़ जायेगा, जहाँ माँग अधिक होगी। किसानों को विनियमित बाजारों से लाभहोगा और उनके उत्पादों का बेहतर मूल्य मिलेगा। बाजार की स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के कारण उपभोक्ताओं को भी सस्ते मूल्य पर खाद्य सामग्रियाँ प्राप्त होंगी। विकासशील देशों को यह भी विश्वास दिलाया गया कि विकसित राष्ट्र कृषि पर दी जाने वाली सहायता को नियंत्रित करेंगे, जिससे विकासशील देशों के कृषि उत्पादों को विकसित राष्ट्रों के बाजारों में प्रवेश मिलेगा।लेकिन वास्तविकता यह है कि विकसित देशों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से अपने किसानों को आर्थिक सहायता जारी रखी तथा विश्व व्यापार में बहुराष्ट्रीय निगमों को उतार कर समान प्रतियोगिता के सिद्धांत को तिलांजली दे दी। अमीर देशों ने विकासशील देशों को अपना बाजार उपलब्ध कराने की जगह उनके बाजारों पर कब्जा कर लिया।

कृषि क्षेत्र में विश्व व्यापार के लाभोंका जो सब्जबाग दिखाया गया उससे हमारे देश का बौद्धिक वर्ग भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। सी.एच. हनुमंत राव और अशोक गुलाटी जैसे अर्थशास्त्री नेई.पी.डब्ल्यू (31 दिसम्बर 1994) में लेख लिखकर भारतीय कृषि को विश्व व्यापार से एकीकृत किये जाने की जोरदार वकालत की। उनका तर्क था कि खाद्य आत्मनिर्भरता के दायरे में कृषि का विकास ठहराव ग्रस्त है। अतः हमें डेयरी उत्पादों तथा निर्यात योग्य फलों, फूलों और

सब्जियों के उत्पादन और खाद्य प्रसंस्करण की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिए। इससे कृषि व्यापार को लाभ पहुँचेगा और इसका फायदा रिस-रिस कर समाज के निचले तबकों तक पहुँचेगा। जाहिर है इन अर्थशास्त्रियों के विचार शासक वर्ग के विचारों से मेल खाते थे। अतः हमारी सरकारें इसी मार्ग पर चलीं।

विश्व व्यापार समझौते के तहत हमारे देश के शासक वर्ग ने विकसित देशों के तरह सब्सिडी प्राप्त, उन्नत पूँजीवादी कृषि के समक्ष आरक्षित, उपेक्षित और अविकसित भारतीय कृषि को अचानक असमान प्रतिस्पर्धा में उतार दिया। यहीं से भारतीय कृषि और किसानों की लोकहर्षक त्रासदी शुरू हुई। 1994 में कृषि से सम्बन्धित हुआ मोरक्को समझौता 1 जनवरी 1995 से हमारे देश में लागू कर दिया गया। भारत सरकार ने अमेरिकी दबाव के तहत घुटने टेकते हुए विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के अनुसार 31 दिसम्बर 1999 को मात्रात्मक प्रतिबंध लगाने के अपने अधिकारों को त्याग दिया। अप्रैल 2001से अधिकांश मालों पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हटा लिया गया। इसके साथ ही आयात शुल्क में भारी कटौती की गयी। इन नीतियों के कारण निर्यात कीअपेक्षा आयात की मात्रा में इजाफा हुआ जो भारतीय कृषि और व्यापार के लिए नुकसानदेह साबित हुआ। मात्रात्मक प्रतिबन्ध और आयात शुल्क घटाने का भारतीय कृषि पर पड़े दुष्प्रभाव को हम खाद्य तेलों के आयात के संदर्भ में देख सकते हैं। कृषि क्षेत्र में विश्व व्यापार समझौता लागू होने के पूर्व सन् 1993-94 में हम खाद्य तेलों में आत्मनिर्भरता के करीब थे। लेकिन 1995 में इन नीतियों को लागू होने के बाद सबसे ज्यादा खाद्य तेलों का बाजार खोला गया। मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाये जाने और आयात शुल्क में कटौती के कारण बड़े पैमाने पर विदेशों से सोया और पाम तेलों का आयात किया गया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि खाद्य तेलों के संदर्भ में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य से आज हम काफी दूर हैं। आज हम अपनी खाद्य तेल की जरूरतों का

लगभग आधा हिस्सा आयात करते हैं। मात्रात्मक प्रतिबन्ध वह सुरक्षात्मक हथियार है जिससे किसीदेश की सरकार अपनी जरूरतों के अनुसार मालों का नियंत्रित आयात करती है।साथ ही गैर जरूरी आयातों को प्रतिबंधित करती है, जिससे देश के भीतर की कीमतों के घटाव या बढ़ाव को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। आयात शुल्क वह उपाय है जिससे विदेशी वस्तुओं पर शुल्क लगाकार उसे मँहगा किया जाता हैताकि उससे प्रतिस्पर्धा में देशी उत्पादोंको सुरक्षा प्रदान किया जा सके।

हमारे देश में कृषि को संरक्षण दिये जाने वाली प्रक्रियाओं को समाप्त किये जाने तथा आयात -निर्यात पर प्रतिबंध हटा लिये जाने से हमारे किसान और उपभोक्ता दोनों उतार-चढ़ाव भरे विश्व बाजार के भँवर की चपेट में आ गये। विश्व व्यापार समझौतों के तहत सरकारी खरीद तथा समर्थन मूल्य को कम कर दिये जाने से किसान बेबस और लाचार हो गये। दूसरी ओरविकसित राष्ट्रों ने तरह-तरह के बहाने बनाकर अपने किसानों को भारी सहायता जारी रखी। अतः उनके किसानों की व्यक्तिगत उत्पादन लागत कम हुई और बाजारोंमें कम कीमत पर अपने उत्पादों को बेचकर भी वे मुनाफे में रहे। हमारे किसान अपनी अत्यधिक लागत और कम बाजार भाव के कारण ऋणग्रस्त होकर आत्महत्या करनेको मजबूर हुए। विश्व व्यापार समझौतों के तहत यह प्रावधान भी है कि हर देश अपने कुल घरेलू उपभोग का 2 प्रतिशत अनाज विश्व बाजार से खरीदेगा। विपरीत परिस्थितियों के कारण हमारे किसानों को प्रतिस्पर्धी विश्व बाजार में तो प्रवेश नहीं ही मिला, वे अपने घरेलू बाजार के 2 प्रतिशत हिस्से से भी वंचित रह गये। यही वह मूल कारण है, जिससे खेती में निरंतर घाटा सहते हमारे किसानखेती छोड़कर दिहाड़ी मजदूर बनने और शहर दर शहर विस्थापित होकर भटकने को मजबूर हुए। विश्व व्यापार समझौतों से

प्रभावित सन् 2000 तक पूरी दुनिया के लगभग 3 करोड़ किसान अपनी जमीनों से हाथ धो बैठे।

विकासशील देशों के नजरिये से देखे जाने पर कुछ विश्लेषकों ने विश्व व्यापार समझौतों को 'धोखाधड़ी की नायाब मिसाल' कहा है। यह गलत दिशा में किया गया व्यापार का उदारीकरण था। यह समझौता पश्चिमी देशों, खासकर यूरोप और अमेरिका के हितों को प्रश्रय देता है। विकासशील देशों की चाय, कॉफ़ी, कोक आदि वस्तुएँ जो आज उनके बाजारों में निर्यात हो रही है, वह समझौतों के पूर्व भी होती थी। इन वस्तुओं का घरेलू उत्पादन उनके यहाँ नहीं के बराबर था। अतः उन्हें कोई नुकसान नहीं हुआ। कुछ विकासशील देशों को तो इन वस्तुओं के व्यापार में विकसित राष्ट्रों द्वारा तरजीहीदर्जा प्राप्त था। इस प्रकार विकासशील देशों को विकसित देशों में कोई नयाबाजार नहीं मिला पर अपने बाजारों को उनके लिए खोलना पड़ा। इन देशों मेंउनके द्वारा ऐसी वस्तुओं का निर्यात किया गया जो उनके मुख्य खाद्यान्न थे। इससे उन देशों में कीमतें गिरी और उत्पादन हतोत्साहित हुआ। उत्पादकों की मुसीबतें बढ़ गयी। सोफिया मर्फी ठीक ही कहती है ''कृषि संबंधी समझौता कृषि के लिए एक खास मॉडल निर्धारित किये हुए है और उस मॉडल को खुद बनवाये हुए नियमों के माध्यम से लागू करवाता है। यह धनी देशों का मॉडल है जो औद्योगिक कृषि को आगे बढ़ाता है और विकासशील देशों की सरकारों से उसी नक्शे कदम परचलने की अपेक्षा करता है। यह उन अरबों किसानों की जरूरतों और हितों की अनदेखी करता है जो धनवानों की उस दुनिया में नहीं रहते। ... हालांकि यह समझौता प्रकट रूप से केवल विश्व बाजार और व्यापार से ही संबंध रखता है, लेकिन इस बारे में निर्देश देता है कि कोई भी देश अपने कृषि क्षेत्र में किस प्रकार का निवेश कर सकता है। व्यवहार में कृषि सम्बन्धी समझौता विकसितदेशों में सब्सिडी को वैधानिकता प्रदान करता है, जो विश्व बाजार को विकृत कर देता है और विकासशील देशों के सामने

उपलब्ध विकल्पों को कम कर देता है, जो ग्रामीण खुशहाली और घरेलू खाद्य सुरक्षा को संरक्षित करने में रूचि रखते हैं।''

भारत जैसे देशों ने विकसित राष्ट्रों सेकुछ ज्यादा ही उम्मीदें लगा रखी थीं। हमारे देश में व्यापक गरीबी और बेरोजगारी को देखते हुए यहाँ की खेती और किसानों को विश्व बाजार के हमलों से रक्षा करने की जरूरत है। इस सम्बन्ध में एम.एस. स्वामीनाथन का यह आकलनऔर सुझाव विचारणीय है,- ''विश्व व्यापार समझौते का पाठ प्रभुत्वशाली ढंग से पश्चिम के पक्ष में झुका हुआ है।उसे विकसित ही इसी तरह किया गया है। ... हुआ यह कि हमने पश्चिम से इसकी अनावश्यक उम्मीदें लगा ली कि वह सब्सीडियां कम करेगा, हमारे उत्पादों को बाहरी बाजारों में और ज्यादा प्रतियोगी बननेदेगा। ... हमें दस-पन्द्रह वर्षों तक के लिए सस्ते मालों से बाजार पाटे जानेसे सुरक्षा चाहिए। हमें गरीबी पर काबू पाना चाहिए, लेकिन हमें यह कहने में शर्म नहीं आनी चाहिए कि हमारा देश गरीब है और हमें संरक्षण की जरूरत है। इस तरह विश्व व्यापार संगठन समझौते में एक 'आजीविका बॉक्स' की जरूरत है (जिसके अन्तर्गत देशों को इसका अधिकार मिले कि अगर आयातों का असर उनकेलोगों की आजीविका पर पड़ता है तो आयातों पर अंकुश लगा सकें)। हो सकता है कि हम खाद्य सुरक्षा हासिल कर चुके हों, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि आजीविका सुरक्षा भी हासिल कर चुके हैं।'' विश्व व्यापार अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है। यह एक उपकरण मात्र है, जिससे कोई राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अतः विश्व व्यापार के नियमों को किसी राष्ट्र की कृषिनीति को प्रभावित करने या निर्देशित करने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर और मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा केअनुसार किसी राज्य का दायित्व अपने नागरिकों का सम्मान करना, संरक्षण देनाऔर जरूरतों को पूरा करना है। अतः विश्व व्यापार के नियमों से अगर किसी राज्य के नागरिकों के संरक्षण और सम्मान का

मानवाधिकार प्रभावित होता है तोउसे अपने ऊपर प्रभावी नहीं होने देना चाहिए। अपने नागरिकों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए वैसे प्रावधानों की मुखालफत की जानी चाहिए।

विश्व व्यापार में शामिल दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की इफरात पूँजी और बाजार पर उसके एकाधिकार की प्रवृत्ति मुक्त व्यापार के बुनियादी सिद्धांतों के विपरीत है। ये कम्पनियाँ बहुत ही संगठित और आक्रामक तरीके से किसी वस्तु के व्यापार में शामिल होकर उस देश के बाजार पर एकाधिकार का षड्यंत्र रचती हैं। किसी भी खाद्य वस्तु या प्रसंस्करण के व्यापार में उतरकर ये सबसे पहले आपूर्ति बढ़ाकर कीमतों को लागत मूल्य से भी नीचे के स्तर तक ले जाकर प्रतिस्पर्धियों को बाजार से बाहर कर देती हैं और बाजार पर पूर्णतया कब्जा कर लेने के बाद मनमानी कीमत वसूलती हैं। ये कंपनियाँ कई वस्तुओं का व्यापार कई देशों में एक साथ करती हैं। अतः किसी भी खाद्य वस्तु या देश मेंलम्बे समय तक व्यापार घाटा सहकर भी अन्य देशों और मालों से प्राप्त मुनाफे के आधार पर अपने प्रतिद्वंद्वियों को तबाह और बर्बाद कर बाजार से निष्कासित करने में पूरी तरह सक्षम होती हैं। आई.बी.पी., कारगिल, कॉनआग्रा ऐसी ही ताकतवर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं। 'कॉनआग्रा' एक ऐसी ही विशाल कंपनी है, जिसका 25 प्रतिशत खाद्य सामग्री, चारा, उर्वरक, 53 प्रतिशत हिमशीत भोजन और 22 प्रतिशत किराने के उत्पादों की बिक्री पर कब्जा है। यह कंपनी अनाज भंडारण करने वाले 100 ऐलीवेटर, 2000 मालगाड़ी के डिब्बे और 1,100 मालवाहक नौकाओं की मालिक है। यह सबसे बड़ी टर्की उत्पादक और दूसरी सबसे बड़ी मुर्गा उत्पादक है। यह अपने मुर्गों के लिए दाना खुद बनाती है। इसी तरह 'कारगिल' दुनिया की ग्यारहवीं बड़ी कंपनी है, जिसके 60 देशों में 800 जगहों पर 70 हजार कर्मचारी कार्यरत हैं। यह नमक, चीनी, मक्का, गेहूँ, चावल, सोयाबीन, मूँगफली, फल, सब्जियाँ, गोमांस, कपास, रबर और स्टील आदि पचास अलग-अलग प्रकार की

जिन्सों का व्यापार करती है। इसकी पूरी दुनिया मेंफैले हुए बल्क टर्मिनल हैं जो 40 मिलियन टन अनाज संभाल सकते हैं। इसके पूरी दुनिया में फैले केन्द्र निजी दूर संचार तंत्र से जुड़े हैं। ये सभीनिगम अपनी साधनों की प्रचुरता, अपने विस्तार एवं विशेषज्ञता के बूते बाजार की हर हरकत से लाभ उठाने में सक्षम हैं। जैसे वे व्यापारिक उपग्रहों वसांख्यिकी प्रतिष्ठानों से किसी देश के कृषि उत्पादन का पूर्वानुमान उस देशकी सरकार से भी पहले लगा लेते हैं।

2007 में जब पूरी दुनिया खाद्य संकट से जूझरही थी, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मुनाफा पीटने में लगी हुई थीं। दुनिया कासंकट इनके लिए वरदान साबित हो रहा था। 2007 की पहली तिमाही में आर्चरडैनियल्स मिडलैण्ड की कमाई में 42 प्रतिशत, मोनसैंटो की 45 प्रतिशत और कारगिल की कमाई में 86 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। कारगिल की सहयोगी कंपनी मोजैक फर्टिलाइजर का मुनाफा तो बढ़कर 1200 फीसदी हो गया था।

कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सालाना आय देखकर किसी के भी होश उड़ सकते हैं। ''सन् 2007 में खाद्य प्रसंस्करण कम्पनी नेस्ले ने 9.7 अरब डॉलर का मुनाफा कमाया, जो 65 निर्धनतम देशों के 2007 के कुल घरेलू उत्पाद से भी ज्यादा था। दुनिया की सबसे बड़ी खुदरा कम्पनी वालमार्ट ने 31 जनवरी 2009 को समाप्त होने वाले वित्तीय वर्ष में 13.3 अरब डॉलर का मुनाफा कमाया। केवल मुनाफे की ही यह धनराशि 2007 में दुनिया के लगभग आधे देशों (कुल मिलाकर 88 देशों) के कुल सकल घरेलू उत्पादसे ज्यादा थी (कुल बिक्री सैकड़ों अरब डॉलर में थी)। इस बाजार की ताकत से ही वह दोनों क्षमता प्राप्त होती है, जिससे कि कीमतों का पूर्वानुमान (और कुछ हद तक उनका निर्धारण) किया जाता है और सौ से अधिक देशों में, जहाँ ये विशालतम कंपनियाँ व्यवसाय करती हैं, उनमें से कई देशों में व्यापार तथा निवेश नीति पर मनचाहा

प्रभाव डालने के लिए राजनीतिक दबदबा बनाया जाता है और इसी से यह शक्ति भी प्राप्त होती है कि भावी प्रतियोगियों को किनारे लगायाजा सके।''03 दरअसल मुक्त विश्व व्यापार की सबसे बड़ी खिलाड़ी और लाभार्थी ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ही हैं। ये किसी भी देश की राष्ट्रीय सरकारों को प्रभावित करने के साथ-साथ उन्हें गिराने और बनाने की ताकत भी रखती हैं। यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ही विश्व व्यापार समझौते के लिए सबसे ज्यादा लालायित थीं। उरूग्वे दौर का अमरीकी दस्तावेज 'कारगिल' के भूतपूर्व वरिष्ठ उपाध्यक्ष डॉन आमस्तुत्ज ने तैयार किया था, जो अमरीकी कृषि विभाग के भूतपूर्व कर्मचारी भी थे।

विश्व व्यापार समझौतों के बाद मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाये जाने तथा आयात शुल्क में कटौती के कारण अमेरिकी और यूरोपीय सस्ते मालों के आयात से भारतीय बाजार पट गया। अमेरिका और यूरोप अपनेकिसानों को अत्यधिक सब्सिडी प्रदान करता है। अतः उनके किसान लागत मूल्य से कम पर भी अपने कृषि उत्पादों को बेचकर भारी मुनाफे में रहते हैं। इसके बजाय भारतीय किसानों की सब्सिडी प्रतिस्पर्धी देशों की तुलना में बहुत ही कम है। जो सब्सिडी थोड़ी बहुत बची है उसमें भी निरंतर कटौती की जा रही है। बीज, खाद, डीजल, बिजली एवं अन्य कृषि उपकरणों के महँगे होने के कारण हमारे किसानों की उत्पादन लागत बहुत ज्यादा होती है। अतः उच्च सब्सिडी प्राप्त विदेशी कृषि उत्पादों के द्वारा गिराये गये बाजार मूल्य पर अपने उत्पादों को बेचकर वे भारी नुकसान उठाते हैं। वे अपने पूर्व में लिये गये कर्ज की भरपाई कर नहीं पाते और उससे भी ज्यादा नये कर्ज के चंगुल में फँस जातेहैं। भारत सरकार ज्यादा से ज्यादा आयात शुल्क लगाकर अपने किसानों की रक्षाकर सकती थी पर ऐसा न करके विदेशी कृषि उत्पादों के आगे उसने अपने किसानोंको हलाल होने के लिए छोड़ दिया है।

विकसित राष्ट्रों ने विश्व व्यापार समझौतों के तहत सब्सिडी घटाने का वादा पूरा नही किया, उल्टे और बढ़ा दिया। विश्व व्यापार के नियम सबके लिए समान नहीं हैं। अमेरिका और यूरोपीय देशों ने कृषि भुगतान तथा माल की कीमतों को अलग कर तथा आधारभूत ढाँचे को व्यापक मदद पहुँचाकर अप्रत्यक्ष रूप से सब्सीडियों को बनाये रखा। अमेरिका अपने हर किसान को सालाना लगभग 35000 डॉलर की सब्सिडी प्रदान करता है, जबकि भारतीय किसानों की औसत वार्षिक आमदनी 300-400 डॉलर है। एक जापानी किसान को अमेरिकी किसानों से भी ज्यादा सब्सिडी मिलती है। दूसरी तरफ जापान यह कहकर कि उसके लिए चावल केवल माल नही, बल्कि जीने की शैली है, चावल के आयात पर 200 प्रतिशत शुल्क लगाकर अपने किसानों के हितों की रक्षा करता है।

अमेरिकी किसानों को उनकी फसल के कुल मूल्यसे दुगने से भी ज्यादा सब्सिडी मिलती है। पी. साईनाथ के अनुसार ''39 खरबडॉलर के कृषि मूल्य पर अमरीका अपने कपास उत्पादकों को 47 खरब डॉलर की सब्सिडी देता है। इस सब्सिडी ने निचले स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय कपास बाजारको तहस-नहस कर दिया। ...बुर्किनाफासो और माली के राष्ट्रपतियों ने जुलाई 2003 में न्यूयार्क टाईम्स को लिखे एक लेख में लिखा है- 'आपकी कृषि सब्सिडियाँ हमारा गला घोंट रही हैं।''04 हमारी दलाल और दब्बू सरकारों में तो इतना आत्मविश्वास भी नहीं है कि इस तरह की उचित शिकायत कर सकें।

जाहिर है ऐसे असमान और अरक्षित स्थिति में अमेरिकी और यूरोपीय किसानों के समक्ष भारतीय किसानों को असहाय छोड़ देना मौत के मुँह में धकेलना नहीं तो और क्या है? भारतीय देशी और विदेशी कँपनियां एक तरफ लागत सामग्रियों की कीमतें बढ़ाकर किसानों को लूटती हैं, दूसरी तरफ सरकार थोड़ी-बहुत बची हुई सब्सिडियों में कटौती करके, समर्थन मूल्य और सरकारी खरीद बंद करके उनके संकट को और भी

बढ़ा देती है। विदेशों से आयातित सस्ते दर के कृषि उत्पाद रही सही कसर भी पूरी कर देते हैं। भारतीय किसानों की मराणासन्न स्थिति का फायदा उठाने में स्थानीय महाजन और सूदखोर भी पीछे नहीं रहते। फसल दर फसल घाटा, गैर संस्थागत ऋणों की वसूली के दबाव के आगे उन्हें आत्महत्या के सिवा और कोई रास्ता नहीं दिखता। इस तरह किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्याएँ, आत्महत्या नहीं, सोची-समझी रणनीति के तहत ठण्डे मन से की गयी हत्याएँ हैं। आज चारों तरफ से घेरकर व्यवस्था उनका शिकार कर रही है।

उपर्युक्त स्थितियों में भारतीय किसानों कीरक्षा के लिए सब्सिडियाँ बढ़ायी जानी चाहिए। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के दबाव में और वित्तीय पूँजी को प्रसन्न करने के लिए भारतीय किसानों को दी जाने वाली सब्सिडियों में निरंतर कमी की जा रही है। विश्व व्यापार समझौतों के पूर्व 1990 के दशक तक खेती को दी जाने वाली सब्सिडी 200 हजार करोड़ थी, जिसमें 2011 तक 100 हजार करोड़ की कटौती कर दी गयी। कृषि के नाम पर कुछ सब्सिडी मिलती भी है, उसे उद्योगों द्वारा डकार लिया जाता है। खादों पर दी जा रही सब्सिडियाँ इधर किसानों को न मिलकर, खाद कंपनियों को दी जा रही है। लेकिन इससे किसानों को कोई खास राहत नहीं मिलपाती। उन्हें खादों पर उतना ही खर्च करना पड़ता है। 2011 के बजट में अगले वर्ष के लिए उर्वरक सब्सिडी में 9 फीसदी यानी 4979 करोड़ रूपये की कटौती कीघोषणा की गयी थी। ''सरकार ने चालू वित्त वर्ष (2013-14) के लिए डीएपी जैसे फ़ॉस्फेट और पोटाश आधारित रासायनिक उर्वरकों पर सब्सिडी और कम करने काफैसला किया है। ....उर्वरक मंत्रालय का अनुमान है कि उर्वरकों पर सब्सिडीचालू वित्त वर्ष में 4,500 से 5,000 करोड़ रूपये कम होकर करीब 27,500 करोड़रह जायेगी'' (देखें- 'जनसत्ता', नई दिल्ली, 02 मई, 2013, पृ. 01)। इससे न सिर्फ खादों के मूल्य बढ़ जायेंगे, बल्कि खादों

की किल्लत भी हो जायेगी। कुछ अन्य सब्सिडियाँ जो छोटे किसानों को दी जाती है, उसका 65 से 70 प्रतिशत हिस्सा धनी किसानों द्वारा झपट लिया जाता है। छोटे किसान उससे वंचित ही रह जाते हैं। सरकार कारपोरेट घरानों के कर माफी तथा राजस्व में कटौती के माध्यम से 2008-09 में 4,18,095 करोड़ रूपये की सब्सिडी दी थी, जबकि उसीवर्ष खाद्य पर दी गयी कुल सब्सिडी मात्र 43,688 करोड़ की थी।

भारतीय किसान दुनिया का पहला ऐसा उत्पादकहै, जिसके उत्पाद की कीमत तय करने में उसकी कोई भूमिका नहीं होती। उसकीमजबूरी है कि उसे अपना अनाज लेकर मंडी में जाना होता है, जहाँ उसकी कीमतेंदलाल, व्यापारी और सरकार तय करती है। इन तीनों की भूमिका शोषणकारी होती है।भारतीय किसानों की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि अपने कृषि कार्य में कामआने वाली सामग्रियों को वे कॉर्पोरेट घरानों और मल्टीनेशनल कंपनियों द्वारातय किये दामों पर खरीदते हैं। इसी तरह अपने अनाजों को विदेशों से आयातितउच्च सब्सिडी प्राप्त उत्पादों द्वारा गिराये गये भाव पर बेचते हैं। कीमतों के निर्धारण में उनकी कोई भूमिका नहीं होती। उनकी आर्थिक स्थितिइतनी खराब होती है कि वे बाजार भाव बढ़ने की प्रतीक्षा भी नहीं कर पाते औरकम कीमतों पर आपदा बिक्री के लिए मजबूर होते हैं। यह आम बात है कि फसलउत्पादन के समय उसकी कीमत कम होती है। इन्हीं कम कीमतों पर व्यापारी और अबतो बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी किसानों से अनाज खरीदकर बाद में बढ़े दामोंपर बेच देती हैं।

अन्ततः वास्तविकता यही है कि किसानों के उत्पादन के बढ़ते लागत मूल्य और उसके श्रम का प्रतिदान उसे नहीं मिलता। यहीकारण है कि देश के विभिन्न हिस्सों से आज किसानों द्वारा अपनी फसलेंबर्बाद किये जाने की निराशाजनक सूचनाएँ मिल रही हैं। यह एक तरह का आत्मघातीकदम है। आत्महत्या से पूर्व उठाया गया आखिरी कदम।

छत्तीसगढ़ के भाटापारा में दलालों की किचकिच से तंग आकर किसान बाजार के बाहर ट्रकों पर लदे गोभी फेंककर चले जाते हैं। गोभी की फसलों से भरे खेत पर हल चला देते हैं। उत्तरप्रदेश और हरियाणा के किसान गन्ने को अपने खेतों में जला डालते हैं।उत्तरप्रदेश के प्रतापगढ़ में प्रसिद्ध आँवला उत्पादक किसान दलालों कीमनमानी से तंग आकर आँवला के पेड़ों की कटाई करने लग जाते हैं। बंगाल के हुबली और बर्द्धमान में किसान आलू को सडकों पर डाल देते हैं। इन समस्त घटनाओं का कारण यही है कि किसानों को अपने उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिलपाता। उत्पादन वे करते हैं और लाभ दलाल और व्यापारी चट कर जाते हैं।छत्तीसगढ़ के वनवासी इलाकों में हर्रे की कीमत वनौषधि विभाग ने 6 रूपये किलो तय की है, जबकि देश के किसी भी शहर में इसका मूल्य 200 रू. किलो सेज्यादा है।

किसानों के साथ नाइंसाफी यह है कि अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतें जिस रफ्तार से बढ़ती है, किसानों के उत्पादोंके मूल्य उस तेजी के साथ नहीं बढ़ते। 1967 में एक क्विंटल गेहूँ बेचकर उससमय का किसान 212 लीटर डीजल खरीद सकता था, लेकिन आज उतना ही गेहूँ बेचकर वहसिर्फ 25 लीटर डीजल खरीद सकता है। ढाई क्विंटल गेहूँ के समर्थन मूल्य सेउस समय एक तोला सोना खरीदा जा सकता था पर आज 1 तोला सोना खरीदने के लिए 22 कुंिवटल गेहूँ बेचने की जरूरत होगी। स्पष्ट है, किसानों के उत्पादन केमूल्य जिस मापदण्ड पर तय किये जाते हैं, उसमें खोट है। जान-बूझकर उनकेहितों की अनदेखी कर उनके साथ अन्याय किया जाता है, क्योंकि उनका कोई मजबूतसंगठन नहीं है। उनकी कोई सम्मिलित आवाज नहीं है। जब से कृषि उत्पादों काबाजार विश्व बाजार से जुड़ा है, कीमतों में उतार-चढ़ाव बहुत तेजी के साथहोता है। देशी व्यापारी हों या बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, बढ़ती हुई कीमतों का फायदा खुद निगल जाती हैं, पर घटती कीमतों का सारा बोझ किसानों के ऊपर डाल देती हैं। बाजार की अनिश्चितताओं का

पूँजीवादी हल है-वादा व्यापार याठेके की खेती। लेकिन ये दोनों विकल्प किसानों को अपनी खेती से अलगाव में डालकर उसे बड़ी पूँजी का यांत्रिक गुलाम बना देते हैं।

औपनिवेशक जमाने में अकाल और भूख से मौतें भयावह सच्चाई थी। आजादी के बाद भूख और कुपोषण के अभिशापों से मुक्ति तथाकिसानों की सहायता के लिए सरकारी खरीद और सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी योजनाओं की शुरूआत की गयी। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से जरूरतमंदों तक उचित मूल्य पर खाद्य सामग्रियाँ पहुँचायी गयी। सरकारी खरीद और सार्वजनिक वितरण प्रणाली किसान और उपभोक्ता दोनों को बाजार के उतार-चढ़ाव के खतरों से महफूज रखते हैं। लेकिन विश्व व्यापार समझौतों कीदिशा में विश्व बैंक की ओर से भारत एवं अन्य विकासशील देशों पर निरंतर दबाव डाला जा रहा है कि सरकारी खरीद और सार्वजनिक वितरण प्रणाली को समाप्त किया जाये। बहुत सारे पिछड़े और विकासशील देशों ने 1990 के दशक से ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली को छिन्न-भिन्न करना शुरू कर दिया था। हमारी सरकार भी धीरे-धीरे इस व्यवस्था को कमजोर और निष्प्रभावी बनाती जा रही है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर भ्रष्टाचार के आरोप पहले से ही लगते रहे हैं पर खाद्यसुरक्षा और नगद भुगतान की आड़ लेकर आज इस व्यवस्था को खत्म करने की साजिशचल रही है। व्यापक जनता की खाद्य सुरक्षा पर्याप्त सरकारी खरीद और जन वितरण प्रणाली के माध्यम से उचित दर पर जनसाधारण तक खाद्यान्न पहुँचाने पर ही निर्भर है पर जनसंख्या बढ़ने के साथ ही सरकारी खरीद निरंतर घटती जा रही है। 2005-06 में चावल, गेहूँ एवं अन्य खाद्यान्नों की कुल सरकारी खरीद 4.24 करोड़ टन की गयी थी जो 2006-07 और 2007-08 में घटकर क्रमशः 3.59 तथा 3.76 करोड़ टन हो गयी। नौवें दशक में विभिन्न राज्यों में गैर खाद्य निर्यात योग्य वस्तुओं के लिए जिन विभिन्न बोर्डों का गठन किया गया था, उन्हें अब जान बूझकर अक्षम बना दिय गया है। कपास, कॉफ़ी, चाय, रबर और मिर्च उत्पादक किसानों द्वारा वैश्विक स्तर पर

गिरे मूल्यों पर अपने उत्पादों को बेचना महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक और केरल जैसे राज्यों में किसान आत्महत्याओं का सबसे बड़ा कारण रहा है।

उत्सा पटनायक द्वारा सरकारी खरीद और सार्वजनिक वितरण प्रणाली को समाप्त किये जाने के विकसित देशों के दबाव के पीछे हमारे खाद्य तंत्र पर उनके कब्जे की मंशा को पहचानना उचित ही है। इसीलिए वे आगाह करती हैं, ''सरकारी खरीद तथा समर्थन मूल्य की जो व्यवस्थाहमारे यहाँ लागू है, किसान तथा उपभोक्ता, दोनों को ही विश्व बाजार केअंधाधुंध उतार-चढ़ावों से बचाती है। ठीक इसी व्यवस्था को विश्व बैंक द्वारा अपने हमलों का निशाना बनाया जा रहा है, जो इसे कथित रूप से तो 'कार्यकुशलता' के नाम पर लेकिन वास्तव में इसलिए नष्ट करना चाहता है ताकि हमारे देश को विकसित देशों से अनाज के शुद्ध आयातकर्ता में तब्दील किया जासके।''05

देश में बड़े पैमाने पर गरीबी तथा भूख सेमौतों तथा किसानों की आत्महत्या की घटनाओं को देखते हुए सार्वजनिक वितरण प्रणाली और सरकारी खरीद को समाप्त करने के बहुत ही गंभीर परिणाम होंगे। खुद योजना आयोग के आँकड़ों के अनुसार देश के 32 प्रतिशत लोग गरीब हैं। योजना आयोग द्वारा राज्य सरकारों पर निरंतर दबाव डाला जा रहा है किबी.पी.एल. के अंतर्गत 36 प्रतिशत से ज्यादा लोगों को न लाया जाये। कई बार कुपोषण और भूख से मौतों पर सुप्रीम कोर्ट केन्द्र सरकार को फटकार लगा चुकाहै। जब भी कुपोषण और भूख का मामला उठाया जाता है सरकार हमेशा यह तर्क देती है कि गरीबी घट रही है तथा देश में अनाजों की कमी नहीं हैं। अन्न भण्डारभरे हुए हैं, लेकिन गिरती क्रय शक्ति के कारण बहुसंख्यक लोग खाद्यान्न खरीदने की स्थिति में नहीं हैं। 2011 तक गरीबी का पैमाना शहरों में 17 रू.और गाँवों में 12 रू. रोजाना खर्च को माना गया था, जो कहीं से उचित नहीं

है। सुप्रीम कोर्ट ने सड़ते हुए अनाजों और भूख से हो रही मौतों की खबरोंके बीच कहा था अगर सरकार गोदामों में सड़ते हुए अनाजों की रक्षा नहीं कर सकती तो देश के गरीबों में मुफ्त बाँट दे, लेकिन सरकार के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी।

अन्य उत्पादों की अपेक्षा कृषि उत्पादों की कीमतें हमेशा से कम रही हैं। इसके पीछे सरकारों की मंशा यह रहती है कि मजदूरी तथा वेतन का भुगतान कम करना पड़े तथा कम कीमत पर उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराया जा सके। हरित क्रांति के बाद बीज, खाद, कीटनाशकों तथा डीजल और विद्युत के बढ़ते खर्चों ने किसानों की उत्पादन लागत बढ़ा दी। खुले बाजार के मूल्य कभी-कभी उत्पादन लागत से भी कम होते हैं। अतः किसानों ने कृषि क्षेत्र में बने रहने के लिए सरकार से समर्थन मूल्य की माँग की औरइसके लिए बड़े आन्दोलन हुए। विश्व व्यापार के नये दौर में जब से विदेशोंसे भारी मात्रा में सब्सिडी प्राप्त अनाज भारतीय बाजार मे प्रवेश करने लगेहैं और विशालकाय कम्पनियाँ अनाज व्यापार में शामिल हुई, कृषि उत्पादों कीकीमतें और भी गिर गयीं। अतः ऐसे में किसानों के हितों रक्षा के लिए समर्थन मूल्य की महती आवश्यकता है। किसान संगठनों की तरफ से हमेशा यह माँग हो रही है कि स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के अनुरूप समर्थन मूल्य तय किया जाये। उस सिफारिश में लागत मूल्य का 50 प्रतिशत लाभ जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित किये जाने की बात कही गयी है।

इधर देश के विभिन्न हिस्सों में एक नयी प्रवृत्ति उभर कर सामने आयी है कि किसान सिर्फ अपने फसलों की बर्बादी और ऋणग्रस्तता के कारण ही आत्महत्या नहीं करता, बल्कि फसलों के उचित मूल्य औरसरकार द्वारा समर्थन मूल्य न मिल पाने की वजह से भी आत्महत्याएँ कर रहाहै। ''पश्चिम बंगाल के बर्दवान जिले में बीते 6 महीने के भीतर 27 किसानअपनी जान ले चुके हैं। खुदकुशी की वजह यदि जानें, अपनी

फसल का न्यूनतम समर्थन मूल्य न मिल पाना है। यानी इन किसानों ने अपनी जान फसल के नुकसान होने की वजह से नहीं, बल्कि फसल के सही दाम न मिल पाने की वजह से ले ली। ..... उनका बहुत सारा धान न तो सरकारी खरीद में आ सका और न ही उन्हें न्यूनतम समर्थन मूल्य मिल पाया। ..... पिछले दिनों जब केन्द्रीय दल नेउत्तरप्रदेश और बिहार का दौरा कर जमीनी हकीकत जाननी चाही, तो मालूम चला किवहाँ भी किसानों को घोषित मूल्य से 30 फीसदी कम पर धान बेचने को मजबूर होना पड़ा। .... बर्दवान में सामने आये किसान खुदकुशी के मामले हमें मुल्क में एक नयी सच्चाई से वाकिफ कराते हैं कि जब किसी वजह से फसल चैपट होती है, तब तो किसान मुसीबत में होता ही है, लेकिन जब पैदावार अच्छी होती है और उसे अपनी फसल का वाजिब दाम नहीं मिल पाता, तब भी वह मुसीबत में आ जाता है।''06

स्पष्ट है कि उपर्युक्त परिस्थितियों में किसानों और कृषि की रक्षा के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य बहुत सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। पर इसे लेकर हमारी सरकारें कितनी गंभीर है इसे 2007 के उदाहरण से समझा जा सकता है। 2007 में गेहूँ की फसल आने के बाद सरकार ने 750 रू. क्विंटल की दर से समर्थन मूल्य की घोषणा की पर बाजार मूल्य ज्यादाहोने के कारण 100 रू. बोनस देने का विचार किया। बोनस देकर भी सरकार कान्यूनतम समर्थन मूल्य 850 रू. प्रति क्विंटल, बाजार दर 950 रू. से कम था।उस समय गेहूँ का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार भाव 1050 रू. प्रति क्विंटल था। अतःव्यापारियों, कॉर्पोरेट समूहों तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने सरकार द्वारासमर्थित मूल्य से ज्यादा कीमत चुकाकर किसानों से गेहूँ खरीद कर या तो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बेच दिया या बचाकर रख लिया। सरकार का लक्ष्य उससमय 150 लाख टन गेहूँ खरीदने का था। लेकिन उतना गेहूँ भी उसे किसानों सेनहीं मिल पाया। बाद में जब बफर स्टॉक समाप्त होने लगा और गेहूँ की किल्लत हुई तो विश्व बाजार से लगभग दुगुने मूल्य पर उसे 13 लाख टन गेहूँ खरीदने

कानिर्णय लेना पड़ा। जो सरकार अपने किसानों को हजार रूपये क्विंटल समर्थन मूल्य देने को भी तैयार नहीं थी (जो उस समय का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मूल्य था) वही सरकार किसानों को दिये गये समर्थन मूल्य के दुगुने में गेहूँ का आयात करती है। इससे मनमोहन सिंह सरकार की किसानों के प्रति असंवेदशीलता और अदूरदर्शिता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

अभी हाल-फिलहाल भारत और यूरोपीय यूनियन के बीच प्रस्तावित मुक्त व्यापार समझौता दुग्ध व्यवसाय और डेयरी उत्पादों के लिए ताबूत में आखिरी कील साबित होने जा रहा है। सन् 2007 से यूरोपीय यूनियन और भारत के बीच मुक्त व्यापार समझौता पर बातचीत चल रही है, जिसे पिछले दिनों प्रधान मंत्री की जर्मनी यात्रा के दौरान तमाम विरोधों के बावजूद लगभग अंतिम रूप दे दिया गया। यह समझौता वाहन, दवा, सूचना प्रौद्योगिकी के साथ-साथ डेयरी उद्योग के लिए विश्व व्यापार समझौता के बाद गुलामी का दूसरा शर्मनाक दस्तावेज है।

यह आश्चर्यजनक है कि एक सम्प्रभु राष्ट्र के रूप में हम ऐसे गैर बराबरी के अपमानजनक समझौते करने के लिए विवश क्यों हैं? यह हमारे परजीवी शासक वर्ग के दब्बूपन का घृणित उदाहरण है। जिस तरह इंग्लैण्ड के औद्योगिकीकरण और ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार ने हमारे लघु और कुटीर उद्योगों को ऐतिहासिक रूप से बर्बाद कर डाला था उसी तरह आज एक बारफिर यूरोपीय यूनियन के साथ किया जाने वाला यह समझौता हमारे डेयरी उद्योगको तबाह कर देगा। पहले से ही आत्महत्या कर रहे किसानों के लिए यह समझौता आग में घी का काम करेगा।

1994-95 में कृषि क्षेत्र में विश्व व्यापार समझौता लागू होने के बाद विकासशील देशों ने आयात-निर्यात पर नियंत्रण तथा सीमा शुल्क को समाप्त करना शुरू कर दिया। अतः पूर्व में उन देशों की कृषिको जो

संरक्षण प्राप्त था, वह धीरे-धीरे खत्म होने लगा। विकसित देशों केकृषि उत्पाद उन देशों में प्रवेश कर वहाँ के स्थानीय उत्पादों के साथ प्रतिस्पर्धा करने लगे। फलतः खाद्यान्न की कीमतों में भारी गिरावट देखीगयी। एफ.ए.ओ. के अनुसार 1997 से 2003 के बीच सभी जिंसों के संयुक्त मूल्य सूचकांक में वास्तविक अर्थों में 53 प्रतिशत की गिरावट आयी। कम कीमतों का अर्थ है सस्ता आयात। इससे स्थानीय उत्पादकों के हित बुरी तरह प्रभावित हुए और कृषि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। 2005 तक विकासशील देशों के कृषि उत्पादों की स्थिति खराब होने पर अनाजों की कीमतें चढ़ने लगीं। ऐसी स्थिति में विकसित देशों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आपूर्ति में कमी कर कीमतों को और चढ़ने दिया। परिणामस्वरूप 2007 का अभूतपूर्व खाद्यान्न संकट उभर करसामने आया। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्देशित स्थानीय कृषि के संरक्षण को खत्म करने वाली नीतियों और सस्ते आयात ने कई देशों की कृषि को चैपट कर दिया। 'लाइफ एण्ड डेब्ट्' नामक वृत्तचित्र यह दिखाता है कि अमेरिका के सस्ते अनाजों के आयात ने जमैका की कृषि को पूरी तरह बर्बाद कर दिया।

हमारे देश ने जमैका जैसे देशों से सीख लेने का कार्य नहीं किया। हमारे देश का शासक वर्ग भी स्थानीय कृषि को संरक्षण देकर, खाद्य आत्म निर्भरता प्राप्त करने की अपेक्षा आयात के आधार पर जनता के पेट भरने का सपना देखने लगा है। मुख्य खाद्य फसलों की अपेक्षा निर्यात योग्य कृषि उत्पादों को उपजाने पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है। नगदी फसलउगाने का यह दबाव अतीत की नील खेती की याद दिलाता है। इसके पीछे तर्क यहदिया जाता है कि आज के विश्व ग्राम में आवश्यक नहीं है कि हर देश हर वस्तुका उत्पादन करे। अमेरिका और आस्ट्रेलिया अगर ज्यादा अनाज उत्पादित करने की स्थिति में हैं तो हम अपने संसाधनों को इस पर क्यों बर्बाद करें और क्योंन उनके सस्ते अनाज को आयातित कर अपनी जरूरतों को पूरा करें और उपभोक्ताओं को भी राहत दें? यह तर्क ऊपर से लुभावना जरूर लगता है पर यह

हमारी कृषि को बर्बाद करने वाला तथा विकसित देशों के हाथों अपनी खाद्य जरूरतों को गिरवी रखने जैसा है।

कृषि उत्पादों के आयात-निर्यात के बारे में सरकार की कोई स्पष्ट नीति नहीं है। व्यापारिक उदारीकरण के बाद भारत को कृषि उत्पादों के निर्यात का कोई नया बाजार नहीं मिला । उल्टे निर्यात की अपेक्षा आयात मे भारी वृद्धि हुई। 1996-97 और 2003-04 के बीच मात्रा में 375 प्रतिशत और मूल्य में 300 प्रतिशत की आयात में वृद्धि हुई । केवल 1998 और 2000-01 के बीच कृषि उत्पादों का औसत वार्षिक आयात करीब 64 प्रतिशत बढ़ गया। वहीं निर्यात में 7 प्रतिशत की कमी आयी। घटता निर्यात और बढ़ता आयात कृषि व्यापार की दयनीय स्थिति खुद बयान करता है।

अपनी खाद्य आत्मनिर्भरता को त्याग कर निर्यात योग्य फसलों को बढ़ावा देने की नीति वस्तुतः विकसित देशों द्वारापैदा किया गया एक ऐसा षड्यंत्र और दुष्चक्र है जिसमें हमारे देश के साथ-साथ अन्य विकासशील देश भी फँसते जा रहे हैं। अधिकांशतः विकसित देश अपनी जलवायु की विशिष्टताओं के कारण आमतौर पर एक फसली उत्पादन वाले देश हैं, जबकि अपने गर्म और समशीतोष्ण जलवायु के कारण ज्यादातर विकासशील देश बहुफसली उत्पादन वाले हैं। यहाँ फसलों के उत्पादन में विविधता है। अतः विकसितदेश यह चाहते है कि विकासशील देश उन फलों, फूलों, सब्जियों, चाय और कॉफ़ी का उत्पादन करें जिनकी उन्हें जरूरत है और जिनका उत्पादन वे नहीं कर पाते। इसके साथ ही वे अपने गेहूँ, मक्का जैसे अतिरिक्त और फालतू खाद्य फसलों को हमारे देश के बाजारों में खपा दें। इसीलिए विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा हमें निर्यात योग्य फसलों का पाठ पढ़ाया जाता है। हमारे देश में निर्यात योग्य फसलों में सोयाबीन का महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक ऐसी फसल है जिसका सीधे उपयोग जनता नहीं करती। इसका तेल भी अन्य तिलहनों की तरह छोटी

मशीनों से नहीं निकाला जा सकता। यह पूरी तरह उद्योग और बाजार पर आश्रित उत्पाद है। इसे विकसित देशों की रणनीति के तहत हमारे देश में बढ़ावा दिया गया। हमें घोषित रूप से यह बताया गया कि इसमें बहुत प्रोटीन है इसलिए इसकी खेती से हमारे देश में कुपोषण की स्थिति में सुधार आयेगा, जबकि वास्तविकता यह भी थी कि विकसित देशों को पशुचारे के रूप से इसके खल्ली के आयात की आवश्यकता थी। हमारे यहाँ सोयाबीन की खेती वस्तुतः विकसित देशों मेंपशु आहार की कमी को पूरा करने के लिए प्रेरित की गयी थी। आज भी इसकी खल्ली मुख्यतः विकसित देशों को निर्यात की जाती है। म.प्र. के होशंगाबाद औरहरदा जिलों में जहाँ इसकी सर्वाधिक खेती की जाती है, जमीन बंजर होने केकगार पर पहुँच चुकी है।

आज विकासशील देशों का शासक वर्ग विकसित देशों की चालों में फँसकर, अपनी खाद्य आत्मनिर्भरता को संकट में डालकर उनकी जरूरतों के सामानों को पैदा करने की पैरवी कर रहा है। विकासशील देशों केआपसी होड़ और विकसित देशों में सीमित माँग के कारण विकसित देशों को कम कीमत पर उनकी जरूरतों के सामान मिल रहे हैं। इसके एवज में हमारा कृषि तंत्र और खाद्य आत्मनिर्भरता चैपट हो रही है। ''निर्यात बलाघात के लिए गुंजाइशबनाने के लिए घरेलू खाद्य उत्पादन की ही कुर्बानी देनी पड़ती है। ... विकसितदेश थोड़े से हैं, पर काफी संगठित हैं। दूसरी ओर विकासशील देश बहुत ज्यादा हैं और अच्छी तरह संगठित नहीं हैं। इसलिए, होता यह है कि एक जैसे ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत अस्सी से ज्यादा विकासशील देश एक जैसे उत्पादों में निर्यात बलाघात के साथ एक-दूसरे के खिलाफ होड़ कर रहे होतेहैं। जाहिर है कि इस क्रम में उन्हे प्रतिस्पर्धी ढंग से अपनी मुद्राओं का अवमूल्यन भी करना पड़ा है। अब ऐसे हालात में, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मेंउनके उत्पादों की इकाई कीमत नीचे ही खिसकनी है।''07 इन्हीं कारणों से भारत के कपास, रबर तथा नारियल

उत्पादक किसानों को निर्यात में भारी नुकसानउठाना पड़ा और वही उनकी आत्महत्या का प्रमुख कारण बना।

1991 में कपास के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य बहुत ज्यादा थे। सिर्फ एक वर्ष में ही पिछले तीन वर्षों को मिलाकर किये गये 34000 टन के निर्यात की अपेक्षा इस वर्ष 374000 टन कच्चे कपास का निर्यात किया गया। इस निर्यात से हुए फायदे ने बहुत सारे किसानों को भटकाया। आगे चलकर फसल बदलाव के खर्च और कपास उपजाने की बढ़ती लागत को पूरा करने के लिए भारी मात्रा में कर्ज लेकर महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और पंजाब केकिसानों ने कपास उत्पादित किये। 1996 से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कपासकी कीमतें तेजी से गिरने लगीं। वर्ष 1995 से 2001 के बीच कपास की कीमतें लगभग आधी हो गयी। इसके कारण भारतीय किसानों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा और उनमें आत्महत्या की प्रवृत्तियाँ बढ़ीं। सरकार किसानों के लिए कुछभी नहीं कर पायी।

प्रायः कृषि संकट और किसानों की आत्महत्या का समाधान कृषि के विविधीकरण तथा नकदी फसलों के उत्थान में देखा जाता है। सरकार अनाजों के उत्पादन में कम आबादी वाले विकसित पश्चिमी देशों की नीतियाँ अपना रही है। सरकारी तंत्र लगातार किसानों में यह भ्रम फैलाने की कोशिश कर रहा है कि गेहूँ, चावल आदि खाद्य फसलों की जगह उच्च मूल्य वाले निर्यात योग्य फसलों का उत्पादन करो। इसके माध्यम से किसानों को जल्दी अमीर बनने का सपना दिखाया जाता है। अधिकांशतः नकदी फसलों का लागत मूल्य ज्यादा होता है जिसके लिए किसानों को कर्ज की जरूरत होती है। इन निर्यात योग्य नकदी फसलों के वैश्विक मूल्य पर विशालकाय बहुराष्ट्रीय कंपनियों का नियंत्रण होता है। इन फसलों के उतार-चढ़ाव भरे मूल्य के भँवर में फँसकर किसानों को अक्सर घाटा लगा है। अब यह तथ्य पूरी तरह प्रमाणित है कि खाद्य फसलों के उपजाने वाले किसानों की अपेक्षा नकदी फसल उगाने वाले

विदर्भ, तेलंगाना, कर्नाटक और केरल के किसानों ने ज्यादा आत्महत्याएँ की हैं।

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में खाद्य फसलों की जगह कपास, फलों, फूलों, सब्जियों, औषधीय पौधों और जट्रोफाकी खेती को बढ़ावा देना पहले से ही अनाजों के उत्पादन में आये ठहराव और खाद्य संकट को और भी ज्यादा गंभीर बना देना है। ऐसा बहुसंख्यक जनता की जरूरतों और आवश्यकताओं की अपेक्षा शहरी मध्यवर्ग और बाहरी माँगों को तरजीह देने के कारण होता है। 'निर्यात समृद्धि लाता है', जैसे भ्रमपूर्ण विचारों से मुक्त होकर घरेलू मांग और जरूरतों का भी खयाल रखा जाना चाहिए। नहीं तो एक संकट का समाधान दूसरे बड़े संकट को जन्म दे सकता है।

उत्सा पटनायक का मानना है कि उदारीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद भारत ही नहीं, अन्य विकासशील देशों का रूझान भी खाद्य फसलों की अपेक्षा निर्यात योग्य फसलों की ओर बढ़ा। खाद्यान्न उपजायी जाने वाली जमीनों पर निर्यात योग्य फसलें उगायी जाने लगी। इससे उन देशों के साथ वैश्विक स्तर पर भी खाने योग्य अनाजों की उपलब्धता में कमी आयी। 1980-85 में विश्व में प्रति व्यक्ति अनाज का उत्पादन 335 किलो ग्राम था। जो 2000-05 में घटकर 310 कि.ग्रा. रह गया। भारत और चीन का नब्बे के दशक तक पूरे विश्व में अनाज उत्पादन में 30 प्रतिशत का योगदान था। इनके बदले रूझानों ने खाद्यान्न उत्पादन को विशेष रूप से प्रभावित किया। भारत, चीन, इंडोनेषिया, फिलीपीन्स, थाइलैण्ड, वियतनाम, इरान, मिस्र, पाकिस्तान, बांग्लादेष और श्रीलंका जैसे ग्यारह विकासषील देषों का विष्व अन्न उत्पादनमें 40 प्रतिषत का योगदान रहा है। 1989-90 और 2003-04 के पन्द्रह वर्षोंके बीच प्रति वर्ष इनका अनाज उत्पादन 1.1 प्रतिशत की दर से बढ़ा जबकिजनसंख्या 2 प्रतिशत की दर से बढ़ रही थी। पर ध्यान

देने योग्य तथ्य यह हैकि इस बीच इन देशों के निर्यात योग्य फसलों के उत्पादन में 10 गुना तेजवृद्धि हुई। स्पष्ट है कि इन देशों में जिन जमीनों और संसाधनों का उपयोग उसदेश की जनता के खाद्यान्न उत्पादन के लिए होना चाहिए था, उसे विकसित देशोंमें निर्यात के लिए किया गया।

साम्राज्यवादी देशों द्वारा प्रेरित भूमंडलीकरण की नीतियों ने एक ऐसी नव औपनिवेशिक स्थिति निर्मित कर दी है जिसेदेखकर औपनिवेशिक दिनों की याद ताजा हो जाती है। जिस तरह उपनिवेशों की उपजाऊ जमीन और संसाधनों से आकर्षित होकर विकसित देशों ने उन पर राजनीतिक और आर्थिक नियंत्रण प्राप्त किया था, आज बदले हुए स्वरूप में विश्व व्यापार की नीतियों के कारण उसी तरह का नियंत्रण पुनः कायम कर लिया है। जमीन, श्रम और संसाधन हमारे हैं लेकिन हम उनकी जरूरत की वस्तुएँ उत्पादित कर उनके दरवाजे तक पहुँचा रहे हैं। कल तक हम चाय, कॉफ़ी, चीनी और रूई का निर्यात करते थेपर आज हमारे देश में उपजाये गये फल, फूल और सब्जियाँ उनके दुकानों की शोभाबढ़ा रही हैं। उत्सा पटनायक के शब्दों में कहें तो ''उपनिवेशीकृत भारत केकिसान भूखों मरते थे, जबकि इंग्लैण्ड को गेहूँ का निर्यात किया जाता था औरअब आधुनिक भारत के किसानों में भोजन की कमी हो गयी है, जबकि वे विदेशों केधनाढ्य उपभोक्ताओं के लिए खीरा और गुलाब पैदा कर रहें हैं।''08

अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने भारत के खायेजाने योग्य अनाजों को माल में तब्दील करके उसे निर्यात की वस्तु बना दियाथा। आज वही कार्य हमारे आजाद देश की सरकारें कर रहीं हैं। ''1857 से 1900 के बीच, जो अकाल के सबसे बुरे साल थे, अनाज का निर्यात तीस लाख टन प्रतिवर्ष से बढ़कर 1 करोड़ टन हो गया, जो पच्चीस लाख लोगों के साल भर के भोजन के बराबर था और ठीक उसी समय, मोटे तौर पर अनुमानित, एक करोड़ बीस लाख से दोकरोड़ नब्बे लाख के बीच लोगों की मौत

हुई। जैसा कि डेविस टिप्पणी करते हैं 'लन्दनवासी वास्तव में भारतीयों के मुँह की छीनी हुई रोटी खा रहे थे' औरएक अन्य प्रेक्षक को उद्वृत करते हुए वे लिखते हैं 'यह एक विसंगति है किअपने यहाँ अकाल की मार झेल रहा भारत दुनिया के अन्य हिस्सों में खाद्यान्नकी आपूर्ति कर रहा था।''09 हमारी चुनी सरकारों द्वारा अपनायी गयीनिर्यातोन्मुखी नीतियों ने एक बार फिर हमें उन्नीसवीं सदी की उन्हींऔपनिवेशिक स्थितियों में ले जाकर पटक दिया है ।

33.5.7 भारत व विश्व व्यापार संगठन मे समझौता

भारत की पहल पर विश्व व्यापार संगठन में जो समझौता हुआ है, वह विकासशील देशों के बाज़ारों की सुरक्षा के लिए एक अच्छी मिसाल बन सकता है। यह कहना है रूसी विशेषज्ञों का। एक साल पहले इण्डोनेशिया के बालीद्वीप पर विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलन में विश्व व्यापार के उदारीकरण केबारे में जो समझौता स्वीकार किया गया था, अब भारत और विश्व व्यापार संगठन के बीच पैदा हो गए मतभेदों पर आपसी समझौता होने के बाद उसे लागू करना सम्भव हो जाएगा।

विश्व व्यापार संगठन की महापरिषद जिनेवा में हुई बैठक में उन सभी मुद्दों परसहमत हो गई, जिन्हें भारत ने उठाया था और जिनका समर्थन अन्य विकासशील देशभी कर रहे थे। और अमरीका जिनका शुरू से ही विरोध कर रहा था। अब विश्व व्यापार संगठन कृषि क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा राजकीय खाद्य भण्डारोंके लिए अनाज ख़रीदते समय अधिक मूल्य के रूप में किसानों को दी जा रही अतिरिक्त सब्सिडी के सवाल पर भारत के विरुद्ध मुक़दमे बाज़ी नहीं करेगा।अमरीका और विश्व व्यापार संगठन के कुछ और सदस्य देशों का यह मानना है किभारत सरकार की यह नीति किसानों को अतिरिक्त कृषि उत्पादन करने के लिएप्रोत्साहित करती है, जिसे भारत

बादमें अन्य देशों को निर्यात कर देता है। इस तरह दुनिया के अनाज के बाज़ारमें भारत के अनाज-निर्यातकों को एकतरफ़ा ढंग से अतिरिक्त बढ़त मिल जाती है।

रूसके औद्योगिक-व्यापार संघ के जनसम्पर्क विभाग के निदेशक निकिता मासलिन्निकफ़का मानना है कि विश्व व्यापार संगठन और भारत के बीच यह जो समझौता हुआ है, यह विश्व व्यापार संगठन के भीतर लगाई गई एक लम्बी छलाँग है। निकिता मासलिन्निकफ़ ने कहा :

विश्व व्यापार संगठन में अमरीका हीभारत द्वारा पेश की गई पहलों और प्रस्तावों का विरोध कर रहा था। अमरीका हीदेश के घरेलू बाज़ार में कृषि मालों के लिए राजकीय सब्सिडी का उपयोग करने की इजाज़त देने को तैयार हो गया है। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि दुनिया की सबसेबड़ी विकासशील अर्थव्यवस्था और दुनिया के सबसे बड़े विकासशील देश के बीच समझौता हो गया है। अब यह माना जा सकता है कि दोहा बैठक में विश्व व्यापार संगठन जिस गतिरोध में फँस गया था और पिछले कुछ सालों से फँसा हुआ था, उससेबाहर आने का अगर पूरा रास्ता नहीं भी खुला है तो उससे बाहर आने के लिए एक गलियारा तो बन ही गया है। इस समझौते पर पहुँचने के बाद अब व्यापार प्रक्रिया को सरल बनाने के सारे पैकेट को लागू करना और उसमें तय किए गए रास्तों पर आगे बढ़ना सम्भव हो जाएगा।

विश्व व्यापार संगठन का संकट यह है कि उसके सदस्य देश एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करते। विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत विभिन्न वार्ताओं में भाग लेने वाले दल खुले आमवार्ता में शामिल दूसरे दल की बातों पर अविश्वास जतलाते रहते हैं। भारत के प्रस्तावों पर हुए समझौते के बाद इस सिलसिले में स्थिति बदल गई है। समझौता किन शर्तों पर हुआ है, यह घोषित नहीं किया गया है। विश्व व्यापार संगठन में रूस के प्रतिनिधि गेन्नादी अवेच्को के अनुसार, विभिन्न मंचों पर बेहद तनावपूर्ण वार्ताओं के बाद ही यह समझौता हो पाया है। रूस ने इस

मतभेद को दूर करने के लिए, जो प्रस्ताव रखे थे, उनमें एक प्रस्ताव दोनों पक्षों के बीच समझौते का भी था।

विश्व व्यापार संगठन में होने वाली वार्ताओं में भाग लेने वाले रूस के एक प्रतिनिधि और विश्व अर्थव्यवस्था और अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध संस्थान के विशेषज्ञ तथा रूस के हायर स्कूल ऑफ़ इकोनोमिक्स के प्रोफ़ेसर अलेक्सेय परतान्स्की ने कहा कि समस्या का जो निर्णय सामने आया है, वह रूस का भी हितसाधन करता है। अलेक्सेय परतान्स्की ने कहा : रूस चाहता है कि विश्व व्यापार संगठन एक मज़बूत संगठन बने और उसकी सभीगतिविधियाँ विकासशील गतिविधियाँ हों। इसीलिए साल भर पहले बाली सम्मेलन में रूस ने इस समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए थे। यह एक गम्भीर उपलब्धि है। दोहा वार्ताओं में यह एक गम्भीर छलांग है। यह बात इसलिए भी गम्भीर है कि पिछले दो दशकों में विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत हुआ पहला समझौता है।

अब विश्व व्यापार के नियमों को सरल बनाने से जुड़े समझौतों के पैकेट की पुष्टि की जानी चाहिए। इन समझौतों के लागू होने के बाद विश्व व्यापार में दस ख़रब डॉलर की वृद्धि हो जाएगी। कस्टम और सीमा कर बाधाएँ हटने के बाद दुनिया की अर्थव्यवस्था व्यापार के क्षेत्र में किए जाने वाले खर्चों में भारी कमी करपाएगी। विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि दोहा वार्ताओं में आ गए गतिरोध सेबाहर आने के बाद अब दुनिया में दो करोड़ दस लाख रोज़गार के नए स्थान बनाने की सुविधा भी मिल जाएगी।

33.5.8 भारत और क्योंआर

वस्तुओं के आयात और निर्यात पर भौतिक प्रतिबंधों का निषेध,शुल्कों का प्रयोग आयातों और घरेलू उद्योगों पर नियंत्रण के लिए किया जाएगा। कोटा, आयात और निर्यात लाइसेंस प्रमुख क्योंआर हैं।

5.5.8.1 क्योंआर का प्रयोग कब किया जा सकता है

खाद्य और अन्य अनिवार्य उत्पादों की अत्यधिक कमी से छुटकारा पाने के लिए,अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में मानकों को बनाए रखने के लिए,सुरक्षा, लोक नैतिकता, स्वास्थ्य,अलाभकारी व्यक्तियों को कृषि उत्पादों की आपूर्ति पर सब्सिडी पेटेंट, ट्रेडमार्क आदि की संरक्षा, घरेलू उद्योगों को गंभीर संकट से सुरक्षित करने के लिए ,स्वर्ण और रजत व्यापार का नियमन इत्यादि।

अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंडऔर यूरोपियन समुदाय भारत के कृषि, कपड़ा और औद्योगिक उत्पादों पर क्योंआर केलिए भारत को विवाद समाधान बोर्ड में ले गए। भारत के विरुद्ध दंडात्मक नियम। अमेरिका के अलावा सभी के साथ मामला तय।पंचाट ने 1.4.2001 तक सभी क्योंआर हटाना निर्धारित किया।

520 मदों जहां क्योंआर गैट के अनुच्छेद XX और XXI (मनुष्यों की सुरक्षा, आगमन अथवा पादप जीवन, स्वास्थ्य, लोक सदाचार, सुरक्षा कारण आदि) के अंतर्गत रखे गए हैं, को छोड़कर अप्रैल 2001 तक सभी क्योंआर हटाना।सभी उत्पाद श्रेणियों पर प्रभाव पड़ेगा किंतु सबसे अधिक खाद्य उत्पाद, कपड़ा और उपभोक्ता सामान के प्रभावित होने की उम्मीद है।यद्यपि विकसित देशों में औसत सीमा-शुल्क 3.8 प्रति शत है, किंतु हित की वस्तुओं के लिए आवर्ती के साथ ऊंचे शुल्क हैं।टैक्सटाइल, कपड़ा, चमड़े का सामान, समुद्री उत्पादों, संसाधित खाद्य पदार्थों, कृषि उत्पादों पर अभी-भी ऊंचे शुल्क हैं।इन उत्पादों के लिए शुल्क में वृद्धि करना।

भारत की शुल्क रेखा बंधनकारी है –सभी शुल्क रेखाओं की 67 प्रतिशत,कृषि में 100 प्रतिशत,उद्योग में 62 प्रतिशत,तैयार माल पर 40 प्रतिशत, मध्यवर्ती वस्तुओं पर 25 प्रतिशत,सूचना प्रौद्योगिकी समझौते के अंतर्गत 2003 तक 217 सूचना प्रौद्योगिकी उत्पादों पर शून्य प्रतिशत शुल्क

33.5.9 भारत,विश्व व्यापार संगठन बनाम खाद्य सुरक्षा

भारत ने विश्व व्यापार संगठन के व्यापार सरलीकरण समझौते पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया है। पिछले वर्ष दिसंबर में बाली में इस पर भारत सहित 158 देशों ने सहमति दे दी थी और इसे 31 जुलाईतक पूर्ण रूप से अंगीकर किया जाना था, किंतु भारत के रुख से इसका पारित हो पाना संभव नहीं दिख रहा है। इसमें भारत को अनेक विकासशील देशों का सहयोग भी मिल रहा है। अगर जेनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ्स एंड ट्रेड (गैट) के दिनोंको जोड़ लें, तो विश्व व्यापार संगठन की सक्रियता के लगभग तीन दशक होने जारहे हैं। इस अवधि के दौरान वैश्विक व्यापार को सुचारु रूप से चलाने के लिए कई बैठकें हुई हैं और अनेक समझौतों पर सहमति बनी। पिछले वर्ष बाली में हुई बैठक इस कड़ी में सबसे अहम पड़ाव थी, जब अंतरराष्ट्रीय व्यापार-वाणिज्य के संचालन में आनेवाली प्रशासनिक और नौकरशाही से जुड़े अड़चनों को दूर करने के लिए व्यापार सरलीकरण समझौते पर सहमति बनी थी, जिसमें भारत समेत 158 देश शामिल थे। तब इस समझौते के अंतिम प्रारूप पर 31 जुलाई, 2014 तक हस्ताक्षर होने की बात कही गयी थी और 2015 के जुलाई तक सदस्य-राष्ट्रों द्वारा इसे लागू किया जाना था। किंतु, भारत ने खाद्य सुरक्षा के मसले पर इस समझौते के मौजूदा प्रारूप को मानने से इनकार कर दिया है। जेनेवा में 24 और 25 जुलाई को हुई संगठन कीबैठक में भारत ने संगठन पर अनेक देशों के हितों की उपेक्षा का आरोप लगाते हुए स्पष्ट कहा कि इससे संगठन की विश्वसनीयता खतरे में पड़ सकती है।

भारत का कहना है कि विकासशील देशों के समूह-33 द्वारा खाद्यान्न भंडारणऔर अपने नागरिकों को सस्ती दरों पर अनाज की उपलब्धता सुनिश्चित कराने सेसंबंधित सवालों पर विकसित देशों का रवैया ठीक नहीं है. भारत ने यह भी साफ कर दिया है कि खाद्य सुरक्षा और अल्प विकसित देशों के हितों पर ठोस निर्णयके बिना किसी समझौते को

स्वीकृति नहीं दी जा सकती है। भारत ने सुझाव दियाहै कि सदस्यों के बीच अभी और विचार-विमर्श की आवश्यकता है और इस पर व्यापक समीक्षा अक्तूबर, 2014 में की जाये। भारत एक और व्यापार संधि को नष्ट करने की कगार पर है, और फिर से मसला देश के विशाल सरकारी कार्यक्रमों का है जो किसानों और लाखों गरीब परिवारोंको उनके द्वारा उगाए जाने वाले खाद्य को खरीदने में मदद करते हैं।

यह सब्सिडी भारत में पहले से ही विवादास्पद रही हैं: वे सरकार की आमदनी पर भारी पड़ती हैं और उन्हीं को खाद्य मुद्रास्फीति के उच्च बने रहने कादोषी ठहराया जाता है। लेकिन इस रवैये से जेनेवा स्थित विश्व व्यापार संगठन में उत्तेजना क्यों है?यह सुनिश्चित करने के लिए कि सारे भारतीयों की खाने तक अच्छी पहुंच हो, सरकार किसानों से गेहूं और चावल खरीदती है और उसे देशभर की सार्वजनिकक्षेत्र की दुकानों पर वितरित करती है, जहां अनाज और अन्य मुख्य वस्तुएंसस्ते दामों पर बेची जाती हैं। जुलाई की शुरूआत में, गेहूं और चावल कासरकार का कुल संचित भंडार 61 मिलियन मेट्रिक टन था, जो कि 27 मिलियन टन के स्वीकार्य "बफ़र लेवल" से दोगुने से अधिक है।

लेकिन ये असल में भारत के संचित भंडार का आकार नहीं है जिसकी वजह से विश्व व्यापार संगठन के साथ समस्या हुई है; यह वह तरीका है जिससे सरकार वहभं डार एकत्रित करती है। भारतीय किसानों को उनकी फसल के लिए बाज़ार से अधिक कीमत देकर, सरकारी खाद्य खरीद कीमत, कथित रूप से विदेशी उत्पादकों की तुलना में उन्हें अनुचित लाभ दे रही है।

विशेष रूप से, विश्व व्यापार संगठन के नियम तब तक देशों को खाद्य भंडारण करने की अनुमति देता है जब तक उन पर "उत्पादकों को मूल्य समर्थन प्रदानकरने का प्रभाव नहीं पड़ता।" और जब सरकार उन

भंडारों को बेचती है, तो वह घरेलू बाज़ार कीमत से कम में नहीं बेचा जा सकता।

जब तक यह शर्तें पूरी होती हैं, एक देश के खाद्य एकत्रीकरण उपायों को कुल "समर्थन की कुल उपाय" या एएमएस (एग्रीगेट मेज़र्स ऑफ़ सपोर्ट) की ओरमाना जाता है, जो कि इसके कुल कीमत समर्थन और सब्सिडी का डॉलर मूल्य है। ऐसे देश जो एएमएस को पछाड़ देते हैं उनसे इस समर्थन के कुल मूल्य को एक निश्चित समय तक कम करने की उम्मीद की जाती है – या उन्हें संभावित दंडात्मक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है।संक्षेप में, कृषि सब्सिडी की एक अंतिम सीमा है, लेकिन कोई पक्का नियम नहीं है। भारत और अन्य विकासशील देश उस अंतिम सीमा के बिना इस संगठन का हिस्सा बना रहना चाहते हैं।

पिछले साल दिसंबर में इंडोनेशिया के बाली में हुए विश्व व्यापार संगठनके एक सम्मेलन में, इन देशों ने इन नियमों को संशोधित करने का प्रस्ताव रखाथा ताकि सरकारी खाद्य संचित भंडारण को तब तक एएमएस में न गिना जाए जब तककि उसका लक्ष्य गरीब किसानों की मदद करना हो- चाहे उसमें बाज़ार कीमत सेअधिक पर खाद्य खरीदना शामिल हो।

33.5.9.1 बाली सम्मेलन

बाली में विश्व व्यापार संगठन के 9वें मंत्रिमंडलीय सम्मेलन में वाणिज्य एवंउद्योग मंत्री श्री आनन्द शर्मा का संसद में वक्तव्य: मैंने 3 से 7 दिसंबर 2013 बाली में विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के 9वें मंत्रि मंडलीय सम्मेलन में भाग लिया। दोहा में 2001 के सम्मेलन में बहुपक्षीय व्यापार वार्ताके लिए एक विस्तृत विकास के एजेंडा पर आम राय बनी थी। 1995 में जबसे विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई है, सदस्य देशों के बीच किसी बहुपक्षीय करार पर आम राय कभी भी कायम नहीं हो पाई

थी। बाली सम्मेलन एक ऐसा अवसर रहा, जहां सदस्यों ने किसी करार पर सहमति व्यक्त की।

यह बैठक विकासशील तथा विकसित देशों के बीच कुछ अहम् फैसलों के बीच संपन्न हुई ,बैठक के कुछ पहलूओं सेजाहिर होता है की हम एक बार फिर पूंजी राष्ट्रों की कूटनीतिक चालों केसामने झुक गए है इस मंत्री स्तरीय सम्मेल्लन में एक तरफ जहाँ भारत नेअपने हितों को ध्यान में रखते हुए कृषि सब्सिडी जारी रखने की बात की, वहीं विकसित राष्ट्रों ने इस सब्सिडी का पुरजोर विरोध किया,और साथ ही वे भारत पर यह समझौता करने के लिए दबाव बना रहे है,कारण है कि इसके पहले की विश्व व्यापार संगठन की मंत्री स्तरीय बैठकें बिना किसी समझौते के संपन्न होती रही है,यदि यह बैठक भी बिना किसी फैसले के संपन्न होती हैतो, वैस्विक कारोबार में बर्चस्व रखने वाले इस मंच के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगना संभव है

विकसित राष्ट्रों का कहना है कि जैसा की विश्व व्यापार संगठन के नियमानुसार कोई भी सदस्य राष्ट्र कृषि उत्पादों पर 10 फीसदी से ज्यादा सब्सिडी नही देगा जिससे व्यापार में संतुलन बना रहे, लेकिन भारत सब्सिडी की सीमा का उल्लंघन करते हुए अपने कृषि उत्पादों को कम कीमत पर जनता को मुहैया करा रहा है, जो व्यापार कीस्वस्थ प्रतिस्पर्धा के विपरीत है,अतः विकसित देशों का कहना है कि भारत सरकार कृषि सब्सिडी तथा सस्ता अनाज देना बंद करे, जिससे व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े और कम्पनीयां उचित मुनाफा कमा सकें , ज्ञातव्य हो कि 1995 में अमेरिका का व्यापार घाटा 16 अरव डॉलर था। वहीं 2013 में बढ़कर 730 अरब डॉलर हो गया है ,कारण है कि चीन एवं अन्य देशों ने वैश्विक व्यापार में अपनी भूमिका

को सुनिश्चित किया हैं. अतः इससे साफ़ जाहिर है कि विकासशील देशों के बाजारों में पहुंच बनाकर अमेरिका अपने व्यापार घाटे को संतुलित करने का प्रयास कर रहा है ,इसके अलावा एक तथ्य यह और है कि अमेरिकीजनता भारत की एक चौथाई है , और वह 45 खरब रूपए खर्च कर अतिरिक्त पोषण सहायता कार्यक्रम चलाकर 470 करोड़ लोगो पर प्रति 96,280 रूपए व्यय कर 240 किलो अनाज मुहैया कराता है, वहीं भारत 77 फीसदी लोगों को 30 रूपए प्रतिदिन खर्च करने वालों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत 47 करोड़ लोगो पर 1620 रूपए व्यय कर सालाना 58 किलो सस्ता अनाज मुहैया कराती हैं, जिससे विकसित देशों को दिक्कत होना स्वाभाविक है ,ध्यातव्य हो कि अमेरिका कृषि पर सब्सिडी 1995 में 34 अरब रूपए थी , वहीं अब बढ़कर 79 अरब रूपए हो गई है ,अतः सभी देश मिलकर 244 खरब रूपए की सब्सिडी दे रहे है ,अतः वे चाहते है कि विकासशील रास्ट्र अपने नागरिकों को सब्सिडी के माध्यम से मदद ना करें , ताकि विकसित देशों के उत्पादों को विकासशील देशों में माकूल वातावरण मिलता रहे और उनके बाजारों पर कब्ज़ा बना रहे, परिणामतः वार्ता के अंत में भारत का पक्षथा, कि हम कृषि उत्पादों में सब्सिडी ज़ारी रखेंगे, जबकि विश्व व्यापार संगठन का कहनाथा, कि वर्तमान में आप सब्सिडी जारी रखेगे। अतः इससे साफ़ जाहिर है कि भविष्य में कृषि सब्सिडी ख़त्म होने कि सम्भावनाओं को नकारा नहीं जा सकता ,!

2008 से लेकर अब तक वैश्विक आर्थिक परिदृश्य एवं पूर्ण दोहा विकास एजेंडापर आम राय तक पहुंचने में सदस्यों की असमर्थता की पृष्ठभूमि में यह निर्णय लिया गया था कि 2011 के आठवें मंत्रिमंडलीय सम्मेलन में

उन क्षेत्रों पर ध्यान दिया जाये जहां सहमति संभव है। तदानुसार 2012 में सदस्यों के बीच विचार-विमर्श के उपरांत यह सहमति हुई कि सदस्यों को कतिपय क्षेत्रों जैसे-कृषि, विकास के मामले तथा न्यूनतम विकसित देशों (एलडीसी) के लिए संबंधित मुद्दों के बारे में व्यापार को सुविधाजनक बनाने की सुविधा में सहमति के प्रयास किये जायें। बाली सम्मेलन के लिए सीमित क्षेत्रीय एजेंडा को देखते हुए भारत ने यह निर्णय किया कि खाद्य सुरक्षा संबंधी सार्वजनिक अंशधारिता के लिए सीमान्त किसानों से अनाज खरीदने का मामला बातचीत की मेज पर जोरदार तरीके से उठाया जाए।

वर्तमान में कृषि संबंधी करार खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक अंशधारित कार्यक्रम को प्रतिबंधित नहीं करता।तथापि यदि ऐसे कार्यक्रमों के लिए खाद्यान मदें बाजार मूल्यों की अपेक्षा निर्धारित मूल्यों पर हासिल की जाती हैं तो इसे किसानों के समर्थन के रूपमें माना जाता है। यूरूग्वे दौर में अधिनिर्णित डब्ल्यूटीओ नियमों में यहप्रावधान है कि प्रश्नगत उत्पाद के लिए ऐसा कोई भी समर्थन मूल्य उसके उत्पादन की दस प्रतिशत सीमा के भीतर रखा जाएगा। तथापि इस समर्थन मूल्य कीसंगणना के नियम मुद्रा स्फीति पर विचार किये बिना 1986-88 के संदर्भ मूल्यपर आधारित थे। विकासशील देशों के समूह जी-33 का हिस्सा होने के नाते भारत ने कृषि के संबंध में डब्ल्यूटीओ के करार में इन नियमों में संशोधन करने काप्रस्ताव किया था। यह प्रस्ताव कोई नया नहीं है। विकासशील देशों के अन्य समूहों द्वारा भी ऐसे सुझाव दिये गये थे। यह दिसंबर 2008 के कृषि – विमर्श के मसौदे का एक स्थायी हिस्सा भी था।

जी-33 के प्रस्तावों को जोरदार तरीके से उठाया गया। तथापि भारत अपने रूख पर दृढ़ रहा और अपने सशक्त प्रयासों से यूएस,ईयू,आस्ट्रेलिया,कनाड़ा तथा अन्य देशों को वार्ता के लिए ला पाने में समर्थ हुआ। जी-33 में निर्धारित मूल्य के मुद्रास्फीति समायोजन

सहित विभिन्न विकल्पों के सुझाव दिये गये हैं। तथापि विकसित देशोंने ऐसे प्रस्तावों पर किसी विचार-विमर्श होने देने को प्रभावी ढंग से रोकना चाहा। इसके उलट, जी-33 के सामने एक ऐसा प्रस्ताव रखा गया जिसके तहत विश्व व्यापार संगठन विवाद निपटान प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न चुनौतियों से अस्थायी सुरक्षा प्रदान करने के लिए दो साल की नियंत्रक प्रणाली की बात की गई थी इसके चलते समुची प्रक्रिया निष्प्रभावी पड़ जातीऔर संसद द्वारा पास किये गये राष्ट्रीय खाद्यान सुरक्षा अधिनियम के कार्यान्यवन सहित खाद्यान वसूली एवं सार्वजनिक वितरण की भारत की नीतियों परप्रभाव पड़ता है।

डब्ल्यूटीओ में भारत का निरन्तर यह रूख रहा है कि आजीविका खाद्यान सुरक्षा तथा ग्रामीण विकास से संबंधित मामले अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। विकासशील देशों के लिए विशेष एवं पृथक विचार किया जाना जरूरी है। मंत्रिमंडल बैठक में लिये गये निर्णय के अनुरूप मैंने अपने प्रमुख वक्तव्य में यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत के लिए खाद्यान सुरक्षा के मसले पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसका प्रश्न लाखों छोटे किसानों की आजीविका तथा गरीबों की खाद्यान सुरक्षा से सीधे जुड़ा हुआ है, जो यह समाज के कमजोर वर्ग हैं। मैंने इस तथ्य को रेखांकितकिया कि कोई अंतरिम समाधान इसका अस्थाई हल नहीं हो सकता और न ही इसे खारिज किया जा सकता है तथा जब तक इसका कोई स्थाई हल नहीं निकल आता यह विचारणीय विषय हमेशा रहेगा। मैंने यह भी कहा है कि खाद्यान सुरक्षा विषय पर किसी संतोषजनक निर्णय के बगैर हमारा मानना है कि बाली पैकेज आद्योपान्त असंतुलित है और हम इसका समर्थन कर पाने में असमर्थ हैं।बाली में भारत कोअगल-थलग करने के सामूहिक प्रयास किये गये। अफ्रीका, एशिया तथा दक्षिणअफ्रीका, मॉरीशस, ब्राजील, मिस्र, नाइजीरिया, केनिया, जिम्बाब्वे, नामीबिया, युगांडा, अर्जंटिना, तंजानिया, क्योंबा, बोलिविया, इक्वादौर, वेनेजुएला, निकारागुआ, सयरालियोन तथा नेपाल सहित लेटिन अमेरिका के विकासशीलदेशों

में भी हमारी सैद्धांतिक स्थिति को दृढता से उठाया गया। अफ्रीकी, कैरेबियाई पेसेफिक (ऐसीपी) समूह, एलडीसी समूह तथा अफ्रीकी देशों के समूहने भी भारत के दृष्टिकोण का समर्थन किया और कहा कि भारत द्वारा उठाई गयी समस्याओं का हल निकालना ही होगा।

हमने समर्थन का व्यापक समूह रचा जिसने यूएस और ईयू को जमीनी स्तर पर लाने में मदद की। भारत ने देशों की विशिष्ट नीति को नकारा और सभी विकासशील देशों को रक्षा उपलब्ध कराने कीमंशा पर लगातार जोर दिया। लगातार तीन दिन से ज्यादा गहन विचार-विमर्श के उपरान्त सम्मेलन समाप्त होने से कुछ ही घंटे पहले सदस्यों के बीच एक संशोधित प्रारूप का पाठ रखा गया, जिसमें हमारी महत्वपूर्ण चिन्ताओं को अन्तर्विष्ट किया गया था। इसमें प्रावधान रखा गया है कि अंतरिम उपायों का प्रारूप दिया जाये तथा डब्ल्यूटीओ के 11वें मंत्रिमंडलीय सम्मेलन द्वारा अंगीकार के लिए स्थाई समाधान हेतु किसी करार पर विचार-विमर्श किया जाए। जबतक स्थाई हल नहीं निकलता अंतरिम उपायों में सदस्य देशों को सार्वजनिक अंशधारिता कार्यक्रमों के समन्वय खाद्य सुरक्षा प्रयोजनों हेतु कृषि संबंधीकरार के अंतर्गत डब्ल्यूटीओ में चुनौती के प्रति अभिरक्षित रखा जाए। यहस्पष्ट तौर पर उल्लेख किया गया कि जब तक कोई स्थाई हल नहीं निकलता, यह अंतरिम उपाय जारी रखे जाएंगे। इसमें पेच यह रहा कि डब्ल्यूटीओ की पात्रताके उल्लंघन की शंका के बगैर भारत अपने किसानो को समर्थन उपलब्ध कराने की प्रवृत्ति को जारी रखेगा। इससे डब्ल्यूटीओ के सदस्यों से यह भी वायदा हासिल हुआ कि वह बाली सम्मेलन उपरान्त स्थाई समाधान के लिए डब्ल्यूटीओ के सदस्यगण प्रयासरत रहेगे। अब हम स्थाई समाधान के लिए विचार-विमर्श की तैयारी कर रहे हैं। ऐसे देश जो सार्वजनिक अंश धारिता कार्यक्रमों का संचालन नहींकर रहे हैं, वे भी इन्हें लागू करने के लिए, यदि वे चाहें विचार कर सकते हैं।

व्यापार को सुविधाजनक बनाने की दिशा में हमने सीमा शुल्क सहभागिता के प्रस्तावों को तथा कृषि निर्यात संबंधी मसलों को सदस्यों केबीच स्वीकार योग्य पाया। व्यापार सुविधा करार, जिसे भारत द्वारा इसकासमर्थन किया गया था, मुख्यतः उत्पाद शुल्क प्रक्रियाओं की व्यापक पारदर्शिता तथा सरलीकरण, इलेक्ट्रोनिक विधि से भुगतान एवं जोखिम प्रबंध तकनीकों एवं अंततः सभी बंदरगाहों पर माल की तेजी से निकासी को केन्द्र बिन्दु बनाकर रखा गया था, इन सभी उपायों से लेन-देन लागत में कमी आएगी और इससे व्यापारिक प्रतिस्पर्धा बढ़ाने में मदद मिलेगी। इनमें से नये उपायोंको उदारीकरण एवं प्रक्रियाओं के सरलीकरण के लिए हमारी व्यापक प्रयासों केरूप में भारत द्वारा पहले ही लागू किया जा चुका है।

रिपोर्ट के अनुसार प्रत्यक्षविदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए अधिकतर देश द्विपक्षीय व बहुपक्षीय स्वतंत्र व्यापार समझौते का सहारा ले रहे हैं लेकिन ऐसे समझौते कठोर मर्यादित प्रतिबद्धता के साथ किये जाने चाहिये लेकिन ऐसे समझौते विकासशीलदेशों की विकास आवश्यकता के अनुरूप नहीं होते हैं। विकासशील देशों को ऐसे समझौतों पर विशेष ध्यान देना चाहिये जो उनकी समस्याओं व चिन्ता को समाप्त करने में सहयोगी सिद्ध हों।व्यापक कूटनीतिक तेवर और अस्थिरता के बाद, व्यापार मंत्री ने इस तरह के कार्यक्रमों को कुछ वक्त के लिए अनुमति देने का फैसला किया, चाहे वह अभी भी विश्व व्यापार संगठन के नियमों में उलझा हुआ हो।दूसरे शब्दों में, विश्व व्यापार संगठन के सदस्य मुश्किल से ही इस असहमति पर सहमत हुए। जिसने सिडनी में वर्तमान संघर्ष के लिए माहौल बना दियाहै।

अर्थशास्त्रियों के बीच इस बात को लेकर काफी वाद-विवाद चल रहा है किकैसे और क्या कृषि व्यापार हेतु “निष्पक्ष और बाज़ार-आधारित” प्रणाली केविश्व व्यापार संगठन के लक्ष्य का विकासशील देशों की खाद्य-सुरक्षा आवश्यकताओं के साथ मतभेद है।भारत के मामले में, आप

हमेशा यह तर्क दे सकते हैं कि बाज़ार से ऊंचेदामों पर किसानों का अनाज खरीदने से अप्रत्यक्ष व्यापार में गड़बड़ी होतीहै क्योंकि यदि सरकारी सब्सिडी किसानों के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिएउन्हें प्रेरित नहीं करती, तो भारत को विदेशों से अधिक आयात करना पड़ेगा।लेकिन प्रत्यक्ष व्यापार विकृतियों के सबूत खोजना मुश्किल है। भारत सरकारने विश्व बाजार में अपने अधिशेष गेहूं को सस्ते दामों पर नहीं बेचा। फसल का मौसम सामान्य से अधिक सूखा होने के कारण, सरकारी गेहूं निर्यात को फिलहाल रोक कर रखा है, लेकिन आमतौर पर, जब सरकार निर्यात करती है, तो वह बाज़ारकीमत पर ही करती है।

यदि विश्व व्यापार संगठन अंत में भारत के खाद्य-सुरक्षा कार्यक्रमों को स्वीकार भी कर लेता है तो, विशाल लागत पर भारत के अंदर पहले ही भंवे तन रहीहैं।जर्जर नौकरशाही और कमज़ोर परिवहन का मतलब सरकार का अनाज भंडार अन्नागार में रखे सड़ जाना या बाहर खुले में, और तिरपाल के नीचे पड़े रहना है। वितरण प्रक्रिया में बहुत अधिक मात्रा में अनाज चुरा लिया जाता है। और यह स्पष्टनहीं है कि क्या भारत के खाद्य-सुरक्षा प्रयास मूल अर्थ में सफल होपाएंगे: देशभर में भूख और कुपोषण अभी भी बड़े पैमाने पर व्याप्त है।ये सब बताता है कि भारत कम से कम सिद्धांत में, अपने किसानों और ज़रूरतमंद परिवारों की बहुत कम खर्च में प्रभावशाली मदद कर रहा है—और इसलिए विश्व व्यापार संगठन के साथ बहुत कम खर्च वाली बात मुश्किल पैदा कर रहीहै।21 मार्च को हुई विश्व व्यापार संगठन की कृषि समिति की बैठक में, अमेरिका ने इस ओर इशारा किया था कि इस साल खाद्य सब्सिडी के लिए भारतीय सरकार के बजट में 1.15 ट्रिलियन रूपये या 19 बिलियन डॉलर की कीमत तय की गई है, जबकि घरेलू खर्च के नवीनतम सर्वेक्षण से पता चलता है कि भारत का कुल गरीबी अंतर 550 बिलियन रूपये है।

दूसरे शब्दों में, भारत की खाद्य सब्सिडी की वार्षिक खर्च उस कीमत से दुगना है जितने में देश भर के सारे गरीबी रेखा से नीचे के गरीबों को नकददेने का खर्च होगा।अमेरिका ने इस बैठक में पूछा, "सीमित व्यय के अलावा, भारत सरकार अपनीवर्तमान नीतियों को अधिक प्रभावी रूप से लागू करने के लिए क्या कदम उठा रहीहै?"अफसोस, ये सवाल लोग भारत सरकार के बहुत सारे कार्यक्रमों के बारे में पूछ सकते हैं।

33.5.9.2 समूह-33 के देशों का सहयोग

भारत द्वारा अपनाये गये रुख को समूह-33 के देशों का पूरा सहयोग मिला है.पाकिस्तान को छोड़ कर समूह के 45 अन्य देशों ने खाद्यान्न सहयोग व भंडारण कार्यक्रमों को संगठन के 'ग्रीन बॉक्स' श्रेणी में डालने की मांग की है। उल्लेखनीय है कि विश्व व्यापार संगठन ने अनुदानों को ट्रैफिक के रंगों के अंतर्गत श्रेणीबद्ध किया गया है। लाल रंग के बॉक्स में अनुदान या संरक्षण की मनाही है।

हरे रंग में अनुमति वाले अनुदान हैं. एंबर (पीले) रंग के तहत अनुदानोंको धीरे-धीरे खत्म करना है। इस श्रेणी में समर्थन मूल्य और किसानों को नकदी हस्तांतरित करने वाले अनुदान हैं. यह अनुदान विकसित देशों के लिए कृषि उत्पादन का अधिकतम पांच और विकासशील देशों के लिए अधिकतम 10 फीसदी हो सकतीहै। एंबर बॉक्स में ही ब्लू बॉक्स है, जिसमें किसानों को उत्पादन सीमितकरने के लिए अनुदान देने की व्यवस्था है। भारत की मांग है कि खाद्यान्न सुरक्षा से संबंधित कार्यक्रमों को ग्रीनबॉक्स में डाला जाये। अनेक कृषि विशेषज्ञों ने रेखांकित किया है कि अमेरिकाने अपने यहां कृषि पर दिये जाने वाले भारी-भरकम अनुदानों को इसी श्रेणी मेंडाला है. इतना ही नहीं, उसने अनुदान की आंकड़े भी ठीक से नहीं जाहिर किये हैं। यही स्थिति अन्य विकसित देशों के साथ भी है।

भारत और अन्य विकासशील देशों के बाली बैठक से भिन्न रुख अख्तियार करनेसे घबराये विकसित देशों का कहना है कि इन देशों के रवैये से व्यापार सरलीकरण समझौते से वैश्विक अर्थव्यवस्था में होने वाली एक खरब डॉलर कीवृद्धि तथा दो करोड़ से अधिक रोजगार के अवसरों के सृजन को धक्का पहुंचेगा और इसका नुकसान विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को ही अधिक होगा। हालांकि, इन संभावित आंकड़ों का परीक्षण करें तो ये विश्वसनीय नहीं हैं। इनका यह आधार ही बड़ा बेतुका है कि आयात-निर्यात के विस्तार से सभी देशों की आय एक समान होगी। दूसरा, यह कि व्यापार सरलीकरण की प्रक्रिया में होने वाले भारी खर्च को इसमें अनदेखा कर दिया गया है। जेनेवा में भारत द्वारा लिया गया कड़ा रुख प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी औरउनकी नयी सरकार के वैश्विक राजनीतिक मंच पर अधिक सक्रिय भूमिका निभाने कीतैयारी की ओर संकेत करता है। इसी महीने ब्रिक्स देशों ने विकास बैंक और विशेष कोष की स्थापना का बड़ा निर्णय लिया है, जो विकसित देशों केनियंत्रणवाले विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रभाव पर असरडालने की क्षमता रखते हैं। भारतीय वाणिज्य मंत्री ने सिडनी में हुई समूह-20 की बैठक में भी विश्व व्यापार संगठन में भारत के रुख को स्पष्ट कर दिया था। नरेंद्र मोदी और भाजपा ने चुनाव में किसानों को 50 फीसदी लाभ सुनिश्चित करने का वादा किया है।

अगर सरकार इस समझौते पर हस्ताक्षर कर देती है, तो उसके लिए इस वादे पर एक हद तक अमल कर पाना भी असंभव हो जायेगा। राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार नरेंद्र मोदी सितंबर में प्रस्तावित अमेरिका यात्रा को एक बड़ी वैश्विक राजनीतिक परिघटना के रूप में रेखांकित करना चाहते हैं। इसके लिए उनका विकासशील देशों के प्रतिनिधि के रूप में देखा जाना जरूरी है। कभी अंतरराष्ट्रीय राजनीति में भारत का प्रभावी दखल होने का बड़ा कारण था कि तीसरी दुनिया उसे बतौर प्रवक्ता देखती थी।

भारत ने व्यापार को सुगम बनाने के लिए अपने स्तर पर कई कदम उठाये हैं। बजट में सीमा शुल्क तंत्र को सरल करने की घोषणा की गयी है और नये बंदरगाहों के निर्माण का प्रस्ताव किया गया है. साथ ही, कृषि में उदारीकरण की प्रक्रिया तेज की गयी है। यह सब विश्व व्यापार संगठन की व्यवस्थाओं के अनुरूप ही है।

खाद्यान्न सुरक्षा व भंडारण को बहुत जल्दी खत्म कर कृषि को पूरी तरहमुक्त बाजार के हवाले कर देना व्यावहारिक नहीं है और यह सरकार के लिए भी राजनीतिक रूप से आत्मघाती होगा। आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के इस स्वाभाविक विकास को सरकार कब तक रोक सकेगी, यह भविष्य के गर्भ में है।

33.5.10 व्यापार सरलीकरण समझौता (टीएफए)

इस समझौते के तहत यह व्यवस्था कायम करने की कोशिश है कि सामानों के एक देश से दूसरे देश में ले जाने में अफसरशाही से होने वाली बाधाओं को दूर किया जाये। इसमें व्यापार के क्षेत्र में तकनीकी सहायता और क्षमता-निर्माण काप्रावधान है. समझौते के प्रारूप में विकासशील देशों और अल्प-विकसितराष्ट्रों की समस्याओं व सीमाओं को ध्यान में रखते हुए विशेष रियायत की बात कही गयी है। इन श्रेणियों में आनेवाले देशों को बुनियादी ढांचों के विकास के लिए उनके संसाधनों से अधिक निवेश करने के लिए दबाव नहीं देने का आश्वासन भी है। इस समझौते पर आम सहमति के साथ हस्ताक्षर की अंतिम तारिख 31 जुलाई, 2014 रखी गयी थी और समझौते पर सहमति के बाद एक वर्ष यानी 31 जुलाई, 2015 तक सदस्यों द्वारा इसके प्रावधानों को लागू करने का प्रस्ताव है. सदस्य देशों में इस समझौते पर सहमति है, पर एक उपबंध को लेकर भारत समेत अनेक विकासशील देशों व विकसित देशों के बीच ठनी हुई है. इस उपबंध में यह व्यवस्था है कि कृषि पर दिया जानेवाला सरकारी अनुदान उत्पादन की कुल कीमत के 10 फीसदी सेअधिक नहीं होनी चाहिए. यदि कोई इस सीमा का

उल्लंघन करेगा, तो अन्य देश उसकाविरोध कर सकते हैं और उसके विरुद्ध व्यापारिक प्रतिबंध लगा सकते हैं. इस उपबंध को स्वीकार कर लेने से विकासशील व अल्प विकसित देशों के खाद्यान्न सुरक्षा तंत्र पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। इन देशों में गरीब जनता और किसानों के हितों की रक्षा सरकारों की प्रमुख जिम्मेवारी है। अनुदान व कृषि उपजों के संरक्षण पर ऐसी किसी सीमा को स्वीकार कर लेने का सीधा अर्थ यह है कि खाद्यान्न उपलब्धता व उसके बाजार को विकसित अर्थव्यवस्थाओं के हवाले कर देना। भारत व समूह-33 के देशों द्वारा इसका विरोध स्वाभाविक है. दिसंबरमें बाली में हुई बैठक में भारत ने इस प्रारूप पर प्रारंभिक सहमति इस शर्तके साथ दी थी कि विकासशील देशों के विरुद्ध 2017 तक किसी प्रकार की वैधानिक कार्रवाई नहीं की जायेगी और न ही कोई आर्थिक प्रतिबंध लगाया जायेगा। लेकिन तब यह भी कह दिया गया था कि इस छूट का कोई असर आयात-निर्यात के मूल्यों पर नहीं पड़ना चाहिए.

33.5.10.1 टीएफए पर भारत की आपत्ति

जेनेवा बैठक में भारत ने स्पष्ट कह दिया है कि जब तक समझौते में खाद्यान्न सुरक्षा के प्रश्न को समुचित तरीके से सुलझाया नहीं गया, उसकेलिए इस पर हस्ताक्षर कर पाना संभव नहीं होगा. भारतीय संसद द्वारा पारित खाद्यान्न सुरक्षा कानून के अनुसार, गरीब लोगों को अत्यंत कम दाम पर भोजन उपलब्ध कराना वैधानिक जिम्मेवारी है. सरकार किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर अनाज खरीदती है, जो कि उनके आर्थिकहितों की रक्षा करता है. इस प्रक्रिया से सरकार अनाज का भंडारण भी करती हैताकि जरूरत के मुताबिक वह लोगों को खाद्यान्न उपलब्ध करा सके.

इसके अलावा, वह किसानों को कम ब्याज दरों पर ऋण देती है, फसलों का बीमा करती है और प्राकृतिक आपदा की स्थिति में खराब फसलों के लिए मुआवजा देतीहै। भारत में किसानों के लिए बिजली और

रासायनिक उर्वरकों पर भी अनुदान की व्यवस्था है। ऐसी हालत में भारत के लिए दस फीसदी की सीमा रेखा को स्वीकार कर पाना संभव नहीं है। ध्यान रहे, यह सीमा 1986-88 के मूल्य सूचकांक के आधार पर तय की गयी है। उस समय के मुकाबले आज अनाज की कीमत काफी बढ़ चुकी है। विकासशील देश 2006 से ही मांग कर रहे हैं कि इस संदर्भ मूल्य को मुद्रास्फीति के अनुरूप संशोधित किया जाये, लेकिन अमेरिका सहित विकसित देश इस मांग का विरोध करतेरहे हैं। उल्लेखनीय है कि भारत में निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य बाजारकी कीमतों से थोड़ा ही अधिक होता है, लेकिन जब इसे 1986-1988 के मूल्यों के साथ देखा जाता है, तो यह राशि बहुत अधिक प्रतीत होती है।

इस समझौते में यह भी शर्त है कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय को सरकारी अनाज भंडारों की जानकारी उपलब्ध करानी होगी। साथ ही, अनुदान के साथ उपलब्ध कराये जाने वाले अनाज में अनेक पौष्टिक अनाजों को शामिल करने की मनाही है। इसपूरे प्रकरण का एक बड़ा चिंताजनक पहलू यह है कि विश्व व्यापार संगठन के समझौतों में विकासशील देशों में सरकारी अनुदान व संरक्षण का मुद्दा तोजोर-शोर से उठाया जाता है, लेकिन विकसित देशों द्वारा अपने किसानों को दी जाने वाली भारी-भरकम अनुदान राशि व संरक्षण की चर्चा तक नहीं होती।

33.5.10.2 तीसरी दुनिया के देशों में आपसी सहयोग जरूरी

खाद्य सुरक्षा मसले पर अपनी मांगों के समर्थन में भारत द्वारा विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में तय व्यापार सरलीकरण समझौते (टीएफए) कोमंजूरी देने से इनकार की खबर लगातार सुर्खियों में बनी हुई है। यह जानने केलिए अभी इंतजार करना पड़ेगा कि सरकार इस मामले पर अडिग रवैया अपनायेगी या पिछले साल बाली में हुई डब्ल्यूटीओ की मंत्री-स्तरीय बैठक की तरह आखिर मेंकोई समझौता कर लेगी। बहरहाल, कुछ अपवादों को छोड़ कर सार्वजनिक तौर पर इसपूरे प्रकरण से जुड़े तथ्यों को ठीक तरीके से सामने रखने का प्रयास

नहीं किया गया है। डब्ल्यूटीओ में विकासशील देशों के खिलाफ भेदभावपूर्ण बर्ताव को समाप्त करने के लिए दोहा में 2001 में हुई मंत्री-स्तरीय बैठक में एक अहम समझौताहुआ था। विकसित देशों के दबाव के चलते आज तक दोहा जनादेश को लागू करने कीदिशा में कोई प्रगति नहीं हुई है। लगातार बने इस गतिरोध के दौरान बाली में होने वाले बैठक को संगठन केभविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण पड़ाव माना जा रहा था। इस बैठक में तीन अहममुद्दे चर्चा के लिए रखे गये-व्यापार सरलीकरण, खाद्य सुरक्षा पर जी-33 काप्रस्ताव और अल्प विकसित देशों के लिए पैकेज।

मोटे तौर पर कहा जाए तो बाली में पहले मुद्दे पर प्रगति हुई है, जबकिबाकि दो पर महज खानापूर्ति। कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण अनुमानों को छोड़ कर इसबात पर सभी सहमत हैं कि व्यापार सरलीकरण समझौते को लागू करने के लिए तीसरी दुनिया के देशों को भारी खर्च उठाना पडेगा और इसका ज्यादातर फायदा विकसितदेशों को ही मिलेगा। वहीं जी-33 प्रस्ताव के नामंजूर होने से भारत सहित कई देशों की खाद्य सुरक्षा के लिए नीतियां लागू करने की स्वतंत्रता पर गंभीररुकावटें आयेंगी।

जी-33 प्रस्ताव इस संगठन के मौजूदा कृषि क्षेत्र के अनुदान-संबंधी नियमों में विकासशील देशों के अनुरूप उपयुक्त सुधार करने का मसौदा है, जिससे यह सुनिश्चित हो सकेगा कि ग्रामीण विकास, कृषि-उत्पादकता बढ़ाने और छोटे किसानों से खाद्यान्न खरीद कर जन वितरण प्रणाली जैसे माध्यमों द्वारा सस्ते दरों पर बेचने आदि पर किये गये खर्च को प्रतिबंधित 'एंबर बॉक्स' श्रेणी में नहीं गिना जायेगा। सरकार द्वारा खाद्यान्न अधिप्राप्ति भारत के लिए विशेष तौर पर महत्वपूर्ण है, क्योंकि राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून लागू होने के बाद इसमें होने वाली वृद्धि से यह लगभग तय माना जा रहा है कि भारत अपनी स्वीकृत अनुदान सीमा को पार कर जायेगा। ऐसा होने पर या

तो इस कार्यक्रम में रुकावट आयेगी या भारत को डब्ल्यूटीओ में मुकदमे ङोलने पड़ेंगे. जाहिर है कि इस मसले के साथ सिर्फ आर्थिक ही नहीं, राजनीतिक परिणाम भी जुड़े हैं।

मौजूदा नियम किस हद तक बेतुके हैं, इसका एक उदाहरण यह है कि एंबर बॉक्स के अंतर्गत आने वाले अनुदान का हिसाब निकालने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य से घटाया जाने वाला अंतरराष्ट्रीय मूल्य 1986-88 के दामों पर आधारित है!इसका मतलब है कि वर्तमान न्यूनतम समर्थन मूल्य- जो लागत पर आधारित हैं, और 1986-88 के मूल्यों में जो भी अंतर होगा, वो भारत द्वारा प्रतिबंधित अनुदानों की कुल राशि को लगातार बढ़ाता जायेगा।

विश्व व्यापार संगठन में निर्णय लेने का जो तरीका है, उसमें सर्वसम्मतिके बिना कोई भी अहम फैसला नहीं लिया जा सकता। बाली में व्यापार सरलीकरण पर सहमति देने को सही ठहराते हुए पिछली सरकार ने यह दावा किया था कि खाद्य सुरक्षा नीति की संप्रभुता पर कोई खतरा नहीं है। दिसंबर से जुलाई के बीचमें इन दावों की हवा निकल गयी है। इसके परिणाम स्वरूप बदहवास नयी सरकार इस बात का पूरजोर प्रयास कर रही हैकि किस तरह मामले को फिर से बाली में हुई बैठक के पहले वाली स्थिति में ले जाया जाए। ध्यान देने लायक बात यह है कि सिर्फ व्यापार सरलीकरण को लागूहोने से रोक देने से खाद्य सुरक्षा नीति में आने वाली परेशानियां दूर नहींहोंगी, क्योंकि उनके लिए नियमों को बदला जाना जरूरी है।

चुनौती बहुत कठिन है और इसमें सफल होने की पहली शर्त तीसरी दुनिया के देशों के साथ परस्पर सहयोग बढ़ाना है, भले ही यह कोशिश अमेरिका को बहुत नागवार गुजरे।

33.5.11 भारत में कृषि-निर्यातों के विस्तार की उम्मीद

विश्व व्यापार संगठन ने देशों के विकास के लिए चार तात्कालिक प्रवृत्तियों को लागू करने मे मदद की है जिससे व्यापार और विकास के संबंध बदले है, विश्व व्यापार संगठन के हाल ही के अंक ने ये 20 अक्तूबर 2014, जेनेवा के अनुसार,40 प्रतिशत भूमि को रसायन से नहीं छूया जाएगा –या कीटनाशक या उर्वरको से। प्रमाणित ओरगनिक खाद्य कि मांग यूरोपियन देशों में बढ़ रही है। और भारत ऐसे बाज़ारो का लाभ उठा सकता है।

भारत में बहुत से जड़ी-बूटिया और औषिधिक पौधे है जो कि फार्मा कंपनियो को विदेशों से भारत कि और आकर्षित कर रही है। ऐसे संसाधन भारत में जंगलो, पहाड़ियों तथा वनो में उपलब्ध है। ऐसे पौधो का एकत्रीकरण व रोपण ने भी भारत के बाज़ार के लिए द्वार खोल दिये है।

गाँव के श्रमिक, खास तौर पर महिलाओ ने बहुत ही उत्तम श्रेणी के क्रॉस पोलीनेशन का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जिससे भारत को बीज़ो के विविधिकरण के बाज़ार में दाखिल होने कि अनुमति मिलनी चाहिए।

33.5.12 व्यावहारिक समस्याए

निर्यातों के विस्तार की उम्मीद बिखर सकती है क्योंकि कुछ बुनियादी सुविधाओ की कामिया है भारत के कृषि अर्थव्यवस्था मेंएक गंभीर समस्या उत्पन्न हो सकती है वो है कमजोर बुनियादी सुविधाओ की।

33.6 निष्कर्ष

भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में यह उम्मीद की जाती हैं किवस्त्रा उद्योग क्षेत्र, चमड़ा एवं चमड़ा उत्पाद क्षेत्र, टेक्सटाइल क्षेत्र, खाध क्षेत्र, पेय पदार्थ क्षेत्र, तम्बाकू इत्यादि क्षेत्रोंमें उत्पादन एवं निर्यात विकास की प्रचुर संभावनाएँ निहित हैं। हालांकि, बदलते वातावरण में जिसमें प्रतियोगी एवं मुक्त बाजार में हमें नई नीतियों को पारदर्शिता से तथा

विकासशील देशों के संदर्भ में पुन: विचार करते हुएगम्भीरता से दृषिट डालने की आवश्यकता है।

बाली सम्मेलन के सकारात्मक निष्कर्षों सेएक संस्थान के रूप में डब्ल्यूटीओ की विश्वसनीयता भी सुदृढ़ हुई है। हम विश्व को एक स्पष्ट संदेश देने में समर्थ हुए हैं कि भारत संलिप्त होने केलिए तैयार है, किन्तु यह किसी असंतुलित करार को स्वीकार नहीं करेगा। भारत किसी परिस्थिति में खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा तथा छोटे किसानों एवं गरीबों के कल्याण के संबंध में मौलिक मुद्दों के साथ कोई समझौता नहीं करेगा। रिपोर्टमें विकासशील देशों को निर्यात आधारित विकास का सहारा लेने के संदर्भ में चेतावनी दी गई है और कहा गया है कि विकसित देशों के आर्थिक विकास मेंगिरावट का विकासशील देशों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। रिपोर्ट में कहा गया है कि विकासशील देशों को अपनी घरेलू व क्षेत्रीय मांग पर ही विशेष ध्यान देना चाहिये ताकि उसके आधार पर आर्थिक विकास की स्थिरता के साथ गतिशीलता को बनाये रखा जा सके। विश्व व्यापार संगठन के मंच पर भारत व विकसित देशों के बीच व्याप्त नवीनतम तनाव के संदर्भ में यूएनसीटीएडी ने कहा कि खाद्य सुरक्षा को लेकर तनाव को समाप्त करने के लिए और अधिक जांच व बातचीत का सहारा लिया जाना चाहिये।

सारांशत: कहा जा सकता है कि डब्ल्यूटीओ के इतिहास में बाली का मंत्रिमडलीय सम्मेलन एक कीर्तिमान है। इनसे विकासशील देशों के बीच भारत की नेतृत्वशील भूमिका की पुनः पुष्टि की और आम राय बनाने में हमारी राजनयिक क्षमता को भी प्रदर्शित किया। हम एक संतुलित निष्कर्ष की स्थिति में पहुंचने में समर्थ हुए जो कि हमारे सर्वोपरी राष्ट्रीय हितों की रक्षा करते हैं। भारत समस्याओं से मार्ग खोजने में आगे रहा तथा 18 वर्ष पूर्व डब्ल्यूटीओ के सृजन में प्रथम करारनामें को मूर्तरूप देने में आगे रहा। भारत के रचनात्मक दृष्टिकोण

को सभी सदस्य देशों द्वारा सराहा गया। दोहा दौर में विकास का केन्द्र बिन्दुबन पाने में हम सफल रहे।

कई आलोचनाओ के बावजूद विश्व व्यापार संगठन नियमो की रचना से विकासशील देशों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधो से अधिक पारदर्शिता, भविष्य सूचकता, और सुरक्षा की भावना का निर्माण हुआ है।

33.7 संदर्भ पुस्तकें /लेख

- M. L. Jhingan, International Economics, 6thEdition, ISBN: 978-8281-130-0
- (Nagesh kumar, "Intellectual Property Rights Technology and Economic Development". Economic and Political Weekly January 18,2003.PP221-22)
- सोफिया मर्फी/'कृषि क्षेत्र में मुक्त व्यापार: एक बुरा विचार जिसकावक्त पूरा हो चुका है'/विश्वव्यापी कृषि संकट' (मंथली रिव्यू में प्रकाशितलेखों का संग्रह) गार्गी प्रकाशन/जनवरी-2010/पृ.
- एम.एस. स्वामीनाथन से आशा कृष्ण कुमार की बातचीत/'पश्चिम के पक्ष मेंझुकी हुई है विश्व व्यापार संगठन की व्यवस्थाएँ'/'सहमत मुक्तनाद'/वर्ष-02, अंक-10, 12/अक्टूबर-दिसम्बर, 2000/पृ. 8-9.
- सोफिया मर्फी/वही. पृ.पी. साईनाथ/किसानों की आत्महत्या क्यों ? / 'फिलहाल'/वर्ष-9/ अंकः 15-18/अगस्त-सितम्बर, 2008/ पृ. 30
- उत्सा पटनायक/'अन्तर्राष्ट्रीय बाजार और भारतीय किसान'/'सहमत मुक्तनाद'/वर्ष-01, अंक-04,/अपै्रल-मई, 1999/पृ.
- जाहिद खान/ (पश्चिम बंगाल) किसानों की समस्याओं पर कब संजीदा होगी सरकारें/ 'समकालीन जन्मत'/मार्च, 2012/पृ.

- उत्सा पटनायक/से सुकुमार मुरलीधरन की बातचीत/'तबाही का रास्ता'/'सहमत मुक्तनाद'/वर्ष'2, अंक-10, 12/अक्टूबर-दिसम्बर 2000/पृ.
- उत्सा पटनायक/'भारत और विकासशील देशों में खाद्य संकट की शुरूआत'/विश्वखाद्य संकट (मंथली रिव्यू में प्रकाशित लेखों का संग्रह)/गार्गीप्रकाशन/जनवरी 2010/ पृ.फिलिप मैकमाइकल/विश्व खाद्य संकट: ऐतिहासिक संदर्भ/विश्व खाद्य संकट/वही पृ.

33.8 शब्दावली

- टी.एफ.ए- इस समझौते के तहत यह व्यवस्था कायम करने की कोशिश है कि सामानों के एकदेश से दूसरे देश में ले जाने में अफसरशाही से होनेवाली बाधाओं को दूर कियाजाये। इसमें व्यापार के क्षेत्र में तकनीकी सहायता और क्षमता-निर्माण का प्रावधान है. समझौते के प्रारूप में विकासशील देशों और अल्प-विकसित राष्ट्रों की समस्याओं व सीमाओं को ध्यान में रखते हुए विशेष रियायत की बातकही गयी है. इन श्रेणियों में आनेवाले देशों को बुनियादी ढांचों के विकासके लिए उनके संसाधनों से अधिक निवेश करने के लिए दबाव नहीं देने का आश्वासनभी है।

. बहुपक्षीय समझौते यह शब्द बहुपक्षीय समझौते गैट के सदस्य देशों के मध्य वार्ता का विषय था जिसका उद्देश्य प्रशुल्क व गैर प्रशुल्क बाधाओ को कम करना था।

- **ट्रिप्स** बौद्धिक संपत्ति अधिकारो के व्यापार संबंधी पक्ष का समझौता । कॉपी राइट तथा तटसंबंधी अधिकार, ट्रडेमार्क, बाहुगोलिक संकेत, औद्योगिक डिज़ाइन,पैटंट, सूक्ष्म जीवाणु और पौधो की विभिन्न जातिया, संघटित सर्किट, और व्यापारिक रहस्य ।

- **ट्रिम्स** व्यापार संबंधी निवेश उपायो के पहलुओ का समझौता । वस्तुत: यह चुने हुए क्षेत्रो में निवेश, विदेशी कंपनियो को राष्ट्रीय कंपनियो के बराबर रखने के लिए विदेशी निवेश का स्तर, निर्यात दायित्व और घरेलू कच्चे माल का उपयोग पर लागू होता है। यह विदेशी विनिमय के अर्जनो, विदेशी इक्विटी हिस्सेदारी और तकनीकी स्थानांतरण से संबंध विदेशी निवेशको पर कोई पालन शर्त लगाने का निषेध करता है। यह आदेश देता है कि निवेश कंपनियो को घरेलू कंपनियो के बराबर ही रखा जाए। यह निवेश के क्षेत्र में रुकावटे लगाने को रोकता है। यह कच्चे माल, मध्यवर्ती के मुक्त आयात की अपेक्षा रखता है।
- **क्योंयार -** वस्तुओं के आयात और निर्यात पर भौतिक प्रतिबंधों का निषेध,शुल्कों का प्रयोग आयातों और घरेलू उद्योगों पर नियंत्रण के लिए किया जाएगा। कोटा, आयात और निर्यात लाइसेंस प्रमुख क्योंआर हैं।
- **एमएफ़एन** अगर कोई देश अन्य देश में उत्पादित किसी भी वस्तु परकोई लाभ, समर्थन या सुविधा प्रदान करता है तो यह लाभ, समर्थन या सुविधास्वत: और तुरन्त इस वस्तु के उत्पादक अन्य सभी सदस्य देशों को बिना शर्तप्राप्त हो जाएंगी।
- **प्रतिराशिपातन पर समझौता** गैट के अनुच्छेद VI के अनुसार, यदि रशिपातन आयात, आयातकर्ता देश के घरेलू उद्योग को हानि पहुचाता है तो अनुबंधित सदस्यो को अधिकार है कि वे राशिपातन विरोधी नीतियो को अपनाए।
- **गेट्स** यह विकसित व विकासशील देशों में सेवाओ के उदारीकरण पे ज़ोर देता है, जैसे आर्थिक, जलपोत संबंधी, परिवहन और संचार सेवाएँ, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय, और मीडिया सेवाएँ।

33.9 अभ्यासर्थ प्रश्न

1. विश्व व्यापार संगठन क्या है? इसके उद्देश्यों व कार्यो का वर्णन करे।
2. विश्व व्यापार समझौतो का तथा उरुग्वे वार्ताओ का विकासशील देशों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
3. विश्व व्यापार संगठन की मुख्य विशेषताओ का वर्णन करें। यह गैट से किस प्रकार भिन्न है?
4. हाल ही में हुए बाली सम्मेलन की मुखी विशेषताओ का वर्णन प्रस्तुत करें और इसमे हुई चर्चाओ का विकासशील देशों पर होने वाले प्रभावों की व्याख्या करे।
5. बाली सम्मेलन के खाद्य सुरक्षा विधेयक पर भारत व विकासशील देशों की आपति की व्याख्या कीजिये। साथ ही ये स्पष्ट कीजिये कि इस विधेयक से विकासशील देशों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
6. विश्व व्यापार संगठन और भारतीय कृषि पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।
7. क्यों आर क्या है? विकासशील देशों पर इसके प्रभाव की व्याख्या कीजिये।
8. विश्व व्यापार संगठन के बौद्धिक सम्पदा अधिकारो की विकासशील देशों पर होने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिये।
9. विश्व व्यापार संगठन के ट्रिम्स समझौतो से विकासशील देशों पर क्या प्रभाव होंगे?
10. विश्व व्यापार संगठन की गेट्स प्रणाली को समझाइए।
11. विकासशील देशों को तकनीकी सहायता व प्रशिक्षण प्रदान करने में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका का विवेचन कीजिये।
12. विश्व व्यापार संगठन का व्यापार सरलीकरण मुद्दा क्या है? तीसरी दुनिया के देशों की इस पर क्या राय है?

13. विश्व व्यापार संगठन के खाद्य सुरक्षा मुद्दे पर जी-33 देशों के मत को प्रकट कीजिये?
14. विकासशील देशों को विश्व व्यापार संगठन द्वारा दी जाने वाली कृषि सब्सिडी विवरण तथा इसके प्रभावों पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।
15. विश्व व्यापार संगठन की विकासशील एवं अल्पविकसित देशों के व्यापार व विकास में योगदान एवं भूमिका पर आलोचनात्मक लेख लिखिए।

इकाई - 34

यूरोपीय मुद्रा बाजार

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य

34.1 प्रस्तावना

34.2 यूरोपीय मुद्रा बाजार

34.3 यूरो डालर

34.4 यूरोपीय मुद्रा बाजार का उद्भव तथा विकास

34.5 यूरो मुद्रा बाजार की कार्य प्रणाली

34.6 यूरो मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषताएं

34.7 अन्तर्राष्ट्रीय वित्त प्रणाली में भूमिका

34.8 यूरोपीय मुद्रा बाजार के विकास से उत्पन्न समस्याएं

34.9 सारांश

34.10 शब्दावली

34.11 कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

29.12 निबन्धात्मक प्रश्न

34.0 उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विश्व अर्थ व्यवस्थाओं की बढ़ती अन्तर निर्भरता से यूरोपीय मुद्रा बाजार का उद्भव एवं विकास हुआ। इस इकाई में इस अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार के उद्भव एवं विकास की चर्चा की जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि :

- विश्व अर्थव्यवस्था का सुदृढ विकास यूरोपीय मुद्रा बाजार के सही प्रबन्ध के बिना कठिन होगा
- यूरोपीय मुद्रा बाजार की क्या विशेषताएं एवं समस्याएं है?

34.1 प्रस्तावना

यूरोपीय मुद्रा बाजार के उद्भव एवं विकास में डालर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। परन्तु गैर-डालर मुद्राएं भी तेजी से अपनी जगह बना रही है एवं इन, मुद्राओं का हिस्सा 1969 में 17 प्रतिशत से बढ़कर 1978 में 33 प्रतिशत हो गया है। गैर डालर मुद्राएं मजबूत हुई है एवं इनकी मांग बढ़ी है। अत: सही अर्थो में यूरोपीय मुद्रा बाजार यूरोप के बाहर सरकारी नियंत्रणों से परे एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार के रूप में विकसित हुआ है। लन्दन एवं न्यूयार्क के अतिरिक्त बहमास, पनामा सिंगापुर, बैरूत इनके मुख्य केन्द्र है। इस इकाई में आपका परिचय मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषतओं कार्यप्रणाली एवं समस्याओं से कराया गया है।

34.2 यूरोपीय मुद्रा बाजार

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अधिकारिक स्तर पर पूँजी के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह के स्थान पर निजी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजार के विकास की प्रवृत्ति बढ़ी है। वर्तमान में विश्वस्तर पर मुद्रा का थोक बाजार कार्यरत है जो किसी देश की सरकार व IMF के नियन्त्रण से परे है। इस बाजार को यूरोपीय मुद्रा बाजार के नाम से जाना जाता है। यूरोपीय मुद्रा बाजार एक अन्तर्राष्ट्रीय बैकिंग बाजार है। इसका स्थानीयकरण मुख्य रूप से लन्दन में है जो बाह्य देशों की मुद्राओं के लेन-देन में विशिष्टीकरण करता है। इस बाजार में मुख्य रूप से डालर का लेनदेन होता है, जिसका अन्तर्राष्ट्रीय लेन देन में प्रभुत्व है। डालर के अतिरिक्त इस बाजार में अन्य यूरोपीय मुद्राओं का भी लेन देन होता है। इस बाजार में विभिन्न देशों के व्यापारिक बैंक, मौद्रिक अधिकारी, व्यावसायिक फर्में, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ सरकारी एजेन्सीज तथा अर्द्धसरकारी संस्थाएं सम्मिलित हैं।

चूंकि बाजार का एक बड़ा भाग यूरोप में स्थित है और लेन देन मुख्यत: डालर में होता है इसलिए इस बाजार को "यूरो डालर" बाजार कहते हैं। "यूरोपीय" शब्द का प्रयोग भ्रामक है क्योंकि इस मुद्रा बाजार के केन्द्र यूरोप के बाहर बहामास, सिंगापुर, पनामा आदि में भी स्थित हैं। विश्वसनीय समंकों के अभाव में इस बाजार के आकार के बारे में विश्वस्त तौर पर नहीं का जा सकता फिर भी यह अनुमान लगाया गया है, कि इस बाजार के विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रों पर 250 से 400 बिलियन डालर के बीच परिसम्पत्ति लगी हुई है। यह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली में सबसे बड़ा बाजार है तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त में प्रमुख भूमिका अदा करता है।

34.3 यूरो डालर

"किसी बैंक के विरूद्ध यूरोपीय मुद्रा का दावा वह दावा है जो उस देश की मुद्रा के अतिरिक्त जिस देश में वह बैंक स्थित है, किसी अन्य देश की मुद्रा में किया जाता है। "यूरोपीय मुद्राओं के कुल दावों में अधिकांशत: यूरोडालर सम्बन्धित दावे होते है, जिसमें USA से बाहर स्थित बैकों से डालर का लेन देन शामिल होता है।" किन्डलबर्गर डोमीनीक साल्वाटोर के अनुसार," यूरोपीय मुद्रा से तात्पर्य उन सभी वाणिज्यिक बैंक जमाओं से है जो उस देश के बाहर के कसी देश की निर्गमित मुद्राएं है।"

उदाहरणार्थ किसी ब्रिटिश व्यापारिक फ्रैंच बैंक में अमरीकी डालर के रूप में जमा मुद्रा यूरो डालर कहलाएगी। इसी प्रकार किसी व्यापारिक बैंक अथवा किसी ब्रिटिश बैंक की फ्रैंच शाखा में जमा पाउण्ड स्टर्लिंग को यूरोस्टर्लिंग कहा जा सकता है। इटली के किसी बैंक में जमा मार्क यूरोमार्क कहलाएगा। ये जमाएं सामान्यतया प्रमुख अन्तराष्ट्रीय बैंकों, अन्तर्राष्ट्रीय निगमों तथा विभिन्न सरकारों द्वारा उधार ली अथवा दी जाती है। जिस बाजार में इन मुद्राओं का लेन-देन होता है उसे ही हम यूरोपीय मुद्रा बाजार कहते है।

34.4 यूरोपीय मुद्रा बजार का उद्भव एवं विकास

यूरोपीय मुद्रा बाजार के आधुनिक स्वरूप का उद्भव 1950 के दशक के अन्त में हुआ इस समय अन्तर्राष्ट्रीय जगत में जो आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों विद्यमान थीं उसके कारण यह प्रणाली अस्तित्व में आई जो यूरोपीय बैंक प्रणाली से भिन्न किन्तु उसकी पूरक थी। इस बाजार के विकास के महत्वपूर्ण कारण निम्न है :-

(1) साम्यवादी देश गोपनीयता सम्बन्धी कारणों से सामान्यतया अपनी डालर जमाएं अमरीका से बाहर अन्य देशों में रखना पसंद करते हैं। राजनीतिक कारणों से उन्हें यह भय रहता है कि अमरीका द्वारा उनके खातों के हस्तांतरण पर रोक ना लगो दी जाए। 1950 के बाद के दशक में रूस तथा पूर्वी यूरोपीय देशों ने अपने खाते बड़ी मात्रा में अमरीका से यूरोप के बैकों को हस्तांतरित कर दिये थे। यह यूरोपीय मुद्रा बाजार के विकास का एक बहुत महत्वपूर्ण कारण बना।

(2) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका दुनिया का सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। उसने आर्थिक तथा सैनिक सहायता के रूप में यूरोप के पुनर्निर्माण पर बहुत अधिक धन खर्च किया। इसके परिणामस्वरूप यूरोप के बैकों में बहुत अधिक मात्रा में डालर हस्तांतरित हुए।

(3) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि में ब्रिटेन एक कर्जदार देश बन गया। इसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजार में स्टर्लिंग का महत्व घट गया तथा उसका स्थान डालर ने ले लिया। युद्ध के बाद ब्रिटेन ने ब्रिटिश विनिमय नियन्त्रण एक्ट के अन्तर्गत स्टर्लिंग क्षेत्र के बाहर के बैकों को स्टर्लिंग अनुदान पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया इससे डालर की तुलना में स्टर्लिंग का महत्व और भी घट गया।

(4) अमरीका फैडरल रिजर्व प्रणाली का नियम Q भी यूरोपीय मुद्रा बाजार के विकास का एक प्रमुख कारण था। नियम Q के अन्तर्गत अमरीका के बैकों में सावधि जमाओं पर दी जाने वाली ब्याज दर की

ऊपरी सीमा निर्धारित कर दी गई थी साथ ही इस नियम के अन्तर्गत 30 दिन तक की अवधि की जमाओं पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता था। इस कारण से अमरीकी बैकों को यूरोप में अपनी शाखाऐं खोलने का प्रोत्साहन मिला जिससे कि वहां पर ब्याज की दर ऊँची रख कर डालर जमाएं आकर्षित की जा सकें। विशेष कर 1968 से 1979 के बीच ब्याज की अधिकतम दर बहुत नीची रखी गई। अत: अमरीका नागरिकों तथा विदेशियों ने अपनी डालर बचतें विदेशी बैकों विशेषकर यूरोप को हस्तांतरित कर दी क्योंकि यूरोप के बैंक अमरीकी बैकों की अपेक्षा अधिक ब्याज प्रदान करते थे। इसके परिणामस्वरूप यूरोप के उधार लेने व देने वालों को भी न्यूयार्क की बजाय लन्दन व अन्य यूरोपीय बाजारों में डालर व्यापार के लिये प्रोत्साहन मिला।

(5) यूरोपीय मुद्रा बाजार के विकास का एक और महत्वपूर्ण कारण यह है कि विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय निगमों को उन देशों में अल्पकाल के लिये मुद्रा जमा कराना सुविधाजनक लगता है जिसकी मुद्रा में उन्हें भुगतान करना है। चूंकि डालर अन्तर्राष्ट्रीय लेन देन में काम ली जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण मुद्रा है अत: यूरोपीय मुद्रा का आधे से अधिक भाग यूरोडालर के रूप में पाया जाता है।

(6) विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय निगम व कम्पनियां अपने स्वयं के देशों के साख से सम्बन्धित नियन्त्रणों से छुटकारा पाने के लिये भी यूरोपीय मुद्रा बाजार में लेन देन करना पसंद करती है।

(7) 1973 में पेट्रोल की कीमतों में वृद्धि के बाद पेट्रोल निर्यातक देशों ने भारी मात्रा में डालर अन्य देशों में जमा कराए इससे यूरोपीय मुद्रा बाजार का तीव्र गति से विकास हुआ।

(8) सामान्यतया यूरोपीय बैंक USA की तुलना में विदेशी मुद्रा जमाएँ स्वीकार करने में अधिक रूचि लेते है तथा वे इन जमाओं पर अमरीकी बैकों की तुलना में अधिक ब्याज भी प्रदान करते है क्योंकि वे इन जमाओं को और भी अधिक ब्याज की दर पर वे फिर से उधार दे देते हैं।

सामान्यतया यूरोपीय बैंक अमरीका की तुलना में जमाओं पर अधिक ब्याज प्रदान करते हैं। उधार नीजी व्याज की दर पर देते है। इसके प्रमुख कारण इस प्रकार हैं।

(i) यूरोपीय मुद्रा बाजार में कड़ी प्रतियोगिता

(ii) वैधानिक कोषानुपात तथा अन्य कानूनी बाधाओं की अनुपस्थिति के कारण यूरोपीय बाजार में आपरेशन लागत का कम होना।

(iii) बहुत बड़ी मात्रा में लेन देन के कारण इस बाजार में पैमाने की मितव्ययताएं प्राप्त होना।

(iv) विभिन्न प्रकार की मुद्राओं व देशों के साथ लेन देन के कारण जोखिम का कम हो जाना।

34.5 यूरोमुद्रा बाजार की कार्य प्रणाली

यूरोपीय मुद्रा बाजार बहुत व्यापाक एवं जटिल है। यह अल्पकालीन व मध्यकालीन कोषों को एक देश से दूसरे देश में हस्तांतरित करने का साधन है। जब कभी अमरीका के व्यापारिक बैंक अथवा निवासियों से, अन्य देश के व्यापारिक बैंक अथवा निवासियों के हस्तांतरण से तथा अन्तर्राष्ट्रीय हिसाब किताब पूरा करने के लिए केन्द्रीय बैंक से प्रत्यक्षत: अथवा बैंक के माध्यम से जमाओं के रूप में यूरोपीय बैकों में कोष आते हैं तो यूरोपीय मुद्रा बाजार में जमाओं तथा कोषों का विस्तार हो जाता है। इस प्रकार यूरोपीय मुद्रा बाजार में कोषों के जमा होने के दो प्रमुख स्रोत हैं।

(1) अमरीका के व्यापारिक बैंक व निवासियों से प्राप्त जमाएँ - यूरोपीय मुद्रा बाजार में अमरीका से आने वाले प्रवाहों के लिये अनेक कारण उत्तरदायी है जिनमें से प्रमुख है (i) यूरोपीय डालर ब्याज दरों की तुलना में अमरीकी ब्याज दरों का गिरना (ii) परिसम्पत्ति प्रसार की इच्छा

बढ़ना (iii) विदेशी परिसम्पत्तियों पर प्रतिफल बढ़ना (iv) अमरीकी डालर के भाव बढने की आशा।

(2) अन्य देशों के व्यापारिक बैंक व निवासियों से प्राप्त जमाए - इस प्रकार के प्रवाहों का प्रमुख कारण यह है कि लोग घरेलू करेंसी परिसम्पत्तियों में से पोर्टफोलियो को अमरीकी डालर में बदलना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से केन्द्रीय बैंक यूरोपीय बाजार से प्राप्त अपने रिजर्व लाभों का बड़ा भाग पुन: जमा करा देते हैं।

यूरोपीय बाजारों के प्रति इस प्रकार का ढांचा दिया होने पर यूरोपीय मुद्रा बाजार की कार्य पद्धति को इस प्रकार समझाया जा सकता है। कल्पना कीजिये कि रूस के द्वारा जापान की तेल का निर्यात किया जाता है तथा इसके बदले में रूस को अमरीका स्थित किसी बैंक में 100 मिलियन डालर का भुगतान प्राप्त होता है। इस प्रक्रिया में यूरोडालर का सृजन नहीं हुआ। यह केवल एक साधारण प्रकार की विदेशी जमाएं हैं। परन्तु यदि रूस के अधिकारी अपने खातों की गोपनीयता बनाए रखने के लिये इन खातों की किसी स्विस बैंक में हस्तांतरित कर देते है तो ये 100 मिलियन की डालर जमाएं यूरोडालर कहलाएंगी।

ये नवनिर्मित यूरो डालर साख सृजन की प्रक्रिया के द्वारा विश्व में मुद्रा की कुल पूर्ति में वृद्धि कर देते है अर्थशास्त्रियों ने ने इसके व्यवहार के विश्लेषण के लिये साख गुणक विश्लेषण का उपयोग किया है। किंडलबर्गर के अनुसार इस बाजार में साख गुणक के आकार का अनुमान लगाना कठिन है। कुछ अर्थशास्त्रियों का दावा है कि इसका आकार 7 से 20 के बीच है जबकि अन्य कई अध्ययनों से पता चलता है कि यह इकाई से कुछ ही ऊपर है। यूरोपीय मुद्रा बाजार बहुत विशाल एवं अनियमित है। इसलिये यह साधारण बैकिंग प्रणाली की भांति काम नहीं करता।

34.6 यूरो मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषताएं

इस बाजार की विशेष कार्यप्रणाली के कारण इसमें कुछ ऐसी विशेषताएं है जो इसे अन्य मुद्रा बाजारों से अलग करती है।

(1) यूरोपीय मुद्रा बाजार एक थोक बाजार है। इसमें प्रमुख उधार लेने वाली इकाइयाँ बड़ी कम्पनियाँ व सरकारें है यहां लेने दने का आकार बहुत बड़ा है इससे बैकों के ओवरहैड (खर्चे) कम होते है तथा लागत कम आती है।

(2) यूरोपीय मुद्रा बैंक का एक बड़ा हिस्सा अन्तरबैंक बाजार है जो अल्पकालीन लेन-देन करता है। परिणामस्वरूप यूरोपीय बैकों की लगभग तीन चौथाई देनदारियाँ व परिसम्पत्तियाँ अन्य बैकों के विरूद्ध हैं।

(3) यूरोपीय मुद्रा बाजार में तीव्र प्रतियोगिता पायी जाती है तथा इस बाजार में नये प्रतियोगियों के प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इस कारण से जमाओं व उधार के बीच ब्याज का मार्जिन सामान्यतया इस बाजार में नीचा पाया जाता है।

(4) यद्यपि यह बाजार कुछ बातों में राष्ट्रीय मुद्रा बाजारों से मिलता जुलता है, परन्तु किसी केन्द्रीय मौद्रिक नियन्त्रण संस्था के नियंत्रण में नहीं होने के कारण यह अलग प्रकार से कार्य करता है।

34.7 अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली में भूमिका

यूरोपीय मुद्रा बाजार अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली में महत्वपूर्ण कार्य करता रहा है। यह अल्प व मध्यकालीन कोषों का समस्त विश्व में हस्तान्तरण करता है एवं अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी की गतिशीलता बढ़ाता है। 1973-74 के दौरान इस बाजार ने अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संकट से उबरने में प्रमुख भूमिका अदा की। इस बाजार के अभाव में तेल कोषों को जमाकर्ता राष्ट्रों से उधार लेने वाले देशों को हस्तान्तरित करना संभव नहीं था। 1977 में यूरो बाँड के रूप में 19,995 मिलियन अमरीकी डालर निर्गमित किये गये। वर्तमान में इसका आकार लगभग 1 ट्रिलियन अमरीकी डालर आंका गया है। अमरीकी व पेट्रोल निर्यातक देश इस बाजार में प्रमुख जमाकर्ता देश है जबकि विकासशील देश व पूर्वी यूरोप के समाजवादी देश व USSR इस बाजार के प्रमुख उधार लेने वाले देशों में शामिल है।

इस बाजार का उदय अमरीकी बाजार के स्थानापन्न के रूप में हुआ था परन्तु अब यह अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है।

इस प्रकार पेट्रोल संकट से उबरने, अन्तर्राष्ट्रीय ऋण समस्या का समाधान करने, घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजारों का एकीकरण करने व प्रतियोगिता बढ़ाने में इस बाजार का प्रमुख योगदान है।

34.8 यूरोपीय मुद्रा बाजार के विकास से उत्पन्न समस्याएं

यद्यपि यूरोपीय मुद्रा बाजार ने अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह बढ़ाने व वित्त संकट दूर करने में प्रमुख भूमिका अदा ही है। परन्तु इसका बढ़ता आकार व तीव्र विकास एवं स्वतंत्र गतिविधियाँ कई देशों में समष्टिगत आर्थिक नीतियॉ लागू करने में बाधक बनती जा रही है। इसके तीव्र विकास से विभिन्न देशों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

(1) यूरोपीय मुद्रा बाजार ने विश्वव्यापी मुद्रा स्फीति का संकट खड़ा कर दिया है। यह बाजार राष्ट्रीय सरकारों द्वारा लागू की गई स्थिरीकरण नीतियों के प्रभावों को समाप्त कर देता है। बड़ी फर्में व निगम जो साख नियन्त्रण कानूनों के कारण घरेलू बाजारों से उधार नही ले सकते, यूरोपीय मुद्रा बाजार से उधार ले लेते हैं। इससे मुद्रा स्फीति की रोकथाम के सरकारी उपाय असफल हो जाते है। लचीली विनियम दर अपनाने वाले राष्ट्रों में यह समस्या स्थिर विनिमय दरों वाले राष्ट्रों की तुलना में कम गम्भीर है।

(2) इसी से मिलती जुलती दूसरी समस्या - यह है कि यूरोपीय मुद्रा कोषों के अल्पकालीन व बहुत बड़ी मात्रा में एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र पर प्रवाह से विदेशी विनिमय दरों एवं घरेलू ब्याज दरों में बहुत अधिक

अस्थिरता रहती है। स्थिर विनियम दरों के होने पर ये "हॉट मुद्रा" प्रवाह ज्यादा समस्या उत्पन्न करते है।

(3) यूरोपीय मुद्रा बाजारों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इन पर कोई नियन्त्रण नहीं है। इनमें से किसी बैंक के दिवालिया हो जाने से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मन्दी फैल सकती है। घरेलू कारणों से उत्पन्न मन्दी को केन्द्रीय बैंक की नियमनात्मक नीतियों से नियंत्रित किया जा सकता है। पर यूरोपीय मुद्रा बाजार में ऐसा करना संभव नहीं है। यदि किसी देश की सरकार इन पर नियन्त्रण लगाने का प्रयास करती है तो ये उस देश से अन्य देश में अपना केन्द्र परिवर्तित कर लेते है। इन बाजारों पर नियन्त्रण बड़े पैमाने पर विभिन्न देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग से ही संभव है।

1981 से अमरीका में अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिंग सुविधाओं की अनुमति दे दी गई है।

अब अमरीकी बैंक विदेशी जमाएं स्वीकार करने तथा उन्हें अन्य देशों में पुनर्विनियोग करने को स्वतंत्र है। अब अमरीकी बैंकों में विदेशी जमाओं को फैडरल रिजर्व व बीमा सम्बन्धी कानूनों से छूट दे दी गई है। लगभग 200 अमरीकी बैंक इस बाजार में कार्यरत है जिसमें लगभग आधे न्यूयार्क में स्थित है व शेष शिकागो, मियामी, न्यू आर्लियन्स आदि स्थानों पर है। अब यूरो मुद्रा बाजार के लगभग 20% भाग पर अमरीका ने अधिकार कर लिया है।

34.9 सारांश

यूरोपीय मुद्रा बाजार का पिछले कुछ वर्षों में तेजी से विकास हुआ यह इस लक्ष्य से स्पष्ट है कि 1965-74 की अवधि में बैंकों की शुद्ध जमाएं 100 बिलियन डालर बढ़ी। यूरोपीय मुद्रा बाजार के आधुनिक स्वरूप का उद्भव 1950 के दशक के अन्त में हुआ। यूरोपीय मुद्रा बाजार में यद्यपि मुख्य कारोबार अमेरिकन डालर में होता है परन्तु अन्य यूरोपीय मुद्राएं

जैसे डच मार्क, स्विस फ्रेन्क, आदि का हिस्सा भी बढ़ रहा है। इसके साथ ही यूरोपीय मुद्रा बाजार कारोबार का बड़ा हिस्सा यूरोप के बाहर के देशों में होता है जैसे बहमास, पनामा सिंगापुर आदि।

यूरोपीय मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है- (i) यूरोपीय मुद्रा बाजार एक थोक बाजार है यहाँ उधार लेने वाली इकाइयाँ, बड़ी है अत: लागत कम है, (ii) एक बड़ा हिस्सा अन्तर बैंक बाजार है, (iii) इस बाजार में तीव्र प्रतियोगिता है, एवं (iv) यह बाजार किसी केन्द्रीय मौद्रिक नियंत्रण संस्था के नियंत्रण में नहीं है। इस बाजार की कुछ समस्याएं है, जैसे- (i) मुद्रा स्फीति संकट, (ii) अस्थिर ब्याज दरें, (iii) अनियंत्रित बाजार, एवं (iv) बड़ी मात्रा में कुछ विकासशील देशों ने इन बाजारों से ऋण प्राप्त किया है। यह ऋण कुछ उच्च आय वाले देशों में केन्द्रित है। इनसे कुछ देशों में मुद्रा संकट उत्पन्न हुए।

पिछले कुछ वर्षों से अधिकारिक पूंजी अन्तरणों की बजाय निजी अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों के विकास की प्रवृति बढ़ी है। वर्तमान में विश्वस्तर पर मुद्रा का थोक बाजार कार्यरत है जो आई.एम.एफ. व किसी देश की सरकार के नियंत्रण से परे है। इस बाजार को यूरोपीय मुद्रा बाजार के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यूरोपीय मुद्रा बाजार के विकास के परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय तरलता एवं व्यापार में वृद्धि हुई है।

34.10 शब्दावली

यूरो मुद्रा	Euro Currency
यूरो डालर	Euro dollar
अन्तर बैंक लेनदेन	Inter Bank Transactions

34.11 कुछ महत्वपूर्ण सन्दर्भ लेख एवं पुस्तकें

1. Eisuke Sakakibara, “The Euro Currency Market in Perspective”, Finance

and Development, Vol. 12, No. 3 September 1975.

2. Ishan Kapu, "The Supply of Euro currency Finance to Developing countries," Finance and Development Vol. 14, No. 3, September, 1977.

3. बरला एवं अग्रवाल ,अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

4. एम.एल. झिंगन ,अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

5. Dominick Salvatore International Economics.

6. B.O. Sodersten, International Economics.

34.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यूरोपीय मुद्रा बाजार क्या है? इसके आर्थिक परिणामों की व्याख्या कीजिए। क्या इस पर नियंत्रण स्थापित करना सम्भव है?
2. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त प्रणाली में यूरोपीय मुद्रा बाजार की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. यूरोपीय मुद्रा बाजार की कार्य प्रणाली समझाइए।

इकाई 35

अल्पकालीन व दीर्घकालीन पूँजी अन्तरण

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य

35.1 प्रस्तावना

35.2 पूंजी अन्तरणों के प्रकार

35.2.1 अल्पकालीन पूँजी अन्तरण

35.2.2 दीर्घकालीन पूँजी अन्तरण

35.3 अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी अन्तरणों के विभिन्न प्रकार

35.3.1 बद्ध ऋण

35.3.2 देशी तथा विदेशी निवेश

35.3.3 प्रत्यक्ष निवेश एवं पोर्टफोलियो निवेश

35.3.4 निजी तथा सरकारी पूँजी प्रवाह

35.4 अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी अन्तरणों को प्रभावित करने वाले तत्व

35.5 अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाहों के प्रभाव

35.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाहों में अन्तरण समस्या

35.6 सारांश

35.7 शब्दावली

35.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

35.9 निबन्धात्मक प्रश्न

35.0 उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाहों की क्या भूमिका है? विभिन्न देशों के मध्य आर्थिक विकास के स्तर में असमानता पाई जाती है। विकसित देशों के पास साधनों का बाहुल्य है, जबकि विकासशील देशों में उनकी कमी है। पूँजी का अन्तरण अधिक्य वाले देशों से अतिरेक साधनों को उनकी आवश्यकता वाले देशों में प्रवाहित कर विकासशील देशों के विकास में सहायता करता है। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साधनों के अनुकूलतम आवंटन में सहायता करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाह अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या का भी समाधान करते है तथा अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों को सरल बनाते हैं।

इस अध्ययन का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरण के विभिन्न देशों पर पड़ने वाले आर्थिक प्रभावों की जाँच करना भी है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय निगम अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों में विशेष योगदान देते है। अत: उनके कार्यो के प्रभाव भी हम इस अध्ययन द्वारा जाँच सकते है।

35.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में आपने वस्तु व्यापार से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया। इस अध्याय में हम पूँजी के अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरण के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे। विश्व में उत्पादन के विभिन्न साधनों, विशेषकर श्रम, पूँजी व तकनीकी का बड़े पैमाने पर एक देश से दूसरे देश में अन्तरण होता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व उत्पादन साधनों का हस्तांतरण एक दूसरे के पूरक समझे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ एक पूँजी बाहुल्य वाला देश पूंजी गहन वस्तुएँ निर्यात करेगा अथवा वह सीधे ही पूँजीगत साधनों का निर्यात भी कर सकता है। इसी प्रकार जिस देश में श्रम की उपलब्धि तुलनात्मक रूप से कम है वह या तो श्रम गहन वस्तु का आयात करेगा अन्यथा वह श्रम साधनों को भी दूसरे देशों से आयात करके

स्वयं के देश में श्रम गहन वस्तु का निर्माण कर सकता है। साधनों का एक देश से दूसरे देश में अन्तरण विभिन्न देशों के मध्य साधनों की कीमतों का समानीकरण करता है।

पिछले कुछ दशकों में पूंजी अन्तरण का महत्व काफी बढ़ा है तथा विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। 19वी शताब्दी में भी विकसित एवं औद्योगिक देशों में उपलब्ध बचत का अन्य देशों में निवेश किया जाता था।

35.2 पूँजी अन्तरण के प्रकार

पूँजी अन्तरण का अनेक आधारों पर वर्गीकरण किया जाता है। इसका सबसे सामान्य वर्गीकरण अवधि या काल के अनुसार किया जाता है। अवधि के आधार पर पूँजी अन्तरण को दो भागों में बांटा गया है। अल्पकालीन व दीर्घकालीन पूँजी अन्तरण। इसके अतिरिक्त पूँजी अन्तरण को प्रेरित व स्वायत्त, स्थिरता लाने वाले (stabilizing) व अस्थिरता उत्पन्न काने वाले (destabilizing), स्वायत्त व क्षतिपूरक (compensatory) आदि वर्गो में वर्गीकृत किया जाता है।

35.2.1 पूँजी का अल्पकालीन अन्तरण

किसी भी पूंजी अन्तरण को अल्पकालीन उस सन्दर्भ में माना जाता है, जब कि यह एक वर्ष से कम परिपक्वता वाली अवधि के किसी प्रपत्र (instrument) में निहित हो।

अल्पकालीन पूंजी अन्तरण के अनेक स्वरूप हो सकते है, यदि एक देश के नागरिकों के किसी अन्य देश के नागरिकों पर स्थित दावों (claim) में कोई परिवर्तन हो जाए अथवा विदेशी नागरिकों के उस देश पर स्थित दावों में कोई परिवर्तन हो जाए तो उसे अल्पकालीन पूंजी अन्तरण माना जाएगा। इस सन्दर्भ में एक देश के नागरिकों में हम उस देश की सरकार, केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंक, अन्य मुद्रा बाजार में कार्यरत संस्थाओं में, दलालों, व्यापारियों व सट्टेबाजों को सम्मिलित करते हैं।

उपर्युक्त पूंजी अन्तरणों से सम्बद्ध प्रपत्रों (instruments) में हम व्यापारिक बैकों के निक्षेपों (जमाओं), हुण्डियों (Bill of exchange), अधिविकर्ष (overdraft) तथा खुली साख को शामिल करते हैं।

यदि किसी देश में स्वर्णमान हो तो अल्पकालीन पूंजी अन्तरण का आशय विदेशी भुगतान को निपटाने के लिये दिये गये स्वर्ण से होगा। कभी-कभी किसी देश का केन्द्रीय बैंक अपने विदेशी विनिमय कोषों को स्वर्ण के रूप में परिवर्तित करना चाहता है तो ऐसी परिस्थिति में भी अल्पकालीन पूँजी अन्तरण स्वर्ण के रूप में होगा।

जब अल्पकालीन पूँजी केन्द्रीय बैंक पावनों (assets) के रूप में विद्यमान होती है तो इसके आधार पर उस देश की मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि की जा सकती है। परन्तु इसके विपरीत यह केन्द्रीय बैंक के दायित्वों के रूप में हो तो यह आवश्यक नहीं कि मुद्रा की पूर्ति कम हो जाए।

अल्पकालीन पूंजी प्रवाहों के मुद्रा की पूर्ति पर प्रभाव

स्वर्णमान के अन्तर्गत मुद्रा का प्रवाह स्वर्ण के रूप में होता था व इसके अन्तर्प्रवाह से मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती थी व बाह्य प्रवाह से मुद्रा की पूर्ति घट जाती थी। किन्तु वर्तमान में विभिन्न देशों में स्वर्णमान विद्यमान नहीं है। वर्तमान मौद्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत पूंजी के अल्पकालीन प्रवाहों के मुद्रा की पूर्ति पर निम्न प्रभाव होते है :

(1) प्राथमिक परिवर्तन :

जब किसी देश के निर्यात आयातों की तुलना में अधिक होते है तो उस देश के पास मुद्रा की मात्रा में निवल रूप में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत यदि किसी देश के आयात निर्यातों की तुलना में अधिक होते है तो उस देश में मुद्रा की मात्रा में कमी होगी। मुद्रा की मात्रा में ये परिवर्तन प्राथमिक परिवर्तन कहलाते हैं। इसकी सीमा (limits) का निर्धारण चालू खाते या व्यापार खाते के शेष द्वारा होता है।

(2) द्वितीयक परिवर्तन :

मुद्रा की पूर्ति में द्वितीयक परिवर्तन बैंकों के रिजर्व पर प्रभाव द्वारा होते हैं। जब किसी देश के निर्यात उस देश के आयातों की तुलना में अधिक होते है तो इनका भुगतान विदेशी मौद्रिक संस्थाओं द्वारा उस देश के केन्द्रीय बैंक को किया जाता है जिससे देशीय बैंकों की जमाओं में वृद्धि होती है। इसके आधार पर ये बैंक अधिक उधार दे सकते है, जिससे साख सृजन की प्रक्रिया द्वारा मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है इसे मुद्रा का द्वितीयक प्रसार कहा जाता है। इसके विपरीत यदि किसी देश के आयात उस देश के निर्यातों की तुलना में अधिक है तो देशीय बैंकों में रिजर्व कम हो जाएगा व उस देश की मुद्रा की पूर्ति में कमी होगी।

(3) तृतीयक परिवर्तन :

जब केन्द्रीय बैंक के रिजर्व में वृद्धि होती है तो वह व्यापारिक बैकों के विनियम पत्रों की पुनर्कटौती खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा प्रतिभूतियों को खरीदने आदि कार्यों द्वारा मुद्रा की पूर्ति बढ़ा देता है। इस प्रकार से होने वाले मुद्रा प्रसार तृतीयक मुद्रा प्रसार कहा जाता है।

यदि अल्पकालीन पूँजी अन्तरण की पूर्ति केन्द्रीय बैंकें की अपेक्षा बाजार से की जाती है तो उसका विश्लेषण सर्वथा भिन्न होगा। यदि एक देश के सटोरिये दूसरे देश की मुद्रा के सस्ता होने पर उसे इस आशा से खरीद लेते है, कि भविष्य में इसकी कीमत में वृद्धि होगी और वे इसे बेचकर लाभ कमा सकेंगे। तो इस क्रिया के फलस्वरूप पूंजी का अल्पकालीन या मौसमी अन्तरण होगा। निर्यात का अधिक्य होने पर इसका निपटारा करने हेतु पूंजी का अल्पकालीन बहिर्गमन होगा। जिससे निर्यातकर्ता के निक्षेप बढ़ेंगे व सटोरियों के निक्षेप घटेंगे। कुल मिलाकर मुद्रा की पूर्ति यथावत रहेगी।

35.2.2 पूँजी का दीर्घकालीन अन्तरण:

दीर्घकालीन पूंजी अन्तरण एक वर्ष की परिपक्वता से अधिक अवधि के प्रपत्रों में निहित होते हैं। इन प्रपत्रों में बांड, परिवर्तनीय डिबेंचर, स्टॉक, बैकों द्वारा सावधि कर्जे आदि सम्मिलित होते हैं। दीर्घकालीन पूँजी

अन्तरण नयी प्रतिभूतियों विशेषकर बांड प्रवाहित करके भी किये जाते हैं।

दीर्घकालीन पूंजी अन्तरण निजी तथा सरकारी दोनों प्रकार के बैंकों अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक, यूरोपीय निवेश बैंक, एशियाई विकास बैंक आदि तथा सरकारों द्वारा स्थापित एजेंसियों के माध्यम से होते हैं।

सामान्यतया भुगतान संतुलन के घाटे अथवा आधिक्य को संतुलन में रखने के लिये विभिन्न देशों के मध्य दीर्घकालीन पूँजी प्रवाह होते हैं। इसके अतिरिक्त ये प्रवाह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार में उधारदाता व उधार लेने वाले देशों और निवासियों की वित्तीय, औद्योगिक एवं विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। इस दृष्टिकोण से दीर्घकालीन पूंजी अन्तरण बहुत महत्वपूर्ण है।

दीर्घकालीन पूँजी का अन्तरण पूँजी निर्माण की प्रक्रिया द्वारा देशों में आय व रोजगार का स्तर बढ़ाता है। उधार लेने वाले देश द्वारा प्रयोग की गई कर्जे की राशि से जब कोई उद्योग स्थापित किया जाता है अथवा उत्पादकीय पूँजी का निर्माण होता है, तो उस देश में आय एवं रोजगार में वृद्धि होती है। दीर्घकालीन पूँजी अन्तरण से देश के साधन अनुपातों में परिवर्तन होता है। पूंजी के अधिक मात्रा में आयात से पूंजी श्रम अनुपात परिवर्तित होता है। देश के संसाधनों अनुकूलतम आवंटन व पूर्ण क्षमता से उपयोग होता है। आजकल उधार देने वाले देशों की सरकारें, निजी व अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं जो दीर्घकालीन पूंजी उधार देती है वे यह सुनिश्चित करती है, कि उधार ली गई पूंजी का सही कार्यों में, उद्योगों में वह परियोजनाओं में प्रयोग हो। इसलिए पूंजी अन्तरण उन दिशाओं में प्रवाहित होते है जहाँ कल्याण अधिक हो। पूंजी अन्तरण से उधारदाता देश को भी लाभ होता है, क्योंकि उसे ब्याज लाभांश आदि की प्राप्ति होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों से विभिन्न देशों के बीच ब्याज दरें और लाभ समान होने की प्रवृति हो जाती है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह में कोई, बाधा नहीं है तो पूंजी का प्रवाह पूंजी आधिक्य वाले देश से पूंजी की कमी वाले देश को होगा क्योंकि पूंजी भी पर अधिक ब्याज प्राप्त होगा। अन्तत: पूंजी निर्यातक देश में ब्याज दर बढ़ जाएगी। और पूंजी आयातक देश में कम हो जाएगी। परन्तु यदि पूँजी निर्यातक देशों को अपने कजों पर वापसी की अनिश्चितता का जोखिम उठाना पड़ता है और वे अपनी शर्तों पर अथवा बद्ध (Tied) सहायता व ऋण देते है तो ब्याज की दरों में समानता स्थापित होना जरूरी नहीं है।

35.3 अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी अन्तरणों के विभिन्न प्रकार

35.3.1 बद्ध ऋण (Tied Loans)

विकसित देश विकासशील देशों को जो दीर्घकालीन पूंजी उधार देते है वे स्रोत, परियोजना तथा वस्तुओं के साथ बद्ध होती हैं। अमेरिका द्वारा दिये जाने वाले उधार अमरीकी निर्यातों से जुड़े होते है जिसके अनुसार उनको अमरीकी पूंजी पदार्थों, वस्तुओं व सेवाओं पर ही व्यय किया जा सकता है। इसी प्रकार कई अन्य देश किसी विशेष परियोजना से जुड़े कर्जे देते है जिसके लिये सभी पूंजीगत पदार्थ तकनीकी सहायता आदि केवल उसी देश से लेनी पड़ती है। इस प्रकार के बँधें हुए ऋण:

(1) कल्याण अर्थशास्त्र के परेटो इष्टतम सिद्धान्त के विरूद्ध होते हैं जिसके अनुसार वस्तुओं को सबसे सस्ते स्थान से खरीदना चाहिये।

(2) विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार बद्ध ऋणों के कारण जिन वस्तुओं को उधारदाता देशों से खरीदा जाता है, वे अपने वैकल्पिक स्रोतों से 30% अधिक मंहगी होती है।

(3) ऐसे ऋण विभेदात्मक होते हैं। क्योंकि ये ऋणदाता देशों में ही खर्च करने होते हैं।

(4) ये ऋण परियोजनाओं को उनकी लागतों के अनुसार दिये जाते हैं। अत: इनका उपयोग भुगतान संतुलन के घाटे को दूर करने के लिये नहीं किया जा सकता।

35.3.2 देशीय तथा विदेशी निवेश:

जब निर्यात अतिरेक के कारण किसी देश में पूंजी का आगमन होता है तो देशीय आय एवं रोजगार में गुणक प्रभाव के कारण वृद्धि होती है।

जब एक देश द्वारा किसी दूसरे देश में पूंजी का विनियोग किया जाता है तो विनियोग कर्ता राष्ट्र की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है, क्योंकि लाभांश आदि के रूप में उसे दूसरे राष्ट्रों से आय प्राप्त होती है परन्तु उसके स्वयं के देश में वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन या उपलब्धि नहीं बढ़ने से सार्वभौमिक आय में वृद्धि नहीं होती।

इसके विपरीत जिस राष्ट्र में विनियोग किया गया है उसमें उत्पादन बढ़ता है व नागरिकों के लिये वस्तुओं व सेवाओं की उपलब्धि बढ़ती है, परन्तु राष्ट्रीय आय में वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है, क्योंकि उसे अपनी आय का एक हिस्सा विदेशियों को लाभांश के रूप में भेजना पड़ता है।

देशीय पूँजी निवेश व विदेशी पूँजी निवेश का साध्य (श्रम पूंजी) अनुपात पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता लेकिन स्वदेश में पूंजी विनियोग से श्रम की उत्पादकता बढ़ती है। परन्तु विदेशों में पूंजी भेजने से पूंजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि होती है।

कीन्स के अनुसार यद्यपि स्वदेश व विदेश दोनों में पूंजी निवेश की जोखिम एक समान ही है परन्तु यदि गणना गलत होने पर हानि हो तो स्वदेशी विनियोग से निर्मित भौतिक परिसम्पतियाँ स्वदेश में ही रहती है जबकि विदेशी विनियोग के समय में विदेशों में रह जाती हैं।

विदेशी निवेश पर निवेशकर्ता व ऋणी दोनों की सरकारों का अंकुश निवेशकर्ता पर रहता है। दोनों ही देशों द्वारा किये गये किसी भी नीतिगत परिवर्तन का प्रभाव निवेशकर्ता पर पड़ता है व उसे नियन्त्रकों के अन्तर्गत काम करना पड़ता है।

35.3.3 प्रत्यक्ष निवेश एवं पोर्टफोलियो निवेश -

विदेशी विनियोग मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है!

पोर्टफोलियो विनियोग में हम शुद्ध रूप से वित्तीय परिसम्पत्तियों जैसे बांड, स्टॉक आदि को शामिल करते हैं। बांड खरीदकर एक विनियोगकर्ता अपनी पूँजी केवल उधार देता है और निश्चित अवधि में ब्याज के रूप में प्रतिफल प्राप्त करता है तथा परिपक्वता की अवधि समाप्त होने पर अपना मूलधन भी। स्टॉक खरीद कर निवेश कर्ता विदेशी कम्पनी की पूँजी में हिस्सा लेते हैं। पोर्टफोलियो विनियोग सामान्यतया वित्तीय संस्थाओं, बैंकों व विनियोग कोषों के माध्यम से होते हैं।

प्रत्यक्ष विनियोग फैक्ट्रियों, पूंजीगत वस्तुओं, जमीन इन्वेन्टरी आदि पर किये जाने वाले वास्तविक विनियोग है। इनमें पूंजी के साथ प्रबन्ध भी शामिल होता है तथा विनियोग कर्ता का निवेशित पूँजी पर नियन्त्रण रहता है। प्रत्यक्ष विनियोग सामान्यतया किसी फर्म द्वारा सब्सीड्री कम्पनी खोलकर अथवा किसी फर्म के स्टॉक खरीदकर उस पर नियन्त्रण स्थापित करने के माध्यम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में प्रत्यक्ष विनियोग ज्यादातर बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा किये जाते हैं। प्रत्यक्ष विनियोग निजी पूंजी प्रवाहों का सबसे प्रमुख अंग है। पोर्टफोलियो विनियोग प्रथम विश्व युद्ध के बाद बहुत नगण्य हो गये थे। 1960 के बाद पुन: इनका महत्व स्थापित हुआ है।

35.3.4 निजी तथा सरकारी पूंजी प्रवाह :

दो देशों के मध्य होने वाले पूँजी अन्तरण या तो निजी व्यक्तियों व कम्पनियों के द्वारा होते हैं अथवा सरकारी स्तर पर। निजी प्रवाह मुख्यतया बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा किये जाने वाले प्रत्यक्ष विनियोगों का परिणाम होते है।

सरकारी पूँजी प्रवाह अधिकारिक स्तर पर होने वाले पूँजी प्रवाह हैं। सरकार की ओर से दिये जाने वाले ऋण दो प्रकार के होते हैं।

1. **स्थिरता कारक ऋण:** मुद्रा की देशी व विदेशी मूल्य में स्थिरता बनाये रखने के लिये जो ऋण लिये व दिये जाते है उन्हें स्थिरताकारक ऋण कस जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन ने स्टर्लिंग की डालर में परिवर्तनशीलता बनाए रखने के लिए 375 करोड़ डालर के स्थिरताकारक ऋण लिये थे।

2. **विशिष्ट निर्यातों व आयातों के लिये ऋण की व्यवस्था:** कई बार विदेशों से ऋण इसलिये लिये जाते हैं क्योंकि उनकी लागत देश में विद्यमान ब्याज दर की अपेक्षा कम होती है।

कई बार प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिये सरकारी ऋण लिये जाते हैं।

आधुनिक समय में कई राष्ट्र जिनके निर्यातों की मांग लोचदार है, विदेशी ऋण लेकर उत्पादन में वृद्धि करते है तथा निर्यात बढ़ाकर उनका भुगतान कर देते हैं।

कई राष्ट्रों द्वारा पुराने ऋणों के ब्याज के पुनर्भुगतान हेतु भी ऋण लिए जाते हैं। यदि लिये गये ऋणों का उपयोग उत्पादक कार्यों में किया गया है तथा इससे प्राप्त आय से भविष्य में ऋण चुकाए जाने की आशा है तो ब्याज के पुनर्भुगतान हेतु ऋण लेना बुरा नहीं है, परन्तु यदि इसे उपभोग पर खर्च किया जा रहा है तो ऋण भार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाएगी।

35.4. अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी अन्तरणों को प्रभावित करने वाले तत्व:

1. **ब्याज दर :** अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरणों को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व विभिन्न देशों में विद्यमान ब्याज दरों में अन्तर है। जिस देश में ब्याज की दर नीची होती है वहाँ से पूँजी प्रवाहित होकर ऊँची ब्याज दर वाले देश में जाती है क्योंकि वहाँ पूंजी लगाने से अधिक प्रतिफल की प्राप्ति होती है।

2. **लाभ की सम्भावना:** कोई भी विदेशी दूसरे देश में पूंजी निवेश करते समय लाभ की संभावना को दृष्टिगोचर रखता है। जिस देश में लाभ की संभावना अधिक होगी। वहाँ पूंजी का अन्तर्प्रवाह होगा। विभिन्न परियोजनाओं में पूँजी निवेश करते समय एक उद्यमी उनके प्रत्याशित लाभ को दृष्टिगोचर रखता है। जिस परियोजना में लाभ अधिक होगा, विदेशी उद्यमी अन्य परियोजनाओं की अपेक्षा उसमें अधिक निवेश करेगा। जिससे उस परियोजना वाले देश में विदेशी पूंजी का अन्तर्प्रवाह होगा।

3. **सट्टा:** ब्याज दरों अथवा विदेशी विनियम दरों में प्रत्याशित परिवर्तनों से सम्बन्धित सट्टा भी अल्पकालीन पूँजी अन्तरणों को प्रभावित करता है। जब सटोरिये यह अनुभव करते है कि भविष्य में घरेलू ब्याज दर में वृद्धि होगी तो वे इसके परिणामस्वरूप बांड कीमतों में कमी की सम्भावना से लाभ उठाने के लिये अल्पकालीन विदेशी प्रतिभूतियों में निवेश करेंगे जिससे पूंजी का बाह्य प्रवाह होगा। इसके विपरीत भविष्य में घरेलू ब्याज की दर कम होने की सम्भावना होने पर विदेशी सटोरिये वर्तमान में कम कीमत पर प्रतिभूतियों में निवेश करेंगे जिससे देश में पूंजी का अन्तर्प्रवाह होगा। इसी प्रकार यदि देश की करेंसी के अवमूल्यन की भविष्य में संभावना हो तो देश के सटोरिये करेंसी को विदेशी प्रतिभूतियों में बदलने की कोशिश करेंगे जिससे पूंजी का बाह्य प्रवाह होगा। इसके विपरीत, विदेशी विनिमय दर में वृद्धि की सम्भावना होने पर देश में पूंजी का अन्तर्प्रवाह होगा।

4. **बैंक दर:** केन्द्रीय बैंक द्वारा निश्चित बैंक दर भी अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरणों को प्रभावित करती है। यदि बैंक दर कम होगी तो पूंजी का बाह्य प्रभाह होगा। इसके विपरीत यदि बैंक दर ऊँची होगी तो पूँजी का देश में अन्तर्प्रवाह होगा।

5. **उत्पादन लागतें:** पूँजी संचालन अन्य देशों में उत्पादन लागतों पर भी निर्भर करते हैं। जिस देश में श्रम, कच्चे माल, आदि सस्ते प्राप्त हो

जाते हैं। निजी विदेशी पूंजी निवेश उन्हीं देश में अधिक होते हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा कोरिया, सिंगापुर, हांगकांग आदि देशों में निवेश का कारण वहाँ लागतों का कम होना है।

6. **आर्थिक स्थितियां:** किसी देश की आर्थिक परिस्थितियों विशेषकर बाजार का आकार, आधारित संरचना अर्थात यातायात एवं संचार के साधन विद्युत तथा अन्य संसाधनों का पाया जाना, कुशल श्रम आदि देश में पूँजी के अन्तर्प्रवाह को प्रोत्साहित करते हैं।

7. **राजनैतिक स्थिरता:** राजनैतिक स्थिरता, जान और माल की सुरक्षा, अन्य देशों के साथ मैत्रिक सम्बन्ध देश में पूंजी के अन्तर्प्रवाह को बढ़ावा देते हैं।

8. **कर नीति-देश:** की कर नीति भी पूंजी के अन्तर्प्रवाह को प्रभावित करती है। दोहरा कराधान न होना, ऐसी कर नीति जो उद्यमियों पर अत्यधिक कर भार न डाले, नए उद्योगों को कुछ वर्षो के लिए कर से राहत तथा उद्योगों को संरक्षण देने हेतु ऊँची शुल्क व्यवस्था विदेशी पूँजी के अर्न्तप्रवाह को प्रोत्साहित करती है।

9. **सरकारी नीति:** विदेशी पूंजी से सम्बन्धित सरकारी नीति का भी पूंजी संचलनों पर प्रभाव पड़ता है। यदि सरकार विदेशी पूंजी पर लाभ लाभांश, रायल्टी ब्याज आदि को हस्तान्तरित करने पर सुविधा प्रदान करती है तो देश में पूंजी का अन्तर्प्रवाह होगा। इसी प्रकार उदार विदेशी विनिमय नियन्त्रण, विदेशी पूंजी को प्रोत्साहित करने वाली राजकोषीय, मौद्रिक तथा अन्य नीतियां पूंजी के अन्तर्प्रवाह में सहायक होती हैं।

35.5. अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों के प्रभाव: -

अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाहों का निवेशकर्ता तथा पूंजी प्राप्तकर्ता दोनों राष्ट्रों पर प्रभाव पड़ता है। इनमें से कुछ प्रभावों को चित्र द्वारा चित्र संख्या 35.1 में यह दर्शाया गया है कि

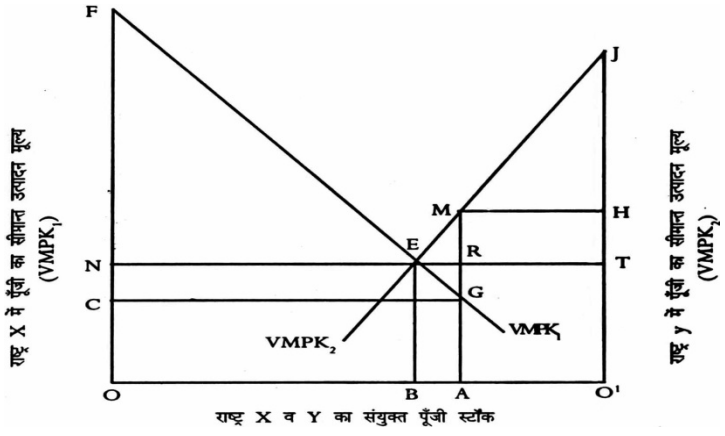

रेखा चित्र 35.1

विश्व में दो राष्ट्र है X व Y सम्मिलित पूजी स्टॉक 00' है। इसमें से OA पूंजी पर देश X का अधिकार है जबकि O^1A पूंजी Y देश की है। VMPK$_1$ व VMPK $_2$ क्रमश X व Y राष्ट्रों के पूंजी के सीमान्त उत्पादन मूल्य (Value of Marginal Product of Capital) को बताने वाले वक्र हैं जो अलग-अलग विनियोग के स्तरों पर दोनों राष्ट्रों में पूंजी के सीमान्त उत्पादन मूल्य को दर्शाते हैं।

बन्द अर्थ-व्यवस्था की स्थिति में X देश अपना समस्त पूंजी स्टॉक घरेलू विनियोग में लगाता है और उसे OC मात्रा में VMPK प्राप्त होता है। प्रथम देश का कुल उत्पादन OFGA है जो वक्र के नीचे के कुल क्षेत्र (Area under Curve) द्वारा मापा जा सकता है। इसमें से OCGA भाग X देश के पूंजीपतियों को प्राप्त होता है व शेष CFG अन्य साधनों जैसे भूमि, श्रम आदि को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार Y देश अपना समस्त पूंजी स्टॉक O^1A घरेलू विनियोग में लगाता है। उसे O^1H आय प्राप्त होती है। उसका कुल उत्पादन (Area under Curve) O^1JMA है जिसमें से O^1HMA पूंजीपतियों को प्राप्त होता है शेष HJM अन्य साधनों को चला जाता है।

अब हम उस स्थिति का विश्लेषण करते है जिसमें दोनों देशों के मध्य पूंजी का स्वतंत्र प्रवाह संभव है। चूंकि राष्ट्र Y में पूंजी का प्रतिफल (O^1H) राष्ट्र X में पूंजी के प्रतिफल (O^1C) से अधिक है, इसलिये AB मात्रा में पूंजी

का प्रवाह राष्ट्र X से राष्ट्र Y की ओर होगा। इससे दोनों देशों में पूंजी पर प्रतिफल की दर समान होकर $BE = O'T$ हो जाएगी। अब राष्ट्र X में घरेलू उत्पादन OFEB है विदेशी विनियोग पर मिलने वाला प्रतिफल ABER जोड़ने पर राष्ट्र X में राष्ट्रीय आय OFERA हो जाएगी जो विदेशी विनियोग से पहले की तुलना में अब ERG मात्रा में अधिक है। स्वतंत्र पूंजी प्रवाहों के परिणाम-स्वरूप राष्ट्र X में पूंजी पर प्रतिफल ONRA बढ़ गया जब कि अन्य साधनों का प्रतिफल NFE मात्रा में घट गया।

राष्ट्र Y में राष्ट्र X से AB मात्रा में पूंजी का अन्तर्प्रवाह हुआ। इससे वहां पूंजी पर प्रतिफल की दर $O'H$ से घटकर $O'T$ हो गई। राष्ट्र Y का सकल घरेलू उत्पादन $O'JMA$ से बढ़कर $O'JEB$ हो गया। इस प्रकार उत्पादन में कुल ABEM मात्रा में वृद्धि हुई। इसमें से ABER राशि विदेशी विनियोगकर्ता को चली गई तथा शेष ERM राष्ट्र Y को विशुद्ध लाभ है। पूंजीपतियों के लिये पूंजी पर कुल प्रतिफल $O'HMA$ से घटकर $O'TRA$ हो गया। परन्तु अन्य साधनों का प्रतिफल HJM से बढ़कर TJE हो गया।

सम्पूर्ण विश्व की दृष्टि से यदि देखा जाए तो कुल उत्पादन OFGA $+$ $O'JMA$ से बढ़कर OFEB $+ O'JEB$ हो गया अथवा ERG $+$ ERM $=$ EGM मात्रा में उत्पादन में वृद्धि हुई। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह साधनों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आवंटन अनुकूलतम करने में सहायक होते हैं तथा विश्व का कुल उत्पादक व आर्थिक कल्याण बढ़ाते है। $VMPK_1$ व $VMPK_2$ वक्र जितने अधिक ढलानयुक्त होंगे अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों के लाभ उतने ही अधिक होंगे।

पूर्ण रोजगार की स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों के परिणामस्वरूप निवेश कर्ता राष्ट्र में साधनों के पुनर्आवंटन के कारण पूंजी के प्रतिफल बढ़ जाते हैं परन्तु श्रम के प्रतिफलों में कमी आती है इसीलिये अनेक राष्ट्रों में श्रमिक संगठन पूंजी के निर्यात का विरोध करते हैं।

पूंजी आयातकर्ता राष्ट्र को भी पूंजी अन्तर्प्रवाह से कुल मिलाकर लाभ होता है। परन्तु पुनर्आवंटन प्रभाव के कारण श्रम को अधिक लाभ प्राप्त होता।

परन्तु पूर्ण रोजगार नहीं है तो पूंजी के बाह्य प्रवाह से निवेशकर्ता राष्ट्र में रोजगार का स्तर घटता है, जबकि पूंजी प्राप्तकर्ता राष्ट्र में रोजगार स्तर बढ़ता है।

अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह पूंजी निर्यातक व आयातक दोनों देशों के भुगतान संतुलन को भी प्रभावित करते हैं। किसी भी देश का भुगतान उसके अन्य राष्ट्रों के साथ समस्त लेनदारियों व देनदारियों का अन्तर होता है। अत: जिस वर्ष कोई राष्ट्र पूंजी का निर्यात करता है, उसका भुगतान संतुलन खाता पूंजी के बाह्य परिणाम स्वरूप घाटे में हो जाता है तथा पूंजी आयातक देश का भुगतान संतुलन खाता अनुकूल हो जाता है। 1960 के दशक में पूंजी का बाह्य अमरीका के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन का प्रमुख कारण था। पूंजी निर्यात के प्रारंभिक वर्षों में पूंजी निर्यातक देश में पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन व निर्यात बढ़ता है तथा निवेश के प्रतिफल के रूप में आय भी प्राप्त होती है। लेकिन इसके दीर्घकालीन प्रभावों के बारे में निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि पूंजी आयात व निवेश के परिणामस्वरूप आयातकर्ता राष्ट्र का आर्थिक विकास हो जाता है तो वह अपने आयात प्रतिस्थापन द्वारा पूंजी निर्यातकर्ता राष्ट्र के निर्यतों में कमी ला देगा। कई बार दो राष्ट्रों के बीच कर की दरों में अन्तर पाया जाता है। उदाहरणार्थ यदि अमरीका में निगम कर 48 प्रतिशत है तथा स्विट्जरलैंड में 40 प्रतिशत तो बहुराष्ट्रीय निगम अमरीका की बजाय स्विट्जरलैंड में विनियोग को प्राथमिकता देंगे। इससे पूंजी निर्यातक देश में कुल कर आय घटेगी व पूंजी आयातक देश में बढ़ जाएगी।

विदेशी विनियोग दोनों देशों के मध्य उत्पादन तथा व्यापार को प्रभावित करते हैं इससे दोनों की व्यापार की शर्तें भी प्रभावित होंगी। पर इसका क्या प्रभाव होगा यह पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता

क्योंकि अलग अलग देशों में अलग-अलग दशाओं के कारण प्रभाव भिन्न-भिन्न होंगे।

35.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों मे अन्तरण समस्या:

अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी हस्तांतरण को तभी वास्तविक अर्थो में सफल माना जा सकता है जब पूंजी निर्यातक देश से पूंजी आयातक देश में वित्तीय पूंजी के साथ-साथ वास्तविक साधनों का भी हस्तांतरण हो। उदाहरणार्थ यदि किसी देश से 100 मिलियन डालर का दूसरे देश में विनियोग किया जाता है तो इसका फायदा तभी होगा जब निवेशकर्ता राष्ट्र को प्राप्त हों। वित्तीय पूंजी के हस्तान्तरण के साथ-साथ निवेशकर्ता राष्ट्र से आयातक राष्ट्र की ओर वास्तविक साधनों के हस्तांतरण कों "अन्तरण समस्या" के नाम से जाना जाता हैं।

अन्तरण समस्या का एक और उदाहरण 1970 के समय पेट्रोल की कीमतों में वृद्धि के बाद सामने आया। अधिकांश तेल निर्यातक राष्ट्रों विशेषकर सउदी अरब, लीबिया, कुवैत आदि ने अपनी पेट्रोल आय को पेट्रोल आयातक राष्ट्रों से खरीद पर व्यय नहीं किया। ज्यादातर राष्ट्रों ने इस आय को USA में पोर्टफोलियों विनियोग पर व्यय किया। इससे पेट्रोल आयातक देशों की भुगतान क्षमता घटी। उन्होंने अपने आयात कम किये व इसके संयुक्त प्रभाव के कारण विश्व में अपस्फीति की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

अन्तरण समस्या का एक और पहलू यह भी है, कि अपने बड़ी मात्रा में विदेशी निवेश के कारण अमरीका एक घाटे वाला देश बन गया।

अभी तक हमने पूंजी के अल्पकालीन व दीर्घकालीन अन्तर्राष्ट्रीय हस्तांतरण का अध्ययन किया यह अन्तरण सामान्यतया अधिकारिक स्तर पर होता है।

35.6 सारांश

इस अध्याय में हमने अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों विभिन्न राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं व सेवाओं के साथ-साथ साधनों के भी हस्तान्तरण होते हैं, जो वस्तु व्यापार के स्थानापन्न भी हो सकते हैं।

पिछले कुछ दशकों से विभिन्न देशों के मध्य पूंजी हस्तांतरण का महत्व बहुत बढ़ गया है। इस अन्तरण ने विकासशील देशों के आर्थिक विकास में बहुत मदद पहुँचाई है। विकसित देशों के अतिरेक साधनों का भी इससे अनुकूलतम प्रयोग हुआ है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साधनों के अनुकूलतम आवंटन में मदद मिली है। पूंजी का अन्तरण अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन हो सकता है। यदि यह अन्तरण एक वर्ष से कम परिपक्वता की अवधि के प्रपत्र में निहित हो तो अल्पकालीन अन्तरण कहलाता है। इन अन्तरणों का आयातक व निर्यातक देशों में मुद्रा की पूर्ति पर प्रभाव पड़ता हैं।

यदि ये पूंजी अन्तरण एक वर्ष से अधिक अवधि के लिये हो तो इन्हें हम दीर्घकालीन पूंजी अन्तरण कहते हैं। दीर्घकालीन पूंजी अन्तरण में हम पोर्टफोलियो विनियोग एवं प्रत्यक्ष निवेश को शामिल करते हैं। ये सरकारी अथवा निजी दोनों प्रकार से होते हैं। कभी कभी दीर्घकालीन अन्तरण बद्ध किस्म के होते हैं। दीर्घकालीन पूंजी अन्तरण में बहुराष्ट्रीय निगमों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

दो देशों के बीच ब्याज दर, कर की दर में अन्तर, सट्टा लाभ व उत्पादन लागतों में अन्तर आदि इन पूंजी अन्तरणों के प्रमुख कारण हैं।

ये पूंजी अन्तरण पूंजी निवेशकर्ता व प्राप्तकर्ता दोनों ही राष्ट्रों को आर्थिक रूप से प्रभावित करते हैं।

35.7 शब्दावली

1. **पोर्टफोलियो विनियोग :** विशुद्ध परिसम्पतियों जैसे स्टाक बाँड आदि की खरीद जो सामान्यतया बैंकों व विनियोग कोषों के माध्यम से की

जाती है।

2. **प्रत्यक्ष निवेश :** फैक्ट्रियों, पूंजीगत वस्तुओं, भूमि, इन्वेन्टरी आदि पर किये जाने वाले वास्तविक विनियोग जिसमें पूंजी व प्रबन्ध दोनों सम्मिलित होते हैं तथा निवेशकर्ता का विनियोजित पूंजी पर नियन्त्रण रहता है। प्रत्यक्ष अन्तर्राष्ट्रीय विनियोग सामान्यतया बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से किये जाते हैं।

3. **बहुराष्ट्रीय निगम :** ऐसी फर्में जिनका अनेक देशों में उत्पादन एवं वितरण पर नियन्त्रण होता है।

4. **अन्तरण समस्या :** अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरणों के अन्तर्गत वित्तीय साधनों के साथ-साथ वास्तविक साधनों के भी अन्तरण की समस्या।

5. **बद्ध ऋण : (Tied Loans)** : ऐसे ऋण जो किसी स्रोत परियोजना अथवा वस्तुओं के साथ बद्ध होते हैं।

35.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. C.P. kindleberger ,International Economics

2. एम.एल. झिगंन ,अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र

35.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरणों से आप क्या समझते हैं? अल्पकालीन व दीर्घकालीन पूंजी अन्तरण किसी देश की अर्थव्यवस्था को कैसे प्रभावित करते हैं?
2. अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरण को विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिये। अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरणों के प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारण कौन-कौन से हैं?

3. अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरण के निवेशकर्ता व आयातक राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय, साधनों के प्रतिफल, भुगतान शेष आदि पर पड़ने वाले प्रभावों को समझाइये।
4. अल्पकालीन पूंजी अन्तरणों को मुद्रा की पूर्ति पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिये।
5. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
    1. प्रत्यक्ष व पोर्टफोलियो निवेश
    2. सशर्त (बद्ध) ऋण
    3. अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अन्तरणों के प्रभाव
    4. हस्तान्तरण समस्या

इकाई 36

भारत का विदेशी व्यापार

इकाई की रूपरेखा

36.1 उद्देश्य

36.1 प्रस्तावना

36.2 भारत में विदेशी व्यापार की संरचना

36.2.1 आयात संरचना

36.2.2 भारतीय आयात संरचना सम्बन्धी तथ्य

36.2.3 निर्यातों की संरचना

36.2.4 भारत के कुछ प्रमुख निर्यातों सम्बन्धी तथ्य

36.3 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

36.3.1 विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्र व भारत के विदेशी व्यापार की स्थिति

36.3.2 भारत के निर्यातों की क्षेत्रीय दिशा के तथ्य

36.3.3 भारत के आयातों की क्षेत्रीय दिशा के तथ्य

36.4 सारांश

36.5 शब्दावली

36.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

36.7 निबन्धात्मक प्रश्न

36.0 उद्देश्य

किसी देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसके सहारे कोई देश अपने तथा दूसरे देशों के

विशिष्ट संसाधनों एवं उनके समुचित उपयोग, बड़े पैमाने की उत्पादन-प्रणाली तथा तकनीकी जानकारी व प्रगति का भली प्रकार लाभ उठा सकता है। विदेशी व्यापार के ठीक प्रकार के नियमन व नियंत्रण से उत्पादन, रोजगार, आय, कीमत, औद्यौगीकरण और इस प्रकार देश के आर्थिक विकास पर वांछित प्रभाव डाला जा सकता है।

1947 से पूर्व भारत ब्रिटिश शासन का एक उपनिवेश (Colony) था और उसके विदेशी व्यापार का ढांचा एक प्रकार का औपनिवेशिक ढांचा ही था। भारत औद्योगिक देशों, विशेषकर इंग्लैंड को खाद्य पदार्थो और कच्चे माल का निर्यात करता था और उनके निर्मित वस्तुओं का आयात करता था।

परन्तु गत पांच दशक की आर्थिक नियोजन की अवधि के दौरान भारत के विदेशी व्यापार की संरचना (Composition) एवं इसकी दिशा (Direction) में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। देश की पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में अथवा वर्ष 1950-51 में जहाँ कुल आयात व निर्यात क्रमश: 608 व 606 करोड़ रु. के थे और व्यापार शेष (-) 2 करोड़ रु. से ऋणात्मक था, वहाँ 2013-14 में बढ़कर आयात व निर्यात क्रमश: 450082 मिलियन डॉलर व 312621 मिलियन डॉलर करोड़ रुपये मूल्य के हो गये तथा व्यापार शेष (-) 137461 मिलियन डॉलर करोड़ से ऋणात्मक हो गया।

भारत के विदेशी व्यापार की इन्हीं प्रवृत्तियों का विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्र - (i) आर्थिक सहयोग व विकास संगठन के देश (OECD), (ii) ओपेक देश (OPEC), (iii) पूर्वी यूरोप के देश, (iv) अन्य विकासशील देश, आदि के संदर्भ में अध्ययन ही प्रस्तुत पाठ का मुख्य उद्देश्य है।

इसके अतिरिक्त विश्व के उपर्युक्त क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की क्षेत्रीय दिशा (Regional Direction) का विस्तृत विवेचन तथा

इससे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर भारत के विदेशी व्यापार की नीति के लिए भावी दिशा निर्देशों का निर्धारण भी इस पाठ का उद्देश्य है।

36.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के विदेशी व्यापार के अध्ययन के प्रमुख पहलू सामान्यतया ये तीन होते है - (1) विदेशी व्यापार की संरचना (Composition), (2) विदेशी व्यापार की दिशा (Direction), तथा विदेशी व्यापार की नीति (Policy)। विदेशी व्यापार की नीति इस पाठ की परिधि में नहीं आती है अत: प्रथम दो पहलुओं की विवेचना ही इस पाठ में की जा रही है।

किसी देश के विदेशी व्यापार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू उसकी संरचना या बनावट है। संरचना से आशय आयात व निर्यात की मदें और इनमें होने वाले परिवर्तन से हैं। आयात और निर्यात की संरचना या ढाँचे में होने वाले परिवर्तनों से देश के आन्तरिक उत्पादन के ढाँचे में होने वाले परिवर्तनों की भी जानकारी होती है। प्रस्तुत इकाई में, भारत के विदेशी व्यापार की संरचना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

विदेशी व्यापार का दूसरा प्रमुख पहलू उसकी दिशा से सम्बन्धित है। दिशा का तात्पर्य यह है कि एक देश किन देशों से माल आयात करता है और किन देशों को अपना माल निर्यात करता है। हम इस इकाई में भारत के आयात-निर्यात व्यापार का अध्ययन, विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के संदर्भ में कर रहे हैं, जिसके अन्तर्गत यह देखा गया कि समय-समय पर उसमें किस प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं, और उन परिवर्तनों के लिए कौन से कारण उत्तरदायी रहे हैं।

विदेशी व्यापार की नीति के अन्तर्गत देश की आयात-नीति व निर्यात-नीति आती हैं। इन नीतियों के अनेक पहलू है जैसे निर्यात संवर्द्धन के तरीके, आयात-प्रतिस्थापन, भुगतान संतुलन नीति, प्रशुल्क पाठ की सीमाओं में नही आता है। इसलिए इस पाठ की विषय सामग्री में प्रथम दो

पहलुओं - भारत के विदेशी व्यापार की संरचना व इसकी दिशा को ही सम्मिलित किया गया हैं।

36.2 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना

भारत के विदेशी व्यापार की संरचना को दो पृथक भागों में प्रस्तुत किया जा रहा है। पहला भाग है आयातों की संरचना का और दूसरा भाग है निर्यातों की संरचना का।

आयातों की संरचना के अन्तर्गत आयातित वस्तुओं को दो वर्गो में रखा गया है - (i) भारी या अम्बारी आयात (Bulk Imports), एवं (ii) गैर-भारी या गैर अम्बारी आयात (Non – bulk Imports)।

भारी आयातों को दो-भागों में विभक्त किया जाता है- (i) पैट्रोलियम, तेल एवं चिकनाई (Petroleum, oil and lubricants- POL) और (ii) गैर-इलैक्ट्रिकल आयात जिसमें उपभोग वस्तुएं, उर्वरक और लौह तथा इस्पात सम्मिलित किये जाते हैं।

गैर-भारी या गैर-अम्बारी आयातों में पूँजीगत वस्तुएं (जिनमें इलैक्ट्रिकल एवं गैर इलैक्ट्रिकल मशीनरी शामिल है), हीरे और कीमती पत्थर और अन्य मदें भी सम्मिलित की जाती हैं।

निर्यात-संरचना में निर्यातों को पांच वर्गो में रखा गया है - (i) कृषिगत व सम्बन्धित वस्तुएं, (ii) अयस्क एवं खनिज, (iii) विनिर्मित वस्तुएं, (iv) खनिज तेल एवं स्नेहक, व (v) अन्य।

36.2.1 आयात-संरचना

भारत के आयातों को सारणी संख्या 36.1 में दिखाया गया है, जिसमें 1991-92 से 2013-14 की अवधि ली गई है। कोष्ठकों में भारी एवं गैर भारी आयातों का कुल में प्रतिशत दिखाया गया है, जिससे उनकी सापेक्ष स्थिति का बोध होता है। सारणी संख्या 36.1 के ही दूसरे भाग में आयातों की

वार्षिक वृद्धि दरों को प्रतिशत में प्रस्तुत किया गया है, जो आयातों के बदलते हुए स्वरूप पर प्रकाश डालती है।

तालिका 36.1

भारतीय आयतों की सरंचना

(अवधि 1991-92 से 2013-14)

	1990-91		2013-14	
	मिलियन डालर	कुल का प्रतिशत	मिलियन डालर	कुल का प्रतिशत
1. खाद्य उपभोग वस्तुएं अनाज और अनाज उत्पाद	उ.न. 1.02	उ.न. 0.4	उ.न. 89.1	
3. कच्चे पर्दाथ और मध्यवर्ती विनिर्मित वस्तुएं	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.

I. खाद्य तेल II. पेट्रोलियम तेल और लुब्रिकेंट III. उर्वरक सामग्री IV. लोहा व इस्पात V. रासायनिक तत्व और योगिक VI. मोती और बहुमूल्य रत्न VII. अलोह धातु	5.4 6028 984 1178 1276 2083 614	0.8 25.0 4.1 4.9 5.3 8.7 2.5	9337 165154 6510 7919 3719 23863 38882	2.1 36.7 1.4 1.8 0.8 5.3 8.6
पूंजीगत वस्तुएं VIII. गैर विधुतीय मशीनरी IX. विधुतीय वस्तुएँ X. इलेक्ट्रोनिक वस्तुएँ XI. परिवहन उपकरण	6495 2363 949 931	24.2 9.8 3.9 3.9	85178 23620 4352 30963 15027	18.9 5.2 1.0 6.9 3.3
अन्य (अवर्गीकृत)	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.
कुल	24075	100.00	450082	100.00

Source: Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics.

36.2.2 भारतीय आयात-संरचना सम्बन्धी तथ्य

सारणी 36.1 के अनुसार भारतीय आयातों में निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति हैं, जिसके लिए आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के कारण उत्तरदायी हैं।,

1970-80 के दशक के दौरान, पैट्रोलियम निर्यात देशों के संगठन (Organisation of Petroleum Exporting Countries-OPEC) द्वारा पहली बार 1973-74 में और फिर दोबारा 1979-80 में कीमतों में तीव्र वृद्धि की गई। परिणामत: पेट्रोलियम पदार्थों के आयात में 1970-80 के दशक में तेज वृद्धि हुई परन्तु इसका प्रभाव 1980-90 के दशक में भी महसूस किया गया।

1980-90 के दशक के दौरान बहुत से तत्वों ने आयात को बढ़ाने में संचयी प्रभाव डाला। इनमें उल्लेखनीय हैं - गत दशक के दौरान तेल की कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा का भारी उत्प्रवाह, 1987 के सूखे के कारण देश में खाद्यान्न की गंभीर रूप में अभाव, अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई वृद्धि दर के कारण मांग का दबाव और सरकार द्वारा अपनाई गई उदारीकरण (Liberalisation) की नीति।

1980-90 के दशक के दौरान और विशेषकर 1984-85 के पश्चात् जब प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने उदारीकरण की नीति का अनुसरण किया, आयात एकदम तेजी से बढ़कर 1990-91 में 45,190 करोड़ रुपए के स्तर पर पहुँच गए। 1990-91 और 1993-94 के दौरान आयात की वार्षिक औसत वृद्धि दर 19.1 प्रतिशत थी, जो 1996-97 में बढ़कर 23.8 प्रतिशत हो गई जो 1970-71 से 1996-97 की अवधि की सर्वाधिक वार्षिक वृद्धि दर है।

1991-92 से 2013-14 की अवधि मे आयातों की संरचना में कुछ अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन इस प्रकार हुए -

पेट्रोलियम तेल और लुब्रिकेन्ट पर आयात व्यय में तेजी से वृद्धि तेल निर्यातक देशों के संगठन (ओपेक) के कारण हुई है। वर्ष **2013 —14** में पट्रोलियम तेल और लुब्रिकेन्ट के आयात पर **165154** डॉलर खर्च किऐ गए जो कुल आयात व्यय का **36.7** प्रतिशत था।

2. अलौहे धातुओं के आयातों पर गिरावट का कारण स्वर्ण के आयातों में तेज कटौती थी जो कि **2012—13** में स्वर्ण का आयात **15819** मिलियन डॉलर थे और **2013—14 28892** मिलियन डॉलर ही रह गई क्योंकि सरकार ने स्वर्ण पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगाये

3.हॉल ही के वर्षो में इलेक्ट्रोनिक आयतों में तेजी से वृद्धि हुई है। ज्वाहारात औंर आभूषणों के उद्योग की बढ़ती हुई मांग को देखते हुए, मोती व बहुमूल्य रत्नों के आयात में तेजी से वृद्धि हुई है।

4- गैर विद्युतीय मशीनरी व उपकरण पर आयात व्यय में तेजी वृद्धि हुई है।

5- बढ़ती हुई घेरलू मांग के कारण खाद्य तेलों का भी काफी मात्रा में आयात करना पड़ा है। जो कि कुल आयात व्यय का **2.1** प्रतिशत **2013—14** में था।

लौहा और इस्पात के बढ़ते हुए घरेलू उत्पादन के बावजूद इनका काफी मात्रा में आयात करना पड़ता है क्योंकि मांग की तुलना में उत्पादन कम है।

उर्वरकों पर आयात व्यय में भी काफी वृद्धि हुई है।

36.2.3 निर्यातों की संरचना

आयातों की भांति निर्यातों की संरचना में भी, 1996-97 की आवधि में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। सारणी संख्या 36.2 में इस परिवर्तन को प्रदर्शित किया गया है, जिसमें परम्परागत निर्यात व गैर परम्परागत नियार्त की कुछ प्रमुख मदों को ही सम्मिलित किया गया है।

तालिका 36.2

निर्यात की प्रमुख मदें

वस्तुएँ	अवधि			
	1991-92		2013-14	
	मिलियन डॉलर	कुल का प्रतिशत	मिलियन डॉलर	कुल का प्रतिशत
1. कृषि व संबद्ध उत्पादन	3521	19.4	42570	13.6
(i) चाय और मेट	596	3.4	799	0.2
(ii) काजू गिरी	249	1.4	848	0.3
(iii) चावल	257	1.4	7734	2.5
(iv)मछली व मछली उत्पादन	535	2.9	5060	1.6
2. अयस्क और खनिज (कोयले के अतिरिक्त)	834	4.6	5603	1.8
(i) कच्चा लौह	585	3.2	1580	0.5

3. विनिर्मित वस्तुएं I. सूती धागे, रेशा व उससे निर्मित कपड़ा, इत्यादि II. सिले सिलाए कपड़े III. जूट उत्पाद IV. चमड़ा व उसमें निर्मित सामान	13229 1170 2236 166 1449 2924 1176 2158	72.9 6.4 12.8 0.9 8.0 16.1 6.5 11.9	192123 8911 14942 380 5705 41067 41375 69539	61.4 2.8 4.8 0.1 1.8 13.1 13.2 22.2
4. पैट्रोलियम उत्पाद (कोयले सहित)	538	2.9	62687	20.0
5. अन्य	36	0.2	9637	3.1
कुल	18143	100.00	312621	100.00

Source: Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics.

सारणी 36.2 में दिए हुए मदों के साथ कोष्ठकों में दिए गए कुल में मदों के प्रतिशत यह दर्शाते है कि 1990-91 से 2013-14 की अवधि में प्रत्येक मद के निर्यात की सापेक्ष स्थिति क्या रही है?

1. 1960—61 में सबसे महत्वपूर्ण निर्यात वस्तु जूट थी और इसका निर्यात आयल में हिस्सा 21 प्रतिशत था जो 2013—14 मात्र 0.1 प्रतिशत रह गया ।
2. कुल निर्यात में चाय का हिस्सा 190—91 में 3.4 से कम होते होते 0.2 प्रतिशत रह गया ।
3. औद्योगिककरण के कारण इंजिनियरिंग वस्तुएं के निर्यात में तेजी से वृद्धि हुई है जो 1990—91 में 20158 मिलियन डॉलर थी जो बढ़कर 69539 मिलियन डॉलर हो गई।

4. 2013—14 में कुल निर्यात आय में इंजिनियरिंग वस्तुओं का प्रथम स्थान था जो कि 2004—05 से लगातार प्रथम स्थान बना हुआ है।
5. हॉल ही के वर्षों में पट्रोलियम उत्पाद के निर्यात में तेजी से वृद्धि हुई है।
6. 2013—14 में पेट्रोलियम उत्पादों के निर्यात 62687 मिलियन डॉलर थे जो कुल निर्यात आयात का 20 प्रतिशत था जो कि कुल निर्यातों में दूसरा स्थान रखता है।
7. औद्योगिककरण के परिणामस्वरूप रसायन व संबंद्ध उत्पादों के निर्यातों में वृद्धि हुई है। जो 2013—14 में कुल निर्यात आयात का 13.2 प्रतिशत निर्यात इसी उद्योग से प्राप्त हुए है।
8. जवाहारात व आभूषणों के निर्यात में भी उत्साहजनक वृद्धि हुई तथा सिले सिलाये कपड़ों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा।

36.3 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

भारत के विदेशी व्यापार की संरचना अथवा आयाता व निर्यात की प्रमुख मदों और उनमें हुए परिवनों की जानकारी के पश्चात यह देखना उचित होगा कि विश्व के विभिन्न देशों अथवा विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की स्थिति में, देश की योजना अवधि में, क्या परिवर्तन हुए हैं। भारत के विदेशी व्यापार की दिशा को विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के संदर्भ में देखा गया है।

36.3.1 विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्र व भारत के विदेशी व्यापार की क्षेत्रीय स्थिति

जहाँ तक भारत का विश्व के विभिन्न देशों के साथ व्यापार का प्रश्न है, इसे विभिन्न देशों के निम्न समूहों अथवा क्षेत्रों के संदर्भ में समझा जा सकता है -

(अ) आर्थिक सहयोग व विकास संगठन के देश (OECD) - इसमें यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) के देश जैसे फ्रांस, बेल्जियम, पूर्व फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी, नीदरलैण्ड व यू. के. आते है, तथा उत्तरी अमेरिका के कनाडा व संयुक्त राज्य अमेरिका आते हैं, एवं एशिया व ओसनिया के आस्ट्रेलिया व जापान आते हैं।

(ब) ओपेक देश (OPEC) - इसमें ईरान, इराक, कुवैत, सऊदी अरब आदि तेल निर्यातक देश आते हैं।

(स) पूर्वी यूरोप के देश - इसमें पहले का जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक, रोमानिया, सोवियत संघ आदि आते हैं।

(द) अन्य विकासशील देशो में अफ्रीका, एशिया, लेटिन अमेरिका व कैरेबियन देश आते हैं।

(इ) शेष अन्य देश।

विश्व के विभिन्न देशों के इन सूहों के साथ भारत के विदेशी व्यापार के समंक, सारणी (निर्यात) व सारणी (आयात) 1990-91 व 2014-15 की अवधि के लिए दिए गए हैं। समंको के आगे कोष्ठकों में कुल का प्रतिशत दिखाया गया है।

तालिका संख्या 36.4

भारत के निर्यात व्यापार की क्षेत्रीय दिशा

(करोड़ रूपए)

	1990-91	2014-15
1. आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन	17428 (53.5)	668600(35.26)
(क) यूरोपीय आर्थिक समुदाय	8951 (27.5)	302808(15.97)
(i) फ्रांस	766 (2.4)	30327(1.69)
(ii) बेल्जियम	1259 (3.9)	33719(1.78)
(iii) जर्मनी	2459 (7.8)	46077(2.43)
(iv) यू.के.	2128 (6.5)	57179(3.02)
(ख) उत्तरी अमेरिका	5077 (15.6)	272953(14.39)
(i) कनाडा	281 (0.9)	13431(0.71)
(ii) यू.एस.ए.	4797 (14.7)	259523(13.68)
(ग) एशिया एवं ओशनिया	3401 (10.4)	51808(2.73)
(i) आस्ट्रेलिया	321 (1.0)	17001(0.90)
(ii) जापान	3039 (9.3)	32838(1.73)
2. पैट्रोलियम निर्यातक देश	1831 (5.6)	344486(18.16)
(i) ईरान	141 (0.4)	25530(1.35)
(ii) कुवैत	74 (0.2)	7333(0.39)
(iii) सऊदी अरब	419 (1.3)	68037(3.59)
(iv) इराक	N.A	5090(0.27)

(v) यू.ए.ई.	N.A.	201853(10.64)
3. पूर्वीय यूरोप	5819 (17.9)	21001(1.11)
यू.एस.एस.आर.	5255 (16.1)	12824(0.68)
4. विकासशील देश	5465 (16.8)	834341(44.00)
(i) एशिया	4665 (13.4)	573946(30.26)
(ii) सार्क देश	N.A.	125353(6.61)
(iii) अफ्रीका	668 (5.2)	171582(9.05)
5. अन्य	2010 (6.2)	27877.74(1.47)
कुल (1 से 5)	32553 (100)	1896445(100)

Source: Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics.

36.3.2 भारत के निर्यातों की क्षेत्रीय दिशा के तथ्य

वर्ष 1980-81 से वर्ष 1996-97 की अवधि में भारत के निर्यातों की क्षेत्रीय दिशा से सम्बन्धित प्रमुख तथ्य इस प्रकार है –

वर्ष 1990—91 से वर्ष 2014—15 की अवधि में भारत निर्यात के क्षेत्रिय दिशा से संबंधित निम्न प्रमुख तथ्य है —

1. आर्थिक सहयोग व विकास संगठन के देशों (OECD) का भारत के निर्यातों में सर्वाधिक अंश रहा था। जो वर्ष 1990—91 में 53.5 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2014—15 में 35.26 प्रतिशत हो

गया है। चूंकि भारत का अन्य एशियाई देशों के साथ व्यापार बढ़ा है।

2. OECD देशों में से सर्वाधिक व्यापार यूरोपियन आर्थिक समुदाय के साथ होता है जो वर्ष 2014—15 में 15.97 प्रतिशत था एवं इसके बाद अमेरिका में 13.68 प्रतिशत निर्यात हुआ।

3. पेट्रोलियम निर्यात देश जिसनमें ईरान, ईराक, कुवैत, यू.ए.इ्र. आदि देश आते है से हमारा व्यापार बढ़ा है हमारा निर्यात 1990—91 में पेट्रोलियम निर्यातक देशों के साथ केवल 5.6 प्रतिशत था जो बढ़कर 2014—15 में 18.16 प्रतिशत हो गया जिनमें से सबसे अधिक निर्यात यू.ए.ई. को भारत करता है। जो कि 10.64 प्रतिशत है। पूर्वी यूरोप देशों जिनमें प्रमुखतया रूस आता है उसके साथ हमारा व्यापार लगातार कम होता जा रहा है । जो वर्ष 1990—91 में 16.1 प्रतिशत था वह घटकर मात्र 0.68 प्रतिशत रह गया है।

4. विकासशील देशों के साथ हमारा निर्यात बढा है विकासशील देशों में प्रमुखतया एशिया, सार्क देश एवं अफ्रीका आते है। इनमें से एशिया के देशों के साथ निर्यात में वृद्धि हुई है जो कि 1990—91 में 13.4 प्रतिशत थी वह बढ़कर 2014—15 में 30.26 प्रतिशत हो गई। सार्क देशों के साथ ही निर्यात बढ़ा है जो कुल निर्यात का 6.61 प्रतिशत 2014—15 में था। अफ्रीकन देशों के साथ भी भारत के निर्यात में सुधार हुआ है जो कि 1990—91 में 5.2 प्रतिशत था वह बढ़कर 2014—15 में 9.05 प्रतिशत हो गया।

36.3.3 भारत के आयातों की क्षेत्रीय दिशा के तथ्य

तालिका 36.5

भारत के आयात व्यापार की क्षेत्रीय दिशा

(करोड़ रूपए)

	1990-91	**2014-15**
1. आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन	23310 (54.0)	736113(26.89)
(क) यूरोपीय आर्थिक समुदाय	12680 (29.4)	300946(10.99)
(i) फ्रांस	2718 (6.3)	27030(0.99)
(ii) बेल्जियम	1304 (3.0)	65939(2.41)
(iii) जर्मनी	3473 (8.0)	78181(2.86)
(iv) यू.के.	2894 (6.7)	30733(1.12)
(ख) उत्तरी अमेरिका	5804 (13.4)	156387(5.71)
(i) कनाडा	559 (1.3)	22966(0.84)
(ii) यू.एस.ए.	5245 (12.1)	133421(4.88)
(ग) एशिया एवं ओशनिया	4826 (11.2)	128300(4.69)
(i) आस्ट्रेलिया	1464 (3.4)	62701(2.29)
(ii) जापान	3245 (7.5)	61990(2.27)
2. पैट्रोलियम निर्यातक देश	7041 (16.3)	836138(30.54)

(i) ईरान	1018 (2.4)	54588(1.99)
(ii) कुवैत	363 (0.8)	81511(2.98)
(iii) सऊदी अरब	2899 (6.7)	171221(6.26)
(iv)इराक	N.A.	86779(3.17)
(iv) यू.ए.ई.	N.A.	159625(5.83)
3. पूर्वीय यूरोप	3377 (7.8)	46912(1.71)
यू.एस.एस.आर.	2548 (5.9)	25924(0.95)
4. विकासशील देश	7965 (18.4)	1067976(39.02)
(i) एशिया	6033 (14.0)	841028(30.73)
(ii) सार्क देश	N.A.	17948(0.66)
(iii) अफ्रीका	959 (2.2)	39741(1.45)
5. अन्य	1505 (3.5)	50362.41(1.84)
कुल (1 से 5)	19658 (100)	2737087(100)

सारणी 36.5 के अनुसार भारत के प्रमुख आयातों की क्षेत्रीय दिशा के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार है –

1. आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD) देशों के साथ वर्तमान में आयात में कमी आयी है जो कि 1990—91 में कुल आयतों का 54 प्रतिशत था वह घटकर 2014—15 में 26.89 प्रतिशत रह गया। आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन

(OECD) देशों में से सर्वाधिक आयात यूरोपियन आर्थिक समुदाय से किया जाता है तथा उसके बाद अमेरिका से आयात किया जाता है। पेट्रोलियम निर्यात देशों के साथ हमारे आयातों में वृद्धि हुई है जो कि 1990—91 में 16.3 प्रतिशत था जो बढ़कर 2014—15 में 30.54 प्रतिशत हो गया इनमें से सबसे अधिक आयात सउदी अरब से किया जाता है जो कि कुल आयात का 6.26 प्रतिशत है।

2. पूर्वी यूरोप के देशों से किया जाने वाला आयात भी घटा है सन् 1990—91 में रूस से आयात कुल आयातों का 5.9 प्रतिशत था जो घटकर 0.95 प्रतिशत रह गया ।
3. विकासशील देशों से हमारे आयात बढ़े है जो कि एशिया से 1990—91 में 14 प्रतिशत होते थे वह बढ़कर 2014—15 में 30.73 प्रतिशत हो गये है और सार्क देशों से यह आयात मात्र 0.66 प्रतिशत है वह अफ्रीकन देशों से यह आयात 1.45 प्रतिशत ही है।

36.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में भारत के विदेशी व्यापार की संरचना व दिशा के क्षेत्रीय पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। विदेशी व्यापार की संरचना के अन्तर्गत आयात और निर्यात व्यापार की संरचना को अलग-अलग प्रस्तुत करते हुए, इनसे उभरे तथ्यों की समीक्षा की गई है।

विदेशी व्यापार की संरचना सम्बन्धी तथ्यों से स्पष्ट है कि व्यापार का जो औपनिवेशिक स्वरूप 1951 तक चला आ रहा था, उसमें आमूल-चूल परिवर्तन आया है। अब भारत प्रमुखत: कच्चे माल तथा खाद्य-वस्तुओं का निर्यातक और विनिर्मित माल का आयातक मात्र नहीं रह गया है। स्थिति बहुत कुछ बदल गई है। यही नहीं विनिर्मित माल का आयात बहुत घट

गया है, बल्कि हम इसका काफी बड़ी मात्रा में निर्यात करने लगे हैं। इसके अतिरिक्त आयात और निर्यात के परिवर्तन भारत में हो रही औद्योगिक प्रगति को दर्शाते हैं, और ये परिवर्तन यह भी इंगित करते हैं कि पूँजीगत माल औद्योगिक कच्चे माल का आयात का, भारत अपने विकास कार्यो में उपयोग कर रहा है।

विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार है -

(i) अब ब्रिटेन भारत मुख्य आयातक अथवा निर्यातक नहीं रह गया है और इसलिए अब भारत की इस पर आश्रित रहने की स्थिति और व्यापार का औपनिवेशिक रूप जाता रहा है।

(ii) भारत के व्यापार की दिशा में परिवर्तन आया है। विशेष रूप से अब चीन, अमरीका, जर्मनी, जापान आदि जैसे विकसित देशों का भारत के लिए काफी महत्व हो गया है।

(iii) भारत के व्यापार में समाजवादी देशों का एक गुट के रूप में उदय हुआ लेकिन रूस में उथल-पुथल के करण 1990-91 से इनका प्रतिशत भाग काफी गिर गया है।

(iv)इधर कुछ समय से विकासशील देशों के साथ व्यापार काफी तेजी से बढ़ा है और इसके लिए सम्भावनाएं भी काफी अधिक हैं।

परन्तु दक्षिण-पूर्व ऐशिया के पड़ोसी देशों, मध्यपूर्व, पूर्वी अफ्रीका तथा कुछ अन्य देशों के साथ हमारे व्यापार-सम्बन्ध अभी कमजोर तथा बहुत कुछ उपेक्षित हैं। इस दिशा में अथवा इस क्षेत्र में व्यापार-वृद्धि की बहुत संभावनाएँ है। भारत को इन संभावनाओं का लाभ उठाना चाहिए।

36.5 शब्दावली

1. आयात संरचना (Composition of Imports)
2. नियार्त संरचना (Composition of Exports)

3. विदेशी व्यापार की दिशा (Directions of Foreign Trade)
4. आर्थिक सहयोग व विकास संगठन के देश (OECD)
5. तेल निर्यातक देशों का संगठन (OPEC)
6. यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देश (EEC)

36.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. रुद्र दत्त, के.पी.एम सुन्दरम -भारतीय अर्थव्यवस्था
2. ए.एन. अग्रवाल -भारतीय अर्थव्यवस्था
3. भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन
4. रिजर्व बैंक ऑफ इन्डिया ,मुद्रा एंव वित्त सम्बन्धी रिपोर्ट
5. पुरी वि.के. एवं एस.के. मिश्र भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालिया पुब्लिशिंग पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

36.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत के निर्यात व्यापार की संरचना व दिशा की प्रवृत्तियों विवेचना कीजिए।
2. भारत के आयात व्यापार की संरचना व दिशा का मूल्यांकन कीजिए।

3. ओपेक देशों के साथ भारत के आयात व निर्यात व्यापार में 1970 के दशक से अब तक क्या परिवर्तन आये हैं? इनकी समीक्षा कीजिए।
4. विश्व के अन्य विकासशील देशों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
5. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए -

(i) भारत के आयात व निर्यात की प्रमुख मदें।

(ii) भारत के परम्परागत व गैर परम्परागत निर्यात।

(iii) विश्व के प्रमुख आर्थिक समुदाय या क्षेत्र।

(iv) आयात की भारी मदें (अम्बारी) और गैर भारी मदें (गैर-अम्बारी मदें)

(v) व्यापार का बढ़ता घाटा।

इकाई 37

विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत का विदेशी व्यापार

इकाई की रूपरेखा

37.0 उद्देश्य

37.1 प्रस्तावना

37.2 विश्व व्यापार के महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्र

37.3 भारतीय विदेशी व्यापार के विश्व में प्रमुख आर्थिक क्षेत्र

37.3.1 व्यापार की नवीनतम प्रवृत्तियां

37.4 विश्व के प्रमुख क्षेत्रों के साथ भारतीय व्यापार की संरचना

37.4.1 क्षेत्रानुसार निर्यात की संरचना

37.4.2 क्षेत्रानुसार आयात की संरचना

37.5 सारांश

37.6 कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

37.7 निबन्धात्मक प्रश्न

37.0 उद्देश्य

भारत जैसे विकासशील देशों की प्रमुख समस्या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इनकी गिरती भागीदारी है। इसका मुख्य कारण विकसित देशों द्वारा पारस्परिक व्यापार को बढ़ावा देना है। दूसरी ओर विकासशील देश अपने निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए आपस में प्रतियोगिता करते है जिनसे इन्हें हानि होती है। इसे क्षेत्रीय आर्थिक

सहयोग से हल किया जा सकता है। वास्तव में क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग एक व्यापक शब्द है जिसके अन्दर ऐसे समस्त उपाय सम्मिलित होते है जिनसे उस क्षेत्र विशेष के सभी देशों का आर्थिक विकास होता है। इन देशों में उदार व्यापार, क्षेत्रीय मुद्रा का प्रयोग, उत्पादन के क्षेत्र में सहयोग होता है। क्षेत्रीय व्यापार तथा भुगतान व्यवस्था मुख्य रूप से पश्चिमी यूरोप में ही लाभप्रद सिद्ध हुई है। क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के परिणाम स्वरूप यूरोपीय देशों में विभिन्न संगठन बन गए हैं। इस इकाई में ऐसे विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों के साथ भारत के विदेशी व्यापार पर संक्षेप में चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- जान जाएंगें कि विश्व में क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के विभिन्न रूप कौन से हैं?
- इन विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों के साथ भारत के विदेशी व्यापार में क्या परिवर्तन हो रहे हैं?
- भारत के व्यापार की संरचना में विभिन्न क्षेत्रों को कौन सी वस्तुएं निर्यात की जाती है व कौन सी वस्तुएं आयात होती है?

37.1 प्रस्तावना

यदि विश्व के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करना हो तो विश्व स्तर पर आर्थिक सहयोग होना चाहिए, परन्तु यह एक आदर्श स्थिति है। इसके अभाव में विश्व के कुछ देश जिनके सामान्य हित मिलते जुलते हो और जिनकी आर्थिक अवस्था लगभग एक जैसी हो मिलकर क्षेत्रीय सहयोग का युग प्रारम्भ कर आर्थिक विकास को गति दे सकते हैं। भौगोलिक निकटता सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से ऐसे क्षेत्रीय संगठन विकासशील देशों की विकसित देशों पर निर्भरता कम कर सकते हैं। इससे इन देशों के बीच प्राथमिकता के आधार पर व्यापार प्रारम्भ होगा व्यापार पर लगे प्रतिबन्ध शिथिल होंगे, व्यापार पर लगे प्रतिबंध कम होंगे जिससे इन देशों में व्यापार बढ़ेगा।

व्यापारिक उदारीकरण सम्बन्धी उपायों के अतिरिक्त क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग में सम्बन्धित राष्ट्रों में विनियोग, उत्पादन एवं रोजगार का विस्तार होगा। इस प्रकार के समन्वय के साथ पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए सदस्य राष्ट्रों के मध्य आपसी क्षेत्रीय सहयोग के समझौते आवश्यक हैं जिसके अन्तर्गत वे एक दूसरे के पदार्थ स्वतंत्रतापूर्वक खरीद सके। इससे व्यापार में आने वाली वस्तुओं की उत्पादन लागत में कमी आएगी। इसके साथ ही इन देशों में तकनीकी सहयोग भी होना चाहिए। सहयोगी राष्ट्र के बीच सहयोग का उदाहरण लेटिन अमेरिकन स्वतंत्र व्यापार संघ (LAFTA) है। इसकी स्थापना 1961 में हुई। 1967 में पूर्वी अफ्रीकी समुदाय (EAC) बना। एशिया में क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के रूप में इकेफे, एशियाई विकास बैंक प्रमुख है। विकसित देशों के प्रमुख संगठन में आर्थिक सहयोग व विकास संगठन के देश है। इसके अतिरिक्त तेल निर्यातक देशों का संगठन (OPEC) प्रमुख है। एक देश का विदेशी व्यापार उसके आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है तीव्र आर्थिक विकास से देश के आयात निर्यात बढ़ते है। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आय में विदेशी व्यापार का भाग बढ़ जाता है। निर्यातों की वृद्धि के फलस्वरूप बाजारों का विस्तार होता है। और देश के घरेलू संसाधनों का लाभदायक उपयोग होने लगता है। अत: आर्थिक विकास की गति तीव्र होती है। इसी प्रकार बढ़ते हुए आयातों से देश में पूंजीगत वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि होती है जिससे विकास को गति मिलती है।

नियोजन काल से पूर्व भारत का विदेशी व्यापार इसकी अर्थव्यवस्था का छोटा सा भाग था। नियोजन काल में विदेशी व्यापार के विस्तार के लिए अनेक योजनाएं बनाई गई। आयात व निर्यात के स्पष्ट उद्देश्य व लक्ष्य निर्धारित किए गए, जिनकी प्राप्ति के लिए कार्यक्रम व नीतियां निर्धारित की गयी। किन्तु नियोजित आर्थिक विकास के प्रारम्भ से ही विदेशी व्यापार में आयातों का प्रभुत्व बना हुआ है। निर्यातों की वृद्धि आयातों से सदैव पिछड़ती रही है। परिणाम स्वरूप हमारे विदेशी व्यापार में घाटा बना रहा है।

वर्तमान में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिदृश्य में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। आज विश्व व्यापार के क्षेत्र में विभिन्न देशों ने अनेक प्रकार के आर्थिक एकीकरण अपनाते हुए आर्थिक क्षेत्र (Economic Regions) बना लिए हैं। अत: वर्तमान विश्व व्यापार विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों और एक क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न देशों के अन्तर्गत एक वास्तविकता बन गया है। यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) ने 1992 में पूर्णत: एकीकृत आन्तरिक साझा बाजार की रचना कर डाली है। संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा ने संयुक्त रूप से 1987 में स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र (F.T.A) बना लिया जिसमें मैक्सिको को भी सम्मिलित करने का विचार विनिमय चल रहा है। ऐशिया में 'एशियान' क्षेत्रीय संगठन प्रमुख है जिसका विस्तार किया जा रहा है। इसी प्रकार 'दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ' (दक्षेश) आदि आर्थिक क्षेत्रों का उदय विश्व व्यापार में बहुपक्षीय व्यापार के सुस्थापित विचार व धारणा के लिए एक चुनौती बन गया है। अत: विश्व में बनाये गये आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारतीय विदेशी व्यापार की प्रवृतियों और वर्तमान स्थित का विशलेषण महत्वपूर्ण है।

37.2 विश्व व्यापार के प्रमुख आर्थिक क्षेत्र

विश्व के अधिकांश देशों ने अपने व्यापार विकास, आर्थिक समृद्धि की निरन्तर प्रगति दर को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से विभिन्न मात्राओं में आर्थिक एकीकरण [Economi cint egration) अपनाते हुए विभिन्न मात्राओं में आर्थिक क्षेत्र स्थापित किये

(1) **आर्थिक संघ (Economic Union)** यह कुछ देशों के समूह के मध्य पूर्ण एकीकरण का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे क्षेत्र में न केवल वस्तुओं व सेवाओं का बल्कि साधनों का संयुक्त रूप से अवागमन होता है। जैसे- यूरोपीय साझा बाजार (E.C.M.) तथा इससे प्रेरित 1975 में बनाया गया 'एशियान' क्षेत्र, जिसके सदस्य मलेशिया, सिंगापुर, इण्डोनेशिया व फिलीपीन्स आदि देश है।

(2) **सीमा संघ (Custom Union)** इस प्रकार के आर्थिक क्षेत्र में एकीकरण केवल सदस्य देशों के मध्य सीमा शुल्क बाधाओं के उन्मूलन और गैर सदस्य देशों के साथ समान सीमा शुल्क अपनाने तक सीमित रहता है जैसे प्रस्तावित मध्य अमेरिकी साझा बाजार

(3) **स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र (Free Trade Area)** इस प्रकार के आर्थिक क्षेत्र में सदस्य देश परस्पर व्यापार की तटकर बाधाओं का उन्मूलन कर देते हैं। किन्तु गैर सदस्य देशों के साथ राष्ट्रीय तटकर नीति अपनाने के लिए स्वतंत्र होते है। जैसे यूरोपीय स्वतंत्र संघ (E.F.T.A) 1959 इसका प्रमुख उदाहरण है।

(4) **आंशिक एकीकरण या मुक्त क्षेत्र** स्वचालन उद्योग (Automobile) के क्षेत्र में अमेरिका व कनाडा के मध्य स्वतंत्र व्यापार समझौता (F.T.A.) इसका प्रमुख उदाहरण है।

(5) **द्विपक्षीय व्यापार समझौता क्षेत्र -** ये समझौते दो या कुछ देशों के मध्य परस्पर व्यापार वृद्धि हेतु किये गये समझौते हैं। जैसे भारत व रूस के मध्य रुपये-भुगतान समझौता।

(6) **दक्षिण ऐशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (SAARC)** दक्षेस की स्थापना भारत, बंगला देश, श्रीलंका, मालदीव, भूटान, नेपाल एवं पाकिस्तान सात देशों ने 1985 में सदस्य देशों के मध्य व्यापार, आर्थिक व सांस्कृतिक सहयोग के उद्देश्य से की है।

37.3 भारतीय विदेशी व्यापार के विश्व में प्रमुख आर्थिक क्षेत्र -

स्वतंत्रता के पश्चात भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा, संरचना व दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए है। व्यापार की मात्रा में जहाँ आयात व निर्यात दोनों में ही कई गुना वृद्धि हुई। वहाँ आयात व निर्यात के ढाँचे में भी व्यापक परिवर्तन हुआ है। आयात में अनेक वस्तुओं विशेषत: पूँजीगत

सामान की वृद्धि हुई है। तो निर्यात के ढाँचे में अनेक परम्परागत वस्तुएं जैसे इन्जीनियरिंग वस्तुएं आभूषण, हस्तकला की वस्तुएं व तैयार कपड़ों का निर्यात हमारे कुल निर्यात व्यापार में निरन्तर अपना भाग बढ़ाते जा रहे हैं। इसी प्रकार आयात व निर्यात व्यापार की दिशा में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ हैं। आज पूरा विश्व भारत का बाजार बन गया है। विश्व के अधिकांश देश हमारे ग्राहक बन गए हैं। तथा विश्व के अनेक नवीन देशों या क्षेत्रों से हमारे आयात होने लगे है हमारे विदेशी व्यापार की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह उभरी है कि सभी देशों व क्षेत्रों से हमारे निर्यात व आयात निरन्तर परिवर्तनशील रहे हैं। जिसका प्रमुख कारण क्षेत्रीय बाजारों का प्रार्दुभाव है अत: भारत के विदेशी व्यापार की दृष्टि से प्रमुख आर्थिक क्षेत्र जिसके साथ हमारा विदेशी व्यापार सम्पत्र होता है इस प्रकार है-

(1) **आर्थिक सहयोग एवं विकासार्थ संगठन (OECD) -** इस संगठन में मुख्यत: तीन क्षेत्रों के देश शामिल हैं –

(क) यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देश - इसके पाँच देश शामिल होते है - बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैंड, तथा इंग्लैण्ड।

(ख) उत्तरी अमेरिका के देश - इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा शामिल है।

(ग) ऐशिया और भूमध्य सागर के देश - इस समूह में आस्ट्रेलिया एवं जापान शामिल हैं।

(2) **तेल निर्यातक देश (OPEC) -** इनमें मुख्यत: ईरान, कुवैत और सऊदी अरब व ईराक शामिल है, जिनके साथ भारत का प्रमुख रूप से व्यापार है।

(3) **पूर्वी यूरोप के देश -** इनमें रूमानियां व पूर्वी जर्मनी थे किन्तु वर्तमान में जर्मनी का एकीकरण हो जाने के बाद पूर्वी जर्मनी का अस्तित्व समाप्त हो गया है।

(4) **विकासशील देश (Developing Countries) -** इनमें मुख्यत: एशिया व अफ्रीका महाद्वीप के देश तथा लेटिन अमेरिका व कैरेबियन विकास शील देशों का समावेश किया जाता है। किन्तु तेल निर्यातक देश पृथक कर दिए जाते है।

तालिका 37.1

विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार

नियोजन काल में विशेषत: चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के विदेशी व्यापार की दिशा में भारी परिवर्तन हुआ है जिसका एक समग्र निम्न तालिका से स्पष्ट है।

क्र. सं.	आर्थिक क्षेत्र	वर्ष	आयात करोड़ रु.	निर्यात करोड़ रु.	व्यापार शेष(क.) रु.	कुल आयात में % भाग	कुल निर्यात में % भाग
1	ओ.ई.सी डी.	1990-91	23310	17428	-5882	-54.00	53.50
		2014-15	736113	668600	-67513	26.89	35.26
2	यूरोपीय आर्थिक समुदाय	1990-91	12680	8951	-3729	29.40	27.50
		2014-15	300946	302808	1862	11.00	15.97
3	बेल्जियम	1990-91	2718	1259	-1459	6.30	3.90
		2014-15	65939	33719	-32220	2.41	1.78
4	फ्रांस	1990-91	1304	766	-1459	3.00	2.40
		2014-15	27030	30327	3297	0.99	1.60

5	जर्मनी	1990-91	3473	2549	-924	8.00	7.80
		2014-15	78181	46077	-32104	2.86	2.43
6	इग्लैण्ड	1990-91	2894	2128	-766	6.70	6.50
		2014-15	30733	57179	26446	1.12	3.02
7	उत्तरी अमेरिकी देश(कनाडा)	1990-91	559	281	-278	1.30	0.90
		2014-15	22966	13431	-9535	0.84	0.71
8	संयुक्त राज्य अमेरिका	1990-91	5245	4797	-448	12.10	14.70
		2014-15	133421	259523	126102	4.87	13.68
9	ऐशिया व भूमध्य सागरीय देश आस्ट्रेलिया	1990-91	1664	321	-1143	3.40	1.00
		2014-15	128300	51808	-76492	4.69	2.73
10	जापान	1990-91	3245	3039	-206	7.50	9.30
		2014-15	61990	32838	-29152	2.26	1.73
11	तेल निर्यातक देश (ईरान, ईराक, कुवैत, सऊदी	1990-91	7041	1831	-5210	16.30	5.60
		2014-15	836138	344486	-491652	30.55	18.16

	अरब)						
12	**पूर्वी यूरोपीय देश**	1990-91	3337	5819	2442	7.80	17.90
		2014-15	46912	21001	-25911	1.71	1.11
13	**सोवियत रूस**	1990-91	2548	5255	2707	5.90	16.10
		2014-15	25924	12824	-13100	0.95	0.68
14	**विकासशील देश (एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका)**	1990-91	7985	5465	-2500	18.40	16.80
		2014-15	1067976	834341	-233635	39.02	44.00
15	**एशिया**	1990-91	6033	4665	-1368	14.00	14.30
		2014-15	841028	573946	-267082	30.73	30.26

Source: Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics.

*तेल निर्यातक देशों को पृथक रखते हुए एशिया, अफ्रीका, लेटिन अतेरिका के देश शामिल हैं।

(i) तालिका से स्पष्ट है कि भारत से विदेशी व्यापार में सर्वाधिक भागीदारी आर्थिक सहयोग एवं विकासशील संगठन (OECD) देशों की है हमारे कुल निर्यातों का 53.5 प्रतिशत भाग और कुल आयातों का 54 प्रतिशत भाग 1990—91 में इन्हीं के साथ था । जो वर्ष 2014—15 में हमारे आयात घटकर 26.89

प्रतिशत रह गये । जबकि हमारे निर्यात 35.26 प्रतिशत घटकर रह गये। किन्तु हमारा व्यापार घाटा भी इन देशों के साथ बना हुआ है।

(ii) यूरोपियन आर्थिक समुदाय के साथ् 1990—91 में कुल आयातों का 29.4 प्रतिशत तथा कुल निर्यातों का 27.5 प्रतिशत व्यापार इनके साथ होता था और तब भारत को व्यापार घाटा होता था किन्तु 2014—15 में कुल आयातों का 11 प्रतिशत व कुल निर्यातों का 15.97 प्रतिशत व्यापार यूरोपियन आर्थिक समुदाय से होता है और इससे भारत को व्यापार अतिरेक प्राप्त होता है। बेल्जियम, फ्रांस

(iii) जर्मनी, इग्लैण्ड के साथ 1990—91 में हमारे व्यापार घाटा था किन्तु 2014—15 में भारत को फ्रांस एवं इग्लैण्ड के साथ व्यापार करके अतिरेक् प्राप्त हो रहा है।

(iv)संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से 1990—91 में कुल आयातों का 12.1 प्रतिशत व निर्यातों का 14.7 प्रतिशत व्यापार था और भारत को व्यापार घाटा होता था। जो वर्ष 2014—15 में कुल आयातों का 4.87 प्रतिशत व निर्यातों का 13.68 प्रतिशत व्यापार होता है और भारत को अमेरिका से व्यापार अतिरेक प्राप्त हो रहा है।

(v) आस्ट्रेलिया, जापान, सोवियत रूस से भारत को व्यापार घाटा है । वर्तमान में तेल निर्यातक देशों से भारत का कुल आयातों का 30.55 व निर्यातों का 18.16 प्रतिशत व्यापार होता है और भारत को सर्वाधिक व्यापार घाटा प्राप्त होता है। इसके अलावा एशिया के देशों के साथ व अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के साथ भी भारत को काफी अधिक व्यापार घाटा का समाना करना पड़ रहा है जो कि उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है।

तालिका 37.2

भारत के विदेशी व्यापार की नवीनतम प्रवृतियां

(प्रतिशत भाग)

आर्थिक क्षेत्र		2011-12		2014-15	
		निर्यात	आयात	निर्यात	आयात
I	ओ.ई.सी डी.	33.87	30.22	35.26	26.89
	A. यूरोपीय आर्थिक समुदाय	17.22	11.95	15.97	11.00
	B. उत्तरी अमेरिकी	12.03	5.60	14.39	5.71
	C. ऐशिया व भूमध्य सागरीय देश	2.98	5.69	2.73	4.69
	D. अन्य ओ.ई.सी डी	1.63	6.98	2.16	5.50
II.	तेल निर्यातक देश (OPEC)	16.79	32.51	18.17	30.55
III.	पूर्वी यूरोपीय देश	1.02	1.73	1.11	1.71
IV.	विकासशील देश	42.96	35.26	44.00	39.02
	A. एशिया,	31.87	28.83	30.27	30.73
	B. अफ्रीका	6.70	4.01	9.05	4.37
	C. लैटिन अमेरिका देश	4.38	2.42	4.68	3.92
V.	अन्य	0.14	0.07	0.17	0.13

VI.	**अवर्गीकृत**	5.22	0.21	1.31	1.69
	कुल	100	100	100	100

Source: Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्तमान में भारत का व्यापार प्रमुखतया ओ.ई.सी डी., तेल निर्यातक देश, पूर्वी यूरोप देश, विकासशील देशों के साथ हो रहा है। ओ.ई.सी डी देशों से हमारा निर्यात बढ़ा है जबकि आयात कम हुआ है। यूरोपियन आर्थिक समुदाय से हमारा निर्यात 2011—12 से 2014—15 में घटा है और आयात भी कुछ हद तक कम हुआ है। तेल निर्यातक देशों ओपेक के साथ हमारा निर्यात बढ़ा है और आयात में 2011—12 से 2014—15 में कमी आयी है। वर्तमान स्थिति में भारत का व्यापार विकासशील देशों के साथ बढ़ता जा रहा है। भारत का निर्यात 2011—12 में विकासशील देशों के साथ 42.96 प्रतिशत था जो 2014—15 में 44 प्रतिशत हो गया एवं भारत का आयात जो 35.26 प्रतिशत था वह भी बढ़कर 39.02 प्रतिशत हो गया। भारत का अफ्रीकन एवं लेटिन अमेरिकन देशों से व्यापार भी उतरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

तालिका37.2

पूर्वी ऐशियाई देशों के साथ विदेशी व्यापार

(प्रतिशत भाग)

क्र.सं.	**देश**	**1991-92**		**2014-15**	
		निर्यात	**आयात**	**निर्यात**	**आयात**
1	**इण्डोनेशिया**	0.8	0.3	1.3	3.36
2	**मलेशिया**	1.1	2	1.88	2.48

3	**हाँगकाँग**	3.4	0.6	4.38	1.24
4	**दक्षिण कोरिया**	1.4	1.7	1.48	3.02
5	**सिंगापुर**	2.2	3.6	3.16	1.59
6	**थाई देश**	1.1	0.3	1.12	1.31
7	**चीन**	1	1.5	3.86	13.5
	योग	**11.1**	**9.9**	**17.18**	**26.5**

Source: Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics.

भारत का पूर्वी एशियाई देशों के साथ भी विदेशी व्यापार बढ़ता जा रहा है। भारत का निर्यात 1991—92 में 11.01 प्रतिशत से बढ़कर 2014—15 में 17.18 प्रतिशत हो गया एवं आयात भी बढ़कर 9.09 प्रतिशत से 26.5 प्रतिशत हो गया । भारत का आयात बढ़ने का प्रमुख कारण चीन है क्योंकि 1991—92 में भारत का चीन से आयात 1.5 प्रतिशत था जो 2014—15 में बढ़कर 13.5 प्रतिशत हो गया। विगत 25 सालों में चीन का आयात 9 गुणा बढ़ चुका है जबकि निर्यात मात्र 3.86 गुणा ही बढ़ा है। जो भारत का चीन की तरफ व्यापार असंतुलन को दिखाता है। पूर्वी एशियाई देशों में चीन के प्रति भारत का प्रमुख व्यापार हाँगकाँग एवं सिंगापुर से है। भारत का निर्यात 1991—92 में हाँगकाँग को 3.4 प्रतिशत था जो बढ़कर 2014—15 में 4.38 प्रतिशत हो गया एवं आयात 0.6 से बढ़कर 1.24 प्रतिशत हो गया। सिंगापुर को हमारे निर्यातों में वृद्धि हुई है एवं आयातों में कमी हुई है। इसी प्रकार से इण्डोनेशिया, मलेशिया,दक्षिण कोरिया एवं थाई देशों के साथ हमारा व्यापार बढ़ता जा रहा है।

37.4 विश्व के प्रमुख क्षेत्रों के साथ भारत के व्यापार की संरचना

भारत के आयात व निर्यात दोनों के ढाँचे में नियोजन काल में भारी परिवर्तन हुआ है। आयात व निर्यात दोनों ही व्यापारी में अनेक नवीन वस्तु में शामिल हो गयी है। इस प्रकार भारत के विदेशी व्यापार विविधीकरण की दिशा में तीव्र गति से अग्रसर हुआ है। यहाँ पर क्षेत्रानुसार आयात व निर्यात की प्रमुख वस्तुओं का उल्लेख वांछनीय हैं।

37.4.1 क्षेत्रानुसार निर्यात की संरचना

नियोजन काल के प्रारंभ में विशेषत: चतुर्थ योजना के अन्त तक भारत के व्यापार का ढाँचा परम्परागत रहा जिसमें कृषि वस्तुएं कच्चा माल और उपभोक्ता वस्तुओं की प्रधानता थी किन्तु वर्तमान में हमारे निर्यातों में अनेक नवीन वस्तुएं शामिल हो गयी है। विश्व के प्रमुख क्षेत्रों में निर्यात की मदें इस प्रकार है -

(1) चाय- यह हमारे निर्यात की प्रमुख परम्परागत वस्तु है। विश्व के कुल चाय का उत्पादन का 50 प्रतिशत भाग भारत में होता है जिसका दो तिहाई भाग निर्यात कर दिया जाता है। चाय का निर्यात मुख्यत: यूरोपीय समुदाय के देश-इंग्लैण्ड, जर्मनी को होता है। इसके अतिरिक्त रूस, अफगानिस्तान, संयुक्त अरब गणराज्य, कनाडा व आस्ट्रेलिया को चाय का निर्यात उल्लेखनीय है।

(2) जुट का सामान- यह भी हमारे निर्यात बाजार की प्रमुख वस्तु है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, इग्लैण्ड, फिनलैण्ड इसके प्रमुख ग्राहक है। किन्तु वर्तमान में विदेशी बाजारों में भारी प्रतियोगिता के कारण इसके निर्यात में कमी आई हैं।

(3) चमड़ा व चमड़े का सामान- यह महत्वपूर्ण निर्यात है जिसकी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इनका निर्यात मुख्यत: इग्लैण्ड, रूस, इटली, जर्मनी, अस्ट्रेलिया, फ्रांस, जापान, अमेरिका है।

(4) सूत, सूती कपड़े व तैयार वस्त्र- जापान के बाद भारत का सूती वस्त्रों के निर्यात में विश्व में महत्वपूर्ण स्थान है। अब भारत पालिस्टर व पालिस्टर निर्मित कपड़ों का भी निर्यात कर रहा है। तैयार कपड़ों के निर्यात में तो हमने उल्लेखनीय प्रगति दर्ज की है। इग्लैण्ड, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा, भूटान, अरब, कीनिया, फ्रांस, न्यूजीलैण्ड इस मद के प्रमुख ग्राहक हैं।

(5) इन्जीनियरिंग सामान- गैर परम्परागत निर्यात में इसका प्रमुख भाग है। देश का इन्जीनियरिंग का सामान विदेशों में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। यह सामान यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों अमेरिका, अफ्रीकी देशों व दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों को प्रमुख रूप से निर्यात होता है।

(6) धातु अयस्क- मैगनीज, अभ्रक व अलौह अयस्क का निर्यात महत्वपूर्ण है। अब लौह अयस्क का निर्यात भी होने लगा है। जापान व चीन हमारे प्रमुख ग्राहक बन गये है।

(7) मछली व मछली निर्मित वस्तुएं- इनका निर्यात प्रमुखत: संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जापान, पूर्वी ऐशिया के देशों तथा आस्ट्रेलिया को प्रमुख रूप से किया जाता है।

(8) हीरे व आभूषण- हीरे व आभूषणों के निर्यात से भारत को पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, रूस व यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देश प्रमुख ग्राहक है।

(9) हस्तकला वस्तुयें व अन्य- हस्तकला की वस्तुयें प्रमुखत: यूरोप के देशों अमेरिका व कनाडा को निर्यात होती है इसके अतिरिक्त काजू, तम्बाकू, मसाले, खली के प्रमुख आयातक देश, रूस, इग्लैण्ड, अमेरिका आदि है।

37.4.2 क्षेत्रानुसार आयात की संरचना

नियोजन काल के दौरान भारत की आयात वस्तुओं के ढाँचे में भी भारी परिवर्तन हुआ है। आयात वस्तुओं में पूँजीगत सामान की प्रमुखता रही है। विश्व के प्रमुख क्षेत्रानुसार आयात की प्रमुख मदें इस प्रकार है -

(1) खाद्यान्न- यह हमारे आयात की प्रमुख मद रही है 1950-51 से 1970-71 तक देश खाद्यान्न की समस्या से जूझता रहा है। अत: हमें भारी मात्रा में खाद्यान्न आयात करना पड़ा। प्रमुखत: गेहूँ का आयात संयुक्त राज्य अमेरिका से वहाँ के कानून पी. एल. 480 के अन्तर्गत किया गया। वर्तमान में हम खाद्यान्न में लगभग आत्मनिर्भरता प्राप्त कर चुके है, अत: यह अब आयात की प्रमुख मद नहीं रही है।

(2) दालें व खाद्य तेल- वर्तमान में हमारे आयातों की यह प्रमुख मद बन गयी है। क्योंकि तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण घरेलू पूर्ति माँग से कम रह जाती है। यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों से प्रमुख रूप से आयात किया जाता है।

(3) मशीनरी- नियोजन काल में औद्योगीकरण की गति तीव्र हुई और भारी मात्रा में मशीनरी का आयात किया गया इसमें यन्त्र, औजार विश्रुत सयंत्र परिवहन उपकरण आदि प्रमुख है। ये मुख्यत: यूरोप के देशों, संयुक्त राज्य अमेरिका रूस, जापान, इग्लैण्ड, फ्रांस, व कनाडा सें आयात की जाती है।

(4) खनिज तेल- पैट्रोलियम भारत के आयातों में सर्वाधिक प्रमुखता रखता है। यह तेल निर्यातक देशों जिनमें ईरान, ईराक, कुवैत प्रमुख है से आयात किया जाता है।

(5) धातुएं- देश में लोहा इस्पात व कुछ अलौह धातुओं का आयात भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान में स्वदेश में ही इनका उत्पादन होने लगा है। अत: आयात में कमी आयी है। धातुओं का आयात मुख्यत: यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों, उत्तरी अमेरिकी देशों तथा रूस से होता है।

(6) पदार्थ व औषधियां- रासायनिक पदार्थो व दवाइयों का आयात मुख्यत: संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा तथा इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस इत्यादि यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों से होता है।

(7) अन्य मदें- उपर्युक्त वस्तुओं के आन्तरिक देश के आयात की प्रमुख मदों में विद्युत उपकरण, कागज, उर्वरक चिकत्सीय सामान महत्वपूर्ण है। ये वस्तुयें मुख्यत: उत्तरी अमेरिकी देशों व यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों से आयात की जाती है।

37.5 सारांश

किसी देश की आर्थिक समृद्धि में उस देश का विदेशी व्यापार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में व्यापार व आर्थिक विकास ने प्रत्यक्षत: एक दूसरे को प्रोत्साहित किया है।

विश्व में व्यापार विकास व आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए विभिन्न देशों के मध्य आर्थिक सहयोग व एकीकरण के प्रयासों में तीव्रता आई है। आर्थिक सहयोग व एकीकरण के आधार पर विश्व के देशों कों लगभग 6 क्षेत्रों में बांटा जा सकता है - आर्थिक संघ जैसे यूरोपीय आर्थिक समुदाय के सीमा संघ (मध्य अमेरिकी साझा बाजार) यूरोपीय स्वतंत्र व्यापार संघ (एफ्टा) स्वतंत्र व्यापार समझौता क्षेत्र (उत्तरी अमेरिका व कनाडा) द्विपक्षीय व्यापार समझौता क्षेत्र तथा दक्षिण ऐशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस)। भारत के विदेशी व्यापार की दृष्टि सें विश्व के विभिन्न देशों के प्रमुखत: चार क्षेत्रों में रखा जाता है -

(1) आर्थिक सहयोग एवं विकासार्थ (OECD) देश - इस संगठन में मुख्यत: तीन क्षेत्रों के देशों को रखा जाता है। यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देश, उत्तरी अमेरिका के देश, ऐशिया व भूमध्य सागर के देश।

(2) तेल निर्यातक देश (OPEC)।

(3) पूर्वी यूरोप के देश तथा

(4) विकासशील देश जिसमे ऐशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के देश शामिल है। विश्व के इन प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार है -

(i) भारत के निर्यातों में संयुक्त राज्य अमेरिका का भाग चतुर्थ योजना में 13.5 प्रतिशत से बढ़कर 19 प्रतिशत हो गया है। जबकि कुल आयातों में अमेरिका का भाग इसी अवधि में 27.7 प्रतिशत से घटकर 11.1 प्रतिशत हो गया है।

(ii) देश के विदेशी व्यापार में सर्वाधिक भाग आर्थिक सहयोग विकासार्थ सहयोग संगठन के देशों (OECD) का है। जो कुल देश के कुल आयात व निर्यात का क्रमश: 54 प्रतिशत तथा 53.5 प्रतिशत भाग है।

(iii) यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) के देशों का भारत के विदेशी व्यापार में द्वितीय स्थान है। जो कि कुल आयात व निर्यात का क्रमश: 30 व 27.5 प्रतिशत भाग है।

(iv)ऐशिया व भूमध्य सागरीय देशों में जापान के साथ हमारे आयात व निर्यात पर्याप्त मात्रा में है। किन्तु विगत कुछ वर्षों से इसके भाग में थोड़ी कमी आयी है।

(v) तेल निर्यातक देशों से तेल के आयात के कारण आयातों का प्रतिशत भाग तो अधिक 20.6 है। जबकि निर्यात का भाग केवल 9 प्रतिशत है।

(vi)पूर्वी यूरोप के देशों के साथ हमारे विदेशी व्यापार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। जिसमें रूस की सर्वाधिक भूमिका है। इस क्षेत्र के निर्यात में 18 प्रतिशत भाग था जबकि अकेले रूस का भाग 16.1 प्रतिशत है।

(vii) अन्य विकासशील देशों के क्षेत्र में ऐशियाई विकास सील देशों का प्रतिशत भाग महत्वपूर्ण है। यह निर्यात में 14.3 प्रतिशत तथा आयात में 14 प्रतिशत है।

(viii) पूर्वी यूरोप के देशों विशेषत: रूस के साथ हमारा व्यापार अनुकूल (आधिक्य पूर्ण) रहा है। जबकि जापान संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ यह यदा-कदा अनुकूल रहा है। तथा कुछ वर्षो में प्रतिकूल भी। अन्य क्षेत्रों के साथ यह सदैव प्रतिकूल रहा है।

(ix)हाल ही में पूर्वी ऐशियाई देशों के साथ हमारे विदेशी व्यापार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

(x) उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारत का भूमण्डलीय करण की दिशा में अपने कदम बढ़ा चुके है।

(xi)भारत विश्व के विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों को हमारे आयात व निर्यात की मदों में भारी विविधिता आयी है। ओ.ई.सी.डी. देशों यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों, पूर्वी यूरोप जापान, कनाडा, ईरान तथा पूर्वी एशिया के देशों के साथ आयात व निर्यात की सर्वथा नयी मदों में व्यापक परिवर्तन देखा गया है।

(xii)चाय जूट का समान चमड़ा व चमड़े का सामान सूती वस्त्र हमारे निर्यात व्यापार की परंपरागत वस्तुएं है। जो प्रमुखत: उत्तरी अमेरिका क्षेत्र, यूरोपीय आर्थिक समुदाय, पूर्वी यूरोप तथा ऐशिया व अफ्रीकी विकासशील देशों को होता है। किन्तु इन क्षेत्रों के साथ तैयार कपड़े, इन्जीनियरिंग का सामान, हीरे जवाहारात, हस्तकला वस्तुओं जैसी गैर परम्परागत वस्तुओं के निर्यात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

(xiii) देश के आयात की परम्परागत वस्तुएं - खाद्यान्न, खनिज तेल धातुओं, रासायनिक पदार्थ व औषधियों का आयात प्रमुखत: उत्तरी अमेरिकी क्षेत्र, यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देश व तेल निर्यातक देशों से प्रमुख रूप से हुआ है। किन्तु मशीनरी उर्वरक दालें व खाद्य तेल उर्वरक व अन्य व्यवसायिक वस्तुओं व उपकरणों का आयात प्रमुख रूप से इन्हीं क्षेत्रों के साथ बढ़ा हैं।

37.6 कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

1. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र - प्रो. नागर एवं डा. शर्मा

2. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र - डा. जी.सी सिंघई साहित्य भवन आगरा
3. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र - डा. के.आर गुप्ता
4. 'The Development process of Indian Economy' – Prof. Brahamanda, Panchmukhi, Himalaya Publishing New Delhi
5. Bepin Behari, Imports in Developing Economy – Varak & co Bombay.
6. Foreign Trade Regions & Economic Development. India National Bureau of Economic Research.
7. Economic Development Export- A Study of the impact on Indian economic Development on Exports.
8. International Trade of Third would Development, K.P. Ghosh.
9. Export marketing of Indian Goods', P.K. Jain, Deep of Deep New Delhi.
10. Indian Export Trade. A critical analysis – R.M. Ghosi.
11. International aspects of Indian Economic Development. D.T. Lakdawala.
12. India's Foreign Trade by Regions

बोध प्रश्न

1. आर्थिक सहयोग व एकीकरण की दृष्टि से विश्व के प्रमुख क्षेत्रों बताइए।

2. आर्थिक संघ व सीमा संघ में अन्तर कीजिए तथा इनके प्रमुख दीजिए।

3. स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र तथा मुक्त क्षेत्र के उदाहरण देते हुए इसका आधारभूत अन्तर बताइये।

4. दक्षेस क्या है। इसकी स्थापना का क्या उद्देश्य है।

5. भारत के विदेशी व्यापार की दृष्टि से विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्र क्या है?

6. आर्थिक सहयोग एवं विकासील संगठन देशों (OECD Countries) में कौन से प्रमुख आर्थिक क्षेत्र शामिल हैं?

7. पूर्वी यूरोप के किस प्रमुख देश से भारत का व्यापार प्रगति शील है। इस देश के साथ आयात व निर्यात की प्रमुख वस्तुयें बताइयें?

8. विश्व के किस वृहद क्षेत्र के साथ भारत का विदेशी व्यापार सर्वाधिक है। चतुर्थ योजना फल से क्षेत्र के साथ आयात व निर्यात की प्रगति पर प्रकाश डालिए।

9. यूरोपीय आर्थिक समुदाय के साथ भारत के आयात-निर्यात का एक लेखा जोखा प्रस्तुत कीजिए।

10. 1991 के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ भारत के विदेशी व्यापार का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए।

11. निम्न निर्यात वस्तुओं के प्रमुख ग्राहक देशों को बताइए

(i) चाय (ii) चमड़ा व चमड़े का सामान (iii) इन्जीनियरिंग का सामान (iv)हस्तकला वस्तुयें।

12. विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?

बोध प्रश्नों के उत्तर -

1. विश्व के अधिकांश देश अब बन्द अर्थ व्यवस्थाऐं नहीं रही है जहाँ कि विदेशी व्यापार शून्य होता. है। ये खुली अर्थव्यवस्थाऐं है। जहाँ न केवल विदेशी व्यापार गतिमान है। बल्कि देशों के मध्य आर्थिक सहयोग व एकीकरण विभिन्न मात्राओं में बढ़ रहा है। इस दृष्टि से विश्व के देशों की निम्न प्रमुख क्षेत्रों में रखा जाता है।

(i) आर्थिक संघ - जैसे यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC)

(ii) सीमा संघ - जहाँ केवल सदस्य देशों के मध्य सीमा शुल्क बाधाऐं हटायी जाती है। जैसे मध्य अमेरिकी साझा बाजार।

(iii) स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र - सदस्य देश परस्पर तटकर हटाते हुए अन्य देशों के साथ स्वतंत्र व्यापार नीति अपनाते है जैसे यूरोपीय स्वतंत्र, व्यापार क्षेत्र (EFTA)

(iv)मुक्त क्षेत्र - इस प्रकार के क्षेत्र में आंशिक एकीकरण अपनाया जाता है। जैसे अमेरिका, कनाडा का स्वचालन उद्योग के सम्बन्ध में स्वतंत्र व्यापार समझौता (FTA)

(v) द्विपक्षीय व्यापार समझौता क्षेत्र - जैसे भारत व रूस के मध्य रुपए भुगतान समझौता।

(vi)दक्षिण ऐशियाई सहयोग संघ (दक्षेस) - जो भारत, बांग्लादेश नेपाल, भूटान, मालदीव व पाकिस्तान - 7 देशों ने बनाया है।

2. आर्थक संघ - यह कुछ देशों का ऐसा समूह क्षेत्र है जिसके बीच पूर्ण एकीकरण अपनाया जाता है। ऐसे क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओं के अतिरिक्त साधनों का भी बिना सीमा शुल्क लगे निर्बाध परस्पर आवागमन होता है। सात देशों के समान वैदेशिक आर्थिक नीति यहाँ तक कि एक ही करेन्सी अपनाने की भी प्रतिबद्धता होती है। जैसे यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) जो 1995 से एक ही पूरी करेन्सी अपनाने हेतु प्रयासरत था । इसी प्रकार ऐशियान इसका दूसरा उदाहरण है। जिसमें थाईलैण्ड, मलेशिया, सिंगापुर इण्डोनेशिया व फिलीपीन्स देश सामिल है।

3. स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र - कुछ देशों के मध्य अपनाये जाने वाला ऐसा आर्थिक क्षेत्र है। जिसमें परस्पर व्यापार की तटकर बाधाएँ हटा दी जाती है। किन्तु क्षेत्र के बाहर के देशों के साथ स्वतंत्र व्यापार नीति अपनाई जाती है जैसे यूरोपीय स्वतंत्र व्यापार संघ (EFTA) - 1959 किन्तु मुक्त क्षेत्र कुछ देशों का ऐसा आर्थिक क्षेत्र है। जिसमें आंशिक एकीकरण अपनाया जाता है। जैसे स्वतंत्र व्यापार समझौता (EFTA) जो कि अमेरिका व कनाडा ने औटोमोबाइल्स के क्षेत्र में अपनाया है।

4. दक्षिण ऐशियाई सहयोग संघ (दक्षेश) की स्थापना 1985 में भारत, बंग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, मालदीव, भूटान तथा नेपाल ने मिलकर की है। यह संघ इन सातों दक्षिण ऐशियाई देशों के मध्य परस्पर व्यापार की वृद्धि व आर्थिक एवं सांस्कृतिक सहयोग के उद्देश्य से स्थापित

किया गया है। प्रत्येक चार वर्ष पश्चात् इन देशों का शीर्ष सम्मेलन बारी-बारी से विभिन्न देशों में होता है। भारत का विदेशी व्यापार दक्षेस संगठन के साथ अनुकूल रहा है।

5. भारत के विदेशी व्यापार की दृष्टि से विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्र चार हैं।

(i) आर्थिक सहयोग एवं विकासशील संगठन (OECD)

(ii) तेल नियतिक देश (OPEC)

(iii) पूर्वी यूरोप के देश

(iv)विकास सील देश (तेल निर्यातक देशों को पृथक रखते हुए) विस्तृत विवरण के लिए अध्याय के सम्बन्धित भाग को पढ़ा जाय।

6. भारत का विदेशी व्यापार आयात व निर्यात दोनों ही दृष्टियों से आर्थिक सहयोग एवं विकासार्थ संगठन (OECD) के देशों से सर्वाधिक है। यह सर्वाधिक बहुत आर्थिक क्षेत्र है। जिसमें यूरोपीय आर्थिक समुदाय के 5 देश वेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, नीदर लैण्ड तथा इंग्लैण्ड शामिल है। उत्तरी अमेरिका के देश संयुक्त राज्य व कनाडा शामिल है। उत्तरी अमेरिका के देश संयुक्त राज्य व कनाडा शामिल है। तथा एशिया व भूमध्य सागर के देश जापान व आस्ट्रेलिया है।

7. यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) भारत के विदेशी व्यापार का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र के साथ भारत के आयात व निर्यात दोनों में ही निरन्तर प्रगति हो रही है। इस क्षेत्र के साथ भारत के कुल आयात का 1970-71 में 19.6 प्रतिशत भाग था वह बढ़कर 1991 में 29.4 प्रतिशत तथा 2014-15 में 26.89 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार निर्यात व्यापार में वृद्धि हुई है। यह 1970-71 में 18.4 प्रतिशत से बढ़कर 190-91 में 27.4 प्रतिशत और 2014-15 में 35.26 प्रतिशत हो गया है। इस क्षेत्र के साथ व्यापार घाटे में भारी वृद्धि हुई है। 1970-71 में क्षेत्र के साथ हमारा व्यापार घाटा 38 करोड़ रुपया था वह बढ़कर 1990-91 में 3729 करोड़ रु. हो गया।

(क्षेत्र के साथ आयात व निर्यात की वस्तुओं के लिए अध्याय से सम्बन्धित भाग को पढ़ें।)

8. संयुक्त राज्य अमेरिका हमारे विदेशी व्यापार की दृष्टि से उत्तरी अमेरिकी क्षेत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण देश है। हमारा अधिकांश विदेशी व्यापार इसी देश के साथ होता रहा है। 1970-71 में हमारे कुल आयात का 27.7 भाग अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका से आ रहा था जो कि किसी एक देश के साथ आयात का एक बड़ा भाग था। अमेरिका से हमने खाद्यान्न संकट के समय भारी मात्रा में खाद्यान्न विशेषत: गेहूँ का आयात PL - 480 के अन्तर्गत किया। इसके अतिरिक्त कृत्रिम रेशे, मशीनरी, उपकरण और संयंत्र का हम भारी मात्रा में आयात करते रहे है। यद्यपि 1991 के बाद हमारे कुल आयात में अमेरिका का भाग घटकर 1991 में 12.1 प्रतिशत भाग तथा 2014-15 में 4.87 प्रतिशत रह गया है। तथापि यह अन्य किसी भी देश से अधिक है। इसी प्रकार हमारे निर्यात का एक बड़ा भाग इसी देश को होता है। 1970-71 में निर्यात का 13.5 प्रतिशत भाग अमेरिका को हो रहा था जबकि 1990-91 में 14.7 प्रतिशत और 2014-15 में 13.68 प्रतिशत निर्यात हो गया। इस देश के साथ हमारे व्यापार शेष में घाटा रहा है। किन्तु 1986-87 में 387 करोड़ रुपए का व्यापार आधिक्य भी रहा था। सूती कपड़ा, तैयार वस्त्र, इन्जीनियरिंग का सामान, हस्तकला वस्तुयें, जूट का सामान, तम्बाकू निर्यात की मदें क्षेत्रानुसार है।

9. इस प्रश्न के लिए आयात व निर्यात की प्रमुख मदों को पढ़ा जाय।

10. इस प्रश्न के लिए अध्याय के सारांश भाग को पढ़ा जाय।

37.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत के आयात व निर्यात की प्रमुख वस्तुओं का विवरण दीजिए?

2. विश्व के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की नवीनतम प्रवृतियों पर प्रकाश डालिए?

3. पूर्वी ऐशिया के देशों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की प्रगति पर प्रकाश डालिए?

4. भारत के विदेशी व्यापार की नवीनतम प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए